गूढ़ रहस्य
चिन्तामणी
आचार्य वासुपूज्य सागर

पुष्प संख्या–7

गूढ़ रहस्य चिन्तामणी

,o

;Kkiohr lLdkj

लेखक

प0 पू0 108 आचार्य श्री वासुपूज्य सागर महाराज

प्रबन्ध सम्पादक

बा0 ब्र0 भाग्या दीदी (नेहल दीदी)

कृति :
गूढ़ रहस्य चिंतामणी एवं यज्ञोपवीत संस्कार

लेखक :
प0 पू0 108 आचार्य श्री वासुपूज्य सागर महाराज

निर्देशिका :
प.पू. आर्यिका श्री श्रेयमती माता जी
प.पू. क्षुल्लिका श्री श्रेणीमती माता जी

प्रबन्ध सम्पादक :
बा0 ब्र0 भाग्या दीदी (नेहल दीदी)

प्रकाशन सम्वत् : वि.सं. 2066 वि.नि.सं. 2535 सन् 2009

प्रथम संस्करण–2000

प्राप्ति स्थान :

- आचार्य श्री ससंघ
- श्रीमती अनीता जी जैन
  जैन आयरन स्टोर
  रानीबाग, नैनीताल रोड़, हल्द्वानी
  जिला नैनीताल (उत्तराखंड) मोबाईल 09837034354
- श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, काशीपुर

पुण्यार्जक :

- श्री राजन जैन एवं श्रीमती अनीता जैन
  जैन आयरन स्टोर
  रानीबाग (नैनीताल रोड़), हल्द्वानी
- श्री योगेश जैन जी परिवार, (हिमालय सरिया)
  मुजफ्फरनगर (नावला वाले)
- श्री विकास जैन जी परिवार, (विश्वकर्मा पेपर मिल–काशीपुर)
  B-81ए, विवेक विहार, दिल्ली–110092

मुद्रक :
अरिहन्त ग्रॉफिक्स, दिल्ली
फोन : 011–22467277, 9212019046

सहस्त्रफणी भगवान
चिंतामणी पार्श्वनाथ

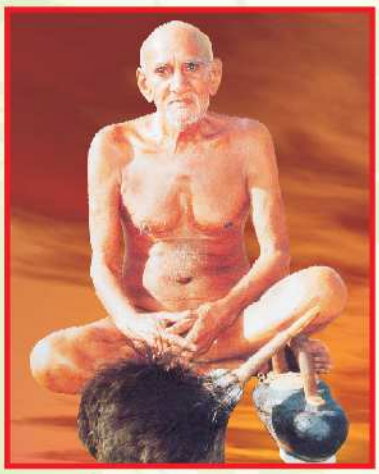

समाधि सम्राट वात्सल्य रत्नाकर
आचार्य श्री 108 विमलसागर जी महाराज

समाधि सम्राट
आचार्य श्री 108 पार्श्वसागर जी महाराज
(कोटला वाले)

अध्यात्म योगी 84 लाख मंत्र लेखनकर्ता बा.ब्र. परम पूज्य

आचार्य श्री 108 वासुपूज्य सागर जी महाराज

परम पूज्य आर्यिका १०५ श्री श्रेयमती माताजी का जीवन परिचय

जन्म नाम	यशवन्ति कुमारी जैन
जन्म स्थान	पाडवा, जिला-डूंगरपुर (राज.)
पिता	श्रीमान हीरालाल जी जैन
माता	श्रीमती केशर बेन जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसार जी से
आर्यिका दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	गांधी नगर (गुजरात)
दीक्षा तारीख	सन् 1993, रक्षाबंधन
भाई-बहन	तीन भाई, तीन बहन

कर्मयोगी क्षुल्लकरत्न १०५ श्री समर्पणसागर जी महाराज का जीवन परिचय

जन्म नाम	भरत जैन (सोनू)
जन्म तारीख	28 नवम्बर 1971
जन्म स्थान	धुलिया (महाराष्ट्र)
पिता	स्व. श्रीमान वीरचन्द जी जैन (ज्योतिषाचार्य)
माता	श्रीमती विमला देवी जैन
दीक्षा गुरु	आ. श्री निर्मलसागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	सूरत (गुजरात)
दीक्षा तारीख	22 अक्टूबर 1989
भाई-बहन	तीन भाई, एक बहन

क्षुल्लिका १०५ श्री श्रेणीमती माताजी का जीवन परिचय

जन्म नाम	श्रीमती शान्ति बाई
गृहस्थ पति	स्व. श्री ओंकारमल जी जैन
माता	श्रीमती कस्तूरीबाई
पिता	श्री दोहाचन्द जी
जन्म स्थान	पाड़वा, जिला-डूंगरपुर (राजस्थान)
ससुराल	रठौड़ा, जिला-उदयपुर (राजस्थान)
भाई-बहन	तीन
सप्तम प्रतिमा	2003 विजयदशमी
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	बनारस (उ.प्र.) 2004 बसन्त पंचमी

बा.ब्र. सुगन्ध भैया जी का जीवन परिचय

जन्म नाम	सुगन्ध कुमार जैन
जन्म स्थान	पाडवा, जिला-डूंगरपुर (राज.)
जन्म तारीख	30 दिसम्बर 1973
पिता	श्रीमान हीरालाल जी जैन (जोदावत)
माता	श्रीमती केशर बेन जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	आश्विन शुक्ला चौदस (सम्मेद शिखरजी में) 25.10.1997 में
भाई-बहन	तीन भाई, तीन बहन
सातवीं प्रतिमा	रक्षाबंधन, भागलपुर, बिहार (1998)

संघस्थ जय कुमार भईया जी का जीवन परिचय

गृहस्थ नाम	जय कुमार जैन
जन्म स्थान	महेबा, जिला पन्ना (म.प्र.)
पिता का नाम	श्री कालीचरण जी जैन
माता का नाम	श्रीमती रामा देवी (स्व. आर्यिका श्रेणी मती जी)
भाई-बहन	तीन भाई एवं तीन बहन
ब्रह्मचर्य व्रत	सातवीं प्रतिमा अष्ट्हानिका पर्व 2009

बा.ब्र. नेहल बहन का जीवन परिचय

जन्म नाम	नेहल जैन
जन्म स्थान	ईडर (गुजरात)
जन्म तारीख	14.06.1973
पिता	श्री चन्द्रकान्त जैन (दोशी)
माता	श्रीमती कुसुम जैन (दोशी)
ब्रह्मचर्य व्रत	02.09.1991
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
भाई-बहन	दो भाई, तीन बहन
पांचवी प्रतिमा	महेबा, चातुर्मास 1995

बा.ब्र. गुंजा बहन का जीवन परिचय

जन्म नाम	गुंजा बेन
जन्म स्थान	टिकैत नगर (उ.प्र.)
शिक्षा	11वीं
पिता	श्री राजेश चन्द्र जैन
माता	श्रीमती मधु जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	30.1.2007 मुरादाबाद
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
भाई-बहन	एक भाई, चार बहन

संघस्थ-प्रकाशक अन्य ग्रन्थ

आन्तरिक पीड़ा दिग्दर्शन

लेखक : आचार्य वासुपूज्य सागर जी महाराज

सुरक्षा चक्र ज्ञानवर्धिनी छहढाला

लेखक : आचार्य वासुपूज्य सागर जी महाराज

84 लाख उत्तर गुण मंत्र एवं विधान

लेखक : आचार्य वासुपूज्य सागर जी महाराज

चतुर्विंशति निर्वाण भक्ति

लेखिका : आर्यिका श्रेयमती माताजी

भक्ति संगीत की लहरें

रचना : बा.ब्र. सुगन्ध भैया जी

भक्ति संगीत वर्तमान के गीत

रचना : बा.ब्र. सुगन्ध भैया जी

श्रीमान राजन जी एवं अनिता जी जैन की अन्य धर्म प्रभावनाएं

आर्यिका श्रेयमती माताजी के दीक्षा दिवस के उपलक्ष्य में खुशियों में झूमों रे विडियो सीडी एवं आचार्य श्री के ३३वें दीक्षा दिवस के सुअवसर पर मंदिर में बजे शहनाई विडियो सीडी बनवाने का सौभाग्य राजन जैन एवं अनिता जैन हल्द्वानी को मिला

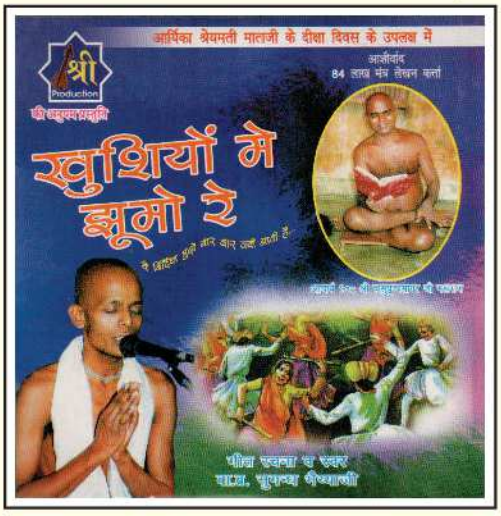

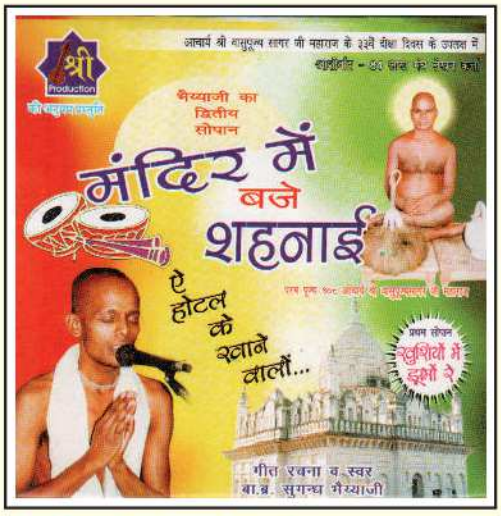

बा.ब्र. सुगन्ध भैय्या जी की तृतीय विडियो सीडी देखो बदला जमाना कितना अतिशीघ्र आने वाली है जिसे बनवाने का सौभाग्य प्राप्त किया है श्रीमान हीरालाल जी एवं केशर बेन जैन, कान्तिलाल जी जैन प्रेमलता जैन विजय कुमार जी प्रेमलता जैन 'पाड़वा' जिला डूंगरपुर (राजस्थान)

श्री राजन जी एवं श्रीमती अनीता जैन के 22वें marriage anivarsary के उपलक्ष्य में

गूढ़ रहस्य चिंतामणी

ग्रन्थ को प्रकाशन करवाने का सौभाग्य

श्रीमान राजन जैन अनीता जैन

हल्द्वानी

ने प्राप्त किया है

सुपुत्र

रोबीन जैन

सुपुत्र

आयुष जैन

फर्म

जैन आयरन स्टोर

नैनीताल रोड़, रानीबाग, हल्द्वानी (नैनीताल)

जिनेन्द्र आयरन स्टोर

नैनीताल रोड़, काठ गोदाम, हल्द्वानी (नैनीताल)

जैन क्लीयरिंग एजेन्सी

आवास विकास कॉलोनी, रुद्रपुर (उत्तराखण्ड)

आचार्य श्री के पुनः रानीबाग आगमन के सुअवसर पर

बाल ब्रह्मचारी हो मुनिवर युवा सम्राट कहाते हो
विमल पार्श्व के शिष्य बनकर ज्ञान ज्योति जगाते हो

परम तपस्वी और संयमी, रत्नत्रय के पालन हारा
अर्घ चढ़ाकर विनती मेरी, भवसागर को दिखाओ किनारा

माता

श्रीमती प्रेमवती जैन

धर्मपत्नी स्व. श्री लखपतराय जैन, हल्द्वानी

बाल ब्रह्मचारी गुरुवर लाख 84 मंत्र लिखे
चातुर्मास किया हल्द्वानी, सरल स्वभावी आप दिखे

श्री विमल चन्द एवं श्रीमती लता जैन, हल्द्वानी

श्री सुनील कुमार एवं श्रीमती रेखा जैन, हल्द्वानी

आचार्य श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज मंगलाचरण करते हुए

रानीबाग में श्रुत स्कंध महापर्व एवं आचार्य श्री पार्श्वसागर जी महाराज के समाधि दिवस के उपलक्ष्य में
विधान पूजा के अंतर्गत इंद्र इंद्राणी बने श्रीमान राजन जैन एवं श्रीमती अनीता जैन

आर्यिका श्री श्रेयमती माताजी के दीक्षा दिवस पर
रामपुर में भक्तों द्वारा सजाया गया पथ मार्ग पर
आचार्य श्री वासुपूज्य सागर जी के आगमन का दृश्य

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव-नेहटोर में आचार्य श्री से
आशीर्वाद प्राप्त करते हुएश्रीमान् राजन जैन एवं श्री अनिता जैन
सपरिवार-हल्द्वानी

श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान, धामपुर

मण्डल रचना बा.ब्र. सुगन्ध भैय्या जी

पूज्य आर्यिका श्रेयमती माताजी मौली बन्धन करते हुए

विधान मण्डल पर मंगल कलश स्थापन करते हुए

समाधिस्थ परम पूज्य आर्यिका १०५
श्री श्रेणीमति माताजी का जीवन परिचय

जन्म नाम	-	रामा बाई
जन्म स्थान	-	बंदिया
जन्म संवत्	-	१९७२
पिता का नाम	-	श्रीमान् लक्ष्मण जी
माता का नाम	-	श्रीमती छबरानी जी
दीक्षा तारीख	-	सन् १९९८ रक्षा बंधन पर
दीक्षा स्थान	-	भागलपुर (बिहार)
दीक्षा गुरु	-	आचार्य श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
समाधि स्थल	-	आरा (बिहार)
तिथि	-	आसोज बदी अष्टमी सन् २००३

भावना और सद्भावना

इस कलिकाल में प्रायः कर सभी देशों में मानव मानवता को छोड़कर दानव वृत्ति अपना रहा है इसी कारण इस संसार में नाना प्राणी नाना कर्मों से युक्त नाना प्रकार की चिंताओं से आकुलित हैं कोई खानेपीने की चिंताओं से, पहनने की, लगाने की, सूंघने की, देखने की, सूनने की, शरीर संबंधी, कामसुख की अभिलाषाओं से दुःखी है। कोई मकान, दुकान, चलाचल धन संपत्ति की आकांक्षा से दुःखी हैं। कोई इनको प्राप्त करने की इच्छा से, कोई बढ़ाने की इच्छा से, कोई रक्षण करने की इच्छा से और कोई इनके नष्ट होने पर अत्यंत मरण से भी अनंतगुणी आकांक्षाओं से दुःखी है तथा कोई इससे भी अनंतानंत गुणी दूसरों के सुख वैभव सामग्री को देखकर, सुनकर, पढ़कर अधिक मात्रा में दुःखी है, कोई इसलोक के लिए दुःखी है तो कोई परलोक के लिए दुःखी है, कोई अपने दुःख से कम दुःखी है तो वह दूसरों के सुख से ज्यादा दुःखी है, कोई मन वचन काय की चिंताओं को मेंटने के लिए पुनः पाप के साधनों का, भोग सामग्री का सहारा लेता है जैसे आजकल डॉक्टर शरीर के किसी एक अंग के घाव को मिटाने के लिए ऑपरेशन कर दूसरे अंग की चमड़ी निकाल कर लगा देते हैं यानि अभी एक घाव ठीक हुआ नहीं और दूसरा घाव बना देते हैं। ऐसे ही मोही अज्ञानी प्राणी सांसारिक दुःखों को दूर करने के लिए पुनः मांस शराब आदि दुर्व्यसनों का सेवन करता है। तब ऐसे मोही प्राणियों को समझाने के लिए ऐसे ही उपदेशक मिल जाते हैं जैसे अग्नि में प्रमाणानुसार ईंधन डालने से अग्नि बढ़ती ही जाती है ऐसे ही भोगक्रियाओं से विषयतृष्णा बढ़ती ही जाती है। वास्तव में अग्नि को बुझाने का सरल उपाय यह है कि ईंधन डालना बंध करने से अग्नि हमेशा को शांत हो जायेगी। कदाचित् अग्नि को शांत करने के लिए अत्यधिक मात्रा में ईंधन डालने से या विरुद्ध सामग्री डालने से अग्नि शांत हो जाती है पर ईंधन के मौजूद होने पर पुनः कारण पाकर अग्नि जल उठती है इसी तरह विषय विषतृष्णा त्याग से ही सही रूप में शांत होती है अधिक सेवन से कदाचित् थकावट आदि के कारण शांत हो सकती है पर संस्कार मौजूद होने से कालांतर में पुनः जागृत होकर रौद्रों की तरह आत्मा को संसार में भ्रमण करा देता है अतः नाना दुःखों को मेंटने के लिए एक मात्र पुण्य पाप का, सुखदुःख का, स्वपर का, हिताहित का, संसार मोक्ष का सम्यक्विश्वास पूर्वक भेद विज्ञान सहित यथार्थ आचरण परमावश्यक है इसलिए गूढ़ रहस्य चिंतामणि का अध्ययन कर जीवन में उतारना नितांत जरूरी है जैसे पानी में जैसे जैसे अंदर जाओगे वैसे वैसे ही शीतलता का आनंद आयेगा वैसे ही गुप्त रहस्य तत्त्वों की जानकारी से अत्यधिक मात्रा में आनंद प्राप्त होता है जैसे विद्यार्थी सरल सरल सवालों के उत्तर से ज्यादा प्रसन्न नहीं होते हैं किंतु कठिन जटिल सवालों के हल हो जाने पर आशातीत हर्षित होते हैं ठीक इसी तरह गूढ़ रहस्य चिंतामणी ग्रंथ के अध्ययन से गूढ़ प्रश्नों का समाधान होने पर कितना आनंद आयेगा यह अध्येता ही बतायेगा। इसमें 1255 प्रश्नोत्तर हैं जिसमें कुछ सरल हैं और कुछ परस्पर में विरुद्ध मालुम पड़ने पर भी स्याद्वाद पद्धति से अविरुद्ध हो जाते हैं। इसके आगे आ० श्री शांतिसागरजी दक्षिण वालों के शिष्य क्षु० ज्ञानसागर जी ने यज्ञोपवीत संस्कार नाम की पुस्तक लिखी थी वह वर्तमान में अप्राप्त होने से उपयोगी समझ कर पुनः इसी के साथ श्रीमती अनीता श्री राजनजी परिवार एवं श्री योगेश जैन (हिमालय सरिया) परिवार, श्री विकास जैन (विश्वकर्मापेपर) परिवार की तरफ से प्रकाशित किया जा रहा है अतः मुमुक्षु श्रावकगण जिनेन्द्राज्ञा मानकर जनेऊ धारण कर अपना जीवन सफल करें और जिनधर्म को उन्नत स्थान पर पहुंचायें। इसी सद्भावना के साथ सभी को मंगल आशीर्वाद। प्रारंभ समयः– भादों सुदी पूर्णिमा प्रातःकाल वि०सं० 2061 वी० नि० सं० 2530 टिकैतनगर बाराबंकी उ०प्र०।

सर्वे सुखिनः भवन्तु।

आचार्य वासुपूज्य सागर

पानी में मीन प्यासी

कर्तव्य कर दिये अधिकार रह गये हैं।
उठ गया करंट सिर्फ तार रह गये हैं।।
क्या पूंछते हो आचार्य वासुपूज्य सागर के ज्ञान को ।
गूढ़ रहस्य चिंतामणी के रूप में समाधान मिल गये हैं।।

क्या लिखूं कहाँ से लिखूं कुछ समझ में नहीं आ रहा है। ग्रंथ को देखकर लगता है कि इतने गूढ़ रहस्य के समाधान करने वाले संत के बारे में क्या कहूं ग्रंथ देखकर आप स्वयं समझ सकते हैं कि जो ख्याति पूजा लाभ और उपाधियों से बहुत दूर रहने वाले आ० वासुपूज्यसागर संत ने यह एक ऐसा ग्रंथ लिखा है जिसका अंततः कोई मूल्य नहीं है। प्राचीन आचार्यों के ग्रथों का प्रमाण देकर सरल भाषा में समझाया है। यह ग्रंथ आपको नवीन दिशाबोध देगा जो ग्रंथ के नाम से प्रगट है। मुझे आचार्य श्री के बारे में कभी कभी ऐसा लगता है कि यह ज्ञान पूर्व संस्कारों से चला आ रहा है क्योंकि जब कोई एक प्रश्न करता है तो आचार्य श्री तुरंत ही समाधान की वर्षा शुरू कर देते हैं। एक ही प्रकार से नहीं किंतु अनेक प्रकार से समाधान कर देते हैं। साथ ही उसके बाद स्वयं प्रश्न उठाना और स्वयं समाधान कर देते हैं। न जाने कितने कितने ग्रंथों का प्रमाण दे देते हैं। मैंने कई बार आचार्य श्री से कहा कि ग्रंथ बहुत बड़ा हो रहा है थोड़ा कम कर दो तो कहते हैं कि बस इतना ही लिखूंगा लेकिन वो भी क्या करें ज्ञान का क्षयोपशम ही इतना है कि वह कलम को विराम नहीं लेने देता। मैं तो अपने आप को अभागी ही समझती हूँ क्योंकि मेरी स्थिति पानी में मीन प्यासी जैसी है। मैं कुछ भी लाभ नहीं ले पाती यह मेरा दुर्भाग्य है। मैं तो प्रभु से यही प्रार्थना करती हूँ कि आचार्य श्री का क्षयोपशम दिन दूना रात चौगुना बढ़ता रहे जो केवलज्ञान को प्राप्त करने में सहायक बने इन्हीं भावनाओं के साथ अपनी कलम को विराम देती हूँ।

संघस्था : आर्यिका श्रेयमती माताजी

गुणग्राहक

इस हुंडावसर्पिणी काल में हीन संहनन के धारी जीवों में आत्मज्ञान की हीनता पाई जा रही है। इस आत्मज्ञान की हीनता के कारण संसार में प्राणी नाना तरह के कष्टों को भोग रहा है और अपनी ज्ञान पिपासा को शांत करने के लिए ही सर्वत्र भ्रमण कर रहा है फिर भी हर काल में किसी न किसी रूप में महापुरुष जन्म लेकर ज्ञानहीन प्राणियों की प्यास को शांत करने के लिए उपाय करते हैं। ठीक इसी प्रसंग में सन् 2008 रामपुर पंचकल्याणक के अवसर पर पूज्य आचार्य श्री वासुपूज्य सागरजी महाराज का सान्निध्य मुझे प्राप्त हुआ। पंचकल्याणक में आचार्य श्री का मेरे ऊपर भरपूर आशीर्वाद रहा। इस महोत्सव के बाद चातुर्मास के लिए आशीर्वाद लेकर सन् 2008 का पावन वर्षायोग गोवा में किया। वर्षायोग के अंतर्गत ज्ञानपिपासु अपनी अपनी जिज्ञासायें लेकर आते थे उनका समाधान भी आचार्य श्री ने अपने आंतरिक पीड़ा दिग्दर्शन और गूढ़ रहस्य चिंतामणी ग्रंथ में अनेक आचार्यों के प्रमाण देकर समझाने का अथक प्रयत्न किया। पूज्य आचार्य श्री के दर्शन मैंने कई बार किये और चर्चा करने का अवसर भी प्राप्त हुआ। पूज्य आचार्य श्री मेरी हर शंका का समाधान आगम और तर्क के आधार पर निष्पक्ष होकर सहज एवं सरलता से कर देते थे तथा समाधान प्राप्त कर मन गद्गद् हो जाता था। आज भी पूज्य आचार्य श्री का पूर्ण वात्सल्यमय आशीर्वाद मिलता रहता है। इसी प्रकार आगे भी मार्गदर्शन मिलता रहे यही वीरप्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि आपका यह अमूल्य ज्ञान जन जन तक पहुंचे और ज्ञानपिपासुओं की प्यास को शांत करने में सहायक बने। स्वाध्याय प्रेमीजन पूज्य आचार्य श्री के इस गूढ़ रहस्य चिंतामणीमय अनुपम कृति का सदुपयोग करें। दिनचर्या में लाकर अपने जीवन को, मोक्षमार्ग को प्रशस्त बनायें। बा०ब्र० नेहलजी का इस कृति में विशेष सहयोग रहा समय समय पर संघस्थ आ० श्रेयमतीजी, क्षु० श्रेणीमतीजी, ब्र० सुगंधजी, ब्र० गुंजाजी आदि का सहयोग रहा अतः इन सभी को यथायोग्य मंगल आशीर्वाद और मुझे भी आशीर्वाद। इस कृति को प्रकाशित कराने वाले सभी महानुभावों को मेरा शुभाशीर्वाद। एक बार पुनः पू० आ० के चरणों में कोटी कोटी नमोस्तु..... .....नमोस्तु.....नमोस्तु.....।

वाणीभूषण क्षुल्लकरत्न समर्पणसागरजी

प्रार्थी

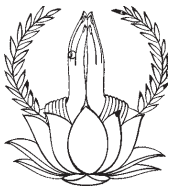

आचार्य वासुपूज्यसागर जी गुरुवर के ज्ञान का क्या वर्णन करूं उनका ज्ञान तो सागर से भी ज्यादा गहरा है। ज्यादा क्या लिखूं गुरु से यह आशीर्वाद मांगती हूँ कि मेरा भी ज्ञान निरंतर बढ़ता रहे, संयम की साधना बढ़ती रहे। गुरु का आशीर्वाद मेरे ऊपर सदा बना रहे।

संघस्था
क्षुल्लिका श्रेणीमती माताजी

जैसी देखी वैसी लिखी

लिखा गुरुवर ग्रंथ आपने,
सरल सुबोध सुहाना है।
कितना ज्ञान भरा आपमें,
ग्रंथ पढ़ के जाना है।।
पल्ले पड़े हम अज्ञानी,
हमको कुछ सुर सिखाना है।
लिखे आपके ग्रंथ से गुरुवर,
ज्ञान हमें कुछ पाना है।।

तत्त्वों के चिंतन में गुरुवर समय आप व्यतीत हैं करते।
चिंतन को निज ज्ञान धारा दे आप जगत का हित हैं करते।।
शंकाओं का समाधान भी सरल शब्द रचना से हैं करते।
ऐसे गूढ़ रहस्य शास्त्र को वारंवार नमन हम हैं करते।।

पूज्य गुरुवर्य आपके द्वारा लिखित ग्रंथ का पढ़ने के बाद पाठक की सारी शंकाओं का समाधान स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। आपकी ऐसी लेखनी निरंतर वृद्धि को प्राप्त हो।

संघस्थ
बा०ब्र० सुगंध (सौरभ) कुमार जैन

भक्त पुजारिन

चाहे घर हो या बाहर, सामाजिक हो या व्यवसायिक, देश हो या परदेश, गृहस्थ जीवन हो या साधु जीवन प्रत्येक जगह जीवन की जटिलता का एहसास हो रहा है। जैसे मकड़ी का जाल बनना कहाँ से प्रारंभ हुआ और कहाँ अंत हुआ सोचते रहो पर वही **'ढाक के तीन पात'** यानि उत्तर खोजने में हम असफल और ऐसे समय में हमें मार्गदर्शक चाहिये जो आज के दौर में रुपयों के बदले में मिल जाते हैं। एक bussiness ही बन गया है। प्रत्येक क्षेत्र के अलग अलग adviser हमें मिल जाते है जिससे हम जीवन को सामाजिक या व्यापारिक गूढ़ताओं को कुछ अंश में सुलझाने में कामयाब हो रहे हैं लेकिन इससे हमें शांति कहाँ? चाहे आस्तिक हो या नास्तिक फिर भी दिनचर्या में से कुछ क्षण धर्म के नाम पर निकालेगा ही पर समयाभाव कहो या व्यस्तता कहो या फिर भौतिकता की चकाचौंध कहो जिससे हम धर्म क्या है, स्वरूप क्या है, उसका रहस्य क्या है इन सब से अनभिज्ञ होते जा रहे हैं। धर्म के तथ्यों को हम व्यापारिक दृष्टिकोण से समझने के लिए कोशिस करेंगे यानि की हम पैसे देकर जानने का प्रयास करेंगे तो निष्पक्ष न्याय पूर्ण समीचीन प्रमाण नय निक्षेप से सिद्ध सापेक्ष तत्त्व मीमांसा नहीं समझ पायेंगे क्योंकि समझाने वाले में व्यवसायिक बुद्धि और दृष्टि रहेगी ऐसे में शरण मिलेगी विद्वान संतों के पास। धर्म के नाम पर अनेक मिथ्या प्रचार हो रहे है जिससे आम जनता गुमराह हो रही है। लेकिन कुछ परिश्रमी ज्ञानपिपासु ही अपनी ज्ञानपिपासा को बुझाने का प्रयास करते हैं। कहते हैं कि प्यासा कुंए के पास जाता है लेकिन वह भी एकदम विपरीत सिद्ध हो रहा है। आज के युग में कुंआ प्यासे के पास जाता है यानि साधुसंघ अपने गाँव में आया तो हमने अपने मन में उठते शंका रूपी झंझावात को शमन करने का प्रयास किया। प० पू० 108 प्रज्ञाश्रमण आ० श्री वासुपूज्य गुरुवर्य जहाँ जहाँ गये वहाँ वहाँ कोई न कोई ऐसा मिल गया कि जिनके साथ में घंटों चर्चायें होतीं रहतीं और मौका मिल गया तो हम सब भी सुन लेते परंतु उससे सभी लाभान्वित न हो पाते फिर आ० श्री के मन में भावना उत्पन्न हुई की धर्म की गूढ़ता को, धर्म के रहस्यों को अधिक से अधिक समझ पायें ऐसा उपाय करना चाहिये और लेखनी उठा ली जिससे गूढ़ रहस्य चिंतामणी का रूप ले लिया। चिंतन करते ही चिंता को हरने वाला चिंतामणी रत्न के समान गूढ़ रहस्य चिंतामणी जिनवाणी के रूप में ग्रंथ आपके सामने उपस्थित है।

सागर में एकाद बूँद पानी मिल जाये तो क्या फर्क पड़ता है। आ० श्री का सागर के समान अथक प्रयास उसमें एक बूँद के समान मेरा सहयोग नगण्य ही है। हाँ, इतना अवश्य है कि इस कार्य के द्वारा मुझे भी आचार्य श्री के ज्ञान, चिंतन, मनन, अनुभव का लाभ अवश्य मिल जाता है। आ० श्री से करबद्ध यही प्रार्थना है कि हे गुरुदेव आपका ऐसा कार्य अनवरत चलता ही रहे ताकि आपके ज्ञान, चिंतन, मनन, अनुभव रूपी खजाने को मैं भी कुछ कुछ प्राप्त कर सकूं जिससे मेरा उद्धार हो।

हे देव!

म्हारा हृदय कमल मां आवी विराजो.
तमे म्हारा आराध्य ने हुँ तमारी आराधक.
म्हारी प्रेमपूर्ण पूजा स्वीकारो
चाहे ठुकरावो

परंतु
कृपा एटली करजो
तमारा चरणों थी क्यारेय दूर ना करशो.

आ हृदय विह्वल छे.
धरती आकाश ने मलवा तडफी रही छे.
नदी सागर मां समाववा दोडी रही छे.
चातक प्यास बुझाववा आतुर छे.
ने आ
''भाग्या''
तमारा आशिषों माटे कल्पी रही छे.

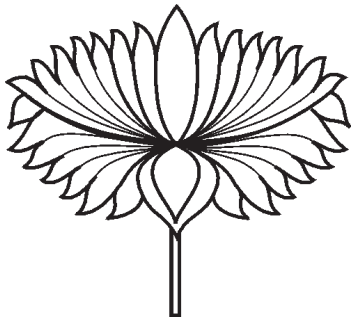

संघस्था
बा0 ब्र0 नेहल (भाग्या) जैन

याचिका

आसमान की ऊंचाई को छुआ नहीं जाता,
समुद्र की गहराई को नापा नहीं जाता।
आचार्य श्री की लेखनी का क्या वर्णन करूं
उनके लिखे ग्रंथों का पार पाया नहीं जाता

आचार्य श्री मुझे ऐसा आशीर्वाद दें कि मेरा भी ज्ञान निरंतर बढ़ता रहे इन्हीं भावनाओं के साथ आचार्य श्री के चरणों में बारंबार नमोस्तु.....नमोस्तु.....नमोस्तु.....।

संघस्था
बा० ब्र० गुंजा दीदी

चमका भाग्य का सितारा

आग लगी संसार में, झर झर झरते अंगारे।
संत न होते संसार में, तो जल जाता संसार।।
गुरुवर आज मेरी कुटिया में आये हैं।
चलते फिरते तीरथ पाये हैं।।

आ० वासुपूज्य सागरजी महाराज के चरणों में शत् शत् नमन।
आर्यिका श्री श्रेयमती माताजी के चरणों में वंदामि।
क्षुल्लिका श्रेणीमती माताजी को इच्छामि।

रानीबाग में आचार्य श्री के आगमन के पहले हमें तो बहुत घबराहट हो रही थी क्योंकि रानीबाग में स्रोत से पानी लाने की भारी चिंता थी, कौन लायेगा पर पं. होतीलालजी रामपुर वालों ने कहा कि कोई चिंता की बात नहीं है। आ० श्री के रानीबाग में मंगल प्रवेश के बाद वाणीभूषण क्षुल्लक रत्न श्री समर्पण सागरजी महाराज ने हमें निर्देश दिया कि आप यह समझना कि हम बेटी वाले हैं तो कोई परेशानी नहीं आयेगी। आ० श्री ने स्वाध्याय में कहा था कि **'पहले जिन सेवा फिर जन सेवा'** यह हमें बहुत अच्छा लगा, यह बात मन को छू गई। माताजी ने प्रवचन में गणेशजी और चूहे के उदाहरण के द्वारा बताया कि स्वयं में ही आत्मा से परमात्मा बनने की शक्ति है। सपनों को साकार करने वाले आ० वासुपूज्य सागर महाराजजी ने आकर हमारा भाग्य का सितारा चमका दिया। हमने तो सपने में भी नहीं सोचा था कि ऐसे आ० संघ का समागम मिलेगा। सोचकर आज भी आँखें नम हो जाती है।

इस जनम में सेवा देकर बहुत बड़ा एहसान किया।
दीन दयालु तुम हो गुरुवर हमने तुम्हें पहचान लिया।।

आ० श्री के उपकार को हम सपरिवार जीवनभर नहीं भूल सकते हैं। आ० श्री के पास जब भी जाते हैं तब लिखते या जाप करते ही पाते हैं उनसे चर्चा करने पर ऐसा अहसास होता है कि ज्ञान के मामले में गुरुवर्य के सामने computer भी fail है। गुरुजी का अनुशासन भी बड़ा ही विनम्र है। हीरानगर हल्द्वानी में जैन धर्मशाला के शिलान्यास के शुभ अवसर पर प्रवचन के बीच में माईक बंद हो जाने पर गुरुदेव ने क्रोध न कर के कहा गला तो अपना है माईक अपना नहीं। आ० श्री की यह बात पूरी जैन समाज हल्द्वानी वालों के दिल को छू गई ऐसे संत आप ही हैं जो ऐसा कहते हैं। इनसे हम करबद्ध प्रार्थना करते हैं।

इतनी शक्ति हमें देना गुरुवर मन का विश्वास कमजोर हो ना।
हम चले नेक रस्ते पे हमसे भूलकर भी कोई भूल हो ना।।

यह जो हमारा लाभान्तराय कर्म का विशेष धर्म के निमित्त क्षयोपशम हुआ है या व्यवहार भाषा में पुण्य का उदय हुआ है जिससे धर्मगुरु का समागम प्राप्त हुआ जो कि आचार्यश्री ने सेवा देकर हमें कृतार्थ किया। हमें संघस्थ सुगंध भैयाजी के भजनों की सीडी बनवाने का और इससे भी विशेष ज्यादा लाभ आ० श्री कृत गूढ़ रहस्य चिंतामणी महान ग्रंथ छपवाने का प्राप्त हुआ।

धर्म सेवक

श्री राजन जी एवं अनीता जी रोबिन – आयुष सपरिवार
जिनेन्द्र आयरन स्टोर, काठगोदाम
जैन आयरन स्टोर
रानीबाग, नैनीताल रोड, उत्तराखंड

अनहोनी घटना

का बाला न करि सके,
का न समुद्र न समाय।
का न पावक जल सके,
काह काल नहीं खाय।।
सुत बाला न कर सके,
मन न समुद्र समाय।
धर्म न पावक जल सके,
नाम काल नहीं खाय।।

ऐसे है मेरे गुरुवर वासुपूज्य सागरजी, जो धर्म की प्रभावना करते हुए मानव जीवन के कल्याण के लिए रत है। कहते है कि अपने गुणों की प्रशंसा स्वयं मत करो वो तो आपके कार्य करा ही देंगे इसी भावना के साथ मुनिवर निष्काम और निःस्वार्थ अपने संघ के साथ धर्मोपदेश करते हुए विचरण कर रहे है जिससे सांसारिक प्राणी सुखी होवे। हम यही कामना करते है कि मेरे गुरुवर कालजयी होवे।

विमलचंद्र एवं लता जैन
हल्द्वानी

मेरे उद्गार

सरस्वती के भंड़ार को तोला नहीं जाता।
गुरुवर के ग्रंथ गरिमा का अनुमान लगाया नहीं जाता।।

मैं नादान शिष्या आपके ज्ञान का कहाँ तक वर्णन कर सकती हूँ जिन्होंने 84 लाख मंत्र लिखकर जीवों के कल्याण का रास्ता सरल कर दिया ऐसे हमारे पूज्य 108 श्री वासुपूज्यसागरजी कृत गूढ़ रहस्य ग्रंथ का हम कहाँ तक वर्णन कर सकते हैं हम अज्ञानी अंधेरे में भटक रहे हैं जीवन रूपी नैया को पार लगाने के लिए एकमात्र आपका ही सहारा है। इस ग्रंथ का जो मनन करेंगे, जीवन में उतारेंगे वे ही संसार समुद्र से पार हो जायेंगे। इसी तरह मैं भी इस ग्रंथ का मनन करुंगी, जीवन में उतारुंगी तो अवश्य ही संसार समुद्र से पार हो जाऊंगी ऐसे ऐसे श्री गुरुवर के चरणों में सहस्त्रों बार वंदन नमोस्तु..... नमोस्तु .....नमोस्तु।

ब्र० मुन्नीबाईजी
किरतपुर, बिजनौर, उ०प्र०

पुरोवाक्

कृति की प्रामाणिकता कृतिकार से हुआ करती है। यदि कृतिकार प्रामाणिक है तो कृति प्रामाणिक होगी ही। कृतिकार की प्रामाणिकता उसका आचार विचार होता है। आचरण में अहिंसा, विचारों में अनेकान्त है तो वीतरागता की बुनियाद है। व्यवहार और व्यक्तित्व वीतरागता की कसौटी है। वीतरागता ही व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का साधन है और साध्य भी। जीवन में जितनी वीतरागता आती जाती है उतना ही साध्य सिद्ध होता जाता है। चरम वीतरागता व्यक्तित्व का पूर्ण विकास, निर्दोषत्व की प्राप्ति है वही अरिहन्त अवस्था है। वीतरागता का अन्तः बाह्य लक्षण है निर्ग्रंथता। ग्रंथ (परिग्रह या गांठ Complex) का न होना विकसित होने का लक्षण है। बाहर में तिलतुषमात्र परिग्रह न तो पूर्ण दिगम्बरत्व हो और अन्त में कोई हीनता, दीनता, अहंकार न हो पूर्ण आर्जव हो यही है व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का परिचायक।

जिनाचार उसी कला का प्रशिक्षक है जिससे व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके। जिस प्रकार विज्ञान प्रयोग से पूर्व कुछ प्रस्थापनायें करता है फिर परिणाम पाने के लिये प्रयोग करता है। यदि तदनुरूप सफल हुआ तो प्रस्थापना सिद्ध हो गई अन्यथा नहीं। इसी प्रकार जैनदर्शन भी कुछ मौलिक प्रस्थापनायें करता है फिर प्रयोग कर सिद्ध करता है। व्यक्ति अपने में पूर्ण इकाई है। सत्चित और आनन्द रूप है। अनन्त ज्ञान और बल का धनी है। यह मौलिक प्रस्थापना है। चारित्र प्रयोगशाला है। जैसा आचरण बताया वैसा–वैसा करने पर यदि प्रस्थापनानुरूप सिद्धि मिलती जाती है तो लक्ष्य सही है। इसे एक उदाहरण से समझते हैं। हम परदेश गये और हमने पूछा कि मिस्टर अमुक कहाँ रहते हैं? उसने कहा (बतलाया) कि एक कि.मी. सीधे जाकर दाहिनी ओर एक जिलाधिकारी कार्यालय मिलेगा, उससे बायीं ओर थोड़ी दूर पर एक सफेद मकान मिलेगा, वही अमुक का निवास है। अब हमें यदि अमुक तक पहुँचना है तो चलना पड़ेगा। यदि उसका बताया रास्ता सही है तो हमें एक कि.मी. पर दाहिनी ओर जिलाधिकारी का कार्यालय मिला, हमें विश्वास हो गया कि व्यक्ति ने मार्ग सही बतलाया। व्यवहार में हम सब यह कहते हैं पर धर्म के क्षेत्र में हम बिना चले ही लक्ष्य पाना चाहते हैं या फिर अविश्वास कर मार्ग पर चलते ही नहीं। ऐसे तो गन्तव्य प्राप्त हो ही नहीं सकता। विचारनीय है कि जब व्यवहार में हम आये दिन अनुभव करते हैं तो फिर बिना आचरण के सफलता क्यों चाहते हैं? विज्ञान नित नये प्रयोग कर सिद्ध कर रहा है कि धर्म की उपर्युक्त धारणायें (प्रस्थापनायें) सही है। उदाहरण के लिए न्यूयार्क विश्वविद्यालय का चिकित्सा विभाग कहता है कि ''मैं, मेरा, मुझे का विचार और आचार वाले के हृदय रोग से ग्रस्त होने की संभावनायें बहुत बढ़ जाती है। कम कैलोरी वाले आहार से याददाश्त अच्छी रहती है। धर्म यही तो बताता है कि जितना मम मेरा करेगा उतना दुःखी होगा। अवमौदर्य भूख से कम खाना, तप करेगा, स्वस्थ रहेगा, एकाग्र हो सकेगा, सुख–शान्ति मिलेगी, क्रोध को विभाव कहा, त्यागने को कहा। क्रोध से शरीर का ताप बिगड़ जाता है, रक्तचाप बढ़ जाता है। वीतरागी वाणी सुनकर स्वभाव में शान्ति मिली, स्वास्थ्य संभला, प्रत्यक्ष फल है।

सर्वप्रथम आवश्यकता है, लक्ष्य तय करने की। हम जीवनभर बिना लक्ष्य के या गलत लक्ष्य लेकर जीवन जीते रहते हैं। दूसरी आवश्यकता है लक्ष्य तक पहुंचने के लिए बताये मार्ग पर चलने की।

मैंने बात प्रारम्भ की थी कृति की प्रामाणिकता कृतिकार से होती है। प्रस्तुत कृति के कर्ता है प. पू. आचार्य श्री वासुपूज्य सागरजी। व्यक्तित्व का पूर्ण विकास आपका लक्ष्य है। बताये मार्ग पर निर्ग्रंथता के साथ चल रहे हैं। बाह्य में पूर्ण दिगम्बरत्व है। अन्तः के वे स्वामी है, अन्तर्यामी है (अन्तर्यामी व्यक्ति स्वयं ही होता है) परन्तु बाह्य आचरण से अन्तः अनुमेय तो होता ही है। उदाहरण के लिए आचार्य श्री से रामपुर चातुर्मास के बाद से घंटों चर्चा हुई परन्तु आज तक आचार्य श्री ने नहीं पूछा कि आपकी संतान कितनी हैं, हैं या नहीं? क्या करते हैं आदि अन्य गृहस्थी की तो चर्चा ही छोड़ें। हाँ तत्त्व चर्चा में प्रमुखता से घंटों समय दिया। यह है उनका ज्ञान ध्यान और तप में अनुरक्त रह तपस्वी होने का लक्षण। पद, पैसा, प्रतिष्ठा

आपको प्रभावित नहीं करता। तत्त्व चर्चा ही समीपता देती है जब कृतिकार का ऐसा व्यक्तित्व होगा तो लोभ, आशा भय या स्नेह से तत्त्व चर्चा में मिथ्यात्व का होना संभव नहीं है। इतना होने पर भी त्रुटि, भूलचूक हो सकती थी। यदि शास्त्रों के आलोडन में कमी होती तो। परन्तु आपने श्रुत को खूब मथा, जितना नवनीत निकल सकता था निकाल लिया है। अतः विषय उठाने और समाधान में कोई कमी नहीं की है। विशेषता यह है कि संस्कृत प्राकृत न समझने वालों के लिए सरल हिन्दी के विषय उपलब्ध है।

आचार्य श्री ने अपनी एक कृति ब्रह्मचर्य में आचार्य सोमदेव सूरी के एक श्लोक पर विमर्श किया (पृ. 32–33) जिसमें वित्तस्त्री शब्द का प्रयोग वेश्या के लिए करके अर्थ का अनर्थ किया जा रहा था। आपने काल और प्रसंग के अनुसार इसका अर्थ किया दहेज देकर ब्याही गई स्त्री जो समीचीन है। प्रस्तुत कृति प्राचीन परम्परानुसार लिखी गई है। इसमें अधिकांशतः आचार्य श्री स्वयं दो भागों में विभाजित हो शिष्य बनकर प्रश्न करते हैं और स्वयं ही गुरु बनकर बात स्पष्ट करते हैं। प्रसंगानुसार जितनी जिज्ञासायें हो सकती है सभी का समाधान किया है। प्राचीन शास्त्रों में प्रायः अनुयोगों के अनुसार विषय सामग्री उपलब्ध होती है। प्रस्तुत कृति में आचार्य श्री ने अनुयोगों का ध्यान न रख जिज्ञासा शान्त करने का लक्ष्य रखकर विषय स्पष्ट किया है। न्यायशास्त्र है तो प्रथमानुयोग भी, करणानुयोग है तो द्रव्यानुयोग भी और चरणानुयोग भी। सामान्य जन के लिए यह प्रस्तुतिकरण समीचीन लगेगा। भाषा जहाँ सरल सुबोध हैं वही लौकिक व्यावहारिक दैनिक जीवन के दृष्टांत विषय को सुस्पष्ट करने में समर्थ हैं। अन्तः में एक संस्मरण कह कर अपनी बात को विराम देता हूँ। रामपुर चातुर्मास के बाद मंगल विहार के अवसर पर एक श्राविका श्रीमती मालती जैन ने आचार्य श्री के सम्बन्ध में अपने विचार इन शब्दों में रखें–

गुरुवर तो हमने देखे बहुत से,
पर आप जैसा गुरुवर न देखा।
चर्चायें हमने सुनी है बहुती सी,
पर चर्या में हमने आप को ही पाया।

शत् शत् नमन

विनीत
महावीर प्रसाद जैन
53, तिलक नगर, रामपुर

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
	मंगलाचरण	1
1.	सर्व प्रथम गुरु को फिर रत्नत्रय धर्म को फिर तीर्थंकरों को फिर जिनवाणी को.....?	1
2.	कथन चिंतन मनन प्रवचन कितने प्रकार से किया जाता है?	1
3.	पूर्वानुपूर्वी किसे कहते हैं?	1
4.	पश्चादानुपूर्वी किसे कहते हैं?	1
5.	यत्रतत्रानुपूर्वी किसे कहते हैं?	1
6.	मंगल किसे कहते हैं?	1
7.8.	मंगलाचरण क्यों किया जाता है? किसे कहते हैं?	1
9.	जिनेन्द्र किसे कहते हैं?	2
10.	जिनेन्द्र का उपदेश किस प्रकार का होता है?	2
11.	जिनेन्द्रोपदेश किन जीवों के लिए होता है?	2
12.	जिनेन्द्रोपदेश कैसा होता है?	2
13.	जिनेन्द्रोपदेश किसरूप में नहीं होता है?	2
14.	जीवों में भी सैनी जीवों के लिए होता है या असैनी जीवों के लिए?	2
15.	सैनीपंचेन्द्रिय जीवों में भी पर्याप्तकों के लिए होता है या अपर्याप्तकों के लिए?	2
16.	पर्याप्ति किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?	2
17.	आहार पर्याप्ति किसे कहते हैं?	2
18.	खल किसे कहते हैं?	2
19.	रस किसे कहते हैं?	2
20.	शरीर पर्याप्ति किसे कहते हैं?	2
21.	देव नारकियों के शरीर में तथा एकेन्द्रियों.....रस भाग कैसे बन सकते हैं?	2
22.	इंद्रिय पर्याप्ति किसे कहते हैं?	3
23.	श्वांसोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते हैं?	3
24.	भाषा पर्याप्ति किसे कहते हैं?	3
25.	मनः पर्याप्ति किसे कहते हैं?	3
26.	निवृत्ति अपर्याप्ति किसे कहते हैं?	3
27.	अपर्याप्ति किसे कहते हैं?	3
28.	पर्याप्तक जीवों में भी भव्यजीवों के लिए होता है या अभव्य जीवों के लिए?	3
29.	भव्यजीव किसे कहते हैं?	3
30.	भव्यजीवों के कितने भेद हैं?	3
31.	भव्य जीवों के नाम कौन कौन हैं?	3
32.	आसन्न भव्य (निकट भव्य) जीव किसे कहते हैं?	3
33.	दूरभव्य जीव किसे कहते हैं?	3
34.	दूरानुदूर भव्य जीव किसे कहते हैं?	3
35.	यदि ऐसा है तो उसे अभव्य जीव कहना चाहिये?	3
36.	अभव्य जीव किसे कहते हैं?	4
37.	अभव्य जीव में मोक्षपर्याय की शक्ति नहीं है तो अनंतगुणधर्मों वाला क्यों कहा?	4
38.	यदि शक्ति मौजूद है तो नियम से व्यक्त होना ही चाहिए?	4
39.	भव्यजीव के शक्ति ही न मानी जाय तो क्या दोष है?	4
40.	भव्यादि जीवों को समझने के लिए उदाहरण क्या है?	4

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
41.	दूरानुदूर भव्य जीव के लिए क्या उदाहरण है?	4
42.	अभव्य जीव को समझने के लिए कौनसा उदाहरण है?	4
43.	भव्यत्वभावऔदयिकादि 5 भावों में से कौनसा भाव है? सादि है या अनादि?	4
44.	ऐसा क्यों होता है?	4
45.	पारिणामिक भाव किसे कहते है?	4
46.	यदि भव्यत्वभाव पारिणामक है तो मोक्ष में इसका अभाव नहीं हो सकता?	4
47.	यह भव्यभाव सादि और अनादि कैसे?	5
48.	जो अनादि से चला आ रहा है उसका अभाव कैसे हो सकता है?	5
49.	जिस जीव द्रव्य में जो शक्ति है वह व्यक्त होना ही चाहिए ऐसा नियम है क्या?	5
50.	यह उपदेश सम्यग्दृष्टियों के लिए होता है या मिथ्यादृष्टियों के लिए?	5
51.	यदि ऐसा है तो मिथ्यादृष्टि कभी भी सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता.....?	5
52.	यदि ऐसा है तो 'कृत्सार्व' केवली सबका हित करते हैं ऐसा क्यों कहा.....?	5
53.	यह तो पक्षपात हुआ कि भव्य का हित करेंगे अभव्य का नहीं?	6
54.	पक्षपात किसे कहते हैं?	6
55.	हठ किसे कहते हैं और क्या हानि है क्या लाभ है?	6
56.	अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल किसे कहते हैं?	6
57.	परिवर्तन किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?	6
58.	ये परिवर्तन क्या समस्त जीवों ने किये है या नहीं?	6
59.	परिवर्तन कौन करता है?	6
60.	पंचपरिवर्तन कौनसा जीव करता है?	6
61.	ये संसारी जीव किसके समान भ्रमण करता है?	6
62.	जब परिवर्तनों के 5 भेद हैं तो केवल द्रव्य परिवर्तन का नाम क्यों लिया जाता है?	6
63.	यह पंच परिवर्तन कौनसा जीव प्रारंभ करता है?	7
64.	यह पंच परिवर्तन कौनसा जीव नहीं करता है और क्या हेतु है?	7
65.	अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तथा सादि मिथ्यादृष्टि जीव किसे कहते हैं?	7
66.	अनादिमिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथमबार सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तो उसे .....?	7
67.	संसार बंधन से कौनसे जीव नहीं छूटते हैं?	7
68.	पंचपरिवर्तन किस जीव ने पूर्ण किये हैं और आगे करता रहेगा?	7
69.	परिवर्तन किसे कहते हैं और पुद्गल द्रव्य परिवर्तन किसे कहते हैं?	7
70.	पुद्गल द्रव्य परिवर्तन के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?	7
71.	नोकर्म पुद्गल द्रव्य परिवर्तन किसे कहते हैं?	8
72.	अग्रहीत पुद्गल पिंड किसे कहते हैं?	8
73.	मिश्र पुद्गल पिंड किसे कहते हैं?	8
74.	ग्रहीत पुद्गल पिंड किसे कहते हैं?	8
75.	समय प्रबद्ध किसे कहते हैं और इसका प्रमाण क्या है?	8
76.	कर्मद्रव्य पुद्गल परिवर्तन किसे कहते हैं?	8
77.	क्षेत्र परिवर्तन किसे कहते हैं?	8
78.	काल परिवर्तन किसे कहते हैं?	9
79.	भव परिवर्तन किसे कहते हैं?	9
80.	भाव परिवर्तन किसे कहते हैं?	9

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
81.	आ. श्री कुंदकुंद स्वामी ने और आ. श्री पूज्यपाद स्वामी ने मूलाचार,.....?	9
82.	यह अर्धपुद्गल परिवर्तन काल कैसे प्राप्त होता है?	9
83.	सहजसाध्य दैवसाध्य भाग्यसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तन काल किसे कहते हैं?	9
84.	यत्नसाध्य पुरुषार्थसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तन काल किसे कहते हैं?	9
85.	प्रत्येक कार्य के लिए समय नियत है अतः यत्न भी तो समय पर होता है.....?	10
86.	अयत्नसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तन काल इस जीव ने कितनी बार प्राप्त किया है?	11
87.	यत्नसाध्य पुरुषार्थसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तन काल कितनीबार प्राप्त किया है?	11
88.	अपनी आत्मा ने यत्नसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तन काल प्राप्त किया है या नहीं?	11
89.	इस काल में इस आर्यखंड में सादिमिथ्यादृष्टिजीव जन्म धारण कर सकता है क्या?	11
90.	इस दुःखमा पंचमकाल में सम्यग्दृष्टि जीव आर्यखंड में जन्म ले सकते हैं क्या?	11
91.	इस काल में और इस क्षेत्र में सम्यग्दृष्टि जीव पैदा नहीं होते है यह कैसे जाना?	12
92.	यदि ऐसा है तो भविष्य में कुलकर, तीर्थकर की प्रकृति की.....धारण करेंगे?	12
93.	इस समय आर्यखंड में सम्यग्दृष्टि जीव जन्म धारण कर ले तो क्या आपत्ति है?	12
94.	मोक्ष की प्राप्ति नियत समय पर होती है या अनियत समय पर?	12
95.	समवशरण में द्रव्य मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं क्या?	12
96.	तो क्या समवशरण में भावमिथ्यादृष्टि जीव हो सकते हैं?	12
97.	किन्हीं किन्हीं आचार्यों ने लिखा है कि समवशरण में.....विरुद्ध कथन क्यों?	12
98.	तीर्थंकर प्रभु का उपदेश द्रव्य मिथ्यादृष्टिओं के.....के लिए?	13
99.	दो कल्याणकवाले तीर्थंकर कौन होते हैं?	13
100.	तीन कल्याणकवाले तीर्थंकर कौन होते हैं?	13
101.	यदि 12 सभाओं में भावमिथ्यादृष्टि.....व्यर्थ ठहरता है?	13
102.	भूतकाल से संबंधित संबोधन किस प्रकार से किया जाता है?	13
103.	वर्तमानकाल में संबोधन किस प्रकार से किया जाता है?	13
104.	भविष्यत्कालीन संबोधन किस प्रकार से किया जाता है?	13
105.	यदि वहाँ मिथ्यादृष्टि जीव नहीं हैं तो उनका निषेध क्यों? जहाँ जाको.....गाँव?	14
106.	सम्यग्दृष्टियों में भी संयमियों के लिए होता है या असंयमियों के लिए?	14
107.	संयमीजनों में भी प्रमत्तमुनियों के लिए होता है या अप्रमत्तों के लिए?	14
108.	द्रव्यार्थिकनय या निश्चयनय और .....जीवों के लिए होता है?	14
109.	नयों का उपदेश क्यों दिया क्या प्रयोजन है?	14
110.	जिनवाणी को कितने भागों में बांटा गया है और उनके नाम क्या क्या हैं?	14
111.	प्रथमानुयोग जिनवाणी किसे कहते है और इसमें क्या वर्णन हैं?	14
112.	प्रथमानुयोग शास्त्रों में किनका वर्णन है?	15
113.	इसे प्रथमानुयोग शास्त्र क्यों कहा?	15
114.	परमार्थ किसे कहते है?	15
115.	इन जीव द्रव्यादि 27 तत्त्वों को परमार्थ क्यों कहा?	15
116.	अपरमार्थभूत किसे कहते हैं?	15
117.	चरित्र किसे कहते हैं?	15
118.	पुराण किसे कहते हैं?	15
119.	पुण्यपुरुष किसे कहते हैं?	15
120.	पुण्य पुरुष और शलाका पुरुष कितने होते हैं?	16

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
121.	पुण्य पुरुष कहाँ होते हैं?	16
122.	पुण्य पुरुष की पदवी प्राप्त करना किसका फल है?	16
123.	ये पुण्य पुरुष रत्नत्रय धर्म के साक्षात् फल हैं या परंपरा फल हैं?	16
124.	ये पुण्य पुरुष कहाँ से आते हैं और कहाँ जाते हैं?	16
125.	बोधि किसे कहते हैं?	16
126.	समाधि किसे कहते हैं?	16
127.	निदान किसे कहते हैं?	16
128.	प्रथमानुयोग शास्त्र का उद्भमस्थान कौनसा है?	16
129.	प्रथमानुयोग के उद्भमस्थान स्वरूप दृष्टिवादांग किसे कहते हैं, फल क्या है?	16
130.	यहाँ आदि पद से किन मिथ्यामतों को ग्रहण करना चाहिये?	17
131.	प्रथमानुयोग शास्त्रों में शृंगारादि रसों का.....नहीं कहे जा सकते हैं?	17
132.	प्रथमानुयोग शास्त्रों में शृंगारादि रसों का.....सरागता का भेद नहीं बनेगा?	17
133.	यदि उच्च बनाने का उद्देश्य था तो ..... वर्णन क्यों किया?	17
134.	प्रथमानुयोग शास्त्रों के कथन को सुनकर निदान बंध क्यों नहीं होगा?	18
135.	शृंगार का, सौन्दर्य का, कामभोग का इतने .....सुनते हैं न सुनाते हैं?	18
136.	प्रथमानुयोग शास्त्रों में नव रसों का वर्णन किया है,.....ऐसा क्यों नहीं कहते हो?	19
137.	प्रथमानुयोग शास्त्रों में 9 रसों के वर्णन में.....कौनसा ध्यान है?	19
138.	प्रथमानुयोगशास्त्रों में शलाका पुरुषों का.....विश्वास से हो सकती है?	19
139.	आजकल दिगम्बर जैनसाधुओं में तथा समाज में.....समाप्त क्यों हो गया है?	20
140.	प्रथमानुयोग शास्त्रों में कथाकहानी आदि को पढकर.....देखने लगते हैं?	20
141.	प्रथमानुयोग शास्त्रों में रौद्रों को पुण्यपुरुष क्यों कहा.....भ्रष्टों की संतान है?	21
142.	करणानुयोग समीचीन शास्त्र किसे कहते हैं और फल क्या है?	21
143.	करणानुयोग शास्त्र का विषय क्या ज्ञेयतत्त्व या हेयतत्त्व या उपादेय तत्त्व है?	21
144.	सो कैसे स्पष्ट करो जिससे मन में संदेह न हो?	21
145.	उक्त भूगोल खगोल भिन्न तत्त्व हैं इससे आत्मा का क्या.....निष्प्रयोजन है?	21
146.	आजकल धवलादि ग्रन्थों को करणानुयोग कहा जाता है सो ठीक है क्या?	22
147.	करणानुयोग शास्त्र के अध्ययन का क्या फल है?	22
148.	स्थितिकांडकघात किसे कहते हैं?	22
149.	अनुभागकांडकघात किसे कहते हैं?	22
150.	स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात का क्या फल है?	23
151.	करणानुयोग शास्त्र के केवल अध्ययन से क्या यह फल होता है?	23
152.	सूर्य चंद्र आदि ज्योतिषी विमान गमनशील हैं या स्थिर हैं?	23
153.	आज का वैज्ञानिक चंद्रमा आदि विमानों.....विरोध आ रहा है?	23
154.	चरणानुयोग शास्त्र किसे कहते हैं?	23
155.	ये चरणानुयोग शास्त्र किस प्रकार के आचार का वर्णन करते हैं?	23
156.	यदि कोई चरणानुयोग शास्त्रों में भी गुणस्थानों की खोज करे तो क्या दोष है?	24
157.	जाँच किये बिना ही यदि हर जगह माथा टेक.....सत् शास्त्र क्यों कहा?	24
158.	चरणानुयोग शास्त्र यदि केवल बाह्यचर्या.....समीचीन शास्त्र कैसे हो सकता हैं?	25
159.	द्वन्दसमास में सभी पद प्रधान होते हैं फिर.....एक सत्य होना चाहिये?	25
160.	चरणानुयोग शास्त्र को कौन जानता है?	25

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
161.	चरणानुयोग शास्त्र में किसका वर्णन है?	25
162.	द्रव्यानुयोग शास्त्र किसे कहते है?	25
163.	समयसारादि ग्रन्थों में शुद्ध द्रव्य का स्वरूप बताया है या अशुद्ध द्रव्य का?	25
164.	आध्यात्म ग्रन्थों में अन्यमत का खंडन क्यों किया?	26
165.	क्या अन्यमत का खंडन करने से कषाय की वृद्धि नहीं होती है?	26
166.	यदि ऐसा है तो अन्य मतों का नाम क्यों लिया?	26
167.	क्या परनिंदा करने से नीचगोत्र का आश्रव नहीं होता है?	26
168.	खंडन मंडन करना हारजीत है.....खंडन करना अपध्यान क्यों नहीं?	27
169.	तो क्या शुद्धद्रव्य का कथन होता ही नहीं?	27
170.	न्याय के ग्रन्थ किस अनुयोग में आते हैं और इसमें हेतु क्या है?	27
171.	वस्तु का सम्यक् स्वरूप क्या है?	27
172.	वस्तु के सम्यक् स्वरूप को समझने का क्या उपाय है?	27
173.	वस्तु का मिथ्या स्वरूप क्या है और इसका क्या फल है?	27
174.	वस्तु के मिथ्यास्वरूप को समझने का या मिथ्याज्ञान प्राप्त करने का क्या उपाय है?	27
175.	क्या वस्तु स्वयं सम्यक् और मिथ्यारूप में परिणमन करती है और कैसे?	27
176.	व्याकरण शास्त्र, शब्दानुशासन किस अनुयोग में अन्तर्भाव को प्राप्त होता है?	28
177.	व्याकरण शास्त्र किसे कहते हैं और किसने उपदेश दिया है?	28
178.	व्याकरण शास्त्र को ऊपर बहुत ऊंचा.....स्ववचन बाधित दोष से युक्त है?	28
179.	आजीविका संबंधी अर्थशास्त्र किस.....सरकार व्यापार कर सकती हैं?	29
180.	व्यापार करना केवली का उपदेश होने से.....करती हैं तो समीचीन है क्या?	29
181.	आप कितने अनुयोगों को जानते हो और पढ़ते हो, ऐसा क्यों?	29
182.	यदि चारों अनुयोग जिनवाणी हैं तो ऐसी विसंगति क्यों?	29
183.	यदि द्रव्यानुयोग का विषय पूर्णरूप से.....इसमें क्या आपत्ति है?	29
184.	आदि के तीन अनुयोगों के वचन हेय तत्त्व है या वाच्यार्थ हेय तत्त्व है?	29
185.	यदि पूर्वोक्त विषय हेयतत्त्व है तो.....रत्नत्रय भी हेय ठहरेगा?	30
186.	आपका प्र.183 पर यह समाधान.....भली प्रकार से सोच ले?	30
187.	आदि के तीन अनुयोग आत्मा की वार्ता.....यह प्रश्न उन्हीं का है?	30
188.	यह चर्या समयमूढ़ता अनायतन सेवा है तो होने दो हमें क्या आपत्ति है?	30
189.	आप कितने अनुयोगों पर विश्वास करते हैं, एक पर या चारों पर?	30
190.	ऐसा क्यों, क्या वे शेष तीन अनुयोग जिनवाणी नहीं हैं?	30
191.	जब आप पूर्व में चारों अनुयोगों का.....क्या उचित है, मायाचार नहीं है?	30
192.	भाग्य से दूसरे दिन प्रातःकाल प्रवचन के समय .....हुआ है या सम्मूर्च्छन से?	30
193.	चारों अनुयोगों में किया गया कथन प्रमाण है या अप्रमाण?	31
194.	शास्त्रों में किया गया कथन किनके लिए प्रमाण है और किनके लिए अप्रमाण है?	31
195.	न्याय शास्त्रों को आप मानते हैं या नहीं सम्यक् विश्वास है या नहीं?	31
196.	नय और न्याय में क्या अन्तर है और इनका क्या लक्षण है?	31
197.	ऐसा क्या कठिन है जो न्याय ग्रंथ समझ में नहीं आते हैं?	31
198.	प्रयत्न करो समझ में आयेगा ही मायाचार से क्या कार्य सिद्ध होने वाला है?	31
199.	आप समाधान सही करते हैं पर प्रयत्न उल्टा करते हैं सो यह दोष किसका?	31
200.	उन्होंने प्रश्न किया कि अध्यात्म बहुत अच्छा.....अतः यही श्रेष्ठ है?	32

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
201.	आध्यात्म का विषय क्या आज्ञापूर्वक ग्राह्य है या परीक्षापूर्वक?	32
202.	परीक्षा पूर्वक निर्णय सही होने पर अपना विश्वास बदलना चाहिए या नहीं?	32
203.	वर्तमान काल में वर्तमान नय से स्वीकार करना चाहिए या नहीं?	33
204.	वर्तमान में भावीनय से संस्कार बदलकर समीचीन विश्वास करना चाहिए या नहीं?	33
205.	भविष्य में हम अपने संस्कार को बदलेंगे तो आपको इसमें क्या आपत्ति है?	33
206.	निर्णय बाधित होना चाहिए या अबाधित?	33
207.	अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं?	33
208.	अर्थक्रिया किसे कहते हैं?	34
209.	केवलज्ञान को लक्षण न मानकर मतिज्ञानादि को लक्षण मान लो तो क्या दोष है?	34
210.	अतिव्याप्ति दोष किसे कहते हैं?	34
211.	असंभव दोष किसे कहते हैं?	34
212.	निर्णय किसे कहते हैं? भेद कितने हैं? नाम कौन कौन हैं?	34
213.	समीचीन निर्णय किसे कहते हैं?	35
214.	असमीचीन निर्णय किसे कहते हैं?	35
215.	प्रमाण किसे कहते हैं?	35
216.	प्रमाण के कितने भेद हैं?	35
217.	प्रमाण के नाम कौन कौन हैं?	35
218.	सकल प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?	35
219.	विकल प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?	35
220.	प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?	35
221.	परोक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?	35
222.	नय किसे कहते हैं?	35
223.	नयों के कितने भेद हैं?	35
224.	नयों के नाम कौन कौन हैं?	36
225.	द्रव्यार्थिकनय या निश्चयनय किसे कहते हैं?	36
226.	पर्यायार्थिकनय या व्यवहारनय किसे कहते हैं?	36
227.	निक्षेप किसे कहते हैं?	36
228.	निक्षेप के कितने भेद हैं?	36
229.	निक्षेप के नाम कौन कौन हैं?	36
230.	प्रमाण नय और निक्षेपों के द्वारा क्या करना चाहिए?	36
231.	व्यवहार नय के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?	36
232.	उक्त दोनों व्यवहार नयों का लक्षण क्या है और विषय परिवर्तन से क्या हानि हैं?	36
233.	प्रमाणाभास किसे कहते हैं?	36
234.	ग्रहण करना, त्याग करना यह चारित्र का कार्य है.....क्यों ग्रहण किया है?	36
235.	शुद्ध किसे कहते हैं?	36
236.	अशुद्ध किसे कहते हैं तथा वस्तु और अवस्तु किसे कहते हैं?	37
237.	निर्णय बाधित है या अबाधित, निर्दोष है या सदोष इसका ज्ञान कैसे हो?	37
238.	जानकारी और अनुभव में क्या अन्तर है?	37
239.	निर्णय निर्दोष सिद्ध होने पर गलत धारणा को बदलना चाहिए या नहीं?	37
240.	निर्णय निर्दोष सिद्ध होने पर धारणा बदलने से गुणस्थान बदलता है या नहीं?	37

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
241.	ध्यान किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और क्या फल है?	38
242.	ध्याता किसे कहते हैं, स्वामी कौन है?	38
243.	ध्येय मार्ग का बनाया जाता है या मार्गफल का?	38
244.	ध्येय किसे कहते हैं, भेद कितने हैं और क्या फल प्राप्त होता है?	38
245.	ध्यान का फल किसे कहते हैं?	38
246.	क्या ध्याता मनुष्य ही होता है या अन्यगति का जीव भी हो सकता है?	38
247.	धारणा को किस नय से बदलना चाहिए?	38
248.	मिथ्या धारणा कब बदलना चाहिए?	39
249.	करण परिणाम औदयिकादि पाँच भावों में से कौनसा भाव है?	39
250.	मिथ्यादृष्टि जीवों के करणपरिणाम शुभोपयोगरूप हैं या अशुभोपयोग रूप?	39
251.	मिथ्यादृष्टि जीव के करण परिणाम.....हैं और किस उपयोग रूप में नहीं?	39
252.	भावीनय की अपेक्षा जीव के करणपरिणाम शुभोपयोग रूप हैं या शुद्धोपयोगरूप?	39
253.	उक्त तीनों उपयोग दर्शनोपयोग के कार्य हैं या ज्ञानोपयोग के?	39
254.	शुभोपयोग किसे कहते हैं?	40
255.	शुभोपयोग के स्वामी कौन हैं?	40
256.	अशुभोपयोग किसे कहते हैं?	40
257.	अशुभोपयोग के स्वामी कौन हैं?	40
258.	शुद्धोपयोग किसे कहते हैं और स्वामी कौन हैं?	40
259.	शुद्धोपयोग के स्वामी उपशांतमोही और क्षीणमोही क्यों नहीं हैं?	40
260.	ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग इन दोनों का कार्य भिन्न भिन्न है या अभिन्न?	40
261.	प्रागभाव किसे कहते हैं तथा उदाहरण सहित समझाओ?	40
262.	प्रध्वंसाभाव किसे कहते हैं तथा इसके मानने न मानने में क्या लाभहानि है?	41
263.	अन्योन्याभाव किसे कहते हैं?	41
264.	अत्यन्ताभाव किसे कहते हैं?	41
265.	अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव में क्या अंतर है?	41
266.	यदि इन दोनों में अन्तर न माना जाये तो क्या आपत्ति है?	41
267.	आपत्ति को आपत्ति न माने तो क्या हानि है, क्या दोष है?	42
268.	अनादि या सादिमिथ्यादृष्टि जीव शुद्धात्मा का ध्येय बनाता है या अशुद्धात्मा का?	42
269.	वर्तमान में मेरी आत्मा क्या एकदेश शुद्ध है या.....कौन बनाता है?	42
270.	वर्तमान में मेरी आत्मा निश्चयनय से एकदेश शुद्ध है या सर्वदेश?	42
271.	वर्तमान में व्यवहारनय से मेरी आत्मा एकदेश शुद्ध है या सर्वदेश?	42
272.	वर्तमान में मेरी आत्मा वर्तमाननय से एकदेश शुद्ध है या सर्वदेश?	42
273.	आपने सरागी छद्मस्थों को एकदेश.....समान हुए फिर अंतर क्या रहा?	43
274.	आपने सरागी वीतरागी छद्मस्थ.....तो दोनों एक हुए फिर भेद क्या रहा?	43
275.	वर्तमान में मेरी आत्मा भावीनय से एकदेश शुद्ध है या सर्वदेश?	43
276.	इस संबंध में क्या उदाहरण है?	43
277.	योग्यता का क्या अर्थ है?	44
278.	योग्यता और भवितव्यता में क्या अंतर है?	44
279.	वह मिथ्यादृष्टि जीव अपनी आत्मा को.....प्रकार का ध्येय बनाता है?	44
280.	इस विषय को उदाहरण देकर समझाओ?	44

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
281.	मिथ्यादृष्टि जीव का यह ध्येय, लक्ष्य समीचीन है या असमीचीन?	44
282.	मेरे को शुद्धात्मा उत्पन्न करना है, ऐसा ध्येय बनाता है या मैं शुद्धबुद्ध हूँ ऐसा?	44
283.	मेरे को शुद्धात्मा प्रकट करना है.....करना है ऐसा विश्वास करता है?	44
284.	भगवान की, गुरु की फोटो का.....हैं सो इसमें क्या दोष है?	45
285.	ध्येय बनाना यह किस गुण का कार्य है और किस गुण का नहीं?	45
286.	ध्येय बनाना यह किस गुण का कार्य नहीं?	45
287.	आत्मानुभूति ज्ञानोपयोग से होती है या दर्शनोपयोग से?	45
288.	शुद्धात्मानुभूति शुभोपयोग से होती है या शुद्धोपयोग से?	45
289.	शुद्धात्मानुभूति किस दर्शनोपयोग से होती है?	45
290.	शुद्धात्मानुभूति धर्मध्यान से होती है या शुक्लध्यान से?	45
291.	चौथे गुणस्थान में शुद्धात्मानुभूति किस उपयोग से होती है?	46
292.	चौथे गुणस्थान में शुद्धात्मानुभूति.....शुक्लध्यान रूप?	46
293.	आत्मानुभूति निर्विकल्पध्यान से होती है या सविकल्पध्यान से?	46
294.	सविकल्प धर्मध्यान किसे कहते है?	46
295.	मैं क्रोधी हूँ मानी हूँ आदि ऐसा चिंतन करने को धर्मध्यान क्यों कहा?	46
296.	आलोचक किसे कहते हैं और किसके समान होता है?	46
297.	स्वयं का आलोचक बनने से क्या हानि है और क्या लाभ है?	46
298.	पर का आलोचक बनने से क्या हानि है और क्या लाभ है?	47
299.	निर्विकल्प धर्मध्यान किसे कहते हैं?	47
300.	शुद्धात्मानुभूति अखण्ड रूप में होती है या खण्ड रूप में?	47
301.	शुद्धात्मानुभूति भेद रत्नत्रय से होती है या अभेदरत्नत्रय से?	47
302.	शुद्धात्मानुभूति ध्यानातीत है.....से किस ध्यान से रहित होती है?	47
303.	चौथे गुणस्थान में शुद्धात्मानुभव होता है.....गुरु उपदेश से या आगम से?	47
304.	आत्मानुभव के समय में जाना कि मैंने शुद्धात्मानुभव किया है या बाद में?	47
305.	चौथे गुणस्थान में शुद्धात्मानुभव कितने समय के लिए होता है?	47
306.	शुद्धात्मानुभव प्रत्यक्ष होता है या परोक्ष?	47
307.	शुद्धात्मानुभव परोक्ष ज्ञान का विषय वर्तमान नय से है या भावीनय से?	48
308.	दर्शनोपयोग किसे कहते हैं?	48
309.	दर्शनोपयोग के कितने भेद हैं?	48
310.	दर्शनोपयोग के नाम कौन कौन हैं?	48
311.	शुद्ध स्वभाव दर्शनोपयोग किसे कहते हैं?	48
312.	इस उपयोग को शुद्ध स्वभाव क्यों कहा?	48
313.	अशुद्ध विभावदर्शनोपयोग किसे कहते हैं तथा हेतु क्या है?	48
314.	अशुद्ध विभावदर्शनोपयोग के कितने भेद हैं?	48
315.	अशुद्ध विभावदर्शनोपयोग के 8नाम कौन कौन हैं?	48
316.	चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग की भूमिका मान ली जाये तो क्या आपत्ति है?	48
317.	ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग ये दोनों एकरूप हैं या पृथक् पृथक्?	48
318.	ये दोनों उपयोग एक हो जाये तो क्या आपत्ति है?	49
319.	अर्थक्रिया किसे कहते हैं?	49
320.	ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग में क्या अन्तर है?	49

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
321.	ज्ञानोपयोग और ध्यान में क्या अन्तर है?	49
322.	शुभोपयोग और अशुभोपयोग किसे कहते हैं तथा इन दोनों में क्या अन्तर है?	49
323.	ख्याति पूजा लाभ की भावना.....रत्नत्रय सहित है तो मिथ्याचारित्र क्यों कहा?	49
324.	इन उपयोगों के कहाँ तक के जीव स्वामी हैं?	49
325.	शुद्धोपयोग और शुक्लध्यान में क्या अन्तर है?	50
326.	उपयोग और ध्यान एक साथ एक.....कार्यरूप में हो सकते हैं या नहीं?	50
327.	जब ज्ञान साकार है सविकल्प है तो ध्यान को निर्विकल्प क्यों कहा?	50
328.	जब ध्यान चारित्र गुण की पर्याय है.....मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है?	50
329.	ध्यानातीत कोई गुणस्थान हो सकता है क्या?	50
330.	गुणस्थानातीत जीवों के कोई ध्यान हो सकता है क्या?	50
331.	सिद्धों के ध्यान कैसे हो सकता है .....सिद्धों के ध्यान कैसे हो सकता है?	50
332.	जैसे फल के परिपक्व होने पर फूल सूखकर.....करने में क्या आपत्ति है?	51
333.	ध्यान पर्याय क्षणध्वंशी होने से सिद्धों में ध्यान का अभाव सिद्ध क्यों न होगा?	51
334.	धर्मध्यान किसे कहते हैं?	51
335.	धर्मध्यान के कितने भेद हैं?	51
336.	धर्मध्यान के नाम कौन कौन हैं?	51
337.	धर्मध्यान के स्वामी कौन कौन जीव हैं?	51
338.	आज्ञाविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं तथा जिनेन्द्र की आज्ञा क्यों मानना?	52
339.	तो क्या सभी वचन बिना सोचे समझे स्वीकार कर लेना चाहिए?	52
340.	तो फिर ऐसा कौन सा विषय है जो केवल आज्ञा ग्राह्य है?	52
341.	वह कौन सा विषय है जो परीक्षापूर्वक ग्रहण करने योग्य है?	52
342.	अपायविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं और किस हेतु होता है?	52
343.	कष्ट से बचने बचाने के लिए और.....कहते हैं तो इसे धर्मध्यान क्यों कहा?	52
344.	निदान आर्तध्यान के स्वामी कौन हैं?	53
345.	अपायविचय धर्मध्यान के स्वामी कौन हैं और मिथ्यादृष्टि जीव क्यों नहीं?	53
346.	विपाकविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं और इसे कैसे समझा जाये?	53
347.	कर्मों की दस अवस्थायें कौन कौन सी हैं?	53
348.	बंधकरण किसे कहते हैं?	53
349.	बंधकरण को समझने के लिये क्या उदाहरण है?	53
350.	प्रत्येक द्रव्य अपना अपना स्वभाव छोड़ते.....गये ऐसा क्यों कहा?	53
351.	दूध और पानी की तरह बन्ध को क्यों बताया जा रहा है?	53
352.	दूध शक्कर की तरह बन्ध को क्यों बताया जा रहा है?	53
353.	उदयकरण किसे कहते हैं?	54
354.	सत्त्वकरण किसे कहते हैं?	54
355.	उत्कर्षणकरण किसे कहते हैं और किस में होता है?	54
356.	अपकर्षण करण किसे कहते हैं, किस कारण से होता है, किसमें होता है?	54
357.	उदीरणाकरण किसे कहते हैं?	54
358.	उदीरणाकरण के द्वारा कर्मों का.....ध्यानादि करने की क्या जरूरत?	54
359.	किस कर्म की उदीरणा होती है?	54
360.	संक्रमणकरण किसे कहते हैं?	54

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
361.	उपशमकरण किसे कहते हैं?	54
362.	निधत्तिकरण किसे कहते हैं?	54
363.	निकाचितकरण किसे कहते हैं?	54
364.	उक्त दस प्रकार के करणों में कुछ और भी भेद प्रभेद हैं क्या?	54
365.	उक्त दस प्रकार के बंधादि करणों के अवांतर नाम कौन कौन हैं?	55
366.	ये दसकरण द्रव्य और भाव रूप में होते हैं यह कैसे समझा जाये?	55
367.	द्रव्य बंधादि दस भेद किसे कहते हैं?	55
368.	द्रव्य बंधादि दस करणों को समझने या समझाने के लिए उदाहरण क्या है?	55
369.	जब निधत्ति और निकाचित कर्मबंध का फल.....से क्या मतलब,क्यों करना?	55
370.	भावबंधादि किसे कहते हैं और इनका आधार क्या है?	55
371.	उक्त दस करण किस ध्यान के विषय हैं?	56
372.	क्या कर्मोदय के बिना वर्तमान में नवीन परिणाम बन ही नहीं सकते?	56
373.	निदान आर्तध्यान और विपाकविचय धर्मध्यान में क्या अन्तर है?	56
374.	संस्थानविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं और लोकाकाश का आकार कैसा होता है?	56
375:	संस्थान विचय धर्मध्यान का क्या फल है?	56
376.	संस्थान विचय धर्मध्यान के स्वामी कौन हैं?	56
377.	उपायविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	56
378.	वह उपाय क्या है, जिससे कष्ट दूर हो सकते हैं?	57
379.	उस उपाय को किस प्रकार से अपनाना चाहिए?	57
380.	जीवविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	57
381.	अजीवविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	57
382.	विरागविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	57
383.	भवविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	57
384.	इन भवों का चिन्तन क्यों करना चाहिए?	57
385.	भवविचय धर्मध्यान का क्या फल है?	57
386.	कारण विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?	57
387.	उपायविचय धर्मध्यान और कारणविचय धर्मध्यान में क्या अंतर है?	57
388.	समग्र धर्मध्यान का क्या फल है?	57
389.	चौथे गुणस्थान में कितने ध्यान होते हैं और कितने नहीं?	58
390.	चौथे गुणस्थान में उत्कृष्ट ध्यान की तैयारी हो सकती है क्या?	58
391.	ध्यानातीत गुणस्थान आश्रव सहित है या रहित?	58
392.	गुणस्थानातीत ध्यानातीत जीव आश्रव सहित हैं या रहित?	58
393.	शुद्ध ध्येय, शुद्ध का अवलम्बन और.....चौथे गुणस्थान में प्राप्त होती है?	58
394.	शुद्धोपयोग में किन कर्मों को क्षय करने की सामर्थ्य पाई जाती है?	58
395.	शुभोपयोग में किन कर्मों को क्षय करने की क्षमता है?	58
396.	चौथे गुणस्थान में किन किन कर्मों का क्षय हो सकता है?	58
397.	चौथे गुणस्थान में किन किन कर्मप्रकृतियों का संवर होता है?	59
398.	वे 43 प्रकृतियाँ कौन सी हैं कि जिनका संवर चौथे गुणस्थान में होता है?	59
399.	चौथे गुणस्थान में किन किन कर्मों की निर्जरा होती है?	59
400.	आहारक शरीर और आहारक.....संवर कहा है सो यह विरुद्ध कथन है?	59

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
401.	चौथे गुणस्थान में असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की.....क्वचित् कदाचित्?	59
402.	सम्यक्त्वाचरण चारित्र किसे कहते हैं?	59
403.	विकल्प किसे कहते हैं?	59
404.	विकल्प के कितने भेद हैं?	59
405.	विकल्प के नाम कौन कौन हैं?	59
406.	विकल्प कहाँ से कहाँ तक होता है?	60
407.	विकल्प के स्वामी कौन कौन हैं?	60
408.	जब यह विकल्पजल्प अपने[2] गुणस्थानानुसार.....कदाचित् क्यों कहा?	60
409.	उपयोग और ध्यान में क्या अन्तर है?	60
410.	उपयोग कौन सा भाव है तथा ध्यान कौन सा भाव है?	60
411.	अभेद रत्नत्रय किसे कहते हैं?	60
412.	भेद रत्नत्रय किसे कहते हैं?	60
413.	दोनों रत्नत्रयों के स्वामी कौन कौन हैं?	60
414.	अरिहंत और सिद्धों के अनन्त.....भेदरत्नत्रय का स्वामी क्यों कहा?	60
415.	अरिहन्त और सिद्धों में गुणकृत भेद या अन्तर किस प्रकार से है?	60
416.	अरिहन्त और सिद्धों में द्रव्यकृत भेद या अन्तर किस प्रकार से है?	61
417.	अरिहन्त और सिद्धों में क्षेत्रकृत भेद या अन्तर किस प्रकार से है?	61
418.	अरिहन्त और सिद्धों में चारित्रकृत अन्तर किस प्रकार से है?	61
419.	अरिहन्त और सिद्धों में ध्यानकृत अन्तर किस प्रकार से है?	61
420.	अरिहन्त और सिद्धों में विकार और निर्विकारकृत अन्तर किस प्रकार से है?	61
421.	अरिहन्त और सिद्धों में सदोष निर्दोषकृत अन्तर किस प्रकार से है?	61
422.	अरिहन्त और सिद्धों में कर्मकृत क्या अन्तर है?	61
423.	अरिहन्तों और सिद्धों में सलेपत्व और निर्लेपत्व की अपेक्षा भी अन्तर है क्या?	61
424.	अरिहन्त और सिद्धों में आहार विहार और निहार की अपेक्षा भी अन्तर है क्या?	61
425.	आहार, विहार और निहार अरिहन्तों के किस प्रकार से होते हैं बताओ?	61
426.	अरिहन्त और सिद्धों में आहारक और अनाहारक की अपेक्षा भी अंतर है क्या?	61
427.	उक्त दोनों में चंचल और निश्चल की अपेक्षा भी अन्तर है क्या?	61
428.	परतंत्र पराधीन और स्वतंत्र स्वाधीन की अपेक्षा भी अन्तर है क्या?	62
429.	अरिहन्त और सिद्धों में सास्रव और निरास्रव की अपेक्षा भी अंतर है क्या?	62
430.	अरिहन्त और सिद्धों में भावकृत् भी अन्तर है क्या?	62
431.	अरिहन्त और सिद्धों के अशुद्ध और शुद्धकृत भी भेद है क्या?	62
432.	अरिहन्त और सिद्धों में कार्य तथा अकार्य की अपेक्षा भी भेद है क्या?	62
433.	अरिहन्त और सिद्धों में मूलगुणों की अपेक्षा भी अंतर है क्या?	62
434.	अरिहंत और सिद्धों में काल की अपेक्षा अंतर है क्या?	62
435.	अरिहंत और सिद्धों में सादि अनादि आदि भंगों की अपेक्षा अंतर है क्या?	62
436.	अरिहंत और सिद्धों में उत्तम क्षमादि धर्मों की अपेक्षा भी अंतर है क्या?	62
437.	अभेद रत्नत्रय धर्मध्यान के साथ में होता है या शुक्लध्यान के साथ में?	62
438.	ज्ञानगुण में विकार स्वनिमित्तक होता है या परनिमित्तक?	62
439.	यहाँ निचली अवस्थाओं में शुद्धात्मा नहीं है तो उसका अनुभव कैसे हो सकता है?	63
440.	चौथे गुणस्थान में अभेद रत्नत्रय होता है क्या?	63

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
441.	शुद्धाशुद्धरूप परिणमन स्वनिमित्तक है या परनिमित्तिक तथा किस नय से है?	63
442.	प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वनिमित्तक होता है या परनिमित्तक?	63
443.	ज्ञानगुण में विभावरूप परिणमन किस गुणस्थान पर्यन्त होता है?	63
444.	मतिज्ञानादि चार सम्यग्ज्ञानों को नियमसार में विभावज्ञान क्यों कहा?	63
445.	मतिज्ञानादि को दूसरे ग्रन्थों में स्वभावज्ञान, सम्यग्ज्ञान क्यों कहा?	63
446.	यहाँ पर ज्ञान से ही कर्मों का क्षय होता है ऐसा क्यों कहा?	63
447.	स्वभावज्ञान और मति आदि 4 सम्यग्ज्ञान में क्या अन्तर है?	64
448.	चौथे गुणस्थान के शुद्धोपयोग में और श्रेणी के शुद्धोपयोग में क्या अन्तर है?	64
449.	उपयोग और ध्यान ये दोनों एक गुण की पर्यायें हैं या अलग[2] गुण की?	64
450.	उपयोग पद से गुण को ग्रहण करना चाहिए या पर्याय को?	64
451.	रत्नत्रय की पूर्ति होना अभेदरत्नत्रय है या पूर्ति के सम्मुख होना अभेदरत्नत्रय है?	64
452.	उक्त कथन वर्तमान नय से है या भावी नय से?	64
453.	रत्नत्रय की पूर्ति के सम्मुख अवस्था किस गुणस्थान में होती है?	64
454.	रत्नत्रय की पूर्ति के सम्मुख अवस्था द्विचरमसमय के पहले प्राप्त होती है क्या?	64
455.	परोक्ष ज्ञान का विषय प्रत्यक्ष हो सकता है क्या?	64
456.	प्रत्येक जगह आचार्यों ने आत्मानुभव.....यह विरुद्ध कथन क्यों नहीं है?	64
457.	यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्षज्ञान तो आ.....ने नहीं तब प्रमाण कैसे?	65
458.	यह जिनेन्द्र का ही उपदेश है अन्य का नहीं यह कैसे समझा जाये?	65
459.	यदि ऐसा है तो समस्त पापों का, व्यसनों.....है ऐसा प्रसंग आयेगा?	65
460.	क्षायोपशमिक ज्ञानों का जो विषय है वह.....या सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष?	65
461.	जो एकदेश प्रत्यक्ष हैं वे ज्ञान क्या.....प्राप्त होते हैं या नहीं?	66
462.	अग्नि शुद्ध पुद्गलद्रव्य है या अशुद्ध पुद्गलद्रव्य?	66
463.	अग्नि में उष्णता पारिणामिक भाव है या औदयिक भाव है?	66
464.	अग्नि में उष्णता स्वभाव भाव है या विभाव भाव?	66
465.	अग्नि में उष्णता का क्या तादात्म्य संबंध है या दूसरा कोई?	66
466.	चेतन युक्त अग्नि में उष्णता का तादात्म्य संबंध है या अचेतन अग्नि पिण्ड में?	66
467.	अग्निपिण्ड द्रव्य रूप है या पर्यायरूप?	66
468.	एकप्रदेशी पुद्गल पिण्ड में उष्णता का तादात्म्य संबंध है या कोई दूसरा?	66
469.	रागादि विकारी भावों का अशुद्धात्मा के साथ तादात्म्य संबंध है या संयोग संबंध?	66
470.	अशुद्धात्मा का भाव रागादि के साथ.....बाह्य व्याप्यव्यापक सम्बन्ध है?	67
471.	व्याप्य किसे कहते हैं और व्यापक किसे कहते हैं?	67
472.	अंतरंग व्याप्यव्यापक सम्बन्ध और बहिरंग व्याप्यव्यापक सम्बन्ध किसे कहते हैं?	67
473.	उक्त व्याप्य व्यापक सम्बन्ध को बताने वाला उदाहरण बताओ?	67
474.	जिस प्रकार द्रव्य पर्यायों में फैलकर रहता.....हैं ऐसा क्यों नहीं कहा?	67
475.	व्याप्य व्यापक सम्बन्ध एक द्रव्य में होता है या अनेक द्रव्यों में?	67
476.	रागादि विकारी औदयिक भावों का उपादानकर्ता आत्मा शुद्ध है या अशुद्ध?	67
477.	उपादान को शुद्ध मान लें तो क्या आपत्ति है?	67
478.	उपादान पद से द्रव्य गुण और पर्याय में से किसको ग्रहण करना चाहिए?	67
479.	पर्याय के लिए उपादान स्वरूप द्रव्य गुण कभी अशुद्ध होते हैं या नहीं?	68
480.	रागादि विकारी भाव आत्मा के समस्त .....और किस अंश में नहीं?	68

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
481.	रागादि विकारी भाव किन किन गुणों की पर्यायें हैं?	68
482.	एक गुण की एक समय में अनेक पर्यायें या अनेक.....हो सकती है क्या?	68
483.	उक्त विकारी अवस्थायें किस गुण या द्रव्य की अर्थपर्याय या व्यंजनपर्याय हैं?	68
484.	कर्ता, कर्म, करण आदि षट्कारकों का संबंध.....जीवों तक होता है?	68
485.	कर्ता कर्म आदि षट्कारक शुद्ध होते हैं या अशुद्ध?	68
486.	कारक किसे कहते हैं और कितने प्रकार के होते हैं?	68
487.	भिन्न षट्कारक शुद्ध होते हैं या अशुद्ध?	69
488.	अभिन्न षट्कारक शुद्ध होते हैं या अशुद्ध?	69
489.	आश्रव बन्ध ये कर्ता कर्मादि के फल हैं या इनके त्याग के?	69
490.	संवर, निर्जरा और मोक्षतत्त्व ये कारकों में प्रवृत्ति के फल हैं या त्याग के?	69
491.	शुद्ध द्रव्य किसे कहते हैं?	69
492.	अशुद्ध द्रव्य किसे कहते हैं?	69
493.	जीव और पुद्गल द्रव्य में परस्पर के संबंध से अशुद्धावस्था होती है क्या?	69
494.	जीव अजीवादि सात तत्त्व किस नय के विषय हैं?	69
495.	जीव अजीवादि सात तत्त्वों का विभाग कितने रूपों में होता है?	69
496.	जीवादि सात तत्त्व व्यवहारनय से ही है ऐसा क्यों?	69
497.	जीवादिक 7 तत्त्वों का विभाग अशुद्धनय से है क्या?	69
498.	जीवादिक 7 तत्त्वों का कथन वर्तमान नय से है या भूतभावी नय से?	70
499.	शुद्धाशुद्धनय किन किन कालों के विषय को बताते हैं?	70
500.	रागादि विकारी भावों का अस्तित्त्व जीव में है या अजीव पुद्गल में?	70
501.	रागादिभाव अचेतन हैं, जड़ हैं ऐसा आचार्यों ने क्यों कहा?	70
502.	उदाहरण क्या है?	70
503.	रागादिभाव चेतन हैं, ऐसा आचार्यों ने क्यों कहा?	70
504.	अत्यन्ताभाव किसे कहते हैं और इसे स्वीकार करने से क्या फल प्राप्त होता है?	70
505.	रागादि भावों का अस्तित्त्व आत्मा के एकदेश में है या सर्वदेश में?	70
506.	रागादि भावों का अस्तित्त्व आत्मा में किस नय से है और किस नय से नहीं?	70
507.	रागादि भावों का अस्तित्त्व आत्मा में.....कहते, दोनों नयों से नहीं?	70
508.	द्रव्य गुण पर्याय, उत्पाद व्यय ध्रौव्य और गुणपर्याय ये भेद किस नय से है?	70
509.	तो क्या सभी अनन्तधर्म एक ही नय के विषय हैं या भिन्न भिन्न नयों के?	71
510.	द्रव्य गुण कभी विकारी होते हैं या नहीं?	71
511.	द्रव्य और गुणों को त्रिकाली शुद्ध मान लो तो क्या आपत्ति है?	71
512.	जीवसमास, गुणस्थान और मार्गणाओं का अस्तित्त्व आत्मा से भिन्न है या अभिन्न?	71
513.	जीव समास, गुणस्थान और मार्गणाओं से युक्त आत्मा शुद्ध है या अशुद्ध?	71
514.	उक्त अवस्थायें किन जीवों के होती हैं और किन जीवों के नहीं?	71
515.	कुछ मार्गणायें सिद्धों में क्यों पायीं जातीं हैं?	72
516.	शेष स्थान क्यों नहीं पाये जाते हैं?	72
517.	भव्यमार्गणा का सिद्धों में क्यों अभाव होता है?	72
518.	अनादिकालीन पारिणामिक भाव का अभाव क्यों होता है?	72
519.	द्रव्य गुण और पर्यायों की शुद्धि पूर्ण रूप से किस अवस्था में होती है?	72
520.	इसके पहले पूर्ण शुद्धि क्यों नहीं होती है और कितनी शुद्धि होती है?	72

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
521.	संसारपर्याय से छूटने के या मोक्ष के सम्मुखावस्था में शुद्धि होती है क्या?	72
522.	गृहस्थावस्था में मैं पूर्णरूप से शुद्ध हूँ ऐसा विश्वास कर सकते हैं क्या?	72
523.	वैभाविक शक्ति गुणरूप है या पर्यायरूप तथा अनुभव कौन करते हैं?	73
524.	वैभाविक शक्ति को गुणरूप में मानें, विश्वास करें तो क्या आपत्ति है?	73
525.	संसारावस्था में वैभाविक शक्ति का परिणमन किस प्रकार से होता है?	73
526.	वैभाविक शक्ति को पारिणामिकभाव और क्षायिकभाव मानने में क्या आपत्ति है?	73
527.	वैभाविक शक्ति का सद्भाव सिद्धों में मान लो तो क्या आपत्ति है?	73
528.	वैभाविक शक्ति का सद्भाव सिद्धों में कार्य रूप में मत मानो?	73
529.	जीव का लक्षण तो उपयोग है उत्पाद.....अव्याप्ति दोष क्यों आयेगा?	73
530.	अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं, यह दोष कैसे आता है?	74
531.	संसारी जीवों में वैभाविक शक्ति को गुण रूप में सद्भाव मान लेने से क्या आपत्ति है?	74
532.	उस वैभाविक शक्ति का अभाव पूर्ण रूप से होता है या नहीं?	74
533.	यह वैभाविक शक्ति किस प्रकार से परिणमन करती है?	74
534.	इस वैभाविक शक्ति का सिद्धों में सद्भाव है या नहीं?	74
535.	सिद्ध किस प्रकार होते हैं?	74
536.	प्रत्येक शक्ति का परिणमन अपने में होता है या पर में, हानि क्या है?	74
537.	यदि प्रत्येक द्रव्य अपनी[2] मर्यादा का.....होता है तो संसार भ्रमण क्यों?	74
538.	यदि सिद्धों में वैभाविक शक्ति है तो सिद्धादि विशेषण क्यों लगाये जाते हैं?	75
539.	उन द्रव्यसिद्धों में, भवसिद्धों में और.....का सद्भाव किस नय से है?	75
540.	संयोग किसे कहते हैं?	75
541.	संयोगी भाव किसे कहते हैं, हेतु क्या है, कितने भेद हैं?	75
542.	जब रागादि भावों का उपादान कारण आत्मा है तो उन्हें संयोगी क्यों कहा?	75
543.	आवरण कर्म किसे कहते हैं?	75
544.	आवरण कर्म के कितने भेद हैं?	75
545.	आवरण कर्म के नाम कौन कौन हैं?	75
546.	आवरण कर्म का लक्षण क्या हैं?	75
547.	ज्ञानावरण कर्म किसे कहते हैं?	75
548.	ज्ञानावरण कर्म के कौन[2] भेद हैं?	75
549.	द्रव्य ज्ञानावरण कर्म किसे कहते हैं?	75
550.	भावज्ञानावरण कर्म किसे कहते हैं और नाम कौन कौन हैं?	76
551.	दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?	76
552.	दर्शनावरणकर्म के कितने भेद हैं?	76
553.	दर्शनावरणकर्म के नाम कौन कौन हैं?	76
554.	द्रव्यदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?	76
555.	भावदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?	76
556.	सर्वघातीकर्म और सर्वघातीकरण किसे कहते हैं?	76
557.	क्या ये 21 सर्वघातीकर्म प्रकृतियां..... घातने का कार्य करती हैं?	76
558.	देशघातिकर्म और देशघातिकरण किसे कहते हैं?	77
559.	सर्वघाती कर्म क्या आत्मद्रव्य को.....घातता है या पर्यायों को घातता है?	77
560.	सर्वघाती कर्म द्रव्य और गुणों को घातता है ऐसा मानने में क्या दोष है?	77

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
561.	यदि ऐसा है तो द्रव्य और गुण.....ऐसा क्यों कहा जाता है?	77
562.	अपराधी को सजा मिलना योग्य है.....चाहिये द्रव्य गुण को नहीं?	77
563.	तो फिर सर्वघातीकर्म द्रव्य गुणों को घातते हैं अशुद्ध करते हैं ऐसा मानो?	78
564.	द्रव्य और गुण त्रिकाली शुद्ध हैं ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?	78
565.	ये सब अर्थपर्यायें एक समय मात्र स्थितिवाली होने से इनका लंबा सत्व कैसे?	78
566.	आवरणकर्म का आश्रवबन्ध किन कारणों से होता है?	78
567.	उभयश्रेणी में ध्यानावस्था होने से उक्त.....अनुभागबंध क्यों होता है?	78
568.	अज्ञान किसे कहते हैं?	78
569.	अज्ञान सम्यक् होता है या मिथ्या?	78
570.	अज्ञानभाव का सद्भाव किस गुणस्थान तक रहता है?	79
571.	अज्ञान अदर्शन के अभाव में आवरणकर्म का आश्रव बन्ध होता है क्या?	79
572.	अज्ञान से नवीन आवरणकर्म का आश्रव बन्ध होता है या नहीं?	79
573.	सम्यग्ज्ञान से आवरणकर्म का बन्ध होता है या किसी अन्य कारणों से?	79
574.	स्वरूपाचरणचारित्र किसे कहते हैं?	79
575.	स्वरूपाचरणचारित्र और स्वसमय में क्या अन्तर है?	79
576.	स्वरूपाचरणचारित्र और शुद्धोपयोग में क्या अन्तर है?	79
577.	एक समय में एक जीव में एक साथ कितने चारित्र हो सकते हैं?	79
578.	स्वरूपाचरणचारित्र अनेक भेदों में से कौन सा चारित्र है और कौन सा भाव है?	79
579.	औपशमिक चारित्र किस गुणस्थान में होता है?	79
580.	क्षायिकचारित्र किस गुणस्थान से प्रारम्भ होकर कहाँ तक रहता है?	80
581.	औपशमिकचारित्र किसे कहते हैं?	80
582.	क्षायिक चारित्र किसे कहते हैं?	80
583.	औपशमिक चारित्र किसके समान है?	80
584.	औपशमिक चारित्र से पतन कितने प्रकार से होता है?	80
585.	आयु कर्म के उदय क्षय होने पर संयम से पतन कर क्या फल प्राप्त करते है?	80
586.	आयु कर्म की उदीरणा क्षय से पतन.....से होता है ऐसा क्यों कहा?	80
587.	काल क्षय से या मोहनीय कर्म के उदय से पतन किस प्रकार से होता हैं?	80
588.	11वें गुणस्थान से पतन कर संसार में कब तक रह सकते हैं?	80
589.	क्षायिक चारित्र किसके समान है?	80
590.	औपशमिक चारित्र संयम के साथ में होता है या असंयम के साथ?	80
591.	औपशमिक चारित्र को घातने वाली कौन सी कषाय है?	80
592.	औपशमिकचारित्र को साक्षात् समस्त.....क्या दोष है?	81
593.	चारित्रमोह की 21 प्रकृतियों के उपशम से औपशमिक चारित्र होता है क्या?	81
594.	स्वरूपाचरणचारित्र मूलप्रकृति के क्षय से होता है या उत्तरप्रकृति के क्षय से?	81
595.	स्वरूपाचरण चारित्र के कितने भेद हैं?	81
596.	स्वरूपाचरण चारित्र के दो नाम कौन कौन हैं?	81
597.	उभय स्वरूपाचरण चारित्र के स्वामी कौन कौन हैं?	81
598.	और भी क्या विशेषतायें हैं?	81
599.	अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव में स्वरूपाचरणचारित्र होता है क्या?	81
600.	सम्यक्त्व के अभाव में स्वरूपाचरण.....मान लो तो क्या आपत्ति है?	81

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
601.	स्वरूपाचरणचारित्र कितने प्रकार का होता है और नाम कौन कौन से हैं?	82
602.	स्वरूपाचरणचारित्र के स्वामी कौन कौन हैं?	82
603.	प्राप्ति के बाद पतन कर नीचे के गुणस्थानों में भी बना रहता है क्या?	82
604.	जब स्वरूप के लिए आचरण चौथे.....मान लो तो क्या आपत्ति है?	82
605.	जिस प्रकार देवों के, अहमिंद्रों के द्वितीयोपशम.....लेने में क्या आपत्ति है?	82
606.	स्वरूपाचरणचारित्र को भी अनेक गुणस्थानों में मान लो तो क्या आपत्ति है?	82
607.	स्वरूपाचरण चारित्र का अंतर्भाव निश्चयचारित्र में होता है या व्यवहारचारित्र में?	82
608.	उपसर्ग के समय शरीर की.....विकृत रूप में होता है या सुंदर रूप में?	83
609.	सिद्धों को जब निराकार कहा है तो यहाँ पुरुष के आकार क्यों कहा?	83
610.	सिद्धों का आकार स्त्री और नपुंसकों जैसा क्यों नहीं कहा?	83
611.	विकृतावस्था का मतलब क्या, सिद्धात्मा का विकृताकार होता है क्या?	83
612.	स्वरूपाचरणचारित्र को सम्यक्त्वाचरणचारित्र मान लो तो क्या आपत्ति है?	83
613.	सम्यत्वाचरणचारित्र किसे कहते हैं?	83
614.	सम्यक्त्वाचरण चारित्र के स्वामी कौन[2] हैं.....नहीं रह सकते हैं?	83
615.	स्वरूपाचरणचारित्र और सम्यक्त्वाचरण चारित्र में क्या अन्तर है?	84
616.	चौथे गुणस्थान में आ.श्री कुन्दकुन्द ने.....कहा हैं तब सही कौन?	84
617.	स्वरूपाचरणचारित्र किस ध्यान के साथ होता है और किसके साथ में नहीं?	84
618.	ये अर्थपर्यायें एक समय वाली होने से सांत होना चाहिए?	84
619.	ध्यान किसे कहते हैं?	84
620.	ध्यान के स्वामी कौन हैं?	84
621.	चिन्ता के अभाव को ध्यान कहते हैं ऐसा क्यों नहीं कहा?	84
622.	छद्मस्थावस्था में चिन्ता का अभाव करना ध्यान है ऐसा मानने में क्या दोष है?	84
623.	चिन्ता के अभाव को ध्यान मान लो इसमें क्या आपत्ति है?	85
624.	चिन्ता किसे कहते हैं?	85
625.	चिन्ता के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?	85
626.	चिन्ता का अभाव करना ध्यान नहीं.....ध्यान स्वीकार किया गया है?	85
627.	चिन्ता के उत्पन्न न होने को ध्यान.....को ध्यान कहते हैं?	85
628.	चिन्ताओं के रोकने को ध्यान क्यों कहा?	85
629.	तो फिर ग्रंथकारों ने चिन्ताओं के रोकने को ध्यान क्यों कहा?	85
630.	ज्ञान का ज्ञान रूप में परिणमन करने का मतलब क्या है?	86
631.	समीचीन या शुभचिन्ता किसे कहते हैं?	86
632.	असमीचीन या अशुभ चिन्ता किसे कहते हैं?	86
533.	प्रथमोपशम सम्यक्त्व में और द्वितीयोपशम.....बंध होता है क्या?	86
534.	करण परिणाम किसे कहते हैं?	86
635.	वे कौन से परिणाम हैं जो करण परिणाम कहलाते हैं?	86
636.	भीलों ने, पशुपक्षियों ने और नारकियों.....प्राप्त किया था या करते हैं?	86
637.	उन मुनियों ने भीलों को, पशुपक्षियों को.....उपदेश क्यों नहीं दिया?	86
538.	यदि ऐसा है तो आचार्य श्री अमृतचंद्र.....निग्रह का स्थान क्यों कहा?	87
639.	इस प्रकार धर्मोपदेश के क्रम में क्या हेतु है?	87
640.	इस विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण बताओ?	87

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
641.	पुनः हताश, अनुत्साही होने के संबंध में कुछ उदाहरण बताओ?	88
642.	यहाँ उपदेश को करण परिणाम क्यों कहा?	88
643.	आठवें गुणस्थान में क्या नवीन भावनाओं का चिन्तन नहीं करता है?	88
644.	जब नवीन भावना संभव नहीं तो.....का बंध कैसे हो सकता है?	88
645.	प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम.....जीव कैसा होना चाहिये?	88
646.	द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहाँ से कहाँ तक होता है?	88
647.	देवगति में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है क्या?	89
648.	जैसे देवों में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहा.....सम्यक्त्व हो सकता है क्या?	89
649.	सोलहकारण भावनायें राग रूप है या वैराग्य रूप?	89
650.	सोहकारण भावनाओं को रागरूप मानने में क्या आपत्ति है?	89
651.	ये भावनायें रागरूप, लोभरूप ही है ऐसा स्वीकार क्यों नहीं करते हो?	89
652.	ठीक है राग कषाय न मानकर शुभराग, प्रशस्त राग मानने में क्या आपत्ति है?	89
653.	राग पद से मोहनीय कर्म की.....चाहिए और द्वेष पद से किन किनको?	90
654.	रत्नत्रय के सद्भाव में योग और.....प्रकृति का बन्ध हो सकता है क्या?	90
655.	राग के शुभाशुभादि.....क्यों लिखे? हैं तभी तो लिखे, अतः विश्वास करना चाहिए?	90
656.	पुण्य रूप कौन कौन सी प्रकृतियां हैं?	91
657.	पाप प्रकृतियां कौन कौन सी हैं?	91
658.	तो फिर ये पुण्य पाप भेद किन कर्मों के हैं?	91
659.	सातिशय तीर्थंकरादि पुण्य प्रकृतियां भी कभी अशुभ होती हैं क्या?	91
660.	जिस प्रकार तीर्थंकरादि पुण्य प्रकृतियों.....प्रकृति कहने में क्या दोष है?	91
661.	तो फिर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किससे होता है?	91
662.	अभव्यभाव पारिणामिक भाव है या अन्य कोई?	91
663.	अभव्यभाव द्रव्यरूप है या पर्यायरूप?	91
664.	अभव्यभाव निमित्त नैमित्तिक रूप है क्या?	91
665.	अभव्यभाव किस ज्ञान का विषय है और किस ज्ञान का नहीं?	92
666.	शेष ज्ञानों का विषय क्यों नहीं है?	92
667.	अभव्यभाव किसे कहते हैं?	92
668.	शास्त्रों में अश्रद्धानी को अभव्य नाम से कहा है जैसे अभव्यसेन यह ठीक है क्या?	92
669.	यह कैसे जाना कि भव्यसेन का अभव्यसेन नाम रखा था?	92
670.	अभव्यजीव को श्री सम्मेदशिखरजी पर्वत के दर्शन होते हैं या नहीं?	92
671.	अभव्य जीवों को श्रीसम्मेदशिखर के दर्शन नहीं होते हैं ऐसा कहना क्या ठीक है?	93
672.	ढाईद्वीप में कितने सम्मेदशिखर पर्वत हैं?	93
673.	उन सभी सम्मेदशिखर पर्वतों का विस्तार कितना है?	93
674.	तो उन कथाग्रन्थों और माहात्म्य ग्रन्थों पर किस प्रकार विश्वास करें?	93
675.	सभी निर्वाणक्षेत्र समान होते हैं या असमान?	94
676.	सभी निर्वाण क्षेत्रों की महिमा में क्या अन्तर है?	94
677.	यदि अंतर है तो आचार्यों को कथन करना चाहिए?	94
678.	अभव्य जीवों ने कितने क्षेत्र का स्पर्श और कितने क्षेत्र में निवास किया है?	94
679.	अभव्यजीवों के ज्ञानावरणकर्म का उत्कृष्ट और जघन्य क्षयोपशम कितना होता है?	95
680.	जीव० गा० 320 में सूक्ष्म निगोदिया जीव के ज्ञान को निरावरण क्यों कहा?	95

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
681.	लब्ध्यक्षरज्ञान किसे कहते हैं और.....बंध उदय और सत्त्व है या नहीं?	95
682.	सूक्ष्मनिगोदियाजीव के क्षायिककेवलज्ञान का अंश मान लो तो क्या आपत्ति है?	96
683.	अभव्य जीवों का जैनागम का ज्ञान सम्यक् है या मिथ्या?	96
684.	अभव्य मिथ्यादृष्टि मुनि का धर्मोपदेश समीचीन है तो उसे अज्ञानी क्यों कहा?	96
685.	अभव्य मुनि अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है.....न मोक्षमार्गी बन सकते हैं?	96
686.	अभव्यमुनि किन परिणामों से नवग्रैवेयिक पर्यंत चला जाता है?	96
687.	अभव्यजीव ऊपर विमानों में शुभोपयोग से जाता है या अशुभोपयोग से?	96
688.	अभव्य मनुष्य या तिर्यंच किन परिणामों से भवनत्रिक में पैदा होते हैं?	96
689.	अभव्यमनुष्य या तिर्यंच भवनत्रिकों में शुभोपयोग से पैदा होते है या शुभयोग से?	96
690.	अभव्य जीवों के पहंचान के चिह्न क्या हैं?	97
691.	भव्यभाव को सादि सान्त क्यों कहा तथा मोक्षमार्ग और मोक्ष क्या है?	97
692.	भव्य भाव कहाँ से प्रारम्भ होता है और कहाँ तक रहता है?	97
693.	इन दोनों प्रकार की मान्यताओं में कौनसी सत्य है और कौन असत्य?	97
694.	जो श्रावक या श्राविकायें श्री.....तब ऐसे जीवों को भव्य कहें या अभव्य?	97
695.	आ. श्री कुन्दकुन्द ने पं. गा. 37 में.....रहते ऐसा कहा है तो यह अन्तर क्यों?	97
696.	त. सू. अ.10 सू. 3 में सिद्धों में भव्यपारिणामिक भाव का अभाव क्यों बताया?	97
697.	क्या तादात्म्य सम्बन्धी सभी भाव आत्मा से पृथक् हो सकते हैं?	98
698.	त०सू० अ० 10 सूत्र 3 निश्चयनय से प्रवृत्त हुआ है या व्यवहार नय से?	98
699.	भव्यजीवों के और अभव्यजीवों के मिथ्यात्व में क्या अन्तर है?	98
700.	भव्यभाव का परिणमन संसारावस्था में किस प्रकार से होता है?	98
701.	भव्यभाव और अभव्यभाव का सम्बन्ध आत्मा के सर्वांश में है या देशांश में?	98
702.	दूरानुदूर भव्यों में और अभव्यों में.....भी नहीं है फिर दोनों में क्या अन्तर है?	98
703.	समर्थ कारण किसे कहते हैं?	98
704.	दान पूजा, स्वाध्याय, यात्रा, प्रतिष्ठा.....शुभयोग होता है ऐसा क्यों कहा?	98
705.	क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तीर्थंकरकेवली,.....सम्यदर्शन कैसे प्राप्त करेंगे?	99
706.	मिथ्यादृष्टि जीव के शुभोपयोग होता है या नहीं?	99
707.	उपयोग में तीन प्रकार का विभाग या लक्षण किसके माध्यम से होता है?	99
708.	शुभयोग का फल क्या है और उपयोगों के स्वामी कौन कौन हैं?	99
709.	उपयोग पद से किसको ग्रहण करना चाहिए?	99
710.	उपयोग का चार प्रकार के.....उपयोग के स्वामी कौन कौन जीव हैं?	99
711.	यहाँ उपयोग और ध्यान का कथन दो प्रकार से क्यों किया?	99
712.	किस उपयोग और ध्यान में कौन कौन सा भाव है?	99
713.	मोक्ष किसे कहते हैं और कितने भेद तथा नाम कौन कौन हैं?	100
714.	द्रव्यमोक्ष किसे कहते हैं?	100
715.	क्षेत्रमोक्ष किसे कहते हैं?	100
716.	कालमोक्ष किसे कहते हैं?	100
717.	भावमोक्ष किसे कहते हैं?	100
718.	अभी तक तो 12वें गुणस्थान में एकत्ववितर्क.....हैं सो यह विरुद्ध कथन है?	100
719.	यहाँ पर ध्यानों के अभाव को भावमोक्ष क्यों कहा?	100
720.	सम्यग्दृष्टि जीव को भोग भोगने पड़ते.....रहता है यह कथन ठीक है क्या?	101

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
721.	भरत चक्रवर्ती घर में ही वैरागी थे यह कथन ठीक है या नहीं?	101
722.	सम्यग्दृष्टि को भोग भोगने पड़ते हैं इसका क्या मतलब है?	101
723.	सम्यग्दृष्टि जीव के भोग क्या निर्जरा के कारण हैं या बन्ध के?	101
724.	भोग भोगने पड़ते हैं उससे.....परीषह या कर्मोदय की विचित्र दशा?	102
725.	हीन पुरुषार्थ किसे कहते हैं?	102
726.	परिश्रम को, व्यायाम को पुरुषार्थ कहते हैं ऐसा अर्थ क्यों नहीं करते हो?	102
727.	हीन पुरुषार्थ कब होता है?	102
728.	हीन पुरुषार्थ के कितने भेद हैं, नाम कौन कौन हैं, कारण क्या है?	102
729.	हीन पुरुषार्थी जीव आत्म स्वरूप का चिन्तन कर सकता है या नहीं?	102
730.	आत्मस्वरूप में रहकर लौकिक क्रियायें कर सकता है क्या?	102
731.	लौकिक क्रियायें करते समय कौन सा ध्यान होता है?	102
732.	भूल जाना, याद रहना यह किस गुण का कार्य है?	102
733.	इच्छा किसे कहते हैं तथा इच्छा का अंतर्भाव किसमें होता है?	103
734.	इच्छा औदयिकादि पांच भावों में से कौन सा भाव है और कौन सा नहीं?	103
735.	इच्छा कषाय के सद्भाव में होती है या अभाव में तथा क्या फल है?	103
736.	इच्छा राग रूप है या वैराग्य रूप?	103
737.	इच्छा के बिना अविरत सम्यग्दृष्टि.....अतः निर्जरा के ही कारण हैं?	103
638.	इच्छा का अन्तर्भाव ईर्यापथ आश्रव में होता है या साम्परायिक आश्रव में?	104
739.	इच्छा का अभाव अपने[2] गुणस्थानानुसार क्रम से होता है या अक्रम से?	104
740.	इच्छा और रुचि में क्या अन्तर है?	104
741.	इच्छा और रुचि के स्वामी कौन कौन हैं और किसका कितना काल हैं?	104
742.	इच्छा और रुचि उक्त पाँच भावों में से कौन कौन सा भाव है?	104
743.	इच्छा सहित या इच्छा रहित मुनियों तक की प्रवृत्ति कैसे होती है?	105
744.	इच्छा या अनिच्छा पूर्वक प्रमादी जीवों की क्रियायें होती हैं क्या?	105
745.	प्रवृत्ति किस भाव के साथ में होती है और किस भाव के साथ में नहीं?	105
746.	प्रवृत्ति किस कर्म के उदय से होती है?	105
747.	अघातिया कर्मों का सद्भाव होने से क्रिया प्रवृत्ति होती है या नहीं?	105
748.	समस्त प्राणियों के पाँचों भाव होते हैं या कम ज्यादा भी?	105
749.	एक जीव के एकसाथ क्षायिकभाव और औपशमिकभाव कैसे हो सकते हैं?	105
750.	भाव किसे कहते हैं और कैसे उत्पन्न होते हैं?	105
751.	भावों के कितने भेद हैं?	105
752.	आश्रव बन्ध राग के फल हैं या वैराग्य के?	105
753.	वैराग्य किसे कहते हैं?	105
754.	राग और वैराग्य ये दोनों पर्याय.....में रह सकती हैं या नहीं?	106
755.	राग और वैराग्य ये किस गुण के कार्य हैं?	106
756.	विधि और निषेध इन दोनों का कथन करना चाहिए या नहीं, हानि क्या है?	106
757.	इस प्रकार का कथन करने से क्या हानि है?	106
758.	अहंकार वश एक का ही कथन करने से मोक्षमार्ग बिगड़ता है या सुधरता है?	106
759.	ऐसा क्यों होता है क्या कारण है?	106
760.	केवलियों के खड़ा होना, बैठना, उठना,.....कार्य किस कारण से होते हैं?	106

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
761.	ये उक्त क्रियायें केवलियों के क्यों होती हैं?	106
762.	ये कार्य केवलियों के स्वतंत्रता से होते हैं या पराधीनता से?	106
763.	धर्मोपदेश क्या औदयिक भाव है?	106
764.	यदि ये क्रियायें क्षायिकी हैं तो सिद्धों में क्रियाओं को मानने में क्या आपत्ति है?	107
765.	कर्मों से मुक्त हुआ आत्मा लोकाकाश में कहाँ तक जाता है?	107
766.	मुक्त जीव लोक के बाहर क्यों नहीं जाते हैं?	107
767.	'धर्मास्तिकायाभावात्' यह सूत्र व्यवहारनय से कहा है या निश्चयनय से?	107
768.	'शक्त्याभावात्' ऐसा सूत्र क्यों नहीं बनाया?	107
769.	शक्त्यंश और व्यक्त्यंश में क्या अन्तर है?	107
770.	उपरोक्त चारों भंगों के स्वामी कौन कौन जीव हैं?	108
771.	गमनशक्ति और गमनक्रिया में क्या अन्तर है?	108
772.	सिद्धों में गमनशक्ति होने से अर्थक्रिया गमनक्रिया होनी चाहिए?	108
773.	मुक्त जीवों में लोक के बाहर जाने की शक्ति है ऐसा क्यों नहीं कहते हो?	108
774.	इस प्रकार का विश्वास निश्चयनय से करते हो या व्यवहार नय से?	108
775.	प्र० सा० प्र० अ० में किस नय से, किस अपेक्षा से कथन किया गया है?	108
776.	पदार्थ सर्वथा स्वयं समर्थ होकर कार्य करता है ऐसा मानने में क्या हानि है?	109
777.	असमर्थ पदार्थ अपने कार्य के प्रति उदासीन है ऐसा मानने में क्या हानि है?	109
778.	उपादान में योग्यता होनेपर भी समर्थ कारण के बिना कार्य होगा या नहीं?	109
779.	ये क्रियायें कितने प्रकार की होती हैं तथा स्वामी कौन हैं?	109
780.	केवलज्ञान प्राप्त करने का साक्षात् कारण और परंपरा कारण क्या है?	110
781.	क्षेत्रान्तरक्रिया किसे कहते हैं और कितने प्रकार की होती हैं?	110
782.	क्षेत्रान्तरक्रिया किन किन कारणों से होती है?	110
783.	इस क्षेत्रान्तर क्रिया के स्वामी कौन हैं और कौन नहीं?	110
784.	परिणतिक्रिया किसे कहते हैं?	110
785.	उपरोक्त दोनों क्रियायें स्वाधीन होती हैं या पराधीन?	110
786.	परिस्पन्दन क्रिया और क्षेत्रान्तर क्रिया स्वाभाविक होती है या वैभाविक?	110
787:	परिस्पन्दनक्रिया क्या समस्त संसारी जीवों के होती है?	110
788.	ज्ञप्तिक्रिया किसे कहते हैं?	110
789.	मछली में गमनशक्ति कहाँ तक और गमन क्रिया कहाँ तक होती है?	110
790.	सिद्धों में गमनक्रिया क्यों नहीं होती है?	111
791.	यदि सिद्धों के गमन शक्ति है तो वहाँ पर भी अर्थक्रिया होनी चाहिए?	111
792.	जिन पुरुष या स्त्रियों ने आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत.....अभाव माना जा सकता है?	111
793.	वेदक सम्यक्त्व में चल मलिन अगाढ़ दोष और शंकादि दोष क्यों लगते हैं?	111
794.	ये चल मलिनादि, अतिचारादि और शंकादि 25 दोष क्यों लगते हैं?	111
795.	चलदोष किसे कहते हैं?	111
796.	मलिन दोष किसे कहते हैं और इसका क्या फल है?	111
797.	चल दोष और मलिन दोष में क्या अन्तर है?	111
798.	अगाढ़ दोष किसे कहते हैं?	112
799.	शंका दोष किसे कहते हैं?	112
800.	कांक्षा दोष किसे कहते हैं?	112

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
801.	विचिकित्सा दोष किसे कहते हैं?	112
802.	मूढ़दृष्टि दोष किसे कहते हैं?	112
803.	अनुपगूहन दोष किसे कहते हैं?	112
804.	अस्थितिकरण दोष किसे कहते हैं?	112
805.	अवात्सल्य दोष किसे कहते हैं?	112
806.	अप्रभावना दोष किसे कहते हैं?	112
807.	शंकादि 8 दोषों को धारण करने से क्या आपत्ति प्राप्त होती है?	113
808.	मद किसे कहते हैं?	113
809.	मद के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?	113
810.	ज्ञान मद किसे कहते हैं?	113
811.	पूजा मद किसे कहते हैं?	113
812.	कुल मद किसे कहते हैं?	113
813.	जाति मद किसे कहते हैं?	113
814.	बल मद किसे कहते हैं?	113
815.	ऋद्धि मद किसे कहते हैं?	113
816.	तप मद किसे कहते हैं?	113
817.	शरीर मद किसे कहते है?	113
818.	मदों को धारण करने से क्या हानि प्राप्त होती है?	113
819.	अनायतन किसे कहते हैं?	114
820.	अनायतन के भेद कितने हैं तथा नाम कौन कौन हैं?	114
821.	अंतरंग अनायतन किसे कहते हैं?	114
822.	बाह्य अनायतन किसे कहते हैं?	114
823.	जिनेन्द्र के भक्त होकर भी यदि बाधा उत्पन्न करें तो उन्हें क्या कहना चाहिए?	114
824.	कुगुरु आदि भी तो अनायतन माने जाते हैं?	114
825.	मूढ़ता किसे कहते हैं?	114
826.	मूढ़ता के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?	114
827.	भाव मूढ़ता किसे कहते हैं?	114
828.	द्रव्य मूढ़ता किसे कहते हैं?	114
829.	देव मूढ़ता किसे कहते हैं?	114
830.	अप्रतिष्ठित जिनेन्द्र की फोटो का.....आपने देवमूढ़ता क्यों कहा?	115
831.	दोनों की मान्यता में, आकार में.....स्पष्ट है तो पूजने में दोष क्यों?	115
832.	मंदिर, मूर्ति, मकान जब बनवाते हैं या.....करते हैं अतः यह भी तो मूढ़ता है?	115
833.	यदि अन्य लौकिक और देवगति के देवी.....करें तो क्या हानि है?	115
834.	वर्तमान में स्वास्थ्य लाभ के लिए डॉक्टरों का.....करें तो क्या आपत्ति है?	116
835.	लोक मूढ़ता किसे कहते हैं?	116
836.	यदि गंगा सिन्धु आदि.....लगाते हैं तो मूढता क्यों नहीं?	116
837.	गिरिपात, अग्निपात को लोकमूढ़ता.....सही कहना यह कैसा न्याय है?	117
838.	वे कौन से कार्य हैं जो लोकमूढ़ता कहलाते हैं?	117
839.	वृक्षों को पूजना लोकमूढ़ता क्यों.....जैनों का विवेक है क्या ऐसा न्याय है?	117
840.	इन कार्यों को लोकमूढ़ता क्यों कहा?	117

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
841.	गुरु मूढ़ता किसे कहते हैं?	117
842.	नाना वेष धारियों को, गांजाभांगादि पीने वालों को गुरु कह सकते हैं क्या?	118
843.	लौकिक शिक्षा देने वालों को भी धर्मगुरु कह सकते हैं क्या?	118
844.	कुगुरु किसे कहते हैं और इनकी मान्यता का क्या फल है?	118
845.	धर्मगुरु की पत्नी होती है क्या?	118
846.	आश्रम किसे कहते हैं?	118
847.	आश्रम के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?	118
848.	ब्रह्मचर्याश्रम किसे कहते हैं?	118
849.	गृहस्थाश्रम किसे कहते हैं?	118
850.	वानप्रस्थाश्रम किसे कहते हैं?	118
851.	सन्यासाश्रम किसे कहते हैं?	118
852.	शास्त्रों में गुरुपत्नी होती है ऐसा पढ़ा जाता है तो वह क्या गलत है?	118
853.	गृहस्थाचार्य किसे कहते हैं?	119
854.	आश्रमों का लक्षण दूसरे प्रकार से बताइये?	119
855.	गृहस्थाश्रम स्वीकार किये बिना साधु बनना पलायनवादीपना क्यों नहीं है?	119
856.	भगवान की, देव की पत्नी होती है क्या?	119
857.	भगवान का दर्जा, स्थान, पद गुरु से, सन्यासी से नीचे है या ऊपर?	119
858.	शास्त्रों में भगवान की पत्नी होती है ऐसा पढ़ा है तो वह ठीक है क्या?	119
859.	शंका आदि दोष किसे कहते हैं तथा दोषों के कितने भेद हैं?	120
860.	शंका आदि अतिचारों के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?	120
861.	शंका अतिचार किसे कहते हैं?	120
862.	शंका अतिचार कब उत्पन्न होता है?	120
863.	कांक्षा अतिचार किसे कहते हैं?	120
864.	कांक्षा अतिचार कब उत्पन्न होता है?	120
865.	विचिकित्सा अतिचार किसे कहते हैं?	120
866.	विचिकित्सा अतिचार कब उत्पन्न होता है?	120
867.	अन्यदृष्टिप्रशंसा नामक अतिचार किसे कहते हैं?	120
868.	अन्यदृष्टिस्तव अतिचार किसे कहते हैं?	120
869.	अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिस्तव अतिचारों में क्या अन्तर है?	121
870.	गुणकीर्तन करना स्तुति और वंदना.....को अतिचार दोष क्यों कहा?	121
871.	लौकिक गुणकीर्तन गुणप्रशंसा करने से क्या हानि प्राप्त होती है?	121
872.	लौकिक गुणों से युक्त जैनों की प्रशंसा स्तवन तो कर सकते हैं?	121
873.	उक्त जैनों की प्रशंसा स्तवन करने से क्या हानि है, उदाहरण सहित बताओ?	121
874.	क्या जैन भी मिथ्यादृष्टि होते हैं?	121
875	इन जैनों का आदर सम्मान करने से क्या हानि है?	121
876.	जैनों में शराब का, अण्डों का प्रचलन हो गया है यह कैसे मालूम हुआ?	122
877.	जब समाज में ऐसी दुष्प्रवृत्ति प्रवेश कर गयी है तो क्या करना चाहिए?	122
878.	उक्त अनाचार प्रवृत्ति जैनों में क्यों आ गई?	122
879.	प्रतिक्रमण कब करना चाहिए?	122
880.	प्रतिक्रमण क्यों करना चाहिए और नहीं करने से क्या हानि है?	122

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
881.	व्यसन और पाप में क्या अन्तर है? चार्ट	123
882.	शंकादि अतिचार, अनाचार दोषों में प्रवृत्ति किन कारणों से होती है?	123
883.	उक्त दोषों से रत्नत्रय का विनाश देशांश होता है या सर्वांश?	123
884.	जब कोई निगोदिया जीव ऊर्ध्वलोक.....करे तो वह कहाँ जायेगा?	124
885.	एकदेश त्याग करना, एकदेश मलिन हुआ तो यहाँ एकदेश का क्या मतलब?	124
886.	मिथ्यादृष्टि जीवों की जैनागम के सम्बन्ध में कैसी मान्यता होती है?	124
887.	सम्यग्दृष्टि जीव की जैनागम के संबंध में किस प्रकार की मान्यता होती है?	124
888.	अनेकांत और स्याद्वाद किसे कहते हैं?	125
889.	अनेकांत के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?	125
890.	सम्यक् अनेकांत किसे कहते हैं?	125
891.	मिथ्या अनेकांत किसे कहते हैं?	125
892.	एकांत किसे कहते हैं?	125
893.	एकांत के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन है?	125
894.	सम्यक् एकांत किसे कहते हैं?	125
895.	मिथ्या एकांत किसे कहते हैं?	125
896.	मिथ्या एकांत या मिथ्या अनेकांत स्वरूप वस्तु है क्या?	125
897.	सम्यक् एकांत और सम्यक् अनेकांत स्वरूप वस्तु हैं क्या?	125
898.	स्याद्वाद के कितने भेद हैं और नाम कौन[2] हैं?	125
899.	सम्यक् स्याद्वाद किसे कहते हैं?	125
900.	मिथ्या स्याद्वाद किसे कहते हैं?	125
901.	ज्ञानात्मक स्याद्वाद के भेद नाम, और लक्षण किसे कहते हैं?	125
902.	वचनात्मक स्याद्वाद किसे कहते हैं भेद और नाम कौन कौन हैं?	126
903.	मिथ्यावचनात्मक स्याद्वाद किसे कहते हैं?	126
904.	सम्यक्वचनात्मक स्याद्वाद किसे कहते हैं?	126
905.	अन्यथावादी होने का क्या कारण है?	126
906.	परीक्षाप्रधानी और आज्ञाप्रधानी किसे कहते हैं?	126
907.	सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव की मान्यता में क्या अंतर है?	126
908.	तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले नारकियों की.....कौन बचा सकता है?	126
909.	धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय अंतरंग तप किसे कहते हैं?	126
910.	धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय कितने प्रकार से किया जाता है?	126
911.	आजकल अनेक दिगम्बर साधु आदि.....धर्मोपदेश कह सकते हैं?	126
912.	आजकल अनेक दिगम्बर साधुजन वक्ता ऐसा प्रवचन क्यों करने लगे?	127
913.	जब इस अवसपिर्णी काल के चौथे.....का अभाव विच्छेद क्यों कहा?	127
914.	उत्सर्पिणी काल के छट्ठे और पांचवेंकाल.....से धर्म की प्रवृत्ति कैसे होगी?	127
915.	वे कुलकर कौन और कैसे होते हैं?	128
916.	इन कुलकरों को यहाँ पर जन्म लेने में ऐसा अंतर क्यों हो गया?	128
917.	ये कुलकर मिथ्यादृष्टि मलेच्छाचरण वालों के यहाँ जन्म ले सकते हैं क्या?	128
918.	तो फिर उत्सर्पिणीकाल के पंचमकाल में मलेच्छों के यहाँ कैसे जन्म ले सकते हैं?	128
919.	इन कुलकरों का और प्रजा का आहार किस प्रकार का होता है?	129
920.	इन कुलकरों का आहार क्यों होता है?	129

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
921.	वे कुलकर क्या समझाते हैं?	129
922.	कुलकरों के समय में क्या प्रवृत्ति होती है?	129
923.	इतना सबकुछ कथन करने का तात्पर्य क्या हुआ?	129
924.	तो फिर क्यों कहा जाता है कि सभी प्राणी मलेच्छाचरण से युक्त होते हैं?	129
925.	मलेच्छखंडों में कितने वर्ण होते हैं और क्यों तथा आर्यखंड में कितने?	129
926.	जैनों में कितने वर्ण पाये जाते हैं तथा कैसे?	130
927.	जैनों को शूद्र क्यों कहा?	130
928.	जैनों का अंर्तभाव चारों वर्णों में से किस वर्ण में होता है?	130
929.	क्या जैनधर्म हिन्दुधर्म की शाखा हैं?	130
930.	पर्यूषण पर्व कब से प्रारम्भ होते हैं?	130
931.	पर्यूषण पर्व कितनी बार मनाये जाते हैं तथा न मनायें तो क्या हानि है?	130
932.	पर्यूषण पर्व कितने दिन तक मनाये जाते हैं और कौन मनाते हैं?	130
933.	पर्यूषणपर्व इतनी जल्दी जल्दी क्यों मनाते हैं, इसके आगे पीछे क्यों नहीं?	131
934.	पर्यूषणपर्व भादों सुदी पंचमी से क्यों मनाये जाते हैं?	131
935.	यह समाधान ठीक नहीं है क्योंकि.....अतः निर्दोष समाधान करो?	131
936.	यदि मुसलमान, वेदान्ती, ब्राह्मणों.....नग्न दीक्षा क्यों नहीं दी जाती है?	131
937.	जिस प्रकार मुसलमानों ने, हिन्दुओं ने.....दोनों में क्या विशेषता रही?	132
938.	उपाध्याय परमेष्ठी को द्वादशांग का.....न संस्कार ही करने चाहिए?	132
939.	जब आर्यिका प्रतिमाधरिणी, अणुव्रती न.....भी नहीं है तो फिर कौन है?	132
940.	आर्यिका को उपचार से महाव्रती.....उपचार नाम व्यवहार का है?	133
941.	मुनियों के महाव्रत और आर्यिकाओं के महाव्रत में क्या अंतर है?	133
942.	यदि आर्यिकाओं के महाव्रत.....औदयिक भाव क्यों नहीं कहा?	133
943.	आर्यिका की 16 हाथ की साड़ी की अपेक्षा.....बड़ा क्यों न कहा जाये?	133
944.	जिस प्रकार तीर्थंकरों ने, गणधरों ने.....के लिये क्यों नहीं दिया?	134
945.	यदि ऐसा है तो महाव्रत की परिभाषा निम्न गाथा में इस प्रकार क्यों बताई?	134
946.	ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, त्यागी व्रती.....आती है और क्यों पाई जाती है?	134
947.	ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, त्यागीव्रती.....दोष के अधिकारी कौन हैं?	134
948.	ऐसा हम क्या करें कि.....मोक्षमार्ग न बिगड़े, निंदा न हो?	135
949.	जो पाप वर्धक हैं, दुर्ध्यान का.....हैं ऐसी कौनसी सामग्रियां हैं?	135
950.	आजकल कुछ मोक्षमार्गी.....कार्य क्यों करने लग जाते हैं?	135
951.	आजकल पतित व्यक्ति ही अधिक सम्मान पाते हैं ऐसा क्यों?	135
952.	ऐसा कथन क्यों किया?	135
953.	यदि संघस्थ सदस्यगण पद के विरुद्ध सामान मंगा लें तो गृहस्थ क्या करे?	136
954.	यदि पद और धर्म के विरुद्ध.....लगें तो गृहस्थ क्या करे?	136
955.	जब सातवीं प्रतिमा.....में क्यों बताई? क्या ये मैथुनकर्म.....सकते हैं?	136
956.	जब आगम में मुनियों के मैथुन.....महाव्रती माने तो क्या दोष है?	137
957.	चारित्र गुण का परिणाम होने से ध्यान को पारिणामिक भाव क्यों नहीं कहा?	137
958.	पाँचों इन्द्रियों और मन से धर्मध्यान हो सकता है क्या?	137
959.	यहाँ पर मोक्ष के और मोक्षमार्ग के साधन है ऐसा क्यों कहा?	137
960.	यहाँ पर मोक्ष का साधन और मोक्षमार्ग का साधन ऐसा भेद क्यों किया?	137

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
961.	यदि ऐसा है तो आ० श्री ने सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' ऐसा क्यों कहा?	137
962.	मोक्ष और मोक्ष का मार्ग क्या है?	138
963.	संसार और संसार का मार्ग क्या है?	138
964.	भावेंद्रिय और भावमन से धर्मध्यान होता है ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?	138
965.	द्रव्येंद्रिय और द्रव्यमन से धर्मध्यान होता है ऐसा स्वीकार करने में क्या दोष है?	138
966.	मूलगुण और प्रतिमाओं का पालन.....और नियम किसे कहते हैं?	138
967.	श्रावक श्राविकाओं के मूलगुण और .....आता है जो अयोग्य क्यों नहीं?	138
968.	यदि कोई प्रश्न करें कि श्रावक के.....शीघ्र छोड़ देंगे तो क्या दोष है?	139
969.	पद भ्रष्ट होना किसे कहते हैं?	139
970.	पद छोडने को भ्रष्टपना क्यों नहीं कहते हो?	139
971.	भ्रष्टता के कितने भेद हैं, नाम कौन कौन हैं, परिभाषा बताओ?	139
972.	योनिभूत बीज को वर्तमान नय.....क्या दोष है, क्या आपत्ति है?	139
973.	सूखे या हरे फलों में, बीजों में यदि.....मुनि पर्यंत खा सकते हैं?	140
974.	क्या सूखे या हरे साबुत फलों में जीवों.....के लिए कोई उदाहरण दो।	140
975.	वृक्ष से, बेल से फूल को अलग कर .....सचित्त मानने में क्या आपत्ति है?	140
976.	जब घर में, समाज में, देश में धर्मों में.....सामना करना पडता है?	140
977.	जिस प्रकार आजकल घरों में, स्कूलों.....हटा देने से क्या होगा?	140
978.	आजकल निरंकुश विद्यार्थिओं पर.....चाहिये, न्याय में पक्षपात क्यों?	141
979.	अराजकता में डूब जाने दो क्या आपत्ति है, पुलिस को अंकुश क्यों दिया?	141
980.	आजकल कवियों ने या.....या अप्रमाण? सम्यक् हैं या मिथ्या?	141
981.	पूजाओं में नकारात्मक पद्यों के.....तो क्या फल प्राप्त होगा?	141
982.	पूजा के पद्यों में और मंत्रों में क्या अंतर है?	142
983.	जिनेन्द्र की मूर्ति जड़ होने से मूर्ति.....पूजना मिथ्यात्व नहीं है क्या?	142
984.	जिनबिंब के चरणों में केशर, चन्दन चढ़ाने से प्रतिमा अपूज्य क्यों नहीं होगी?	142
985.	आप कहते हैं कि हम जैन वीतरागता.....आराधना उपासना क्यों करते हो?	143
986.	भावी नैगमनय किसे कहते हैं?	143
987.	भूत नैगमनय किसे कहते हैं?	143
988.	वर्तमान नैगमनय किसे कहते हैं?	143
989.	आप कहते हैं कि भगवान वीतरागी हैं.....नष्ट किया है तो वीतराग कैसे?	143
990.	अनंत गुणों में से मतिज्ञानादि पाँच भेद किस गुण के हैं?	143
991.	आजकल जिनवाणी और गुरुवाणी कहकर.....यह ठीक है या नहीं?	144
992.	आप हाथ की चक्की का आटा क्यों लेते हो, क्या लाभ है?	144
993.	समयानुसार आपको भी मशीन चक्की.....स्वीकार क्यों नहीं करते हो?	145
994.	समयानुसार प्रत्येक वस्तु का उपयोग करो अन्यथा मूर्खता मानी जायेगी?	146
995.	समय के अनुसार आप लाईट का.....यह तो अन्याय है ऐसा क्यों?	146
996.	भरतचक्रवर्ती ने व्रतीश्रावकों का यज्ञोपवीत संस्कार किया था क्या यह ठीक है?	146
997.	शास्त्रों में पढ़ा है कि राजा.....किया था सो यह गलत है या सही?	147
998.	भोगीगृहस्थ व्रतियों का और प्रतिष्ठाओं में.....कर सकता है क्या?	147
999.	पहले वस्त्रधारी भट्टारकजी प्रतिष्ठायें.....की भी प्रतिष्ठायें मान लो?	148
1000.	भट्टारक किसे कहते हैं?	148

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
1001.	नग्न दिगम्बर दीक्षा लेने के बाद.....यदि है तो अक्षम्य अपराध कैसे?	148
1002.	प्रतिमाओं में सूरिमंत्र आचार्य देते हैं और.....प्रतिमाओं को भी अपूज्य मानो?	148
1003.	आजकल गणिनी आर्यिका पद भी गृहस्थ देने लगे हैं तो सही है क्या?	149
1004.	आजकल गृहस्थों के द्वारा प्रदत्त.....आपको कैसे मालुम हुआ?	149
1005.	दान पूजा में आरम्भ परिग्रह होने से.....पूजा नहीं करनी चाहिये?	149
1006.	औदयिक आदि पाँच भावों में से दानपूजा कौन सा भाव है और क्या फल है?	149
1007.	क्षायोपशमिक भाव कितने प्रकार का है और क्या फल है?	150
1008.	चारित्रमोहोदय की अपेक्षा दानादि को औदयिकभाव मानने में क्या आपत्ति है?	150
1009.	एकत्ववितर्क शुक्लध्यान को .....अवीचार क्यों कहा?	150
1010.	पुद्गलद्रव्य को 5वें अ० कें 4थे सूत्र में.....रूपी क्यों कहा?	150
1011.	सयोगकेवली अयोगकेवली के उत्तम क्षमादि कितने धर्म होते हैं?	150
1012.	काल द्रव्य के बिना अलोकाकाश में परिणमन किस प्रकार से होता है?	151
1013.	अलोकाकाश में कालद्रव्य के बिना उत्पादव्यय कैसे हो सकता है?	151
1014.	सिद्धों में उत्पाद व्यय किस प्रकार से होता है?	151
1015.	सिद्धों में षड्गुण हानि वृद्धि किस प्रकार से होती है?	151
1016.	सिद्धों में क्षायिकदान लाभ आदि किस प्रकार से सिद्ध होते हैं?	151
1017.	यदि स्वभाव अपने पास ही है तो विकार किसके पास है?	151
1018.	दिव्यध्वनि सर्वथा निरक्षर है तो सयोग केवली के सत्यवचन और अनुभयवचन कैसे?	151
1019.	दिव्यध्वनि ही अनुभय वचन योग है तो सत्यवचन योग का कार्य क्या?	152
1020.	शूद्रों के करने योग्य कार्यों को करने से.....समस्त क्रियायें क्यों सिखाई?	152
1021.	क्या रात्रि में स्त्रियाँ गुरुओं के दर्शन के लिये पास में आ सकती हैं?	152
1022.	क्या रात्रि में पुरुषवर्ग आर्यिकाओं के क्षुल्लिकाओं के दर्शनकर सकते हैं?	152
1023.	आदिनाथ भगवान ने मारिचकुमार को.....महाव्रत महान होता है?	152
1024.	आजकल समाज को अपनी तरफ.....कराकर आहार ले लेना चाहिये?	153
1025.	परमाणु को एक ही अंशवाला माना जाये तो क्या आपत्ति है?	153
1026.	नाणोः 11 इस सूत्र के द्वारा.....विरुद्ध कथन है ऐसा क्यों न माना जाये?	153
1027.	प्रदेश किसे कहते हैं?	154
1028.	ये प्रदेश किन किन द्रव्यों में पाये जाते हैं और कितने कितने हैं?	154
1029.	ये प्रदेश मूर्तिक होते हैं या अमूर्तिक?	154
1030.	प्रदेशों के भी अंश विभाग या खंड खंड होते हैं क्या?	154
1031.	ये सभी प्रतिपक्ष सहित धर्म किन किन नयों के विषय हैं?	154
1032.	कार्य परमाणु और कारण परमाणु किसे कहते हैं?	154
1033.	कार्य स्कंध और कारण स्कंध किसे कहते हैं?	154
1034.	यह कार्य कारण भेद क्यों बताया?	154
1035.	जिस प्रकार अणु परमाणू के कार्य कारण.....भाव पाया जाता है क्या?	155
1036.	समय किसे कहते हैं?	155
1037.	इस काल द्रव्य के एक समय में भी क्या अलग अलग शक्त्यंश होते हैं?	155
1038.	पर्याय में भी पर्याय के भेद होते हैं क्या?	155
1039.	पानी छानना या न छानना किसे कहते हैं तथा छानकर क्यों पीना चाहिये?	155
1040.	पानी में जीव तो दिखते नहीं फिर क्यों छानना?	155

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
1041.	पानी जीव नहीं है किन्तु पानी में जीव हैं ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?	155
1042.	अनछना पानी पीने में क्या और कितना दोष है?	156
1043.	अनछनापानी पीने में इतना दोष है तो उबालकर पीने में दोष न लगेगा क्या?	156
1044.	अनछने पानी से तैयार किया गया भोजन कर सकते हैं क्या?	156
1045.	कंपनियों के द्वारा किये गये फिल्टर पानी को बिना छाने पी सकते हैं क्या?	156
1046.	नल की टोंटी में कपड़े की थैली.....ऐसा छाना तो क्या दोष है?	156
1047.	अनछने पानी को सीधा गीज़र, रौड आदि में गरम करने पर क्या दोष है?	156
1048.	पानी में और वनस्पति में जीव.....ऐसा स्वीकार करने में क्या दोष हैं?	157
1049.	देवी देवताओं का आदर सम्मान करना लोकव्यवहार है या धर्मव्यवहार?	157
1050.	अनायतन रूपी देवीदेवताओं का आदर करना मिथ्याचारित्र होने से क्यों करना?	157
1051.	मंदिरों में धरणेन्द्र पद्मावती, क्षेत्रपालादि.....व्यर्थ में समय क्यों बर्बाद करे?	157
1052.	अण्डा शाकाहार है या मांसाहार?	158
1053.	जिनेन्द्र भगवान की सकाम भक्ति करना चाहिए या निष्काम और क्यों?	158
1054.	लोक में सकाम भक्ति का अर्थ धनदौलत.....है जो युक्त है या अयुक्त?	158
1055.	संसार सुख की वाँछा को छोड़कर निष्काम भक्ति की जाये तो क्या दोष है?	158
1056.	वर्तमान में जो विद्यानुवाद है उसमें मारण.....करना, क्यों नमस्कार करना?	158
1057.	यदि ऐसा है तो सर्वज्ञ भगवान ने मिथ्या मंत्रों का उपदेश क्यों दिया?	159
1058.	द्वादशांग वाणी में जो विद्यानुवाद बताया है.....अप्रमाण होने से पूज्य क्यों?	159
1059.	जानते, समझते, समझाते हुए भी वासना साथ क्यों नहीं छोड़ पाती?	159
1060.	चौहदवें गुणस्थान का काल पाँच लघु.....प्रकृतियों का क्षय हो जाता है?	159
1061.	वास्तव में सम्यग्दर्शन अधिगमज ही होता है तब निसर्गज नाम क्यों दिया?	160
1062.	वैर एक तरफा होता है या.....कषाय का उदय ही है क्या?	160
1063.	नित्य देवदर्शन की यदि ऐसी.....निराकुलता का कारण कैसे कहा जाय?	160
1064.	घर से मन्दिर दूर है तब दर्शन करने नहीं जायें तो चल सकता है क्या?	160
1065.	आजकल वैज्ञानिक जीव के एक सेल–जिन.....या किसके अंतर्गत आयेगा?	161
1066.	यदि संमूर्च्छन जन्म है तो पूर्ण विकसित होने से क्या लब्ध्यपर्याप्तक है?	161
1067.	गायादि का दूध अन्तर्मुहूर्त.....यन्त्र से क्यों नहीं दिखायी देते?	161
1068.	अंतरायकर्म घातियाकर्म होने.....नामोल्लेख के अन्त में क्यों ग्रहण किया?	161
1069.	पूर्ण ज्ञानचेतना के स्वामी सिद्धप्रभु..... के स्वामी हो सकते हैं क्या?	162
1070.	स्मृति का मस्तिष्क में एक केन्द्र.....मतिज्ञान का भी नाश माना जायेगा?	162
1071.	निगोदिया जीव किस पुरुषार्थ से मनुष्य भव प्राप्त करता है?	162
1072.	उपसर्ग और परीषह में क्या अंतर है?	162
1073.	आजकल मानव दानपूजा, गुरुसेवा आदि करता हुआ भी दुःखी क्यों हैं?	163
1074.	मुँहपट्टी वालों से किसी ने पूंछा कि आप मुँहपट्टी क्यों बाँधते हो?	163
1075.	नाक मुँहादि से हवा के निकलने से मुँहपट्टी के कारण जीवरक्षा कैसे होगी?	163
1076.	यदि आप हिंसा से भयभीत हैं तो नाक.....भी जीव नहीं मरेगा ऐसा करो?	163
1077.	क्यों नहीं कर सकते हो जब आपने.....अपने जीवन की चिन्ता क्यों?	163
1078.	आप रक्षा की बातें करते हो और.....किया है तो प्रमाद क्यों नहीं छोडते हो?	163
1079.	मुँहपट्टी से जीवों की रक्षा नहीं होती तो क्या हेतु बनायें जो निर्दोष हो?	164
1080.	मुँहपट्टी के कारण संक्रामक रोग से कैसे बच सकते हैं?	164

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
1081.	मुँहपट्टी के धारण करने से अनुपसेव्य अभक्ष्य भक्षण से कैसे बच सकते हैं?	164
1082.	मुँहपट्टी के कारण अशुद्धि से कैसे बच सकते हैं और क्या फल प्राप्त होता है?	164
1083.	मुँहपट्टी के कारण अविनय से कैसे बच सकते हैं और क्या हानि हैं?	164
1084.	धनवान कहते हैं कि हमारे ऊपर भगवान.....नहीं है सो ठीक है क्या?	164
1085.	यदि ऊपर वाले की कृपा से परिग्रह प्राप्त हुआ है तो परिग्रह को पाप क्यों कहा?	165
1086.	यह धन दौलत, परिवार आदि सामग्री पुण्य से प्राप्त होती है या पाप से?	165
1087.	आज का मानव दूसरों को दुःखी देखकर प्रसन्न क्यों होता है?	165
1088.	आज का मानव दूसरों को सुखी देखकर दुःखी क्यों होता है?	165
1089.	आज का मानव अनाज्ञाकारी क्यों होता जा रहा है?	165
1090.	आजकल साधुओं में, आर्यिकाओं.....की भाषा का प्रवेश क्यों हुआ?	166
1091.	ऐसी भाषा के प्रयोग का क्या फल है?	166
1092.	जो साधु आर्यिका आदि पतन के मार्ग में नहीं जाना चाहते हैं वे क्या करें?	166
1093.	विषयसामग्री का आनंद पुण्योदय से प्राप्त होता है या पापोदय से, क्या फल है?	166
1094.	जिस प्रकार वैशेषिकों के यहाँ ग्रहीतग्राही.....सर्वज्ञ के लिये नहीं आता है?	166
1095.	जब सर्वज्ञकेवली ने समस्त द्रव्य.....तब ग्रहीतग्राही दोष क्यों न आयेगा?	167
1096.	जन्माभिषेक कौन किसका करता है और क्यों करता हैं?	167
1097.	इन्द्र इन्द्राणी देवगति में होते हैं.....अभिषेक कर सकते हैं या नहीं?	167
1098.	मूलोत्तरगुणों का पालन करने वाले.....स्थापना क्यों करते कराते हैं?	167
1099.	मूलगुणों का, अणुव्रतों का.....स्थितिकरण अंग की विराधना क्यों करते हैं?	168
1100.	यदि कोई त्यागी व्रती अपने.....तो क्या आपत्ति है, क्या दोष है?	168
1101.	भगवान की प्रतिमाओं का अभिषेक स्त्रियाँ कर सकती हैं या नहीं?	169
1102.	आपने श्राविकाओं को अभिषेक.....होने के कारण नहीं करना चाहिए?	169
1103.	प्रश्नकर्ता से ही प्रश्न है आपके कितनी स्त्रियाँ हैं एक या उसके समान अनेक?	169
1104.	स्त्री के समान रचना वाली सभी को स्त्री मान लो तो क्या दोष है?	169
1105.	प्रश्नकर्ता के समाधान पर ही किस प्रकार का समाधान होना चाहिए?	169
1106.	सन् 1989 के चातुर्मास बोम्बे सुखानन्द.....हाथ से गोचरी लेते हैं या नहीं?	169
1107.	यदि स्त्रियाँ अभिषेक नहीं करती हैं तो.....है ऐसा किन शास्त्रों में आया है?	170
1108.	तीर्थंकर बालक को काजल कौन लगाती हैं?	172
1109.	यह तो जन्माभिषेक है कदाचित् इंद्राणी.....नहीं फिर क्यों करना पड़े?	172
1110.	शांतिधाराजी में छिंधि² भिंधि² क्यों नहीं बोलना चाहिये?	172
1111.	शांतिधाराजी में छिंधि² भिंधि² का अर्थ क्या है?	172
1112.	शांतिधाराजी में शरीर के अंगों का छेदन.....करने में क्या दोष है?	172
1113.	शांतिधाराजी में छिंधि² भिंधि² इन.....हो या किसी और जीवों की?	172
1114.	शांतिधाराजी में षट्काय के जीव.....हिंसार्थक हो गया है?	173
1115.	मनुष्य तिर्यंचों के और छिंधि² भिंधि².....हिंसार्थक अर्थ कैसे लिया?	173
1116.	यदि ऐसा है तो बीच के भयं और मारीं पद का अर्थ क्यों छोड़ दिया?	173
1117.	हे भगवन! आपकी शांतिधारा करने.....स्वीकार करने में क्या दोष है?	173
1118.	मुनियों के आहार करते समय क्या.....के अनुसार ही अभिषेकपूजा करो?	173
1119.	यदि छिंधि² भिंधि² ये अशुभवचन हैं.....उपाय ऐसा पाठ भी क्यों बोलना पड़े?	173
1120.	पूजा के 8 मंत्रों में भी विनाशनाय.....उच्चारण मत करो, पूजा मत करो?	173

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
1121.	यदि आप मंत्रों को बदल.....हन् धातु का अर्थ हिंसार्थक ही माना है?	173
1122.	यदि केवल शब्दों के उच्चारण से पाप.....का नाम लेने से मुँह भर जायें?	174
1123.	तो फिर केवल छिंधि² भिंधि² के उच्चारण से पाप कैसे लगेगा?	174
1124.	अपने अनादिकालीन विकारों को क्षय.....कर्म का आश्रव बंध होगा?	174
1125.	वो भी केवल शब्दों में अंतर हो सकता है भाव तो यही रहेगा?	174
1126.	शास्त्रों में जहाँ कहीं भी हिंसार्थक.....समान आप निकाल दो डर क्यों?	174
1127.	जिस श्राविका ने अखंड ब्रह्मचर्य.....पतिव्रत में दोष क्यों नहीं आयेगा?	174
1128.	जीवादि तत्त्वों को समझने के लिये कोई उदाहरण बताओ?	175
1129.	वेश्या, वकील और वैभव क्या ये कभी किसी एक के हुए हैं या पास में रहे हैं?	175
1130.	यदि ऐसा है तो नोटों को जिनमंदिर में दान नहीं देवे तो क्या देवें?	175
1131.	स्वसापेक्ष या परनिरपेक्ष किसे कहते हैं?	175
1132.	परसापेक्ष या स्वनिरपेक्ष किसे कहते हैं?	175
1133.	मंत्र का जाप करते समय या पूजा करते.....तो स्वाहा क्यों बोलना पड़े?	176
1134.	भगवान आदिनाथजी के समवशरण.....था सो यह अन्तर क्यों हुआ?	176
1135.	कर्मक्षपण विधि किसे कहते हैं?	176
1136.	दानपूजा, वास्तुज्ञान, मन्त्रतन्त्र, औषधि आदि सुख दुःख के सम्पादक हैं क्या?	176
1137.	यदि ऐसा है तो सुख दुःख के.....कर दी जाये तो क्या हानि है?	176
1138.	इस विषय को स्पष्ट करने के लिये कोई उदाहरण देकर समझाओ?	177
1139.	अयोध्या नाम की राजधानी के.....कारण अपना पाप ही है दूसरा नहीं?	177
1140.	सुख दुःख रूप में पुण्य पाप स्वयं परिणमन करते हैं या कोई दूसरा?	177
1141.	क्या पुण्य पाप स्वयं सुख दुःख रूप हैं या कोई अन्य दूसरा?	177
1142.	पाँचों भावों में से सुख दुःख कौन सा भाव है कौन कब तक रहने वाला है?	177
1143.	क्या साता, असाता कर्मोदय से सुख.....भी सुखी दुःखी होना चाहिये था?	177
1144.	एक ही जिनबिंब में नवदेवता कैसे?	178
1145.	एक ही जिनबिंब में नवदेवताओं के माध्यम से किस फल की प्राप्ति होती है?	178
1146.	पूजा किसे कहते हैं?	178
1147.	पाठ किसे कहते हैं?	178
1148.	पाठ स्वाध्याय के किन भेदों में अंतर्भाव को प्राप्त होता है, कैसे?	178
1149.	दान किसे कहते हैं?	178
1150.	क्या यश और गुणकीर्तन के भावों से दान दिया जाता है?	178
1151.	जैसे आजकल अनेक साधुगण कहने.....गुण हो या दोष वह जाने?	179
1152.	आजकल कोई कोई ऐसा भी कहने लगे.....जरूरत सो ठीक है क्या?	179
1153.	प्रारंभ में गलती होने पर भी सही मार्गदर्शन नहीं दिया तो क्या हानि है?	179
1154.	दैनिक कर्तव्यों के स्थान में चंदोवा क्यों लगाना?	179
1155.	चंदोवा किन किन स्थानों में होना चाहिये?	179
1156.	पहले कच्चे, मिट्टी, घास के मकान होते.....होने से क्या जरूरत है?	179
1157.	चंदोवा बाँधने से अहिंसा धर्म का पालन कैसे हो सकता है?	180
1158.	चंदोवा बाँधने से जीव रक्षा कैसे और स्वास्थ्य अच्छा कैसे रह सकता हैं?	180
1159.	चंदोवा बाँधने से माँसादि, मलमूत्र के भक्षण से कैसे बच सकते है?	180
1160.	भोजनशाला में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?	180

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
1161.	भोजन तैयार करते समय बर्तन ढक्कन सहित हो, ढके हो ऐसा क्यों कहा?	180
1162.	भोजन करने कराने के स्थान में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?	181
1163.	पनघट में, घिनोची में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?	181
1164.	शयनागार में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?	181
1165.	उठने बैठने के स्थान में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?	181
1166.	देव शास्त्र गुरु के स्थान में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?	181
1167.	पूजापाठ के स्थान में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?	181
1168.	स्वाध्याय के स्थान में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?	182
1169.	ध्यान जप करने के स्थान में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?	182
1170.	जब जंगलों में ध्यान जप करते.....सिद्धि कैसे होती थी?	182
1171.	ध्यान जप आदि के समय में उपसर्ग परीषह.....चंदोवा क्यों लगाना पड़े?	182
1172.	चंदोवा या चांदनी बांधने के संबंध में आगम प्रमाण है क्या?	182
1173.	वास्तु और वास्तुशास्त्र किसे कहते हैं?	183
1174.	यंत्र, मंत्र, तंत्र किसे कहते हैं?	183
1175.	यदि णमोकार मंत्र में अग्नि को.....युग में इसका रिसर्च क्यों न कर लें?	183
1176.	णमोकारमंत्र में पहले शक्ति थी पर अब नहीं रही ऐसा मानने में क्या दोष है?	183
1177.	पूर्व के ऋषिमुनियों में विचारने, बोलने की शक्ति थी वह आज क्यों नहीं रही?	183
1178.	वर्तमान के मनुष्यों में बोलने की शक्ति.....कर लेने में क्या आपत्ति है?	184
1179.	क्या विज्ञान में इतनी शक्ति है की वह द्रव्य को ऊर्जा में बदल सकता है?	184
1180.	औषधि किसे कहते हैं किस प्रकार की होनी चाहिये और किससे निर्मित हो?	184
1181.	जब पुण्य पाप कर्म का तीव्रोदय है तो.....दूर हो जाती है ऐसा क्यों?	184
1182.	किस किस गुणस्थान तक कौन–कौन सी मार्गणायें पाई जाती हैं?	184
1183.	ईंधन सड़ा, घुना, गीला, सूखा.....उपयोग में ला सकते हैं या नहीं?	185
1184.	यदि ऐसा है तो तीर्थंकरों के शरीर.....दोष यहाँ क्यों नहीं आता है?	185
1185.	दान देने वाले को क्या कहते हैं और वह कैसा होना चाहिये?	185
1186.	शूद्रों को आहारदान देने वाला.....भोजनपान करने का त्याग कराते हैं?	185
1187.	तो क्या चारों वर्णों वाले अजैनों के द्वारा आहार मुनिजन ले सकते हैं?	185
1188.	तो ऐसा क्यों कहा कि दिगम्बर जैन साधु चारों वर्णों से आहार लेते हैं?	186
1189.	यदि हर किसी जाति के व्यक्ति को.....आहार ले सकते हैं क्या?	186
1190.	इन तीनों दोषों से युक्त दाता की शुद्धि कब होती है?	186
1191.	पहले प्रजाजन मोटा खाते थे, मोटा पहनते.....कर पाये ऐसा है क्या?	186
1192.	प्रातिहार्य किसे कहते हैं? कितने होते हैं और नाम कौन कौन हैं?	187
1193.	आजकल त्यागी व्रती, महाव्रती.....ग्रहण करते हैं या कर लेते हैं?	187
1194.	नौकर किसे कहते हैं, नौकरी कौन कब करता है और क्या हानि है?	188
1195.	मालिक किसे कहते हैं?	188
1196.	आजकल इस प्रकार न नौकर रहे न मालिक तो क्या किया जाये?	188
1197.	उन दोनों को परस्पर में किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये?	188
1198.	यदि मालिक नौकर को जूतियों जैसा समझे तो क्या हानि है?	188
1199.	लेश्या और गुणस्थान में क्या अंतर.....और स्वामी कौन किसके हैं?	188
1200.	आजकल बहु बेटियों पर पुरुषवर्ग आक्रमण क्यों करते हैं?	189

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
1201.	पुरुषवर्ग ही बलात्कार.....आक्रमण करती हैं जो आपने कहा है?	189
1202.	समुत्पत्ति कषाय किसे कहते हैं?	189
1203.	क्या जीव और अजीव आदि पदार्थ आश्रवबंध के साक्षात् कारण हैं?	189
1204.	कामबाण मारना स्त्रियाँ प्रारंभ करती हैं यह आपने कैसे कहा?	189
1205.	आजकल बिल्कुल छोटी[2].....अंगों का प्रदर्शन कर मोहित कर सकती हैं?	189
1206.	रत्नत्रय मोक्षमार्ग है अतः मोक्ष प्राप्त.....क्या रत्नत्रय छूट जाता है?	190
1207.	मंदिर गृहस्थों के लिए होते हैं तो संघों में जिनमूर्ति रखने की क्या जरूरत है?	190
1208.	साधुसंघ सहित चैत्यालय यह.....कहा है अतः प्रमाणता कैसे?	191
1209.	साधुसंघ सहित चैत्यालय ऐसा.....कहा फिर प्रमाणपना कैसे?	191
1210.	आजकल संघस्थ चैत्यालय वाहनों पर.....सो क्या यह दोष नहीं है?	191
1211.	हम लोग एक ही मूर्ति को रथ आदि में.....लेकर गमन क्यों करते हो?	192
1212.	जब मुनिजन जंगलों में रहते थे तो वे जिनमूर्ति के बिना कृतिकर्म कैसे करते थे?	192
1213.	आचार्य स्वयं भगवान स्वरूप हैं तो उन्हें मूर्ति की क्या जरूरत है?	192
1214.	द्रव्य और भावपूजा करने का अधिकारी कौन है?	192
1215.	द्रव्यपूजा गृहस्थों के होती है, मुनियों के नहीं फिर यह कथन क्यों किया?	193
1216.	सो कैसे, मुनिजन आरम्भ.....कहाँ से लायेंगे और कैसे चढ़ायेंगे?	194
1217.	तो क्या सभी आचार्यभगवन ये कार्य.....के त्यागी महाव्रती हैं?	194
1218.	सौ कैसे ठीक है?	194
1219.	जब घरों में स्वर्गस्थ परिवार वालों.....फोटु आदि क्यों रख सकते हैं?	196
1220.	दिगम्बराचार्य, उपाध्याय, साधु.....क्या, यदि हाँ तो क्या गुणदोष है?	196
1221.	किसी श्रावक ने ब्र० भाग्याबहिन से पूंछा कि आपके पास इतने बर्तनादि क्यों?	197
1222.	तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले गृहस्थावस्था में दानपूजादि करते हैं या नहीं?	197
1223.	तीर्थंकर कुमार गृहस्थावस्था में आहारादि किसके हाथ का ग्रहण करते हैं?	197
1224.	जब इन्द्रइन्द्राणी आदि अनछने.....है, इन्द्रादि को दोष नहीं तो हमें क्यों?	198
1225.	किन्हीं ग्रथंकारों ने केवलज्ञान को.....कहा है सो इसमें क्या अपेक्षा है?	198
1226.	जब मोहनीयकर्म के क्षय से.....ऐसा कहना चाहिये फिर क्यों नहीं कहा?	198
1227.	वस्त्रधारी त्यागीव्रती गृहस्थ क्या केशलोंच कर सकते हैं?	198
1228.	पतिपत्नी दोनों सर्विस करते हैं तो क्या आपत्ति है, क्या हानि है?	198
1229.	रजोवीर्य का जीवन में क्या असर पडता है?	199
1230.	मनुष्यों की उत्पत्ति बंदर से हुई है क्या?	199
1231.	भोजनपान का जीवन में क्या असर होता है?	199
1232.	संगति का जीवन में क्या असर होता है?	199
1233.	विज्ञान और वैज्ञानिक किसे कहते हैं?	200
1234.	आयु कर्म के बंधक काल को क्या कहते हैं और कितने प्राप्त होते हैं?	200
1235.	असंक्षेपाद्धा काल और भुज्यमान तथा बध्यमान आयु किसे कहते हैं?	200
1236.	महामुनि संज्ञा तो 12वें गुणस्थान.....केवलियों को महामुनि क्यों कहा?	201
1237.	जब आश्रव और बंध तत्त्व में.....पदार्थ में क्या अंतर है स्पष्ट करो?	201
1238.	क्या जैन धर्मावलंबी भी पितर पिंडदान.....लोकाचार मानकर कर सकते हैं?	201
1239.	सामान्य केवलियों के 4 मूलगुण.....मूलगुण होते हैं थोड़ा स्पष्ट करो?	201
1240.	असत्यवचन और उभयवचन.....क्षपकश्रेणी का है और ध्यानावस्था है?	202

प्र.नं.	प्रश्न	पृ० नं०
1241.	जिनवाणी को माँ कहकर.....आजीविका चलाने के अन्य साधन नहीं है?	202
1242.	क्या क्षपकश्रेणी वाला भी मिथ्यात्व.....श्रेणी में क्या अंतर है?	202
1243.	प्रमत्तमुनि को आपने श्रावक की श्रेणी में लिखा है सो कैसे?	202
1244.	गर्भज संमूर्च्छन तिर्यंच और गर्भज.....नहीं आया अतः समझायें?	202
1245.	सयोगकेवली को भी वचनगुप्ति.....मनोगुप्ति की प्राप्ति क्यों नहीं हुई?	203
1246.	छट्ठे प्रमत्तसंयत मुनि अवस्था.....वैसे कार्य रूप में कैसे होगा?	203
1247.	अनंगक्रीड़ा अतिचार व्रत प्रतिमाधारी और महाव्रती को कैसे लगता है?	203
1248.	क्या आर्यखंड की द्रव्य वेद.....भी चरम शरीरीपना प्राप्त होता है?	203
1249.	आर्यिकाओं को आपने 28 मूलगुण.....ये तीन कम होने से 28 कैसे हुए?	204
1250.	बिना गणधर के तीर्थंकरों का उपदेश होता है क्या?	204
1251.	आदिनाथ का मुनि अवस्था में प्रथम आहार कब हुआ?	204
1252.	जीवादि द्रव्य 6 हैं या 7 हैं?	204
1253.	आजकल बेकारी क्यों फैल रही है?	204
1254.	पाठशालाओं में अर्थशास्त्र पढ़ाया जा रहा है फिर बेकारी क्यों?	204
1255.	गतिबंध और आयुबंध में क्या अंतर है? चार्ट	205
	उपसंहार	206
	प्रशस्ति	206

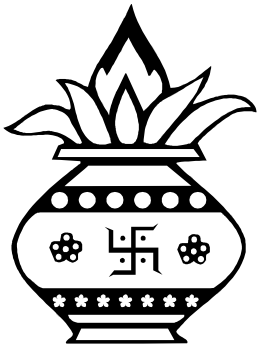

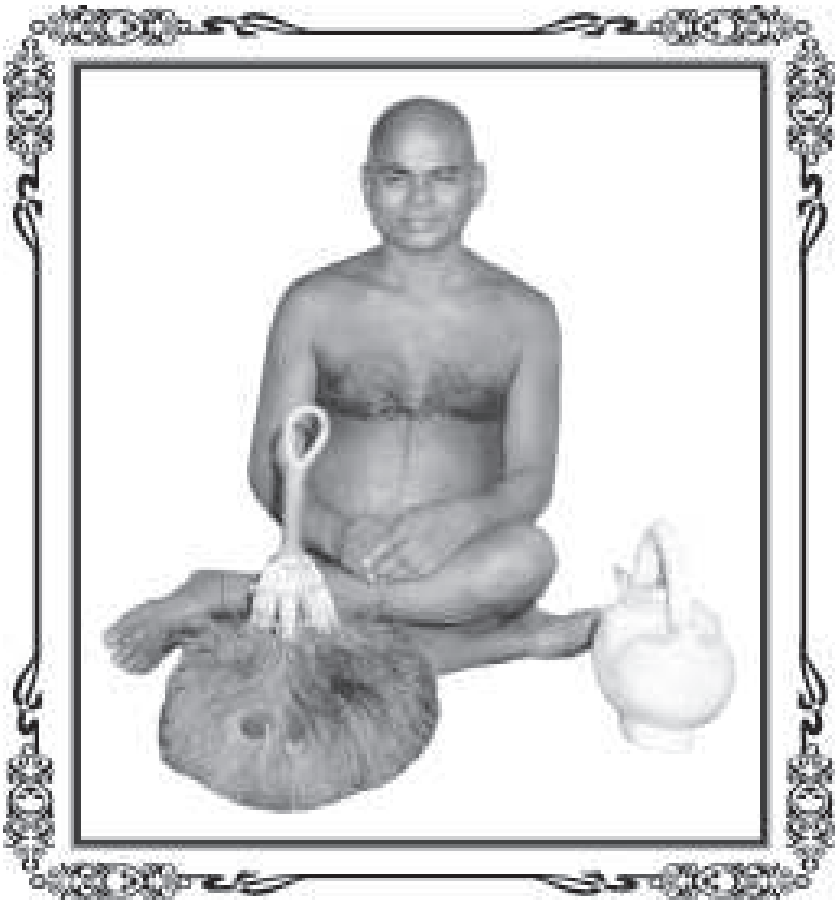

मंगलाचरण

शान्ति विमल गुरु पार्श्व को, मन मन्दिर में धार, आदि कीर्ति गुरुराज को प्रणमूं बारम्बार।
रत्नत्रय धारे बिना, जैनधर्म नहि होय, जैनधर्म धारे बिना, साध्य मिले न कोय।।
चतुस्संघ को देखकर, मन में हर्ष न होय, ऐसे दुर्जन को प्रभु, धर्म कहाँ से होय।
तीर्थकरों को नमन कर, मन में बहु हर्षाय, जिनवाणी मन में धरूँ अष्ट कर्म नश जाय।।

अर्थ– धर्माचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज (दक्षिण), धर्माचार्य श्री आदिसागरजी महाराज अंकलीकर, धर्माचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज, धर्माचार्य श्री विमलसागर जी महाराज (कोसमा वाले) तथा धर्माचार्य शिक्षाचार्य सिद्धांताचार्य न्यायाचार्य दीक्षाचार्य समाधिसम्राट श्री प० पू० पार्श्वसागर जी महाराज (कोटला, फिरोजाबाद वाले) और भी निर्दोषाचरण पालने वाले ऐसे समस्त दिगम्बर निर्ग्रंथ महाव्रती धर्मगुरुओं को मनमंदिर में धारणकर मन वचन और काय की शुद्धिपूर्वक मैं आ० वासुपूज्यसागर नमस्कार करता हूँ।

अर्थ– सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धारण किये बिना जैन धर्म प्रारम्भ नहीं होता और जैनधर्म के बिना साध्य स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

अर्थ– मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका या ऋषि मुनि यति और अनगार या दर्शनाराधना, ज्ञानाराधना चारित्राराधना और तपाराधना इन चतुर्विध मुनिसंघ को देखकर के मन में आनंदित नहीं होता है, आमोद प्रमोद उत्पन्न नहीं होता है तो हे प्रभु! इन शरीरधारी दुर्जनों को, पापी जीवों को रत्नत्रय धर्म की प्राप्ति और धर्म से परिणति कैसे हो सकती है?

अर्थ– मन में अत्यधिक हर्षित होकर समस्त त्रिकाली त्रिलोकी तीर्थंकरों को नमस्कार करता हूँ। अनादि और सादि कालीन समस्त विकारी भावकर्मों को, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों को, शरीरादि नोकर्मों को क्षय करने के लिए तथा शुद्धात्मा की प्राप्ति के लिए जिनवाणी को मन में धारण करता हूँ।

प्र.1– सर्व प्रथम गुरु को, रत्नत्रय धर्म को, तीर्थंकरों को फिर जिनवाणी को ऐसा अक्रम से नमस्कार क्यों किया?

उत्तर–सर्वप्रथम साक्षात् गुरु का उपकार प्राप्त किया है। गुरु के बिना रत्नत्रय रूपी धर्म की, रत्नत्रय के बिना तीर्थंकर पद की, तीर्थंकर पद के बिना मोक्षमार्ग दर्शक वाणी की प्राप्ति नहीं होती है अथवा गुरु के द्वारा रत्नत्रय की प्राप्ति, रत्नत्रय के द्वारा तीर्थंकर पद की प्राप्ति और तीर्थंकरों के मुख से मोक्षमार्ग दर्शक वाणी की प्राप्ति होती है अतः अन्त में जिनवाणी को नमस्कार किया है क्योंकि मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् कारण परमयथाख्यातचारित्र इसका कारण केवलज्ञान और इसका कारण भाव श्रुतज्ञान है तथा कारण का कारण जिनवाणी है। इसलिए पश्चादानुपूर्वी क्रम से नमस्कार किया है।

प्र.2– कथन, चिन्तन, मनन, प्रवचन कितने प्रकार से किया जाता है?

उत्तर–कथन आदि तीन प्रकार से किया जाता है–पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी, यत्रतत्रानुपूर्वी।

प्र.3– पूर्वानुपूर्वी किसे कहते हैं?

उत्तर–आदि से अन्त तक कथन आदि करना जैसे आदिनाथ से महावीर तक का कथन करना।

प्र.4– पश्चादानुपूर्वी किसे कहते हैं?

उत्तर–अन्त से आदि तक कथनादि करना जैसे महावीर से आदिनाथ तक।

प्र.5– यत्रतत्रानुपूर्वी किसे कहते हैं?

उत्तर–जहाँ कहीं से भी कथनादि प्रारम्भ करना जैसे चन्द्रप्रभु से, शान्तिनाथ से कथनादि प्रारम्भ करना।

प्र.6– मंगल किसे कहते हैं?

उत्तर–जो पापों को गलाये, पुण्य को लाये, आत्मा को पवित्र बनाये, नवीन पाप से बचाये उसे मंगल कहते हैं।

प्र.7–8–मंगलाचरण क्यों किया जाता है? किसे कहते हैं?

उत्तर–पाप की हानि के लिए, पुण्य की वृद्धि के लिए मंगलाचरण किया जाता है अथवा पूज्य आराध्यों के प्रति दृढ़ विश्वास हैं, पूज्य आराध्य की आज्ञा पालन करने के लिए, सातिशय पुण्य की प्राप्ति के लिए और की हुई प्रतिज्ञा का अन्त

तक निर्वाह हो इसलिए मंगलाचरण किया जाता है।[7] अपने जिन आचार विचारों के द्वारा स्वाधीन सुख की प्राप्ति हो अथवा संसार बंधन से छुटकारा प्राप्त हो अथवा तद्रूप मन वचन काय की क्रिया को या तन्मयरूप प्रवृत्ति को मंगलाचरण कहते हैं।[8]

प्र.9– जिनेन्द्र किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन्होंने विषय कषाय रूप समस्त द्रव्य और भाव पाप कर्मों को जीत लिया है उन्हें जिनेन्द्र कहते हैं अथवा जिन–अव्रती और अणुव्रती। जिनवर–महाव्रती। इन्द्र–स्वामी जिनवरेन्द्र या जिनेन्द्र अथवा अव्रती, अणुव्रती और महाव्रतियों के मन को जीतने वालों को जिनेन्द्र कहते हैं।

प्र.10–जिनेन्द्र का उपदेश किस प्रकार का होता है?

उत्तर–जिनेन्द्र का उपदेश मोक्ष प्राप्ति के लिए, संसार बन्धन से छूटने के लिए, स्वाधीनता पाने के लिए होता है।

प्र.11–जिनेन्द्रोपदेश किन जीवों के लिए होता है?

उत्तर–जिनेन्द्र का उपदेश भव्य जीवों के लिए होता है। वे भव्यजीव भी निकट भव्य हों, दूरानुदूर भव्य न हों, चेतनरूप में हो, चित्ररूप में नहीं क्योंकि चित्रों में चेतनात्मक गुण नहीं पाया जाता है।

प्र.12–जिनेन्द्रोपदेश कैसा होता है?

उत्तर–जिनेन्द्र का उपदेश अनंत धर्मात्मक वस्तुओं का परस्पर में नयसापेक्ष स्याद्वाद रूप में होता है।

प्र.13–जिनेन्द्रोपदेश किसरूप में नहीं होता है?

उत्तर–जिनेन्द्र का उपदेश सर्वथा प्रमाण नय निक्षेप के बिना निरपेक्षधर्म सहित नहीं होता है।

प्र.14–जीवों में भी सैनी जीवों के लिए होता है या असैनी जीवों के लिए?

उत्तर–सैनी जीवों के लिए होता है, असैनी जीवों के लिए नहीं क्योंकि असैनी जीवों के पास सुनने समझने के लिए ज्ञान नहीं है, मन नहीं हैं। अतः असैनी पंचेन्द्रिय तक के जीवों के लिए उपदेश नहीं होता है।

प्र.15–सैनीपंचेन्द्रिय जीवों में भी पर्याप्तकों के लिए होता है या अपर्याप्तकों के लिए?

उत्तर–पर्याप्तक सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के लिए होता है न कि सैनी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकों के लिए क्योंकि अपर्याप्तक जीवों के पास त्रियोगों की असमर्थता होने के कारण उपदेश के लिए अयोग्य हैं।

प्र.16–पर्याप्ति किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–पर्याप्त नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को पर्याप्ति नामकर्म कहते हैं अथवा आहारादि वर्गणाओं को ग्रहणकर खल और रस रूप में परिणमन कराने की शक्ति की प्राप्ति को पर्याप्ति कहते हैं। 6 भेद हैं। नामः–आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वांसोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मनः पर्याप्ति।

प्र.17–आहार पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर–जन्म लेकर आहार वर्गणाओं को ग्रहण कर खल और रस रूप में परिणमन कराने की शक्ति की पूर्णता को आहार पर्याप्ति कहते हैं।

प्र.18–खल किसे कहते हैं?

उत्तर–शरीर के अंदर रहनेवाली स्थिर हड्डी मांसादि धातुओं को खल भाग कहते हैं।

प्र.19–रस किसे कहते हैं?

उत्तर–शरीर के अंदर रहनेवाली अस्थिर या संचरण करने वाली रक्तादि धातुओं को रस कहते हैं।

प्र.20–शरीर पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर–जन्म लेकर आहार वर्गणाओं को ग्रहण कर औदारिक आदि शरीर के खल और रस रूप में परिणमन कराने की शक्ति की पूर्णता को शरीर पर्याप्ति कहते हैं।

प्र.21–देव नारकियों के शरीर में तथा एकेन्द्रियों के शरीर में धातु उपधातुयें नहीं पाईं जातीं हैं फिर वहाँ पर खल और रस भाग कैसे बन सकते हैं?

उत्तर–नहीं, इनके भी शरीर में धातु और उपधातुओं के बिना शरीर के कठोर अवयव और द्रव अवयव पाये जाते हैं केवल मल धातुयें उपधातुयें ही खल और रस रूप में परिणमन करें ऐसा कोई नियम नहीं हैं किंतु इनके बिना भी शरीर के अवयव स्थिर और अस्थिर रहते हैं जो उपरोक्त शरीर उदाहरण हैं।

प्र.22–इंद्रिय पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर–उन्हीं नोकर्म वर्गणाओं के स्कंध में से कुछ वर्गणायें द्रव्येन्द्रिय के आकार रूप में परिणमन करने की शक्ति की पूर्णता की प्राप्ति को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं।

प्र.23–श्वांसोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर–ग्रहण की हुई उन्हीं आहार वर्गणाओं में से कुछ स्कंधों को श्वांसोच्छ्वास रूप परिणमन कराने की शक्ति की पूर्णता को श्वांसोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

प्र.24–भाषा पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर–जन्म लेने के बाद ग्रहण की हुई भाषा वर्गणाओं को अनेक प्रकार के वचन रूप से परिणमन कराने की शक्ति की पूर्णता को भाषा पर्याप्ति कहते हैं।

प्र.25–मनः पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर–जन्म लेने के बाद ग्रहण की हुई मनोवर्गणा को द्रव्य मन के आकार रूप से परिणमन कराने की शक्ति की पूर्णता को मनः पर्याप्ति कहते हैं।

प्र.26–निवृत्ति अपर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर–पर्याप्त नाम कर्म के उदय से आहारादि वर्गणाओं को ग्रहण कर आहारादि पर्याप्तियां अभी पूर्ण नहीं हुईं हैं किंतु अंतर्मुहूर्त में रचना पूर्ण होने वाली है उसे निवृत्ति अपर्याप्त कहते हैं।

प्र.27–अपर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर–अपर्याप्त नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को अपर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं अथवा जन्म लेकर भी आहारादि वर्गणाओं को ग्रहण कर खल और रस भाग रूप से परिणमन कराने के पहले ही मरण कर जाने को अपर्याप्ति नामकर्म कहते हैं।

प्र.28–पर्याप्तक जीवों में भी भव्य जीवों के लिए होता है या अभव्य जीवों के लिए?

उत्तर–भव्य जीवों के लिए होता है अभव्य जीवों के लिए नहीं क्योंकि अभव्य जीव सुनने समझने और आचरण में लाने के योग्य होने पर भी तद्रूप परिणमन करने के लिए अयोग्य हैं अतः अभव्य जीवों के लिए धर्मोपदेश नहीं होता है क्योंकि ऊसर भूमि में वर्षा से क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है।

प्र.29–भव्य जीव किसे कहते हैं?

उत्तर–जो रत्नत्रय स्वरूप मोक्षपर्याय को भविष्य में उत्पन्न कर लेगा उसे भव्य जीव कहते हैं।

प्र.30–भव्य जीवों के कितने भेद हैं?

उत्तर–भव्य जीवों के तीन भेद हैं।

प्र.31–भव्य जीवों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–भव्य जीवों के नाम–निकट भव्य (आसन्नभव्य), दूरभव्य, दूरानुदूरभव्य।

प्र.32–आसन्नभव्य (निकटभव्य) जीव किसे कहते हैं?

उत्तर–जो उसी भव से या संख्यात भव धारण कर मोक्ष प्राप्त कर लेगा उसे आसन्नभव्य (निकटभव्य) कहते हैं।

प्र.33–दूरभव्य जीव किसे कहते हैं?

उत्तर–जो असंख्यात भव धारण करके पुरुषार्थ कर मोक्ष पर्याय से परिणत होगा, उसे दूरभव्य कहते हैं।

प्र.34–दूरानुदूर भव्य जीव किसे कहते हैं?

उत्तर–जो अनन्तानंत भव धारण करके भी, परिश्रम कर साधूपद धारण करके भी, घोर तप करता हुआ भी, योग्यता होने पर भी मोक्ष पर्याय से परिणत नहीं होगा, मोक्ष नहीं पायेगा उसे दूरानुदूर भव्य कहते हैं।

प्र.35–यदि ऐसा है तो उसे अभव्य जीव कहना चाहिए?

उत्तर–नहीं, इस दूरानुदूर भव्य जीव में मोक्ष प्राप्ति की योग्यता होने पर भी रत्नत्रय रूपी कार्य को उत्पन्न नहीं करेगा क्योंकि साक्षात् जिनेन्द्र का पादमूल प्राप्त नहीं होगा तथा तदनुकूल परिणाम भी उत्पन्न नहीं होगा। अतः इसमें शक्ति को व्यक्त करने की योग्यता का सद्भाव है और अभव्य में अभाव है इस कारण दूरानुदूर भव्य जीव में मोक्ष पर्याय प्राप्त करने की शक्ति का सद्भाव होने से अभव्य नहीं कहा।

प्र.36–अभव्य जीव किसे कहते हैं?

उत्तर–जो कभी भी मोक्षपर्याय को उत्पन्न नहीं करेगा, परिणत नहीं होगा उसे अभव्य जीव कहते हैं।

प्र.37–अभव्यजीवों में मोक्षपर्याय की शक्ति नहीं है तो अनन्त गुणधर्म वाला क्यों कहा?

उत्तर –शक्ति की अपेक्षा भव्य अभव्य भेद नहीं है किन्तु शक्ति की व्यक्ति और अव्यक्ति की अपेक्षा भेद हैं। अतः अभव्य जीव में शक्ति के मौजूद होने पर भी वह उत्पन्न नहीं करेगा। यदि अभव्य जीव में शक्ति का अस्तित्त्व न माना जाय तो जो तत्त्व को, वस्तु को, जीव को अनन्त शक्तिवाला कहा है वह अव्याप्ति दोष से युक्त हो जाता है अथवा सर्वघाती प्रकृतियों का अस्तित्त्व बन नहीं सकता क्योंकि घातने योग्य वस्तु न होने से घातक किसे घातेगा? इसलिए शक्ति की अव्यक्ति की अपेक्षा अभव्य कहा है।

प्र.38–यदि शक्ति मौजूद है तो नियम से व्यक्त होना ही चाहिए?

उत्तर–नहीं, सर्वथा ऐसा नियम नहीं है कि जो शक्ति है वह व्यक्त होना ही चाहिए जैसे क्वांरी कन्या ने ब्रह्मचर्य नियम ले लिया है तो सन्तानोत्पत्ति की शक्ति होने पर भी सन्तान नहीं हो सकती है क्योंकि पुरुष सम्पर्क का त्याग कर दिया है अतः शक्ति के रहने पर भी अंतरंग और बहिरंग साधनों के मिलने पर ही व्यक्त होगी और न मिलने पर अव्यक्त रहेगी।

प्र.39–अभव्य जीव के शक्ति ही न मानी जाय तो क्या दोष है?

उत्तर–जो तत्त्व, द्रव्य, पदार्थ, अस्तिकायों को अनन्त शक्ति गुणधर्म वाला कहा है वह बन नहीं सकता अथवा अव्याप्ति दोष से युक्त हो जाता है अथवा स्वभाव के बिना स्वभाववान कैसा?

प्र.40–भव्यादि जीवों को समझने के लिए उदाहरण क्या है?

उत्तर–सधवा स्त्रियों में या कनकपाषाण में सन्तानोत्पत्ति और स्वर्ण की योग्यता होने से योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के मिलने पर सन्तान की और स्वर्ण की प्राप्ति होती है। इसी तरह आसन्न भव्य जीव और दूर भव्यजीव द्रव्यादि की यथायोग्य सम्प्राप्ति होने पर मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है।

प्र.41–दूरानुदूर भव्य जीव के लिए क्या उदाहरण है?

उत्तर–ब्रह्मचर्यव्रत युक्त क्वांरी कन्या या शीलव्रत युक्त सधवा स्त्री सन्तानोत्पत्ति की सामर्थ्य होने पर भी बाह्य योग्य साधन का समागम न होने से सन्तान नहीं होती या अगम्य क्षेत्र में पड़ा हुआ स्वर्णपाषाण से सोना निकल नहीं सकता।

प्र.42–अभव्य जीव को समझने के लिए कौन सा उदाहरण है?

उत्तर–बांझ स्त्री या अन्धपाषाण में लाख उपाय करने पर भी कार्य में सफलता नहीं मिलती है क्योंकि तद्भत योग्यता का अभाव है। इसी तरह लाख प्रयत्न करने पर भी अभव्य जीव के रत्नत्रय स्वरूप मोक्ष पर्याय की व्यक्ति बाह्य सामग्री के मिलने पर भी नहीं होती है।

प्र.43–भव्यत्वभाव औदयिकादि 5 भावों में से कौन सा भाव है? सादि है या अनादि?

उत्तर–भव्यत्वभाव औदयिकभाव और पारिणामिकभाव है, शेष तीन भाव स्वरूप नहीं है। सादि भी है और अनादि भी है।

प्र.44–ऐसा क्यों होता है?

उत्तर–अघातिया कर्मोदय से होता है इसलिए औदयिक भाव है अन्यथा मोक्ष में अभाव बन नहीं सकता तथा घातिया कर्मों के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम कारण न होने से पारिणामिकभाव कहा है।

प्र.45–पारिणामिक भाव किसे कहते हैं?

उत्तर–जो अनादि अनंत हो, स्वाभाविक हो, निर्निमित्तक हो, अपरिणामी हो, नित्य हो, उत्पाद व्यय रहित हो, द्रव्य या गुण रूप हो, शाश्वत हो, त्रिकाली हो, कर्मों के उदय उपशम क्षय क्षयोपशम के विना हो उसे पारिणामिक भाव कहते हैं।

प्र.46–यदि भव्यत्व भाव पारिणामिक है तो मोक्ष में इसका अभाव नहीं हो सकता है?

उत्तर–नहीं, भव्यत्वभाव कथंचित् अशुद्ध पारिणामिक भाव है, सर्वथा नहीं अन्यथा मोक्ष में या परिपूर्ण शुद्धावस्था में इस पारिणामिक भाव का अभाव बन नहीं सकता।

प्र.47–यह भव्यभाव सादि और अनादि कैसे?

उत्तर–अनादिकाल से यह भव्यत्वभाव मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र से परिणत होकर चला आ रहा है इसलिए अनादि है तथा यथायोग्य द्रव्य क्षेत्रादि की प्राप्ति होने पर अपने निज पुरुषार्थ से मिथ्यात्रय का अभाव करके सम्यक्रत्नत्रय को प्राप्त कर लेता है इसलिए रत्नत्रय की प्राप्ति की अपेक्षा सादि है। अतः शक्ति की अपेक्षा अनादि और व्यक्ति की अपेक्षा सादि है।

प्र.48–जो अनादि से चला आ रहा है उसका अभाव कैसे हो सकता है?

उत्तर–ऐसा नहीं है कि जो अनादि से चला आ रहा है उसका अभाव न होता हो किन्तु अवश्य होता है ऐसा देखा जा रहा है। जैसे बीजवृक्ष या पिता पुत्र का संबंध अनादि से चला आ रहा है। बीज के जला देने पर अंकुर पैदा नहीं होता उसकी परम्परा नहीं चलती। इसी तरह पिता पुत्र की परम्परा अनादि से चली आ रही है पर पुत्र के ब्रह्मचर्य का नियम हो जाने पर या नपुंसक होने पर अब उसकी सन्तान परम्परा नहीं चलती। इन्हीं उदाहरणानुसार जीवों के अनादिकाल से विकार की परम्परा चली आ रही है। ध्यानादि के द्वारा विकार को नष्ट कर देने पर संसार परम्परा का अभाव हो जाता है। इसलिए एक जीव की अपेक्षा अनादि परंपरा का अभाव मानने में कोई विरोध दोष नहीं है।

प्र.49–जिस जीव द्रव्य में जो शक्ति है वह व्यक्त होना ही चाहिए ऐसा नियम है क्या?

उत्तर–शक्ति की व्यक्ति होना ही चाहिए ऐसा नियम नहीं है। जैसे इन्द्र में जम्बूद्वीप को पलटने की शक्ति है किन्तु पलट नहीं सकता। अहमिन्द्रों में सातवें नरक में जाने की शक्ति है किन्तु जाते नहीं हैं। इसी प्रकार अनेक ऋद्धियों में अनेक प्रकार की शक्तियां हैं किन्तु वे कभी भी कार्यरूप में परिणत नहीं होतीं अथवा अभव्य जीव के मोक्ष पर्याय की शक्ति न मानी जाय तो जो जीव का लक्षण उपयोग कहा है **'उपयोगो लक्षणम्'** यह सूत्र अव्याप्ति दोष से युक्त कहलायेगा ऐसा निश्चय करना चाहिए। शक्ति के मौजूद रहने पर भी वह उत्पन्न हो भी सकती है और नहीं भी, होगी ही ऐसा सर्वथा नियम नहीं है। ऐसा यह अनेकांतवादी स्याद्वादियों का सिद्धांत है।

प्र.50–यह उपदेश सम्यग्दृष्टियों के लिए होता है या मिथ्यादृष्टियों के लिए?

उत्तर–पंचकल्याणक वाले तीर्थंकरों की धर्मसभा में धर्मोपदेश सम्यग्दृष्टियों के लिए ही होता है शेष के लिए नहीं क्योंकि तीर्थंकर की बारह सभाओं में शूद्र, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, मिथ्याचारित्री, संशय, विपर्यय, अनध्यवसायी जीव, असैनी जीव, अन्य लिंगधारी, विषयलम्पटी जीव नहीं जाता है। जब वह प० पू० तीर्थंकर केवली की धर्मसभा में जाता ही नहीं तब उसे धर्मोपदेश कैसे मिलेगा? अभव्य जीव समवशरण की सातवीं भूमि में भव्यकूट को देखकर अन्धा हो जाता है तथा मानस्तम्भ को देखकर अन्यमतियों का इन्द्रभूति आदि 1503 के समान मिथ्यात्रय शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

प्र.51–यदि ऐसा है तो मिथ्यादृष्टि जीव कभी भी सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता क्योंकि साक्षात् जिनोपदेश नहीं मिलता?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीव आचार्य आदि भगवन्तों के द्वारा धर्मोपदेश ग्रहण करता है क्योंकि देशनालब्धि के कथन में **सूरिपहुदिलाहो यं आचार्य प्रभृतिः** आदि को कहा है। इसलिए मिथ्यादृष्टिजीवों को देशनालब्धि की प्राप्ति आचार्य आदि के द्वारा होती है, अन्य से नहीं, ऐसा कहा है तथा आदि पद से आचार्य को आदि लेकर शेष उपाध्याय और साधु को ग्रहण कर लेना चाहिये क्योंकि आदि पद से आगे का ग्रहण होता है पीछे का नहीं।

प्र.52–यदि ऐसा है तो 'कृत्सार्वं' केवली सबका हित करते हैं ऐसा क्यों कहा, जबकि भव्य का हित करते हैं अभव्य का नहीं, यह तो विरुद्ध कथन है?

उत्तर–क्वचित् कदाचित् न्याय में एकदेश में सर्वदेश का प्रयोग किया जाता है। जैसे शरीर के किसी अंग में दाह या हर्ष होने पर भी सर्वांग में रोम रोम से दाह या हर्ष उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है या धर्मसभा में, किसी भी कार्यक्रम में एक, दो, चार व्यक्ति आ गये तो कहा जाता है कि सब आ गये या बारात में दूल्हा प्रधान होता है दूल्हा आ गया तो सब आ गये ऐसा कहा जाता है। इसी तरह केवली भगवान सब जीवों का हित करते हैं इसका अर्थ यह है कि समस्त निकट भव्य, आसन्न भव्य और दूरभव्य जीवों का हित करते हैं, दूरानुदूरभव्य और अभव्यों का नहीं।

प्र.53–यह तो पक्षपात हुआ कि भव्य का हित करेंगे, अभव्य का नहीं?

उत्तर–यह पक्षपात नहीं है किन्तु व्यवस्था है। जैसे सूर्योदय समस्त जीवों के लिए होता है किन्तु उल्लू सूर्यप्रकाश को देख नहीं सकता अंधा हो जाता है। इसी तरह जिनेन्द्र का उपदेश समस्त जीवों के लिए होने पर भी उल्लू के समान अभव्य जीव भव्यकूट को देखकर अंधे हो जाते हैं, सूर्य के समान जिनेन्द्र को देख नहीं पाते, नहीं जाते तो केवली का साक्षात् उपदेश कैसे प्राप्त होगा?

प्र.54–पक्षपात किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्ष और मोक्षमार्ग के विरुद्ध, लोक व्यवहार नीति के विरुद्ध आचार विचार वालों को सहारा देने को, उत्साहित करने को, सुरक्षा करने को या उनके प्रति समर्पित हो जाने को अथवा जातिकुल और धर्म की मर्यादा के विरुद्ध आचरण करने वालों को, गलत का सहारा देने को पक्षपात कहते हैं।

प्र.55–हठ किसे कहते हैं और क्या हानि है, क्या लाभ है?

उत्तर–विषय कषाय पूर्वक, ख्याति पूजा लाभ की भावना सहित, गलत, विरुद्ध चर्या चर्चा को ग्रहण कर त्याग न करने को हठ कहते हैं। हठ जिद्द कषाय एकार्थवाची हैं। यह हठ चारों कषाय स्वरूप है और स्वपर अहितकारी है। सत्य यथार्थ चर्या चर्चा को ग्रहण कर त्याग न करने को हठ न कह कर दृढता, मजबूती, आस्तिक्य अनेक आपत्ति विपत्तियों के आने पर भी पांड़व, देशभूषण, कुलभूषण मुनियों की तरह अपने लक्ष्य से चलायमान न होना कहते हैं। जो अकषायभाव है और ऊर्ध्वगति को प्राप्त कराता है।

प्र.56–अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल किसे कहते हैं?

उत्तर–जितना काल एक पुद्गल परिवर्तन में लगता है उसके आधे काल को अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल कहते हैं।

प्र.57–परिवर्तन किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिस स्थान से गमन करना प्रारम्भ किया है गमन करते करते घूमकर वापिस उसी स्थान पर आ जाने को परिवर्तन कहते हैं। इसके 5 भेद हैं। **नाम**–द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरिवर्तन, भावपरिवर्तन और भवपरिवर्तन।

प्र.58–ये परिवर्तन क्या समस्त जीवों ने किये हैं या नहीं?

उत्तर–नहीं, नित्यनिगोदिया जीव ने अभी तक एक भी परिवर्तन प्रारंभ नहीं किया क्योंकि नित्यनिगोद पर्याय छोड़ी नहीं तब शेष चार परिवर्तन कहाँ से होंगे।

प्र.59–परिवर्तन कौन करता है?

उत्तर–परिवर्तन जीव और पुद्गल ये दोनों द्रव्य अपने अपने स्वभाव को छोडकर विकाररूप होकर निमित्त नैमित्तिक भाव से भ्रमण करते हैं किंतु सुखदुःख का अनुभव करनेवाला जीव ही है पुद्गल नहीं।

प्र.60–पंचपरिवर्तन कौन सा जीव करता है?

उत्तर–कर्मों से बंधा हुआ जीव, कर्म से परतंत्र, कर्माधीन, विषय कषायों से पीडित, मोहमाया से पीड़ित अनादि मिथ्यादृष्टि और अभव्य जीव पंचपरावर्तन करता है।

प्र.61–यह संसारी जीव किसके समान भ्रमण करता है?

उत्तर–घानी के बैल की तरह या रहट की घडियों की तरह संसार में भ्रमण करता है।

प्र.62–जब परिवर्तनों के 5 भेद हैं तो केवल द्रव्यपरिवर्तन का नाम क्यों लिया जाता है?

उत्तर–पंचपरावर्तनों में प्रथम नाम होने से द्रव्यपरिवर्तन का नाम लिया जाता है, जिस प्रकार एक द्रव्य परिवर्तन में जो व्यवस्था होती है वही व्यवस्था शेष चारों में भी एक साथ प्रारम्भ होती है। जैसे द्रव्यपरिवर्तन प्रारम्भ किया तो उस समय कहीं न कहीं का आकाश प्रदेश क्षेत्र होगा ही इसी तरह समयकाल भी होगा कोई व्यंजन पर्यायरूपी भव होगा, और औदयिक भाव भी कोई न कोई अवश्य होगा। अतः पाँचों परिवर्तनों का प्रारम्भ एक ही क्षण में एक साथ प्रारम्भ होता है। सामान्यतः पांचों परिवर्तनों का प्रमाण एक समान है और विशेष अन्तर केवली भगवान जाने अतः जिस प्रकार द्रव्यपरिवर्तन में अर्धपुद्गल परिवर्तन काल कहा है उसी प्रकार अर्धक्षेत्र परिवर्तन, अर्धकालपरिवर्तन, अर्धभव परिवर्तन और अर्धभाव परिवर्तन समझना चाहिए।

प्र.63–यह पंचपरिवर्तन कौन सा जीव प्रारंभ करता है?

उत्तर–यह पंचपरावर्तन अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य प्रारंभ करता है।

प्र.64–यह पंचपरिवर्तन कौन सा जीव नहीं करता है और क्या हेतु है?

उत्तर–यह पंच परावर्तन सादि मिथ्यादृष्टि जीव नहीं करता है क्योंकि इस जीव ने सम्यग्दर्शन रूपी तीक्ष्ण शस्त्र के द्वारा अनादि अनंत संसार रूपी बेल को छेद दिया है। इसी तरह सूक्ष्म नित्य निगोदिया जीव भी पंच परावर्तन नहीं करता क्योंकि उसके पास पंच परावर्तन करने के लिए **द्रव्य**–शरीर अवगाहना, **क्षेत्र**–आकाश प्रदेश, **काल**–उत्सर्पिणी अवसर्पिणी, **भव**–व्यंजन पर्याय रूप मध्यम उत्कृष्ट अवगाहना, **भाव**–सभी शुभाशुभ लेश्यायें और अर्थपर्याय रूप उत्कृष्ट स्थिति बंध और उत्कृष्ट अनुभाग बंध के योग्य भावों का अभाव है। कदाचित् क्षेत्र परिवर्तन मान भी लिया जाये सो यह मध्य का होने से इसकी क्या कीमत है।

अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो।
भावकलंकसुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति।।197।। गोम्मटसार जीवकांड

अर्थः–अनादि काल से अबतक और अब से अनंत काल तक कुछ ऐसे अनंत जीव हैं जो भावों की तीव्र कलुषता के कारण त्रस परिणाम को न पाते हुये निगोद स्थान को नहीं छोड़ते हैं अथवा अनादिकाल से अब तक निगोदिया जीव निगोद पर्याय से निकलकर त्रस पर्याय को प्राप्त नहीं हुए हैं सो ठीक है पर भविष्य में प्राप्त नहीं करेंगे यदि यह नियम सर्वथा सदा सबके लिए स्वीकार किया जाये तो नित्यनिगोदिया 6 महिने 8 समय में 608 जीव निगोद पर्याय से निकलकर व्यवहार राशि में आते हैं यह नियम नहीं बन सकता अतः नित्यनिगोदिया जीव भी दो प्रकार के होते हैं। भविष्य में कुछ जीव निगोद पर्याय को छोड़ेंगे और कुछ नहीं।

प्र.65–अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तथा सादि मिथ्यादृष्टि जीव किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसने अभी तक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है उसे अनादिमिथ्यादृष्टि जीव कहते हैं। जिस जीव ने एक भी बार सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर, छोडकर पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त कर लिया है उसे सादिमिथ्यादृष्टि जीव कहते हैं।

प्र.66–अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथमबार सम्यदर्शन प्राप्त करता है तो उसे पुनः मिथ्यात्व गुणस्थान में जाना जरूरी है या नहीं?

उत्तर–नहीं, क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथमबार सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तब उस प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान में, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से तीसरे मिश्र गुणस्थान को, सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से चौथे से सातवें गुणस्थान तक वेदक सम्यग्दर्शन या क्षयोपशम सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेता है और उस प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में यदि कम से कम एक समय और अधिक से अधिक 6 आवली काल शेष रहने पर अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ में से किसी एक का उदय आ जाये तो सासादन गुणस्थान को प्राप्त कर लेता है अतः इस नियम के अनुसार उस प्रथमबार प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि जीव को मिथ्यात्व में जाना जरूरी नहीं है किन्तु अन्यत्र भी जा सकता है।

प्र.67–संसार बंधन से कौनसे जीव नहीं छूटते?

उत्तर–अनादि से अनंतकाल तक अभव्यजीव और दूरानुदूर भव्यजीव संसार बंधन से कभी भी नहीं छूटते हैं।

प्र.68–पंचपरिवर्तन किस जीव ने पूर्ण किये हैं और आगे करता रहेगा?

उत्तर–अभव्यजीव, दूरानुदूर भव्यजीव और अनादि मिथ्यादृष्टि भव्यजीव इन तीनों ने पंचपरावर्तन पूरे किये हैं और जबतक इस अवस्था में हैं तबतक करते रहेंगे।

प्र.69–परिवर्तन किसे कहते हैं और पुद्गल द्रव्यपरिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त कर इसको छोड़कर पुनः प्रथम अवस्था के प्राप्त कर लेने को परिवर्तन कहते हैं। पुद्गल कर्मपिण्ड को ग्रहण कर, छोड़कर पुनः उसी पुद्गलपिण्ड को यथानुरूप ग्रहण करने को पुद्गलद्रव्य परिवर्तन कहते हैं।

प्र.70–पुद्गल द्रव्य परिवर्तन के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–पुद्गल द्रव्य परिवर्तन के दो भेद हैं। नाम–1. नोकर्म पुद्गल द्रव्य परिवर्तन, 2. कर्म द्रव्य परिवर्तन।

प्र.71–नोकर्म पुद्गल द्रव्य परिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–किसी जीव ने स्निग्ध रूक्ष, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि के तीव्र मंद मध्यम भावों से यथासंभव विषय कषायों से युक्त, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना से युक्त, अनादि मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से युक्त, कलुषित परिणाम वाला, औदारिकशरीर, वैक्रियकशरीर, आहारकशरीर तथा आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वांसोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनः पर्याप्तियों के योग्य नोकर्म पुद्गल पिण्ड को ग्रहण किया और दूसरे आदि समयों में निर्जरा कर दी। इस प्रकार अनंतवार अग्रहीत पुद्गल पिण्ड को ग्रहण करके छोड़ा, अनंतवार मिश्र पुद्गल पिण्ड को ग्रहण करके छोडा, अनंतवार ग्रहीत पुद्गल पिण्ड को ग्रहण करके छोड़ा। जब वही जीव पुनः उन्हीं स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंध रस स्पर्श आदि के तीव्र मंद मध्यम भावों से युक्त उन्हीं पुद्गल पिण्ड को जो सर्व प्रथम ग्रहण किये थे उनको पुनः ग्रहण करेगा सो उसे नोकर्म पुद्गल द्रव्यपरिवर्तन कहते हैं अर्थात् यह नोकर्म पुद्गल द्रव्य परिवर्तन प्रारंभ करते समय जो अग्रहीत, मिश्र और ग्रहीत पुद्गल पिण्ड, आकाश प्रदेश, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का समय, कषायों का परिणाम भाव, व्यंजन पर्यायरूप भव ये ही पाँचों जब एकसाथ प्राप्त हो सो उसे नोकर्म पुद्गल द्रव्यपरिवर्तन कहते हैं।

प्र.72–अग्रहीत पुद्गलपिण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर–जो परमाणु से उत्पन्न हुआ कार्य रूप स्कंध पुद्गलपिण्ड को समय प्रबद्धरूप में अनादिकाल से अभी तक ग्रहण नहीं किया है उसे अग्रहीत पुद्गलपिण्ड कहते हैं।

प्र.73–मिश्र पुद्गलपिण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस समयप्रबद्ध में कुछ पुद्गलपिण्ड ग्रहण किया है और कुछ नहीं ऐसी मिली हुई अवस्था को मिश्र पुद्गलपिण्ड कहते हैं।

प्र.74–ग्रहीत पुद्गलपिण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस समयप्रबद्ध में ग्रहण किये हुए पुद्गलपिण्ड हों उसे ग्रहीत पुद्गलपिण्ड कहते हैं।

प्र.75–समयप्रबद्ध किसे कहते हैं और इसका प्रमाण क्या है?

उत्तर–आत्मा के विकारी भावों से जो एक समय में पुद्गल कर्म स्कंध ग्रहण किये जायें उसे समयप्रबद्ध कहते हैं। सिद्धों का अनंतवां भाग और अभव्य जीवों से अनंतगुणा प्रमाण हैं या दूध पानी की तरह एक समय में आत्मा और कर्मों का एक क्षेत्रावगाही संबंध को प्राप्त होनेवाले कर्म स्कंध को समयप्रबद्ध कहते हैं।

प्र.76–कर्मद्रव्य पुद्गलपरिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–अग्रहीत मिश्र ग्रहीत, मिश्र अग्रहीत ग्रहीत, मिश्र ग्रहीत अग्रहीत, ग्रहीत मिश्र अग्रहीत इन चार प्रकार के पुद्गल स्कंधों का ग्रहण हो जाने पर जब परिवर्तन के प्रारंभ के समय में जिनका ग्रहण किया था उन्हीं पुद्गलों का उसी रूप में ग्रहण करने को कर्म द्रव्य परिवर्तन कहते हैं। नोकर्म द्रव्य परिवर्तन और कर्म द्रव्य परिवर्तन इन दोनों के समूह को ही द्रव्य परिवर्तन कहते हैं। 1. **अग्रहीत मिश्र ग्रहीत** :–अनादिकाल से अबतक पुद्गलपिंड को ग्रहण नहीं किया वह अग्रहीत, कुछ पुद्गलपिंड ग्रहण किया हुआ है और कुछ नहीं वह मिश्र, ग्रहण किया हुआ है या किया था वह ग्रहीत। 2. **मिश्र अग्रहीत ग्रहीत** :–कुछ पुद्गलपिंड ग्रहण किया हुआ है और कुछ नहीं वह मिश्र, अनादिकाल से अबतक पुद्गलपिंड को ग्रहण नहीं किया वह अग्रहीत, ग्रहण किया हुआ है या किया था वह ग्रहीत। 3. **मिश्र ग्रहीत अग्रहीत** :–कुछ पुद्गलपिंड ग्रहण किया हुआ है और कुछ नहीं वह मिश्र, ग्रहण किया हुआ है या किया था वह ग्रहीत, अनादिकाल से अबतक पुद्गलपिंड को ग्रहण नहीं किया वह अग्रहीत। 4. **ग्रहीत मिश्र अग्रहीत** :–ग्रहण किया हुआ है या किया था वह ग्रहीत, कुछ पुद्गलपिंड ग्रहण किया हुआ है और कुछ नहीं वह मिश्र, अनादिकाल से अबतक पुद्गलपिंड को ग्रहण नहीं किया वह अग्रहीत।

प्र.77–क्षेत्रपरिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–संपूर्ण लोकाकाश के प्रदेशों में जनम मरण करने को क्षेत्र परिवर्तन कहते हैं अथवा लोकाकाश के जिस प्रदेश से परिवर्तन करना प्रारंभ किया था क्रमशः संपूर्ण लोकाकाश में जनम मरण करते करते जहाँ से प्रारंभ किया था वापिस उसी प्रदेश पर आ जायें तो उसे क्षेत्र परिवर्तन कहते हैं।

प्र.78–कालपरिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल के जिस समय में परिवर्तन करना प्रारंभ किया था और प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के प्रत्येक समय में जनम मरण करते करते पुनः उसी प्रारंभ के समय पर आ जायें तो उसे काल परिवर्तन कहते हैं।

प्र.79–भवपरिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–चारों गतियों की जघन्य आयु या जघन्य अवगाहना से लेकर उत्कृष्ट आयु उत्कृष्ट अवगाहना स्वरूप व्यंजनपर्याय पर्यन्त जनम मरण करते करते जहाँ से परिवर्तन प्रारंभ किया था उसी आयु और अवगाहना के प्राप्त होने को भवपरिवर्तन कहते हैं।

प्र.80–भावपरिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रकृतिबंध स्थितिबंध अनुभागबंध और प्रदेशबंध इनके जघन्य बंध से लेकर उत्कृष्ट बंध तक के परिणामों को प्राप्तकर पुनः जघन्य स्थितिबंध के योग्य भावों के प्राप्त करने को भावपरिवर्तन कहते हैं।

प्र.81–आ. श्री कुंदकुंदस्वामीजी ने और आ. श्री पूज्यपाद स्वामी ने श्री मू.चा., बा.अणु, इ.उ. में कहा है कि इस जीव ने समस्त पुद्गलों को अनंतबार ग्रहण करके छोडा और यहाँ द्रव्य परिवर्तन में ग्रहीत अग्रहीत और मिश्र पुद्गल पिण्ड को अनंतवार ग्रहण करके छोडा ऐसा कहा है सो यह कथन विरुद्ध क्यों नहीं है?

उत्तर–नहीं, न विरुद्ध कथन है, न मतभेद है किंतु स्वतंत्र कथन है। आ. श्री कुंदकुंदादि का कहना है कि परमाणु के बिना समस्त पुद्गल स्कंध को भोगा क्योंकि परमाणु इन्द्रिय और योगों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता है अतः स्कंध भी भोगा हुआ ही भोगा जाता है। इसलिए कहा है कि मैंने समस्त स्कंध रूपी पुद्गलपिण्ड को भोगा क्योंकि एकदेश में भी सर्वपद का प्रयोग किया जाता है। परमाणु एक प्रदेशी होने से भोगने में नहीं आता और जो भोगने में, ग्रहण करने में नहीं आये वह अभोग्य अग्रहीत कहलाया तथा ऐसे ही कारणरूप परमाणुओं से उत्पन्न कार्यरूप स्कंध भी अभोग्य अग्रहीत कहलाया तथा 23 प्रकार की वर्गणाओं में बहुत सारी अग्रहीत वर्गणायें हैं जो ग्रहण के अयोग्य हैं अथवा भावना ग्रंथों में संबोधन की, सान्त्वना की दृष्टि होती है, सिद्धांत की नहीं। **'दूध का दूध पानी का पानी'** जैसी न्याय की दृष्टि नहीं होती है क्योंकि भावना ग्रंथों में वैराग्य, विरक्ति प्राप्त करने के लिये कहा है कि हे साधु यह तेरा भोज्य भोग्य पदार्थ वमन के समान है, उल्टी कर खाने के समान है, उल्टीकर पुनः कुत्ता खाता है, तुम तो महान वैरागी हो, तपस्वी हो, ज्ञानीध्यानी हो। भोग्य वस्तुओं में क्यों प्रीति करते हो? आत्म स्वभाव में स्थिर होना ही कर्तव्य है। अतः संबोधन कर मार्ग में लगाने की अपेक्षा कोई दोष नहीं है।

प्र.82–यह अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर–यह काल दो प्रकार से प्राप्त होता है–1.सहजसाध्य (अयत्नसाध्य), 2.यत्नसाध्य (पुरुषार्थसाध्य)।

प्र.83–सहजसाध्य दैव (भाग्य) साध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल किसे कहते हैं?

उत्तर–कर्मवर्गणा और नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण करना प्रारम्भ किया ग्रहण करते हुए तथा छोड़ते हुए बिना प्रयत्न के अर्ध अवस्था प्राप्त कर ली। जैसे घड़ी का कांटा 12 से प्रारंभ कर क्रमशः बिना प्रयत्न के 6 बजे बीच की अवस्था को प्राप्त कर लेता है अथवा टंकी या तालाब आदि में रुका हुआ पानी बिना प्रयत्न के अपने आप धीरे धीरे सूखकर आधा रह गया। मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा लगाते हुए सूर्य चंद्र मध्यम अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। इसी तरह सर्वत्र समझ लेना चाहिये।

प्र.84–यत्नसाध्य पुरुषार्थसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल किसे कहते हैं?

उत्तर–पुद्गलपरिवर्तन प्रारम्भ करते ही देव शास्त्र गुरु का समागम प्राप्त कर लिया, परिणाम अत्यन्त शान्त, निर्मल और स्वच्छ हैं। इस ही अवस्था में विशिष्ट करणलब्धि के परिणाम हुए, उन परिणामों से अनंतकाल को छेदकर अर्धपुद्गल परिवर्तन काल मात्र शेष रख लेता है। जैसे पिताजी की सम्पत्ति के मालिक सभी पुत्र पूर्ण रूप से होते हैं किन्तु हिस्सा बटवारा कर देने से सभी पुत्र अब सम्पत्ति के पूर्ण रूप से मालिक न होकर जितनी बटवारे में प्राप्त हुई उतनी के ही मालिक होते हैं अथवा नदी के पानी को असमय में अन्यत्र जगह चाहिए तो बीच में से नहर आदि के माध्यम से अपने लक्ष्यानुसार मोड़ लेते हैं तथा उससे इच्छानुसार जहाँ कहीं रास्ता बनाकर पानी का उपयोग कर

लेते हैं। इसी तरह अपने करणलब्धि रूप परिणामों से संसार को छेद कर द्रव्यकर्म और भावकर्मों को उदीरणा संक्रमण आदि के द्वारा शीघ्र ही क्षय करके अपने लक्ष्य स्वरूप मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। यदि कहा जाये या माना जाये कि प्रत्येक कार्य अपने समय पर ही होते हैं तो कर्मों की जो दस अवस्थायें बताई हैं उनमें संक्रमण अपकर्षण आदि बन ही नहीं सकते हैं क्योंकि उदीरणाकरण समय के पहले और उदय समय पर ही होता है। ये अवस्थायें केवली ने ही बताई हैं क्योंकि सर्वज्ञ अन्यथावादी नहीं होते हैं। अन्यथावादी होने का कारण विषयकषाय, अज्ञान, ख्याति पूजा लाभ की भावना ही है अन्य नहीं।

प्र.85–प्रत्येक कार्य के लिए समय नियत है अतः यत्न भी तो समय पर होता है असमय में नहीं ऐसा नियम स्वीकार करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, ऐसा नियम नहीं हैं। आजकल इस प्रकार बहुत कार्य दिखाई दे रहे हैं जो समय के पहले या बाद में घट रहे हैं और केवली ने भी अपने ज्ञान के द्वारा परिणामों की, कर्मों की अवस्थायें देखी हैं, जानी हैं, बताई हैं जैसे वनस्पतियों में प्रयोग से समय के पहले, बाद में और अन्यथा उत्पत्ति वृद्धि फूल फल की प्राप्ति देखी जा रही है। गाय भैंस, मुर्गी वगैरह में बिना नर के इंजेक्शन से गर्भ धारण कराया जाता है। मनुष्य स्त्रियों में भी गर्भपात कराना, गर्भ धारण कराना निरोध आदि सामग्री से कामक्रीड़ा करने पर गर्भधारण नहीं होना, गोलियों के द्वारा मासिक को पहले चालू करना या रोकना घटाना बढ़ाना, ऑपरेशन कर नर से मादा और मादा से नर बनाना आदि कार्य कर्मों की नाना अवस्थाओं को सिद्ध करते हैं। पहले भी कर्म की अवस्थायें थी उनको शास्त्रों में पढ़कर विश्वास करते थे कि कर्मों की उदीरणा, संक्रमण, अपकर्षण उत्कर्षण आदि अवस्थायें होती हैं अब प्रत्यक्ष रूप में अनुभव कर रहे हैं। आँखों से देखते हैं और वातानुकूल प्रयोग हो रहे हैं तथा जगह जगह प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक खोजकर्ता खोज कर रहे हैं। अतः कुछ कार्य समय पर होते हैं, कुछ पहले, कुछ बाद में, कुछ संयोगवश अन्य प्रकार से होते हैं, कुछ विरुद्ध साधन के संयोग से नहीं होते हैं तथा बाह्य संयोग के सन्निधान से हीनाधिक हुए की तरह देखे जाते हैं तथा जैनेन्द्र के मत में वस्तु व्यवस्था समझने के लिए स्याद्वाद से कहा गया है, सर्वथा ऐसा ही है इस प्रकार प्रतिपादन नहीं किया गया है। यदि वस्तु ऐसी ही होती तो केवली प्रतिपादन करते अतः अनेकान्त को बतलाने वाला यह स्यात् निपात श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों में है। आ० श्री समन्तभद्रजी ने भ० अरहनाथ की स्तुति में कहा है–:

सर्वथा नियम त्यागी यथादृष्टमपेक्षकः
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नाऽन्येषामात्म विद्विषाम्।।17।।

अर्थ –सर्वथा रूप से प्रतिपादन के नियम का त्यागी और यथादृष्ट अपेक्षा रखनेवाला स्यात् शब्द हे जिनेन्द्र अरहनाथ आपके न्याय में ही है, एकान्तवादियों के न्याय में नहीं क्योंकि वे अपने आपके ही वैरी हैं।

वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम्।
स्यान्निपातोऽर्थ योगित्वात्तव केवलिनामपि।।103।।
स्याद्वादः सर्वथैकान्त त्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभंग नयापेक्षो हेयाऽऽदेय विशेषकः।।104।।
स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्वतत्त्व प्रकाशनै।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्।।105।। आप्तमीमांसा

अर्थ –हे अर्हन् आपके तथा श्रुतकेवलियों के भी वाक्यों में प्रयुक्त होने वाला स्यात् अव्यय शब्द अर्थ के साथ संबद्ध होने से अनेकान्त का द्योतक और गम्यबोध्य विवक्षित का बोधक सूचक वाचक माना गया है।103। स्यात् शब्द सर्वथा एकांत का त्यागी होने से किं शब्द निष्पन्न नाना प्रकार के रूप में कथंचित् कथंचन् आदि का वाचक है। यह स्यद्वाद सप्त भंगों और नयों की अपेक्षा को लिये रहता है तथा हेयोपादेय का विशेषक भेदक होता है।104। स्याद्वाद और केवलज्ञान ये दोनों जीवादिक सब तत्त्वों के प्रकाशक हैं, दोनों के प्रकाशन में प्रत्यक्ष और परोक्ष का भेद है इन दोनों ज्ञानों में से जो किसी भी ज्ञान के द्वारा प्रकाशित अथवा उसका वाच्य नहीं वह अवस्तु होती है।105। इसलिए धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य अनादिकाल से अनन्तकाल तक शुद्ध और स्वाधीन हैं और आगे भी रहेंगे किंतु संसारी जीव और पुद्गल ये परस्पर में मेल होने के कारण अशुद्ध और पराधीन हैं, थे और आगे रहेंगे और सिद्ध हमेशा शुद्ध रहेंगे ऐसा भी कथन आचार्यों ने शास्त्रों में किया है।

प्र.86–अयत्नसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल इस जीव ने कितनी बार प्राप्त किया है?

उत्तर–अनादिकाल से आजतक इस जीव ने अयत्नसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तन काल अनन्त बार प्राप्त किया है क्योंकि इस जीव ने अनंत परिवर्तन किये हैं फिर भी संसार का अंत नहीं पाया कारण ये विषय भोग अभूतपूर्व हैं ऐसा मानकर रमण करता रहा और अंत में मरण कर निगोद का पात्र बना। उदाहरण एक चतुर्मुखी बहुत ऊँचा और मजबूत परकोटा है उसके अंदर एक नेत्र विहीन व्यक्ति है वह परकोटे के बाहर निकलना चाहता है पर जन्मान्ध होने के कारण दिखता नहीं क्या करे? चिंतित् है इतने में बाहर से कुछ व्यक्तियों की आवाज सुनाई दी, अंदर से उसने आवाज लगाई कि आप लोग हमको बाहर निकाल लो तब बाहर वालों ने कहा कि दरवाजे से निकल आओ अंदर वाला बोला कि हमको दिखता नहीं है कैसे बाहर आयें? तब बाहर वालों ने कहा कि हे भाई आप जन्मान्ध हो क्या? हाँ, ठीक है आप दीवाल के सहारे दीवाल पकड़कर आओ और दरवाजा प्राप्त होते ही बाहर आ जाना ठीक है। इस प्रकार कहकर दीवाल पर हाथ रखकर गमन करना प्रारम्भ किया, गमन करते करते दरवाजे के पास में आया कि शरीर में जोर से खुजली उठी तो गमन क्रिया बंद किये बिना दीवार को छोड़कर खाज खुजाने लगा दरवाजा निकल गया जिससे पुनः चक्कर लगाना पड़ा। इसी उदाहरण के अनुसार यह जीव संसार रूपी परकोटे के अंदर है मोह, विषय कषायों से अंधा हो रहा है, बाहर निकलना चाहता है। बाहर से गुरु आवाज लगाते हैं, मनुष्य पर्याय दरवाजा है, निकलने का उपाय रत्नत्रय है, मोक्षस्थान में पहुँचना है। विषय भोगों की, वैर विरोध की भावना खाज खुजली हैं उपयोग लगाना खाज खुजलाना है। इस जीव को संसार से निकलने के लिए, मोक्ष प्राप्त करने के लिए मनुष्य पर्याय प्राप्त हुई, गुरुजनों का संयोग प्राप्त हुआ, सत्समागम मिला फिर भी वैरविरोध, विषय भोगों में लिप्तता, आरम्भ परिग्रह की लालसा, मोहान्ध, कामान्ध, विषयान्धादि नाना प्रकार की अवस्थाओं से परिवार में ख्याति, पूजा, लाभ में फंस गया, जिससे मोक्ष प्राप्त न हुआ, भवभव में भ्रमता रहा। जब मोक्ष में जाने का प्रसंग आया तभी अपने जीवन को विषय कषायों आदि में फंसाकर नरक निगोद का पात्र बनाया इस प्रकार इस जीव ने पंचपरावर्तन अनंत बार किए तो अर्ध पुद्गल परावर्तनकाल भी अनंत बार प्राप्त किया। क्योंकि जिसने छत पर पहुंचने के लिए पूरे जीने का स्पर्श किया है उसने आधे का स्पर्श तो किया ही है।

प्र.87–यत्न साध्य पुरुषार्थ साध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल कितनीबार प्राप्त किया है?

उत्तर–इस जीव को संसार काल में एक ही बार यत्न साध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्राप्त होता है, अनेक बार नहीं। जिस जीव ने एक ही बार यत्नसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्राप्त कर लिया है अब वह एक भी परिवर्तन पूरा नहीं करता और अर्धपुद्गल परिवर्तन काल के अन्दर में ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है क्योंकि इस काल की प्राप्ति सम्यक्रत्नत्रय की प्राप्ति के अनन्तर ही होती है और एक बार रत्नत्रय की प्राप्ति के बाद नियम से अर्धपुद्गल परिवर्तन काल के अंदर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

प्र.88–अपनी आत्मा ने यत्नसाध्य अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्राप्त किया है या नहीं?

उत्तर–यदि अपनी आत्मा अनादि मिथ्यादृष्टि है तो यत्नसाध्य काल प्राप्त नहीं किया है तथा यदि सादि मिथ्यादृष्टि है तो नियम से यत्नसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्राप्त कर लिया है।

प्र.89–इस काल में इस आर्यखंड में सादिमिथ्यादृष्टिजीव जन्म धारण कर सकता है क्या?

उत्तर–हाँ अवश्य ही इस काल में इस क्षेत्र में दोनों प्रकार के सादि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जन्म ले सकते हैं आगम से कोई भी विरोध नहीं आता क्योंकि यहाँ पर निसर्गज सम्यग्दर्शन और अधिगमज सम्यग्दर्शन हो सकता है ऐसा आगम से जाना जाता है।

प्र.90–इस दुःखमा पंचमकाल में क्या सम्यग्दृष्टि जीव आर्यखंड में जन्म ले सकते हैं?

उत्तर–इस काल में इस क्षेत्र में सम्यग्दृष्टि जीव जन्म धारण नहीं करते किंतु एकमात्र मिथ्यादृष्टि जीव ही जन्म धारण करते हैं। कदाचित् कोई देव नारकी तिर्यंच और मनुष्य पूर्व पर्याय में जीवन पर्यंत सम्यक्त्व सहित रहा और मरण के कुछ अंतर्मुहूर्त काल के पहले सम्यक्त्व छोडकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ तब उस संस्कार के साथ तो यहाँ जन्म धारण कर सकता है। पूर्व संस्कार वश पुनः अनुकूल द्रव्य क्षेत्र काल भाव को पाकर परोपदेश के बिना निसर्गज सम्यग्दर्शन या गुरुओं के द्वारा संबोधन को प्राप्तकर अधिगमज सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है, प्राप्त कर ही ले ऐसा एकान्त नियम नहीं है।

प्र.91–इस काल और इस क्षेत्र में सम्यग्दृष्टिजीव पैदा नहीं होते हैं यह कैसे जाना?

उत्तर–हाँ अवश्य ही पैदा नहीं होते हैं क्योंकि वर्तमान में असंयमी अव्रती गृहस्थों की दिनचर्या अन्याय और अभक्ष्य से भरपूर समाहित है। अनेक प्रकार के अत्याचार अनाचारों से युक्त है तब सम्यग्दृष्टि जीव ऐसे कुलों में कैसे पैदा हो सकते हैं इस युक्ति से जाना है।

प्र.92–यदि ऐसा है तो भविष्य में कुलकर और तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले कैसे जन्म धारण करेंगे?

उत्तर–हाँ, आपका प्रश्न सही है किंतु बाह्य में अणुव्रतों जैसा पालन करने वाले सदाचारी सद्विचारी जिनेन्द्र भक्तों के यहाँ ही जन्म धारण करेंगे अन्यों के यहाँ नहीं क्योंकि सप्रतिपक्षी सर्वत्र होते हैं।

प्र.93–इस समय आर्यखंड में यदि कोई सम्यग्दृष्टि जीव जन्म धारण कर ले तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–सर्वप्रथम यहाँ अपर्याप्त काल में सम्यक्त्व नहीं पाया जाता। दूसरी बात यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व का, अन्याय का, अभक्ष्य का त्यागी होता है, अब वर्तमान में एक भी अव्रती गृहस्थ अन्याय का, अभक्ष्य का त्यागी है क्या? जब माँ बाप ही संस्कारहीन हैं, अन्याय अभक्ष्य के त्यागी नहीं हैं, अस्पतालों की दवाईयां खाना, नल का पानी पीना, अनछना पानी पीना, बिना मर्यादा का भोजन करना, षडावश्यकों का, मूलगुणों का पालन नहीं करना ही अन्याय है और डॉक्टरों की देखरेख में रजोवीर्य से गर्भ रहा है, जिसके मस्तिक की, शरीर की रचना हुई है तो उस रजोवीर्य का, अभक्ष्य स्वरूप औषधि का संस्कार कहाँ चला जायेगा फिर यहाँ पर जन्म लेने के बाद भी स्वपर निमित्तिक अनाचार प्रवृत्ति हो रही है और यह प्रवृत्ति ही मिथ्यात्व के उदय को सूचित करती है। अतः इस काल में, इस आर्यखंड में सम्यग्दृष्टि जीव जन्म धारण नहीं करता।

प्र.94–मोक्ष की प्राप्ति नियत समय पर होती है या अनियत समय पर?

उत्तर–मोक्ष की प्राप्ति नियत समय पर भी होती है और अनियत समय पर भी। जिन महापुरुषों ने आयुकर्म के उदय क्षय से मोक्ष की प्राप्ति की है उनका मोक्ष नियतकाल में और जिन्होंने आयु कर्म की उदीरणा क्षय से मोक्ष प्राप्त किया है उनका मोक्ष अनियतकाल में हुआ, ऐसा कहा है।

प्र.95–समवशरण में द्रव्यमिथ्यादृष्टि जीव होते हैं क्या?

उत्तर–नहीं होते हैं देखो जब इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति ये तीनों भाई अपने अपने 500–500 शिष्यों को लेकर भ० महावीर को जीतने के लिए आते हैं किन्तु मानस्तम्भ को देखकर ही मान नष्ट हुआ और सम्यक्त्व ग्रहण किया तथा भगवान के पास पहुँचते ही अंतर्मुहूर्त में दीक्षा ली अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त की और मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त किया। इससे सिद्ध होता है कि समवशरण में द्रव्यमिथ्यादृष्टि जीवों का अस्तित्त्व नहीं होता है अथवा तीनों भाइयों की दीक्षा का संयम का विधान किया है किन्तु 1500 शिष्यों ने क्या किया दीक्षा ली या नहीं यह कथन स्पष्ट रूप से नहीं किया है इस कारण अनुमान से जाना जाता है कि तीर्थंकर के बिना शेष केवलियों की धर्मसभा में भावमिथ्यात्व से युक्त जीव रह सकते हैं।

प्र.96–तो क्या समवशरण में भावमिथ्यादृष्टि जीव हो सकते हैं?

उत्तर–नहीं, पाँच कल्याणक वाले तीर्थंकरों की 12 सभाओं में भावमिथ्यादृष्टि जीव नहीं होते हैं, एकमात्र सम्यग्दृष्टि ही होते हैं। प्रश्नोत्तर 83 में जो कहा है उसका आशय यह है कि समवशरण में 12 सभाओं के बाहर दो तीन कल्याणक वाले तीर्थंकर केवली, सामान्यकेवली सर्वज्ञ भगवान विराजमान हैं, उनका समवशरण में उपदेश होता रहता है वहाँ पर कदाचित् भावमिथ्यादृष्टि जीव हो सकते हैं। अतः भावमिथ्यादृष्टियों का अस्तित्त्व समवशरण में बताया गया है किन्तु 12 सभाओं में नहीं। समवशरण में तीर्थंकरकेवली, संख्यात श्रुतकेवली, अनेक ऋद्धि संपन्न, संख्यात मुनि आर्यिका, श्रावक श्राविका यह चतुर्विध संघ, संख्यात तिर्यंच और असंख्यात चतुर्निकायों के देव देवांगनायें होते हैं।

प्र.97–किन्हीं [2] आचार्यों ने लिखा है कि समवशरण में भावमिथ्यादृष्टि होते हैं सो ऐसा मतभेद क्यों, आचार्यों के विरुद्ध कथन क्यों?

उत्तर–सत्य बात है। आचार्यों ने समवशरण में भावमिथ्यादृष्टि जीव होते हैं ऐसा कहा है। सही है किन्तु 12 सभाओं में होते हैं ऐसा कहाँ कहा है? क्योंकि समवशरण में अनेक सर्वज्ञकेवली होते हैं उनका उपदेश भावमिथ्यादृष्टि सुनकर सम्यक्त्व को और संयम को ग्रहण करते हैं अतः कहीं के विषय को कहीं ले जाना ठीक नहीं हैं। फिर भी कोई दुराग्रह कर 12 सभाओं में भी मिथ्यादृष्टि जीवों का अस्तित्त्व सिद्ध करना चाहे तो उसको 12 सभाओं में भावमिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या भी बतानी चाहिए कि ये जीव संख्यात हैं या असंख्यात?

प्र.98–तीर्थंकर प्रभु का उपदेश द्रव्य मिथ्यादृष्टियों के लिए होता है या भाव मिथ्यादृष्टियों के लिए?

उत्तर–दो या तीन कल्याणक वाले तीर्थंकर प्रभु का धर्मोपदेश भाव मिथ्यादृष्टियों के लिए भी हो सकता है पाँचों कल्याणक वालों का नहीं किंतु द्रव्य मिथ्यादृष्टियों के लिए नहीं क्योंकि धर्मसभा तो दूर रही समवशरण के बाहर ही मानस्तम्भ को देखकर द्रव्यमिथ्यात्व नियम से क्षय को प्राप्त हो जाता है यह सब तीर्थंकरप्रभु की निर्मलता का ही प्रभाव है।

प्र.99–दो कल्याणक वाले तीर्थंकर कौन होते हैं?

उत्तर–चरमशरीरी सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि मुनियों ने सभी प्रकार के सम्यग्दर्शनपूर्वक दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का चिंतन कर तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी समय में क्षपकश्रेणी आरोहण कर केवलज्ञान प्राप्त किया है तो उनके केवलज्ञान कल्याणक और मोक्ष प्राप्त करने पर मोक्षकल्याणक ये दो कल्याणक होते हैं।

प्र.100–तीन कल्याणक वाले तीर्थंकर कौन होते हैं?

उत्तर–चरमशरीरी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि गृहस्थों ने सम्यग्दर्शन पूर्वक या दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का चिंतन पूर्वक करणलब्धि के परिणामों से सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया बाद में प्रतिकूलावस्था को प्राप्त कर वैराग्य से परिणत होकर सकल संयमपूर्वक मुनिदीक्षा ग्रहण की तब दीक्षा कल्याणक मनाया गया। बाद में जब केवलज्ञान प्राप्त किया तब केवलज्ञान कल्याणक तथा मोक्ष प्राप्त होने पर मोक्षकल्याणक मनाया गया इस तरह ये तीन कल्याणक वाले तीर्थंकर होते हैं।

प्र.101–यदि 12 सभाओं में भाव मिथ्यादृष्टि जीव नहीं हैं तो मिथ्यात्व के त्याग का उपदेश अरण्यरुदन के समान व्यर्थ ठहरता है?

उत्तर –नहीं, सार्थक है क्योंकि सम्बोधन या उपदेश भूत, भविष्यत, वर्तमानकाल से संबंधित किया जाता है।

प्र.102–भूतकाल से संबंधित संबोधन किस प्रकार से किया जाता है?

उत्तर–भूतकाल में तुमने मोहवश, अज्ञानतावश, विषयकषायों के आधीन होकर चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करते हुए नाना तरह के दुःख भोगे हैं, अब जागृत हो धर्म धारण करो अर्थात् जीवन की भूतकालीन घटनाओं को याद कराकर निष्फलता बतलाकर मोक्षमार्ग के लिए प्रेरित करना तथा प्राप्त कर लेने के बाद में पतन न हो इसप्रकार सावधान करने को भूतकालीन संबोधन कहते हैं।

प्र.103–वर्तमानकालीन सम्बोधन किस प्रकार से किया जाता है?

उत्तर–मिथ्यात्व मोहोदय से विषयकषायपूर्वक जीव की वर्तमान में किस प्रकार दुर्व्यवस्था हो रही है, दुःख भोग रहे हैं तथा त्याग करने पर किस प्रकार का आनंद आता है या सम्यक्त्व के ग्रहण करने पर किस प्रकार सुख प्राप्त होता है आदि मार्गदर्शन करने को वर्तमानकालीन सम्बोधन कहते हैं।

प्र.104–भविष्यत्कालीन सम्बोधन किस प्रकार से किया जाता है?

उत्तर–हे भव्य जीवों! यदि असावधानी पूर्वक समय व्यतीत किया तो भविष्यकाल में आत्मशान्ति और लौकिक सुख प्राप्त न होगा किन्तु नानाप्रकार के कठोर हृदय विदारण करनेवाले दुःख प्राप्त होंगे, सावधानी वर्तोगे तो हर प्रकार से सुख शांति की प्राप्ति होगी। भूतकाल में असावधानीपूर्वक दिनचर्या की थी जिससे दुर्गतियों में जाकर नानाप्रकार के दुःख भोगे थे अब वर्तमान में असावधानी करोगे तो भविष्य में दुःख उठाना पड़ेगा जैसे भविष्य में स्वास्थ्य अच्छा रखना चाहते हो तो वर्तमान में अपथ्य भोजन और असदाचरण मत करो तथा पथ्य का, सदाचार का सेवन करो जिससे भविष्य में हानि न हो लाभ प्राप्त हो अथवा अपरिपक्व बालक बालिकाओं को सुसंस्कारित, सुरक्षित रखने के लिए, कुसंगति से बचने के लिए, बचाने के लिए सम्बोधन किया जाता है। अतः जो गिरे हुए हैं उनको उठने उठाने के लिए, जो बैठे हैं उनको खड़े होने के लिए और जो खड़े हैं उनको गमन करने के लिए सम्बोधन किया जाता है, जो जहाँ पर है वह नीचे की ओर पतन न करे ऊपर आगे बढ़े इस प्रकार सम्बोधन किया जाता है। इसी तरह गृहस्थ को सही यथार्थ गृहस्थ और मुनि बनने के लिए तथा मुनियों को अपने आप में स्थिर होने के लिए सम्बोधन किया जाता है। अतः धर्मोपदेश पतन से बचाने के लिए और ऊपर आगे बढ़ने के लिए किया जाता है।

प्र.105–यदि वहाँ मिथ्यादृष्टि जीव नहीं हैं तो उनका निषेध क्यों? जहाँ जाकी कीमत नहीं तहाँ ताको का काम। धोबी बसके का करे जहाँ वैरागिन का गाँव?

उत्तर–आपका कहना सत्य है किन्तु भविष्य में बालक बालिकाओं को प्रसूति के सवा या डेढ महिने के बाद परिवार के सदस्यगण गाजे बाजे के साथ मंदिरजी लाते हैं, वहाँ पर गुरु से मद्य माँस मधु का और पाँच उदुम्बर फलों का त्याग रूप 8 मूलगुण धारण कराते हैं। अब सोचो वह बालक क्या कहाँ खायेगा पियेगा फिर भी भविष्य में वो आदतें न आ जायें इस कारण त्याग कराया जाता है अपने क्षयोपशम के अनुसार समस्त ज्ञेय हेय और उपादेय तत्त्व का कथन किया जाता है। समस्त संसार ज्ञेय तत्त्व केवली के ज्ञान का विषय होने से उपदेश दिया है ऐसा कोई नियम नहीं हैं कि प्रवृत्ति हो तभी त्याग का उपदेश हो किन्तु ऐसा भी नियम है कि मैं भविष्य में सेवन न करूँगा, धारण न करूँगा, शादी न करूँगा या आराधना करूँगा त्यागीव्रती बनूँगा, प्रतिज्ञा को वृद्धिंगत करूँगा आदि क्योंकि ज्ञेय हेय और उपादेय तत्त्व प्रमत्तों की दिनचर्या में होते हैं और केवलियों के ज्ञान के विषय होते हैं वे ज्ञेय को ज्ञेयरूप में, हेय को हेयरूप में और उपादेय को उपादेय के रूप में अथवा विधि और निषेध रूप में उपदेश करते हैं उनका जैसा विषय हुआ वैसा दिव्यध्वनि से कहा।

प्र.106–सम्यग्दृष्टियों में भी संयमियों के लिए होता है या असंयमीजनों के लिए?

उत्तर–संयमी और असंयमी दोनों के लिए तीर्थंकर प्रभु का धर्मोपदेश होता है, क्योंकि तीर्थंकर प्रभु की 12 सभाओं में संयमी और असंयमी दोनों होते हैं तथा वे निज शक्त्यनुसार पालन करते हैं।

प्र.107–संयमीजनों में भी प्रमत्तमुनियों के लिए होता है या अप्रमत्तमुनियों के लिए?

उत्तर–प्रमत्त और निरतिशयअप्रमत्त मुनियों के लिए धर्मोपदेश होता है, सातिशयअप्रमत्तादि मुनियों के लिए नहीं क्योंकि सातिशयअप्रमत्त मुनियों के ध्यानावस्था में सुनने सुनाने का विकल्प ही उत्पन्न नहीं होता है कारण उपयोग का इष्टानिष्ट विकल्प रूप में परिणमन संज्वलनकषाय के तीव्रोदय के साथ होता है तभी प्रमाद कहलाता है।

प्र.108–द्रव्यार्थिकनय या निश्चयनय और पर्यायार्थिकनय या व्यवहारनय का उपदेश किन जीवों के लिए होता है?

उत्तर–जो भव्य जीव संसार बंधन से छूटना चाहते हैं तथा नयों के द्वारा वस्तुस्वरूप को समझने के इच्छुक हैं, माध्यस्थ भाव को धारण किये हुए हैं, आत्मसंशोधन के उपाय में लगे हुए हैं, हठग्राही नहीं हैं, प्रमाण और नयों के पक्षपाती नहीं हैं ऐसे भव्य जीवों के लिए जिनेन्द्र देव ने नय युगलों का अथवा संख्यात असंख्यात और अनंत नयों का उपदेश दिया है।

प्र.109–नयों का उपदेश क्यों दिया गया क्या प्रयोजन है?

उत्तर–नयों का उपदेश वस्तु स्वरूप को समझने के लिए दिया है। वस्तुतत्त्व तथा मोक्षमार्ग को समझने के लिए ये नय साधकतम उपाय हैं। क्योंकि सूत्रकार ने **''प्रमाण नयैरधिगमः''** इस सूत्र में नयैः ऐसा तृतीयाविभक्ति के बहुवचन के रूप का प्रयोग किया है और तृतीयाविभक्ति का नाम करणकारक है। जो कार्य के प्रति अत्यंत निकटतम सहायक हो उसे करण कहते हैं क्योंकि संस्कृत व्याकरण में **साधकतमं करणम्** ऐसा आ. श्री पूज्यपाद स्वामी ने अपने जैनेन्द्र व्याकरण के प्रथम अध्याय के दूसरे पाद के 113वें सूत्र में कहा है। इस कारण प्रमाण नय और निक्षेप के बिना मोक्षमार्ग और लोक व्यवहार मार्ग सम्यक्रूप से नहीं समझा जा सकता है क्योंकि इनके बिना गलत सही रूप में और सही गलत रूप में ज्ञान का विषय बन जाता है, जिससे उभय मार्ग समझ में न आने से, प्रयोग में न आने से कदम कदम पर कष्ट का सामना करना पड़ता है अतः लोकव्यवहार में तथा मोक्षमार्ग में बाधा उत्पन्न न हो इसलिए नयों का उपदेश दिया गया है।

प्र.110–जिनवाणी को कितने भागों में बांटा गया है और उनके नाम क्या[2] हैं?

उत्तर–आचार्यों ने जिनवाणी को चार भागों में विभाजित किया है। **नाम**–1. प्रथमानुयोग, 2. करणानुयोग, 3.चरणानुयोग 4.द्रव्यानुयोग। (आ. श्रीसमंतभद्र प्रणीत र.श्रा।)

प्र.111–प्रथमानुयोग जिनवाणी किसे कहते हैं और इसमें क्या वर्णन है?

उत्तर– **प्रथमानुयोग मर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यं।**
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः।।43।।

सम्यग्ज्ञान प्रथमानुयोग शास्त्र परमार्थ का, चरित्र का, पुराण का, पुण्य पुरुषों का, महान पापी जीवों का, रत्नत्रय की प्राप्ति का, रत्नत्रय को या रत्नत्रय के संस्कारों को एक भव से दूसरे भव में साथ ले जाने का उपाय बताने वाला कहा है। इन प्रथमानुयोग शास्त्रों में पुण्य पुरुषों का वर्णन मोक्षमार्ग में उत्साह बढ़ाने के लिए और पापी जीवों का वर्णन संसार शरीर भोगों से वैराग्य प्राप्त करने के लिए किया है अतः प्रथमानुयोग शास्त्र अनेक गुणरत्नों का सुंदर सुंदर सूक्तियों का खजाना स्वरूप है।

प्र.112–प्रथमानुयोग शास्त्रों में किनका वर्णन है?

उत्तर–प्रथमानुयोग शास्त्रों में 63 शलाका पुरुषों का और 169 पुण्य पुरुषों का वर्णन है अथवा आक्षेपणी कथा, विक्षेपणी कथा, निर्वेदनी कथा और संवेदनी कथाओं का वर्णन है। **आक्षेपणी कथाः**–स्वसमय का, मोक्षमार्ग का कथन करना। **विक्षेपणी कथाः**–परमत का खंडन कर स्वमत का मंडन करना। **निर्वेदनी कथाः**–संसार शरीर भोगों से विरक्त होना या पाप से भयभीत होना। **संवेदनीकथाः**–पुण्य कार्यों में या पुण्य के फल में उत्साहित करने वाली कथा करना।

प्र.113–इसे प्रथमनानुयोग शास्त्र क्यों कहा?

उत्तर–इन प्रथमानुयोग शास्त्रों में सर्वप्रथम मिथ्यादृष्टि जीवों को मोक्षमार्ग में प्रवेश कराने का तथा जो अल्प क्षयोपशम वाले हैं उनमें दृढ विश्वास उत्पन्न कराने का और जिनका विश्वास डगमगा रहा है उनमें स्थिरता लाने का तथा विषय में प्रवेश कराने का अनन्यतम उपाय है क्योंकि इसके बिना सहीरूप में सामान्य संसारी प्राणी पुण्यपाप को नहीं जान पाते हैं, ना ही पुरुषार्थ चमकता है, इसीलिए इसे प्रथमानुयोग शास्त्र कहा है।

प्र.114–परमार्थ किसे कहते हैं?

उत्तर–**'यथानाम तथागुण'** जैसी कहावत के अनुसार परम, उत्कृष्ट, निर्दोष जो अर्थ हैं छः द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय ये सभी सापेक्ष परमार्थभूत तत्त्व कहलाते हैं क्योंकि ये सभी अपने[2] स्वभाव के अनुसार अनन्त गुणधर्मों को समाहित किये हुए हैं अतः इन्हें ही परमार्थभूत तत्त्व कहते हैं।

प्र.115–इन जीव द्रव्यादि 27 तत्त्वों को परमार्थ क्यों कहा?

उत्तर–ये सभी जीव द्रव्यादि 27 तत्त्व अपनी[2] स्वपर निमित्तक अंतरंग बहिरंग कारणों से शुद्धाशुद्ध अर्थक्रिया, क्षेत्रांतर क्रिया और परिणति क्रिया से युक्त होने के कारण ही इन्हें परमार्थ तत्त्व कहा है।

प्र.116–अपरमार्थभूत तत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर–ये 27 तत्त्व अनंत अनंत धर्मवाले हैं तो भी ये तत्त्व चिंतक मन में प्रमाण नय निक्षेपों से निरपेक्ष होकर अपने प्रतिपक्षी धर्म को छोड़कर स्वीकार करते हैं, तब उस चिंतक को ये ही तत्त्व अपरमार्थभूत होकर संसार में भ्रमण कराने में सहायक हो जाते हैं। अतः चिंतक की अपेक्षा ही ये परमार्थ तत्त्व अपरमार्थ तत्त्व कहलाते हैं स्वभाव से नहीं।

प्र.117–चरित्र किसे कहते हैं?

उत्तर–विशेष पुण्य या पाप के फल को दर्शाने वाले किन्हीं महापुरुषों के आश्रित जीवनचर्या के द्वारा उत्थान पतन को बताने वाले शास्त्रों को चरित्र ग्रंथ कहते हैं अथवा एक महापुरुष के जीवन काल की कथा करने वाले ग्रन्थ को चरित्रग्रन्थ कहते हैं। जैसे प्रद्युमनचरित्र, श्रीपालचरित्र, बाहुबलीचरित्र आदि।

प्र.118–पुराण किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन ग्रन्थों में समुच्चय रूप से अनेक महापुरुषों का जीवनदर्शन बताया गया है कि उन्होंने उत्थान किया है या पतन तथा ये शलाका पुरुष, महापुरुष किस उपाय से बने बाद में कौन सा कर्म कर मोक्ष को प्राप्त हुए या अधोगति को, नरक को प्राप्त हुए आदि पुण्य पाप के विशेष फल को बताने वाले शास्त्रों को पुराण कहते हैं अथवा एक तीर्थंकरों के वर्णन करने वाले शास्त्रों को भी पुराण कहते हैं जैसे– आदिनाथपुराण, उत्तरपुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, शान्तिनाथपुराण, महावीरपुराण, पार्श्वपुराणादि।

प्र.119–पुण्य पुरुष किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन्होंनें पूर्व भव में मुनिपद धारण कर तीव्र सातिशय या निरतिशय स्वरूप निदान बंध के बिना या निदानबंध कर पुण्य से विशेष पदवी प्राप्त की है उन्हें पुण्यपुरुष कहते हैं। ये पदवीधारी होते हैं और इनके अलावा इनके ही समान बलवीर्य के धारक, नाना धन वैभव के स्वामी महापुरुष होते हैं।

प्र.120–पुण्य पुरुष और शलाका पुरुष कितने होते हैं?

उत्तर–पुण्यपुरुष 169 और शलाका पुरुष 63 होते हैं। **पुण्यपुरुषः**–24 तीर्थंकर, 48 मातापिता, 24 कामदेव, 12 चक्रवर्ती, 14 कुलकर, 11 रौद्र, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 बलबद्र, 9 नारद ये 169 हैं। **शलाकापुरुषः**–24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 बलबद्र।

प्र.121–पुण्य पुरुष कहाँ होते हैं?

उत्तर–ये सभी पुण्य पुरुष ढाईद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र, विदेहक्षेत्र, ऐरावतक्षेत्र के कर्मभूमिज आर्यखंड में होते हैं।

प्र.122–पुण्य पुरुष की पदवी प्राप्त करना किसका फल है?

उत्तर–ये सभी पुण्य पुरुष रत्नत्रयधर्म के और रत्नत्रय सहित सातिशय पुण्य के फल हैं।

प्र.123–ये पुण्य पुरुष रत्नत्रयधर्म के साक्षात् फल हैं या परम्परा फल हैं?

उत्तर–नहीं, ये पुण्यपुरुष रत्नत्रय धर्म के साक्षात् फल नहीं हैं किन्तु परम्परा फल हैं क्योंकि रत्नत्रय का साक्षात् फल मोक्ष ही है दूसरा नहीं पर रत्नत्रय धर्म की साधना के साथ साथ जो पाप कर्म की निर्जरा और नवीन पाप का संवर हुआ है तथा सातिशय पुण्य कर्म का आश्रव बंध हुआ है उसके उदय से ये पदवियां प्राप्त होती हैं इसलिये ये पद रत्नत्रय के परम्परा फल हैं साक्षात् नहीं।

प्र.124–ये पुण्य पुरुष कहाँ से आते हैं और कहाँ जाते हैं?

उत्तर–तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले पुण्य पुरुष नरक से और स्वर्ग से, शेष महापुरुष स्वर्ग से आते हैं। तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले पुण्य पुरुष एकमात्र मोक्ष में जाते हैं। नारायण, प्रतिनारायण, नारद, रौद्र ये एकमात्र अधोगति में, माता स्वर्ग में, पिता तथा कामदेव और बलभद्र कोई स्वर्ग और कोई मोक्ष में, कुलकर एकमात्र स्वर्ग में, चक्रवर्ती कोई स्वर्ग में, कोई नरक में और कोई मोक्ष में जाते हैं।

प्र.125–बोधि किसे कहते हैं?

उत्तर–रत्नत्रय की प्राप्ति को, वृद्धि को, पूर्ति को बोधि कहते हैं।

प्र.126–समाधि किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस उपाय से रत्नत्रय धर्म का संस्कार एक भव से दूसरे भव में साथ में जाए उस उपाय को या निर्विकल्प ध्यान करने को समाधि कहते हैं या अनेक प्रकार के उपसर्ग परिषहों के आने पर भी अपनी आत्मसाधना से चलायमान न होने को अथवा आधि, व्याधि और उपाधि के आने पर, प्राप्त होने पर भी अहंकार ममकार और घबराहट न होने को समाधि कहते हैं।

प्र.127–निधान किसे कहते हैं?

उत्तर–बोधि समाधि के आधार को, आश्रय को बताने वाले उपाय को निधान कहते हैं।

प्र.128–प्रथमानुयोग शास्त्र का उद्गमस्थान कौन सा है?

उत्तर–प्रथमानुयोग शास्त्र का उद्गमस्थान दृष्टिवाद अंग है इसलिये प्रथमानुयोग शास्त्र को समझना अति कठिन है। अनेकों के मुँह से सुना है कि पुराण चारित्रग्रंथ समझ में नहीं आते सो उनका कहना यथार्थ है, यदि पढकर के मन में विकार आ गया तो क्या समझा? उसी समय मोक्षमार्ग से पतनकर मिथ्यात्व मार्ग में प्रवेश कर जाता है। अतः जो आठ रसों के वर्णन में फंसा नहीं वही व्यक्ति शांत रस को प्राप्त करता है और उसीने प्रथमानुयोग शास्त्रों को यथार्थ रूप में समझा है अन्य ने नहीं।

प्र.129–प्रथमानुयोग के उद्गमस्थान स्वरूप दृष्टिवाद अंग किसे कहते हैं, फल क्या है?

उत्तर–जिनग्रंथों में 363 क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और वैनयिकवादी आदि मिथ्यामतों को पूर्वपक्ष में रखकर दोष बताकर खंडनकर जिनमत की स्थापना करनेवाले ग्रंथों को या अनेक मिथ्यामतों को दूषित ठहराकर निराकरण करनेवाले शास्त्रों को दृष्टिवाद अंग कहते हैं। सो प्रथमानुयोग शास्त्रों में सभी प्रकार का कथन है तथा शांत रस को छोडकर शेष नाना रसों की दृष्टियों का और अनेक मिथ्या मतों का कथनकर यह संसार मार्ग है, दुःख का मार्ग है, पाप का मार्ग है ऐसा कहा है। **फलः**–इन रसों में कामी, लोभी, मोही जीव रमणकर संसार में डूबते हैं ऐसा कहा है और जो इनमें नहीं फंसे वे संसार बंधन से छूटकर मोक्ष को पाते हैं।

प्र.130–यहाँ आदि पद से किन मिथ्यामतों को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर–जो अस्तिवादी, नियतवादी, पुरुषार्थवादी, भाग्यवादी, एकांतवादी आदि अनंत मिथ्यामतियों को आदि पद से ग्रहण कर लेना चाहिये क्योंकि मिथ्यात्व परिणाम अनंत भेद वाले हैं।

प्र.131–प्रथमानुयोग शास्त्रों में शृंगार हास्यादि रसों का वर्णन क्यों किया और इन रसों का कथन होने से समीचीन शास्त्र नहीं कहे जा सकते हैं?

उत्तर–वीतरागी संयमी महापुरुषों ने भव्य प्राणियों को संसार समुद्र से पार उतारने के लिए कथन किया है और अंतरंग हेतु सही होने से समीचीन सम्यक्शास्त्र कहा है। इस अनुयोग में प्रसंगानुसार यथावसर नौ रसों का वर्णन किया गया है किन्तु शान्तरस प्रधान है, श्रेष्ठ है। आचार्यों ने शेष रसों का वर्णन परीक्षा के लिए किया है यदि इन रसों का कथन पढ़कर, सुनकर फंस गये तो शान्तरस प्राप्त न कर पाओगे, न दीक्षा ले पाओगे, न संयम पालन कर पाओगे। जैसे वास्तविक हीरे को कितने ही घनों से पीटा जाये पर किंचित् मात्र भी खरोंच न आयेगी, न टूटता है, न फटता है वैसे ही वास्तविक जैन इन प्रथमानुयोग शास्त्रों को पढ़कर, सुनकर के विषय भोगों में, मोह में नहीं फंसता है अतः ये शास्त्र सत् शास्त्र ही है।

प्र.132–प्रथमानुयोग शास्त्रों में शृंगारादि रसों का कथन करने वाला होने से कुशास्त्र ही है अन्यथा वीतरागता और सरागता का भेद नहीं बनेगा?

उत्तर–कथंचित् परिणाम भिन्न होते हैं और कथन भिन्न होता है। सर्वथा परिणाम और कथन में एकता नहीं होती है अन्यथा डॉक्टर प्रसूति का वर्णन करता है तो डॉक्टर को स्वयं की प्रसूति करानी होगी तब तो डॉक्टर को स्वयं अपनी प्रसूति करने का प्रसंग आयेगा? सेठ का मुनीम सेठ को मालूम हुए बिना व्यापार में घाटा और मुनाफा होने पर दुःखी होता है और प्रसन्न होता है पर अंतरंग में भेदविज्ञानी है कि यह घाटा और मुनाफा सेठ का है हमारी तो पगार निश्चित है। इसी तरह जिनमुद्राधारी निर्ग्रंथ मुनिजनों ने संसारी प्राणियों को पार होने के लिए, दृढ़ता लाने के लिए तथा पापमल को धोने के लिए कथन किया है, पाप में लगने लगाने के लिए नहीं अथवा सूत्ररूप से कथन करने वाले तीर्थंकर, सर्वज्ञ केवली, कुछ विस्तार करने वाले सम्पूर्ण श्रुतज्ञानधारी समयानुसार कुछ विस्तार करनेवाले चार ज्ञान के धारी गणधर, मनःपर्यय ज्ञानधारी, श्रुतकेवली और श्रोताओं के क्षयोपशमानुसार उनके धारण करने योग्य प्रथमानुयोग शास्त्रों का अत्यधिक विस्तार करने वाले आरातीय आचार्य हैं जो दिगम्बर थे, वीतरागी थे, ख्याति, पूजा, लाभ की दुर्भावना के त्यागी थे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से शुद्ध थे, जाति कुल से शुद्ध थे उन्होंने इन प्रथमानुयोग शास्त्रों की रचना की है। राजाओं का, नगर सेठों का, देवों का क्या वैभव था, भोग विलास की कितनी सामग्री थी उस सामग्री को सड़ी घास के समान जानकर, मानकर, छोड़कर जिन दिगम्बरमुद्रा धारण कर ली फिर मुड़कर नहीं देखा कि उस सामग्री का क्या उपयोग हुआ, किसने ली, कहाँ गई आदि विचार नहीं किया तो वे मोक्ष को या उच्च देव पदवी को प्राप्त हुए और जो अन्त तक भोगों में लिप्त रहे, रमण करते रहे तो वे मरणकर नरक निगोद के पात्र हुए अतः आपको अधोगति से बचाने के लिए, उच्च बनाने के लिए उपदेश दिया है अतः कुशास्त्र नहीं है अपितु प्रथमानुयोग समीचीन शास्त्र है।

प्र.133–यदि उच्च बनाने का उद्देश्य था तो स्त्री पुरुषों का पैर के तलवे से लेकर सिर तक का वर्णन क्यों किया?

उत्तर–यह कथन तुम्हारे परिणामों को पकड़ने के लिए किया है यदि दीक्षा लेना चाहते हो और मन में राग की, शृंगार की भावना है तो दीक्षा मत लो, विकार युक्त दीक्षा लेने से क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है? अंतरंग से रागादि विकारों को निकालकर अलग नहीं किया और नग्न दीक्षा ले ली तब दीक्षा लेने के बाद नग्न रहकर कैसे विहार करोगे? सुनकर या पढ़कर मन में, तन में विकार उत्पन्न होता है या हो गया तो रागोत्पादक सामग्री के सामने आने पर मन को कैसे सम्हालोगे? मन बिगड़ा तो तन नियम से बिगड़ जायेगा। आजकल जिन साधुओं में या त्यागीव्रतियों में जो भ्रष्टता आई है उसका मूल कारण है कि इन ग्रन्थों का तलस्पर्शी अध्ययन आत्मकल्याण हेतु नहीं किया किन्तु प्रवचन हेतु, आकर्षण हेतु, प्रभाव जमाने हेतु, दूसरों के खंडन के हेतु अध्ययन किया है। सो इसीका फल है कि बाह्य में वीतरागियों जैसी कुछ चर्या पालन करते हैं या आचार्यों ने बाह्य में वीतरागियों जैसी कुछ चर्या को देखकर मुनि बना दिया फिर बाद में गृहस्थों के घर में आहारचर्या के लिए या दर्शनार्थ पधारे

गृहस्थ, श्रावक, श्राविकायें आगे आईं तब उनके रूप अलंकार को देखकर, मोहित होकर वार्तालाप कर राग में फंसकर हंसी मजाक की तो मन में और तन में विकार आया तब सुअर के समान आचरण करने लगे, भ्रष्ट हुए और वस्त्र धारणकर पुनः गृहस्थ बन गये। यदि बाह्याभ्यंतर में वैरागी हो तो कथाओं के शब्दों को, संगीत को, वार्तालाप को सुनकर, रूप सौंदर्य को देखकर विकार की, राग की, शृंगार की भावना पैदा नहीं होनी चाहिए। आश्चर्य इस बात का है कि सुनकर लज्जा आती है, पाप करने में लज्जा नहीं आती क्योंकि एक ही जगह बैठकर माता पिता, सास श्वसुर, जवान बेटा बेटी बहु टी. वी. में नग्न चित्र, नंगे गीत, विकार युक्त चेष्टायें, विकार युक्त वस्त्राभूषण देखते हैं, धारण करते हैं, प्रसन्न होते हैं यहाँ लज्जा आना चाहिए पर नहीं आती। अतः सौन्दर्य का, शृंगार का वर्णन करते समय यह भी तो कहा है कि यह शरीर सप्त मल धातुउपधातुओं का पिटारा है। इस शरीर में सौन्दर्य मलमूत्र, रक्त, मांस, चर्बी, मैदा, वातपित्तकफ का है। यदि संदेह है तो थोड़ी देर के लिए परीक्षा करके देख लो। कैसे? दो चार दस्त लग जाये, वमन हो जाये फिर देख लो शरीर का सौन्दर्य, तेज, कांति कहाँ गई? कहाँ विलीन हो गई? ऐसे शरीर में कामी, मोही, पापी जीव ही फंसते हैं, राग को, प्रीति को प्राप्त होते हैं, मरणकर नरक निगोद के पात्र होते हैं और जिन्होंने इस कथन को सुनकर राग का, विकार का, काम भोग का त्याग किया वे स्वर्ग मोक्ष के पात्र हुए। इस अभिप्राय को ध्यान में क्यों नहीं लेते हो? सर्वप्रथम वैभव से भोगविलास के सुख का कथन किया बीचबीच में इसे सुखाभास, मृगमरीचिका, खाज खुजाने के समान कहा, विष मिश्रित मोदक के समान कहा। इसी तरह आरंभपरिग्रह के संबंध में जो अंत तक फंसे रहे, त्याग करने का भाव नहीं लाये वे नरकायु को बांधकर मरण कर नरक में उत्पन्न हुए और दुःख भोगने लगे। उदाहरण में नारायण, प्रतिनारायण, सुभौमचक्रवर्ती, ब्रह्मदत्तचक्रवर्ती, नारद, रौद्र, श्रेणिकादि राजाओं को देखना चाहिए। इन महापुरुषों को अपने आत्मोद्धार के लिए उदाहरण में ग्रहण क्यों नहीं करते हो? इसलिए आप जैसे भोगियों को, कमजोर मन वालों को उच्च बनाने के उद्देश्य से ही कथन किया है, पतन के लिए नहीं। मन मलिन है तो उच्च कैसे बनोगे? अतः जैसा बनना है वैसी दिनचर्या का पालन करो। अरे उन महापुरुषों के पास इतना सारा वैभव था उस धन को पाप का, संसार का कारण, दुःख का कारण मानकर छोड़ कर वनवासी हुए। तूँ पामर, तेरे पास में क्या है जो तूँ इतना उबल रहा है, अहंकारी, ममकारी बन रहा है इसलिए प्रथमानुयोग शास्त्रों को समझना और जीवन में उतारना अति कठिन है ।

प्र.134–प्रथमानुयोग शास्त्रों के कथन को सुनकर निदान बंध क्यों नहीं होगा ?

उत्तर–आपको निदान की परिभाषा, निदान का फल, कामभोग में फंसे प्राणियों की क्या दशा हुई, होती है, होगी यह प्रथमानुयोग शास्त्र ही बताता है। द्रव्यानुयोग शास्त्र नहीं अथवा प्रथमानुयोग शास्त्रों में चारों अनुयोग यथावसर आ जाते हैं जो पठन से मालूम होगा, अन्तः निरीक्षण से मालूम होगा। यदि किसी का होनहार और पुरुषार्थ खोटा है तो शास्त्रों को सुनकर निदानबंध कर ले तो इसमें शास्त्रों का क्या दोष है, इसमें तो उसके होनहार का ही दोष है शास्त्र का नहीं। पढ़कर सुनकर निदानबंध कम होता है किंतु देखकर ज्यादा होता है। नारायण प्रतिनारायणों ने पूर्वभव में राज्य वैभव को देखकर ही निदानबंध किया था शास्त्र लिपिरूप में इसी काल में और भरत ऐरावत क्षेत्र में होते हैं शेष क्षेत्रों में लिपिरूप में नहीं होते हैं। अतः मुँह जबानी वार्तालाप सुनकर या देखकर निदानबंध हुआ तो उसने अपनी दुर्बुद्धि से, खोटी चर्या से, सम्यक्शास्त्र को प्राणघातक शस्त्र बना लिया तब इसमें शास्त्र का क्या दोष है? यदि शस्त्र को चलाने की शक्ति है तो शस्त्र रक्षक है अन्यथा भक्षक है, घातक है।

प्र.135–शृंगार का, सौन्दर्य का, कामभोग का इतने खुले शब्दों में कथन नहीं करना चाहिए क्योंकि पठन में, धर्मसभा में माँ बहिनों को, बहू बेटियों को सुनने सुनाने में लज्जा आती है अतः वह विषय छोड़ दिया जाता है न पढ़ते हैं न पढ़ाते हैं, न सुनते हैं न सुनाते हैं?

उत्तर–आपको यह विषय पढ़ने में, सुनने में लज्जा आती है क्योंकि आपके और सामने वाले के मन में विकार है विषयभोगों को भोगने में, अश्लील चित्र देखने में, पत्र पत्रिकायें पढ़ने में, अश्लील एकदम पतले वस्त्र पहनने में, पिक्चर देखने में लज्जा नहीं आती। पाप करते समय, पापकारक सामग्री का उपयोग लेते समय लज्जा, मानमर्यादा कहाँ चली जाती है? यह आपको मालूम है। रास्ते में खड़े खड़े लघुशंका, पेशाब करते हैं, होटलों में, बाजारों में खड़े खड़े खाते हैं, अनछना पानी पीते हैं, अश्लील हंसी मजाक करते हैं आदि में लज्जा नहीं आती है पहले बालक बाल

बनवाते थे अब बालिकायें भी नानाप्रकार की बॉयकट, लेजरकट, स्टेपकट आदि हेयरस्टाइल तथा आइब्रो, वेक्स, फेशियलादि शृंगार करतीं हैं, पहले शिर खोलने में शर्म आती थी अब ढकने में शर्म आती है यह बड़ा आश्चर्य है।

प्र.136–प्रथमानुयोग शास्त्रों में नव रसों का वर्णन किया है, इसमें शान्त रस मोक्ष का हेतु है शेष आठ रस संसार के हेतु हैं तब संसार के हेतुओं का वर्णन क्यों किया इसीलिए प्रथमानुयोग ग्रन्थ अश्लील शास्त्र है ऐसा क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर–आपको केवल वर्णन पढ़कर या सुनकर के निर्णय नहीं कर लेना चाहिए कि यह रस मोक्ष का हेतु है और यह संसार का हेतु है किन्तु सर्वप्रथम यह समझना है कि इन ग्रन्थों के लिखने वाले कौन थे? वीतरागी या सरागी, दिगम्बराचार्य थे या गृहस्थाचार्य थे, पाप भीरू थे या पाप कार्य में संलग्न थे। यदि उत्कृष्ट थे तो उन्होंने अपना अमूल्य समय ध्यानाध्ययन से बचाकर भव्य जीवों के कल्याणार्थ लिपिबद्ध किया गृहस्थों को मोक्षमार्ग में लगाने के लिए कथन किया है, विषयविकार में फंसाने के लिए नहीं किया है, न हेतु है। अतः अंतरंग में मोक्ष के हेतु से आठ रसों का वर्णन संसार का हेतु कैसे हो सकता है? जैसे सत्संस्कार युक्त माता पिता कभी भी, किसी भी हालत में अपनी संतान का अहित नहीं चाहते हैं, पतन नहीं चाहते हैं, न दुःखी अवस्था में देखना चाहते हैं तब धर्मगुरु आपका पतन, आपको दुःखी अवस्था में कैसे देखना चाहेंगे? अतः नव रसों का वर्णन मोक्ष के हेतु किया गया है, संसार के हेतु नहीं। इतना अवश्य है कि शान्त रस का वर्णन विधिपूर्वक मोक्ष के लिए कहा गया है और शेष आठ रसों का वर्णन निषेधपूर्वक मोक्ष के हेतु कहा गया है क्योंकि आठों कर्मों को क्षय करके ही शान्त रस स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः जिन्होंने आठ रसों के वर्णन को सुनकर, पढ़कर अंतरंग और बहिरंग से आठ रस भावों का त्याग किया है उन्होंने ही मोक्ष पाया है इसलिए धर्मगुरु त्रिकाल में भी शिष्यों को, श्रावकों को, श्रोताओं को संसार में भ्रमण कराने के लिए कथन नहीं करते जैसे वैद्य रोगी को रोग से मुक्त कराने के लिए पथ्यापथ्य का उपदेश करता है हानिकारक अपथ्य का त्याग कराता है और लाभदायक पथ्य का सेवन कराता है तभी स्वास्थ्य अच्छा होता है अन्यथा नहीं। यदि हानिकारक आहार विहार का कथन नहीं करे तो त्याग कैसे करायेगा? यदि आपके मतानुसार कदाचित् धर्मगुरुओं ने आठ रसों का वर्णन संसार के हेतु किया है तो मोक्षमार्ग का कथन कौन करेगा? मोक्षमार्ग कौन बतायेगा? आपको स्वयं निष्पक्ष होकर विचार करना चाहिए अतः इस अनुयोग में आचार्यों ने मोक्ष के हेतुभूत संपूर्ण रसों का, धर्मध्यान और शुक्लध्यानों का वर्णन किया है।

प्र.137–प्रथमानुयोग शास्त्रों में 9 रसों के वर्णन में, चिंतन में आनंद मानना हर्ष विषाद करना कौन सा ध्यान है?

उत्तर–इन्हीं 9 रसों के कथन में भेद विज्ञान सहित संयम पूर्वक चिंतन करना धर्मध्यान है और विषयकषायों के साथ विषाद पूर्वक चिंतन करना, कथन करना आर्तध्यान है और आनंद मानना रौद्रध्यान है।

प्र.138–प्रथमानुयोगशास्त्रों में शलाका पुरुषों का या अधोगामी नीचकर्मी पुरुषों का कथन पढ़ने, सुनने से मोक्षमार्ग की प्राप्ति कैसे हो सकती है? तो क्या मोक्षमार्ग की प्राप्ति अध्यात्म शास्त्रों के अध्ययन, मनन, चिन्तन, विश्वास से हो सकती है?

उत्तर–उक्त आत्मायें किसी न किसी तत्त्व में, पदार्थ में, द्रव्य में, अस्तिकायों में अंतर्भाव को प्राप्त हो जाती हैं तथा पुण्य पाप के फल हैं। रत्नत्रय के, निदान शल्य के फल हैं, यह कर्म भूतकाल की पर्याय में किया था तथा वर्तमान में किस प्रकार का कर्म कर रहे हैं और इस कर्म का फल भविष्य में क्या कैसा प्राप्त करेंगे। उनकी इस करनी की कथनी को पढ़कर मन में संसार, शरीर, भोगों से विरक्ति प्राप्त हो, धर्म और धर्म का फल प्राप्त हो, मन में प्रीति, प्रेम, वात्सल्य, प्रमोद भाव जागृत हो। **सो कैसे?** देखो इस जीव ने पूर्वभव में रत्नत्रय की आराधना की थी सो यह फल प्राप्त किया है अब पुनः रत्नत्रय की आराधना कर रहा है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति करेगा या इन्द्रपद अहमिन्द्रपद प्राप्त कर परम्परा से मोक्ष फल प्राप्त करेगा अथवा रत्नत्रय की आराधना करते समय किसी राजवैभव को देखकर निदान बंध कर स्वर्ग में जाकर वहाँ के सुख भोगकर फिर वहाँ से चयकर राज्य संपदा पाकर अन्त पर्यन्त रममाण होकर, त्याग न कर, मरण कर नरक निगोद का पात्र हुआ इसलिए हम भी उत्कृष्ट रीति से रत्नत्रय का पालन कर तथा पाप के फल को दुःखदाई मानकर छोड़कर उत्तम मोक्षमार्ग को प्राप्त करेंगे ताकि सद्गति की प्राप्ति हो, मोक्ष की प्राप्ति हो। देखो, अपने परिवार का कोई निकट संबंधी दूर देश में या कहीं पास में रह रहा

है उसने कोई लाभकारी व्यापार की घटना, विवाह की वार्ता, पुत्ररत्न की प्राप्ति की सूचना फोन पर दी या पत्र के द्वारा सूचित किया तब उसको सुनकर, पढ़कर मन में कितना आनंद हर्ष उत्पन्न होता है या दुःखभरी सूचना दी वह चाहे घाटे की हो, हानि की हो, बीमारी की हो, मृत्यु की हो तब कितना दुःख होता है। ये कोई महान पुरुष नहीं हैं अपने समान आचरण करने वाले हैं अथवा हीनाचारी हैं, दुराचारी भी हो सकते हैं फिर इनकी घटना को पढ़कर या सुनकर प्रसन्नता या दुःख होता है तो वे उक्त दम्पत्ति महान हैं उनके पुण्य पाप के फल को पढ़कर, सुनकर, देखकर मन में हर्ष विषाद क्यों नहीं होगा अर्थात् अवश्य ही होगा। अतः नीचकर्म और उसके फल से भयभीत होकर त्यागकर उच्च कर्म में मन वचन काय, निष्कपट, निःस्वार्थ भावपूर्वक लगने से, आत्मसात् करने से रत्नत्रय की प्राप्ति अवश्य होती है। क्योंकि पुण्य पाप भी अशुद्ध पर्यायरूप पदार्थ हैं। नव पदार्थों में विश्वास करना सम्यग्दर्शन कहा है इसलिए जितनी मात्रा में दृढ़ता के साथ आत्मा पर विश्वास करना सम्यग्दर्शन कहा है, उतनी ही मात्रा में पुण्य पाप पर विश्वास करना सम्यग्दर्शन कहा है। क्योंकि पुण्य पाप की जो अवस्था है वही अवस्था आत्मा की है और जो आत्मा की अवस्था है वही पुण्य पाप की अवस्था है। पर्याय के बिना द्रव्य और द्रव्य के बिना पर्याय नहीं होती है ऐसी यह द्रव्य की स्वभावगत व्यवस्था है।

प्र.139–आजकल दिगम्बर जैनसाधुओं में तथा समाज में प्रथमानुयोग शास्त्रों का पठन पाठन प्रायः कर समाप्त क्यों हो गया है?

उत्तर–इस कलयुग में, मशीन के युग में, भौतिक युग में प्राणी विषय भोगों में लम्पटी होने से तथा विषय भोगों को छोड़ने में असमर्थ होने के कारण त्याग नहीं करना चाहता इसलिए तत्संबंधी विषय को भी समझना नहीं चाहता। क्योंकि जानने से विषय विरक्ति उत्पन्न होगी जैसे किसी भोजन सामग्री में घृणा होने पर वह खाई नहीं जाती तथा जो मुख में है वह भी निकाल दी जाती है, उल्टी हो जाती है। जैसे लोकोक्ति है **'जनती लुगाई और बनती मिठाई को देख ले तो वैराग्य हो जाय', यदि होनहार अच्छा है तो।** इसलिए विषयभोगों को तथा सामग्री को छोड़ना पड़ेगा इस कारण जिनशासन में उन शास्त्रों को न पढ़कर द्रव्यानुयोग के शास्त्रों को पढ़ते पढ़ाते हैं क्योंकि इनमें त्याग का, संयम ग्रहण करने का उपदेश नहीं है केवल ध्यान का वर्णन है, श्रद्धान का या वीर्यरस का वर्णन है। जिसने अस्पताल देख लिया है, वहाँ के दुःख, चीर फाड़ देख ली है वह वहाँ नहीं जाना चाहता तो वहाँ जाने के कारणभूत कर्म को नहीं करता है ठीक वैसे ही प्रथमानुयोग शास्त्रों को पढ़कर नरक, तिर्यंचगति के दुःखों को समझ लिया है तब वह अंतरंग से वैसा कर्म नहीं करता है कि जिससे पुनः नरक, तिर्यंचगति में जाना पड़े। जिस व्यक्ति ने प्रथमानुयोग के शास्त्रों को पढ़कर, अनुभव कर वैराग्य प्राप्त किया है उसका वैराग्य मजबूत रहेगा तथा मन चलायमान नहीं होगा।

प्र.140–प्रथमानुयोग शास्त्रों में कथाकहानी आदि को पढकर सुनकर इन शास्त्रों को उपेक्षा बुद्धि से क्यों देखने लगते हैं?

उत्तर–शलाका पुरुषों में, पुण्य पुरुषों में, पुण्य पाप में, देव शास्त्र गुरुओं में विश्वास न होने से प्रथमानुयोग शास्त्रों को उपेक्षा बुद्धि से देखने लगते हैं। यदि वर्तमान में कोई आपका, आपके वैभव का, आपके परिवार का, शारीरिक सौंदर्य का, भोगविलास का, इन्द्रिय सुख का वर्णन करें तो आप किसे गलत कहेंगे, मिथ्या कहेंगे? कथन करने वाले को, कथन को या अपने वैभव को, परिवार को, सौंदर्य को, पुण्य या पुण्य के फल को। यदि आपके जीवनदर्शन का वर्णन सही है तो महापुरुषों का, मोक्षमार्गस्थ पुण्य पुरुषों का, पापी जीवों का कथन वर्णन गलत कैसे हो सकता है? जबकि कथन करने वाले दिगम्बर आचार्य सत्य महाव्रती थे, हैं और आगे होंगे, वे अनर्गल प्रलाप नहीं करते हैं, न लिखते हैं क्योंकि सत्यव्रत की भावनाओं में हास्यादि कषायों का त्याग बताया है। जब श्रावक के 12 व्रतों के एक अनर्थदंड व्रत का मौखर्य नाम का अतिचार दोष कहा है तो क्या महाव्रती मुनियों का अनाचार दोष नहीं कहलायेगा? जब अनाचार दोष लगा तो वे सत्य महाव्रती मुनि कैसे हो सकते हैं? इस कारण जिनवाणी के एक भाग को उपेक्षा बुद्धि से देखना और शेष को बहुमान देना यह अन्याय नहीं है तो क्या है ? जिनवाणी के एकभाग को उपेक्षा बुद्धि से देखना तो पूर्ण जिनवाणी को, जिनेन्द्र को, गुरुओं को भी उपेक्षा बुद्धि से देखना कहलाया सो यह मिथ्यात्व का ही उदय है। जैसे दूध अनेक गुणों से संपन्न होने पर भी जहर के संसर्ग से जहर के समान मारक हो जाता है वैसे ही अनेक गुणों से संपन्न होने पर भी किंचित् अविश्वास संपूर्ण गुणों को नष्ट कर मिथ्या बना

देता है। संसार का साधन बना देता है अतः जिनवाणी के किसी भी अंश को उपेक्षा दृष्टि से देखना आत्मविराधना करना है।

प्र.141–प्रथमानुयोग शास्त्रों में रौद्रों को पुण्यपुरुष क्यों कहा, जबकि ये बालब्रह्मचारी, अखंड महाव्रती मुनि आर्यिका की संतान है, भ्रष्टों की संतान है?

उत्तर–यह आपका तर्क सही नहीं है कि रौद्र गलत रजोवीर्य से उत्पन्न हुये हैं क्योंकि रौद्रों के माता पिता दोनों ही क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए हैं तब उनके रजो वीर्य को गलत कैसे कहा जाये? हाँ परिणाम दोष है। वर्तमान में प्रतिज्ञा भंग की यह अनाचार दोष है फिर भी रौद्रों को वर्तमान पर्याय की अपेक्षा पुण्यपुरुष नहीं कहा है किंतु भूतनैगम नय की अपेक्षा पुण्यपुरुष कहा है। क्योंकि पूर्व भव में पवित्र उत्कृष्ट रत्नत्रय धर्म की साधना आराधना की थी, परिणमन किया था अतः निकटभव्य हैं, मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं। वर्तमान में उत्तम संहनन के धारी हैं, अनेक विद्यामंत्रों के स्वामी हैं अतः पुण्यपुरुष महापुरुष कहा है अथवा ये जिन मुनि और आर्यिका की संतान हैं वे निर्दोष चारित्र का पालन करते थे, दृढधर्मी थे, अखंड बाल ब्रह्मचारी महाव्रती थे किंतु उनका भवांतरों से प्रेमसंबंध चला आ रहा है तो उस संबंध के कारण ही वर्तमान में प्रसंग पाकर प्रेमभाव को प्राप्त हुए हैं। इस कारण उत्तम महा पुरुषार्थियों के रजोवीर्य से उत्पन्न होने के कारण भी महापुरुष कहा है।

प्र.142–करणानुयोग समीचीन शास्त्र किसे कहते हैं और फल क्या है?

उत्तर–लोकालोक का, भूगोल खगोल का, नदी, समुद्र, तालाब, पर्वतादि का, अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल का वर्णन करने वाले को करणानुयोग शास्त्र कहते हैं। करण पद का प्रयोग– कान अर्थ में, परिणाम अर्थ में, गणितसूत्र अर्थ में, व्याकरण के कारक अर्थ में होता है। किन्तु यहाँ पर करण का अर्थ गणितसूत्र लिया गया है क्योंकि इसमें नाना तरह से अजीव तत्त्व, अजीव पदार्थ, अजीव द्रव्य, अजीवास्तिकायादि की नाना अवस्थाओं का वर्णन किया है, जो उत्कृष्ट संस्थान विचयधर्मध्यान का विषय है, उत्कृष्ट धर्मध्यान श्रेणी आरोहण के सम्मुख अवस्था में उत्पन्न होकर दसवें गुणस्थान तक रहता है। जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब साफ स्वच्छ जैसा का तैसा दिखाई देता है उसी प्रकार करणानुयोग शास्त्र में भूगोल खगोल आदि का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है। इस अनुयोग के ज्ञान के बिना यथार्थ वैराग्य और संस्थान विचय धर्मध्यान नहीं हो सकता है।

प्र.143–करणानुयोग शास्त्र का विषय क्या ज्ञेयतत्त्व या हेयतत्त्व या उपादेय तत्त्व है?

उत्तर–करणानुयोग का विषय छद्मस्थों की अपेक्षा तीनों प्रकार का तथा केवली की अपेक्षा केवल ज्ञेयतत्त्व है।

प्र.144–सो कैसे स्पष्ट करो जिससे मन में संदेह न हो?

उत्तर–केवली भगवान के लिए केवल ज्ञेय तत्त्व है क्योंकि उन्हें जानने की, छोड़ने की और प्राप्त करने की कुछ भी इच्छा नहीं है न विकल्प होता है क्योंकि भावमन का और अल्पज्ञान का अभाव हो चुका है। हेय उपादेय का विकल्प तो प्रमादीजीवों के होता है, शेष जीवों के नहीं। पूर्वोक्त सम्पूर्ण विषय प्रमत्तों के अपने क्षयोपशमानुसार ज्ञेयतत्त्व है तथा जिस द्रव्य क्षेत्र काल और भावों से ध्यानाध्ययन की सिद्धि हो, अनुकूलता हो, उपयोग की विशुद्धि हो वह द्रव्यादि 4 उपादेय हैं तथा जिस द्रव्यादि से बाधा उत्पन्न हो, प्रतिकूलता हो वह हेय है। हेय और उपादेय से भिन्न ज्ञेयतत्त्व है। जो किंचित् मात्र भी हिताहित में साधन न हो वह जानने योग्य है।

प्र.145–उक्त भूगोल खगोल भिन्न तत्त्व हैं इससे आत्मा का क्या अच्छा या बुरा होने वाला है, अतः इसका कथन करना व्यर्थ है, निष्प्रयोजन है?

उत्तर–व्यर्थ नहीं है सार्थक है। यदि आप इस कथन को व्यर्थ मानते हैं तो संस्थान विचयधर्मध्यान को भी व्यर्थ मानने का प्रसंग आयेगा? जब यह धर्मध्यान निष्फल है व्यर्थ है तो आगे के सभी ध्यान व्यर्थ हो जायेंगे क्योंकि नसैनी में प्रथम सीढ़ी के बिना आगे की सीढ़ी बन नहीं सकतीं, प्रथम सीढ़ी के बनने पर ही आगे की सीढ़ी सार्थक होतीं हैं तभी तो क्षेत्रप्ररूपणा और कालप्ररूपणा, क्षेत्रपरिवर्तन, भवपरिवर्तन आदि पंचपरावर्तन गुणस्थान मार्गणास्थान आदि सार्थक है। यदि ज्ञेयपदार्थ का अस्तित्त्व नहीं है तो ज्ञान और ज्ञायक का भी अस्तित्त्व सिद्ध नहीं होगा। फिर ज्ञान ज्ञेय का संबंध कैसा? लोक भावना और संसारभावना भी व्यर्थ ठहरेगी तथा अजीव तत्त्व, अजीवपदार्थ, अजीवद्रव्य, पुद्गलादि अस्तिकाय पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहा है वह भी व्यर्थ होगा और जब सम्यग्दर्शन व्यर्थ है तो सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र व्यर्थ सिद्ध होंगे तो मोक्ष भी व्यर्थ होगा अतः करणानुयोग जिनोक्त होने

से पूर्ण सत्य है और द्रव्यानुयोग के समान श्रद्धान करने योग्य है। जिन प्राणियों ने इस विषय को शब्द रूप में या अर्थ रूप में नहीं समझा है वे यथार्थ में वैराग्य प्राप्त नहीं कर सकते हैं क्योंकि वैराग्य में सर्वप्रथम संसार को ही गिनाया है और वैराग्य प्राप्त करने के लिये संसार के स्वभाव का पुनः पुनः चिंतन करने को कहा है यदि व्यर्थ है तो आचार्य चिंतन करने को क्यों कहते? **'जगत्काय स्वभावौ वा संवेग वैराग्यार्थम्।'** संवेग और वैराग्य को उत्पन्न करने के लिए संसार और शरीर के स्वभाव का बारबार चिंतन करना चाहिये। जिससे मन मोह को प्राप्त नहीं हो।

प्र.146–आजकल धवलादि ग्रन्थों को करणानुयोग कहा जाता है सो ठीक है क्या?

उत्तर–ठीक नहीं हैं, गलत है। यदि इन ग्रन्थों को करणानुयोग का शास्त्र माना जाय तो तिलोयपण्णत्ति त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों को किस अनुयोग का शास्त्र मानोगे? आदि०, बृह०द्रव्य० में कहा है –

लोकालोक विभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनाम् च।
आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च।।44।। आ०समन्तभद्र र० श्रा०।

करणानुयोग लोकाकाश और अलोकाकाश के विभाग को, षट्काल परिवर्तन को भूगोल, खगोल को, चतुर्गति रूप क्षेत्र को दर्पण के समान जानता है। इस परिभाषा के अनुसार उक्त धवलादि कर्म सिद्धान्त ग्रन्थ द्रव्यानुयोग के हैं क्योंकि इन ग्रन्थों में जीवों की और कर्मों की नाना अवस्थाओं का वर्णन किया है अतः गोम्मटसार धवलादि शास्त्र द्रव्यानुयोग के हैं जैसे आपके सामने अस्पतालों में क्या कैसा होता है वहाँ पर कौन सा व्यक्ति आता है? जिसने अनर्गल भोजनपान करके अपना स्वास्थ्य बिगाड लिया है ऐसा मरीज या जिसने झगड़ा किया है या चोरी बदमाशी में मारा गया है, पीटा गया है या चोर बदमाशों ने मारा है ऐसा पापी जीव खून खराबा करने वाले, एक्सीडन्ट वाले अस्पतालों में जाते हैं। वहाँ किसी का पैर कटा है, फटा है, किसी का हाथ, पैर, पेट, पीठ, सिर फूटा फटा है रक्त बह रहा है, पीव बह रही है, कोई बेहोश पड़ा है, रो रहा है, चिल्ला रहा है, मल मूत्र में पड़ा है, शरीर सड़ रहा है, कीड़े पड़ रहे हैं, ठण्डी गर्मी के कारण भूख प्यास से घबरा रहा है आदि दुःख अस्पताल में प्रत्यक्ष देख रहे हैं। यदि अस्पताल के दुखों से भयभीत हैं, डर लग रहा है और वहाँ पर नहीं जाना चाहते हैं क्योंकि वहाँ पर जाने से नाना प्रकार के दुःख भोगने पडेंगे। इसी तरह भूगोल, खगोल का वर्णन करते हुए आचार्यों ने वहाँ नरकगति सम्बन्धी सर्दीगर्मी, भूखप्यास, मारकाट, छेदनभेदन, ताड़न पीड़न आदि की वेदना का वर्णन किया, देवों के नाना प्रकार के दुःखों का वर्णन सुनकर मन में कम्पन होगा कि मेरे को ऐसे दुःख नहीं भोगना हैं न जाना है तो वैसा कर्म मन वचन काय से नहीं करेंगे तो वहाँ क्यों जाना पड़ेगा? कर्म करेंगे तो जाना पड़ेगा। कोई माँ बाप, बेटा बेटी, पति या पत्नी बचाने वाला नहीं होगा। अतः ऐसा कर्म नहीं करना है कि जिससे नरक में जाना पड़े इससे वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। इसी तरह खगोल का वर्णन है केवल नाम में अन्तर है पर दुःख में अन्तर नहीं है क्योंकि स्वर्ग में सभी प्रकार का आर्तध्यान और रौद्रध्यान मौजूद है जो कालान्तर में मरण कर निगोद का पात्र बना देता है। नरक से निकलकर मनुष्यगति में या सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में जन्म धारण कर रत्नत्रय प्राप्त कर कल्याण का मार्ग प्रशस्त बना सकता है किन्तु निगोद में यह अवस्था प्राप्त नहीं होती है। अतः नरक से स्वर्ग ज्यादा हानिकारक है।

प्र.147–करणानुयोग शास्त्र के अध्ययन का क्या फल है?

उत्तर–संसार से वैराग्य होना, पाप से भयभीत होना, पापाश्रव और पाप बंध का निरोध होना, रत्नत्रय की प्राप्ति और वृद्धि होना, असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होना, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात होना, संस्थानविचय धर्मध्यान होना आदि करणानुयोग शास्त्र के अध्ययन का समीचीन फल है।

प्र.148–स्थितिकांडकघात किसे कहते हैं?

उत्तर–कर्मों की अखंड स्थिति समूह को या अखंड काल मर्यादा को खंडित करने को, घात करने को स्थितिकांडकघात कहते हैं।

प्र. 149–अनुभागकांडकघात किसे कहते हैं?

उत्तर–कर्मों की अखंड फलदान शक्ति के समूह को घातकर फल देने में असमर्थ कर देने को अनुभागकांडकघात कहते हैं जैसे सज्जन या दुर्जनों के समूह में, संगठन में जो शक्ति होती है वह संगठन के खंडित हो जाने पर शक्ति भी खंडित हो जाती है और खंडित होने से पूर्ववत् कार्य करने में समर्थ नहीं हो पाती।

प्र.150:स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात का क्या फल है?

उत्तर–पाप प्रकृतियों की काल मर्यादा और फलदान शक्ति का घात होने से, कमजोर होने से आत्मा पर अपना प्रभाव नहीं डाल पाते जिससे आत्मसाधना चिंतन अच्छी तरह से चलता रहता है यही फल है।

प्र.151–करणानुयोग शास्त्र के केवल अध्ययन से क्या यह फल होता है?

उत्तर–नहीं, केवल अध्ययन से उक्त फल प्राप्त न होकर तदनुरूप परिणमन करने से उक्त फल प्राप्त होता है।

प्र.152–सूर्य चंद्र आदि ज्योतिषी विमान गमनशील हैं या स्थिर हैं?

उत्तर–ढाईद्वीप के अंदर के ज्योतिषी विमान गमनशील हैं और ढाईद्वीप के बाहर के विमान स्थिर हैं।

प्र.153–आज का वैज्ञानिक चंद्रमा आदि विमानों को स्थिर कहता है और पृथ्वि को गतिशील कहता है सो यहाँ जैनागम से विरोध आ रहा है?

उत्तर–विरोध अवश्य आ रहा है और इस विरोध का परिहार करना कठिन है क्योंकि वैज्ञानिकों के पास यंत्रों का ज्ञान है जबकि स्याद्वादियों के पास आगम का, तर्क का और अनुमान ज्ञान है। फिर भी उन वैज्ञानिकों को सूर्योदय सूर्यास्त, चंद्रोदय चंद्रास्त, सूर्यग्रहण चंद्रग्रहण न कहकर पृथ्वि का उदय अस्त तथा पृथ्वि का ग्रहण कहना चाहिए। गरमी के दिनों में मकानादि की छाया में और ठंडी के दिनों में छाया में अंतर क्यों पडता हैं? तिथी वृद्धि और तिथी क्षय क्यों होती है? फरवरी का महीना 28 की जगह 29 दिन का क्यों हो जाता है? पूर्वीदेशों में, मध्यदेश में और पश्चिमदेशों में सूर्यचंद्र के उदय अस्त में अंतर क्यों पडता है? पहाड़ों की, वृक्षों की, मकानों की, स्थिर मनुष्य और पशुओं की छाया प्रतिबिंब प्रातःकाल पश्चिम की ओर, मध्याह्न काल में नीचे, सायं काल में पूरब की ओर क्यों पड़ती है? तथा भारत वर्ष में मकरसंक्रांति 14 जनवरी को मनायी जाती थी किंतु सन् 2008 में 15 जनवरी को मनायी तथा आगे सन् 2080 तक 15 जनवरी को मकरसंक्रांति मनायी जायेगी। राजा हर्षवर्धन के समय यह पर्व 24 दिसंबर को पड़ा था। अकबर के शासन काल में 10 जनवरी को मकरसंक्रांति थी। शिवाजी के जीवन काल में यह पर्व 11 जनवरी को पड़ा था। ऐसा क्यों होता है? वैज्ञानिकों को इसका समाधान करना चाहिये। भारतीय ज्योतिषियों के पास इसका समाधान इस प्रकार है –: **सूर्य के धनुराशि से मकरराशि में प्रवेश करने को मकरसंक्रांति कहते हैं।** इस साल धनुराशि से मकर राशि में सूर्य का 14 जनवरी की मध्यरात्रि में प्रवेश होगा इसलिये उदय तिथी के अनुसार **मकर संक्रांति 15 जनवरी को होगी दरअसल हरसाल** सूर्य का धनु से मकर राशि में प्रवेश 20 मिनिट की देरी से होता है इस तरह हर तीन साल के बाद सूर्य एक घंटे के बाद और हर 72 साल के बाद एक दिन की देरी से मकर राशि में प्रवेश करता है इसका अर्थ यह हुआ कि 1728 साल पहले मकरसंक्रांति 24 दिन पहले यानि 21 दिसंबर को पड़ी थी सन् 2080 के बाद मकरसंक्रांति 16 जनवरी को पड़ेगी। मेरठ 14 जनवरी 2008 दैनिक जागरण पृ० 17 पर। क्या भारतीय ज्योतिष और ज्योतिषी ऋषिगण आदि सभी के सभी मिथ्या है?

प्र.154–चरणानुयोग शास्त्र किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसमें मुनि और श्रावकों संबंधी बाह्य सदाचार सम्यकाचार की उत्पत्ति, वृद्धि, रक्षा तथा फल की प्राप्ति का वर्णन है उसे चरणानुयोगशास्त्र कहते हैं। महाव्रतों, अणुव्रतों, समितियों, मूलगुणों, षड़ावश्यकादिकों का वर्णन करता है।

प्र.155–ये चरणानुयोग शास्त्र किस प्रकार के आचार का वर्णन करते हैं?

उत्तर–संसार बंधन को तोड़ने वाला, मोक्षमार्ग में सहायक ऐसे चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा का कथन तथा लोकव्यवहार भी सुखमय चलता रहे इसका भी कथन करते हैं। इस अनुयोग में गुणस्थान, कर्मों का बंध उदय सत्त्व का कथन नहीं किया जाता है किन्तु बाह्य प्रतिज्ञानुसार संयम देखा जाता है। इसमें बाह्य मुद्रा प्रमाण होती है। कहा भी है–

मुद्रा सर्वत्र मान्यस्यान्निर्मुद्रो नैव मन्यते।
राजमुद्राधरोऽत्यन्त हीनवच्छास्त्रनिर्णयः।।77।। नितिसार समुच्चय

अर्थ–मुद्रा सर्वत्र माननीय होती है, मुद्रारहित का मान सम्मान नहीं होता है। जिसप्रकार राजमुद्रा को धारण करने वाला अत्यन्त हीन मनुष्य भी मान्य होता है। शास्त्रों का यही निर्णय है न्याय है।

प्र.156–यदि कोई चरणानुयोग शास्त्रों में भी गुणस्थानों की खोज करे तो क्या दोष है?

उत्तर–हमें कोई आपत्ति नहीं है किन्तु ऐसा करने पर द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा दोनों एक हो जायेंगे। गुणस्थान इंद्रियगोचर नहीं हैं केवल बाह्याचार की अपेक्षा गुणस्थानों का सम्यग्दृष्टि का, मिथ्यादृष्टि का, भव्य अभव्य का अनुमान लगाया जाता है। यथार्थ में प्रदेश प्रत्यक्ष अल्पज्ञों का विषय नहीं है यह विषय प्रत्यक्ष ज्ञानियों का, केवलज्ञानियों का, सर्वज्ञों का है। जो आजकल गृहत्यागियों पर आक्षेप करते हैं कि बिना जाने पहंचाने आहारादि क्या देना? तब उनको चाहिए कि कोई त्यागीव्रती मुनि आर्यिका के सामने आने पर उनका सर्वप्रथम गुणस्थान, सम्यक्त्व मिथ्यात्व, भव्य अभव्य की जाँच करें बाद में आहार, आदर सम्मान, नमस्कारादि, पूजा दान देना चाहिए पर इस बात का ध्यान रखो कि जो पहले परीक्षा देता है, शिष्य बनता है वही बाद में गुरु बन सकता है, परीक्षा ले सकता है। इस नियमानुसार सर्वप्रथम पहले अपने गुणस्थान की परीक्षा करो बाद में दूसरों की, इतना अवश्य है कि यदि बाह्याचार बिगड़ा है तो अभ्यन्तर नियम से बिगड़ा है। बाह्याचार शास्त्र के अनुकूल है तो अन्तरंग ठीक भी हो सकता है और गलत भी। अतः अंतरंग की शुद्धि के लिए बाह्य में प्रतिज्ञा की जाती है यदि प्रतिज्ञा का पालन करना है या हो रहा है सो ठीक है, अन्यथा गलत है। आजकल जैनों को इतना अवश्य मालूम है कि मुनियों को 28 मूलगुणों का निरन्तर पालन करना चाहिए, मुनियों को ऐसा न करना, न बोलना चाहिए, न एकलविहारी होना चाहिए। इसप्रकार त्याग न करना चाहिए, न श्रावकों को कराना चाहिए, जबरदस्ती, बलजोरी नहीं करना चाहिए आदि क्योंकि ऐसा करने से नई पीढ़ी धर्म से भाग रही है नया जमाना है। किन्तु हम जैनों को कल का आटा, अचार, मुरब्बा, बडी, पापड़, डालडा, डेरी का घीदूध, अमर्यादित दही, रात्रिभोजन, अनछना पानी, देशीविदेशी कम्पनी की अमर्यादित दवाइयां, अनेक पशुओं के मलमूत्र और दूध के द्वारा आयुर्वेदिक दवाईयां भी तैयार की जाती है जो खानी पडती है, सीरप, आल्कोहॉल मद्यमांस चर्बी से निर्मित खाद्य वस्तुयें, शृंगार अलंकार की वस्तुयें, पानमसाला, गुटखा, धूम्रपान, होटल का भोजन आदि प्रेम से करते हैं अपने मूलगुण कितने हैं, कितने पालन करते हैं, रोटी बेटी कहाँ जा रही है कहाँ से आ रही है, अभक्ष्य भक्षण कर रहे हैं, हमको क्या करना चाहिए क्या नहीं करना चाहिए, यह मालूम नहीं। स्वयं को करने के लिए पंचमकाल और अकेलापन नजर आता है, कमजोर है, बीमार हैं जैसे **'अपने लगे सीना में और दूसरे को दीवार में '** इस कहावत को चरितार्थ करना है अतः अपने को संयम पालन करने में, मूलगुणों को धारण करने में, षडावश्यकादिकों के पालन करने में, अन्याय अभक्ष्य के त्याग करने में नानी याद आती है जैसे नरक में आ गिरे हों, कोई वज्रपात हो रहा हो, कुछ भोजन करने को नहीं मिलेगा आदि समस्यायें सामने आती हैं। अतः चरणानुयोग शास्त्रों में बाह्य सदाचार को मुख्य बताया है किन्तु अंतरंग को छुडाया नहीं, भुलाया नहीं हैं। यदि अंतरंग को गौण की जगह अभाव करते हो तो अन्यमतियों के यहाँ जिनमत के समान और जिनमत में अन्यमतियों के समान आचार विचार में क्या अंतर रहा? इसलिए चरणानुयोग अंतरंग को साधता हुआ, अंतरंग में सावधानी रखता हुआ बाह्य सम्यकाचार की निर्दोष व्यवस्था करता है। उभय मोक्षमार्ग को तथा बाह्यलोकाचार को न बिगाड़ता हुआ जीवन को सुरक्षित रखने की मर्यादा बताता है, सिखाता है।

प्र.157–जाँच किये बिना ही यदि हर जगह माथा टेक दिया तो क्या चरणानुयोगशास्त्र अंध भक्ति सिखाता है, यदि सिखाता है तो इसे सत् शास्त्र क्यों कहा?

उत्तर–नहीं, चरणानुयोग शास्त्र अंधभक्ति नहीं सिखाता। अहंकार, ममकार, अविवेकतादि दोषों को नष्ट करना बताता हैं। सावधानी रखना, स्वपर की रक्षा करना, विकार को नष्ट करना, बेकारी हटाना आदि बताते हैं। जो व्यक्ति मूलगुणों का, बारह व्रतों का, महाव्रतों का पालन करते हैं वे अपने मन वचन काय का गलत प्रयोग क्यों करेंगे? गलत कदम क्यों उठायेंगे? गलत कार्य करने वालों को साथ क्यों देंगे? सहायता क्यों करेंगे? जिसकी स्वयं में पात्रता सही है वह दूसरों को गलत मार्ग में क्यों लगायेगा? चरणानुयोग शास्त्र को सही ढंग से न समझने पर अहंकार, ममकार, अविवेकता, मूढता का जन्म हो जाता है। **सो कैसे?** अंतरंग को न भूलकर बहिरंग को संभालना था किंतु दूसरों के सूक्ष्म दोष देखने के लिये आँख खोलकर और अपने हाथी जैसे दोषों को देखने के लिये आँख मूंदकर बैठे हैं। अतः कहीं का नियम कहीं लगा लेना ही अत्याचार है, अविवेकता है, मूढता है अतः चरणानुयोग शास्त्र विवेक, सावधानी सिखाता है, अंधभक्ति नहीं।

प्र.158–चरणानुयोग शास्त्र यदि केवल बाह्यचर्या को बताता है अंतरंगचर्या को नहीं तो केवल बाह्य क्रियावादी मिथ्यादृष्टिपने को दर्शानेवाला होने से समीचीन शास्त्र कैसे हो सकता हैं?

उत्तर–नहीं, चारित्र अंतरंग और बहिरंग के भेद से दो प्रकार का है। यह अंतरंगचारित्र चारित्रमोहनीय कर्म के क्षयोपशम उपशम और क्षय से प्राप्त होता है तथा चारित्र मोहनीय कर्म के कुछ मंदोदय होने पर परिणामों में कुछ निर्मलता होने से, लेश्यायें कुछ अंशों में शुभ होने से बाह्याडंबर का त्यागकर बाह्य चारित्र धारण किया जाता है तथा अंतरंग में विषय कषायों का और प्रमादरूप असावधानी का त्याग किया जाता है तब अंतरंग और बहिरंग आडम्बर का त्याग कराने वाला होने से क्रियावादी मिथ्यादृष्टि कैसे कहलाया? यदि अंतरंग का त्याग नहीं कराता तो अवश्य ही यह चरणानुयोगशास्त्र क्रियावादी मिथ्यादृष्टिपने को प्राप्त हो जाता पर ऐसा नहीं है क्योंकि किसी भी कार्य की सिद्धि केवल अंतरंग या केवल बहिरंग से नहीं होती किंतु दोनों प्रकार की सामग्री चाहिए। हाँ इतना अवश्य है कि मुख्यता एक की होगी कहीं अंतरंग की और कहीं बहिरंग की, दोनों की नहीं।

प्र.159–द्वन्दसमास में सभी पद प्रधान होते हैं फिर आपने यहाँ एक पद को प्रधान कहा है तब दोनों में से कोई एक सत्य होना चाहिये?

उत्तर–अरे भाई द्वन्दसमास में दोनों या सभी पद प्रधान होते हैं तो क्या द्वन्द समास सर्वत्र होता है या कहीं कहीं। यदि द्वन्द समास सर्वत्र होता तो आपका कहना सत्य कहलाता किंतु ऐसा नहीं है। द्वन्दसमास केवल शब्द रचना में या लोकव्यवहार में होता है, वस्तु तत्त्व व्यवस्था में नहीं। प्रत्येक वस्तु में अनंत अनंत धर्म होते हैं, वे अपने आप में सभी प्रधान होते हैं। परंतु छद्मस्थ जीव या केवली भगवान प्रतिपादन करते समय एक को मुख्य तो दूसरे प्रतिपक्षी धर्म को गौण करते हैं। तभी तो त० सू० में कहा है– **'अर्पितानर्पित सिद्धेः।'** अतः कहाँ क्या विवक्षा है वह समझो जिससे अविश्वास अविवेकता और अनर्गल चर्या का जन्म न हो।

प्र.160–चरणानुयोग शास्त्र को कौन जानता है?

उत्तर–इस चरणानुयोग शास्त्र को मोक्षमार्गस्थ निकट भव्य सम्यग्ज्ञानी जीव जानता है, मिथ्याज्ञानी नहीं।

प्र.161–चरणानुयोग शास्त्र में किसका वर्णन है?

उत्तर–चरणानुयोग शास्त्र में गृहस्थ और मुनियों के उभय चारित्र की भूमिका, उत्पत्ति, वृद्धि, स्थिति, रक्षा और फल की प्राप्ति कैसे होती है इसका वर्णन है। कहा भी है –

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्ति वृद्धि रक्षांगम् ।
चरणानुयोग समयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति।। र.श्रा. 45।

अंधा, सूरदास गड्ढे में गिरे तो कोई दोष नहीं है क्योंकि उसे दिखता नहीं, आँख नहीं है परंतु आँख वाला व्यक्ति देखता हुआ भी कुए में गिरे तो वह अंधे से भी गया बीता महाअंधा है। इसी तरह जो पापों को नहीं जानता वह पाप करें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि वह पाप की परिभाषा नहीं जानता किंतु जो पापों की परिभाषा को जानता है, दूसरों को समझाता है फिरभी यदि वह पापों को नहीं छोडे, नहीं त्यागे और पाप करता रहे तो उसके समान अभागा, अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, पापी और दूसरा कौन होगा? इसलिए कहा है कि चरणानुयोग शास्त्र को परिणति क्रिया के साथ सम्यग्ज्ञानी ही जानता है, मिथ्याज्ञानी नहीं, कोरा शब्दज्ञानी नहीं।

प्र.162–द्रव्यानुयोग शास्त्र किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन शास्त्रों में द्रव्यों, गुणों, पर्यायों या जीवादिक 27 तत्त्वों की शुद्धाशुद्ध अवस्थाओं का नाना नयों की दृष्टि से अनेक रूप में कथन किया गया है उसे द्रव्यानुयोग शास्त्र कहते हैं। कहा भी है–

जीवाजीव सुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बंध मोक्षौ च।
द्रव्यानुयोग दीपः श्रुतविद्या लोकमातनुते।।46।। र०श्रा०

जिन शास्त्रों में जीवादि तत्त्वों का, पुण्य पाप का, बंध उदय सत्व का, संवर निर्जरा और मोक्ष का वर्णन हो उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं। जैसे गोम्मटसार, धवला, जयधवला, महाबंध, समयसारादि।

प्र.163–समयसारादि ग्रन्थों में शुद्ध द्रव्य का स्वरूप बताया है या अशुद्ध द्रव्य का?

उत्तर–समयसार आदि ग्रन्थों में सांख्य, बौद्ध, मीमांसक, नैयायिक वैशेषिक, चार्वाकादि नाना मतों का खण्डन कर स्वमत का मण्डन किया है अतः द्रव्यानुयोग शुद्ध द्रव्य और अशुद्ध द्रव्यों का कथन करता है। परद्रव्य के साथ या परद्रव्य

के संसर्ग से अशुद्धता तो आती ही है किन्तु आध्यात्म ग्रंथों में सात तत्त्व, नव पदार्थों आदि का भेद पूर्वक कथन करना, अखंड में खंड करना, अभेद में भेद करना ही अशुद्धपना है। आत्मा में भेदपरक रत्नत्रय की स्थापना करना, प्रमत्ताप्रमत्त दशा बताना भी अशुद्ध अवस्था है। यदि ऐसा न माना जाये तो दो संयोगीभाव, त्री संयोगी भाव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष की व्यवस्था नहीं बन सकती है अतः अन्यमत का खंडन करना बहुत दूर की बात है किंतु स्वमत का, मिथ्याभिप्रायों का खंडन करना महान उत्कृष्ट पुरुषार्थ है।

प्र.164–आध्यात्म ग्रन्थों में अन्यमत का खंडन क्यों किया?

उत्तर–इन ग्रन्थों में अन्यमत का नाम लेकर अपनी एकांगी मान्यताओं का खण्डन किया है क्योंकि मान्यता का नाम मत है। किसी के माथे पर नाम तो लिखा नहीं है कि यह इस मत वाला है और इस मत का नहीं है न माँ के पेट से, न जन्म से नाम लेकर के आया है किन्तु संगति से या अपनी विचारधाराओं के अनुसार नाम पाया है कि यह इस मत का अनुयायी है अतः अध्यात्म नाम ही बताता है कि इसमें मोक्षमार्ग के प्रतिकूल अपनी मान्यताओं का तथा विषय कषायों की दुर्भावनाओं का खंडन किया है, त्याग किया है। बाह्य चक्षुओं से देखने पर अन्यमतों का, मिथ्यामतों का और अंतरंग चक्षुओं से देखने पर स्वयं के मिथ्या विचारों का, दुर्भावनाओं का खण्डन किया है। अतः खंडन करना कषाय नहीं है किन्तु मिथ्यात्व के खंडन का उपाय है। अपायविचय धर्मध्यान है, मोक्षमार्ग है, अनुकम्पा है, आत्म प्रभावना है, स्यात् जिनधर्म प्रभावना है।

प्र.165–क्या अन्यमत का खंडन करने से कषाय की वृद्धि नहीं होती है?

उत्तर–ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावनापूर्वक खंडन करने से, दोषवादन करने से कषायों की वृद्धि होती है किंतु इनके त्यागपूर्वक अपनी ही मिथ्याधारणाओं का खंडन करने से कषायों की वृद्धि न होकर आत्मा की शुद्धि होती है। अतः सम्यक् हेतु पूर्वक खंडन करना मोक्षमार्ग है। यहाँ खंडन का अर्थ टुकड़े करना नहीं है किंतु अपनी मिथ्यामान्यताओं को आत्मा से अलग कर देना, पृथक् कर देना।

प्र.166–यदि ऐसा है तो अन्य मतों का नाम क्यों लिया?

उत्तर–आपने रंगीन चश्मा पहन रखा है इसलिए आपको ऐसा अर्थ मालूम पड़ रहा है यदि स्वच्छ चश्मा धारण किया होता तो जैसा का तैसा यथावत् नजर में आता, दिखायी देता ये महान आचार्य वीतरागी थे, ख्याति पूजा लाभ रूपी मिथ्याचारित्र के त्यागी थे, करुणाधारी थे, दूसरों का खण्डन क्यों करेंगे? इनको अपनी आत्मसाधना करना है। आत्मध्यान से, आत्म साधना से नीचगोत्र का आश्रव बंध नहीं होता है किन्तु संवर होता है तथा अपने भावों को बताने के लिए कोई न कोई संकेत चाहिए। कहा है–

सहज योग्यता संकेतवशात् ही शब्दादयो वस्तु प्रतिपत्ति हेतवः। आ० माणिक्यनंदि (परिक्षामुख 3ग समु० सू० 96) वस्तुतत्त्व के ज्ञान कराने की स्वर व्यंजनों में स्वाभाविक योग्यता है वक्ता के अभिप्राय को आदान प्रदान कराने में सहायक होते हैं अतः आचार्य भगवन्त स्वयं मिथ्या अभिप्राय से दूर हो चुके हैं और भव्यों को दूर होने का उपाय बताते हैं। अन्यमतियों के समान अपनी मान्यता होने से अपनी ही मान्यता को अन्यमतियों के नाम से कहा है। इसलिये कोई दोष नहीं है।

प्र.167–क्या परनिंदा करने से नीचगोत्र का आश्रव नहीं होता है?

उत्तर–केवल दूसरों के दोषवादन से, दूसरों की बुराई बताने से नीच गोत्र का आश्रव बंध नहीं होता है किंतु कषाय पूर्वक दोषवादन करने से नीचगोत्र का आश्रवबंध होता है यदि ऐसा न माना जाये तो न्याय ग्रंथों के कर्ता दिगम्बर जैनाचार्यों को नीचगोत्र कर्म के आश्रव बंध करनेवाले होने से मिथ्यादृष्टि मानना पड़ेगा क्योंकि नीचगोत्र कर्म का आश्रव बंध मिथ्यात्व गुणस्थान में ही तथा पतन की अपेक्षा दूसरे गुणस्थानवाले भी स्वामी है। न्यायग्रंथ के कर्ता, जिनमुद्रा के धारक वीतरागी संत थे इस कारण कषाय के बिना केवल दूसरों के दोष बतलाना हानिकारक नहीं है अपायविचय धर्मध्यान है, स्थितिकरण अंग है और संबोधन वाक्य है। अतः अपने में गुण नहीं हैं फिर भी अपने को गुणवान कहना और दूसरे में, सामनेवाले में दोष नहीं हैं फिर भी उनको बदनाम करने के लिये, अपमान तिरस्कार कराने के लिये दोषारोपण करने से नीचगोत्र का आश्रव बंध होता है किंतु वस्तुतत्त्व की सिद्धि के लिये, मोक्षमार्ग की प्राप्ति और वृद्धि के लिये, दोषों का निराकरण करने के लिये, संतान परंपरा की रक्षा के लिये, दूसरों के दोष बतलाना दोषदायक, हानिकारक नहीं है, गुण ही है, उच्चगोत्र का आश्रवबंध होता है।

प्र.168–खंडन मंडन करना हारजीत है जो अपध्यान है, आर्तध्यान है। चौथी ढाल में पं० दौलतरामजी ने 'काहू की धनहानि किसी जयहार न चिंतै। किसीकी सम्पत्ति नष्ट हो जाये, कोई धनवान हो जाय, वो जीत जाय, वो हार जाय यह सब अपध्यान अनर्थदण्ड आर्तध्यान कहा हैं अतः अन्यमतों का खंडन करना अपध्यान क्यों नहीं?

उत्तर–आपका कहना सत्य है कि हार जीत का परिणाम अपध्यान और आत्मवंचना है किन्तु आत्मरक्षा के लिए, अपनी मान्यता अन्यमती के समान होने से अपन स्वयं अन्यमती हैं केवल बाह्य वेष, बाह्य चोला जैन का है, विश्वास जैनों जैसा नहीं है अपनी एकांगी मान्यता का खण्डन किया है, अन्यमत का नहीं। जैसे सैनिक के हाथ में शस्त्र दिया है अपनी, धर्म की, समाज की, देश की, रक्षा के लिए न कि दूसरों को मारने के लिए। यदि स्वपर की रक्षा का प्रसंग आ जाय तब शत्रु पर शस्त्र चलाना पड़ा तो महान पाप नहीं होगा क्योंकि असमर्थ की रक्षा करना क्षत्रिय धर्म है। ऐसे ही यदि किसी मदान्ध ने धर्म का अवर्णवाद किया, आक्षेप करने लगा तो उससमय जिनके पास सामर्थ्य है तो वे धर्म रक्षा के हेतु, अवर्णवाद को, आक्षेप को दूर करें अन्यथा धर्म कलंकित होगा अतः आध्यात्म शास्त्रों में अन्यमतों का खण्डन न कर अपनी ही मान्यता का खण्डन किया है। कदाचित् कोई ऐसा माने कि अन्यमत का ही खण्डन किया है तो यह उसकी मान्यता मोक्षमार्ग का, गुरु का अवर्णवाद करने वाली है। क्योंकि महाव्रती गुरुजन संकल्पी आदि चारों प्रकार की हिंसा के त्यागी होते हैं। यदि दिगम्बर मुनि विरोध करने लगें, विरोधी हिंसा करने लगें तो वे अहिंसामहाव्रती कैसे?

प्र.169–तो क्या शुद्धद्रव्य का कथन होता ही नहीं?

उत्तर–हाँ शुद्ध और अशुद्ध द्रव्य का भी कथन होता है। धर्माधर्म द्रव्य का, काल द्रव्य का और आकाशद्रव्य ये चारों द्रव्य त्रिकाली शुद्ध होते हैं, पुद्गल द्रव्य का परिणमन शुद्ध से अशुद्ध और अशुद्ध से शुद्ध रूप में तथा जीव द्रव्य अशुद्ध से शुद्ध होता है किन्तु एक बार भी पूर्ण शुद्ध हो गया फिर कभी भी अशुद्ध नहीं होता है जैसे दूध से घी तो बनता है किन्तु घी से वापिस दूध बनते किसी ने न देखा है न किया है। अतः दोनों का कथन होता है सर्वथा एकांत नहीं है।

प्र.170–न्याय के ग्रन्थ किस अनुयोग में आते हैं और इसमें हेतु क्या है?

उत्तर–न्यायग्रंथ द्रव्यानुयोग में ही आते हैं क्योंकि न्याय के द्वारा वस्तु तत्त्व की सिद्धि की जाती है कि वस्तु का सम्यक् और मिथ्या स्वभाव किस प्रकार है, क्या स्वरूप है।

प्र.171–वस्तु का सम्यक् स्वरूप क्या है?

उत्तर–सापेक्ष अनंत धर्मात्मकपिंड अखंड अभेद प्रमाण नय निक्षेप के अविरुद्ध ही वस्तु का सम्यक् स्वरूप है।

प्र.172–वस्तु के सम्यक् स्वरूप को समझने का क्या उपाय है?

उत्तर–वस्तु के सम्यक् स्वरूप को समझने के लिए प्रमाण नय निक्षेप, सत्संख्या क्षेत्र स्पर्शन आदि, निर्देश स्वामित्वादि ही साधकतम उपाय हैं, अन्य नहीं। इनको समझने के लिए आगमाभ्यास जरूरी है।

प्र.173–वस्तु का मिथ्या स्वरूप क्या है और इसका क्या फल है?

उत्तर–अपने प्रतिपक्षी धर्म का निराकरण करके परस्पर में विरोध उत्पन्न करने वाले, अपेक्षा रहित वस्तु को ही मिथ्या कहते हैं। इस प्रकार की मान्यता से न लोकव्यवहार चलता है, न सम्यक्व्यवहार घटित होता है, न निश्चयमार्ग बनता है, कदम कदम पर संकट का सामना करना पड़ता है, तत्त्व के निर्णय में सर्वत्र सर्वकाल संदेह बना रहता है। यही इसका फल है

प्र.174–वस्तु के मिथ्या स्वरूप को समझने का तथा मिथ्याज्ञान प्राप्त करने का क्या उपाय है?

उत्तर–वस्तु के मिथ्या स्वरूप को समझने का उपाय प्रमाण नय निक्षेप और सम्यग्ज्ञान है। लौकिक संगति से, दूषित शास्त्रों का अध्ययन करने से, स्वच्छंद आचार विचारों से, विकारी वक्ताओं के विरुद्ध वचन सुनने से, वस्तु का असत् स्वरूप, विरोध युक्त अवभाषित होना ही मिथ्याज्ञान प्राप्त करने का उपाय है।

प्र.175–क्या वस्तु स्वयं सम्यक् और मिथ्या रूप में परिणमन करती है और कैसे?

उत्तर–हाँ, वस्तुयें स्वयं सम्यक् और मिथ्या रूप में परिणमन करतीं भी हैं और नहीं भी। संसारावस्था में जीव और पुद्गल ये दो वस्तुयें सम्यक् और मिथ्या रूप में परिणमन करतीं हैं शेष चार धर्मादिक वस्तुयें एकमात्र शुद्ध रूप में ही

परिणमन करतीं हैं अथवा सामान्य धर्मों की अपेक्षा वस्तुयें अपने स्वभावानुसार ही परिणमन करतीं हैं सम्यक् मिथ्या रूप में नहीं किंतु विशेष धर्मों की अपेक्षा जीव और पुद्गल अनुभव करने वालों की दृष्टि से सम्यक् और मिथ्या रूप में परिणमन करतीं हैं। यदि ध्याता एकांतवादी है तो उसे मिथ्या रूप में तथा अनेकांतवादी है तो उसे सम्यक् रूप में अवभाषित होती है।

प्र.176–व्याकरण शास्त्र, शब्दानुशासन किस अनुयोग में अन्तर्भाव को प्राप्त होता है?

उत्तर–व्याकरण शास्त्र किसी भी अनुयोग में अन्तर्भाव को प्राप्त नहीं होता है। व्याकरण का ज्ञान भाषा की शुद्धि अशुद्धि को बताने वाला है। भाषा ज्ञान न सम्यक् है न मिथ्या किन्तु वक्ता के सम्यक् और मिथ्या हेतु के होने पर भाषा ज्ञान सम्यक् और मिथ्या कहलाता है। भाषाज्ञान वक्ता और श्रोता को अपने अभिप्राय को आदानप्रदान करने के लिए संकेतमात्र कहा है। भाषा सम्यक् और मिथ्या होती तो केवली का सर्वज्ञ का दिव्य उपदेश 18 महाभाषा और 700 लघुभाषाओं में क्यों होता है? इस कारण भाषा ज्ञान व्याकरणशास्त्र का किसी भी अनुयोग में अंतर्भाव नहीं होता है।

प्र.177–व्याकरण शास्त्र किसे कहते हैं और किसने उपदेश दिया है?

उत्तर–व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेन इति व्याकरणम्। जिस उपाय से शब्दों की, पदों की निर्दोष सिद्धि हो या भाषा में, भावों को व्यक्त करने के उपाय में आगत दोषों को दूर करने के उपाय को, छालन करने के उपाय को व्याकरण शास्त्र कहते हैं। इसका उपदेश तीर्थंकरों ने दृष्टिवादअंग में किया हैं। इसलिये यह जिनवाणी है। इसकी सिद्धि लोकव्यवहार से, आम्नायरूपी परंपरा से, अनेकांत से होती है। द्रव्य श्रुतज्ञान में व्याकरण शास्त्र का बहुत बडा महत्त्व है, इसका महत्त्व कम मत समझो क्योंकि व्याकरण शास्त्रज्ञान के बिना तत्त्वज्ञान से जीव अछूता अपंगा ही रह जाता है अथवा व्याकरण शास्त्र का अंतर्भाव वर्तमान में विभाजित किसी भी अनुयोगों में नहीं होता है। व्याकरण शास्त्र का ज्ञान भाषा की शुद्धि अशुद्धि को बताने का एक उपाय है। भाषाज्ञान न सम्यक् है न मिथ्या है। वक्ता के सम्यक् और मिथ्या हेतु होने से भाषा ज्ञान भी सम्यक् और मिथ्या कहलाता है। भाषाज्ञान वक्ता और श्रोता को परस्पर में अपने अभिप्राय को, भावों को आदानप्रदान करने के लिये संकेत मात्र है, सहायक है। भाषा स्वयं पुद्गल द्रव्य रूपी भाषावर्गणा की अशुद्ध व्यंजनपर्याय है। यदि भाषा ही सम्यक् या मिथ्या होती तो केवली का दिव्यउपदेश 18 महाभाषा और 700 लघुभाषाओं में क्यों हुआ? जनपद सत्य भाषा में व्याकरण का कोई स्थान नहीं हैं। जो शब्द जिस अर्थ में रूढ हो गया सो हो गया। वहाँ व्याकरण से कोई प्रयोजन नहीं है। अपभ्रंश भाषा से, मिश्रभाषा से, तोतली भाषा से भी अर्थ ज्ञान होता हुआ देखा जाता है। इस कारण व्याकरण शास्त्र का किसी भी अनुयोग में अन्तर्भाव नहीं होता है। यदि सर्वथा भाषा ही सर्वश्रेष्ठ है तो बहरों को, बधिरों को अर्थज्ञान नहीं होना चाहिए और गूंगे मूककेवली क्यों हुये? मोक्ष में क्यों गये? व्याकरणशास्त्र ज्ञान के बिना द्रव्यश्रुतज्ञान के बिना भाव श्रुतज्ञान सहित अष्ट प्रवचन माता के (5 समिति और 3 गुप्ति) ज्ञानी शिवभूति मुनि क्षपकश्रेणी आरोहण कर, केवलज्ञान प्राप्त कर, कर्मों को क्षय कर मोक्ष क्यों गये? केवलीभगवान का उपदेश सत्यवचन और अनुभय वचन रूप में हुआ है क्योंकि उनके ये दो योग पाये जाते हैं अतः शब्द संकेत यथार्थरूप में वस्तु तत्त्व का ज्ञान कराने में सहायक है तो भाषा सम्यक् है अन्यथा मिथ्या है।

प्र.178–व्याकरण शास्त्र को 177 में बहुत ऊंचा बता दिया और कुछ नीचे गिरा दिया सो यह आपका कथन पौर्वापर्य विरोध तथा स्ववचन बाधित दोष से युक्त क्यों नहीं है ?

उत्तर–आपने विषय प्रसंग को समझा नहीं है। जो प्रश्नोत्तर 177 में व्याकरण शास्त्रज्ञान को बहुत ऊंचा कहा है सो इसका मतलब यह है जो व्यक्ति व्याकरण शास्त्र को न समझता है, न समझने का प्रयत्न करता है, न महत्त्व देता है और कठिन समझकर, समझाकर उपेक्षाभाव कर करा देता है तो उसके लिये व्याकरण शास्त्र का कितना महत्त्व है इसके बिना भाषाज्ञान की शुद्धि नहीं होती है और भाषाज्ञान के बिना शुद्ध अर्थज्ञान नहीं हो सकता अतः अपनी अंतिम मंजिल को प्राप्त करने के लिये व्याकरण शास्त्र का ज्ञान अंतिम सीढी के समान समझना चाहिए। इसीमें व्याकरण शास्त्रज्ञान को नीचे गिरा दिया सो इसका मतलब है जो व्याकरण शास्त्र को ही सबकुछ श्रेष्ठ मानकर शेष ज्ञानों को तुच्छ समझकर उपेक्षा बुद्धि से देखते हैं और व्याकरण शास्त्रज्ञान के द्वारा सभी का अपमान तिरस्कार करने लगे केवल व्याकरण ही सबकुछ है अतः थोते भाषा शास्त्रियों को ध्यान में रखकर कहा गया है कि यह व्याकरण शास्त्र केवल भाषाज्ञान है। इससे कोई मोक्षमार्ग, आत्मसुख शांति का मार्ग नहीं बनता, नहीं मिलता, पुण्य

का मार्ग नहीं चमकता यदि सही होता तो सभी व्याकरणशास्त्री भगवान बन जाते फिर ज्ञानमद किसको होता अतः व्याकरणज्ञान का कोई महत्त्व नहीं है।

प्र.179—आजीविका संबंधी अर्थशास्त्र किस अनुयोग में आते हैं, क्या सरकार व्यापार कर सकती हैं?

उत्तर—ये व्यवहारिक अर्थशास्त्र हैं। ये भी सम्यक् मिथ्या नहीं हैं। केवल व्यापार को बताने वाले होने से अर्थशास्त्र हैं। केवली का उपदेश होने से न्यायोपार्जित धन के द्वारा आजीविका चलाना चाहिए क्योंकि अन्याय पूर्वक आजीविका चलाने से देश का, गाँव का, समाज का, परिवार का, स्वयं का और धर्म का नाम बदनाम होता है। प्रजा का, व्यापारियों का काम व्यापार करना है, सरकार का नहीं। सरकार का काम केवल व्यापारियों से, किसानों से 5 या 10% टेक्स लेकर कर्मचारियों की, प्रजा की व्यवस्था करना है यदि सरकार ने व्यापार करना प्रारंभ किया तो व्यापारी और प्रजागण बेकार हो जाने से अत्याचार अनाचार बढ़ेगा क्योंकि पेट को भोजन चाहिये, काम चाहिये। प्रजागण के काम में लगे रहने से तन मन धन धर्म की रक्षा होती है। अत्याचार अनाचार करने का अवसर ही नहीं मिलता, बेकारी होने से ही आतंकवाद, उग्रवाद का जन्म होता है इस कारण आजकल अनेक व्यापार सरकार करने लगी, कार्यकलाप मशीनों से होने लगे तब प्रजा भी बेकार हुई और पशु भी कटने लगे यदि यह काम प्रजा स्वयं करती तो इतना अत्याचार आतंकवाद नहीं फैलता।

प्र.180—व्यापार करना केवली का उपदेश होने से तो कोई शराब का, कोई मांस का, कोई अंडे का, कोई पशु पक्षी का, कोई दासी दास का व्यापार करते हैं, कोई यौन व्यापार करती हैं तो समीचीन है क्या?

उत्तर—यद्यपि व्यापार करना केवली का उपदेश अवश्य है किन्तु सभी व्यापार करो ऐसा नहीं कहा है। जिस व्यापार में संख्यात, असंख्यात त्रस जीवों की तथा अनंतस्थावर जीवों की विराधना होती है धर्म, परिवार, समाज देश बदनाम हो, तन मन धन और धर्म बिगड़ता हो, निष्प्रयोजन पाप की वृद्धि हो ऐसे आलू मूली, गाजर, अदरख आदि का, मद्य, माँस, गांजा, भांग का, वेश्याकर्म, परपुरुष से रमण कर आजीविका चलाना आदि व्यापार नरक निगोद का पात्र बनाता है इससे किंचित् धन बढ़ सकता है पर पाप की अधिक वृद्धि होती है, पुण्य की हानि होती है, जीवन दुःखी होता है। अतः ऐसे व्यापार करने योग्य नहीं हैं। जिन व्यापारों में त्रस स्थावर जीवों की हिंसा न हो ऐसा व्यापार करने योग्य है। समीचीन सज्जनों के द्वारा किये गये व्यापार सुख शान्ति के लिए होते हैं और दुर्जनों के व्यापार आत्म घातक होते हैं इसलिए जिस व्यापार से स्व और पर का हित हो वैसा सज्जनों को करना चाहिए।

प्र.181—आप कितने अनुयोगों को जानते हो और पढ़ते हो, ऐसा क्यों?

उत्तर —हम चारों अनुयोगों को जानते हैं, विश्वास करते हैं पर विशेषता से द्रव्यानुयोग का अध्ययन करते हैं क्योंकि उन तीनों अनुयोगों में आत्मा की कथा नहीं आती है।

प्र.182—यदि चारों अनुयोग जिनवाणी हैं तो ऐसी विसंगति क्यों?

उत्तर —जिनवचन अवश्य हैं किन्तु ये अनुयोग तथा इनका विषय हेय है, त्यागने योग्य है, उपादेय तत्त्व नहीं है। इस कारण उन पर विश्वास हेयरूप से किया है, उपादेय रूप से नहीं तथा द्रव्यानुयोग का विषय उपादेय होने से उपादेय रूप से विश्वास किया है। ऐसा कानजी भक्त पं० शीतलजी ने कहा।

प्र.183—यदि द्रव्यानुयोग का विषय पूर्णरूप से उपादेय है तो आश्रवबंध पुण्यपाप को भी उपादेय रूप से विश्वास करो इसमें क्या आपत्ति है?

उत्तर —हमारी भूल हुई जो हमने जल्दबाजी में कह दिया है कि द्रव्यानुयोग को उपादेय रूप से विश्वास किया है तब हमने कहा कि द्रव्यानुयोग का विषय भी हेय उपादेय और ज्ञेय रूप से विश्वास करना चाहिये।

प्र.184—आदि के तीन अनुयोगों के वचन हेय तत्त्व है या वाच्यार्थ हेय तत्त्व है?

उत्तर—शब्द हेय हैं, छोड़ने योग्य हैं तथा उनका वाच्यार्थ भी हेय है क्योंकि वाच्यार्थ में जब तक उपयोग लगा रहेगा तब तक उत्कृष्ट ध्यान नहीं हो सकता किन्तु अधोगति के लिए पतन न हो इसलिए शब्द और अर्थ दोनों उपादेय है इसके अलावा वह बाह्य तत्त्व, बाह्य चर्या, बाह्य त्याग, बाह्य संयम, पुण्यपाप, भूगोल खगोल हेय हैं, छोड़ने योग्य है। यह भी समाधान उन्हीं का किया हुआ है।

प्र.185–यदि पूर्वोक्त विषय हेयतत्त्व है तो संस्थानविचय धर्मध्यान, अणुव्रत, महाव्रत, मूलगुण रत्नत्रय भी हेय ठहरेगा?

उत्तर–रत्नत्रय हेय नहीं है क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव है। अथवा तीन अनुयोग विषयक ज्ञान सम्यक् होने से उपादेय ही है। प्रमत्त दशा पर्यन्त रत्नत्रय का साधन भी हेय नहीं है किन्तु साध्य प्राप्त करने के लिए योग्य साधन होने से साधनरूप में उपादेय है, साध्यरूप में नहीं।

प्र.186–आपका प्र.183 पर यह समाधान है तो प्र.180, 881 का समाधान मिथ्या कहलाया अतः आप शब्दरचना करते समय भली प्रकार से सोचलें?

उत्तर –हमारी भूल हुई, अंदर प्रवेश करने के लिए शब्द हेय हैं, छोड़ने योग्य हैं। शब्दार्थ वाच्यार्थ हेय नहीं हैं क्योंकि वह वाच्यार्थ आत्मस्वभाव विभाव रूप है, बाह्य तत्त्व नहीं अन्तस्तत्त्व है क्योंकि उपादान उपादेय रूप से चेतन आत्मा का परिणमन है वह आत्मद्रव्य को छोड़कर अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं पाया जाता है। अतः चारों अनुयोगों में जो तत्त्व, द्रव्य पदार्थ अस्तिकायों की चेतन अवस्था का वर्णन है वह सब आत्मगत है, जो यथानुरूप विश्वास के योग्य है। यह भी समाधान उन्हीं का है।

प्र.187–आदि के तीन अनुयोग आत्मा की वार्ता करने वाले न होने से विश्वास करने के योग्य नहीं है तो क्या ये मिथ्या है?

उत्तर–क्या ये तीनों अनुयोग जैनेन्द्रोपदिष्ट नहीं हैं? आचार्य प्रणीत नहीं हैं? यदि नहीं हैं तो मिथ्या कहलाये तो बोलने वाला, लिखने वाला भी मिथ्या कहलाया? जिनवाणी मोक्षमार्ग का कथन करने वाली न होने से मंदिर में विराजमान नहीं करना चाहिए यदि किया तो फिर अर्घ चढ़ाना पूजना, आरती उतारना, समयमूढ़ता और अनायतन सेवा क्यों न कहलायेगी।

प्र.188–यह चर्या समयमूढ़ता अनायतन सेवा है तो होने दो हमें क्या आपत्ति है?

उत्तर–होने दो, आने दो, हमें क्या आपत्ति है इसप्रकार का समाधान करना सज्जनता की मर्यादा का उल्लंघन करना है। जिनेन्द्र भगवान ने दुर्गति से बचने के लिए, आत्मरक्षा के लिए कहा है तथा आचार्य केवल मनोरंजन के लिए कथायें नहीं करने बैठे थे क्योंकि ये गुरुजन मोक्षमार्गी थे, विषय कषायों के त्यागी थे, संसार शरीर, भोगों से विरक्त थे। ख्याति, पूजा, लाभ रूपी दुर्भावना के त्यागी थे अतः उन्होंने धर्मध्यान का विषय शुक्लध्यान का उपाय बताया क्योंकि शुक्लध्यानी मुनि समस्त चेतनाचेतन पदार्थों का चिन्तन कर केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। अतः चारों अनुयोगों का अंदर से परीक्षण करने पर निर्णय प्राप्त होगा कि ये आत्मतत्त्व तथा आत्मा की नाना अवस्थाओं का वर्णन करते हैं या नहीं क्योंकि बहुत मिले हुए पदार्थों में से जिसको अलग करना है उसको, जिससे अलग करना है उनको जानना परम आवश्यक है तभी तो हेय उपादेय का सही भेद विज्ञान होगा।

प्र.189–आप कितने अनुयोगों पर विश्वास करते हैं, एक पर या चारों पर?

उत्तर–द्रव्यानुयोग पर विश्वास करते हैं। शेष तीन अनुयोगों पर नहीं या कम विश्वास करते हैं।

प्र.190–ऐसा क्यों, क्या वे शेष तीन अनुयोग जिनवाणी नहीं हैं?

उत्तर–यह हमारा व्यक्तिगत विचार है। शेष तीन अनुयोग जिनवाणी हो या न हो। ऐसा शीतलजी ने कहा।

प्र.191–जब आप पूर्व में चारों अनुयोगों को जिनवाणी कहकर तत्त्वों का कथन करने वाली स्वीकार कर आये हैं तब पुनः द्रव्यानुयोग पर विशेष विश्वास करते हैं शेष तीन पर कम ऐसा कहना क्या उचित है, मायाचार नहीं है?

उत्तर–अनुचित हो या उचित इससे क्या। यह हमारा व्यक्तिगत विचार है वह चाहे तर्क से, न्याय से, आगम से गलत सिद्ध हो इससे हमें क्या मतलब तथा प्रत्येक द्रव्य सर्वथा सर्वकाल स्वतंत्र है। किसीका किसीके साथ कोई संबंध नहीं है, ऐसा हम विश्वास करते हैं।

प्र.192–भाग्य से दूसरे दिन प्रातःकाल प्रवचन के समय पं० शीतलजी अपने सुपुत्र को गोद में लिए आ गये तब मैंने पूछा, यह किसका पुत्र है, इसके माँ बाप कौन हैं तथा इसका जन्म गर्भ से हुआ है या सम्मूर्च्छन से?

उत्तर–पं० जी चक्कर में पड़ गये सोचने लगे यदि कहता हूँ कि मेरा पुत्र है तो कल की चर्चा पर पानी फिर जाता है।

झूठ बात सिद्ध होगी और यदि कहता हूँ मेरा नहीं है तो किसका है यह प्रश्न सामने खड़ा है। यदि कहता हूँ कि दूसरे का है तो पत्नी पर परपुरुष रमणता का, व्यभिचारिणीपने का दोष आता है। अतः अन्धसर्पबिल प्रवेश के न्यायानुसार स्वीकार करना पड़ा कि संसार में या संसार दशा में प्रत्येक जीव का किसी न किसी रूप में नयसापेक्ष संबंध स्वीकार करना ही होगा तभी तो संबंध को तोड़ने का, त्यागने का उपदेश सार्थक होगा अन्यथा निरर्थक होगा। तभी संसार और मोक्ष की व्यवस्था बन सकती है अन्यथा नहीं। संसारावस्था में जीव की पराधीनता स्वीकार करने पर ही त्याग धर्म, तप धर्म, दान, उपकार, अपकार, सोलहकारण भावना, आज्ञाविचय, अपायविचय धर्मध्यान, अभयदान, आहारदानादि, हिंसादि पाप कर्मों की सिद्धि हो सकती है अन्यथा यह सब सत्कार्य मिथ्या ठहरेगा आकाश कुसुम की तरह असत् सिद्ध होगा। अतः व्यवहार संबंध स्वीकार करना होगा। यह वार्ता उनको स्वीकार करनी पडी।

प्र.193–चारों अनुयोगों में किया गया कथन प्रमाण है या अप्रमाण?

उत्तर–चारों अनुयोगों का कथन समीचीन है प्रमाण और नय से सिद्ध होता है तथा वक्ता के अभिप्राय को समझकर स्वीकार करना चाहिए अन्यथा मोक्षमार्ग के बिना संसारमार्ग, दुःख का मार्ग ही चलता रहेगा।

प्र.194–शास्त्रों में किया गया कथन किनके लिए प्रमाण है और किनके लिए अप्रमाण है?

उत्तर–जो आत्मतत्त्व की, पुण्यपाप की खोज में लगे हुए हैं सम्यग्दृष्टि हैं उनके लिए प्रमाण है, शेष के लिए अप्रमाण है।

प्र.195–न्याय शास्त्रों को आप मानते हैं या नहीं सम्यक् विश्वास है या नहीं?

उत्तर–न्याय शास्त्र समीचीन हैं, उसमें वस्तुतत्त्व की यथार्थ परीक्षा की गयी है। अत्यन्त सूक्ष्म गहन विषय होने से समझ में नहीं आता इसलिए अध्ययन नहीं करते हैं। ऐसा कहना आत्मवंचना नहीं है तो क्या है? नयों के विषय तीक्ष्ण तलवार की पैनी धार के समान हैं, वह समझ में आता है क्या? नहीं, तभी तो आपका जीवन श्रावकोचित कार्यों से छूटा हुआ है, अछूता है इसलिये न्याय ग्रंथों का अध्ययन करो।

प्र.196–नय और न्याय में क्या अन्तर है तथा इनका क्या लक्षण है?

उत्तर–शब्द में अंतर है, विषय में अन्तर नहीं है। दोनों ही सापेक्ष होने से समीचीन हैं। दोनों पदों की व्युत्पत्ति **'नी'** धातु से हुई है। अतः दोनों वस्तु तत्त्व को समझने के लिए साधकतम कारण हैं। त०सू० **प्रमाणनयैरधिगमः**–प्रमाण और नयों के द्वारा वस्तुतत्त्व की यथार्थ जानकारी होती है क्योंकि **'नयैः'** तृतीया विभक्ति का बहुवचन का रूप है और तृतीया विभक्ति का नाम करण कारक है। **साधकतमं करणम् येन क्रियते तत्करणम्**–जो कार्य को सिद्ध करने में अत्यन्त आवश्यक साधन हो उसे साधकतमकरण कहते हैं या जिसके द्वारा कार्य किया जाय उसे करणकारक कहते हैं अथवा प्रमाण के द्वारा ग्रहण किये गये विषयों में से किसी एक अंश के ग्रहण करने को, ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं तथा निष्पक्ष परीक्षा करने को, निर्णय करने को न्याय कहते हैं। नीतिनियम के सम्यक् और मिथ्या, आचार और विचारों के यथार्थ निर्णय करने को, स्वीकार करने को न्याय कहते हैं। यही अंतर है अथवा नय और न्याय में कथंचित् अंतर भी नहीं है। अथवा किसी एक दृष्टि से सापेक्ष जानने के उपाय को नय तथा सम्यक् और मिथ्या निर्णय करने के उपाय को न्याय कहते हैं।

प्र.197–ऐसा क्या कठिन है जो न्याय ग्रंथ समझ में नहीं आते हैं?

उत्तर–उन न्याय ग्रन्थों को समझने में अधिक परिश्रम करना होता है परन्तु तीव्र लगन के साथ समझने के लिए न अभ्यास है न समय है।

प्र.198–प्रयत्न करो समझ में आयेगा ही मायाचार से क्या कार्य सिद्ध होने वाला है?

उत्तर–महाराजजी आपकी बात सही है यदि समझ में आ गया तो सब कुछ छोड़ना पड़ेगा, जैसे भोजन में तीव्र रुचि है तो कैसा भी हो ग्रहण कर लिया जाता है तथा अरुचि है तो ग्रहण करने पर भी अंदर नहीं जाता कदाचित् बलात् डाल भी दिया तो उल्टी हो जाती है ऐसे ही यदि अंतरंग से वस्तु तत्त्व को यथार्थ में समझ लिया है तब विषय भोगों में मन नहीं जाता, संसार शरीर भोगों से विरक्त हो जाता है, नाटक मंच समाप्त हो जाता है, दिखाई नहीं देता कि कहाँ चला गया।

प्र.199–आप समाधान सही करते हैं पर प्रयत्न उल्टा करते हैं सो यह दोष किसका ?

उत्तर–यह दोष हमारा है कि विषय को सही ढंग से समझने का प्रयत्न नहीं करते हैं क्योंकि ग्रन्थों में वस्तु तत्त्व को समझने का उपाय दूध और पानी की तरह भेदविज्ञान पूर्वक बताया गया है।

प्र.200–उन्होंने प्रश्न किया कि अध्यात्म बहुत अच्छा लगता है और जल्दी समझ में आता है अतः यही श्रेष्ठ है?

उत्तर–मेरी तरफ से, अध्यात्म बहुत अच्छा लगता है और जल्दी समझ में आता है यह आपके ज्ञान का विषय है। सो ठीक है परन्तु अध्यात्म में स्पष्ट रूप से बाह्य त्याग का उपदेश नहीं दिया गया कारण बाह्य त्याग का उपदेश चरणानुयोग में है। इस द्रव्यानुयोग के अध्ययन से सारे पाप, दुर्व्यसन, खोटी आदतें भोगविलास छिप जाते हैं। ख्याति, पूजा, लाभ की दुर्भावना, शृंगार अलंकार की भावना प्रायः कर पकड़ में नहीं आती क्योंकि प्रत्येक द्रव्यों की स्वतंत्र सत्ता बता दी जाती है फिर पुण्य पाप, स्वतंत्र संसार मोक्ष, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा का अस्तित्त्व ही सिद्ध नहीं होगा जैसे पति पत्नी अलग अलग रहें तो संतान नहीं हो सकती, संतान का नास्तित्त्व ही रहा तो संतान के त्याग का, पत्नी के त्याग का उपदेश क्यों दिया जायेगा। पं० बनारसीदासजी का जीवनवृत्त अच्छी तरह से पढ़ना चाहिए।

'करनी को रस मिट गयो भयो न आतम स्वाद।
भई बनारसि की दशा यथा ऊँट को पाद।'

कोरे आध्यात्मवादियों को इस पद्य का अर्थ निरन्तर ध्यान में रखना चाहिए। जैसी पं० बनारसीदास की अवस्था हुई हमारी भी दशा वैसी न हो अथवा वर्तमान में नामधारी सद्गुरु तथा अनेक ग्रन्थों के सम्पादक प्रतिष्ठा प्राप्त पंडित वर्ग मरने के समय अस्पतालों में जाकर बुरी मौत मरे। अतः अपने जीवन को सुरक्षित रखने के लिए आध्यात्म के अध्ययन पूर्वक त्याग, संयम, व्रत का भी अभ्यास करते रहना चाहिए क्योंकि जब पं० बनारसीदासजी ने पं० राजमल्लजी से गोम्मटसारजी का अध्ययन किया तब उनकी आँखें खुली कि जीव की वर्तमान में क्या अवस्था है यदि आपने वर्तमानकाल में जीव की अवस्था नहीं समझी तो किसे सुधारने की, शुद्ध करने की साधना करोगे और भविष्य कैसे ठीक होगा? इस कारण द्रव्यानुयोग का नम्बर चौथा है, 1ला प्रथमानुयोग का, 2रा करणानुयोग का और 3रा चरणानुयोग का है। न्यायशास्त्र, तर्कशास्त्र द्रव्यानुयोग में आते हैं क्योंकि ये द्रव्य की शुद्धि अशुद्धि की अवस्था को दर्शाते हैं और द्रव्य की सही परीक्षा न्यायग्रथों से ही जानी जाती है कि वस्तु को नय या प्रमाण से किस रूप में विश्वास करना चाहिए और किस रूप में नहीं।

प्र.201–आध्यात्म का विषय क्या आज्ञापूर्वक ग्राह्य है या परीक्षापूर्वक?

उत्तर–आध्यात्म का विषय प्रारम्भ दशा में, अभ्यास दशा में आज्ञापूर्वक ग्राह्य है। आज्ञा मानकर विश्वास किया जाता है। बाद में अभ्यास होने पर परीक्षापूर्वक विश्वास किया जाता है। इसके बाद में पुनः अनुभव करके विश्वास किया जाता है। आज्ञापूर्वक स्वीकार किया कि अग्नि उष्ण है इसमें क्या परीक्षा करोगे? अग्नि में उष्णपना औदयिक भाव है, पानी में शीतलता औदयिक भाव है ये पारिणामिक भाव नहीं है फिर भी अनादिकाल से जीव की विकारी अवस्था होने से जीव का स्वतत्त्व स्वभाव कहा जाता है क्योंकि जीव का ही परिणमन है। औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, औदयिकभाव और पारिणामिक भाव ये पाँचों भाव उपादान उपादेय की दृष्टि से जीव के स्वतत्त्व कहे जाते हैं स्वयं के भाव कहे जाते है। सर्वज्ञ भगवान ने जो केवलज्ञान के द्वारा जाना है और दिव्यध्वनि से कहा है, वह सभी अभ्यासदशा में आज्ञा मानकर विश्वास करना चाहिए और जो अल्पज्ञ वस्त्रधारी असंयमी गृहस्थ या अगृहस्थ जनों ने कहा है वह सब तर्क से, अनुभव करके, परीक्षा करके विश्वास करना चाहिए। अतः समीचीन को समीचीन और मिथ्या को मिथ्यारूप में विश्वास करना जानना सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान है अन्यथा मिथ्यात्रयस्वरूप संसार का मार्ग ही है।

प्र.202–परीक्षा पूर्वक निर्णय सही होने पर अपना विश्वास बदलना चाहिए या नहीं?

उत्तर–सही निर्णय होने पर अपनी मान्यता और संस्कार बदल देना चाहिए अन्यथा उसी क्षण से मिथ्यात्व का प्रसंग आता है यदि विश्वास करके भी अपने संस्कार आदत नहीं बदली तो अधोगति से कौन बचायेगा? देखो, रावण ने प्रजा के मोह से और स्वयं के लोभ से पाप किया तो नरक में जाने से कोई रोकने वाला नहीं मिला। पूर्व संस्कार वश रावण ने सीता का अपहरण किया बाद में रानियों ने, मंत्रियों ने, पुत्रों ने खूब समझाया बहुत समझाने पर गलती मंजूर कर ली थी पर गलती छोड़ी नहीं किन्तु मान कषाय को और पुष्ट किया, मजबूत किया तो रणक्षेत्र में अनेक अक्षौहणी सेनाओं के साथ स्वयं मरण कर तीसरे नरक में चला गया। बद्धायुष्क होने के कारण राजा श्रेणिक

ने गलती मंजूरकर गलती छोड़कर के क्षायिकसम्यग्दृष्टि हुआ, तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर अंत में मरण कर प्रथम नरक में 84000 हजार वर्ष की आयुवाला नारकी हुआ और भविष्य में नरक से निकलकर महापद्म नाम के प्रथम तीर्थंकर होंगे तथा बाद में मोक्ष प्राप्त करेंगे अतः गलती नहीं करना ही श्रेष्ठ है तथा कदाचित् गलती हो जाये तो गलती को गलती स्वेच्छा से निर्मल भावपूर्वक स्वीकार कर छोड़कर संस्कारों को बदलकर समीचीन निर्दोष विश्वास कर अपना कल्याण कर लेना चाहिए।

प्र.203–वर्तमान काल में वर्तमान नय से स्वीकार करना चाहिए या नहीं?

उत्तर–वर्मंमान काल में भले ही मोक्ष प्राप्त न हो फिर भी आपको स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुकूल होने पर मोक्षमार्ग तो प्राप्त हो सकता है, उसमें बाधा नहीं है। इसलिए वर्तमान नय से ही वर्तमानकाल में अपनी आदत सुधारकर यथार्थ विश्वास करना चाहिए तभी ज्ञान सम्यग्ज्ञान और चारित्र सम्यक्चारित्र कहलायेगा अन्यथा मिथ्यात्रय ही है।

प्र.204–वर्तमान में भावीनय से संस्कार बदलकर समीचीन विश्वास करना चाहिए या नहीं?

उत्तर–क्या वर्तमान में, क्या भविष्य में जब स्वीकार करोगे तथा छोड़ोगे तभी मोक्षमार्ग बनेगा अन्यथा नहीं। मिथ्यात्व पूर्वक समय व्यतीत करने पर यदि कहीं नरकायु, तिर्यंचायु का राजा श्रेणिकादि की तरह बंध कर लिया तो सागरों पर्यंत मारकाट के कष्टों को भोगना पड़ेगा। रौद्रध्यानी बनकर कितने कष्टों को सहन करना पड़ेगा यह अनुमान स्वयं लगाकर देख लेना। देखो शिवकोटी राजा ने मिथ्यात्व के स्थान स्वरूप एक कोटि शिव के मंदिरों को खल के टुकड़े में तैलन को दे दिये थे और आ० श्री समन्तभद्रजी से दिगम्बर दीक्षा धारण की थी अतः **'जभी जागो तभी सबेरा'** इसलिए जब निर्दोष विश्वास करोगे तभी संसार बंधन टूटेगा, नष्ट होगा तभी मोक्ष की प्राप्ति होगी, अन्यथा नहीं।

प्र.205–भविष्य में हम अपने संस्कार को बदलेंगे तो आपको इसमें क्या आपत्ति है?

उत्तर–हमको इस में कोई आपत्ति नहीं। हम पहले कह आये हैं जब अपने संस्कार, आदत बदलोगे तभी मोक्षमार्ग प्राप्त होगा अन्यथा आपकी जैसी मान्यता हो, होनहार हो वैसा करो। आपको जैसा आपके पंडितों ने पढ़ाया वैसा विश्वास करो पर ध्यान रखना यदि यह पर्याय आपकी संयम के बिना व्यतीत हुई और कहीं नरक निगोद में चले गये तो पछताना होगा। अतः अभी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के अनुसार समर्थ हो अपनी शक्ति का सदोपयोग करो, दुरुपयोग मत करो अन्यथा समय चूकने के बाद अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल तक तो भ्रमण करना ही पड़ेगा।

प्र.206–निर्णय बाधित होना चाहिए या अबाधित?

उत्तर–यदि आपको मोक्ष या मोक्षमार्ग चाहिए तथा व्यवहारिक जीवन भी सुख से व्यतीत हो ऐसी इच्छा है तो अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव दोष से रहित निर्दोष अबाधित निर्णय होना चाहिए जिससे उभय लोकों में सुख शान्ति की, सम्यक्रत्नत्रय की, धर्म की प्राप्ति हो। निर्णय सदोष होने से दुःख की प्राप्ति होती है अतः आप कष्ट से भयभीत हैं तो आपको हमेशा जागृत रहना चाहिए।

प्र.207–अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–लक्ष्य के एकदेश में लक्षण के रहने को अव्याप्ति दोष कहते हैं जैसे जीव का लक्षण केवलज्ञान है। यहाँ जीव लक्ष्य है और केवलज्ञान लक्षण है। समस्त संसारी जीवों के केवलज्ञान नहीं पाया जाता है किन्तु कुछ के ही पाया जाता है अतः लक्ष्य जीवों के एकदेश में थोड़े जीवों में केवलज्ञान पाया जाने से अव्याप्ति दोष है क्योंकि केवलज्ञान क्षायिकभाव है, नैमित्तिक भाव है, पारिणामिक भाव नहीं है और क्षायिक भाव थोडा थोडा उत्पन्न नहीं होता है किंतु एकसाथ परिपूर्णरूप से ही उत्पन्न होता है कारण सर्वघाती प्रकृतियों का भी क्षय या उदय एकसाथ ही एक समय में पूर्णरूप से है थोडा थोडा नहीं। यदि समस्त भव्य और अभव्य जीवों के केवलज्ञान पर्याय व्यक्त रूप में मानी जाये तो सभी सर्वज्ञ सर्वदर्शी ठहरेंगे फिर छद्मस्थ जीव कौन होगा? प्रमत्त कौन जीव होगा मिथ्यादृष्टि असंयमी कौन होगा? चारों गतियों में भ्रमण कौन करेगा? पुनः यदि समस्त जीवों के केवलज्ञान मान भी लिया जाय तो क्षायोपशमिक मतिज्ञान आदि सात ज्ञान, औदयिक भावरूप अज्ञान, क्षायोपशमिक दर्शन किसके होगा? यदि इन भावों को एकसाथ माना जाय तो भी बात नहीं बनती क्योंकि क्षायिक केवलज्ञान और क्षायोपशमिक मतिज्ञानादि ज्ञानों में एकसाथ अर्थक्रिया बन नहीं सकती है कारण :–**'एकादीनि**

भाज्यानियुगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः।' एक साथ एक जीव में एक समय में व्यक्त रूप में एक केवलज्ञान होगा, दो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान होंगे, तीन मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान होंगे, चार मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान होंगे इस प्रकार इस सूत्र के साथ भी विरोध आता है और प्रागभाव प्रध्वंसाभाव किसका होगा?

प्र.208–अर्थक्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रत्येक द्रव्य या गुणों का कुछ न कुछ शुद्ध और अशुद्ध कार्य करते रहने को अर्थक्रिया कहते हैं।

प्र.209–केवलज्ञान को लक्षण न मानकर मतिज्ञानादि को लक्षण मान लो तो क्या दोष है?

उत्तर–नहीं, जो दोष क्षायिकभाव स्वरूप केवलज्ञान को लक्षण मानने में आते हैं वे ही दोष क्षायोपशमिक मतिज्ञानादि को लक्षण मानने में आते हैं क्योंकि क्षायोपशमिक ज्ञान अज्ञान सयोगी, अयोगी और सिद्धों के नहीं पाये जाते हैं अतः समस्त जीवों में क्षायोपशमिक ज्ञान नहीं पाये जाने से यह लक्षण भी अव्याप्ति दोष से युक्त है। इस कारण क्षायोपशमिक ज्ञान को लक्षण नहीं मान सकते हैं। अतः लक्षण भी अव्याप्ति दोष रहित होना चाहिए।

प्र.210–अतिव्याप्ति दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–जो लक्षण लक्ष्य से अलक्ष्य में चला जाय उसे अतिव्याप्ति दोष कहते हैं। जैसे जीव का लक्षण अमूर्तिक है या सुख जीव का लक्षण है। यहाँ जीव का लक्षण अमूर्तिक कहा है और जीव से भिन्न अजीव धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य भी अमूर्तिक हैं अतः जीव का अमूर्तिक लक्षण अजीव द्रव्यों में चला जाने से अतिव्याप्ति दोष से सहित हो जाता है। इसी तरह इंद्रियजन्य, शरीरजन्य सुख आत्मा का लक्षण मानने पर लक्षण सदोष माना गया है क्योंकि शरीर इंद्रियाँ सिद्धों के नहीं होती हैं फिर भी सिद्धों के अनंतसुख है। जीव संसारी भी है और मुक्त भी है किन्तु सयोगी, अयोगी के द्रव्य इंद्रियों का सद्भाव होने पर भी भावेंद्रियों का अभाव होने से सुख नहीं होना चाहिए वे चाहें भवसिद्ध हों या द्रव्यसिद्ध हों फिर भी वे अनन्त सुखी हैं इस कारण यहाँ जीव का लक्षण सुख कहा है। अतः जीव लक्ष्य है और सुख लक्षण है। इंद्रिय और शरीर माध्यम हैं, साधन हैं तथा साधन के बिना भी अरिहन्त, सिद्धों के सुख है अतः यह लक्षण अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष से युक्त है अथवा काली गाय यहाँ गाय लक्ष्य है और काली लक्षण है तब जो जो काली हो वह सब काली गाय हो जायेगी पर ऐसा होता नहीं क्योंकि काली भैंस, गधा, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली भी होती हैं इन सबको गाय मानने का प्रसंग आयेगा। अतः शरीर इंद्रिय मौजूद होने पर भी निगोदिया जीव या लब्धि अपर्याप्तक जीव न अनन्त सुखी हैं, न आत्मसुख है, न शारीरिक सुख है, न सुख में साधनभूत सामग्री है। इस कारण जीव का लक्षण सुख मानना अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष से युक्त होने से सदोष है।

प्र.211–असंभव दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–जो लक्षण लक्ष्य में त्रिकाली किसी भी पर्याय में संभव न हो सके उसे असंभव दोष कहते हैं जैसे पारिणामिकभाव वाले अभव्य जीव के केवलज्ञान भाव पर्याय मौजूद है ऐसा कहना यह लक्षण असंभव दोष से सहित है क्योंकि अभव्य जीव के कभी भी व्यक्त रूप में केवलज्ञान क्षायिकभाव पर्याय संभव नहीं अथवा वर्तमान नय से वर्तमान में बाँझ के पुत्र का सद्भाव बताना यहाँ बाँझ लक्ष्य है और पुत्र लक्षण है यहाँ बाँझ के पुत्र है, तो वह बाँझ कैसे हो सकती है? यह भी असंभव दोष है इसलिए किसी का लक्षण बनाना हो, बताना हो या विश्वास करना हो तो अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असंभव दोष रहित होना चाहिए पुनः जीव का लक्षण जो केवलज्ञान कहा है वह अभव्यजीव के त्रिकाल में सम्भव नहीं है यदि अभव्यजीव के केवलज्ञान हुआ ऐसा माना जाय तो अभव्य पारिणामिक भाव बन नहीं सकता। क्योंकि अभव्यजीव के औदयिक भाव, क्षायोपशमिक भाव और पारिणामिक भाव पाये जाते हैं शेष दो नहीं। अतः अभव्यजीव के केवलज्ञान पर्याय का अस्तित्त्व बताना असंभवदोष से युक्त है क्योंकि केवलज्ञान क्षायिकभाव है, पर्याय है, सादि अनन्त है और पारिणामिकभाव द्रव्य रूप में अनादि अनन्त है, निमित्त नैमित्तिक भाव से रहित है। इस प्रकार इन दोषों से रहित अबाधित निर्णय होना चाहिए, बाधित नहीं क्योंकि बाधित लक्षण तथा बाधित निर्णय होने पर संसार है, संसारमार्ग है और अबाधितनिर्णय मोक्षमार्ग है, सुख का मार्ग है।

प्र.212–निर्णय किसे कहते हैं तथा भेद कितने हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–दूध का दूध और पानी का पानी जैसा फैसला करने को निर्णय कहते हैं। यहाँ मेरातेरा, ऊँचनीच का, छोटेबड़े का पक्षपात नहीं होता है। इस धर्म के फैसले में हानि लाभ नहीं देखा जाता है किन्तु जो जैसा है जिसका है, उसी

रूप में उसी को स्वीकार करना, कहना, निष्कपट, निःस्वार्थ, बालकवत्, पक्षपात, पंथवाद रहित यथार्थ, यथावत् न्याय करने को निर्णय कहते हैं अथवा किसी तत्त्व को, न्याय नीति को प्रमाण, नय और निक्षेप के द्वारा निर्दोष सिद्ध करने को निर्णय कहते हैं। भेद दो हैं। **नाम**–समीचीन निर्णय और असमीचीन निर्णय।

प्र.213–समीचीन निर्णय किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रमाण नय निक्षेप के द्वारा अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव दोष से रहित पंथवाद, पक्षपात से रहित होकर प्राप्त निष्कर्ष को समीचीन निर्णय कहते हैं। इसे ही यथार्थ भेदविज्ञान सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्र.214–असमीचीन निर्णय किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रमाणाभास, नयाभास, निक्षेपाभास से निर्णीत निर्णय को तथा अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव दोष, पंथवाद, पक्षपात से युक्त निर्णय को असमीचीन निर्णय कहते हैं। इसे ही मिथ्याज्ञान कहते हैं।

प्र.215–प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर–किसी वस्तु को, विषय को, ज्ञेय को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से सम्पूर्ण जानने के उपाय को प्रमाण कहते हैं। जो वस्तु को पूर्णरूप से, अखण्डरूप से, अभेदरूप से, शुद्धरूप से, अशुद्धरूप से ग्रहण करे उसे प्रमाण कहते हैं, सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं अथवा हित की प्राप्ति में, अहित के परिहार में साधकतम साधन को प्रमाण कहते हैं।

प्र.216–प्रमाण के कितने भेद हैं?

उत्तर–दो भेद हैं अथवा अवान्तर भेदों की अपेक्षा अनेक भेद हैं।

प्र.217–प्रमाण के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–सकलप्रत्यक्ष और विकलप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्षप्रमाण और परोक्षप्रमाण। केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष प्रमाण है। अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान विकलप्रत्यक्ष प्रमाण हैं अथवा उक्त तीन ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है और मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं तथा इनके भेद प्रभेद अनेक हैं।

प्र.218–सकल प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर–किसी भी इन्द्रिय, मन, प्रकाश आदि बाह्य सामग्री के अवलंबन के बिना बाधक कारण (ज्ञानावरण कर्म) के अभाव में, स्वयं के स्वभाव से उत्पन्न, समस्त पदार्थों के द्रव्य गुण पर्यायरूप समस्त अविभागप्रतिच्छेद शक्त्यंश त्रिकाली और त्रिलोकी विकारों को जानने के साधकतम उपाय को यानि केवलज्ञान को सकल प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

प्र.219–विकल प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर–उपरोक्त विषयों को बिना पर की सहायता के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा को लेकर एकदेश थोडा स्पष्ट जानने को यानि अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान को विकल प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

प्र.220–प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर–जीवादि द्रव्यों को, इनके अनंत अनंत गुणों को और इन्हीं की अनंतानंत व्यंजन पर्याय तथा अर्थपर्यायों को त्रिकाली अवस्थाओं को, अलोकाकाश सहित इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना द्रव्य क्षेत्र काल भाव की सीमा सहित या रहित उदय को उदय रूप में, उदीरणा को उदीरणा रूप में, व्यक्त को व्यक्त रूप में, शक्ति को शक्ति रूप में, अस्ति को अस्ति रूप में, नास्ति को नास्ति रूप में आदि समस्त ज्ञेय पदार्थों को स्पष्ट विशद जाननेवाले अवधि आदि तीन ज्ञानों को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

प्र.221–परोक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर–उपरोक्त समस्त ज्ञेय पदार्थों के कुछ अंशों को इन्द्रिय और मन आदि बाह्य साधनों के माध्यम से सीमा सहित, मर्यादा सहित जाननवाले मतिज्ञान श्रुतज्ञान को परोक्ष प्रमाण कहते हैं।

प्र.222–नय किसे कहते हैं?

उत्तर –ज्ञाता के अभिप्राय को अथवा किसी वस्तु या विषय के एकदेश जानने को अथवा वस्तु के एक अंश के जानने को अथवा प्रमाण के द्वारा जाने गये विषय के एक अंश के जानने को नय कहते हैं। जो वस्तु के किसी एकदेश को, एक अंश को, एक पक्ष को, शुद्ध या अशुद्ध अंश ग्रहण करने के उपाय को नय कहते हैं अथवा जो भेद रूप में, खण्डरूप में ग्रहण करें उसे नय कहते हैं।

प्र.223–नयों के कितने भेद हैं?

उत्तर–वचनों के भेदों के समान नयों के अनेक भेद हैं। दो से लेकर संख्यात असंख्यात और अनंत भेद हैं।

प्र.224–नयों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–नयों के नाम –द्रव्यार्थिकनय या निश्चयनय अथवा पर्यायार्थिकनय या व्यवहारनय।

प्र.225–द्रव्यार्थिकनय या निश्चयनय किसे कहते हैं?

उत्तर–द्रव्य और गुणों के विषय करने वाले साधन को, अखंड को, अभेद को, एक को, शुद्धाशुद्ध, सत् लक्षण वाले को, ध्रौव्य स्वभाव के जाननेवाले उपाय को द्रव्यार्थिकनय या निश्चयनय कहते हैं।

प्र.226–पर्यायार्थिकनय या व्यवहारनय किसे कहते हैं?

उत्तर–पर्याय के विषय करने वाले को, उत्पाद व्यय स्वभाव को, परिणमन स्वभावी शुद्धाशुद्ध अवस्था को, कर्म सापेक्ष, निरपेक्ष (द्रव्य और गुणों की अपेक्षा के बिना) अवस्था को, भेद को, खंड को, अनेक को व्यंजन पर्याय और अर्थपर्याय के जानने के उपाय को पर्यायार्थिक नय या व्यवहारनय कहते हैं।

प्र.227–निक्षेप किसे कहते हैं?

उत्तर–जो निर्णय की ओर ले जाये, अनिर्णय का निराकरण करा दे तथा जिस वचन से उभय लोक में बाधा उत्पन्न न हो किन्तु जीवन यथावत् शान्तिमय चलता रहे उसे निक्षेप कहते हैं।

प्र.228–निक्षेप के कितने भेद हैं?

उत्तर–निक्षेप के चार भेद हैं अथवा छः भेद हैं अथवा अनंत भेद हैं।

प्र.229–निक्षेप के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–निक्षेप के 4 नाम–1. नाम निक्षेप 2. स्थापना निक्षेप 3. द्रव्य निक्षेप 4. भाव निक्षेप अथवा निक्षेप के 6 नाम–1. नाम निक्षेप 2. स्थापना निक्षेप 3. द्रव्य निक्षेप 4. भाव निक्षेप 5. क्षेत्र निक्षेप 6. काल निक्षेप।

प्र.230–प्रमाण नय और निक्षेपों के द्वारा क्या करना चाहिए?

उत्तर–इन तीनों के द्वारा जो किसी तत्त्व का निर्णय जानकारी नहीं करता है उसे यथार्थ निर्णय न होने के कारण गलत होने पर सही और सही होने पर गलत मालूम पड़ता है। अतः मोक्षमार्ग में इन तीनों का यथावसर प्रयोग किये जाने पर ही यथार्थ निर्णय होता है तथा इन तीनों की मोक्षमार्ग में, लोक व्यवहारमार्ग में अत्यन्त आवश्यकता है। इनका यथानुरूप प्रयोग करने से उभय लोक में जीवन सुखी होता है अन्यथा दुःखी होता है इसलिए मिथ्यात्व का और विषय कषायों का दमन करने के लिए इनका उपयोग आत्मसात् पूर्वक करना चाहिए।

प्र.231–व्यवहार नय के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–व्यवहार नय के दो भेद हैं। नाम–1. अध्यात्म का व्यवहारनय 2. आगम का व्यवहारनय।

प्र.232–उक्त दोनों व्यवहार नयों का लक्षण क्या है और विषय परिवर्तन से क्या हानि हैं?

उत्तर–आध्यात्म का व्यवहार नय एक ही द्रव्य में द्रव्य गुण पर्याय के भेद से कथन करता है अथवा एक ही अंश में दो पक्ष है एक पक्ष को निश्चयनय तो उसके प्रतिपक्षी पक्ष को व्यवहार नय अपना विषय बनाता है तथा आगम का व्यवहार नय द्रव्यों में भेद प्रभेद बताता है और वस्तु व्यवस्था को दर्शाता है। आगम के व्यवहारनय में शुद्ध अशुद्ध, भेदप्रभेद नहीं हैं किन्तु आध्यात्म के व्यवहार नय में शुद्धाशुद्ध, सत् असत्, उपचरित अनुपचरित व्यवहार नय के भेद प्रभेद हैं। आजकल अधिकतर वक्तागण इन दोनों नयों के विषय में संक्रमण कर विवाद कर लेते हैं इसीसे समाज पिस रहा है।

प्र.233–प्रमाणाभास किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्याज्ञान को, जो अहित की प्राप्ति और हित का त्याग कराये उस सदोष ज्ञान को प्रमाणाभास कहते हैं।

प्र.234–ग्रहण करना, त्याग करना यह चारित्र का कार्य है इस परिभाषा को प्रमाण ज्ञान में क्यों ग्रहण किया है?

उत्तर–सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये दोनों ही नेत्रों के समान एकसाथ मोक्षमार्ग को साधते हैं। सम्यग्ज्ञान कारण है और सम्यक्चारित्र कार्य है। इसलिये अभेद विवक्षा कर चारित्र को गौण कर ज्ञान को प्रधान कर चारित्र के कार्य को ज्ञान का कार्य कहा है, वास्तव में जानना ज्ञान का कार्य है और ग्रहण करना, त्याग करना चारित्र का कार्य है।

प्र.235–शुद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसमें पर द्रव्य के और पर निमित्त के माध्यम से विकार उत्पन्न न हो, मिलावट न हो उसे शुद्ध कहते हैं। जैसे

शुद्ध घी, शुद्ध सोना। शुद्ध घी में कुछ मिलावट न हो, मक्खन के कण भी न हो उसे शुद्ध घी कहते हैं। इसी तरह सोने में किंचित्मात्र भी किट्टिकालिमा न हो जो 16वार तपाया गया हो उसे शुद्ध सोना कहते हैं इसी तरह अखण्ड, अभेद द्रव्य को शुद्ध कहते हैं। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य हमेशा शुद्ध रहते हैं। पुद्गल द्रव्य में शुद्ध से अशुद्ध और अशुद्ध से शुद्ध परिणमन होता रहता है। जीव में अशुद्ध से शुद्ध रूप परिणमन हो सकता है परन्तु एकबार जीव ने शुद्धरूप से परिणमन कर लिया तो फिर लाख प्रयत्न करने पर भी पुनः अशुद्ध परिणमन नहीं होता, देखो दूध से घी बनते बनाते सबने देखा है किन्तु पुनः घी से दूध बनते बनाते किसी ने नहीं देखा है न किया है इसी तरह संसार से मोक्ष प्राप्त होता है तो पुनः मोक्ष से संसार प्राप्त नहीं होता है।

प्र.236–अशुद्ध किसे कहते हैं तथा वस्तु और अवस्तु किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस द्रव्य में पर द्रव्य का प्रवेश हो गया है, नैमित्तिक भाव उत्पन्न हो गया है, स्वीकार कर लिया है द्रव्य को भेद करके गुण पर्यायरूप में ग्रहण करने को अशुद्ध कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य अपने प्रतिपक्षी धर्मसहित अनन्तगुण धर्म सहित को वस्तु कहते हैं और वही वस्तु चिंतक की अपेक्षा अपने प्रतिपक्षी धर्म से रहित है जो किसी नय या प्रमाण का विषय नहीं है उसे ही अवस्तु कहते हैं, जिसका वर्तमाननय से वर्तमान में गधे के सींग की तरह अस्तित्व ही नहीं है उस अवस्तु का अस्तित्व त्रिकाल और त्रिलोक में ही नहीं है।

प्र.237–निर्णय बाधित है या अबाधित, निर्दोष है या सदोष इसका फल क्या है?

उत्तर–पंथवाद, पक्षपात रूपी दुराग्रह को छोड़कर, माध्यस्थ भाव को धारणकर, प्रमाण नय और निक्षेप को भली भांति समझकर जो निर्णय लिया जाता है वह अबाधित है, निर्दोष है तथा जो निर्णय पंथवाद, पक्षपात से सहित है दुराग्रहपूर्वक है प्रमाण, नय और निक्षेप से निरपेक्ष स्वीकार किया है वह निर्णय बाधित है, सदोष है, अशुद्ध है, संसार का कारण है, विषय कषायों को बढ़ाने वाला है।

प्र.238–जानकारी और अनुभव में क्या अन्तर है?

उत्तर–कारण और कार्य के समान या फूल और फल के समान अन्तर है। जानकारी ज्ञान का विषय है तथा अनुभव चारित्र या परिणति क्रिया का विषय है जैसे नर्स प्रसूति कराके प्रसूति की वेदना को जानती है कि कितना कष्ट होता है यदि वह कष्ट को ना जाने तो कष्ट दूर करने का उपाय क्यों करे? अतः नर्स प्रसूति की वेदना को जानती है किन्तु अनुभव नहीं करती है अनुभव तो प्रसूति करने वाली माँ को ही होता है। अपने सामने दूध है दूध के स्वाद को जानते हैं कि दूध मीठा है पर कितनी मात्रा में मीठा है यह तो पीने पर मालूम होगा। अतः कार्य रूप में परिणत हुए बिना दुःख या सुख का अनुभव नहीं होता। इस कारण जानकारी में सुखदुःख नहीं है किंतु अनुभव में सुख दुःख होता है।

प्र.239–निर्णय निर्दोष सिद्ध होने पर गलत धारणा को बदलना चाहिए या नहीं?

उत्तर–कोई नियम या शंका है उसका निर्दोष खुलासा होने पर अपनी गलत धारणा को निःसंकोच शीघ्र ही बदल लेना चाहिए या बदल देना चाहिए। आत्महित के लिए बहाना नहीं बनाना चाहिए जैसे राजा श्रेणिक ने अपनी धारणा को बदल दिया तो सातवीं पृथिवी की तैतीस सागर की आयु को छेदकर मात्र 84 हजार वर्ष की घटाकर कर ली तथा रावण ने अपनी गलत धारणा नहीं बदली तो मरणकर तीसरे नरक में जाना पड़ा **'निज उत्थान पतन निजकर में'** अपना उत्थान करना, कल्याण करना, पतन करना, अकल्याण करना अपने हाथ में है। अतः आप अपनी मिथ्याधारणा को बदलोगे तो हित होगा, अन्यथा अहित होगा। केवल जानकारी से सुख दुःख नहीं होता है किंतु गलत धारणा को छोड़ने से या सही को ग्रहण करने से सुख तथा गलत को अपनाने से या सही को छोड़ने से दुःख होता है।

प्र.240–निर्णय निर्दोष सिद्ध होने पर धारणा बदलने से गुणस्थान बदलता है या नहीं?

उत्तर–निर्णय निर्दोष सिद्ध होने पर गलत धारणा बदलने से यदि निकट भव्य है तो संयम पूर्वक पुरुषार्थ न करने से गुणस्थान में वृद्धि नहीं होती है किन्तु उसी गुणस्थान में रहकर भी मन्द या तीव्र शुभ परिणति होने से सातिशय पुण्य को बाँधकर, दीक्षा लेकर, गुणस्थान में वृद्धि कर, संयम पालन कर, तपकर, विशेष कर्मों की निर्जरा कर यदि चरमशरीरी हैं तो कर्मों को क्षय करके मोक्ष में चले जाते हैं या अचरमशरीरी हैं तो विशेष कर्मों की निर्जरा करके, समाधि पूर्वक मरण कर, महाऋद्धि धारक देव होकर, भवान्तर में मनुष्य होकर, तप करके कर्मों को क्षय

कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं अथवा अभव्य है या दूरभव्य या दूरानुदूरभव्य है तो मन्द शुभ परिणति से निरतिशय पुण्य को बांधकर स्वर्ग में अपनी साधनानुसार जन्म धारण कर, वहाँ सुख भोगकर, पुनः मनुष्य होकर, राज्य सुख भोगकर संसार में भ्रमण करता है किन्तु आत्मसुख प्राप्त नहीं करता फिर भी परिणाम, लेश्या शुभ होने से नरक के दुःख की अपेक्षा स्वर्ग के सुख तो अच्छे हैं। अतः निर्दोष धारणा बनाना श्रेष्ठ है जिससे सिद्ध सुख प्राप्त हो।

प्र.241–ध्यान किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और क्या फल है?

उत्तर–ध्येय को, लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्थिरता पूर्वक निर्दोष या सदोष चिन्तन करने को ध्यान कहते हैं। अनेक भेद हैं। सुख और दुःख की प्राप्ति होना इसका फल है।

प्र.242–ध्याता किसे कहते हैं, स्वामी कौन है?

उत्तर–ध्यान करने वाले को ध्याता कहते हैं। जो छहों संहनन वाले होते हैं और नहीं भी। देव नारकी, आहारकशरीर, आहारक शरीरांगोपांग और एकेन्द्रियजीव संहनन रहित तथा इनके अलावा शेष मनुष्य और तिर्यंच संहनन सहित जीव स्वामी हैं तथा सिद्धप्रभु भी स्वामी हैं क्योंकि सिद्धों के व्युपरतक्रिया निवृत्ति रूप, सांसारिक क्रिया के अभाव रूप, स्वभाव परिणत रूप, स्थिर अवस्था रूप शुक्लध्यान ही होगा अथवा अनंतकाल तक के लिए निज स्व स्वभाव में स्थिररूप अवस्था ही निश्चल ध्यान है।

प्र.243–ध्येय मार्ग का बनाया जाता है या मार्गफल का?

उत्तर–ध्येय मार्गफल का बनाया जाता है, मार्ग का नहीं क्योंकि मार्ग अनेक हैं और मार्गफल मोक्ष तो एक ही है। यद्यपि आधार की अपेक्षा मोक्षस्थ सिद्ध जीवों के अनेक भेद हैं फिर भी आधेय की अपेक्षा, गुणधर्मों की अपेक्षा कोई भेद नहीं हैं।

प्र.244–ध्येय किसे कहते हैं, भेद कितने हैं और क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर–जिसका ध्यान किया जाये या जो परम उत्कृष्ट निर्दोष पद प्राप्त करने योग्य हो उसे ध्येय कहते हैं, मोक्ष पद को भी ध्येय कहते हैं। शुद्ध और अशुद्ध ये दो भेद हैं। शुद्ध का ध्येय होने से, शुद्ध का लक्ष्य होने से मोक्ष की प्राप्ति या संसार बंधन से, पराधीनता से छुटकारा प्राप्त होता है और अशुद्ध का ध्येय, लक्ष्य होने से संसारबंधन की, पराधीनता की प्राप्ति होती है। नाना तरह के दुःख प्राप्त होते हैं।

प्र.245–ध्यान का फल किसे कहते हैं?

उत्तर–संवर, निर्जरा और मोक्ष की प्राप्ति को, सातिशय आनंद की प्राप्ति को ध्यान का लोकोत्तर फल कहते हैं तथा शलाका पुरुष, पुण्यपुरुष, और भी उच्च पदवी, भोगभूमिज सुख, स्वर्ग के उत्तम सुख आदि ये सभी लौकिक सुख को तथा सामग्री की प्राप्ति को ध्यान का लौकिक फल कहते हैं।

प्र.246–क्या ध्याता मनुष्य ही होता है या अन्यगति का जीव भी हो सकता है?

उत्तर–ध्याता चारों गतियों का सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, भव्य अभव्य, असंयमी देशसंयमी या संयमी जीव भी हो सकता है किन्तु साक्षात् मोक्ष प्राप्ति के योग्य कर्मभूमिज पर्याप्त मनुष्य मनुष्यनी वज्रवृषभनाराच संहननवाला असंयमी, देशसंयमी, चरमशरीरी महाव्रती उत्कृष्ट ध्याता होता है। आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान के स्वामी चारों गतियों के जीव हैं तथा शुक्लध्यान का स्वामी एकमात्र कर्मभूमिज आर्यखंडोत्पन्न उत्तम संहनन युक्त मनुष्य मनुष्यनी पर्याप्तक शुक्ललेश्या का धारी होता है। सम्पूर्ण आर्तध्यान और रौद्रध्यान के स्वामी सैनी, असैनी, भव्य, अभव्य, एकेन्द्रिय, विकलेंद्रिय, सकलेंद्रिय, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर पाँचवें देशसंयत गुणस्थान तक के स्वामी हैं। निदान आर्तध्यान को छोड़कर शेष तीन आर्तध्यान के स्वामी प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक मुनिजन हैं। सामान्य धर्मध्यान तो चारों गतियों के सम्यग्दृष्टि जीवों के होता है किन्तु विशेष धर्मध्यान उपशम श्रेणी और क्षपकश्रेणी वाले 8, 9, 10वें गुणस्थान वाले जीव स्वामी हैं और शुक्लध्यान को ध्याने वाले उपशमक ग्यारहवें गुणस्थान वाले तथा क्षपक क्षीणमोही, सयोगकेवली, अयोगीकेवली स्वामी हैं। ये सभी गुणस्थान वाले जीव आगे आगे की अवस्था को प्राप्त करने के लिए ध्याता हैं और पूर्व के गुणस्थान वालों के लिए ध्येय स्वरूप हैं किन्तु सिद्धपरमेष्ठी समस्त जीवों के लिए ध्येय स्वरूप हैं और अपने आप में ध्यान ध्याता तथा ध्यानफल स्वरूप हैं।

प्र.247–धारणा को किस नय से बदलना चाहिए?

उत्तर–यदि आपकी धारणा व्यवहारनय की सर्वथा उपेक्षा कर सर्वथा निश्चयाभासी बनी हुई है या निश्चयनय को छोड़कर

सर्वथा उपेक्षा कर व्यवहाराभासी बनी हुई है तो अपने जीवन और दिनचर्या को सुरक्षित रखने के लिए, निर्दोष आगम परम्परानुसार एकांगी धारणा बदल लेना चाहिए क्योंकि एक नय का विषय या धर्म पूर्ण वस्तु नहीं है किन्तु एकदेश है, एक अंश है, एक धर्म है और वस्तु सापेक्ष अनंत धर्मात्मक है। यदि एक ही धर्म को, अंश को परिपूर्ण वस्तु मान ली तो वह मान्यता जिनमत की न होकर अन्यमत की हो जाती है जो मिथ्यात्व है, मिथ्यात्व गुणस्थान है। अतः नयों को परस्पर में सापेक्ष लगाकर ही वस्तु का यथार्थ निर्णय करना चाहिए प्रमाण नय निक्षेप वस्तु स्वरूप नहीं हैं किन्तु समझने के, सुलझने के उपाय हैं, उलझने के नहीं। धारणा को बदलना स्वयं के आधीन है।

प्र.248–मिथ्या धारणा कब बदलना चाहिए?

उत्तर–जब आपको मोक्षमार्ग में जाने की, प्रवेश करने की तीव्र इच्छा बलवान हो जाय तभी अपनी मिथ्या धारणा बदल लेना चाहिए एकांगी धारणा से आत्मसुख शान्ति की प्राप्ति तीन काल में किसी भी जीव को न हुई है, न है और न होने वाली है। एकांगी धारणा जब लोकव्यवहार में, व्यापार में, परिवार में, समाज में कष्ट देती है, विश्वास टूट जाता है, सफलता प्राप्त नहीं होती है तो मोक्षमार्ग में किंचित् मात्र भी सफलता नहीं हो सकती है अतः जब आप शास्त्रों के जानकार हैं तो मिथ्या धारणाओं को कचरे के समान जानकर शीघ्र ही निकालकर फेंक दें इसीमें भलाई है।

प्र.249–करण परिणाम औदयिकादि पाँच भावों में से कौन सा भाव है?

उत्तर–करण परिणाम ज्ञान गुण का परिणमन है जो छद्मस्थावस्था में क्षायोपशमिक भाव है और केवली अवस्था में क्षायिक भाव है। ज्ञानगुण का परिणमन स्वसापेक्ष पारिणामिक भाव तथा परसापेक्ष क्षायोपशमिक भाव और औदयिक भाव है। ज्ञानावरणीय कर्म की उत्तरप्रकृतियों में देशघाति स्पर्धक और सर्वघाति स्पर्धक दोनों पाये जाते हैं उनमें से सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय उन्हीं का सदवस्थारूप उपशम और देशघाति स्पर्धकों का उदय होने पर जो अवस्था होती है उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं और सम्पूर्ण क्षय से क्षायिकभाव होता है। ज्ञानावरणीयकर्म के उदय से अज्ञान औदयिक भाव कहलाता है। मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबंधी कषायोदय से सहित होने से वही ज्ञान मिथ्याज्ञान तथा रहित होने से सम्यग्ज्ञान कहलाता है। ज्ञानावरण कर्म में उपशमकरण न होने से ज्ञान को औपशमिक भाव में ग्रहण नहीं किया है। मिथ्यात्व गुणस्थान में करण परिणाम मिथ्यामतिज्ञान और मिथ्याश्रुतज्ञान रूप है, कथंचित् इन दोनों ज्ञानों को आगम ज्ञान या सद्गुरु के उपदेश का संग्रह, चिन्तन, मनन होने की अपेक्षा समीचीन ज्ञान कह सकते हैं तभी तो इसके माध्यम से अनेक जीव रत्नत्रय को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं किन्तु स्वयं में तद्रूप परिणमन न होने से, तदनुरूप अनुभव न होने से तथा मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषायों का सद्भाव होने से सम्यग्ज्ञान नहीं है। अतः करणपरिणाम दर्शनमोह और चारित्रमोह का अत्यन्त मंदोदय होने से मिथ्याज्ञानरूप और क्षयोपशम होने से क्षायोपशमिकभाव ही है तथा इनके साथ ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से करण परिणाम क्षायिकभाव है।

प्र.250–मिथ्यादृष्टि जीवों के करणपरिणाम शुभोपयोगरूप हैं या अशुभोपयोग रूप?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीवों के करण परिणाम उपयोग की अपेक्षा अशुभोपयोग ही हैं क्योंकि दर्शनमोह और चारित्रमोह के यथायोग्य अभाव में सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक ज्ञानोपयोग और दर्शनापयोग को ही शुभोपयोग कहा है। ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मों के क्षय होने पर क्षायिक शुद्धोपयोग कहा जाता है तथा विषय कषायों से युक्त उसी उपयोग को अशुभोपयोग कहते हैं। अतः पर साहचर्य से उपयोग के ये तीन अशुभोपयोग, शुभोपयोग, शुद्धोपयोग नाम हैं।

प्र.251–मिथ्यादृष्टि जीव के करण परिणाम वर्तमान नय की अपेक्षा किस उपयोग रूप हैं और किस उपयोग रूप में नहीं?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीव के वर्तमान नय से ये करणपरिणाम अशुभोपयोग रूप ही हैं शेष रूप नहीं हैं।

प्र.252–भावीनय की अपेक्षा जीव के करणपरिणाम शुभोपयोग रूप हैं या शुद्धोपयोगरूप?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीव के करणपरिणाम भावीनय से शुभोपयोग और शुद्धोपयोग दोनों रूप भी हो सकते हैं।

प्र.253–उक्त तीनों उपयोग दर्शनोपयोग के कार्य हैं या ज्ञानोपयोग के?

उत्तर–भेदनय से ये तीनों उपयोग ज्ञानोपयोग के कार्य हैं, दर्शनोपयोग के नहीं क्योंकि जिस प्रकार ज्ञान के सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञान भेद हैं वैसे दर्शनोपयोग के सम्यक् और मिथ्या भेद नहीं है। दर्शनोपयोग अंतरंग चित्प्रकाश है, निर्विकल्प है, शुद्ध है, निराकार है तो ज्ञानोपयोग बहिरंग चित्प्रकाश है, सविकल्प है, शुद्धाशुद्ध है, साकार है आदि। इस कारण शुभ, अशुभ और शुद्धोपयोग ये ज्ञानगुण के कार्य हैं।

प्र.254–शुभोपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक ज्ञानगुण के संयम सहित या रहित मूलगुण, उत्तरगुण, षडावश्यक, करण और चरण रूप से परिणमन करने को शुभोपयोग कहते हैं। **करण** :–सामायिकादि षडावश्यक, पंच परमेष्ठी की भक्ति, अस्सही और निःसही ये 13। **चरणः**–5 महाव्रत, 5 समिति और 3 गुप्ति ये 13।

प्र.255–शुभोपयोग के स्वामी कौन हैं?

उत्तर–यह शुभोपयोग मोक्षमार्गी चौथे गुणस्थान से लेकर दसवें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक अथवा चौथे से बारहवें गुणस्थान तक श्रावक और मुनि क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होते हुए स्वामी हैं।

प्र.256–अशुभोपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्यक्रत्नत्रय सहित या रहित जब ज्ञानगुण विषय कषायों में, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, आरम्भ परिग्रह, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या का परिणाम, ख्याति, पूजा, लाभ के परिणामों के साथ परिणमन करने को अशुभोपयोग कहते हैं।

प्र.257–अशुभोपयोग के स्वामी कौन हैं?

उत्तर–अशुभोपयोग के स्वामी चारों गतियों के समस्त असंयमी प्राणी भव्यअभव्य, सैनीअसैनी, क्वचित् देशसंयमी और सकलसंयमी प्रमादी जीव हैं।

प्र.258–शुद्धोपयोग किसे कहते हैं और स्वामी कौन हैं?

उत्तर–मोहकर्म और ज्ञानावरणीय कर्म के बंध उदय और सत्त्व से रहित जीवों का जो ज्ञानगुण ज्ञान रूप से परिणमन करता है, विकार रहित है, हीनाधिक रहित है उसे शुद्धोपयोग कहते हैं। इस शुद्धोपयोग के स्वामी सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्धपरमेष्ठी हैं।

प्र.259–शुद्धोपयोग के स्वामी उपशांतमोही और क्षीणमोही क्यों नहीं हैं?

उत्तर–यद्यपि मोह के उपशम और क्षय की अपेक्षा 11वें, 12वें गुणस्थान में और आगे के गुणस्थानों में अवस्थित परिणामों की अपेक्षा शुद्धोपयोग मान सकते हैं, कह सकते हैं किंतु शुद्धोपयोग अप्रतिपाति और पूर्णिमा के चंद्रमा के समान स्वभाववाला होने से नहीं कहा क्योंकि 11वाँ गुणस्थान प्रतिपाति है, पतन स्वभाव वाला है और 12वाँ गुणस्थान पूर्णिमा के चंद्रमा की अपेक्षा हीन अंशवाला है, अपूर्ण अंश है आदि यदि उत्तम, शुद्ध, एक, परिपूर्ण अवस्था प्राप्त होकर छूट जाये तो उसे उत्तम आदि कौन कहेगा?

प्र.260–ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग इन दोनों का कार्य भिन्न भिन्न है या अभिन्न?

उत्तर–जब प्रत्येक गुण स्वतंत्र हैं, प्रत्येक गुण अपना अपना कार्य करते हैं, संकर व्यतिकर दोष को प्राप्त नहीं होते हैं, न दोनों मिलकर एक हो जाते हैं, न दोनों मिलकर एक कार्य करते हैं, दोनों गुणों के आवरण कर्म अलग अलग हैं, दोनों की प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध, प्रदेशबंध अलग अलग हैं। दोनों का आधार एक होने पर भी प्रत्येक का अपना अपना चतुष्टय अलग अलग है। इतना होने पर भी यदि आप हठाग्रहपूर्वक कहते हैं कि ज्ञान स्वप्रकाशक और परप्रकाशक है तो एक ज्ञान गुण की दो क्रियायें हुईं तब दोक्रियावादी मत का प्रसंग आता है फिर आपको इसी तरह अनन्तगुणों के दो दो कार्य मानने पड़ेंगे जैसे स्वयं का सुख, पर का सुख, स्वयं का दुःख, पर का दुख, स्वयं का अनुभव, पर का अनुभव आदि इस प्रकार की मान्यता होने पर सिद्धों के, अरहंतों के लौकिक सुख दुःख, भोजनपान के स्वाद का भी अनिष्ट प्रसंग आयेगा और वस्तु की स्वतंत्रता भी नहीं रह सकती है, संकर व्यतिकर दोष भी आयेगा। अतः अहमिन्द्रों के समान प्रत्येक गुण अपना अपना कार्य करते हैं दो का नहीं, दूसरों का नहीं तथा उपचार से, व्यवहारनय से निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा या अभेद नय की अपेक्षा विजातीय द्रव्य गुण और पर्यायों का कार्य कारण या कारण कार्य केवलियों के लिए कहा जाता है।

प्र.261–प्रागभाव किसे कहते हैं तथा उदाहरण सहित समझाओ?

उत्तर–वर्तमान में कार्यरूप पर्याय का अभाव होने को प्रागभाव कहते हैं। जैसे वर्तमान काल की मनुष्यपर्याय में भविष्य में होने वाली नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव पर्याय का अभाव प्रागभाव है। यदि इस अभाव को न माना जाये तो कार्यद्रव्य को अनादि मानने का प्रसंग आता है तथा द्रव्य का लक्षण जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण पर्याय वाला तथा सत् कहा है वह भी घटित न होगा। अर्थपर्याय की स्थिति एकसमय की कही है, व्यंजन पर्याय चिरस्थायी है, स्थूल

है, इन्द्रियगोचर भी है फिर कार्यद्रव्य को अनादि मानने से मोक्ष नहीं बनेगा, न संसार की सिद्धि होगी तब सर्वापहार लोप का प्रसंग आता है। द्रव्य का सत् लक्षण असत् का प्रतिपक्षी कहा है, सर्वथा नहीं। आ.श्रीकुंदकुंद ने पंचा. गाथा 8 में **'सप्पडिवक्खा'** पद से संकेत किया है।

प्र.262–प्रध्वंसाभाव किसे कहते हैं तथा इसके मानने न मानने में क्या लाभहानि है?

उत्तर–वर्तमान काल में मौजूद कार्यद्रव्य के अभाव होने को प्रध्वंसाभाव कहते हैं। यदि इस अभाव को न माना जाये तो कार्यद्रव्य अनंत हो जायेगा और व्यय धर्म उत्पाद धर्म का प्रतिपक्षी है वर्तमान काल में जो पर्याय उत्पन्न हुई है वह भूतकाल की अपेक्षा कार्यरूप है तथा भविष्य में उत्पन्न होने वाली पर्याय के लिये कारण रूप है। उत्पाद व्यय ये दोनों लक्षण धर्म और स्वभाव शाश्वत रहने वाले नहीं हैं। इनकी काल, स्थिति, मर्यादा एकसमय की कही है क्योंकि ये दोनों पर्याय धर्म है। यदि इन पर्याय धर्मों को क्षणवर्ती न मानकर शाश्वत माना तो संसार पर्याय को क्षयकर मोक्षपर्याय की उत्पत्ति नहीं बन सकती है कारण संसार पर्याय शाश्वत होने से अभाव नहीं होगा कदाचित् मोक्षावस्था में संसार पर्याय का वर्तमान में सद्भाव माना जाय तो सिद्धों को भी शुद्ध और अशुद्धरूप से परिणमन करने का, मिश्र भावरूप से परिणमन करने का प्रसंग आयेगा। त.सू. अ. 10 **'औपशमिकादि भव्यत्त्वानां च।'** सूत्र से विरोध आयेगा क्योंकि सिद्धों में परम पारिणामिक जीवत्त्व और क्षायिकभाव के बिना शेष समस्त भावों का अभाव हो जाता है अतः प्रध्वंसाभाव मानना ही होगा तभी मोक्षमार्ग की सिद्धी होगी।

प्र.263–अन्योन्याभाव किसे कहते हैं इसको न मानने में क्या हानि है?

उत्तर–जो द्रव्य में अनंत गुण अनंत धर्म कहे हैं यदि इनका परस्पर में अभाव न माना जाये तो सभी अनंत गुण अनंत धर्म एक हो जायेंगे और संकर, व्यतिकर दोष आने से प्रत्येक द्रव्य का निजी तत्त्व सही अवस्था में न होने से, न रहने से, न संसार रहा न मोक्ष, सुख दुःख, पुण्यपाप आदि युगल नहीं बन सकते हैं आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व की सिद्धि नहीं हो सकती है यही हानि है।

प्र.264–अत्यन्ताभाव किसे कहते हैं?

उत्तर–सजातीय या विजातीय दो गुणों का या दो द्रव्यों का परस्पर में एकरूप न होने को अत्यन्ताभाव कहते हैं। तभी तो सभी द्रव्य या गुण त्रिकाली मौजूद रहने पर भी अपने अपने अस्तित्त्व को नहीं खोते अन्यथा सभी द्रव्य गुण एक हो जाते तब सभी द्रव्यों की, गुणों की स्वतंत्र सत्ता नहीं रहती और ब्रह्मवादी या शून्यवादी बौद्ध मतों का प्रसंग आता है। अतः यह संसार अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा प्रत्येक द्रव्य, पदार्थ, तत्त्व और अस्तिकाय अपने अपने स्वभाव में रहेंगे। इस कारण अत्यन्ताभाव को स्वीकार करना ही पड़ेगा तभी तो ध्यानाध्ययन की सिद्धि हो सकती है अन्यथा नहीं अपने किये हुये शुभाशुभ पुरुषार्थ का फल अपने आप को प्राप्त होगा यदि सभी एक सत्तारूप हो जायें तो किसके पुरुषार्थ का फल किसको प्राप्त होगा और कौन स्वर्ग, नरक, मोक्ष में जायेगा?

प्र.265–अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव में क्या अंतर है?

उत्तर–गुणों का परस्पर में अभाव होना तथा द्रव्यों का परस्पर में अभाव होना यही इन दोनों में अंतर है। सजातीय पर्यायों में प्रागभाव प्रध्वंसाभाव, विजातीय पर्यायों में अन्योन्याभाव और गुणों का, द्रव्यों का परस्पर में अत्यंताभाव इसप्रकार इन चारों अभावों का प्रयोग एक ही द्रव्य में घटित होने से वस्तु व्यवस्था सही बन सकती है। ऐसा नहीं है कि तीन अभाव एक द्रव्य में और अत्यंताभाव भिन्न भिन्न द्रव्य में हो।

प्र.266–यदि इन दोनों में अन्तर न माना जाये तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–यदि इन दोनों का एक ही अर्थ माना जाय तो चार प्रकार के अभावों में से एक कम करने पर तीन ही अभाव ठहरेंगे तो तीन अभाव एक द्रव्य में तथा एक अभाव अत्यन्ताभाव पर द्रव्य में सो भी बात नहीं बनती क्योंकि फिर एक ही द्रव्य के अनन्तगुण स्वभाव नहीं रह सकते हैं सब एक हो जायेंगे और एक होने से जब अनेकों का अभाव हुआ तो एक का भी अभाव होना अवश्यंभावी निश्चित है तथा सब का अभाव होने से सर्वाभाव, तुच्छाभाव, शून्यतावादी बौद्धों का प्रसंग आता है तब प्रत्येक द्रव्य अनादि से अनन्तकाल तक नहीं रह सकते हैं। तभी तो प्रत्येक द्रव्य अपने अपने स्वचतुष्टय को परचतुष्टय को अस्तित्त्व नास्तित्त्व को लिए द्रव्य गुण पर्याय रूप से पदार्थ, द्रव्य, तत्त्व, अस्तिकाय मौजूद हैं, अनन्त धर्मों से युक्त हैं अतः चारों अभावों को एक ही द्रव्य में लगाना चाहिए।

प्र.267–आपत्ति को आपत्ति न माने तो क्या हानि है, क्या दोष है?

उत्तर–जो आपत्ति को आपत्ति न माने तो वह आपत्ति से कैसे बचेगा? उसके आपत्ति हमेशा बनी रहेगी यही महान आपत्ति है जैसे कोई व्यक्ति रोग को रोग न माने तो वह रोग को दूर करने का उपाय क्यों करेगा? अथवा आचार्यों ने अत्यन्ताभाव को जो अन्य द्रव्यों के साथ में कहा है सो उसका मतलब है कि अद्वैतवादी रूपी एकांतवादी अन्यमति जब पर द्रव्य का और स्वद्रव्य का भेद नहीं करते हैं, न जानते हैं, चेतन और अचेतन द्रव्यों को एक रूप में मानते हैं तो उनको प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार कराने के लिए उस प्रकार का कथन किया है अथवा जो सर्वथा भेदविज्ञानी जैसे बनकर आत्मा और शरीर को भिन्न भिन्न मानते हैं तो उनकी इस मान्यता से भी संसार की, विकार की स्थिति न बनने से आश्रव बंध नहीं हो सकता तब संवर निर्जरा किसकी, मोक्ष किसका? क्योंकि जब संसार नहीं तो मोक्ष किसका अतः ऐसे द्वैतवादियों के लिये आत्मा और शरीर की एकता अभिन्नता भी बतलाई इसी तरह जो आत्मा का सर्वथा सर्वकाल अस्तित्व ही नहीं मानते तो उनके लिए नानाप्रकार की युक्तियों से आत्मा का अस्तित्त्व सिद्ध किया जैसे कफ के रोगी को दूध, घी हानिकारक है तो वैद्य उसे खाने पीने के लिए मना करता है पर पित्त के रोगी को, कमजोर व्यक्ति को मात्रानुसार सेवन करने को कहता है क्योंकि शारीरिक स्वास्थ्य ठीक होना सबको इष्ट है इसी तरह आध्यात्मिक शान्ति भी सबको इष्ट है इसलिए आचार्यों ने प्रत्येक व्यक्ति के अभिप्राय को समझकर प्रतिपक्ष धर्म सहित वस्तु तत्त्व को ग्रहण कराया है, कथन किया है। यदि अनेकान्तवादी भी अनन्त धर्मात्मक वस्तु को एक धर्मात्मक या एक गुण या पर्याय को प्रधान कर हमेशा कथन करने लगें, चिंतन करने लगें तो वह भी कालान्तर में उसी की धारणानुसार स्वतंत्र मत बन जायेगा उस मान्यता से भिन्न कथन जहर जैसा मिथ्याभाषित होने लगेगा जैसे वर्तमान में बीसपंथी, तेरहपंथी या कांजीपंथी दिगम्बरों में और श्वेताम्बरों में अनेक भेद प्रभेद उत्पन्न हो गये हैं। वे अपने अपने मत को पूर्ण सत्य मानकर प्रतिपक्षी को मिथ्या करार दे रहे हैं, पूर्ण असत्य कह रहे हैं। इनमें कुछ निर्णायक बुद्धिवाले होकर भी पूर्व संस्कार, पूर्वदुराग्रह वश या विषयकषायों के आधीन होकर यथार्थ निर्णय को प्राप्त नहीं कर पाते हैं तथा निर्णय करके भी लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते हैं यही महान हानि है।

प्र.268–अनादि या सादिमिथ्यादृष्टि जीव शुद्धात्मा का ध्येय बनाता है या अशुद्धात्मा का?

उत्तर–भद्र परिणामी अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि जीव शुद्धात्मावस्था रूप में परिणमन करने की मुझमें योग्यता है ऐसा ध्येय बनाता है। वर्तमान में वर्तमाननय से मेरी अशुद्धावस्था है ऐसा विश्वास कर अपने लक्ष्य को, ध्येय को पाने के लिए तदनुसार अपनी दिनचर्या, आत्म परिणाम बनाता है क्योंकि जैसा ध्येय होगा वैसा प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा, उपाय करेगा, अन्यथा नहीं। किन्तु अशुद्धात्मा का ध्येय नहीं बनाता यदि अशुद्ध का ध्येय बनाये तो अशुद्धावस्था ही प्राप्त करेगा।

प्र.269–वर्तमान में मेरी आत्मा क्या एकदेश शुद्ध है या सर्वदेश शुद्ध ऐसा ध्येय कौन बनाता है?

उत्तर–संसारी जीव वर्तमान काल में वर्तमान नय से मेरी आत्मा पूर्ण अशुद्ध है किन्तु शुद्धावस्था प्राप्त करने की योग्यता है। वर्तमान नय से वर्तमान काल में मेरी शुद्धात्मा है तो जप, तप, दीक्षा, ध्यानाध्ययन सब व्यर्थ ठहरते हैं। अप्राप्ति की प्राप्ति के लिए ही पुरुषार्थ, प्रयत्न किया जाता है क्योंकि पिसे आटे को पुनः नहीं पीसा जाता है शुद्धात्मा को क्या शुद्ध बनाना, अशुद्ध को शुद्ध बनाया जाता है।

प्र.270–वर्तमान में मेरी आत्मा निश्चयनय से एकदेश शुद्ध है या सर्वदेश?

उत्तर–परम शुद्धनय से आत्मा पूर्णरूप से शुद्ध है यहाँ भूतकाल, भावीकाल, वर्तमानकाल कृत भेद न समझना। इस नय की विवक्षा में न संसार है न मोक्ष। द्र० सं० में कहा है **सव्वे सुद्धा हू सुद्धणया**। वास्तव में शुद्धनय से सभी शुद्ध हैं इस नय की दृष्टि में जीव न संसारी है न मुक्त।

प्र.271–वर्तमान में व्यवहारनय से मेरी आत्मा एकदेश शुद्ध है या सर्वदेश?

उत्तर–वर्तमान में मेरी आत्मा व्यवहार नय से न एकदेश शुद्ध है न सर्वदेश क्योंकि व्यवहार नय भेद को, परसापेक्ष को, परसंबंध को, मिश्रावस्था को विषय बनाता है। अतः इस नय से आत्मा पूर्ण अशुद्ध है।

प्र.272–वर्तमान में मेरी आत्मा वर्तमाननय से एकदेश शुद्ध है या सर्वदेश?

उत्तर–वर्तमानकाल में वर्तमान नय से मेरी आत्मा पूर्ण अशुद्ध है। हाँ, यदि अरिहन्तकेवली या मोक्षमार्गस्थ जीवों के दर्शनमोह का अथवा यथायोग्य दर्शनमोह और चारित्रमोह का उपशम, क्षय, क्षयोपशम होने पर आत्मा की शुद्धाशुद्ध

अवस्था होती है और सिद्ध परमेष्ठी सर्वदेश सर्वकाल शुद्ध हैं अथवा सिद्धों को भी भूतनैगमनय से पूर्ण अशुद्ध या मिश्रावस्था कहते हैं, कह सकते हैं। किन्तु अरिहंत आत्मा एकदेश शुद्ध है क्योंकि उन्होंने छद्मस्थावस्था में घातिकर्मों को क्षयकर अनन्त चतुष्टय को प्राप्त कर लिया है अतः वे एकदेश शुद्ध हैं फिर भी अपनी प्रमत्त दशा होने से वर्तमान काल में पूर्ण अशुद्ध है। इतना होने पर भी यदि अपने को एकदेश शुद्ध मानते हो तो अपने में और केवली में सर्वथा सर्वकाल कोई अंतर नहीं रह जाता है कहाँ भोगी और कहाँ योगी? कहाँ वस्त्रधारी कहाँ निर्ग्रन्थ? कहाँ छद्मस्थ कहाँ केवली? कहाँ भोगानंद और कहाँ आत्मानंद आदि, अनेक आपत्तियाँ आती हैं, जिनका निकालना, निवारण करना नितांत कठिन है। अतः सरागी छद्मस्थों को अशुद्ध मिश्र तथा वीतराग छद्मस्थ और सयोगकेवली की एकदेश शुद्ध और सिद्ध पूर्ण सिद्ध शुद्ध हैं। इस प्रकार समस्त जीवों में अवस्थानुसार नय विभाग लगा लेना चाहिए।

प्र.273–आपने सरागी छद्मस्थों को एकदेश शुद्ध कह दिया तथा संसारस्थ केवलियों को भी एकदेश शुद्ध कहा तो ये दोनों समान हुए फिर अंतर क्या रहा?

उत्तर–सरागी छद्मस्थ मोक्षमार्गस्थ साधकों को एकदेश शुद्ध कहने का मतलब है कि इनके किसी भी मूल प्रकृति का क्षय तो होता नहीं। हाँ ,किन्हीं किन्हीं के उत्तर प्रकृतियों का समूल क्षय अवश्य ही हो जाता है। अनंतानुबंधी कषाय का प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश बंध का असंख्यात बार विसंयोजना रूप से अभाव करके भी पुनः परिणामवश वही द्रव्य अथवा नवीन द्रव्य का बंध कर लेता है या कर सकता है, दर्शनमोहनीय कर्म की मिथ्यात्व प्रकृति का एकबार भी सत्वरूप से क्षय हो जाये तो कालांतर में कभी भी नवीन या पुराना बंध को प्राप्त नहीं होता किंतु इसका भी यदि उदयाभावरूप से क्षय हुआ है तो पुनः कालांतर में अंतरंग बहिरंग निमित्त से उदय में आ सकता है। अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति और सम्यक्त्व प्रकृति इन सात प्रकृतियों का समस्त प्रकार से क्षयकर क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के बाद पुनः प्रतिपात को प्राप्त नहीं होता है न उक्त 7 प्रकृतियों को बांधता है इस अपेक्षा से एकदेश शुद्ध कहा है। कभी कहीं पर उक्त 7 प्रकृतियों के उदय और बंध के अभाव में तथा सत्व के सद्भाव में भी एकदेश शुद्ध पद का प्रयोग किया जाता है किंतु सयोगकेवली और अयोगकेवली के घातियाकर्मों का समूलरूप से क्षय हुआ है इस अपेक्षा से इन्हें एकदेश शुद्ध कहा है। कदाचित् छद्मस्थ जीवों की एकदेश शुद्धि समाप्त होकर पुनः पूर्ण अशुद्धि हो सकती है किंतु केवलियों की एकदेश शुद्धि समाप्त न होकर कालांतर में सर्वदेशरूप शुद्धि हो जाती है।

प्र.274–आपने सरागी वीतरागी छद्मस्थ और केवलियों को जब एकदेश शुद्ध कहा है तो दोनों एक हुए फिर भेद क्या रहा?

उत्तर–सामान्य की अपेक्षा उन दोनों की या समस्त मोक्षमार्गियों की एकदेश शुद्धि में कोई भेद नहीं है किंतु अविभाग प्रतिच्छेदरूप मात्रा की व्यक्त्यंश की अपेक्षा बहुत अंतर है। जैसे धनवानों में सामान्य पैसे की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है परंतु मात्रा की अपेक्षा हजारपति, कोटीपति आदि में अंतर है। ऐसे ही चौथे गुणस्थान की एकदेश शुद्धि में और केवलियों की एकदेश शुद्धि में सामान्य की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है फिर भी मात्रा की अपेक्षा महान अंतर है। स्वामी में भेद है तथा संवर और निर्जरा में भी अंतर है।

प्र.275–वर्तमान में मेरी आत्मा भावीनय से एकदेश शुद्ध है या सर्वदेश?

उत्तर–वर्तमान में मेरी आत्मा भावीनय से एकदेश शुद्ध है और सर्वदेश भी क्योंकि भविष्य में कार्यरूप से परिणमन करने की योग्यता है जैसा करना चाहे वैसा कर सकते हैं।

प्र.276–इस संबंध में क्या उदाहरण है?

उत्तर–एक चना का बीज है। उस चने में पुनः अंकुर, तना, शाखा, प्रतिशाखा, कोंपल, पत्ते, फूलफल ये शक्तियाँ हैं। चने की रोटी, दाल, बेसन, नमकीन, पूरी, मिठाई, कढ़ी, मोदक आदि शक्तियाँ हैं। उसी चने के बेसन से अनेक पदार्थों के संसर्ग से, संस्कारों से बनाने वाले के योग उपयोग से मिष्ठान्न, पक्वान्न, खाद्यान्न बना लेते हैं। इन भोज्य पदार्थों के नाम स्वाद, गंध, वर्ण, स्पर्श में अंतर पड़ जाता है इन अनेक कार्यों में से किसी एक कार्य के उत्पन्न होने पर शेष कार्यों की योग्यता होने पर ही अपहत हो जाती हैं, नष्ट हो जाती हैं अथवा दूसरा उदाहरण है कन्या का, कुंवारिका अवस्था में मातृपक्ष पितृपक्ष के समस्त नाते रिश्ते संबंध मौजूद हैं किंतु पतिपक्ष के अभी कोई

संबंध नहीं है, कोई रिश्ता नहीं है किंतु शादी होने के बाद पतिपक्ष के सारे नाते धर्मव्यवहार में आ जाते हैं तथा कदाचित् आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार कर लिया, जिनदीक्षा ग्रहण कर ली तो दोनों पक्षों के नाते धर्म संबंध नष्ट हो गये या व्यवहार में नहीं आते तथा संस्कार भी नष्ट हो जाता है। इसी तरह आत्मा अनंत गुणधर्मों का अनंतानंत पर्यायों का स्वामी हैं उनमें से सजातीय एक पर्याय धर्म के उत्पाद होने पर तत्संबंधी सजातीय अनेक पर्यायें अपहत हो जाती हैं, समाप्त हो जाती हैं या शक्तिरूप में पड़ी रहती हैं। जैसे क्रोध कषाय के उत्पन्न होने पर शेष कषायों के परिणाम, पर्यायें समाप्त हो जाती हैं, तद्रूप में उत्पाद को प्राप्त नहीं हो पातीं किंतु संक्रमण कर क्रोध आदि रूप होकर उदय में आकर निकल जाती हैं।

प्र.277–योग्यता का क्या अर्थ है?

उत्तर–जैसे कन्या विवाह के योग्य हो चुकी है, शादी के लक्षणों का जन्म हो चुका है अब कन्या के योग्य या कन्या के भाग्यानुसार वर मिल जाये तो शादी हो जाये। इसी तरह रत्नत्रय प्राप्त करने के योग्य अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव और देव शास्त्र गुरु प्राप्त हो चुके हैं अब दृढ़ पुरुषार्थ कर ले तो रत्नत्रय प्राप्त कर सकता है अन्यथा प्राप्त नहीं कर पायेगा।

प्र.278–योग्यता और भवितव्यता में क्या अंतर है?

उत्तर–इन दोनों नामों में और व्युत्पत्ति साधन में अंतर है किंतु दोनों के अर्थों में अंतर नहीं है। दोनों पारिभाषिक शब्द हैं। योग्यता शब्द की, अव्यय की व्युत्पत्ति युज् धातु से और भवितव्यता शब्द की, अव्यय की व्युत्पत्ति भू धातु से हुई है युज् धातु जोड़ने अर्थ में और भूधातु होने अर्थ में है।

प्र.279–वह मिथ्यादृष्टि जीव अपनी आत्मा को अखण्ड रूप में अनुभव करता है या खण्ड रूप में या किस प्रकार का ध्येय बनाता है?

उत्तर–वह निकटभव्य सादि या अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अपनी आत्मा को सर्वथा न अखण्ड रूप से और न सर्वथा खण्ड रूप से ध्येय बनाता है किन्तु आत्मा का स्वभाव द्रव्यार्थिक नय से या निश्चयनय से अखण्ड रूप है और व्यवहार नय से या पर्यायार्थिक नय से खण्ड रूप में है इस प्रकार परस्पर में नय सापेक्ष अनेकान्त रूप में विश्वास करता है, ध्येय बनाता है तभी तो लक्ष्यानुसार आत्मा को प्राप्त करता है।

प्र.280–इस विषय को उदाहरण देकर समझाओ?

उत्तर–यदि आकाश सर्वथा अखण्ड होता तो खण्ड रूप पुद्गलों को, बर्तनों को, मनुष्य, पशु पक्षियों को मकान आदि को अवकाश, स्थान न देता और यह घटाकाश है, पटाकाश है, मेरा क्षेत्र है, तेरा क्षेत्र है ऐसा व्यवहार न होता अतः आकाश सर्वथा न अखण्ड है न सर्वथा खण्ड। इसीप्रकार आकाश के समान आत्मा के संबंध में मिथ्यादृष्टि जीव या सम्यग्दृष्टि जीव गुरु के उपदेश से, आगमज्ञान से और सम्यक् अनुमान से विश्वास करता है, ध्येय बनाता है क्योंकि प्रतिपक्ष सहित समस्त नयों का जो विषय है वह संग्रहरूप ही वस्तु का स्वरूप है जो अनन्त धर्मात्मक है।

प्र.281–मिथ्यादृष्टि जीव का यह ध्येय, लक्ष्य समीचीन है या असमीचीन?

उत्तर–उक्त बाह्य सदाचारी भद्रपरिणामी स्थूल रूप से निष्कपट निःस्वार्थी मिथ्यादृष्टि जीव का यह ध्येय गुरु उपदेश, आगमज्ञान, स्वसंवेदन ज्ञान की अपेक्षा समीचीन है, सम्यक् है किन्तु तदनुकूल अन्तर्दृष्टि न होने से, परिणति न होने से तथा दर्शनमोहनीयकर्म और सर्वघाती रूप चारित्र मोहनीय का अभाव न होने से श्रद्धान ज्ञान और चारित्र मिथ्या है किन्तु सर्वथा न समीचीन है न असमीचीन।

प्र.282–मेरे को शुद्धात्मा उत्पन्न करना है, ऐसा ध्येय बनाता है या मैं शुद्धबुद्ध हूँ ऐसा?

उत्तर–मेरे को शुद्धात्मा उत्पन्न करना है तथा वर्तमान में वर्तमान नय से मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ ऐसा नहीं है किन्तु मेरे में शुद्ध बुद्ध होने की योग्यता है, शक्ति है इस प्रकार विश्वास करता है।

प्र.283–मेरे को शुद्धात्मा प्रकट करना है ऐसा विश्वास करता है या उत्पन्न करना है ऐसा विश्वास करता है ?

उत्तर–मेरे को शुद्धात्मा उत्पन्न करना है ऐसा विश्वास करता है, प्रकट करना है ऐसा नहीं क्योंकि जो मौजूद है उसका क्या प्रकट करना? प्रकट करना यह मान्यता सांख्य मतवालों की है क्योंकि वे सत्कार्यवादी हैं। सांख्य द्रव्य का लक्षण प्रादुर्भाव तिरोभाव मानते हैं जो मौजूद है, सिद्ध है उसे सिद्ध करना सिद्ध साधन दोष है, पिष्टीपेषण है तथा

जैन शासन में द्रव्य का लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्य और गुण पर्याय वाला कहा है जो आजकल नये नये वक्ता प्रकट करना, निरावरण करना कथन करने लगे हैं जो न्याय की शैली में गलत है, **'प्रकट भये महावीर'** ऐसा गाने लगे हैं जो सिद्धांत विरुद्ध भी है।

प्र.284–भगवान की, गुरु की फोटो का प्रभावना के नाम पर धन कमाने के लिए निरावरण करते हैं, कराते हैं, करवाते हैं सो इसमें क्या दोष है?

उत्तर–दिगम्बर का निरावरण यह वचन ही स्ववचन बाधित दोष से दूषित है, निरावरण का नाम ही है दिगम्बर जिन्होंने वस्त्रभूषणादि का त्याग कर दिया है और दिगम्बर आचार्य, उपाध्याय, साधु पर पुनः आवरण डालना उपसर्ग परीषह करना है आप लोग वीतरागता बताने के लिए कहते हैं कि धागा मात्र भी परिग्रह है तो परिग्रही है, वह मुनि नहीं, दिगम्बर नहीं। आ० श्री अकलंक का पूर्वावस्था में घटी घटना का उदाहरण देते हैं कि विद्यार्थी जीवन में अकलंक ने जिनप्रतिमा पर एक धागा डालकर सग्रन्थ मानकर प्रतिमा को लांघ लिया था और आपने तीर्थंकर, आचार्य, उपाध्याय, मुनि की फोटो पर पूर्ण रूप से वस्त्र, कागज पन्नी लपेट कर क्या किया? परिग्रही नहीं बनाया तो क्या किया? यह कार्य अधिकतर लोभवश किया जाता है तब यह प्रभावना नहीं है किन्तु अप्रभावना है। इसी तरह पर्याय धर्म को बताने के लिए प्रकट पद का प्रयोग करना जिनवाणी का अवर्णवाद है और फोटो अप्रतिष्ठित होने से पूजने योग्य नहीं है क्योंकि जैनधर्म में नामनिक्षेप केवल व्यवहार चलाने के लिए किया जाता है। इस निक्षेप में पूज्यता, आरती उतारना, अर्घ अर्पण करना, अभिषेक, पूजन, नमस्कार करना, अगरबत्ती लगाना, हाथ जोड़ना, माला पहनाना आदि कार्य धर्म मानकर नहीं किये जाते हैं। धर्म मानकर किये जायें तो मूढ़ता कहलायेगी क्योंकि जैनधर्म में स्थापना निक्षेप से ही मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति प्रारम्भ होती है इस कारण दिगम्बर मुद्रा पर आवरण डालना ही दोष है जो कि मोक्षमार्गियों को न करना चाहिए न कराना चाहिए और न सहायक होना चाहिए अन्यथा मिथ्यात्व है।

प्र.285–ध्येय बनाना यह किस गुण का कार्य है और किस गुण का नहीं?

उत्तर–ध्येय बनाना यह ज्ञानगुण का कार्य है, शेष गुणों का नहीं क्योंकि ज्ञानदर्शन गुण चेतन हैं शेष अनन्त गुण अचेतन हैं। ज्ञानगुण विशेष है सविकल्प है साकार है, दर्शनगुण सामान्य है, निर्विकल्प है, निराकार है। ज्ञानगुण का ही कार्य है। ध्याता द्रव्य रूप है और ध्यान, ध्येय, ध्यानफल पर्यायें हैं।

प्र.286–ध्येय बनाना यह किस गुण का कार्य नहीं?

उत्तर–यह कार्य अचेतन अनंतगुणों का हो नहीं सकता है क्योंकि ध्यान ध्याता ध्येय के परिणाम अचेतन द्रव्यों और गुणों में नहीं पाये जाते यदि अचेतन गुणों का यह कार्य माना जाये तो धर्मादि द्रव्यों के गुणों में कार्य मानने का प्रसंग आयेगा। अतः ध्येय बनाना यह ज्ञान गुण का कार्य है, शेष का नहीं।

प्र.287–आत्मानुभूति ज्ञानोपयोग से होती है या दर्शनोपयोग से?

उत्तर–आत्मानुभूति दर्शनोपयोग से होती है, ज्ञानोपयोग से नहीं क्योंकि आत्मसंवेदन दर्शनोपयोग से होता है। अंतरंग चित्प्रकाश दर्शनोपयोग है अतः आत्मा को ग्रहण करने वाला दर्शनोपयोग कहा है।

प्र.288–शुद्धात्मानुभूति शुभोपयोग से होती है या शुद्धोपयोग से?

उत्तर–सातिशय मिथ्यादृष्टि, अविरतसम्यग्दृष्टि असंयम सहित, देशव्रती सम्यग्दृष्टि अणुव्रत सहित, प्रमत्ताप्रमत्त मुनि सकल संयम सहित, उपशम श्रेणी वाले तथा क्षपकश्रेणी वाले ऐसे 8वें, 9वें, 10वें, 12वें गुणस्थान वाले चक्षुदर्शनोपयोग, अचक्षुदर्शनोपयोग और अवधिदर्शनोपयोग रूपी शुभोपयोग से अपनी आत्मा का तथा सयोगी अयोगी और सिद्ध भगवान शुद्ध केवलदर्शनोपयोग से शुद्धात्मा का अनुभव करते हैं।

प्र.289–शुद्धात्मानुभूति किस दर्शनोपयोग से होती है?

उत्तर–शुद्धात्मानुभूति प्रदेशप्रत्यक्ष शुद्ध केवलदर्शनोपयोग से और अनुभवप्रत्यक्ष अशुद्धदर्शनोपयोग से होती है।

प्र.290–शुद्धात्मानुभूति धर्मध्यान से होती है या शुक्लध्यान से?

उत्तर–नहीं, किसी भी ध्यान से आत्मा की साक्षात् अनुभूति नहीं होती है किंतु शुद्धात्मानुभूति पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान, एकत्ववितर्क शुक्लध्यान के बिना केवलियों के शेष तीन शुक्लध्यानों के सद्भाव में प्रदेशप्रत्यक्ष होती है। छद्मस्थों में भी असंयतसम्यग्दृष्टि, देशव्रतीसम्यग्दृष्टि, सरागीमुनिजन धर्मध्यान के सद्भाव में उपशांतमोही क्षीणमोही वीतरागी पृथक्त्ववितर्क एकत्ववितर्क शुक्लध्यान के सद्भाव में दर्शनोपयोग से अनुभव करते हैं।

प्र.291–चौथे गुणस्थान में शुद्धात्मानुभूति किस उपयोग से होती है?

उत्तर–शुद्ध ध्येय होने की अपेक्षा चौथे गुणस्थान में शुद्धात्मानुभूति शुभोपयोग से होती है। वर्तमान नय से वर्तमान काल में असंयमी जीवों के असंयम भाव होने से शुद्धोपयोग नहीं होता है किन्तु भावी नय से शुद्धात्मानुभव करने की शक्ति मौजूद है और वह शक्ति आगे असंयम को छोड़कर संयम भाव से परिणमन करेगा तब व्यक्त होगी।

प्र.292–चौथे गुणस्थान में शुद्धात्मानुभूति शुद्धोपयोग से होती है तो वह उपयोग धर्मध्यानरूप है या शुक्लध्यान रूप?

उत्तर–यदि कहीं पर समर्थ दिगम्बराचार्यों ने चौथे गुणस्थान में शुद्धात्मानुभूति शुद्धोपयोग से होती है ऐसा कहा है तो जिस प्रकार संयम सहित दर्शनोपयोग को शुद्धोपयोग कहा है उसी प्रकार चौथे गुणस्थान में न मानकर सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक दर्शनोपयोग को धर्मध्यान सहित शुभ को शुद्ध कहा है ऐसा समझना। आर्तध्यान, रौद्रध्यान जैसा अशुद्ध न होने से धर्मध्यान को शुद्ध कहा है। समस्त दिगम्बराचार्यों ने प्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त शुक्लध्यान नहीं माना है किन्तु सातिशय अप्रमत्तसंयत गुणस्थान से भूमिका रूप में शुक्लध्यान स्वीकार किया है और न प्रमत्त पर्यन्त भूमिका ही बनती है। कदाचित् वस्त्रधारियों के शुक्लध्यान या शुक्लध्यान की भूमिका मानी जाय तो यहीं से क्षपकश्रेणी आरोहण कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जा सकता है तब फिर मुनि बनकर तप करने की, साधना करने की क्या जरूरत है और ऐसा होने से सवस्त्र मुक्ति, द्रव्यस्त्री मुक्ति होने लगे तो क्या दोष है? असंयमी गृहस्थों के शुद्धात्मानुभूति की मान्यता का प्रचार कांजी स्वामी से प्रारंभ हुआ है दिगम्बर मुद्राधारियों से नहीं वर्तमान में कुछ दिगम्बर साधु इस प्रकार बोलने लगे हैं सो वे गृहस्थावस्था में कांजीपंथ के कुछ अंशों में अनुयायी थे फिर दिगम्बर दीक्षा लेने के बाद में भी पूर्व संस्कारवश इस प्रकार प्रतिपादन किया है तो भी यह प्रमाण नहीं है, अप्रमाण है, प्रमाणाभास है।

प्र.293–आत्मानुभूति निर्विकल्प ध्यान से होती है या सविकल्प ध्यान से?

उत्तर–वास्तव में शुद्धात्मानुभूति या अशुद्धात्मानुभूति निराकार, निर्विकल्प, दर्शनोपयोग से होती है, ज्ञानोपयोग से नहीं, ध्यान से नहीं किन्तु उपचारनय से, पर्यायार्थिकनय से, पर्यायपर्यायी में अभेद करके कहा जाता है कि निर्विकल्पध्यान से शुद्धात्मा का और सविकल्प ध्यान से अशुद्धात्मा का अनुभव होता है तथा सभी ध्यान अपने आप में निर्विकल्प और अचेतन ही हैं।

प्र.294–सविकल्प धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–मन वचन काय को स्थिर कर मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, ज्ञाता हूँ, दृष्टा हूँ, नित्य हूँ, निरंजन हूँ आदि इस प्रकार चिन्तन करने को अथवा मैं क्रोधी हूँ, मानी हूँ, मायावी हूँ, लोभी हूँ, पापी हूँ, अनाचारी हूँ आदि विचार कर त्याग करने को अथवा आत्मसंशोधन करने के लिए मनन चिन्तन करने को सविकल्प धर्मध्यान कहते हैं। यह ध्यान विधि और निषेध रूप में किया जा सकता है।

प्र.295–मैं क्रोधी हूँ मानी हूँ आदि ऐसा चिन्तन करने को धर्मध्यान क्यों कहा?

उत्तर–यह आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान रूपी चिन्तन आत्मसंशोधन के लिए होने से धर्मध्यान कहा है तथा यही चिन्तन विषयभोगों के लिए, बदला चुकाने के लिए या बदला लेने के लिए किया जाये तो आर्त, रौद्रध्यान कहा जायेगा। **आलोचना** :–पूर्वकृत दोषों को दोषरूप में विचारना। **प्रतिक्रमण** :–देव शास्त्र गुरु की साक्षी बोलना कि यह पूर्वकृत पाप मिथ्या हो। **प्रत्याख्यान** :–आगे नहीं करुंगा।

प्र.296–आलोचक किसे कहते हैं और किसके समान होता है?

उत्तर–भूतकाल में घटी हुई शुभाशुभ घटनाओं के विचार करने वाले को आलोचक कहते हैं और आलोचना करनेवाला सज्जन और दुर्जन दोनों तरह का होता है सज्जन अशोक के वृक्ष की तरह सीधा होता है और दुर्जन बाँस की जड़ के समान टेढ़ा होता है यह इनका जातिगत स्वभाव है।

प्र.297–स्वयं का आलोचक बनने से क्या हानि है और क्या लाभ है?

उत्तर–स्वयं की आलोचना करने से ऊंचगोत्र का आश्रव होता है, सातिशय पुण्य की और रत्नत्रयधर्म की भी प्राप्ति हो जाती है, सर्वत्र प्रशंसा होती है, गुणकीर्तन आदरसम्मान प्राप्त होता है अनेक मित्र हो जाते हैं यह लाभ है। पाप की, दुर्गुणों की हानि होती है।

प्र. 298–पर का आलोचक बनने से क्या हानि है और क्या लाभ है?

उत्तर–पर की आलोचना करने से नीचगोत्र का आश्रव होता है, शत्रुता हो जाती है स्वयं की धर्म और समाज आदि की बदनामी होती है तथा नारद जैसी अवस्था हो जाती है यह लाभ है। पुण्य की, धर्म की स्वर्ग आदि के सुखों की हानि होती है। लोक में निंदक माना जाता है।

प्र.299–निर्विकल्प धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस ध्यान की अवस्था में भयंकर उपसर्ग परीषह के आने पर स्तुति, वन्दना, निन्दा, बुराई के वचन सुनने में, अनुभव में न आयें, जानकारी में न आयें तथा अन्य प्रमादीजन का विषय न बन पाये उसे अथवा जिसका चिन्तन चल रहा है उसे छोड़कर शेष का चिन्तन न होने को निर्विकल्प धर्मध्यान कहते हैं जैसे जीवतत्त्व के चिन्तन के समय जीव के चिन्तन की अपेक्षा सविकल्प और शेष अजीव तत्त्वादि का चिन्तन न होने से निर्विकल्प धर्मध्यान है। क्योंकि ज्ञान केवली का हो या छद्मस्थ का वह तो साकारोपयोग है, सविकल्प ही है यदि ज्ञान में समस्त ज्ञेयपदार्थ अपने अपने आकार सहित प्रतिभाषित न हो तो ज्ञान को साकारोपयोग कौन कहेगा? अतः दर्पणवत् ज्ञान में नाना रूप प्रतिभाषित होना यह ज्ञान का ही स्वभाव है क्योंकि ज्ञेय पदार्थ विकल्पात्मक होने से ज्ञायक भी सविकल्प है।

प्र.300–शुद्धात्मानुभूति अखण्ड रूप में होती है या खण्ड रूप में?

उत्तर–शुद्धात्मानुभूति अपने आप में क्षायिकभाव की अपेक्षा परिपूर्ण होती है किन्तु अविभाग प्रतिच्छेदों की अपेक्षा अथवा क्षायोपशमिकभाव की अपेक्षा अनुभूति खण्डरूप में होती है क्योंकि केवलदर्शन अखण्ड है इसका विषय परिपूर्ण है और क्षायोपशमिक दर्शन खण्ड रूप है इसका विषय अपूर्ण है, खण्ड रूप में है। अतः अनुभूति दोनों प्रकार की होती है।

प्र.301–शुद्धात्मानुभूति भेद रत्नत्रय से होती है या अभेदरत्नत्रय से?

उत्तर–अभेद विवक्षा में शुद्धात्मानुभूति महाव्रत रूपी सकलसंयम सहित दोनों प्रकार के भेदाभेदरत्नत्रय पूर्वक दर्शनोपयोग से होती है।

प्र.302–शुद्धात्मानुभूति ध्यानातीत है तब चार प्रकार के ध्यानों में से किस ध्यान से रहित होती है?

उत्तर–शुद्धात्मानुभूति दर्शनोपयोग से होती है इसलिए आत्मानुभूति को ध्यानातीत कहा है क्योंकि ध्यान चारित्र गुण की पर्याय है, जड़ स्वरूप है, स्वभाव से अचेतन है तब ध्यान से अनुभूति कैसे हो सकती है?

प्र.303–चौथे गुणस्थान में शुद्धात्मानुभव होता है यह आपने अपने अनुभव से जाना या गुरु उपदेश से या आगम से?

उत्तर–आगम में दिगम्बराचार्यों ने स्पष्ट साफ अक्षरों में नहीं कहा है किन्तु वर्तमान काल में कांजी स्वामी ने या उनके आज्ञानुवर्ती पंडितों ने प्रतिपादन किया है इनका आचरण अन्याय, अभक्ष्य के सेवन से युक्त है नाना तरह की अमर्यादित औषधियों का सेवन करना, भोजनपान करना तब सम्यग्दर्शन कैसे? शुद्धात्मानुभव कैसे? ऐसा अब पंडित शीतलजी ने कहा इसके पहले स्वीकार नहीं किया था।

प्र.304–आत्मानुभव के समय में जाना कि मैंने शुद्धात्मानुभव किया है या बाद में?

उत्तर–वेद्य वेदक भाव की अवस्था में विकल्प मौजूद होने से शुद्धात्मानुभव असंभव है। अनुभव काल में वेद्य वेदक भाव नहीं होता है क्योंकि विकल्पावस्था में सत् का सत् रूप में और असत् का असत् रूप में अनुभव नहीं होता है। अर्थपर्याय की काल मर्यादा एक समय की है वह दूसरे समय में प्रध्वंसाभाव को प्राप्त हो जायेगी। जब उपयोग एक समय में एक ही जगह होता है तब अनुभव किसका होगा?

प्र.305–चौथे गुणस्थान में शुद्धात्मानुभव कितने समय के लिए होता है?

उत्तर–परोक्ष ज्ञान का विषय एक दो समय का नहीं होता है तब आपने कैसे कहा कि मैंने आत्मानुभव किया और कैसे बताया? चौथे गुणस्थान में शुद्धात्मानुभव परिणति क्रिया के साथ में नहीं होता है किंतु श्रद्धान की अपेक्षा कह सकते हैं कि यह भविष्य में अगला गुणस्थान प्राप्त कर शुद्धात्मानुभव करेगा।

प्र.306–शुद्धात्मानुभव प्रत्यक्ष होता है या परोक्ष?

उत्तर–शुद्धात्मानुभव प्रत्यक्ष ही होता है, परोक्ष नहीं। मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं **'आद्येपरोक्षम्'** ऐसा कहा हैं जब मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं तब उनका विषय प्रदेश प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? अतः अनुभव इन्द्रिय मन की सहायता के कारण होने से भी परोक्ष ही है प्रत्यक्ष नहीं।

प्र.307–शुद्धात्मानुभव परोक्ष ज्ञान का विषय वर्तमान नय से है या भावीनय से?

उत्तर–शुद्धात्मानुभव प्रदेश प्रत्यक्ष केवलदर्शन का विषय है। शुद्धात्मानुभव परोक्ष दर्शन का विषय है ऐसा जो कहा जाता है वह भावीनय से समझना क्योंकि भविष्य में परोक्षदर्शन का अभाव होकर केवलदर्शन उत्पन्न होगा तब शुद्धात्मा का प्रदेश प्रत्यक्ष अनुभव होगा अथवा वर्तमाननय से अनुभव प्रत्यक्ष है। ज्ञान से आत्मा का अनुभव नहीं होता है क्योंकि ज्ञान परप्रकाशक है। न्याय शास्त्रों में जो ज्ञान को स्वपर प्रकाशक कहा है वह स्थूल कथन है तथा अन्यमतियों के साथ चर्चावार्ता चल रही है और अन्य दर्शनों में ज्ञानदर्शन ये चेतना के दो भेद नहीं हैं तब उनके सामने ज्ञानदर्शन का अलग अलग कथन करना सूरदास के सामने शृंगार करने के समान है इसलिये आचार्यों ने अभेद विवक्षा कर ज्ञानप्रवाद की अपेक्षा ज्ञान को प्रधान कर ज्ञान को स्वपर प्रकाशक कहा है किंतु स्वसमय के व्याख्यान की अपेक्षा दर्शन स्वप्रकाशक है और ज्ञान परप्रकाशक है यह सूक्ष्म कथन है।

प्र.308–दर्शनोपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर–अंतरंग चित् प्रकाश को अथवा सामान्य अवलोकन को दर्शनोपयोग कहते हैं।

प्र.309–दर्शनोपयोग के कितने भेद हैं?

उत्तर–दर्शनोपयोग के दो भेद हैं अथवा चार भेद हैं अथवा 9 भेद हैं।

प्र.310–दर्शनोपयोग के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–दो नामः–स्वभाव दर्शनोपयोग और विभाव दर्शनोपयोग। **चार नामः**–चक्षुदर्शनोपयोग, अचक्षुदर्शनोपयोग, अवधिदर्शनोपयोग और केवलदर्शनोपयोग। **नव नामः**–चक्षुदर्शनोपयोग, अचक्षुदर्शनोपयोग, अवधिदर्शनोपयोग, केवलदर्शनोपयोग, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि।

प्र.311–शुद्ध स्वभाव दर्शनोपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर–केवलदर्शनोपयोग या क्षायिक दर्शनोपयोग को शुद्ध स्वभाव दर्शनोपयोग कहते हैं।

प्र.312–इस उपयोग को शुद्ध स्वभाव क्यों कहा?

उत्तर–दर्शनावरण कर्म का समूल क्षय होने से इस उपयोग को शुद्ध कहा है।

प्र.313–अशुद्ध विभावदर्शनोपयोग किसे कहते हैं तथा हेतु क्या है?

उत्तर–यह अशुद्ध विभाव दर्शनोपयोग शाश्वत रहने वाला नहीं है, पर्याय स्वरूप है, परिवर्तन स्वरूप है, नाशवान है, परसापेक्ष है, विषय कषायोदय से मिश्रित है, क्षायोपशमिक भाव स्वरूप है, अपरिपूर्ण है छद्मस्थ मोक्षमार्गी और संसारमार्गी जीवों के रत्नत्रय सहित या रहित भी होता है। दर्शनावरणीय कर्मोदय से युक्त होने के कारण इसे अशुद्ध विभाव दर्शनोपयोग कहा है यह हेतु है।

प्र.314–अशुद्ध विभावदर्शनोपयोग के कितने भेद हैं?

उत्तर–अशुद्ध विभाव दर्शनोपयोग के तीन भेद हैं। चक्षुदर्शनोपयोग, अचक्षुदर्शनोपयोग और अवधिदर्शनोपयोग।

प्र.315–अशुद्ध विभावदर्शनोपयोग के 8नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–अशुद्ध विभाव दर्शनोपयोग के नाम–चक्षुदर्शनोपयोग, अचक्षुदर्शनोपयोग और अवधिदर्शनोपयोग निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि।

प्र.316–चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग की भूमिका मान ली जाये तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, वस्त्रधारी पूर्ण असंयमी गृहस्थावस्था में भूमिका नहीं बन सकती है। हाँ, ऐसी एक अवस्था विशेष है कि वह असंयतसम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त कर सकता है। **सो कैसे?** सुनो, कोई बाह्य में उत्तम संहननधारी, आर्यखण्डज, आर्यमनुष्य, वैरागी मुनिव्रत धारण करके भी अंतरंग में असंयम गुणस्थान है, बाह्य में मुनि पद चक्षुदर्शनोपयोग, अचक्षुदर्शनोपयोग और अवधिदर्शनोपयोग है तब चौथे गुणस्थान में भूमिका बनाई और करण परिणामकर, दर्शनमोह की सात कर्म प्रकृतियों को दमन कर, अप्रमत्त भाव को पाकर, श्रेणी आरोहणकर क्रमशः कर्मों को क्षयकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है अतः हमें कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि चौथे गुणस्थान से मोक्ष पर्यंत एक जीव की अपेक्षा अंतर्मुहूर्त काल माना गया है पर यह अवस्था भोगी गृहस्थ की नहीं होती है। षट० सूत्र 9वाँ अंतर प्ररूपणा।

प्र.317–ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग ये दोनों एकरूप हैं या पृथक् पृथक्?

उत्तर–अनंत धर्मात्मक आत्मवस्तु में ज्ञान और दर्शन ये दो गुण हैं जो अनादिकाल से हैं और अनंत काल तक रहेंगे जब

पुद्गल कर्मवर्गणायें या द्रव्य कर्म कभी भी संकर व्यतिकर दोष रूप अवस्था को प्राप्त नहीं होते स्वतंत्र रूप से मिलकर एक साथ रहकर भी अपने अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं तब चेतनात्मा अपने स्वभाव को कैसे छोड़ देगा? अतः पृथक्[2] रहकर ही अपनी[2] अर्थ क्रिया करते हैं।

प्र.318–ये दोनों उपयोग एक हो जाये तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–यदि इन दोनों उपयोगों को एकरूप या एक माना जाये तो इनके आवारक कर्मों को भी एक मानने का प्रसंग आयेगा तब सात ही कर्म ठहरेंगे, सात ही कर्मों के आश्रव बंध के परिणाम होंगे, संवर निर्जरा भी सात कर्मों की होगी फिर संसारस्थ केवलियों के अनंत चतुष्टय न कहकर अनंत त्रितय कहना होगा तथा सिद्धों के भी 8 गुण न कहकर 7 गुण कहना होगा क्योंकि आपने उपयोग को दो न मानकर एक कहा है तब आवरण कर्म भी दो न होकर एक ही होगा क्योंकि प्रत्येक कर्मों की विजातीय वर्गणाओं में संक्रमण नहीं होता है आदि आपत्तियों का निवारण दुर्निवार होगा। एक के अभाव होने पर अविनाभावीसंबंध रखनेवाले सभी गुणों के अभाव का प्रसंग आता है, जो स्याद्वादियों को इष्ट नहीं है।

प्र.319–अर्थक्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रत्येक शुद्ध या अशुद्ध पदार्थों की परिणति क्रिया को, पर्याय को अर्थक्रिया कहते हैं। चेतन पदार्थ चेतनरूप से और अचेतन पदार्थ अचेतन रूप से अर्थक्रिया करते हैं क्योंकि परिणमन करना प्रत्येक शुद्ध अशुद्ध द्रव्य का स्वभाव और विभाव है तभी मोक्ष और संसार की सिद्धि हो सकती है अन्यथा नहीं।

प्र.320–ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग में क्या अन्तर है?

उत्तर–ज्ञानोपयोग का कार्य जानना है तथा दर्शनोपयोग का कार्य देखना अथवा बाह्य चित्प्रकाश को ज्ञानोपयोग और अंतरंग चित्प्रकाश को दर्शनोपयोग कहते हैं यही इन दोनों में अन्तर है। सूक्ष्मता से विचार करने पर और भी अन्तर अनुभव में आ सकते हैं। इन दोनों के कार्य और आवरण कर्म भी भिन्न भिन्न हैं किन्तु आधार एक आत्मद्रव्य है।

प्र.321–ज्ञानोपयोग और ध्यान में क्या अन्तर है?

उत्तर–ज्ञानोपयोग ज्ञान गुण का कार्य है और ध्यान चारित्रगुण का कार्य है यही इन दोनों में अन्तर है। ज्ञान का कार्य जानना है और चारित्र का कार्य हेय को छोड़ना, उपादेय को ग्रहण करना और जिससे हित अहित कुछ भी नहीं होता उसके प्रति उपेक्षा भाव होना तथा ध्यान भी स्थिररूप है। अतः अभेद विवक्षा में अभेदनय से ध्यान और चारित्र एक ही है, एक ही परिणाम के प्रसंगानुसार दो नाम हैं ध्यान और चारित्र ये दोनों चारित्रगुण की पर्यायें हैं।

प्र.322–शुभोपयोग और अशुभोपयोग किसे कहते हैं तथा इन दोनों में क्या अन्तर है?

उत्तर–मोक्षमार्ग में साधकतम कारणभूत रत्नत्रय से युक्त पंचपरमेष्ठी की भक्ति, आराधना, दान, पूजा आदि सत् कार्यों से परिणमन करना शुभोपयोग है। विषय भोगों में, ख्याति पूजा लाभ से युक्त बाह्य विषय विकारों में रत्नत्रय से सहित या रहित जो विपरीत परिणमन है वह अशुभोपयोग है, छद्मस्थों का धर्मध्यान और शुक्लध्यान शुभोपयोग स्वरूप है। अशुभोपयोग आर्तध्यान और रौद्रध्यान रूप है।

प्र.323–ख्याति पूजा लाभ की भावना को मिथ्याचारित्र कहा है फिर इसे रत्नत्रय सहित क्यों कहा यदि यह भावना रत्नत्रय सहित है तो मिथ्याचारित्र क्यों कहा?

उत्तर–मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय से युक्त होने के कारण ख्याति पूजा लाभ की भावना को मिथ्याचारित्र कहा है किंतु मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में ख्याति पूजा लाभ की भावना को मिथ्याचारित्र न कहकर असंयम, प्रमाद, कषाय, आर्तरौद्रध्यान कहा है जो संसार का ही कारण है, साम्परायिकाश्रव है तथा मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में संसार भ्रमण का कारण नहीं है।

प्र.324–इन उपयोगों के कहाँ तक के जीव स्वामी हैं?

उत्तर–शुभोपयोग के स्वामी छद्मस्थ मोक्षमार्गी है किन्तु अशुभोपयोग के संसारमार्गी तथा कुछ मोक्षमार्गी भी स्वामी हैं। गुणस्थानानुसार शुभोपयोग 4थे गुणस्थान से लेकर 10वें गुणस्थान तक या 12वें गुणस्थान तक होता है क्योंकि जब केवलज्ञान और केवलदर्शन को शुद्धोपयोग कहा है तो अपने आप ही पारिशेष न्याय से असंयमीजीव, संयमीजीव, सरागीजीव, छद्मस्थ वीतरागी जीवों के, धर्मध्यानी, पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यानी, एकत्ववितर्क शुक्लध्यानी जीवों के शुभोपयोग होता है। जो गुणस्थानानुसार तारतम्यता से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ संवरनिर्जरा का साधकतम साधन है किन्तु अशुभोपयोग सामान्य विशेषावस्था में साधन का साधन है। अशुभोपयोग तारतम्यता से हीन होता हुआ 6वें गुणस्थान तक होता है।

प्र.325–शुद्धोपयोग और शुक्लध्यान में क्या अन्तर है?

उत्तर –केवलज्ञान, केवलदर्शन और शुक्लध्यान ये तीनों गुणों की अपेक्षा, कार्य कारण की अपेक्षा, पर्याय पर्यायी की अपेक्षा, स्वभाव स्वभाववान की अपेक्षा से अंतर है किन्तु आधार आधेय की अपेक्षा से अन्तर नहीं है क्योंकि इन तीनों का आधार एकमात्र चैतन्यात्मा है।

प्र.326–उपयोग और ध्यान एक साथ एक समय में एक जीव में व्यक्तरूप में, कार्यरूप में हो सकते हैं या नहीं?

उत्तर–इन दोनों या तीनों के गुण आधार अलग अलग होने से लक्षण नाम और कार्य भिन्न भिन्न हैं तो इनकी पर्यायें भी भिन्न भिन्न हैं तो एकसमय में, एकसाथ व्यक्तरूप में, कार्यरूप में होती ही होतीं हैं इस में संदेह नहीं हैं, विरोध नहीं हैं क्योंकि सभी द्रव्यों में और अनंतगुणों में प्रतिक्षण स्वपर निमित्तक या स्वचतुष्टय और परचतुष्टय की अपेक्षा अर्थक्रिया होना, करना प्रत्येक द्रव्य गुण का निजी स्वभाव है।

प्र.327–जब ज्ञान साकार है सविकल्प है तो ध्यान को निर्विकल्प क्यों कहा?

उत्तर–वास्तव में विचारा जाये तो ध्यान चारित्रगुण की ही पर्याय है। यदि ध्यान को चारित्रगुण की पर्याय न मानकर ज्ञानगुण की पर्याय माना जाय तो पूर्ण रूप से केवलज्ञानावरण कर्म के क्षय होने से केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर केवली भगवान के ध्यान भी पूर्ण रूप से हो जाना चाहिए परन्तु सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान और व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान ये दो भेद शेष रहते हैं अथवा ध्यान को ज्ञानगुण की पर्याय मानने पर एक और आपत्ति है कि केवलज्ञान होने के बाद भी ध्यानपर्याय पूर्ण न होने से केवलज्ञान को भी अधूरा मानने का प्रसंग आयेगा इससे निश्चय होता है कि ध्यान अलग है और ज्ञान अलग अथवा यदि ध्यान और ज्ञान एक ही हैं तो ध्यान के अपूर्ण होने पर केवलज्ञान को भी अपूर्ण होना चाहिए अथवा ध्यान ज्ञान गुण की पर्याय है ऐसा माना जाये तो क्या एक समय में एकसाथ व्यक्त रूप में एक गुण की दो पर्यायें हो सकती हैं? यदि दोनों एक ही गुण की पर्यायें हैं तो जिस समय केवलज्ञान हो गया है उसी समय ध्यान नहीं होना चाहिये या जिस समय ध्यान होगा उस समय ज्ञान नहीं होगा जिस प्रकार छद्मस्थों में ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग एक साथ नहीं होते उसी तरह छद्मस्थों के ज्ञान और ध्यान एकसाथ नहीं होना चाहिये तथा क्षायिकभाव भी विनाश स्वभाव वाला होने से कभी कभी होगा, सर्वज्ञपना भी कभी कभी होगा सर्व काल नहीं और जिस समय केवलज्ञान नहीं उस समय अनंतसुख भी नहीं होगा और भी अनेक आपत्तियाँ आतीं हैं अतः ध्यान ज्ञानगुण की पर्याय न होकर चारित्रगुण की पर्याय है। चारित्रगुण स्वयं अचेतन है तब अचेतन में विकल्प कैसा? अचेतन में भी विकल्प माना जाये तो शेष सभी अजीव द्रव्यों में विकल्प होना चाहिए। अतः चारित्र को, ध्यान को निर्विकल्प तथा ज्ञान को सविकल्प कहा है।

प्र.328–जब ध्यान चारित्र गुण की पर्याय है तो ध्यान पुद्गल द्रव्य जैसा अचेतन होने से ध्यान के द्वारा आत्म सिद्धि, मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर–नहीं, पुद्गल द्रव्य जैसा ध्यान अचेतन नहीं है किन्तु चारित्रगुण, ध्यान स्वयं ज्ञाता दृष्टा सुख दुःख का अनुभव करने वाला न होने से अचेतन कहा है सर्वकाल सर्वदृष्टि से नहीं किन्तु आधार आधेय या गुणों का परस्पर में अविनाभाव संबंध होने से और द्रव्य के साथ तादात्म्य संबंध होने से चारित्र को ध्यान को चेतन भी कहा है, अन्यथा नहीं।

प्र.329–ध्यानातीत कोई गुणस्थान हो सकता है क्या?

उत्तर–संसारी प्राणियों के गुणों का विकास क्रमशः होने से ध्यान के बिना कोई भी गुणस्थान नहीं होता है। क्योंकि गुणों के विकास के लिये ही ध्यान किया जाता है।

प्र.330–गुणस्थानातीत जीवों के कोई ध्यान हो सकता है क्या?

उत्तर–हाँ, हो सकता है। गुणस्थानातीत सिद्ध भगवन्तों के प्रदेश परिस्पंदन के अभाव में स्थिर ध्यान होता है।

प्र.331–सिद्धों के ध्यान कैसे हो सकता है क्योंकि ध्यान का काल अन्तर्मुहूर्त कहा है और सिद्ध भगवन्त ध्यान का फल संवर निर्जरा मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं कारण फल प्राप्त होने पर फूल गिर जाता है या छत के प्राप्त होने पर जीना छोड दिया जाता है इसी तरह सिद्धावस्था के प्राप्त होने पर दृष्टांतानुसार ध्यान छूट जाता है तब सिद्धों के ध्यान कैसे हो सकता है?

उत्तर—नव लब्धियों में या क्षायिक भावों में एक क्षायिक चारित्रभाव गिनाया है जिसका सद्भाव सिद्धों में रहता है और सिद्धों में औदयिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, औपशमिक भाव का अभाव तथा क्षायिकभाव और पारिणामिक भाव का सद्भाव बताया है अभाव नहीं। ध्यान चारित्रगुण की पर्याय है, पर्याय के बिना द्रव्य गुण तथा द्रव्य गुण के बिना पर्याय नहीं होती। सिद्धों में पारिणामिक भावरूप चारित्रगुण की पर्याय चारित्र पर्याय मौजूद है चारित्र गुण की परिणति क्रिया को ही चारित्र पर्याय और ध्यान इन दो नामों से कहा है अर्थात् एक ही क्रिया के ये दो नाम हैं क्योंकि अर्थक्रिया करना प्रत्येक द्रव्य गुण का स्वभाव है तब उनके ध्यान क्यों न होगा? यदि सिद्धों के ध्यान न माना जाये तो अधःपतन हो जायेगा और अधःपतन होने से संसार भ्रमण भी अवश्यंभावी है। जब किसी एक विषय में अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहरने को ध्यान कहा है तो वे भवसिद्ध या जीवन मुक्त अनन्तकाल तक के लिए एक ही स्वभाव में स्थित हैं तो उनके ध्यान क्यों न माना जाये? जैसे हजार रुपया वालों को या लाख रुपया वालों को आप धनवान कहते हैं तो करोड़पति को धनवान क्यों न कहेंगे? अवश्य ही कहेंगे। इसी तरह किंचित् स्थिर मन वालों को ध्यान कहा है तो जो अनन्त काल तक के लिए स्थिर हो गये हैं ऐसे सिद्ध भगवन्तों को ध्यान क्यों न माना जाये? अतः सिद्धों के वास्तविक ध्यान मानना ही चाहिए।

प्र.332—जैसे फल के परिपक्व होने पर फूल सूखकर गिर जाता है, वैसे ही ध्यान का फल मोक्ष प्राप्त होने पर ध्यान छूट जाता है ऐसा स्वीकार करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर—नहीं, उदाहरण एकदेश होता है फल के प्राप्त होने पर फूल झड़ जाता है, सर्वत्र ऐसा नहीं हैं तो क्या प्रकाश रूपी कार्य के होने पर सूर्य रूपी कारण दूर हो जाता है, नष्ट हो जाता है? नहीं, इसी तरह मोक्षफल प्राप्त होने पर ध्यानरूपी कारण दूर नहीं होता। किन्तु संसारावस्था में जैसा ध्यान था वैसा ध्यान न होकर उत्कृष्ट ध्यान होता है जो अनन्तानन्त काल तक समान जाति रूप में ही रहेगा।

प्र.333—ध्यान पर्याय क्षणध्वंशी होने से सिद्धों में ध्यान का अभाव सिद्ध क्यों न होगा?

उत्तर—अर्थपर्याय की काल मर्यादा एक समय की है जिसका अस्तित्त्व है फिर भी अंतर किये बिना ही सजातीय पर्याय प्रतिक्षण आती जाती रहती है अतः पर्याय के बिना द्रव्य गुण तथा द्रव्य गुण के बिना पर्याय नहीं होती है यह नियम वर्तमान पर्याय की अपेक्षा कहा गया है भूतकाल और भावीकाल की अपेक्षा नहीं क्योंकि वर्तमान में भूत भावि पर्याय का अस्तित्त्व नहीं है प्रागभाव प्रध्वंसाभाव को लिये हुये है। जो वर्तमान में नवीन नवीन पर्याय आ रही हैं वह भी समान सजातीय पर्याय है। अगुरुलघुगुण का सद्भाव प्रत्येक द्रव्य में होने से अपनी अपनी निज की अर्थक्रिया करते रहते हैं। अर्थक्रिया के बिना द्रव्य गुण का अस्तित्त्व ही नहीं बन सकता। अतः सिद्धों में ध्यान पर्याय का अस्तित्त्व निर्बाध सिद्ध हो जाता है उनमें ध्यान नहीं मानना ही आपत्ति है। हाँ इतना अवश्य है कि संसारी जीवों के जैसा ध्यान नहीं होता है किन्तु क्षायिक भावरूप पूर्ण शुद्ध ध्यान होता है।

प्र.334—धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर—रत्नत्रय से युक्त मोक्ष के निमित्त मोक्ष और मोक्षमार्ग के साधनों का चिन्तन मनन कर स्थिर होने को धर्मध्यान कहते हैं। यदि स्थिरता नहीं आई तो ध्यान भावना है ध्यान नहीं।

प्र.335—धर्मध्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर—धर्मध्यान के 4 या 10 भेद हैं अथवा मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के विषय की अपेक्षा संख्यात भेद, अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान के विषय की अपेक्षा असंख्यात भेद तथा केवलज्ञान की अपेक्षा अनंत भेद हैं।

प्र.336—धर्मध्यान के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—धर्मध्यान के **नाम** :—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय ये चार हैं अथवा अपायविचय, उपायविचय, जीवविचय, अजीव विचय, विपाकविचय, विरागविचय, भवविचय संस्थानविचय, आज्ञाविचय, कारणविचय धर्मध्यान के ये दस नाम हैं।

प्र.337—धर्मध्यान के स्वामी कौन कौन जीव हैं?

उत्तर—सामान्य धर्मध्यान के चारोंगतियों के सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी जीव स्वामी हैं क्योंकि धर्मध्यान के बिना संवर निर्जरा की सिद्धि नहीं हो सकती तब मोक्षमार्ग कैसे बनेगा? अतः चौथे गुणस्थान से लेकर 6वें गुणस्थान तक या दसवें गुणस्थान तक के अवर्ती सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती तथा महामुनीश्वर स्वामी हैं। जो विशेष उत्कृष्ट धर्मध्यान अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान उत्पन्न कराने वाला है उसके स्वामी दसवें गुणस्थान वाले महामुनि हैं।

प्र.338–आज्ञाविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं तथा जिनेन्द्र की आज्ञा क्यों मानना?

उत्तर–अपना अल्प क्षयोपशम होने पर विशेष रूप से, सूक्ष्मरूप से तत्त्व की जानकारी न होने पर जिनेन्द्र ने जो कहा है वह सही है ऐसी आज्ञा मानकर चिंतन करने को आज्ञाविचय धर्मध्यान कहते हैं। क्योंकि सर्वज्ञभगवान अन्यथावादी नहीं होते। अन्यथा बोलने का कारण राग द्वेष मोह, भयादि हैं तथा आप्त वचनों में तर्क नहीं चलता जैसे अग्नि गर्म हैं इसमें क्या प्रश्न, क्या तर्क? तर्क तो छद्मस्थों के वचनों में किया जाता है क्योंकि ये विकारी, विषय लम्पटी, लोभी और अल्पज्ञानी, महान अल्पज्ञानी होते हैं।

प्र.339–तो क्या सभी वचन बिना सोचे समझे स्वीकार कर लेना चाहिए?

उत्तर–नहीं, अपने क्षयोपशमानुसार प्रमाण नय और निक्षेप के द्वारा निर्णय करना चाहिए। कदाचित् निर्णय न हो सके तो केवल आज्ञा मानकर स्वीकार करना चाहिए अन्यथा अंधभक्ति का प्रसंग आयेगा।

प्र.340–तो फिर ऐसा कौन सा विषय है जो केवल आज्ञा ग्राह्य है?

उत्तर–अगम्य क्षेत्र, असंख्यात द्वीप समुद्र, नरक भूमि, स्वर्गभूमि, सूक्ष्म परमाणु, धर्मादि अमूर्तिक द्रव्य भूतकाल में हुए तीर्थंकरादि इनकी आयु अवगाहना आदि आज्ञाग्राह्य है इनमें क्या परीक्षा करोगे?

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः।।5।। आलापपद्धति सूत्र 99

अर्थः–जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए सूक्ष्म तत्त्व हेतुओं के द्वारा खंड़ित नहीं किये जा सकते। उन आज्ञा सिद्ध सूक्ष्म तत्त्वों को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि जिनेन्द्र भगवान अन्यथावादी नहीं होते।

प्र.341–वह कौन सा विषय है जो परीक्षापूर्वक ग्रहण करने योग्य है?

उत्तर–हेय (छोड़ने योग्य) उपादेय (ग्रहण करने योग्य) उपेक्षा (माध्यस्थभाव) ज्ञेय के विषय में अपने क्षयोपशम के अनुसार यह कैसा है? किस प्रकार है? किस रूप में है? आदि तर्कणा करके ग्रहण करना चाहिए। आहार विहार, भक्ष्याभक्ष्य और संयमव्रत के संबंध में पूर्ण निर्णय करने योग्य है।

प्र.342–अपायविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं और किस हेतु होता है?

उत्तर–कष्ट से, मनवचनकाय की दुविधा से, संसारावस्था से स्वयं छूटने का, दूसरों को छुड़ाने का, निष्कपट निःस्वार्थपूर्वक, विवेकयुक्त निरन्तर चिंतन करने को, तद्रूप परिणमन करने को अपायविचय धर्मध्यान कहते हैं। अपायविचय धर्मध्यान स्व पर हेतु होता है।

प्र.343–कष्ट से बचने बचाने के लिए और स्वास्थ्य लाभ के लिए कार्य करने को निदान आर्तध्यान कहते हैं तो इसे धर्मध्यान क्यों कहा?

उत्तर–यदि पुनः भोगविलास की कामना से कष्ट को दूर करने का प्रयास किया जाय तो अवश्य ही निदान आर्तध्यान कहलायेगा। किन्तु यहाँ आत्मशान्ति के लिए, आत्मसाधना के लिए कष्ट से बचाया जा रहा है तब निदान आर्तध्यान कैसे? नहीं। अतः अभिप्राय भिन्न होने से, मोक्ष का हेतु होने से अपायविचय धर्मध्यान कहा है जैसे मैनासुन्दरी ने अपने पति श्रीपाल सहित 700 सुभटों को कुष्ठ रोग से बचाने के लिए सिद्धचक्र विधान किया था, न कि भोग के निमित्त। कदाचित् यदि भोग के निमित्त माना जाय तो आपके कथनानुसार श्रीपाल के समान 700 सुभटों के साथ भी भोगविलास का, पति के समान आचरण करने का प्रसंग आयेगा तब मैनासुन्दरी का पतिव्रत भी निर्दोष नहीं बन सकता, कारण जिस भाव से श्रीपाल के ऊपर गन्धोदक छिड़का था उसीभाव से 700 सुभटों के ऊपर भी छिड़का था अन्य भाव से नहीं। अन्य भाव हो तो सम्यग्दृष्टिपना नहीं बनेगा। कदाचित् ये मेरे हैं और ये मेरे नहीं ऐसा माना जाय तो उदार मन वालों के लिए सारी पृथ्वी ही कुटुंब होती है तथा वात्सल्य अंग, मैत्री भावना, प्रमोद भावना, अपायविचय धर्मध्यान, सोलहकारणभावनायें नहीं बन सकती हैं ।

'अयं परो निजः वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चित्तानां तू वसुधैव कुटुम्बकम्।।

यह दूसरा है, दूसरे का है और यह मेरा है ऐसा विचार हीन बुद्धि वालों का होता है। इस कारण बहिर्दृष्टि से देखने पर निदान आर्तध्यान लगता है पर अंतरंग दृष्टि से देखने पर अभिप्राय स्वच्छ, निष्कपट, निःस्वार्थ होने से, मोक्ष का साधन होने से अपायविचय धर्मध्यान ही नजर में आता है। संवर निर्जरा का अनन्य साधन है।

प्र.344–निदान आर्तध्यान के स्वामी कौन हैं?

उत्तर–निदान आर्तध्यान के स्वामी समस्त भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सैनी, असैनी, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक चारों गति के जीव स्वामी हैं जो एकमात्र संसार का और संसार भ्रमण का ही कारण है। कदाचित् देशव्रती पंचम गुणस्थानवर्ती प्रतिमाधारी भी स्वामी हैं।

प्र.345–अपायविचय धर्मध्यान के स्वामी कौन हैं और मिथ्यादृष्टि जीव क्यों नहीं?

उत्तर–अपनी[2] अवस्थानुसार विशेष अपायविचय धर्मध्यान के स्वामी सम्यग्दृष्टि, देशव्रती और मुनिजन ही है। यद्यपि जातिगत स्वभाव होने के कारण मनुष्य और तिर्यंच प्राणी भी कष्ट से, नाना प्रकार की आपत्तियों से स्वयं बचते हैं और बचाते भी हैं फिर भी वस्तु व्यवस्था में अश्रद्धान अविश्वास या एकांगीदृष्टि होने के कारण मिथ्यापन होने से धर्मध्यान नहीं कहा क्योंकि धर्मध्यान सम्यक्त्व के सद्भाव में होता है फिर भी कुछ मात्रा में कषायों की मंदता होने से शुभ लेश्यायें और भद्रध्यान कह सकते हैं।

प्र.346–विपाकविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं और इसे कैसे समझा जाये?

उत्तर–मूल में आठ कर्म हैं तथा उत्तर भेद 148 हैं और उत्तरोत्तर असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं तब किस कर्म का क्या फल है, किस गति में फल देता है, किस काल में फल देता है, किस पर्याय में फलता है, किस परिणाम से कर्म अपना फल समय के पहले देते हैं, कौन से कर्म समय के बाद में फल देते हैं, विपरीतफल देते हैं, अनुकूल प्रतिकूल फल देते हैं आदि कर्मों की दस अवस्थायें होती हैं उनके संबंध में विचार कर स्थिर होने को विपाकविचय धर्मध्यान कहते हैं। इस विषय को धवल, महाधवल, जयधवल और कर्मकांड आदि कर्मसिद्धांत रूपी अध्यात्म ग्रंथों से भली प्रकार समझ सकते हैं।

प्र.347–कर्मों की दस अवस्थायें कौन कौन सी हैं?

उत्तर–बन्ध, उदय, सत्त्व, उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा, संक्रमण, उपशम, निधत्ति और निकाचित् ये दस अवस्थायें होती हैं।

प्र.348–बंधकरण किसे कहते हैं?

उत्तर–दो का अथवा अनेकों का एक क्षेत्रावगाही संयोग रूप में मिलकर एकरूप हो जाने को बंध कहते हैं। वह बंध जीव का जीव के साथ, पुद्गल का पुद्गल के साथ और दोनों का मिलकर एकरूप हो जाता है।

प्र.349–बंधकरण को समझने के लिये क्या उदाहरण है?

उत्तर–दूध पानी के समान अथवा दूध शक्कर के समान आत्मा के प्रदेशों का और कर्म पुद्गल वर्गणाओं का परस्पर में एकरूप हो जाना बन्ध है।

प्र.350–प्रत्येक द्रव्य अपना अपना स्वभाव छोड़ते नहीं हैं फिर यहाँ दो द्रव्य एकरूप हो गये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–प्रत्येक द्रव्य अपना अपना स्व स्वभाव नहीं छोड़ते हैं किन्तु संसारी जीव और पुद्गल विकार रूप में परिणमन करते हैं यह कथन लक्षण की अपेक्षा कहा है तथा दो द्रव्य एकरूप में हो गये हैं, यह कथन बंध की, विकार की, विभाव की अपेक्षा से कहा है, स्वभाव की, लक्षण की अपेक्षा से नहीं यदि सर्वत्र सर्वकाल केवल लक्षण की अपेक्षा ही कथन किया जाये, स्वीकार किया जाये तो आश्रव बंध, संसार भ्रमण, संसार भावना बन नहीं सकती क्योंकि प्रत्येक द्रव्य स्व स्वभाव में होने से संवर निर्जरा और मोक्ष तत्त्व की व्यवस्था भी नहीं बन सकती जो आगम और प्रत्यक्ष से विरोध आता है। अतः बंधकरण की अपेक्षा भी कथन, चिंतन करना चाहिये तभी विपाकविचय धर्मध्यान बन सकता है अन्यथा नहीं।

प्र.351–दूध और पानी की तरह बन्ध को क्यों बताया जा रहा है?

उत्तर–दूध पानी की तरह उदाहरण भव्य जीव की अपेक्षा से कहा है जिस प्रकार अग्नि से तपाकर दूध और पानी को अलग अलग कर देते हैं उसी प्रकार ध्यानाग्नि के द्वारा अनादिकालीन एकरूपता को प्राप्त जीव और कर्म अलग अलग कर दिये जाते हैं। अतः यह उदाहरण दिया है।

प्र.352–दूध शक्कर की तरह बन्ध को क्यों बताया जा रहा है?

उत्तर–दूध शक्कर की तरह उदाहरण अभव्य जीवों की अपेक्षा से कहा जा रहा है जिस प्रकार दूध से शक्कर को निकालना अत्यन्त असम्भव बात है उसी तरह अभव्य जीवों का कर्मों से आत्मा का अलग हो जाना असम्भव बात है।

प्र.353–उदयकरण किसे कहते हैं?

उत्तर–द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव रूप अनुकूल या प्रतिकूल सामग्री को पाकर पूर्वबद्ध कर्म अपना समय पाकर फल देने की सन्मुख अवस्था को या फल देने को उदय कहते हैं।

प्र.354–सत्त्वकरण किसे कहते हैं?

उत्तर–विषयकषाय और योगानुसार आये हुए कर्म आत्मा में कुछ समय के लिए ठहर जाने को सत्त्व करण कहते हैं।

प्र.355–उत्कर्षणकरण किसे कहते हैं और किस में होता है?

उत्तर–पूर्वबद्ध कर्मों की जो स्थिति–कालमर्यादा, अनुभाग फलदान शक्ति आदि बढ़ा दी जाती है, वृद्धि कर दी जाती है, उसे उत्कर्षण करण कहते हैं। यह उत्कर्षण पाप परिणामों से पाप प्रकृतियों में और पुण्य प्रशस्त परिणामों से पुण्यप्रकृतियों में उत्कर्षण होता है।

प्र.356–अपकर्षण करण किसे कहते हैं, किस कारण से होता है, किसमें होता है?

उत्तर–पूर्वबद्ध कर्मों का वर्तमान के परिणामों से स्थिति और अनुभाग बंध घटा देने को अपकर्षण करण कहते हैं। वर्तमान में विशेष शुभाशुभ परिणामों के कारण होता है। पुण्य परिणामों से पाप प्रकृतियों में स्थितिबंध और अनुभागबंध का तथा पाप परिणामों से पुण्यप्रकृतियों में स्थितिबंध और अनुभागबंध का घट जाना अपकर्षण करण है।

प्र.357–उदीरणाकरण किसे कहते हैं?

उत्तर–पूर्वबद्ध कर्मों का वर्तमान में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप विशिष्ट पुरुषार्थ के द्वारा समय के पहले फल भोगकर या बिना भोगे आत्मा से कर्मों को अलग पृथक् कर देने को उदीरणाकरण कहते हैं।

प्र.358–उदीरणाकरण के द्वारा कर्मों का फल भोग कर या बिना भोगे निर्जरा कैसे हो सकती है यदि हो सकती है तो ध्यानादि करने की क्या जरूरत?

उत्तर–श्रेणी आरोहण करने के पहले यदि उदीरणानुसार अपना तदनुकूल उपयोग है तो पुण्य पाप का फल भोगना ही पड़ता है किंतु उपशम या क्षपकश्रेणी आरोहण करने पर उदीरणा करण से प्राप्त पाप पुण्य प्रकृतियों का फल बिना फल दिये निर्जरा को प्राप्त हो जाता है अतः ध्यानादिक सफल हैं।

प्र.359–किस कर्म की उदीरणा होती है?

उत्तर–जिस कर्म प्रकृति का उदय चल रहा है उसी की उदीरणा होती है जैसे साता के उदय में साता की उदीरणा, असाता के उदय में असाता की उदीरणा इसी तरह सभी प्रकृतियों में समझना चाहिए।

प्र.360–संक्रमणकरण किसे कहते हैं?

उत्तर–पूर्वबद्ध कर्म वर्तमान में विशेष परिणामों से अपनी ही सजातीय पुण्यप्रकृतियों का पाप प्रकृतियों में और पाप प्रकृतियों का पुण्य प्रकृतियों में अनुलोम प्रतिलोम क्रम से बदल जाने को संक्रमण कहते हैं, जैसे साता का असाता में, उच्चगोत्र का नीचगोत्र में बदल जाना आदि।

प्र.361–उपशमकरण किसे कहते हैं?

उत्तर–पूर्वबद्ध कर्म जो आबाधाकाल को समाप्त कर फल दे रहा था या देने के सन्मुख था किन्तु वर्तमान में विशेष करणरूप परिणामों के द्वारा वर्तमान में बेहोश चेतनायुक्त क्रियाविहीन व्यक्ति के समान फल देने में असमर्थ कर देने को उपशम करण कहते हैं।

प्र.362–निधत्तिकरण किसे कहते हैं?

उत्तर–जो कर्मपरमाणु विशिष्ट परिणामों से उदयावलि में प्रवेश न कर सके तथा न संक्रमण कर सके उसे निधत्तिकरण कहते हैं।

प्र.363–निकाचितकरण किसे कहते हैं?

उत्तर–जो कर्मपरमाणु उदयावलि में प्रवेश न कर सकें, संक्रमण उत्कर्षण और अपकर्षण करने में असमर्थ हों उसे निकाचित करण कहते हैं।

प्र.364–उक्त दस प्रकार के करणों में कुछ और भी भेद प्रभेद हैं क्या?

उत्तर–ये दसों के दसों करण प्रत्येक द्रव्य और भाव के भेद से दो दो भेद वाले हैं।

प्र.365–उक्त दस प्रकार के बंधादि करणों के अवांतर नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जैसे द्रव्यबंध, भावबंध, द्रव्यउदय, भावउदय, द्रव्यसत्त्व, भावसत्त्व, द्रव्यउत्कर्षण, भावउत्कर्षण, द्रव्यअपकर्षण, भावअपकर्षण, द्रव्यउदीरणा, भावउदीरणा, द्रव्यसंक्रमण भावसंक्रमण, द्रव्यउपशम, भावउपशम, द्रव्यनिधत्ति, भावनिधत्ति, द्रव्यनिकाचित, भावनिकाचित ये द्रव्य और भाव के भेद से उक्त 20 भेद हो जाते हैं।

प्र.366–ये दसकरण द्रव्य और भाव रूप में होते हैं यह कैसे समझा जाये?

उत्तर– जैसे अपन और अपने फोटो में अंतर है। अपन चेतन हैं और फोटो अचेतन है। अपने को सर्दीगर्मी, भूखप्यासादि का वेदन होता है किन्तु फोटो को नहीं। इसी तरह जो उक्त करणपरिणाम आत्मा के हैं वे भाव रूप चेतन हैं तथा जो फोटो की तरह पुद्गल की अवस्थायें हैं वे जड़ हैं अचेतन हैं।

प्र.367–द्रव्य बंधादि दस भेद किसे कहते हैं?

उत्तर–पुद्गल द्रव्य की अवस्था विशेष को या परमाणुओं का परस्पर में मिलकर स्कंधरूप अवस्था को द्रव्य बंधादि कहते हैं। कर्मवर्गणाओं का कर्मरूप में होना द्रव्य बंध। फल प्रदान करने के लिए सामने आना उदय। कुछ समय के लिए ठहरना सत्त्व। पुद्गल पिण्ड में वृद्धि होना उत्कर्षण। घट जाना अपकर्षण। समय के पहले फल देने लग जाना उदीरणा। बदल जाना संक्रमण। दब जाना उपशम। फल देने के और बदलने के अयोग्य होना निधत्ति। फल देने के, बदलने के, बढने के और घटने के अयोग्य होना निकाचित ये दस अवस्थायें पुद्गल पिण्ड में होने से इन्हें द्रव्य बंधादि कहते है।

प्र.368–द्रव्य बंधादि दस करणों को समझने या समझाने के लिए उदाहरण क्या है?

उत्तर–जैसे शरीर में फोड़ा के लिए कुछ पुद्गलपिण्ड संचय को प्राप्त हुआ बंध। पकने के योग्य समय प्राप्त होने पर पकेगा उदय। अभी ठहरा हुआ है सत्व। कुछ वृद्धि को प्राप्त हो रहा है उत्कर्षण। कुछ औषधि के प्रयोग से कम हो गया घट गया अपकर्षण। औषधि के प्रयोग से समय के पहले पका दिया उदीरणा। विरुद्ध औषधि के प्रयोग से फोड़े का जहरीले रूप में परिवर्तन होना, पहले सामान्य फोड़ा था किंतु विरुद्ध प्रयोग से बदल गया संक्रमण। औषधि के प्रयोग से बिलकुल दबा दिया उपशम। जैसे आजकल अंग्रेजी दवाईयों से बीमारी तात्कालिक दबा दी जाती है उपशम। विशेष विशेष औषधि के प्रयोग करने पर भी न पक रहा है न बदल रहा है निधत्ति। फल देने के, दर्द होने के अयोग्य है, बदलने के अयोग्य है, न वृद्धि को प्राप्त हो रहा है और न घट रहा है निकाचित। इसप्रकार फोड़े के संबंध में प्रयोग से या बिना प्रयोग से ये दस अवस्थायें बताई गई हैं इसी तरह आप किसी भी शुभाशुभ अवस्थाओं के संबंध में समझ सकते हैं।

प्र.369–जब निधत्ति और निकाचित कर्मबंध का फल भोगना ही पड़ेगा तो धर्म से, संयम से, प्रतिक्रमण आदि से क्या मतलब, क्यों करना?

उत्तर–नहीं, धर्म साधन, संयम पालन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आदि धर्मध्यान, शुक्लध्यान के परिणाम अनिवृत्ति करण के परिणामों से परिणमन करने पर जिनबिंब दर्शन पूर्वक आत्मदर्शन से निधत्ति और निकाचित करण भी नष्ट हो जाते हैं। जैसे किसी जीव ने कोई भयंकर अपराध कर लिया है और हर प्रकार से अपराध के सिद्ध हो जाने पर सुप्रीमकोर्ट के जज ने फांसी की सजा भी सुना दी किंतु वह अपराधी मृत्यु के भय से कांपता हुआ राष्ट्रपति के पास गया और मन वचन काय की सरलता से चरणों में गिर कर क्षमायाचना की, अभयदान मांग लिया तब योग्य समझकर राष्ट्रपति क्षमा कर देता है, अभयदान दे देता है। इसी तरह पूर्वबद्ध कर्मोदय के सामने वर्तमान में अपनी धर्मसाधना प्रतिक्रमण आदि की क्षमता यदि प्रबल है तो कर्म समूल नष्ट हो जायेगा जैसे अंजनचोर, पांडवादि। यदि प्रतिक्रमण आदि की क्षमता कुछ कमजोर है तो कर्म की शक्ति भी कमजोर हो जायेगी तथा प्रतिक्रमण आदि की क्षमता ना के बराबर है तो कर्म अपना पूर्णशक्ति से फल देगा। अतः धर्मादि साधन सफल ही हैं।

प्र.370–भावबंधादि किसे कहते हैं और इनका आधार क्या है?

उत्तर–नवीन भाव संस्कारों का मिलना भावबंध। पूर्वसंस्कारों का याद आना तथा तद्रूप परिणमन करना भाव उदय। वर्तमान के परिणामों का, संस्कारों का ठहर जाना, रुक जाना भाव सत्त्व। वर्तमान में परिणामों में उद्रेक की वृद्धि होना तथा भविष्य के लिए भी उद्रेक के भाव संस्कारों को मजबूत कर लेना भाव उत्कर्षण। संस्कारों को उद्रेक के परिणामों को घटा देना भाव अपकर्षण। अंतरंग बहिरंग साधनों को माध्यम बनाकर भविष्य के परिणामों को वर्तमान में बना

लेना, शुभाशुभ विचारपूर्वक कार्यों को भविष्य में करना था जल्दी ही उन कार्यों को वर्तमान में कर डालना भाव उदीरणा। अपने भावों को बदल देना भाव संक्रमण। परिणामों को दबा लेना, प्रयोग में नहीं आने देना भाव उपशम। पूर्व के भाव रूप संस्कारों को वर्तमान में न लाना, न बदलना भाव निधत्ति। वर्तमान में पूर्व संस्कारों को प्रयोग में न लाना, न बदलना, न वृद्धि करना, न कम करना भाव निकाचित। आदि ये अवस्थायें उपादान स्वरूपी आत्म परिणामों में होने से इनको भाव बंधादि कहते हैं।

प्र.371–उक्त दस करण किस ध्यान के विषय हैं?

उत्तर–उक्त करण या द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म की अवस्थायें विपाकविचय धर्मध्यान के विषय हैं।

प्र.372–क्या कर्मोदय के बिना वर्तमान में नवीन परिणाम बन ही नहीं सकते ?

उत्तर–ऐसा सर्वथा नियम नहीं है कि बिना कर्मोदय के परिणाम होते ही न हो, कथंचित् कर्मोदय के होने पर भी परिणाम होते हैं, कथंचित् कर्मोदय होने पर भी परिणाम नहीं होते हैं, कथंचित् जिस कर्म का सत्त्व ही नहीं है फिर भी नवीन बंध के लिए नवीन परिणाम उत्पन्न होते हैं जैसे नवीन आयु का उदय सत्त्व नहीं है फिर भी नवीन आयु को बांधने के लिए परिणाम होते हैं। अनादि नित्य निगोदिया जीवों के और इतरनिगोदिया जीवों के कुछ त्रस संबंधी पुण्य या पाप प्रकृतियों का सत्त्व ही नहीं है फिर भी नवीन परिणामोंसे बंध कर लेता है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेदादि का उदय मुनि अवस्था में पाया जाता है फिर भी नवीन परिणाम न होनेसे बन्ध नहीं होता। नीचगोत्र का उदय पाँचवें गुणस्थान तक पाया जाता है पर बंध नहीं होता है क्योंकि नीच गोत्र कर्म का बंध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है। कुछ प्रकृतियां ऐसी हैं कि मोक्षमार्गियों के आर्तध्यान रौद्रध्यान के सद्भाव में मायाचार, शृंगार अलंकार की चर्या चर्चा होने पर भी स्त्रीवेद नपुंसकवेद का बन्ध नहीं होता है। विशेष खुलासा कर्मकाण्ड त्रिकरण चूलिका गाथा 399 से 407 तक, धवलादि ग्रन्थों से समझ लेना चाहिए।

प्र.373–निदान आर्तध्यान और विपाकविचय धर्मध्यान में क्या अन्तर है?

उत्तर–कुछ धर्माचरण या सत्कार्य परोपकार आदि करके इनका फल इसलोक संबंधी या परलोक संबंधी इन्द्रिय भोग सामग्री, पदवी आदि की चाह करना निदान आर्तध्यान है और किस कर्म का क्या फल है यह विचार करना विपाकविचय धर्मध्यान है। प्रथम भोग के हेतु किया जाता है और दूसरा योग के, मोक्ष के हेतु किया जाता है। प्रथम के समस्त असंयमी प्राणी स्वामी हैं और कुछ देशव्रती भी तथा दूसरे के मोक्षमार्गी जीव स्वामी हैं। प्रथम में छहों लेश्यायें होती हैं, दूसरे में शुभ लेश्यायें होती हैं। कदाचित् मुनि अवस्था में निदान आर्तध्यान के होते ही मुनिपना छूट जाता है, पतन हो जाता है।

प्र.374–संस्थानविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं और लोकाकाश का आकार कैसा होता है?

उत्तर–लोकाकाश के समान आत्मा के आकार का चिन्तन करने को संस्थानविचय धर्मध्यान कहते हैं। **आकारः**–अपने दोनों हाथों को कमर पर रखकर दोनों पैर फैलाने पर उत्पन्न हुए आकार के समान लोकाकाश का आकार होता है।

प्र.375–संस्थान विचय धर्मध्यान का क्या फल है?

उत्तर–जिस प्रकार गीले वस्त्र को निचोड़कर, खोलकर, फटकारकर, प्रेसकर अथवा मशीन में ड्राईकर फैलाकर डाल देने से वस्त्र जल्दी सूख जाता है, उसी प्रकार संस्थानविचय धर्मध्यान के द्वारा पूर्वबद्ध कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा हो जाती है। यही संस्थानविचय धर्मध्यान का फल है।

प्र.376–संस्थान विचय धर्मध्यान के स्वामी कौन हैं?

उत्तर–मुनिजन इसके स्वामी है क्योंकि इसी ध्यान के अंतिम परिणाम से श्रेणी आरोहण होती है और गृहस्थों के यह ध्यान न होने से श्रेणी आरोहण नहीं कर सकता है हाँ इतना अवश्य है कि इस ध्यान के विषय का गृहस्थ पठन पाठन तो कर करा सकता है किंतु परिणमन नहीं कर सकता।

प्र.377–उपायविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–किस उपाय से, किस साधन से, दुःख से छूटेगा उस उपाय का पुनः पुनः विचार कर स्थिर होने को उपायविचय धर्मध्यान कहते हैं। कष्ट से बचने का उपाय तो सभी करते हैं किन्तु उपाय की जानकारी न होने से कष्ट से मुक्ति नहीं मिलती। अतः कष्ट से बचने का एकमात्र उपाय रत्नत्रय धर्म ही है।

प्र.378–वह उपाय क्या है, जिससे कष्ट दूर हो सकते हैं?

उत्तर–कष्ट से बचने का एकमात्र उपाय रत्नत्रय धर्म है तथा वह कष्ट भी केवल भोगविलास का, जन्म मरण भ्रमण आदि का है। मद्यपायी के समान महामोही मनोनुकूल सामग्री को प्राप्त न होने को कष्ट मानकर इससे बचना चाहता है इसलिए कष्ट से मुक्ति नहीं मिल रही है अतः भली प्रकार कष्ट और कष्ट से बचने के उपाय को जानकर प्रयत्न करना चाहिए।

प्र.379–उस उपाय को किस प्रकार से अपनाना चाहिए?

उत्तर–जिस प्रकार सर्प अपने बिल में सीधा जाता है, उसी प्रकार कष्ट से बचने के लिए, आत्मस्वभाव में आने के लिए, निष्कपट, निःस्वार्थ, ख्याति, पूजा, लाभ की दुर्भावना को छोड़कर आत्मानंद की प्राप्ति के लिये रत्नत्रयधर्म अपनाना चाहिए।

प्र.380–जीवविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–जीव की नाना अवस्थाओं को, गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवसमास आदि के द्वारा जानकर चिन्तन करने को विचार करने को जीवविचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्र.381–अजीवविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–चैतन्य आत्मा से विरुद्ध स्वभाव वाले पदार्थों का चिन्तन करने को अजीवविचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्र.382–विरागविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–संसार शरीर और भोगों के स्वरूप का पुनः पुनः विचार कर विरक्त होने को, माध्यस्थ भाव धारण करने को, संसारादि में रागद्वेषादि भाव धारण न करने को विरागविचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्र.383–भवविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–इस संसार रूप चतुर्गति में, चौरासी लाख योनियों में नाना भव नाना पर्यायें हैं उनकी सुख दुःख की अवस्थाओं के निष्फलपने का या सफलपने का चिन्तन करने को भवविचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्र.384–इन भवों का चिन्तन क्यों करना चाहिए?

उत्तर–वैराग्य प्राप्त करने के लिये इन भवों का चिन्तन करना चाहिये। कौन सा भव मोक्ष का और कौन सा संसार का साधन है आदि लाभ हानि का विचार करना चाहिए।

प्र.385–भवविचय धर्मध्यान का क्या फल है?

उत्तर–संसार में जीव की समस्त व्यंजन पर्यायों से विरक्त होना इसका फल है क्योंकि व्यंजन पर्याय जीव और पुद्गल की अशुद्ध अवस्था का नाम है। यह व्यंजन पर्याय समस्त गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीव समासों से युक्त जीवों की होती है। देव नारकी और एकेंद्रिय जीवों का शरीर सप्तमल धातु, उपधातुओं से रहित होता है, शेष मनुष्य तिर्यंचों का शरीर इनसे सहित होता है। पर दोनों ही व्यंजन पर्यायें हैं जो अशुद्ध हैं। लोक व्यवहार में सप्तमल धातु और उपधातुओं से युक्त शरीर अपवित्र माना जाता है फिर भी इस भव विचय धर्मध्यान की अवस्था में समस्त व्यंजन पर्यायें अशुद्ध हैं, अपवित्र हैं संसार है क्योंकि भव का अर्थ शरीर है और शरीर नामकर्म की प्रकृति है।

प्र.386–कारण विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–आत्मशुद्धि या आत्मसिद्धि का क्या कारण है? किनके माध्यम से आत्मसिद्धि हो सकती है, वह कारण चौथाकाल, आर्यखंड, कर्मभूमि, मनुष्य पर्याय, चरमोत्तम संहनन या कोई भी संहनन, उच्च निर्दोष जाति कुल, शिक्षा, संगति, संस्कार, उच्च निर्दोष विचार आदि कारणों से आत्मशुद्धि हो सकती है। ऐसा चिन्तन कर स्थिर होने को कारण विचय धर्मध्यान कहते हैं।

प्र.387–उपायविचय धर्मध्यान और कारणविचय धर्मध्यान में क्या अंतर है?

उत्तर–उपायविचय धर्मध्यान से अंतरंग साधन रत्नत्रय को तथा कारणविचय धर्मध्यान से बाह्य साधनों को ग्रहण करना चाहिए क्योंकि उभय साधनों से ही कार्य की सिद्धि शुद्धि होती है। यही अंतर है।

प्र.388–समग्र धर्मध्यान का क्या फल है?

उत्तर–पाप कर्मों का संवर होना, सातिशय पुण्य कर्मों का आश्रव बन्ध होना, पाप प्रकृतियों के स्थिति बन्ध और अनुभाग बंध में हीनता आना, पुण्य प्रकृतियों के स्थिति अनुभाग बन्ध में वृद्धि होना, असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होना, मोहनीय का समूल क्षय होना, व्यवहार में प्रशंसा आदर सम्मान होना आदि धर्मध्यानों के सम्यक् फल हैं। परंपरा से मोक्ष का साधन है।

प्र.389–चौथे गुणस्थान में कितने ध्यान होते हैं और कितने नहीं?

उत्तर–चौथे गुणस्थान में नारकियों के चार आर्तध्यान, चार रौद्रध्यान, एक धर्मध्यान इस प्रकार नौ ध्यान होते हैं। तिर्यंचगति में, मनुष्यगति में तथा देवगति में दस दस ध्यान होते हैं।

प्र.390–चौथे गुणस्थान में उत्कृष्ट ध्यान की तैयारी हो सकती है क्या?

उत्तर–वस्त्रधारी चौथेगुणस्थान वाले जीवों की उक्त 6 ध्यानों में गति नहीं होती है किन्तु जिस किसी उत्तम संहननधारी या चरमशरीरी श्रावक ने मुनि दीक्षा ले ली और गुणस्थान चौथा बना रहा तथा किसी समय विशिष्ट पुरुषार्थ के द्वारा करण परिणाम किये जिससे उत्कृष्ट ध्यान का या अग्रिम पर्याय का उत्पाद और वर्तमान पर्याय का, हीन ध्यान का व्यय होने से भूमिका बन जाती है, इसी प्रकार भविष्य में या अंतर्मुहूर्त के बाद उपशमश्रेणी भी आरोहण कर सकता है अथवा क्षपकश्रेणी आरोहण कर क्रमशः शुक्लध्यान प्राप्त कर मोक्ष में जा सकता है। अतः नयों की अपेक्षा विचार करने पर कोई दोष नहीं आता है।

प्र.391–ध्यानातीत गुणस्थान आश्रव सहित है या रहित?

उत्तर–ध्यानातीत गुणस्थान नहीं होते हैं। ध्यान सहित अयोगकेवली के आश्रव नहीं होता है, शेषों के होता है।

प्र.392–गुणस्थानातीत ध्यानातीत जीव आश्रव सहित हैं या रहित?

उत्तर–गुणस्थानातीत सिद्धों के ध्यान सहित और अयोगकेवली भगवन्तों के योग और कषायों का अभाव होने से निरास्रव है शेष जीव सास्रव हैं। गुणस्थानातीत तो जीव हो सकते हैं किन्तु ध्यानातीत नहीं।

प्र.393–शुद्ध ध्येय, शुद्ध का अवलम्बन और शुद्ध रूप में परिणमन ये तीन अवस्थायें शुद्धोपयोग की हैं, इनमें से कौनसी अवस्था चौथे गुणस्थान में प्राप्त होती है?

उत्तर–शुद्ध ध्येय यह परिभाषा वर्तमान नय से चौथेगुणस्थान में पाई जाती है, शेष दो नहीं किन्तु भावी नैगम नय से उन अवस्थाओं के सम्मुख उपयोग होने से पाई जाती हैं अथवा उन दो अवस्थाओं को प्राप्त करने का तीव्र लक्ष्य होने की अपेक्षा कथंचित् मान सकते हैं सर्वथा नहीं और उन दोनों अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। अतः भव्य प्राणियों को शुद्ध अवस्था प्राप्त करने के लिए सतत जागृत रहना चाहिए।

प्र.394–शुद्धोपयोग में किन कर्मों को क्षय करने की सामर्थ्य पाई जाती है?

उत्तर–शुद्धोपयोग में या किसी भी उपयोग में कर्मों को क्षय करने की ताकत नहीं है क्योंकि यदि शुद्धोपयोग से कर्मों का समूल क्षय माना जाये तो सयोगकेवली के सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होना चाहिये पर एक भी कर्म का क्षय नहीं होता है तथा जहाँ पर भी आचार्यों ने उपयोग से कर्मों का क्षय कहा है वह उपचारनय से समझना। जो परिणाम आश्रव बंध के हेतु हैं उनसे विरुद्ध परिणाम संवर और निर्जरा के हेतु है इस कारण कुछ औदयिक भाव आश्रव बंध के कारण है, क्षायोपशमिक भाव, औपशमिक भाव और क्षायिक भाव मोक्ष के कारण हैं पारिणामिक भाव संसार और मोक्ष का कारण नहीं है।

प्र.395–शुभोपयोग में किन कर्मों को क्षय करने की क्षमता है?

उत्तर–शुभोपयोग में भी कर्मों को समूल क्षय करने की ताकत नहीं है क्योंकि **''आश्रव निरोधः संवरः'' अर्थ** :–जिन परिणामों से या क्रियाओं के द्वारा आश्रव होता है उन परिणामों और क्रियाओं को रोकने से संवर होता है जब उपयोग से आश्रव बंध नहीं होता है तो संवर निर्जरा कैसे हो सकती है? धर्म ध्यान और शुक्लध्यान सहित शुभोपयोग में मोहनीय कर्म को समूल रूप से या उत्तर प्रकृतियों को क्षय करने की सामर्थ्य है अथवा ध्यान सहित शुभोपयोग में घातिया कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतियों को क्षय करने की सामर्थ्य है और एकदेश संवर निर्जरा की, सातिशय पुण्य को लाने की और पापकर्मों को रोकने की भी सामर्थ्य है। अथवा उपयोग में किसी भी कर्म को क्षय करने की सामर्थ्य नहीं है किंतु ध्यान और उपयोग में अभेद करके अभेदनय की अपेक्षा से कहा जाता है कि उपयोग से कर्मों का क्षय होता है यदि साक्षात् उपयोग से कर्मों का क्षय होता है ऐसा माना जाय तो 13वें गुणस्थान में क्षायिक शुद्धोपयोग होने से समस्त अघातियाकर्मों का क्षय हो जाना चाहिये था पर होता नहीं क्योंकि वास्तव में समूल कर्मों का क्षय धर्मध्यान और शुक्लध्यान से होता है।

प्र.396–चौथे गुणस्थान में किन किन कर्मों का क्षय होता है?

उत्तर–चौथे गुणस्थान में क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव के मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति का तथा अनन्तानुबन्धी क्रोधादि 4 इन 7 कर्म प्रकृतियों का समूल क्षय होता है।

प्र.397–चौथे गुणस्थान में किन किन कर्म प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर–चौथे गुणस्थान में 43 कर्म प्रकृतियों का संवर होता है जो समस्त प्रकार से पापरूप ही हैं।

प्र.398–वे 43 प्रकृतियाँ कौन सी हैं कि जिनका संवर चौथे गुणस्थान में होता है?

उत्तर–1. मिथ्यात्व, 2. हुंडकसंस्थान, 3. नपुंसकवेद, 4. असम्प्राप्तसृपाटिकासंहनन, 5. एकेन्द्रिय जाति, 6. स्थावर, 7. आतप, 8. सूक्ष्म, 9. अपर्याप्त, 10. साधारण, 11. द्वीन्द्रियजाति, 12. त्रीन्द्रियजाति, 13. चौइन्द्रियजाति, 14. नरकगति, 15. नरकगत्यानुपूर्वी, 16. नरकायु, 17. अनन्तानुबन्धी क्रोध, 18. अनन्तानुबन्धी मान, 19. अनन्तानुबन्धी माया, 20. अनन्तानुबन्धी लोभ, 21. स्त्यानगृद्धि, 22. निद्रानिद्रा, 23. प्रचलाप्रचला, 24. दुर्भग, 25. दुस्वर, 26. अनादेय, 27. न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, 28. स्वातिसंस्थान, 29. कुब्जक संस्थान, 30. वामनसंस्थान, 31. वज्रनाराचसंहनन, 32. नाराचसंहनन, 33. अर्धनाराचसंहनन, 34. कीलित संहनन, 35. अप्रशस्त विहायोगति, 36. स्त्रीवेद, 37. नीचगोत्र, 38. तिर्यंचगति, 39. तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, 40. तिर्यंचायु, 41. उद्योत, 42. आहारक शरीर, 43. आहारक शरीरांगोपांग। ये 43 प्रकृतियाँ हैं, जिनका अविरतसम्यग्दृष्टि नामक चौथे गुणस्थान में संवर होता है।

प्र.399–चौथे गुणस्थान में किन किन कर्मों की निर्जरा होती है?

उत्तर–अप्रशस्त पाप प्रकृतियों की विशेष रूप से संख्यातगुणी और असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। सातिशय पुण्य प्रकृतियों का आश्रव बंध होता है और इनकी समयप्रबद्ध मात्र निर्जरा होती है अर्थात् पाप प्रकृतियों की अविपाक सविपाक निर्जरा या सकाम अकाम निर्जरा होती है तथा पुण्य प्रकृतियों की सविपाक निर्जरा या अकाम निर्जरा होती है।

प्र.400–आहारक शरीर और आहारक शरीरांगोपांग तो संयमप्रत्यय प्रकृतियां हैं जो सातिशयपुण्य रूप हैं इनका भी संवर होता है आपने ऊपर केवल पाप प्रकृतियों का ही संवर कहा है सो यह विरुद्ध कथन है?

उत्तर–नहीं, विरुद्ध कथन नहीं है। किस प्रकार नहीं है? कारण जिन उत्कृष्ट परिणामों से, सातिशय पुण्यरूप परिणामों से आहारक शरीर और आहारक शरीरांगोपांग प्रकृति का आश्रवबंध होता है वे परिणाम चौथे गुणस्थान में नहीं पाये जाते हैं। अतः हीनपुण्य से उत्कृष्ट फल कैसे प्राप्त हो सकता है। इस कारण उत्कृष्ट भावों का सद्भाव न होने से संवर कहा है। अर्थात् वास्तव में रोकने का नाम संवर है, रुकने का नाम संवर नहीं यदि रुकने का नाम संवर हो तो समस्त भव्य अभव्य संसारी प्राणी संवर तत्त्व के अधिकारी, स्वामी हो जायेंगे क्योंकि सभी जीवों के कोई न कोई पुण्य या पाप प्रकृतियों का आश्रव बंध नहीं होता है इस कारण रोकने का नाम संवर है, रुकने का नहीं। बहुलता की अपेक्षा कहा है अथवा इसका आश्रव नहीं, उसका संवर कैसे?

प्र.401–चौथे गुणस्थान में असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा अवस्थित होती है या क्वचित् कदाचित्?

उत्तर–चौथे गुणस्थान में सतत असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती किन्तु क्वचित् कदाचित् होती है। जब सम्यक्त्वाचरण रूप परिणामों से या विशेष धर्माचरण रूप कार्यों में परिणमन करता है तभी असंख्यात गुणश्रेणी पाप कर्मों की निर्जरा करता है। शेष कालों में सामान्यरूप से या संख्यात गुणश्रेणीरूप से निर्जरा होती है।

प्र.402–सम्यक्त्वाचरण चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर–असंयम सहित सम्यक्रत्नत्रय युक्त मोक्षमार्ग के अनुरूप आठ अंगों का पालन करना, षडावश्यकों का पालन करना, अनुकंपादि गुणों का पालन करना, मैत्री आदि भावनाओं का चिन्तन करने को सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहते हैं।

प्र.403–विकल्प किसे कहते हैं?

उत्तर–विचारों के परिवर्तन को अथवा मन वचन और काय के परस्पर में बदलने को विकल्प जल्प कहते हैं।

प्र.404–विकल्प के कितने भेद हैं?

उत्तर –विकल्प के दो भेद हैं। अथवा तीन भेद हैं अथवा संख्यात असंख्यात और अनंत भेद हैं।

प्र.405–विकल्प के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–अंतरंग जल्प और बहिरंग जल्प अथवा मन का विकल्प, वचन का विकल्प और काय का विकल्प। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के द्वारा उत्पन्न हुए ऊहापोह को या विचारों को अंतरंगजल्प विकल्प तथा वचन और काय की क्रिया को बहिरंगजल्प कहते हैं।

प्र.406–विकल्प कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर–अंतरंग जल्प विकल्प 12 वें गुणस्थान पर्यन्त होता है तथा बहिरंग जल्प विकल्प बुद्धि पूर्वक और अबुद्धि पूर्वक छठवें गुणस्थान पर्यंत तथा आगे सयोगकेवली पर्यंत अबुद्धिपूर्वक दोनों विकल्प होते हैं क्योंकि 13वें गुणस्थान में तीनों योगों के द्वारा आत्म परिस्पंदन होता है इस कारण यहाँ तक दोनों विकल्प बताये हैं।

प्र.407–विकल्प के स्वामी कौन से जीव हैं?

उत्तर–विकल्पों के छद्मस्थ प्राणी और सयोगकेवली स्वामी हैं। यदि 13वें गुणस्थान में सर्वथा निर्विकल्प अवस्था मानी जाये तो यहाँ तीनों प्रकार के योग बन नहीं सकते तब आश्रवबंध कैसे होगा?

प्र.408–जब यह विकल्पजल्प अपने[2] गुणस्थानानुसार सर्वकाल रहता है तो क्वचित् कदाचित् क्यों कहा?

उत्तर–नहीं, सामान्य जल्प विकल्प सर्वकाल होते हैं पर विशेष भेद रूप जल्प सर्वकाल नहीं होते क्योंकि जब मानसिक विकल्पजल्प मौजूद है तब वचन योग, काय योग नहीं होता अर्थात् एक योग के सद्भाव में दो का सद्भाव नहीं होता है। इस कारण सभी गुणस्थान सविकल्प और निर्विकल्प होते हैं।

प्र.409–उपयोग और ध्यान में क्या अन्तर है?

उत्तर–उपयोग चैतन्यगुण की पर्याय है जो अपने आप में अनेक भेदस्वरूप है। ध्यान चारित्र गुण की पर्याय है, अचेतन है, अनेक भेद हैं। ये दोनों अवस्थायें शुद्धजीवों के शुद्ध और अशुद्धजीवों के अशुद्ध पायी जाती हैं यही अन्तर है।

प्र.410–उपयोग कौन सा भाव है तथा ध्यान कौन सा भाव है?

उत्तर–उपयोग क्षायिकभाव तथा क्षायोपशमिकभाव है समस्त छद्मस्थों के अशुद्धोपयोग तथा केवली और सिद्ध भगवन्तों के शुद्धोपयोग होता है। इसी तरह क्षायिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायोपशमिक भाव स्वरूप ध्यान समस्त छद्मस्थ मोक्षमार्गियों के और क्षायिकभाव स्वरूप ध्यान अरहंत और सिद्धों के होता है। ध्यान में स्थिरता अपने अपने संहननानुसार होती है। उपयोग संसारमार्ग और मोक्षमार्ग का साधक नहीं किंतु ज्ञायक है और ध्यान संसारमार्ग और मोक्षमार्ग का साधक है।

प्र.411–अभेद रत्नत्रय किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों के शक्त्यंश जब क्षायिकभाव रूप में एक समान हो जाते हैं, भरे हुये पूर्ण घट के समान परिपूर्ण हो जाते हैं तब उन्हें अभेद रत्नत्रय कहते हैं।

प्र.412–भेद रत्नत्रय किसे कहते हैं?

उत्तर–जब उक्त रत्नत्रय के अंश पूर्णरूप से उत्पन्न नहीं हो पाते हैं तब उक्त रत्नत्रय के व्यक्त्यंश में असमानता होने को भेद रत्नत्रय कहते हैं अथवा जब तक अपने में पृथक् पृथक् प्रतिभाषित हों तब तक उसे भेद रत्नत्रय कहते हैं।

प्र.413–दोनों रत्नत्रयों के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–अभेद, अखण्ड, पूर्ण और शुद्ध रत्नत्रय के सिद्धपरमेष्ठी तथा चरम समयवर्ती अयोगकेवली भगवन्त स्वामी हैं और भेद रत्नत्रय के स्वामी अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली गुणस्थान द्वीचरमसमय पर्यंत मोक्षमार्गी साधक हैं।

प्र.414–अरिहंत और सिद्धों के अनन्त चतुष्टय एक समान हैं तब सिद्धों को अभेद रत्नत्रय का तथा अरिहंतों को भेदरत्नत्रय का स्वामी क्यों कहा?

उत्तर–नहीं, दोनों में सामान्य से अनन्तचतुष्टय की अपेक्षा समानता है सर्व प्रकार विशेष से नहीं यदि सर्वथा समानता हो तो गुणकृत, द्रव्यकृत, क्षेत्रकृत, चारित्रकृत, ध्यानकृत, सदोष निर्दोषकृत, कर्मकृत, सलेपत्त्व निर्लेपत्त्व, आहार विहार निहार, आहारक अनाहारक, चंचल निश्चल, स्वतंत्र परतंत्र, सास्रव निराश्रव, शुद्धाशुद्ध, कार्य अकार्य, मूलगुण, द्रव्य और भाव में शुद्ध अशुद्ध का भेद नहीं बन सकता है। शक्त्यंश की अपेक्षा भेद न होने पर भी व्यक्त्यंश की अपेक्षा भेद है, अंतर है।

प्र.415–अरिहन्त और सिद्धों में गुणकृत भेद या अन्तर किस प्रकार से है?

उत्तर–अरिहन्तों के अनन्तचतुष्टय शुद्ध हुए हैं, पर सिद्धों के अनन्तगुण शुद्ध हो गये हैं। यह गुणकृत भेद है।

प्र.416–अरिहन्त और सिद्धों में द्रव्यकृत भेद या अन्तर किस प्रकार से है?

उत्तर–अरिहंत का आत्मद्रव्य एकदेश शुद्ध है तो सिद्धों का आत्मद्रव्य सर्वदेश। अरिहन्त संसार में मिश्रावस्था रूप होकर जीव और कर्म परस्पर में बन्धन बद्ध होकर मिलकर रह रहे हैं और सिद्ध केवल एक शुद्धात्मा है अर्थात् अरिहन्त मिश्रद्रव्य हैं तो सिद्ध स्वतंत्र द्रव्य हैं यही अन्तर है।

प्र.417–अरिहन्त और सिद्धों में क्षेत्रकृत भेद या अन्तर किस प्रकार से है?

उत्तर–अरिहन्त मध्यलोक में हैं तो सिद्ध ऊर्ध्वलोक में तनुवातवलय के अन्त में विराजमान हैं यही क्षेत्र कृत अन्तर है।

प्र.418–अरिहन्त और सिद्धों में चारित्रकृत अन्तर किस प्रकार से है?

उत्तर–सयोगी अयोगी अरिहन्तों के यथाख्यातचारित्र और परमयथाख्यातचारित्र है तो सिद्धों के परमोत्कृष्ट चारित्र है। चारित्रगुण का पूर्ण रूप से विकास हो चुका है यही चारित्रकृत अंतर है।

प्र.419–अरिहन्त और सिद्धों में ध्यानकृत अन्तर किस प्रकार से है?

उत्तर–सयोगी अरिहन्तों के एकत्ववितर्क, एकत्व अवितर्क और सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान है तो सिद्धों के व्युपरतक्रियानिवृत्ति रूपी ध्यान के पूर्ण अंश प्राप्त हो चुके हैं अर्थात् संसारावस्था में इस ध्यान का काल अंतर्मुहूर्त है तो सिद्धों में इस ध्यान का काल अनंत है यही अंतर है।

प्र.420–अरिहन्त और सिद्धों में विकार और निर्विकारकृत अन्तर किस प्रकार से है?

उत्तर–अरिहन्तों के औदयिकभाव और भव्यत्व भाव रूपी विकार मौजूद है जबकि सिद्धों के इनका अभाव हो चुका है यही विकार और निर्विकार कृत अंतर है।

प्र.421–अरिहन्त और सिद्धों में सदोष निर्दोषकृत अन्तर किस प्रकार से है?

उत्तर–अरिहन्तों के अघातिया कर्मोदय की अपेक्षा आहारकपना, अशुद्ध पर्यायपना, आवीचिमरण, तद्भवमरण आदि दोष मौजूद हैं अथवा विकार युक्त अशुद्ध प्राण मौजूद हैं जबकि सिद्धों के उक्त दोषों का और अशुद्ध प्राणों का व्यय हो चुका है या शुद्ध चैतन्य प्राण उत्पन्न हो गया है यही अंतर है।

प्र.422–अरिहन्त और सिद्धों में कर्मकृत अन्तर है क्या?

उत्तर–अरिहन्तों के घातिया कर्मों का क्षय हुआ है किन्तु सिद्धों के समस्त कर्म नष्ट हो गये हैं यही कर्मकृत अंतर हैं।

प्र.423–अरिहन्तों और सिद्धों में सलेपत्व और निर्लेपत्व की अपेक्षा भी अन्तर है क्या?

उत्तर–अरहन्तों के वेदनीयादि द्रव्यकर्म, औदयिकादि भावकर्म और शरीरादि नोकर्मों का लेप है जबकि सिद्ध तीनों प्रकार के कर्मों को क्षयकर के सिद्धावस्था को प्राप्त हुए हैं। यही अंतर है।

प्र.424–अरिहन्त और सिद्धों में आहार विहार और निहार की अपेक्षा भी अन्तर है क्या?

उत्तर–अरिहन्तों के आहार विहार और निहार ये तीनों होते हैं किन्तु सिद्धों के नहीं होते यही अंतर है।

प्र.425–आहार, विहार और निहार अरिहन्तों के किस प्रकार से होते हैं बताओ?

उत्तर–सयोगकेवली अरहन्तों के कार्मण वर्गणा और नोकर्म वर्गणाओं का आश्रव बंध होता है, ग्रहण होता है तभी तो कर्म सिद्धान्तग्रन्थों में सयोगकेवलियों पर्यंत जीवों को आहारक कहा है। धर्म सभा विसर्जन के बाद चतुर्विधसंघ सहित एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्रों में विहार करते हैं। पूर्वबद्ध द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मों की निर्जरा करते हैं यही उनका निहार है अन्यथा **'ततश्च निर्जरा'** और **'तपसा निर्जरा च'** ये सूत्र अरहंतों के लागू नहीं हो सकते हैं क्योंकि अरिहन्तों के सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा दोनों प्रकार की पायी जाती है। इस प्रकार अरिहंतों के आहार विहार निहार पाये जाते हैं।

प्र.426–अरिहन्त और सिद्धों में आहारक और अनाहारक की अपेक्षा भी अंतर है क्या?

उत्तर–विग्रहगति को प्राप्त, केवली समुद्घातगत अवस्था, अयोगकेवली और सिद्ध भगवन्त अनाहारक है शेष आहारक है। अतः उन दोनों में आहारक अनाहारक की अपेक्षा भी अंतर है।

प्र.427–उक्त दोनों में चंचल और निश्चल की अपेक्षा भी अन्तर है क्या?

उत्तर–हाँ, सयोगकेवली अरिहन्तों के योगों के द्वारा आत्मप्रदेश चंचल होते रहते हैं और सिद्धों के आत्मप्रदेशों में चंचलपना, कम्पन नहीं होता है। अतः यही अन्तर है।

प्र.428–परतंत्र पराधीन और स्वतंत्र स्वाधीन की अपेक्षा भी अन्तर है क्या?

उत्तर–अरिहन्त कर्माधीन होकर परिपूर्ण अपने शुद्ध स्वभाव को न पाकर संसार में रह रहे हैं और सिद्धभगवन्त पूर्ण शुद्ध होकर स्वाधीन स्वतंत्र होकर अपने आप में स्थिर हैं, यही अन्तर है।

प्र.429–अरिहन्त और सिद्धों में सास्रव और निरास्रव की अपेक्षा भी अंतर है क्या?

उत्तर–अरिहंत सयोगकेवली के सातावेदनीय कर्म का आश्रव होने से सास्रव हैं और अयोगकेवली तथा सिद्धों के योग और कषायों का अभाव होने से पूर्ण निरास्रव है। यही अंतर है।

प्र.430–अरिहन्त और सिद्धों में भावकृत् भी अन्तर है क्या?

उत्तर–हाँ, अवश्य है। अरिहन्तों के औदयिक भाव, क्षायिकभाव और पारिणामिक भाव पाये जाते हैं जबकि सिद्धों में क्षायिकभाव तथा पारिणामिक भाव पाये जाते हैं। उत्तर भावों की अपेक्षा अरिहन्तों के 14 भाव और सिद्धों के 10 भाव पाये जाते हैं।

प्र.431–अरिहन्त और सिद्धों में अशुद्ध और शुद्धकृत भी भेद है क्या?

उत्तर–अरिहन्त भगवन्त अर्धशुद्ध हैं केवल एकमात्र घातिया कर्मों का ही क्षय हुआ है किन्तु सिद्धों के घातिया अघातिया सभी कर्मों का क्षय हुआ है ये पूर्ण शुद्ध हैं। अतः यह भी अन्तर है।

प्र.432–अरिहन्त और सिद्धों में कार्य अकार्य की अपेक्षा भी भेद है क्या?

उत्तर–अरिहन्त भगवन्त कृतकृत्य नहीं हुए हैं क्योंकि उनको अभी अघातिया कर्मों का क्षय करना, अन्त के दो शुक्लध्यान, पूर्णसंवर तत्त्व, निर्जरा तत्त्व तथा मोक्षतत्त्व प्राप्त करना भी शेष रहा है अतः कृतकृत्य अवस्था को प्राप्त नहीं हुए हैं किन्तु सिद्ध कृतकृत्य हुए हैं अब उनको प्राप्त करने के लिये कुछ भी कार्य शेष नहीं रहा है। इत्यादि अरिहन्त और सिद्धों में अन्तर, भेद समझना चाहिये।

प्र.433–अरिहन्त और सिद्धों में मूलगुणों की अपेक्षा भी अंतर है क्या?

उत्तर–तीर्थंकर सयोगी अरिहन्तों के 46मूलगुण, सामान्य अरिहन्तों के 4 मूलगुण तथा सिद्धों के 8 मूलगुण होते हैं और अरिहन्तों के कुछ कम 84लाख उत्तरगुण और सिद्धों के अनंत उत्तरगुण होते हैं।

प्र.434–अरिहंत और सिद्धों में काल की अपेक्षा अंतर है क्या?

उत्तर–अंतकृतकेवली, अरिहंत संसार काल में कम से कम अंतर्मुहूर्त तक और तीर्थंकरकेवली अधिक से अधिक 8 वर्ष अंतर्मुहूर्त कम 1 पूर्वकोटी काल तक रह सकते हैं और सिद्ध लोकान्त में अनंतानंत काल तक रहेंगे यही अरिहंत और सिद्धों में कालकृत अंतर है।

प्र.435–अरिहंत और सिद्धों में सादि अनादि आदि भंगों की अपेक्षा अंतर है क्या?

उत्तर–संसारावस्था में अरिहंतपना प्राप्त हुआ है इसलिए सादि और यहीं पर निर्वाण होने पर अंत हो जायेगा अतः सांत भंग सहित हैं और सिद्धावस्था प्राप्त हुई है इसलिए सादि और अनंतकाल तक रहेंगे अतः अनंतभंग सहित हैं। इस कारण अरिहंत सादिसांत और सिद्ध सादिअनंत भंग सहित हैं यही अंतर है।

प्र.436–अरिहंत और सिद्धों में उत्तम क्षमादि धर्मों की अपेक्षा भी अंतर है क्या?

उत्तर–अरिहंतों के उत्तम क्षमादि 5 धर्म होते हैं और सिद्धों के 10 धर्म होते हैं यही अंतर है।

प्र.437–अभेद रत्नत्रय धर्मध्यान के साथ में होता है या शुक्लध्यान के साथ में ?

उत्तर–अभेद रत्नत्रय चरम समयवर्ती अयोगकेवली के जब व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामक शुक्लध्यान और परम यथाख्यातचारित्र का संसार की अपेक्षा अंतिम अंश प्राप्त होता है तब तथा सिद्धों के अभेद रत्नत्रय होता है इसके अलावा शेष ध्यानों के साथ अभेद रत्नत्रय नहीं होता किन्तु भेद रत्नत्रय होता है।

प्र.438–ज्ञानगुण में विकार स्वनिमित्तक होता है या परनिमित्तक?

उत्तर–विकार का अर्थ जब शुद्ध पर्याय करते हैं तब शुद्धपर्याय की अपेक्षा ज्ञानगुण में विकार स्वनिमित्तिक कहा जाता है। पुद्गलद्रव्य और कालद्रव्य के निमित्त की अपेक्षा पर निमित्तक भी कहा जाता है। जब विकार का अर्थ अशुद्ध पर्याय करते हैं तब परनिमित्तक ही विकार कहा जाता है अथवा उपादान उपादेय की अपेक्षा से स्वनिमित्तिक तथा निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा परनिमित्तिक कहा जाता है क्योंकि अगुरुलघु गुण का परिणमन दोनों प्रकार से होता है।

प्र.439–यहाँ निचली अवस्थाओं में शुद्धात्मा नहीं है तो उसका अनुभव कैसे हो सकता है?

उत्तर–आपका यह प्रश्न सत्य है किन्तु कर्मों से मलिन अवस्था में भी अपने लक्ष्यानुसार अनुभव किया जा सकता है जैसे किसी शर्बत में अनेक पदार्थ मिले होने पर भी जिसमें अपनी गाढ़ प्रीति है तब अपनी दृष्टि या उपयोग शेष के प्रति ओझल कर देने से लक्ष्यानुसार अनुभव होता है अथवा गमन करते समय पैर में कांटा चुभने से खून, रक्त निकलने पर भी गन्तव्य स्थान में पहुंचने की जल्दी होने से कष्ट का अनुभव नहीं होता है इसी तरह गुरु उपदेश, आगम के अभ्यासानुसार, ज्ञानानुसार उपयोग केन्द्रित करने से लक्ष्य का अनुभव होता है इसमें संदेह नहीं है और यह अनुभव, अनुभव प्रत्यक्ष है प्रदेश प्रत्यक्ष नहीं किन्तु प्रदेश प्रत्यक्ष की अपेक्षा अनुभव प्रत्यक्ष परोक्ष ही है।

प्र.440–चौथे गुणस्थान में अभेद रत्नत्रय होता है क्या?

उत्तर–जब ऊपर प्रश्नोत्तर 413 में बतला आये हैं कि अभेद रत्नत्रय किसके होता है और किसके नहीं तब गृहस्थों के अभेद रत्नत्रय के सम्बन्ध में प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। यदि गृहस्थों के अभेद रत्नत्रय माना जाय तो सिद्धों में और गृहस्थों में समानता या एकरूपता होने से महान आपत्ति आयेगी। जैसे गृहस्थों का जीवन विषय कषायों से युक्त, आरम्भ परिग्रह सहित, शृंगार अलंकार सहित होने से सिद्धों में भी ऐसी अवस्था माननी पड़ेगी अथवा जिस प्रकार सिद्ध भगवन्त नित्य, निरंजन, निराकार, शुद्ध बुद्ध हैं, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित, आरम्भपरिग्रह रहित, विषयविकार वस्त्राभूषण रहित हैं उसी प्रकार गृहस्थ को भी मानना पड़ेगा पर यह तो प्रत्यक्ष विरोध है क्योंकि गृहस्थों के सारी विकारी अवस्थायें दिख रही हैं अतः गृहस्थों के वर्तमान नय से वर्तमान में भेदरत्नत्रय होता है, अभेद नहीं।

प्र.441–शुद्धाशुद्धरूप परिणमन स्वनिमित्तक है या परनिमित्तिक तथा किस नय से है?

उत्तर–स्वनिमित्तक शुद्ध या अशुद्ध परिणमन द्रव्यार्थिक नय से या निश्चय नय से कहा है तथा परनिमित्तक परिणमन अशुद्ध या शुद्ध पर्यायार्थिक नय या व्यवहार नय से समझना चाहिए।

प्र.442–प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वनिमित्तक होता है या परनिमित्तक?

उत्तर–प्रत्येक द्रव्य का परिणमन उपादान उपादेय की अपेक्षा से स्वनिमित्तक होता है तथा निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा परनिमित्तक होता है। जीव में परिणमन स्वयं से तथा कर्म और कालद्रव्य के निमित्त होता है। पुद्गलों में स्वयंमें स्वयं के माध्यम से तथा जीव और काल के निमित्त से परिणमन होता है। धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाश द्रव्य में स्वयं के माध्यम से तथा कालद्रव्य के निमित्त से परिणमन होता है तथा कालद्रव्य में परिणमन स्वयं में स्वयं के निमित्त से वर्तनागुण के कारण होता है इसको परिणमन करने के लिए परनिमित्त की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

प्र.443–ज्ञानगुण में विभावरूप परिणमन किस गुणस्थान पर्यन्त होता है?

उत्तर–ज्ञानावरणीय कर्मोदय से अज्ञान रूप, विभावविकार रूप तथा क्षयोपशम से परिणमन कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान रूप से 12वें गुणस्थान पर्यन्त होता है तथा विकार पर्यायरूप परिणमन सिद्धों तक होता है वह परिणमन केवलियों के केवलज्ञान रूप से होता है। केवलज्ञान स्वयं क्षायिकभाव रूप है, पर्याय है, परिणमन करना प्रत्येक द्रव्य का स्वस्वभाव है, अर्थक्रिया है।

प्र.444–मतिज्ञानादि चार सम्यग्ज्ञानों को नियमसार में विभावज्ञान क्यों कहा?

उत्तर–मतिज्ञानादि चार ज्ञान क्षायोपशमिकभाव है, सादि सान्त हैं, छद्मस्थ जीवों के होते हैं और नहीं भी होते हैं। आत्मध्यान के साधक है, साध्य नहीं तथा शास्वत न होने से, न रहने से आ० श्री कुंदकुंद ने इन चार ज्ञानों को विभावज्ञान कहा है।

प्र.445–मतिज्ञानादि को दूसरे ग्रन्थों में स्वभावज्ञान, सम्यग्ज्ञान क्यों कहा?

उत्तर–दूसरे ग्रन्थों में मतिज्ञानादि को आचार्यों ने साधन साध्यभाव में अभेद विवक्षाकर स्वभावज्ञान सम्यग्ज्ञान कहा है अथवा भविष्य में केवलज्ञान रूपी स्वभाव को उत्पन्न कराने में सहायक होंगे क्योंकि इन्हीं के माध्यम से ही केवलज्ञान स्वभावज्ञान उत्पन्न होता है इसलिए इनको स्वभावज्ञान कहा है।

प्र.446–यहाँ पर ज्ञान से ही कर्मों का क्षय होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–यहाँ पर ज्ञान से ही कर्मों का क्षय इसलिए कहा है कि ज्ञप्तिक्रिया ज्ञान में ही होती है और जैसे जैसे ज्ञप्तिक्रिया

निर्मल स्वच्छ होती जाती है वैसे वैसे ध्यान में स्थिरता आती है तैसे तैसे ही कर्मों की निर्जरा और क्षय अवस्था होती जाती है। अतः ज्ञप्तिक्रिया को देखकर ज्ञान से कर्मों का क्षय कहा है।

प्र.447–स्वभावज्ञान और मति आदि 4 सम्यग्ज्ञानों में क्या अन्तर है?

उत्तर–स्वभाव ज्ञान पारिणामिक भाव है, सम्यग्ज्ञान रूपी केवलज्ञान क्षायिक भाव है, शाश्वत रहने वाला है। अनादि अनन्त और सादिअनंत काल तक रहने वाला है। इसके स्वामी सयोगी, अयोगी अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी हैं। गुण और पर्याय स्वरूप है तथा सम्यग्ज्ञान क्षायोपशमिकभाव है सादिसान्त है। सम्यग्दृष्टि सैनी पंचेन्द्रिय चतुर्गति के पर्याप्त और अपर्याप्तजीव संख्यातासंख्यात छद्मस्थ अल्पज्ञानी स्वामी हैं, मोक्ष के साधन हैं तथा पौर्वापर्य पर्याय की अपेक्षा साध्य साधन या साधन साध्य भाव से युक्त है यही अन्तर है तथा स्वभावज्ञान अप्रतिपाती है, पूर्ण है, निर्दोष है और सम्यग्ज्ञान प्रतिपाती अपूर्ण है तथा अतिचारों से सहित है। केवलज्ञान भी सम्यग्ज्ञान है सादि अनंत है।

प्र.448–चौथे गुणस्थान के शुद्धोपयोग में और श्रेणी के शुद्धोपयोग में क्या अन्तर है?

उत्तर–चौथेगुणस्थान में असंयम पूर्वक विषय कषायों से युक्त क्वचित् कदाचित् होने वाला शुद्धध्येय होने से और श्रेणी अवस्था में उत्पन्न होने वाला सकल संयमी अप्रमत्तमुनियों के शुद्ध का अवलंबन होने से यही अन्तर है। अभी यहाँ पर शुद्ध रूप में परिणमन नहीं हो रहा है किन्तु शुद्धपरिणमन के लिए तीव्रगति से परिणमन प्रारम्भ हो गया है, कषायें कुछ क्षय हो चुकी हैं, कुछ होने वाली हैं। आगे आगे स्थिरता में मजबूती आने वाली है तथा अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त होने वाला है अतः दोनों के शुद्धोपयोग में महान अन्तर है।

प्र.449–उपयोग और ध्यान ये दोनों एक गुण की पर्यायें हैं या अलग² गुण की?

उत्तर–उपयोग और ध्यान ये दोनों अलग अलग गुणों की पर्यायें हैं। एक ही समय में एक ही गुण की सजातीय और विजातीय दो पर्यायें नहीं होती हैं क्योंकि पर्यायों में प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव पाया जाता है इसीसे एक गुण की एक समय में एकसाथ सजातीय या विजातीय शुद्ध और अशुद्ध दो पर्यायें व्यक्त रूप में नहीं हो सकती हैं यदि दो पर्यायें हो सकती हैं तो फिर अनन्त पर्यायों के होने में क्या आपत्ति है?

प्र.450–उपयोग पद से गुण को ग्रहण करना चाहिए या पर्याय को?

उत्तर–उपयोग पद से जब पारिणामिक भाव इष्ट हो तब गुण को ग्रहण करना चाहिए तथा जब नैमित्तिक क्षायिक भाव या क्षायोपशमिक भाव इष्ट हो तब पर्याय को ग्रहण करना चाहिए।

प्र.451–रत्नत्रय की पूर्ति होना अभेदरत्नत्रय है या पूर्ति के सम्मुख होना अभेदरत्नत्रय है?

उत्तर–रत्नत्रय की पूर्ति होना अभेद रत्नत्रय है, पूर्ति के सम्मुख होना अभेद रत्नत्रय नहीं है।

प्र.452–उक्त कथन वर्तमान नय से है या भावी नय से?

उत्तर–उक्त कथन वर्तमान नय से है, भावी नय से नहीं। किन्तु भावीनय से पूर्ति के सम्मुखावस्था को भी अभेद रत्नत्रय कह सकते हैं।

प्र.453–रत्नत्रय की पूर्ति के सम्मुख अवस्था किस गुणस्थान में होती है?

उत्तर–14वें गुणस्थान वाले अयोगकेवली भगवन्तों के चरमसमय में अभेदरत्नत्रय की पूर्ति के सम्मुख अवस्था होती है।

प्र.454–रत्नत्रय की पूर्ति के सम्मुख अवस्था द्विचरमसमय के पहले प्राप्त होती है क्या?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही प्राप्त होती है। यह अवस्था चारों गतियों के मोक्षमार्गी जीवों को भावी नैगमनय से प्राप्त होती है ऐसा कहने में कोई दोष नहीं है किंतु वर्तमान नय से चौदहवें के अंत में ही प्राप्त होती है।

प्र.455–परोक्ष ज्ञान का विषय प्रत्यक्ष हो सकता है क्या?

उत्तर–हाँ, वह शुद्धात्मानुभव सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय है, जो यथार्थ में परोक्ष ही है।

प्र.456–प्रत्येक जगह आचार्यों ने आत्मानुभव के संबंध में ज्ञान को ग्रहण किया है और यहाँ पर दर्शन को सो यह विरुद्ध कथन क्यों नहीं है?

उत्तर–हाँ, आपका कहना सही है पर यह कोई दोष नहीं है क्योंकि आचार्यों ने चेतना में अभेद विवक्षा कर कथन किया है कि आत्मानुभव ज्ञान से होता है।

प्र.457–यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्षज्ञान तो आ. श्री अकलंकस्वामी ने कहा है, अरहन्तों ने नहीं तब प्रमाण कैसे?

उत्तर–क्या श्री अकलंक स्वामी जैसे समर्थ आचार्य अपनी कल्पना से तीर्थंकर अरहन्तों के विरुद्ध बोल सकते हैं? नहीं, तो फिर कैसे कहा कि यह अकलंक का कथन है, जिनेन्द्र का नहीं। अतः सांव्यवहारिक प्रत्यक्षज्ञान को भी जिनेन्द्र ने ही कहा है तभी तो वह जिनवाणी की कोटि में आता है अन्यथा उसे जिनवाणी कौन कहेगा? जब जिनेद्र त्रिलोक की तीन काल की समस्त चराचर द्रव्यों की और उनकी अवस्थाओं को जानते हैं और जैसा जानते हैं वैसा ही प्रतिपादन करते हैं, इस प्रकार सर्वज्ञ का धर्मोपदेश होने पर यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष नाम कैसे छूट सकता है जो उन्होंने न कहा हो अतः उनका ही कथन है। जो व्यवहार में, मतमतांतरों में इन्द्रियप्रत्यक्ष, मानसप्रत्यक्ष, अनुभवप्रत्यक्ष आदि नाम पाये जाते हैं वे सभी सापेक्ष होने से सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष में अर्न्तभाव को प्राप्त हो जाते हैं। इनमें जहाँ जिस विषय में विसंवाद, सदोषता पाई जाती है वह सब प्रत्यक्षाभास ही है। जहाँ जिस विषय में निर्दोषता निर्मलता पाई जाती है वह सब सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है।

प्र.458–यह जिनेन्द्र का ही उपदेश है अन्य का नहीं यह कैसे समझा जाये?

उत्तर–आपके पास रत्न हैं आपसे किसी ने पूंछा कि ये रत्न कहाँ से लाये तब आपने कहा कि मैं जौहरी की दुकान से लाया हूँ तब आप स्वयं विचारें कि क्या ये रत्न दुकान में पैदा हुए हैं? नहीं, तो कहना होगा कि ये रत्न समुद्र में पैदा हुए हैं तभी तो समुद्र का नाम रत्नाकर पड़ा है, अन्यथा नहीं। इसी तरह सारे के सारे उत्तम नाम, निर्दोष नियम जिनेन्द्र ने कहे हैं जो आत्महित के साधन हैं पर वर्तमान में जिनेन्द्र का नाम भूलकर लौकिक वक्ताओं का नाम लेते हैं कि उन्होंने यह अच्छी बात बताई, जैनधर्म में नहीं है पर यह अपनी नितान्त भूल है। जिनेन्द्र ने सम्यक् को सम्यक् और मिथ्या को मिथ्या कहा अर्थात् जिनेन्द्र ने जैसा का तैसा उपदेश दिया है।

प्र.459–यदि ऐसा है तो समस्त पापों का, व्यसनों का, दुराचारों का भी उपदेश जिनेन्द्र ने किया है इसलिये सेवन करने योग्य है ऐसा प्रसंग आयेगा?

उत्तर–यह कोई दोष नहीं है, आपने ठीक ही कहा है यदि जिनेन्द्र देव नहीं कहते कि यह पाप है, व्यसन हैं, पाप करने से नरक के दुःख, तिर्यंचगति के दुःख आदि प्राप्त होते हैं, लोक में यहीं पर निन्दा प्राप्त होगी, कदम कदम पर बदनामी होगी, अपमान प्राप्त होगा अतः ये जाति, कुल, धर्म के विरुद्ध कार्य मत करो आदि। इस प्रकार उपदेश नहीं करते तो तुम्हें कैसे मालूम पड़ता कि यह गलत कार्य है और यह सही कार्य है। क्या जब आपने जन्म लिया था तब आपको मालूम था कि ये मेरे पिता हैं या काका, मामा, नाना, भाई, भतीजा है? इसी तरह मेरी माँ है, बहिन, चाची, ताई, मामी, नानी, मौसी है? नहीं तो आपको आपके परिवार वालों ने जैसा कहा सिखाया वैसा ही आपने सीखा और व्यवहार किया तभी मानवता, सज्जनता आयी अन्यथा ये सद्गुण कैसे आते? इसी तरह यह कार्य अच्छा है और यह कार्य बुरा है यह भी परम्परा से बताया हुआ चला आ रहा है। जिन जातियों में, क्षेत्रों में मांस खाना, शराब पीना जहाँ कहीं किसीसे भी काम सेवन करना, जुआ खेलना, शिकार खेलना आदि कार्य गलत हैं ऐसा नहीं बताया वहाँ के निवासी प्रवासी निशंक भाव से निःसंकोच करते चले आ रहे हैं। अतः जिनेन्द्र ने सबका उपदेश दिया है किंतु तुम सभी कार्य करो, सब कुछ खाओ पिओ ऐसा नहीं कहा इसलिए उस उपदेश को हेय को हेय रूप में, उपादेय को उपादेय रूप में, उपेक्षा को उपेक्षा रूप में और ज्ञेय को ज्ञेय रूप में जानना चाहिए, विश्वास करना चाहिए। यदि सब कुछ जीवन में उतारने के लिये कहते तो त्याग धर्म क्यों कहा? अणुव्रत, महाव्रत क्यों बताये? अतः जो हितकारी है वह स्वीकार करो तथा जो हानिकारक है उसे छोड़ो इसी में हित है, कल्याण है क्योंकि **"हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थं ही प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।" अर्थ** :–जो हित की प्राप्ति और अहित का परिहार करने में समर्थ हो वही प्रमाण है। जो सम्यग्ज्ञान ही है। ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है। तब उनके उपदेश से पाप व्यसन का सेवन करना कैसे सिद्ध हो सकता है ? परीक्षामुख सू०–2 प्रथम परि०।

प्र.460–क्षायोपशमिक ज्ञानों का जो विषय है वह एकदेश प्रत्यक्ष है या सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष?

उत्तर–क्षायोपशमिक मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विषय सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष है तथा अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान का विषय एकदेश प्रत्यक्ष है। अतः क्षायोपशमिक ज्ञानों का विषय दोनों प्रकार का कहा है।

प्र.461–जो एकदेश प्रत्यक्ष हैं वे ज्ञान क्या सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान में अन्तर्भाव को प्राप्त होते हैं या नहीं?

उत्तर–नहीं होते हैं क्योंकि अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना होते हैं और **''इन्द्रियनिन्द्रयनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षम्।''** सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से होता है। तब भिन्न जाति, भिन्न स्वभाव वाले होने से कैसे अन्तर्भाव को प्राप्त हो सकते हैं? परीक्षामुख सू०–5 द्वि० परि०।

प्र.462–अग्नि शुद्ध पुद्गलद्रव्य है या अशुद्ध पुद्गलद्रव्य?

उत्तर–अग्नि पुद्गल की अशुद्ध द्रव्य व्यंजन पर्याय है और अग्निस्थावर नामकर्म अग्निएकेन्द्रिय जाति नामकर्म की अभेद विवक्षा में अशुद्ध जीव सहित अशुद्ध पुद्गल पिण्ड है।

प्र.463–अग्नि में उष्णता पारिणामिक भाव है या औदयिक भाव है?

उत्तर–अग्नि में उष्णता पारिणामिक भाव न होकर उष्ण नामकर्मोदय से होने के कारण औदयिक भाव है। भाव उष्णता क्रोध कषाय रूप तथा द्रव्यउष्णता उष्णस्पर्श रूप है, पीत पद्मलेश्या है।

प्र.464–अग्नि में उष्णता स्वभाव भाव है या विभाव भाव?

उत्तर–अग्नि में उष्णता स्वभाव भाव न होकर औदयिक भाव विभाव रूप है फिर भी तत्त्वार्थसूत्र में औदयिक भाव को अनादिकालीन परिणाम होने से स्वतत्त्व कहा है क्योंकि चैतन्य रूपी औदयिकभाव का उपादान कारण चैतन्य आत्मा ही है, आत्मा की ही तरंगे हैं, जिस प्रकार पानी की तरंगें पानी में ही उत्पाद व्यय करती हैं तरंगों का अंतरंग कारण पानी और निमित्त कारण हवा ही है।

प्र.465–अग्नि में उष्णता का क्या तादात्म्य संबंध है या दूसरा कोई?

उत्तर–अग्नि में उष्णता का औदयिक भाव रूप तादात्म्य संबंध या निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है, अन्य दूसरा नहीं क्योंकि कभी भी किसी भी काल में किसी भी उपाय से उष्णता को अग्नि से अलग नहीं किया जा सकता है अतः उपादान उपादेय की अपेक्षा क्षणिक तादात्म्य संबंध है और उष्ण स्पर्श नाम कर्मोदय से होने वाली उष्णता का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है तथा पर संयोग की अपेक्षा संयोग संबंध है अतः अग्नि में उष्णता स्वतत्त्व है ऐसा कहा है।

प्र.466–चेतन युक्त अग्नि में उष्णता का तादात्म्य संबंध है या अचेतन अग्नि पिण्ड में?

उत्तर–चेतन युक्त अग्नि में भावउष्णता का आत्मा में तादात्म्य सम्बन्ध और द्रव्यउष्णता का पुद्गलपिण्ड में तादात्म्य संबंध है क्योंकि भाव उष्णता चैतन्य स्वरूप और द्रव्य उष्णता अचेतन स्वरूप है।

प्र.467–अग्निपिण्ड द्रव्य रूप है या पर्यायरूप?

उत्तर–अग्निपिण्ड क्रोध युक्त जीव और अशुद्ध पुद्गलपिण्ड है जो अशुद्ध द्रव्य और अशुद्धपर्यायरूप है क्योंकि ईंधन में कारण पाकर अग्नि उत्पन्न होती है। इस कारण अग्नि पर्यायरूप है तथा पर्याय के बिना द्रव्य होता नहीं इसलिए द्रव्यरूप है। अतः नयापेक्षया द्रव्य और पर्याय दोनों रूप है।

प्र.468–एकप्रदेशी पुद्गल पिण्ड में उष्णता का तादात्म्य संबंध है या कोई दूसरा?

उत्तर–नहीं, उष्णता वास्तव में गुण नहीं है किन्तु स्पर्शगुण की उष्ण पर्याय है। उस परमाणु को परिणमन के समय जैसा साधन मिलता है वैसा परिणमन कर जाता है अतः परमाणु में उष्णता का क्षणिक तादात्म्य संबंध है। स्पर्शगुण त्रिकाली और उसकी पर्यायें वर्तमान कालीन हैं।

प्र.469–रागादि विकारी भावों का अशुद्धात्मा के साथ तादात्म्य संबंध है या संयोग संबंध?

उत्तर–रागादि विकारी भावों का अशुद्धात्मा के साथ अभव्य जीव की अपेक्षा त्रिकाली तादात्म्य संबंध है और भव्य जीव की अपेक्षा भूतकाल में रागादि भावों का संबंध था, वर्तमान में है तथा भविष्य में संबंध रह भी सकता है, सर्वथा नियम नहीं है। पर्याय की अपेक्षा क्षणिक तादात्म्य संबंध है और पर्याय पर्यायी में अभेदनय की अपेक्षा से त्रिकाली संबंध है क्योंकि आत्मा स्वयं तद्रूप ही परिणमन करता है और कर्मों के निमित्त से, संयोग से उत्पन्न होते हैं इसलिए संयोग सम्बन्ध और निमित्त नैमित्तिक संबंध भी है।

प्र.470–अशुद्धात्मा का भाव रागादि के साथ या द्रव्यरागादि के साथ अंतरंग व्याप्य व्यापक संबंध है या बाह्य व्याप्यव्यापक सम्बन्ध है?

उत्तर–अशुद्धात्मा का भाव रागादि के साथ अंतरंग व्याप्य व्यापक संबंध है तथा द्रव्य रागादि के साथ बाह्य व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है और पुद्गल का भाव रागादि के साथ बाह्य व्याप्य व्यापक संबंध है तथा द्रव्यरागादि के साथ अंतरंग व्याप्य व्यापक संबंध है।

प्र.471–व्याप्य किसे कहते हैं और व्यापक किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसमें फैलकर रहे उसे व्याप्य कहते हैं। जैसे शरीर में आत्मा फैलकर रह रहा है। फैलने वाले को व्यापक कहते हैं। जैसे आत्मा शरीर के प्रत्येक अंश में फैलकर रह रहा है।

प्र.472–अंतरंग व्याप्य व्यापक सम्बन्ध और बहिरंग व्याप्य व्यापक सम्बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर–अपनी ही निज पर्यायों में फैलकर द्रव्य के निवास करने को अन्तरंग व्याप्य व्यापक संबंध कहते हैं। यहाँ आत्मद्रव्य व्यापक है और पर्याय व्याप्य है, प्रकाश व्यापक है कमरा व्याप्य है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में फैलकर निवास करे उसे बहिरंग व्याप्य व्यापक संबंध कहते हैं। जैसे आत्मा शरीर में फैलकर निवास करता है तो यहाँ आत्मा व्यापक है और शरीर व्याप्य है।

प्र.473–उक्त व्याप्य व्यापक सम्बन्ध को बताने वाला उदाहरण बताओ?

उत्तर–**अंतरंग व्याप्य व्यापक सम्बन्ध का उदाहरण**–जैसे आत्मा अपने ज्ञान दर्शन आदि पर्यायों में अथवा मनुष्य आदि पर्यायों में फैलकर रहता है। पुद्गल अपने रूप रस आदि पर्यायों में फैलकर रहता है। **बाह्य व्याप्य व्यापक सम्बन्ध का उदाहरण**–जैसे आत्मा शरीर में फैलकर निवास करता है। दीपक अपने प्रकाश के द्वारा आकाश क्षेत्र में फैलकर रहता है।

प्र.474–जिस प्रकार द्रव्य पर्यायों में फैलकर रहता है, उसी तरह पर्यायें द्रव्य में फैलकर रहती हैं ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर–व्याप्य अनेक हैं, अनन्त हैं और व्यापक एक है, अखण्ड है, अभेद है। अब यदि पर्याय द्रव्य में फैलकर रहने लगे तो पर्याय एक हो जायेगी तथा द्रव्य अनन्त हो जायेंगे द्रव्य के क्षणभंगुर मानने का प्रसंग आयेगा तथा भावी काल में अस्तित्व नहीं रहेगा। इस कारण अर्थपर्याय खंड खंड हैं, एक समय वाली है, भूत भावीकाल में अस्तित्त्व विहीन है। इसलिए द्रव्य ही फैलकर रहता है, पर्याय नहीं।

प्र.475–व्याप्य व्यापक सम्बन्ध एक द्रव्य में होता है या अनेक द्रव्यों में?

उत्तर–अंतरंग व्याप्य व्यापक सम्बन्ध एक द्रव्य में होता है और बहिरंग व्याप्य व्यापक संबंध अनेक द्रव्यों में होता है। यह व्यवस्था अनादिकाल से है तथा अनन्तकाल तक रहेगी। नय सापेक्ष होने से दोनों ही सम्बन्ध वास्तविक हैं, अवास्तविक नहीं तभी तो संसार और मोक्ष की सिद्धि हो सकती है।

प्र.476–रागादि विकारी औदयिक भावों का उपादानकर्ता आत्मा शुद्ध है या अशुद्ध?

उत्तर–रागादि विकारी भावों का उपादान कर्ता, कर्मों से बँधा हुआ चतुर्गति का अशुद्ध सरागी, वीतरागी सांपरायिक आश्रव, इर्यापथास्रव सहित 13वें गुणस्थान तक संसारी जीव है।

प्र.477–उपादान को शुद्ध मान लें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–उपादान के शुद्ध होने पर कार्य अशुद्ध नहीं हो सकता है क्योंकि सोने से सोने के अलंकार तथा लोहे से लोहे के औजार पात्र आदि बनते हैं या गेहूँ के बीज से गेहूँ के अंकुर उत्पन्न होते हैं, चने के नहीं। अतः शुद्ध उपादान से शुद्ध कार्य और अशुद्ध उपादान से अशुद्ध कार्य होता है, ऐसा नियम है।

प्र.478–उपादान पद से द्रव्य गुण और पर्याय में से किसको ग्रहण करना चाहिए?

उत्तर–प्रसंगानुसार, नयानुसार तीनों का ग्रहण होता है, एक का नहीं, दो का नहीं। जैसे अशुद्ध व्यंजन पर्याय के लिए अशुद्ध द्रव्य का, अशुद्ध अर्थपर्याय के लिए अशुद्ध गुण का तथा अशुद्ध पर्याय के लिए भूत की अशुद्ध पर्याय का अभाव कर अशुद्ध उत्तर पर्याय के उत्पाद के लिए ग्रहण करना चाहिए। अधिकतर कारण के अनुरूप ही कार्य के होने का नियम है।

प्र.479–पर्याय के लिए उपादान स्वरूप द्रव्य गुण कभी अशुद्ध होते हैं या नहीं?

उत्तर–उपादान स्वरूप द्रव्यगुण अशुद्ध होते ही हैं तभी तो अशुद्ध कार्य होता है क्योंकि द्वीचरम समय पर्यन्त कारण के अनुरूप ही कार्य होता है जैसे गेहूँ के बीज से गेहूँ का अंकुर होना आदि। अतः जब पर्याय कार्य अशुद्ध है तो कारणरूप द्रव्य गुण अशुद्ध होना ही चाहिए क्योंकि कार्य कारण का नियामक है निश्चय कराने वाला है किन्तु कारण के सद्भाव में कार्य हो अथवा न हो यह तो सम्भव है किन्तु कार्य के सद्भाव में कारण नियम से है। यदि सर्वथा सर्वत्र त्रिकाली द्रव्यगुण शुद्ध हों तो आश्रवबन्ध की, पुण्य पाप की, संसार की, संवर, निर्जरा और मोक्ष की भी सिद्धि नहीं हो सकती है।

प्र.480–रागादि विकारी भाव आत्मा के समस्त प्रदेशों में होते हैं या एक प्रदेश में अथवा किस अंश में हैं और किस अंश में नहीं?

उत्तर–ये सभी रागादि विकारी भाव आत्मा के समस्त प्रदेशों में,अंशों में व्याप्त हैं, मौजूद हैं, किसी एक अंश में नहीं, न एक अंश को छोड़कर शेष अंशों में क्योंकि समस्त प्रदेश परस्पर में अलग अलग होकर भी आधार आधेय की अपेक्षा से अखण्ड हैं, पारे की तरह फैलकर अलग अलग नहीं हो जाते।

प्र.481–रागादि विकारी भाव किन किन गुणों की पर्यायें हैं?

उत्तर–क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति आदि चारित्रगुण की, अज्ञान, मिथ्याज्ञान ज्ञानगुण की, इन्द्रिय सुख दुःख सुखगुण की, आनन्दगुण की, अदर्शन अचक्षुदर्शन आदि दर्शनगुण की, अविश्वास श्रद्धान गुण या सम्यक्त्वगुण की, शरीर का आकार अवगाहन गुण का, उच्च नीच अवस्था अगुरुलघु गुण आदि की विकारी पर्यायें हैं। इसी तरह अनंत गुण और पर्यायों के सम्बन्ध में जानना चाहिए।

प्र.482–एक गुण की एक समय में अनेक पर्यायें या अनेक गुणों की मिलकर एक पर्याय हो सकती है क्या?

उत्तर–नहीं, एक समय में, एक साथ, एक गुण की, एक ही पर्याय होती है, अनेक नहीं, और अनेक गुणों की एक पर्याय नहीं हो सकती है क्योंकि पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं व्यक्त रूप में वर्तमान पर्याय का भूतभावी काल में अस्तित्त्व ही नहीं है। प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव का सद्भाव होने से ही वस्तु व्यवस्था अनादिकाल से चली आ रही है और चलती रहेगी। वस्तुव्यवस्था में संकर व्यतिकर दोष नहीं है।

प्र.483–उक्त विकारी अवस्थायें किस गुण या द्रव्य की अर्थपर्याय या व्यंजनपर्याय हैं?

उत्तर–उक्त विकारी अवस्थायें जैसे क्रोधादि अर्थपर्यायें क्षमादिगुणों की गुणपर्यायें हैं तथा शरीरादि का आकार व्यंजन पर्याय, द्रव्यपर्याय है क्योंकि पर्यायें क्षणवर्ती और चिरकाल तक ठहरने वाली हैं।

प्र.484–कर्ता, कर्म, करण आदि षट्कारकों का संबंध किस गुणस्थान तक और किन जीवों में और किन किन द्रव्यों में होता है?

उत्तर–कर्ता, कर्म, करण आदि षट्कारकों का सम्बन्ध समस्त गुणस्थान वाले जीवों में, सिद्धों में तथा समस्त शुद्धाशुद्ध द्रव्यों में होता है।

प्र.485–कर्ता कर्म आदि षट्कारक शुद्ध होते हैं या अशुद्ध?

उत्तर–निश्चयनय की अपेक्षा इन षट्कारकों का अस्तित्त्व ही नहीं है क्योंकि निश्चयनय अखण्ड, अभेद, एकादि, अपरिणामी धर्म को विषय बनाता है, खण्ड, भेद अनेक आदि धर्मों को नहीं। इस कारण इन कारकों का संबंध निश्चयनय से नहीं है किन्तु जो दूसरे आध्यात्मग्रंथों में षट्कारकों का संबंध निश्चय नय से कहा है सो वहाँ निश्चयनय का अर्थ अशुद्ध निश्चयनय समझना तथा वह अशुद्ध निश्चय नय व्यवहारनय ही है। ये षट्कारक शुद्ध द्रव्यों में शुद्ध और अशुद्ध द्रव्यों में अशुद्ध होते हैं।

प्र.486–कारक किसे कहते हैं और कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर–कर्ता, कर्मादि अवस्थाओं को अथवा स्वपर निमित्त से कुछ न कुछ कार्य करने वाले को कारक कहते हैं। ये दो प्रकार के या छह प्रकार के होते हैं। जो एक ही द्रव्य में अभिन्न षट्कारक होते हैं तथा अनेक द्रव्यों में एक साथ भिन्न षट्कारक होते हैं। **नामः**–कर्ताकारक, कर्मकारक, करणकारक, संप्रदानकारक, अपादानकारक, अधिकरणकारक। वस्तु व्यवस्था में संबंध के बिना षट्कारक माने हैं और व्याकरणशास्त्रों में या व्यवहार भाषाओं में संबंधकारक सहित सप्तकारक माने गये हैं।

प्र.487–भिन्न षट्कारक शुद्ध होते हैं या अशुद्ध?

उत्तर–भिन्न भिन्न द्रव्यों में मिश्रणकर होने वाले भिन्न षट्कारक अशुद्ध ही होते हैं।

प्र.488–अभिन्न षट्कारक शुद्ध होते हैं या अशुद्ध?

उत्तर–एक ही द्रव्य में भेदकर द्रव्यगुण और पर्याय की अपेक्षा करके होने वाले षट्कारक शुद्ध भी होते हैं और अशुद्ध भी होते हैं। अशुद्ध द्रव्यों में अशुद्ध तथा शुद्ध द्रव्यों में शुद्ध होते हैं।

प्र.489–आश्रव बन्ध ये कर्ता कर्मादि के फल हैं या इनके त्याग के?

उत्तर–साम्परायिक या ईर्यापथ आश्रव बंध ये दोनों अशुद्धकर्ता कर्मादि षट्कारकों के फल हैं, शुद्ध षट्कारकों के नहीं। क्योंकि आश्रव बन्ध संसारी जीवों के होते हैं, सिद्धों के नहीं।

प्र.490–संवर, निर्जरा और मोक्षतत्त्व ये कारकों में प्रवृत्ति के फल हैं या त्याग के?

उत्तर–संवर, निर्जरा और मोक्षतत्त्व ये तीन अशुद्ध षट्कारकों के त्याग के फल हैं, प्रवृत्ति के नहीं क्योंकि अपने अपने गुणस्थानानुसार परिणामों की विशुद्धि से जैसे जैसे अशुद्ध षट्कारकों का जितने अंशों में, मात्रा में विषय कषायों का त्याग होता जाता है वैसे वैसे संवर निर्जरा तत्त्व की वृद्धि होती जाती है और मोक्षतत्त्व के निकट पहुँचता जाता है तथा पूर्ण संवर के बाद अन्तर्मुहूर्त में निर्जरा तत्त्व की पूर्तिकर एक समय में मध्यलोक से ऊर्ध्वलोक के तनुवातवलय के अन्त में मोक्षतत्त्व रूप से परिणत होकर जा विराजते हैं यह निर्वाण क्षेत्र मेरुपर्वत के तलभाग से सात राजू ऊपर है।

प्र.491–शुद्ध द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर–जो द्रव्य निरपेक्ष हो, अकेला हो, पर की मिलावट न हो, पर का संसर्ग न हो, अभेद हो, अखण्ड हो उसे शुद्धद्रव्य कहते हैं। जैसे सिद्ध परमेष्ठी, एकप्रदेशी परमाणु, धर्मादि चार द्रव्य।

प्र.492–अशुद्ध द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर–जो सापेक्ष हो, परनिमित्त से उत्पन्न भावों से मिश्रावस्था को प्राप्त हो, भेदरूप द्रव्य गुण पर्याय वाला हो, खण्ड खण्ड हो, मिलावट हो उसे अशुद्ध द्रव्य कहते हैं। जैसे संसारी जीव, स्कन्धादि पुद्गल द्रव्य।

प्र.493–जीव और पुद्गल द्रव्य में परस्पर के संबंध से अशुद्धावस्था होती है क्या?

उत्तर–जीव और पुद्गल में निमित्त नैमित्तिक भाव के संबंध से, द्रव्य गुण पर्याय में भेद से, प्रमत्ताप्रमत्त के भेद से भी अशुद्धावस्था प्राप्त होती है।

प्र.494–जीव अजीवादि सात तत्त्व किस नय के विषय हैं?

उत्तर–जीव अजीव आदि 7 तत्त्व व्यवहार नय के विषय हैं, निश्चयनय के नहीं और जहाँ पर आचार्यों ने इन तत्त्वों को निश्चयनय से कहा है तो वह कथन अशुद्ध निश्चयनय से जानना।

प्र.495–जीव अजीवादि सात तत्त्वों का विभाग कितने रूपों में होता है?

उत्तर–जीव अजीव आदि 7 तत्त्वों का विभाग जीव अजीव में अथवा चेतन अचेतनरूप से विभाग होता है। जब आत्मा उपादान उपादेय रूप से परिणत होता है तब ये सात तत्त्व चेतन स्वरूप हैं और पुद्गल उपादान उपादेय रूप से परिणत होता है सो ये अचेतन स्वरूप हैं और दोनों मिलकर जब एक साथ परिणमन करते हैं सो ये मिश्ररूप हैं। उभय स्वरूप हैं।

प्र.496–जीवादि सात तत्त्व व्यवहारनय से ही है ऐसा क्यों?

उत्तर–भेद अवस्था या अशुद्धावस्था व्यवहारनय से ही है निश्चयनय से नहीं। यदि शुद्ध निश्चयनय से मान भी लिया जाय तो ये शुद्ध पारिणामिक भाव बन जाने से इनका अभाव न हो सकेगा तब मोक्ष कैसे प्राप्त होगा? अतः ये तत्त्व व्यवहारनय से ही हैं। एक मोक्षतत्त्व साध्य है, जीव साधक है, आश्रवबंध निषेध रूप से और संवर निर्जरा विधि रूप से साधन हैं तथा मोक्ष फल है जो प्राप्त करने के योग्य है अथवा इनका विभाग साध्य साधक साधन और साधना फल रूप से होता है।

प्र.497–जीवादिक 7 तत्त्वों का विभाग अशुद्धनय से है क्या?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही क्योंकि अशुद्धनय से ही इन तत्त्वों की, संसार अवस्था की, शुद्धाशुद्ध अवस्था की, मोक्ष की सिद्धि होती है अन्य प्रकार से नहीं।

प्र.498–जीवादिक 7 तत्त्वों का कथन वर्तमान नय से है या भूतभावी नय से?

उत्तर–जीवादिक 7 तत्त्वों का कथन वर्तमाननय से है भूतभावीनय से नहीं क्योंकि वर्तमान में आश्रव बन्ध कर्ता कर्म आदि की प्रवृत्ति के फल हैं तथा संवर निर्जरा मोक्षतत्त्व निर्वृत्ति के फल हैं।

प्र.499–शुद्धाशुद्धनय किन किन कालों के विषय को बताते हैं?

उत्तर–ये दोनों नय तीनों कालों के विषय को बताते हैं। जहाँ जैसा विषय हो, प्रसंग हो वैसा उसी नय से अवधारण करना चाहिए।

प्र.500–रागादि विकारी भावों का अस्तित्त्व जीव में है या अजीव पुद्गल में?

उत्तर–उपादान रूप से चैतन्य स्वरूप रागादि विकारी भावों का अस्तित्त्व जीव में है। अचेतन रागादि का उपादान रूप से पुद्गलद्रव्य में अस्तित्त्व है।

प्र.501–रागादिभाव अचेतन हैं, जड़ हैं ऐसा आचार्यों ने क्यों कहा?

उत्तर–निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध की अपेक्षा जिससे जो उत्पन्न होता है वह उसी का है ऐसा भी न्याय है। अतः रागादिभावों का निमित्त कर्म पुद्गल होने से पुद्गल में अन्तर्भाव हो जाता है।

प्र.502–उदाहरण क्या है?

उत्तर–पुत्र पिता के साथ में होने से पिता का तथा माँ के साथ में होने से माँ का बोला जाता है किन्तु पुत्र अकेला न माँ का है न पिता का, साहचर्य से कहा जाता है। इसी तरह रागादि भावों को समझना। रागादि भावों को जड़ अचेतन कहने का कारण यह है कि चारित्रगुण अचेतन है जब कारण अचेतन है तो कार्य भी अचेतन होगा अथवा निकट भव्य सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव को संबोधन किया है जो अल्प क्षयोपशम के कारण अपने में रागादि विकारी भावों का अस्तित्त्व मानकर मोक्षमार्ग से, संयम मार्ग से हताश हो रहा है कि मैं अब आत्मसाधना नहीं कर सकता हूँ मैंने अपराध कर लिया है इस प्रकार नकारात्मक सोच रहा है तो उसे सम्बोधन किया है कि ये तो जड़ हैं, अचेतन हैं, इनसे क्यों भयभीत होता है, क्यों डरता है, ये तेरा क्या बिगाड़ कर सकते हैं ? तू सचेत हो! इस प्रकार सम्बोधन किया है और निज पौरुष से विकारों को दमन कर जागृत हो आदि।

प्र.503–रागादिभाव चेतन हैं, ऐसा आचार्यों ने क्यों कहा?

उत्तर–जो अभिमानी मनुष्य रागादि विकारी भावों का अस्तित्त्व जड़ में, पुद्गल में मानकर दुरभिमान से चकचूर होकर स्वछंद बन रहे हैं कि ये विकारी भाव हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकते हैं तो उनके इस अहंकार को नष्ट करने के लिये ये विकारी भाव आत्मा में ही हैं चेतन हैं ये आत्मा को चौरासी लाख योनियों में भली प्रकार से भटकाते हैं, भटका रहे हैं, भ्रमण कराते हैं, करा रहे हैं अतः इन विकारी भावों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करो ऐसा कहा है।

प्र.504–अत्यन्ताभाव किसे कहते हैं और इसे स्वीकार करने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर–दो द्रव्यों का या एक ही जीव द्रव्य का एक जीव द्रव्य के साथ या एक ही द्रव्य में गुणों का परस्पर में जो अभाव होता है एकरूप नहीं होते अथवा उपादान उपादेय सम्बन्ध न होने को अत्यन्ताभाव कहते हैं। इस प्रकार चिंतन करने से मन विकार को, मोह को प्राप्त नहीं होता।

प्र.505–रागादि भावों का अस्तित्त्व आत्मा के एकदेश में है या सर्वदेश में?

उत्तर–रागादि भावों का अस्तित्त्व आत्मा के समस्त प्रदेशों में, समस्त अंशों में है।

प्र.506–रागादि भावों का अस्तित्त्व आत्मा में किस नय से है और किस नय से नहीं?

उत्तर–रागादि भावों का अस्तित्त्व आत्मा में अशुद्ध निश्चयनय से, व्यवहारनय से है, शुद्धनिश्चयनय से नहीं।

प्र.507–रागादि भावों का अस्तित्त्व आत्मा में अशुद्ध निश्चयनय से और व्यवहारनय से क्यों कहा, एक ही नय से कहते, दोनों नयों से नहीं?

उत्तर–नहीं, **'अर्पितानर्पित सिद्धेः'** सूत्रानुसार उपादान उपादेय की दृष्टि से या अंतरंग व्याप्यव्यापक संबंध की अपेक्षा अशुद्ध निश्चय नय से कहा है और निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा या बहिरंग व्याप्य व्यापक संबंध की अपेक्षा व्यवहार नय से कहा है अतः कोई दोष नहीं।

प्र.508–द्रव्य गुण पर्याय, उत्पाद व्यय ध्रौव्य और गुणपर्याय ये भेद किस नय से है?

उत्तर–अभेद में भेद करना व्यवहारनय से या अशुद्ध निश्चयनय से है और आध्यात्मक शैली में अभेद में भेद करना,

अखण्ड में खण्ड करना ही अशुद्धपना है क्योंकि आत्मा का शुद्ध नय से स्वभाव अखण्ड, अभेद, शुद्ध, एक कहा जाता है और अशुद्ध नय से इनके प्रतिपक्षी धर्मों को विभाव कहा जाता है।

प्र.509–तो क्या सभी अनन्तधर्म एक ही नय के विषय हैं या भिन्न भिन्न नयों के?

उत्तर–नहीं, अनेक नयों के विषय हैं। वस्तु के अनन्त धर्मों में से किसी एक धर्म को निश्चयनय कहता है तो उसके प्रतिपक्षीधर्म को व्यवहारनय कहता है क्योंकि अनन्तधर्मों को सामान्यतया दो भागों में बाँट लेना चाहिए। एक भाग को निश्चयनय या द्रव्यार्थिकनय का तो दूसरा भाग व्यवहारनय या पर्यायार्थिक नय का जैसे निश्चयनय से वस्तु नित्य है, शाश्वत है, शुद्ध है, बुद्ध है, एक है, निरंजन है, निराकार है, स्वतंत्र है तो वही वस्तु व्यवहार नय से अनित्य है, अशाश्वत है, अशुद्ध है, अबुद्ध है, अनेक हैं, मलिन है, साकार है, परतंत्र है आदि अथवा अपरिणामी और परिणामी नाम देकर सारणी बना लेना चाहिए। अपरिणामी वाले भाग को निश्चयनय का तथा परिणामी वाले भाग को व्यवहारनय का विषय। अतः दोनों नयों का संग्रह रूप विषय वस्तुगत स्वभाव होने से शुद्ध है अथवा जितने धर्म उतने ही नय और संपूर्ण नयों का संग्रह रूप से विषय ही वस्तु है जो प्रमाण की अपेक्षा शुद्धाशुद्ध नहीं है, नयों की अपेक्षा शुद्ध भी है और अशुद्ध भी है। आध्यात्म शैली में भेद को अशुद्ध या प्रमादियों के अनुभव की अपेक्षा अशुद्ध कहा जाता है फिर भी सर्वत्र, सर्वदा नहीं, यदि सर्वथा अशुद्ध माना जाय तो सिद्धपरमेष्ठी भी अनन्त धर्मात्मक होने से अशुद्ध माने जायेंगे।

प्र.510–द्रव्य गुण कभी विकारी होते हैं या नहीं?

उत्तर–अवश्य ही होते हैं क्योंकि द्रव्य और गुणों के परिणमन को व्यंजनपर्याय तथा अर्थपर्याय कहते हैं। पर्यायों के उपादान कारण द्रव्य और गुण हैं। द्रव्य गुण कारण हैं तो पर्याय कार्य यह सर्वव्यापी नियम है। **'कार्य लिंगं ही कारणम्'**कार्य कारण का नियामक है जैसा कार्य होगा वैसा ही कारण होगा। कदाचित् कारण से भिन्न भी कार्य हो सकता है। जैसे मिथ्यात्व को क्षय करके सम्यक्त्व उत्पन्न होना, छद्मस्थावस्था को क्षयकर सर्वज्ञ होना, संसारावस्था को क्षयकर मोक्ष होना आदि अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं पर यह नियम कार्य उत्पन्न होने के तत्क्षण समझना क्योंकि द्वीचरम समय पर्यंत कारण के अनुरूप ही कार्य होता है और अन्तिम समय में कारण से भिन्न भी होता है और तदनुरूप भी हो सकता है। यदि सर्वथा, सर्वत्र कारण के अनुरूप ही कार्य होता है तो मिथ्यात्व के बाद मिथ्यात्व, अल्पज्ञ के बाद अल्पज्ञ, संसार के बाद संसार ही होना चाहिए पर ऐसा नहीं है यही वस्तु की विशेषता है। जो स्याद्वाद से समझने योग्य है।

प्र.511–द्रव्य और गुणों को त्रिकाली शुद्ध मान लो तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, ऐसा नहीं है। यदि द्रव्य और गुण त्रिकाली शुद्ध हों तो ध्यानाध्ययन व्रत, तप, संयम, प्रायश्चित्त, प्रतिक्रमण आदि की क्या आवश्यकता है? मुनिव्रत धारण क्यों करना? मूलगुण उत्तरगुणों का पालन क्यों करना? आदि त्रिकाली शुद्ध नहीं। कदाचित् अभेद विवक्षा में अखण्ड, अभेद मानकर शुद्ध मान सकते हैं, भेद विवक्षा में नहीं। अन्यमतियों की तरह सर्वथा शुद्ध या अशुद्ध मानने पर संसार या मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती अतः मोक्ष की सिद्धि के लिए संसार की सिद्धि आवश्यक है और संसार की सिद्धि द्रव्य गुण पर्याय को अशुद्ध माने बिना बन नहीं सकती यही सबसे बड़ी आपत्ति है।

प्र.512–जीवसमास, गुणस्थान और मार्गणाओं का अस्तित्त्व आत्मा से भिन्न है या अभिन्न?

उत्तर–जीवसमास, गुणस्थान, मार्गणाओं का अस्तित्त्व आत्मा से भिन्न भी है और अभिन्न भी क्योंकि कुछ मार्गणास्थानों को छोड़कर शेष तीनों का क्षय करके ही मोक्ष प्राप्त होता है इसलिए भिन्न हैं तथा संसारावस्था में अलग नहीं हो सकते इसलिए अभिन्न हैं अथवा उपादान उपादेय की अपेक्षा से अभिन्न हैं और निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा भिन्न हैं।

प्र.513–जीव समास, गुणस्थान और मार्गणाओं से युक्त आत्मा शुद्ध है या अशुद्ध?

उत्तर–जीवसमास और गुणस्थानों से युक्त आत्मा अशुद्ध ही है किन्तु मार्गणाओं से युक्त आत्मा शुद्ध भी है और अशुद्ध भी जैसे सिद्ध भगवन्तों के सिद्धगति, केवलज्ञान, यथाख्यातसंयम, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यग्दर्शन, अनाहारक मार्गणायें पाई जाती हैं अतः शुद्ध हैं इनके अलावा शेष अशुद्ध हैं।

प्र.514–उक्त अवस्थायें किन जीवों के होती हैं और किन जीवों के नहीं?

उत्तर–उक्त अवस्थायें समस्त संसारी जीवों के अशुद्ध नय से होती हैं क्योंकि ये अवस्थायें कर्मोदय से, क्षयोपशम से, क्षय तथा उपशम से होती हैं और पर्याय स्वरूप हैं इन सभी स्थानों के अवान्तर भेद भी सभी संसारी जीवों के

कभी होते हैं और कभी नहीं ये सभी मूलस्थान और अवान्तर भेद एकजीव के एकसाथ, एककाल में व्यक्तरूप में नहीं होते हैं, शक्ति रूप में रहते हैं। इन स्थानों को प्राप्त किया है तो लब्धि रूप में और परिणतावस्था में उपयोग रूप में होते हैं।

प्र.515–कुछ मार्गणायें सिद्धों में क्यों पायीं जातीं हैं?

उत्तर–कुछ मार्गणायें नैमित्तिक होने पर भी क्षायिक स्वरूप होने से सिद्धों में पायीं जातीं हैं।

प्र.516–शेष स्थान क्यों नहीं पाये जाते हैं?

उत्तर–क्योंकि गुणस्थान जीवसमास मार्गणास्थान औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, औपशमिकभाव तथा अशुद्ध पारिणामिक भव्यभाव, अनादिसान्त, सादिसान्त ये अशुद्ध होने से सिद्धों में नहीं पाये जाते।

प्र.517–भव्यमार्गणा का सिद्धों में क्यों अभाव होता है?

उत्तर–भव्यमार्गणा यथार्थ में पारिणामिकभाव नहीं हैं किन्तु अपेक्षाकृत ही है। घातिया कर्मों का उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम न होने से पारिणामिक भाव और अघातिया कर्मोदय की अपेक्षा औदयिक भाव है तभी तो उसका क्षय करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। भव्य का अर्थ है होने के योग्य, मोक्ष प्राप्त करने के योग्य शक्ति का नाम भव्य है। साध्य के सिद्ध होने पर साधन छूट जाता है जैसे परिपक्व फल के प्राप्त होने पर फूल गिर जाता है वैसे ही मोक्ष के प्राप्त होने पर भव्य भाव छूट जाता है।

प्र.518–अनादिकालीन पारिणामिक भाव का अभाव क्यों होता है?

उत्तर–अनादिकालीन विकारों का भी अन्त हो जाता है जैसे बीज अंकुर या पिता पुत्र का संबंध अनादिकाल से चला आ रहा है फिर भी बीज के जला देने पर बीज वृक्ष की परम्परा या पुत्र के ब्रह्मचर्यव्रत लेने पर अथवा नपुंसक होने पर उनकी सन्तान परम्परा नहीं चलती जैसे सम्मूर्च्छन और उपपाद जन्म वालों की, वासुपूज्य, मल्लिनाथ, महावीरादि की गृहस्थ संतान परम्परा अब नहीं रही। इसी तरह अनादि कालीन भव्यभाव का भी अभाव करके मोक्ष हो जाता है।

प्र.519–द्रव्य गुण और पर्यायों की शुद्धि पूर्ण रूप से किस अवस्था में होती है?

उत्तर–द्रव्य गुण और पर्यायों की चौदहवें गुणस्थान के चरमसमय में अघातिया कर्मों को क्षय करके पूर्ण शुद्धि होते ही सिद्धावस्था प्राप्त होती है।

प्र.520–इसके पहले पूर्ण शुद्धि क्यों नहीं होती है और कितनी शुद्धि होती है?

उत्तर–इसके पहले गुणस्थानों में कर्मों का उदय, आश्रव, बंध तथा विकार मौजूद होने से पूर्ण शुद्धि नहीं हो पाती है तथा अपेक्षाकृत घातियाकर्मों की मूल उत्तर प्रकृतियों का क्षय होने से तत्प्रमाण या तदनुकूल शुद्धि होती है, शेष की नहीं। क्योंकि जितना वस्त्र से मैल दूर होगा उतना ही वस्त्र स्वच्छ होगा। सिद्ध पूर्ण शुद्ध होते हैं, अरिहन्त अर्धशुद्ध और अर्ध अशुद्ध होते हैं तथा क्षायिक सम्यग्दर्शन की अपेक्षा चौथे गुणस्थान से किंचित् शुद्धि प्रारम्भ हो जाती है अतः मोक्षमार्गी शुद्धाशुद्ध होते हैं।

प्र.521–संसारपर्याय से छूटने के या मोक्ष के सम्मुखावस्था में शुद्धि होती है क्या?

उत्तर–चौदहवें गुणस्थान के चरम समय में संसार पर्याय का व्यय और मोक्ष पर्याय के उत्पाद समय में पूर्ण शुद्धावस्था हो जाती है। अशुद्धावस्था का व्यय और शुद्धावस्था का उत्पाद इन दोनों का एक ही समय है व्यय उत्पाद और ध्रौव्य या उत्पाद व्यय ध्रौव्य यह द्रव्य का आत्मभूत लक्षण है इस कारण व्यय की अपेक्षा संसारावस्था में और उत्पाद की अपेक्षा मोक्षावस्था में पूर्ण शुद्धि हो जाती है।

प्र.522–गृहस्थावस्था में मैं पूर्णरूप से शुद्ध हूँ ऐसा विश्वास कर सकते हैं क्या?

उत्तर–नहीं, ऐसा विश्वास नहीं कर सकते हैं क्योंकि मैं और पूर्णरूप से शुद्ध ये दो पद हैं, आध्यात्म पद्धति में अखण्ड, अभेद वस्तु में खण्ड करना, भेद करना ही अशुद्धपना है, व्यवहार है। मैं पूर्ण या अपूर्णरूप से शुद्ध हूँ ऐसा अनुभव कैसे हो सकता है? हाँ इतना अवश्य है कि शब्दरूप से या सुनकर के भी अनुभव कर सकते हैं, बोल सकते हैं, परन्तु अनुभव की बेला में वेद्य वेदक भाव नहीं होता। वेद्य वेदक भाव के होने पर शुद्धात्मानुभव नहीं होता है जब उपयोग में चंचलता है, अस्थिरता है तब इन्द्रिय जन्य सुखानुभव नहीं होता है तो आत्मा का आनन्द कैसे आ सकता है? जैसे आपको कहीं पर जाना है समय थोड़ा सा बचा है, गाड़ी आवाज कर रही है और भोजन

स्वादिष्ट और पौष्टिक होने पर भी जाने की जल्दी होने से भोजन तो कर लेंगे पर भोजन का स्वाद या आनन्द नहीं आयेगा अथवा कामी कामनी के पास रहकर भी आसपास में देखनेवाले, सुननेवाले मौजूद होने से कामक्रीड़ा कर लेने पर भी काम सुख का आनन्द नहीं आता कारण मन में लज्जा, भय, कमजोरी, मन कम्पित होने से काम सुख अनुभव में नहीं आता इसी तरह मन चंचल होने से आत्मानंद नहीं आता। अतः मेरे में पूर्ण रूप से शुद्ध होने की योग्यता है ऐसा विश्वास करना चाहिए, मैं शुद्ध बुद्ध हूँ, ऐसा नहीं।

प्र.523—वैभाविक शक्ति गुणरूप है या पर्यायरूप तथा अनुभव कौन करते हैं?

उत्तर—वैभाविक शक्ति गुणरूप नहीं है किन्तु पर्यायरूप है जो एक समय में भी अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें व्यक्त रूप में रहती हैं। पर्याय में द्रव्य और गुणों का आरोपण कर पर्याय को ही उपचारनय से द्रव्य गुण कहते हैं पर वास्तव में क्षणध्वंसी पर्याय ही है इसका समस्त प्राणी अनुभव करते हैं वे सभी प्राणी नाम भले ही न जानते हों यह भिन्न बात है क्योंकि उपचारनय के 9 भेद हैं। जैसे गोद का बालक माँबाप का नाम नहीं जानता, बोल नहीं सकता पर माँबाप की आवाज को, चेहरे को जानता है तभी तो उनके संयोग से सुख और वियोग से दुःख का अनुभव करता है।

प्र.524—वैभाविक शक्ति को गुणरूप में मानें, विश्वास करें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर—नहीं, क्योंकि वैभाविक शक्ति को गुणरूप में मानने से त्रिकाल में भी अभाव नहीं हो सकता है क्योंकि गुण अनादिनिधन होते हैं और सिद्धों में भी वैभाविक शक्ति के सद्भाव मानने का प्रसंग आता है।

प्र.525—संसारावस्था में वैभाविक शक्ति का परिणमन किस प्रकार से होता है?

उत्तर—संसारावस्था में वैभाविकशक्ति का परिणमन विकाररूप में होता है, जो रागद्वेष, मोह, अज्ञान, अदर्शन, असाता, हल्का भारी, सुखदुःख रूप में अनुभव होता है। औदयिकभाव, क्षायोपशमिक भाव और औपशमिकभावरूप वैभाविक शक्ति जानी जाती है, क्षायिकभाव और पारिणामिक भावरूप में नहीं।

प्र.526—वैभाविक शक्ति को पारिणामिकभाव और क्षायिकभाव मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर—पारिणामिक भाव और क्षायिकभाव रूप से वैभाविक शक्ति को मानने पर संसारी जीव और सिद्ध वर्तमान नय से एक समान हो जायेंगे फिर सिद्धों को शुद्ध सिद्ध बुद्ध आदि कौन कहेगा या संसारी जीवों में वर्तमान नय से ये विशेषण मानने पड़ेंगे जो आगम से, प्रत्यक्ष से और अनुमान से विरोध है अतः वैभाविक शक्ति उक्त दोनों भावों रूप में न परिणमन करती है, न उस रूप में है।

प्र.527—वैभाविक शक्ति का सद्भाव सिद्धों में मान लो तो क्या आपत्ति है?

उत्तर—वैभाविक शक्ति का सद्भाव सिद्धों में होने पर उसका परिणमन होना ही चाहिए क्योंकि अर्थक्रिया के बिना द्रव्यगुण का लक्षण बन नहीं सकता। कदाचित् अनन्त शक्तियों में एक शक्ति को अपरिणामी माना जाय तो द्रव्य का लक्षण घटित न होने से या एकदेश में होने से अव्याप्ति दोष आता है।

प्र.528—वैभाविक शक्ति का सद्भाव सिद्धों में कार्य रूप में नहीं मानो तो क्या आपत्ति है ?

उत्तर—सिद्धों में वैभाविक शक्ति माने और विकार रूप कार्य न माने तो वह न्यायवेत्ता कैसा? अर्थक्रिया के बिना अर्थवान् पदार्थ का अस्तित्त्व कैसा? इसलिए सिद्धों में किसी भी कारण से वैभाविक शक्ति का सद्भाव नहीं बनता।

प्र.529—जीव का लक्षण तो उपयोग है उत्पाद व्यय नहीं फिर एक वैभाविकशक्ति के अपरिणामी होने पर अव्याप्ति दोष क्यों आयेगा?

उत्तर—लक्षण में अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असंभव दोष नहीं होना चाहिये और जीव का लक्षण उपयोग है उत्पाद व्यय नहीं सो यह ठीक है इस अपेक्षा से यह कथन नहीं किया है किंतु द्रव्य का लक्षण उत्पाद व्यय कहा है इस अपेक्षा से प्रत्येक शक्ति में परिणमन उत्पाद व्यय होना चाहिये अब यदि वैभाविक शक्ति के अपरिणामी और शेष अनंत शक्तियों के परिणामी होने पर अव्याप्ति दोष आता ही है। जब द्रव्य का लक्षण उत्पाद व्यय कहा है तो जीव भी द्रव्य है इस कारण जीव के चार लक्षण हो जाते हैं

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्यय धुवत्तसंजुत्तं।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू।।10।। पंचा०

सद्द्रव्य लक्षणं, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, गुणपर्ययवद् द्रव्यं, उपयोगो लक्षणम्।

जैसे जीव सत् लक्षणवाला है, गुण पर्यायवाला है, उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है, उपयोग मय है। (त.सू) अतः निष्कर्ष रूप में सिद्धों में वैभाविक शक्ति के अपरिणामी मानने पर अव्याप्ति दोष आता ही है।

प्र.530–अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं, यह दोष कैसे आता है?

उत्तर–एक शक्ति के अपरिणामी तथा अनेक शक्तियों के परिणामी होनेसे लक्षण एकदेश में घटित होता है। लक्ष्य में लक्षण के एकदेश रहने को अव्याप्ति दोष कहते हैं अतः अव्याप्ति दोष आता ही है।

प्र.531–संसारी जीवों में वैभाविक शक्ति को गुण रूप में सद्भाव मान लेने से क्या आपत्ति है?

उत्तर–उस वैभाविक शक्ति को संसारावस्था में भी त्रिकाली गुणस्वरूप मानने में आने वाली आपत्ति ऊपर बतला आये हैं फिर भी यहाँ गुणों में पर्याय का या पर्याय में गुणों का आरोपण कर उपचार नय से कह सकते हैं। सर्वथा नहीं।

प्र.532–उस वैभाविक शक्ति का अभाव पूर्ण रूप से होता है या नहीं?

उत्तर–उस वैभाविक शक्ति का भव्य जीवों के पूर्ण रूप से अभाव अवश्य होता है यदि उस शक्ति का अभाव न माना जाय तो मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती है। कदाचित् सिद्धों में वैभाविक शक्ति का सद्भाव माना जाये तो अर्थक्रिया के होने पर पतन होना अवश्यंभावी है। अतः वैभाविक शक्ति गुण रूप में न होकर पर्याय रूप ही है। विभावरूप परिणमन संसारी जीव और पुद्गल में होता है। यदि सामान्य शक्ति मानी जाय तो छहों द्रव्यों में विकार होने से सभी को शुद्ध सिद्ध बनने के लिए ध्यानाध्ययन तपश्चरण करने की आवश्यकता होगी, अन्यथा शुद्ध सिद्ध नहीं हो सकते हैं। आगम में जीव और पुद्गल ये दो ही द्रव्य विभावरूप विकार रूप में परिणमन करते हैं शेष चार नहीं ऐसा कहा है।

प्र.533–यह वैभाविक शक्ति किस प्रकार से परिणमन करती है?

उत्तर–यह वैभाविक शक्ति भविष्यकाल के लिए आश्रव बन्ध का कारण होने से निमित्त रूप है और पूर्वबद्ध कर्मोदय से तत्तत् परिणामरूप में परिणमन करती है अतः नैमित्तिक है।

प्र.534–इस वैभाविक शक्ति का सिद्धों में सद्भाव है या नहीं?

उत्तर–उस विभाव का, विकार का पूर्ण रूप से अभाव करके ही सिद्ध होते हैं। यदि सद्भाव माना जाय तो विकार रूप में परिणमन होना ही चाहिए क्योंकि अर्थक्रिया करना प्रत्येक द्रव्य गुण का स्वभाव है।

प्र.535–सिद्ध किस प्रकार होते हैं?

उत्तर– **णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा।**
तेसिमभावं किच्चा अभूद पुव्वो हवई सिद्धो।।20।। पंचा०

अनादिकाल से ज्ञानावरणादि द्रव्य और भावकर्म जीव के साथ भली प्रकार से बंधे हुये हैं अतः उत्कृष्ट ध्यानों के द्वारा उन विकारी कर्मों का अभाव करके अभूत पूर्व सिद्ध होते हैं।

प्र.536–प्रत्येक शक्ति का परिणमन अपने में होता है या पर में, हानि क्या है?

उत्तर–प्रत्येक शक्ति का परिणमन अपनी सीमा में रहकर ही स्वभाव और विभाव रूप से होता है दूसरे द्रव्य गुण और पर्याय रूप में नहीं क्योंकि प्रत्येक शक्ति परस्पर में अत्यंताभाव को लिये हुये हैं। यदि प्रत्येक द्रव्यगुण पर्याय अपने अपने निज स्वभाव को छोड़कर पर रूप से परिणमन करने लगें तो सभी द्रव्यगुण पर्याय एक हो जायेंगे फिर शेष क्या बचा? संकर व्यतिकर दोष का, सर्व शून्यता का, सर्वापहार लोप होने का प्रसंग आयेगा जो कोई टाल नहीं सकता।

प्र.537–यदि प्रत्येक द्रव्य अपनी[2] मर्यादा का उल्लघंन नहीं करते हैं तो विकाररूप में परिणमन कैसे होता है, यदि नहीं होता है तो संसार भ्रमण क्यों?

उत्तर–प्रत्येक द्रव्य अपने आप में रहते हुए भी विकाररूप में परिणमन करते हैं क्योंकि नयों की अपेक्षा एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में प्रवेश करता हुआ दूसरों को स्थान भी देता है। कारण सभी द्रव्यों में अवगाहन शक्ति है तभी आ. श्री कुन्दकुन्द ने अपने प्रवचनसार प्र.अ.गाथा 29 में कहा है–:

'ण पविट्ठो णाविट्ठो णाणी णेयेसु रूवमिव चक्खू।
जाणदि पस्सदि णियदं अक्खातीदो जगमसेसं।।'

अतीन्द्रिय ज्ञानी आत्मा जानने योग्य पदार्थों में प्रविष्ट नहीं होता है और होता भी है। व्यवहारनय से प्रविष्ट होता है और निश्चयनय से नहीं। जिस प्रकार रूपी पदार्थों में नेत्र प्रविष्ट होकर व्यवहारनय से सबको देखता है किंतु निश्चयनय से चक्षु पदार्थों में प्रविष्ट नहीं होता है उसी प्रकार आत्मा जानने योग्य पदार्थों में प्रविष्ट न होकर भी जानता है परन्तु दृश्य दर्शक सम्बन्ध के कारण व्यवहारनय से प्रविष्ट होता है वैसे ही ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध की अपेक्षा आत्मा पदार्थों में प्रविष्ट हुआ कहलाता है।

प्र.538–यदि सिद्धों में वैभाविक शक्ति है तो सिद्धादि विशेषण क्यों लगाये जाते हैं?

उत्तर–अनादिकालीन पूर्वबद्ध समस्त कर्मों को क्षय करके, सद्भाव का अभाव करके, अभूतपूर्व ही सिद्ध होते हैं इसलिए ये उक्त विशेषण लगाना उपयुक्त ही हैं। यदि सिद्धावस्था प्राप्त नहीं होती है तो तप ध्यान साधना आदि क्यों किया जाये? मुनिव्रत क्यों धारण किया जाय?

प्र.539–उन द्रव्यसिद्धों में, भवसिद्धों में और भावसिद्धों में शुद्ध बुद्ध स्वतंत्र विशेषणों का सद्भाव किस नय से है?

उत्तर–सिद्धों में सिद्ध शुद्ध स्वतंत्र विशेषणों का सद्भाव वर्तमाननय से हैं। जो सामान्य गुणधर्म हैं वे सभी अशुद्ध नहीं होते हैं फिर भी संसारी जीवों में अविनाभाव संबंध होने के कारण अशुद्ध कहे जाते हैं जैसे सत्, नित्य, ध्रौव्य, अव्याबाध, सूक्ष्मत्व आदि ये सभी चेतन अचेतन द्रव्यों में हैं। इस कारण ये गुणधर्म संसारावस्था में जीव और पुद्गल के अशुद्ध होते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि पुद्गल के गुणधर्म अशुद्ध से शुद्ध और शुद्ध से अशुद्ध परिणमन करते रहते हैं किन्तु जीव के ये गुणधर्म एकबार शुद्ध सिद्ध स्वतंत्र होने पर पुनः अशुद्ध नहीं होते।

प्र.540–संयोग किसे कहते हैं?

उत्तर–दो या अनेकों के मिलकर एकरूप होने को संयोग कहते हैं।

प्र.541–संयोगी भाव किसे कहते हैं, हेतु क्या है, कितने भेद हैं?

उत्तर–संयोग से उत्पन्न हुए भावों को संयोगी भाव कहते हैं। जैसे दम्पति के मेल से उत्पन्न संतान न केवल माँ की है और न केवल बाप की। यदि केवल एक ही की मानी जाय तो सचित्ताचित्त मिश्रयोनि नहीं बन सकती। इसी तरह यदि ये रागादि भाव स्वतंत्र एक के माने जाये तो संयोगी भाव नहीं बन सकते हैं।

नामः–औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, क्षायिकभाव ये चार संयोगी भाव हैं क्योंकि ये कर्मों के निमित्त से होते हैं। पारिणामिक भाव भी संयोगी है क्योंकि भव्यत्व अभव्यत्व भाव भी असिद्धत्व के साथ होने से संयोगी कहलाते हैं। इस कारण संयोगी भाव के अनेक भेद हैं।

प्र.542–जब रागादि भावों का उपादान कारण आत्मा है तो उन्हें संयोगी क्यों कहा?

उत्तर–रागादि विकारी भावों का उपादान कारण आत्मा है अतः उपादान उपादेय की दृष्टि से संयोगी नहीं कहा है किन्तु निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध की अपेक्षा से संयोगीभाव कहा है।

प्र.543–आवरण कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जो ढक्कन के या वस्त्रादि के परदे के समान आत्मगुणों को ढक कर रखे उसे आवरण कर्म कहते हैं।

प्र.544–आवरण कर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर –मूल में दो भेद हैं तथा अवांतर भेदों की अपेक्षा संख्यात असंख्यात और अनंत भेद हैं।

प्र.545–आवरण कर्म के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–ज्ञानावरणकर्म, दर्शनावरणकर्म अथवा प्रत्येक के सर्वघातीकर्म और देशघाती कर्म।

प्र.546–आवरण कर्म का लक्षण क्या है?

उत्तर–ज्ञाता दृष्टा स्वभाव को ढके, अनुभव और जानकारी न होने दे सो यही आवरण कर्म का लक्षण है।

प्र.547–ज्ञानावरण कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जो ज्ञाता स्वभाव को, जानने के स्वभाव को ढके, ज्ञान न होने दे उसे ज्ञानावरणकर्म कहते हैं। ज्ञानपर्यायों को उत्पन्न न होने दे और जो है उसका विनाश कर दे, तथा बाह्य विषयकी जानकारी न होने दे उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

प्र.548–ज्ञानावरण कर्म के कौन[2] भेद हैं?

उत्तर–इसके दो भेद हैं–1. द्रव्यज्ञानावरणकर्म, 2. भावज्ञानावरणकर्म या सर्वघाती और देशघाती अथवा 5 भेद हैं या आठ भेद हैं या संख्यात असंख्यात अनंत भेद हैं।

प्र.549–द्रव्य ज्ञानावरण कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–ज्ञानावरणीयकर्म का कर्म द्रव्य जो जड़ स्वभाव वाला पुद्गलरूप है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुण और पर्याय वाला है। ज्ञान गुण को घातता है, परपदार्थों का आभास नहीं होने देता है उसे द्रव्य ज्ञानावरण कर्म कहते हैं। द्रव्य

मतिज्ञानावरणकर्म, द्रव्य श्रुतज्ञानावरणकर्म, द्रव्य अवधिज्ञानावरणकर्म, द्रव्य मनःपर्ययज्ञानावरणकर्म और द्रव्य केवलज्ञानावरणकर्म इन पांचों में ही द्रव्य कुमतिज्ञानावरणकर्म, द्रव्य कुश्रुतज्ञानावरणकर्म, द्रव्य कुअवधिज्ञानावरणकर्म इन तीन सहित आठ भेद हो जाते हैं।

प्र.550–भावज्ञानावरण कर्म किसे कहते हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जो अपनी ही जानन शक्ति को स्वयं का अज्ञान भाव ढके ज्ञान न होने दे उसे भावज्ञानावरणकर्म कहते हैं। भावमतिज्ञानावरणकर्म, भावश्रुतज्ञानावरणकर्म, भावअवधिज्ञानावरणकर्म, भावमनःपर्ययज्ञानावरणकर्म, भावकेवलज्ञानावरणकर्म, भावकुमतिज्ञानावरणकर्म, भावकुश्रुतज्ञानावरणकर्म, भावकुअवधिज्ञानावरणकर्म ये भावज्ञानावरण कर्म के आठ भेद हैं।

प्र.551–दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जो आत्मा के सामान्य अवलोकन को रोके, ढके या अवलोकन न करने दे तथा जो है उसका अभाव कर दे उसे दर्शनावरणकर्म कहते हैं।

प्र.552–दर्शनावरणकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर–दो भेद हैं या नव भेद हैं या संख्यात असंख्यात अनंत भेद हैं।

प्र.553–दर्शनावरणकर्म के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–नामः–द्रव्यदर्शनावरणकर्म और भावदर्शनावरणकर्म। अथवा **9 नाम**–1. चक्षुदर्शनावरणकर्म, 2. अचक्षुदर्शनावरणकर्म, 3. अवधिदर्शनावरणकर्म, 4. केवलदर्शनावरणकर्म, 5. निद्रा, 6. निद्रानिद्रा, 7. प्रचला, 8. प्रचलाप्रचला, 9. स्त्यानगृद्धि।

प्र.554–द्रव्यदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–आत्मा के सामान्य अवलोकन में जो बाधा उत्पन्न करे, जड़ स्वरूप है, पुद्गल का परिणमन है, अचेतन है, रूप रस गन्ध स्पर्शगुण स्वभाव वाला है उसे द्रव्यदर्शनावरण कर्म कहते हैं। द्रव्यकेवलदर्शनावरणकर्म, द्रव्यअवधिदर्शनावरणकर्म, द्रव्यचक्षुदर्शनावरणकर्म, द्रव्यअचक्षुदर्शनावरणकर्म, द्रव्यनिद्रा, द्रव्यनिद्रानिद्रा, द्रव्यप्रचला, द्रव्यप्रचलाप्रचला, द्रव्यस्त्यानगृद्धि ये नव भेद हो जाते हैं।

प्र.555–भावदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जो निज का ही अदर्शनभाव अपनी आत्मा को सामान्यावलोकन न होने दे और जो है उसका विनाश कर दे उसे भावदर्शनावरणकर्म कहते हैं। यह अदर्शनभाव चैतन्य रूप है। इसका दर्शनगुण ही उपादान कारण है। भावकेवलदर्शनावरणकर्म, भावअवधिदर्शनावरणकर्म, भावचक्षुदर्शनावरणकर्म, भावअचक्षुदर्शनावरणकर्म, भावनिद्रा, भावनिद्रानिद्रा, भावप्रचला, भावप्रचलाप्रचला, भावस्त्यानगृद्धि ये नव भेद हो जाते हैं।

प्र.556–सर्वघातीकर्म और सर्वघातीकरण किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस विकाररूप पूर्वबद्ध कर्म के उदय में आने पर आत्मगुण का किंचित् मात्र भी विकास न हो, अनुभव में न आये उसे सर्वघातीकर्म कहते हैं। जैसे केवलज्ञानावरणकर्म, केवलदर्शनावरणकर्म, मिथ्यात्व, जात्यंतर रूप सम्यक्मिथ्यात्वप्रकृति, अनन्तानुबन्धी क्रोधमानमायालोभ, अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोधमानमायालोभ, स्त्यानगृद्धि, प्रचला, प्रचलाप्रचला, निद्रा, निद्रानिद्रा ये सब 21 सर्वघाति प्रकृतियां हैं क्योंकि इनके उदय में आने पर आत्मा का और आत्मा के गुणों का किंचित् मात्र भी विकास नहीं हो पाता है। इन समस्त कर्मप्रकृतियों को घातने के लिए, क्षय करने के लिए, नाश करने के लिए जो आत्मध्यान या आत्म परिणाम उत्पन्न होते हैं उन्हें सर्वघातीकरण कहते हैं। जो अपने प्रतिपक्षी धर्म का या आत्म गुणों का पूर्ण रूप से घात करे, एक अंश भी अनुभव में न आने दे उसे सर्वघाती करण कहते हैं अथवा जो आत्मा का परिणाम कर्मों को समूल रूप से क्षय कर दे उसे सर्वघाती करण कहते हैं और जो पुद्गल पिण्ड़ आत्मा के केवलज्ञान केवलदर्शन आदि भावों का एक अंश भी उत्पन्न न होने दे उसे सर्वघाती कर्म कहते हैं। कर्मकांड गाथा नं. 39

प्र.557–क्या ये 21 सर्वघातीकर्म प्रकृतियां आत्मगुणों को पूर्ण रूप से घातने का कार्य करती हैं?

उत्तर–नहीं, ये 21 प्रकृतियां सभी गुणों के लिए सर्वघाती नहीं हैं किंतु गुणस्थानानुसार और अपने नामानुसार ही आत्मगुणों को घातती हैं जैसे केवलज्ञानावरण कर्म केवलज्ञान को सर्व प्रकार से घातता है मतिज्ञान आदि को नहीं।

केवलदर्शनावरण कर्म केवलदर्शन को घातता है चक्षुदर्शनोपयोगादि को नहीं। मिथ्यात्व प्रकृति सम्यग्दर्शन को पूर्ण रूप से घातती है। सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति जात्यंतर रूप से सम्यग्दर्शन को घातती है इसके उदय में स्वतंत्र रूप से न संसार का मार्ग होता है न मोक्षमार्ग किंतु मिश्र रूप से होता है। स्त्यानगृद्धि आदि 5 दर्शनावरण कर्म की प्रकृतियां भी प्रदेश प्रत्यक्ष रूप में घातती है किंतु अनुभव प्रत्यक्ष को नहीं घातती हैं। अनंतानुबंधी कषाय सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र के लिए सर्वघाती है। अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय देशचारित्र के लिए सर्वघाती है। प्रत्याख्यानावरणीय कषाय सकलचारित्र के लिए सर्वघाती है। संज्वलन कषाय यथाख्यातचारित्र के लिए सर्वघाती है यह विधि रूप में कथन किया है अब निषेध रूप में कहते हैं। अनंतानुबंधी कषाय संसारमार्ग के लिए घातक नहीं हैं। अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय मोक्षमार्ग के लिए घातक नहीं हैं। प्रत्याख्यानावरणीय कषाय देशचारित्र के लिए घातक नहीं हैं। संज्वलन कषाय महाव्रत रूप सकलचारित्र के लिए घातक नहीं हैं क्योंकि सभी कषायों के द्रव्य में देशघाती और सर्वघाती स्पर्धक पाये जाते हैं जो अनुकूल द्रव्य क्षेत्र काल भाव को पाकर अपना फल देते हैं अन्यथा बिना फल दिये ऐसे ही निकल जाते हैं।

प्र.558–देशघातिकर्म और देशघातिकरण किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस विकाररूप पूर्वबद्ध कर्मोदय के होने पर किंचित् मलिन पानी की तरह आत्मगुण का किंचित् विकास हो, कुछ अनुभव में आये और कुछ न आये उसे देशघातीकर्म कहते हैं। जैसे मतिज्ञानावरणादि चार, चक्षुदर्शनावरणीय आदि तीन, सम्यक्त्व प्रकृति, संज्वलन क्रोध मान माया लोभ, हास्यादि नोकषाय और अंतराय कर्म की 5 ये सब 26 देशघाती प्रकृतियां हैं। इन समस्त कर्मप्रकृतियों को घातने के लिए जो आत्मध्यान या आत्म परिणाम उत्पन्न होते हैं उन्हें देशघातीकरण कहते हैं। कर्म० गाथा 40

प्र.559–सर्वघाती कर्म क्या आत्म द्रव्य को या आत्मगुणों को पूर्ण रूप से घातता है या पर्यायों को घातता है?

उत्तर–सर्वघाती कर्म भेद विवक्षा में पर्याय को घातता है द्रव्य और गुणों को नहीं और पर्याय पर्यायी की अभेद विवक्षा में द्रव्य गुण और पर्यायों को सर्वघाती कर्म घातता है।

प्र.560–सर्वघाती कर्म द्रव्य और गुणों को घातता है ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर–भेद विवक्षा में सर्वघाती कर्म द्रव्य और गुणों को घातता है ऐसा मानने पर द्रव्य और गुणों के अभाव का प्रसंग आता है जैसे सर्वघाती मिथ्यात्व कर्म के उदय होने पर सम्यक् श्रद्धान का एक अंश मात्र भी अनुभव में नहीं आता है उसी प्रकार भेद विवक्षा में यदि सर्वघाती कर्म द्रव्य और गुणों को घातने लगे तो द्रव्य और गुण भी पूर्णरूप से नष्ट हो जायेंगे इनका अंश मात्र भी अनुभव में नहीं आ सकता है। द्रव्य और गुण अपरिणामी हैं, पारिणामिक भाव रूप ही हैं, उत्पाद व्यय रहित हैं, ध्रौव्य स्वरूप हैं इसलिये सर्वघाती कर्म पर्याय को घातते हैं द्रव्य और गुणों को नहीं।

प्र.561–यदि ऐसा है तो द्रव्य और गुण त्रिकाली शुद्ध हुए केवल पर्याय ही अशुद्ध हुई यह कथन कांजीस्वामी और उनके भक्तों का गलत है ऐसा क्यों कहा जाता है?

उत्तर–नहीं, पर्यायरूपी कार्य का उपादान कारण द्रव्य और गुण हैं। द्रव्य की पर्याय को व्यंजन पर्याय और गुण की पर्याय को अर्थ पर्याय कहते हैं। उपादान रूपी कारण के अनुसार ही पर्याय रूपी कार्य होता है कहा भी है **'कार्य लिंगं ही कारणम्'** कार्य कारण का नियामक है इस नियमानुसार ही यदि उपादान शुद्ध है तो कार्य शुद्ध होगा और उपादान अशुद्ध है तो कार्य भी अशुद्ध होगा जब पर्याय अशुद्ध है तो उपादान भी अशुद्ध होगा अतः उपादान उपादेय की अपेक्षा एक अशुद्ध है तो शेष दो अशुद्ध हैं और एक शुद्ध है तो शेष दो शुद्ध हैं अतः कांजीस्वामी ने और इनके भक्तों ने द्रव्य गुण त्रिकाली शुद्ध हैं और पर्याय अशुद्ध है ऐसा जो प्रतिपादन किया है सो वह गलत ही है।

प्र.562–अपराधी को सजा मिलना योग्य है निरपराधी को नहीं ऐसा न्याय है तब फिर चोर को सजा मिलना चाहिये उसके परिवार को नहीं इसी तरह यदि पर्याय अपराधी है तो पर्याय को अपराध के अनुसार नरक निगोद में जाना चाहिये द्रव्य गुण को नहीं?

उत्तर–अपराधी को सजा मिलना यह न्याय है परंतु अपराधी को साथ देने वाला भी महा अपराधी है इसलिए चोर के

सहायक होनेसे, चोरी का माल खाने, खरीदने से परिवार को भी सजा मिलना न्याय है क्योंकि पाप कर्म का उपार्जन सांपरायिकाश्रव रूप 108 कोटियों से किया जाता है इसी तरह पर्याय अपराधी है अशुद्ध है तथा पर्याय के अविनाभावी संबंधी द्रव्य गुण होने से ये भी अपराधी हैं अशुद्ध हैं। तभी तो पर्याय के साथ द्रव्य गुण चारों गतियों में भ्रमण करते हुए नाना दुःखों को भोगते हैं।

प्र.563–तो फिर सर्वघातीकर्म द्रव्य गुणों को घातते हैं अशुद्ध करते हैं ऐसा मानो?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही अभेद अखंड़ की विवक्षा में द्रव्य और गुणों को घातते हैं क्योंकि द्रव्य और गुणों के बिना व्यंजन पर्याय, अर्थ पर्याय तथा व्यंजन पर्याय और अर्थ पर्याय के बिना द्रव्य और गुण नहीं होते हैं क्योंकि अर्थक्रिया और स्वभाव के बिना अर्थवान्, स्वभाववान् कैसा? फिर भी भेद विवक्षा कर अपरिणामी, नित्य, शाश्वत आदि धर्मों की अपेक्षा द्रव्य और गुणों को अशुद्ध नहीं करते हैं किंतु अभेद विवक्षा में द्रव्य और गुणों को अशुद्ध करते हैं ऐसा नय विभाग से मानना चाहिये।

प्र.564–द्रव्य और गुण त्रिकाली शुद्ध हैं ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–जब द्रव्य और गुण त्रिकाली शुद्ध हैं तो फिर संयम क्यों धारण करना? तप क्यों करना? उत्तम ध्यान क्यों करना? सोलहवान सोने को पुनः शुद्ध करने के लिये कौन तपाता है? पिसे हुये आटे को कौन पीसता है? यदि कोई ऐसा करें तो आप उसे बुद्धिमान कहेंगे या मूर्ख?

यद्यात्मा सर्वथा शुद्धो ध्यानाभ्यासेन किं तदा।
शुद्धे प्रवर्तते कोऽपि शोधनाय न कांचने।।54।। धर्मपरीक्षा अधि०17 पृ०284

अर्थ– यदि आत्मा सर्वथा शुद्ध है तो ध्यानाभ्यास करने से क्या प्रयोजन है जैसे शुद्ध सुवर्ण को पुनः शुद्ध करने के लिये कौन तपाता है? अतः अशुद्ध आत्मा को शुद्ध बनाने के लिये मुनि पद धारण किया जाता है, तपध्यान की साधना की जाती है।

प्र.565–ये सब अर्थपर्यायें एक समय मात्र स्थितिवाली होने से इनका लंबा सत्व कैसे?

उत्तर–ये अवस्थायें एक समय वाली अर्थपर्याय में एकसमय के लिए नहीं बंधती हैं इनका उदय काल एक समय का कहा है बंध सत्व और द्रव्यकर्म की अपेक्षा से नहीं किन्तु समान जातीय सादृश्य परिणाम वाली पर्यायों की अपेक्षा ये सभी करण बन जाते हैं। क्योंकि जघन्य स्थितिबंध और अनुभाग बंध एक अंतर्मुहूर्त का होता है एक समय का नहीं ऐसा त०सू० के 8वें अ० में कहा है :–**'शेषाणामन्तर्मुहूर्ता।20।।'**

प्र.566–आवरणकर्म का आश्रवबन्ध किन कारणों से होता है?

उत्तर–ज्ञान और ज्ञानियों के प्रति उद्दण्ड होना, विघ्न पैदा करना, दोष लगाना, उपसर्ग परीषह उत्पन्न करना, दोनों के प्रति प्रमोद भाव का न होना, द्वेषभाव धारण करना, गुरु का नाम छिपाना, निन्दा करना, अंधकार पैदा करना, शास्त्रादि फाड़ देना, मोड़ देना, अप्रभावना, विसंवाद करना आदि से ज्ञानावरण और दर्शनावरणकर्म का आश्रव बन्ध होता है अथवा कषाय मिश्रित अज्ञान से आश्रवबंध होता है।

प्र.567–उभयश्रेणी में ध्यानावस्था होने से उक्त कारण नहीं पाये जाते हैं फिर भी स्थिति अनुभागबंध क्यों होता है?

उत्तर–उपशम श्रेणी तथा क्षपकश्रेणी 8, 9, 10वें गुणस्थान वाले महामुनियों के ध्यानावस्था होने से व्यक्त रूप में आवरण कर्मों के आश्रव बन्ध के कारण नहीं पाये जाते हैं फिर भी अव्यक्त रूप में अतः अबुद्धिपूर्वक उभय श्रेणियों में कषाय मिश्रित अज्ञानपूर्वक सांपरायिक आश्रव बन्ध होता है यदि ऐसा न माना जाय तो ध्यानावस्था में आवरणकर्म का स्थितिबंध अनुभागबंध नहीं होना चाहिए पर होता अवश्य है और वह आश्रव बन्ध निष्कारण हो नहीं सकता। प्रदोष अनादरादि स्थूल परिणाम निर्विकल्प ध्यानावस्था में होने लगें तो उपशमश्रेणी क्षपकश्रेणी और शुक्ललेश्या का स्वच्छ निर्मल परिणाम नहीं बन सकता है अतः कषाय मिश्रित औदयिक भावरूप अज्ञान से बंध होता है।

प्र.568–अज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–किंचित् मात्र भी जानकारी न होने को औदयिक भावरूप अज्ञान कहते हैं तथा अन्यथा ज्ञान अज्ञान मिथ्याज्ञान को या केवलज्ञान के बिना शेष चार ज्ञान को क्षायोपशमिक भाव रूप अज्ञान कहते हैं।

प्र.569–अज्ञान सम्यक् होता है या मिथ्या?

उत्तर–हाँ, अज्ञान सम्यक् भी होता है और मिथ्या भी। औदयिक भाव रूप अज्ञान न सम्यक् होता है और न मिथ्या। क्षायोपशमिकरूप अज्ञान मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी कषाय के उदय से मिथ्याज्ञान, सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से

मिश्रित अज्ञान कहलाता है तथा रत्नत्रय के सद्भाव में केवलज्ञान के बिना मतिज्ञान आदि चारों ज्ञान अज्ञान कहलाते हैं अर्थात् क्षायोपशमिक रूप अज्ञान दोनों प्रकार का है।

प्र.570–अज्ञानभाव का सद्भाव किस गुणस्थान तक रहता है?

उत्तर–क्षायोपशमिक भावरूप अज्ञान मिथ्याज्ञान का सद्भाव मिथ्यात्वगुणस्थान में और सासादन गुणस्थान में सदा काल रहता है, तीसरे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में मति श्रुत ये दोनों या मतिश्रुतावधि ये तीनों मिश्रज्ञान होते हैं और केवलज्ञान की अपेक्षा आदि के 4 सम्यग्ज्ञान भी पूर्ण न होने से अज्ञान चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है। औदयिक भावरूप अज्ञान बारहवें गुणस्थान तक रहता है। प्रथम अज्ञान में अन्यथा जानकारी होती है अथवा समीचीन भी। यह अज्ञान मतिज्ञानादि 4 तथा कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान कहलाता है तथा दूसरा अज्ञान केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती कर्मोदय की अपेक्षा औदयिक भाव है इसमें किंचित् मात्र भी सम्यक् या मिथ्यारूप में जानकारी नहीं होती है। संसारमार्गी, मोक्षमार्गी बहिरात्मा और अन्तरात्मा जीवों के होता है।

प्र.571–अज्ञान अदर्शन के अभाव में आवरणकर्म का आश्रव बन्ध होता है क्या?

उत्तर–क्षायोपशमिक भावरूप मिथ्याज्ञान के अभाव में तो आवरणकर्म का आश्रवबन्ध होता रहता है किन्तु औदयिक भावरूप अज्ञान अदर्शन के अभाव होने पर आश्रव बन्ध नहीं होता है, विच्छेद हो जाता है क्योंकि आवरणकर्मों का समूल क्षय होने से सर्वज्ञ, सर्वदर्शी की पदवी प्राप्त हो जाती है अथवा केवलज्ञान न होने से मतिज्ञानादि चार ज्ञान अपूर्ण होने के कारण अज्ञान है। मोहकर्म का पूर्ण रूप से अभाव होने के कारण यथाख्यात चारित्री के 11वें, 12वें गुणस्थान में औदयिक भावरूप अज्ञान के सद्भाव होने पर भी आवरणकर्म का आश्रव बन्ध नहीं होता है।

प्र.572–अज्ञान से नवीन आवरणकर्म का आश्रव बन्ध होता है या नहीं?

उत्तर–यदि अज्ञान मोह विषय कषायों से, प्रमाद से मिश्रित है तो नवीन आश्रव बन्ध होता है, अन्यथा नहीं।

प्र.573–सम्यग्ज्ञान से आवरणकर्म का बन्ध होता है या किसी अन्य कारणों से?

उत्तर–सम्यग्ज्ञान के सद्भाव में आवरणकर्म का दसवें गुणस्थान तक स्थितिबंध, अनुभागबन्ध कषाय मिश्रित प्रदोषादि अज्ञान से होता है। अतः अज्ञान साक्षात् बन्ध का कारण नहीं। यदि केवल अज्ञान से कर्मों का बंध होने लगे तो मोह के अभाव में 11वें, 12वें गुणस्थानों में बंध होना चाहिये पर होता नहीं।

प्र.574–स्वरूपाचरणचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर–मोह को उदय या सत्व से क्षयकर यथावत् आत्मस्वभाव में स्थिर होने को स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं।

प्र.575–स्वरूपाचरणचारित्र और स्वसमय में क्या अन्तर है?

उत्तर–ये नाम यथाख्यात, स्वरूपाचरण चारित्र और स्वसमय आदि एकार्थवाची होने से कोई अन्तर नहीं है।

प्र.576–स्वरूपाचरणचारित्र और शुद्धोपयोग में क्या अन्तर है?

उत्तर–सामान्य स्वरूपाचरणचारित्र मोह के अभाव में वीतरागियों के तथा उत्कृष्ट स्वरूपाचरणचारित्र मोह और योग के अभाव में अयोगकेवली के होता है तथा शुद्धोपयोग 12 वें गुणस्थान के अन्त में या 13 वें गुणस्थान के प्रारम्भ में ही आवरण कर्मों के क्षय होने पर केवलज्ञान, केवलदर्शन रूप में होता है। गुण और पर्यायों में आधाराधेय की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है क्योंकि अनन्त गुण और अनंतानंत पर्यायों का आधार एक आत्मद्रव्य है अतः ये दोनों अलग^2 हैं स्वभाव और उत्पत्तिकाल भिन्न^2 है।

प्र.577–एक समय में एक जीव में एक साथ कितने चारित्र हो सकते हैं?

उत्तर–जिस प्रकार ज्ञान, दर्शन और सम्यग्दर्शन के अनेक भेद प्रभेद होने पर भी किसी एक भेद के उपयोग में होने पर शेष शक्ति रूप में या लब्धि रूप में पड़े रहते हैं उसी प्रकार अनेक भेदवाले चारित्र में भी किसी एक के होने पर शेष शक्ति रूप में या लब्धि रूप में पड़े रहते हैं।

प्र.578–स्वरूपाचरणचारित्र अनेक भेदों में से कौन सा चारित्र है और कौन सा भाव है?

उत्तर–यथाख्यातचारित्र, परमयथाख्यातचारित्र, क्षायिकचारित्र, औपशमिकचारित्र, देशचारित्र, सामायिकचारित्र आदि 5 इन अनेक भेदों में से स्वरूपाचरणचारित्र अंतिम भेद है। क्षायिकभाव और औपशमिकभाव है।

प्र.579–औपशमिक चारित्र किस गुणस्थान में होता है?

उत्तर–औपशमिक चारित्र सम्पूर्ण मोहकर्म के उपशम से 11वें गुणस्थानवर्ती मुनियों के होता हैं।

प्र.580–क्षायिकचारित्र किस गुणस्थान से प्रारम्भ होकर कहाँ तक रहता है?

उत्तर –क्षीणमोही बारहवें गुणस्थान से प्रारम्भ होकर क्षायिकचारित्र अरिहन्तों में तथा सिद्धों तक रहता है।

प्र.581–औपशमिकचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर –सम्पूर्ण मोहनीय के उदयाभाव में उत्पन्न हुई आत्मनिर्मलता को औपशमिक चारित्र कहते हैं।

प्र.582–क्षायिक चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्पूर्ण मोहनीयकर्म के क्षय होने पर उत्पन्न चारित्रगुण की पूर्ण निर्मलता को क्षायिक चारित्र कहते हैं।

प्र.583–औपशमिक चारित्र किसके समान है?

उत्तर–औपशमिक चारित्र ज्वलित दीपक के समान या बेहोश व्यक्ति के समान है जैसे शीतोपचार से या समयानुसार बेहोशी दूर होने से जागृत हो जाता है, अपनी चेष्टायें करने लग जाता है, वैसे ही उपशांत मोहकर्म अन्तर्मुहुर्त के बाद पुनः उदय में आकर पतन करा देता है क्योंकि औपशमिक चारित्र का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा अवस्थित परिणाम वाला कहा है।

प्र.584–औपशमिक चारित्र से पतन कितने प्रकार से होता है?

उत्तर–औपशमिक चारित्र से पतन दो प्रकार से होता है। नाम :–1. आयुकर्म के क्षय से 2. काल क्षय से या चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से पतन होता है।

प्र.585–आयु कर्म के उदय क्षय होने पर संयम से पतन कर क्या फल प्राप्त करते हैं?

उत्तर–औपशमिक चारित्री आयुकर्म के उदय क्षय से मरण कर 4थे गुणस्थान में आते ही सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत मध्य में कहीं पर भी जन्म धारण कर भविष्य में च्युत हो मनुष्य होकर पुनः मुनिपद धारण कर, श्रेणी आरोहण कर क्रमशः कर्मों को क्षयकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

प्र.586–आयु कर्म की उदीरणा क्षय से पतन, मरण होता है ऐसा न कहकर उदय क्षय से होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–आयु कर्म की उदीरणा प्रमत्तसंयत नामक 6वें गुणस्थान तक ही होती है तथा अकालमरण भी यहीं तक हो सकता है अतः इसके आगे आयुकर्म की उदीरणा न होने से उदीरणा क्षय से मरण नहीं कहा।

प्र.587–काल क्षय से या मोहनीय कर्म के उदय से पतन किस प्रकार से होता है?

उत्तर–11वें गुणस्थानवर्ती औपशमिक चारित्र का काल पूरा होते ही पतन हो जाता है यह कथन व्यय धर्म की अपेक्षा समझना अथवा चारित्र मोह का उदय होने पर 11वें गुणस्थान से पतन हो जाता है यह कथन उत्पाद धर्म की अपेक्षा समझना।

प्र.588–11वें गुणस्थान से पतन कर संसार में कब तक रह सकते हैं?

उत्तर–कम से कम अंतर्मुहूर्त काल तक और अधिक से अधिक अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक रह सकते हैं। **सो कैसे?** यदि चरमशरीरी हैं तो पुनः प्रमत्ताप्रमत्त संयत अवस्था में अनेक वार परिभ्रमण कर क्षपक श्रेणी आरोहण कर क्रमशः कर्मों को क्षय कर क्षायिक केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं और अधिक से अधिक अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक संसार में परिभ्रमण कर अंत में कर्मभूमिज आर्यखंडोत्पन्न, वज्रवृषभनाराच संहनन से युक्त तीनवर्णवाला मनुष्य होकर, मुनिपद धारण कर, क्षपकश्रेणी आरोहण कर क्रमशः कर्मों को क्षय कर, सर्वज्ञकेवली होकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं मध्यकाल असंख्यात वर्षों का है।

प्र.589–क्षायिक चारित्र किसके समान है?

उत्तर–क्षायिकचारित्र मणिप्रभा के समान या मुर्दे के समान है। यह चारित्र नाना उपसर्ग परीषहों के मौजूद होने पर भी पूर्णरूप से निर्मल होकर मुर्दे के समान स्थिर रहता है और अप्रतिपाति है।

प्र.590–औपशमिक चारित्र संयम के साथ में होता है या असंयम के साथ?

उत्तर–औपशमिक चारित्र यथाख्यात संयम के साथ में होता है और यथाख्यात संयम उपशान्त वीतराग छद्मस्थ 11वें गुणस्थान वाले मुनियों के होता है इसके पहले नहीं।

प्र.591–औपशमिक चारित्र को घातने वाली कौन सी कषाय है?

उत्तर–औपशमिक चारित्र को साक्षात् घातनेवाला संज्वलन लोभ है और परम्परा से समस्त मोहकर्म है।

प्र.592–औपशमिकचारित्र को साक्षात् समस्त चारित्रमोहनीय घातता है ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर–औपशमिकचारित्र को साक्षात् समस्त मोहनीय कर्म को घातक माना जाय तो सम्यक्त्वाचरणचारित्र, देशचारित्र, सकलचारित्र, सामायिकचारित्र, छेदोपस्थापनाचारित्र, परिहारविशुद्धिचारित्र, सूक्ष्मसाम्परायचारित्र न बनकर एकमात्र औपशमिकचारित्र ही रहेगा जो आगम से विरोध है।

प्र.593–चारित्रमोह की 21 प्रकृतियों के उपशम से औपशमिक चारित्र होता है क्या?

उत्तर–हाँ ठीक है, पर यह उपचार कथन है क्योंकि वर्तमान नय से दसवें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के अन्तिम समय में लोभ कषाय के सम्पूर्ण उपशम से औपशमिक यथाख्यात चारित्र होता है, इसके पहले नहीं यदि 21 प्रकृतियों के उपशम से औपशमिक चारित्र होता है ऐसा माना जाय तो इन प्रकृतियों का उपशम एकमात्र 11वें गुणस्थान में मानने का प्रसंग आयेगा अथवा जिस गुणस्थान में जिन प्रकृतियों का उपशम होता है उनकी अपेक्षा उस गुणस्थान में उतनी मात्रा में औपशमिकचारित्र मानने का अनिष्ट प्रसंग आयेगा अथवा औपशमिक चारित्र के अनेक भेद और अनवस्थित परिणाम मानने पड़ेंगे जो आगम से विरोध है क्योंकि आगम में इसको अवस्थित परिणाम वाला कहा है।

प्र.594–स्वरूपाचरणचारित्र मूलप्रकृति के क्षय से होता है या उत्तरप्रकृति के क्षय से?

उत्तर–स्वरूपाचरणचारित्र उत्तर प्रकृति संज्वलन लोभ के क्षय से बारहवें गुणस्थान में उत्पन्न होता है।

प्र.595–स्वरूपाचरण चारित्र के कितने भेद हैं?

उत्तर–स्वरूपाचरण चारित्र के दो भेद हैं।

प्र.596–स्वरूपाचरण चारित्र के दो नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–1. औपशमिक स्वरूपाचरण चारित्र 2. क्षायिक स्वरूपाचरण चारित्र।

प्र.597–उभय स्वरूपाचरण चारित्र के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–औपशमिक स्वरूपाचरण चारित्र के स्वामी छद्मस्थ वीतराग उपशांतमोही 11वें गुणस्थानवाले मुनिजन और क्षायिक स्वरूपाचरण चारित्र के स्वामी 12वें, गुणस्थान से लेकर सिद्ध परमेष्ठी तक हैं।

प्र.598–और भी क्या विशेषतायें हैं?

उत्तर–पहला प्रतिपाती है, चरमशरीरी और अचरमशरीरी दोनों के होता है, औपशमिकभाव है, औपशमिक सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि के होता है। दूसरा अप्रतिपाती है, चरमशरीरी के क्षायिकसम्यग्दृष्टि के, क्षायिकचारित्री के होता है और क्षायिक भाव है।

प्र.599–अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव में स्वरूपाचरणचारित्र होता है क्या?

उत्तर–लेखक की और वर्तमान के वक्ताओं की दृष्टि में ठीक है पर दिगम्बराचार्यों की लेखनी से या विचारों से ठीक नहीं हैं। यदि स्वरूपाचरण चारित्र की उत्पत्ति अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव में मानी जाय तो तीसरे गुणस्थान में अनन्तानुबंधी कषाय का बन्ध, उदय और सत्त्व नहीं है अथवा बन्ध उदय नहीं है तथा अनादि मिथ्यादृष्टि या सादिमिथ्यादृष्टि जीव ने उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त कर अनन्तानुबन्धी कषाय की विसंयोजना कर दी है, सत्व का अभाव कर बाद में परिणामवशात् सम्यक्त्व से गिर कर मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होकर नवीन बंध किया तो उसके आवली काल तक अनन्तानुबंधी कषाय का उदय नहीं होता है तब प्रथम गुणस्थान में और तीसरे गुणस्थान में भी स्वरूपाचरणचारित्र को मानने का प्रसंग आयेगा। अतः अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव में स्वरूपाचरण चारित्र नहीं होता है।

प्र.600–सम्यक्त्व के अभाव में स्वरूपाचरण चारित्र नहीं होता सो ठीक है पर चौथे गुणस्थान में मान लो तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, स्वरूप में आचरण, स्थिरता ऐसा लक्षणवाला स्वरूपाचरणचारित्र नहीं होता है किन्तु क्वचित् कदाचित् स्वरूप की प्राप्ति के लिए विचार रूप में हो सकता है, सर्वथा नहीं। यदि सर्वथा सर्वकाल सभी गतियों में माना जाय तो आर्तध्यान, रौद्रध्यान, दुर्लेश्यायें, विषयवासना, आरम्भ, परिग्रह, शृंगार, अलंकार की क्रिया, युद्ध, वार्तालाप आदि चर्यायें बन नहीं सकती परन्तु ये होती अवश्य हैं अतः पूर्व पश्चिम में एकसाथ एक समय में गमन क्रिया के समान दोनों आचरण कैसे हो सकते हैं? अथवा सम्यग्दर्शन का सद्भाव सर्वकाल, सर्व क्षेत्रों में, चारों गतियों

में रहता है तब क्या एकसाथ व्यक्त रूप में दोनों परिणाम हो सकते हैं, हाँ यदि हो सकते हैं तो सांपरायिक आश्रव बंध आदि का परिणाम बन नहीं सकता अतः वर्तमान नय से 4थे गुणस्थान में स्वरूपाचरण चारित्र नहीं होता है

प्र.601–स्वरूपाचरणचारित्र कितने प्रकार का होता है और नाम कौन कौन से हैं?

उत्तर–तीन प्रकार का होता है। 1. शक्तिरूप में 2. लब्धिरूप में और 3. उपयोग रूप में।

प्र.602–स्वरूपाचरणचारित्र के स्वामी कौन कौन हैं ?

उत्तर–शक्ति या योग्यता की अपेक्षा समस्त प्राणी सैनी असैनी भव्य अभव्य सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि आदि स्वामी हैं। लब्धि की अपेक्षा 11वें गुणस्थान से लेकर सिद्धों तक वर्तमाननय की अपेक्षा, उपयोग की अपेक्षा उपशान्तमोही वीतरागी आदि सभी महामुनिजन स्वामी हैं। शक्ति योग्यता को, लब्धि प्राप्ति को और उपयोग तदनुकूल परिणति को कहते हैं।

प्र.603–प्राप्ति के बाद पतन कर नीचे के गुणस्थानों में भी बना रहता है क्या?

उत्तर–नहीं बना रहता है, क्योंकि यह पर्याय है इसका काल सिर्फ अन्तर्मुहूर्त कहा है अतः निचले गुणस्थानों में नहीं रहता है क्योंकि पर्याय होने से प्रध्वंसाभाव को प्राप्त हो जाता है तथा मरणकर सौधर्म विमान को आदि लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त देवों के, इन्द्रों के, अहमिन्द्रों के, लौकान्तिक देवों के नहीं होता है क्योंकि यह संयम प्रत्यय है। अथवा भूतनैगमनय की अपेक्षा लब्धिरूप में हो सकता है प्रयोग में नहीं।

प्र.604–जब स्वरूप के लिए आचरण चौथे अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वीकार कर आये हैं तो आप अहमिन्द्रों में परम शुक्ललेश्या होने से विषय कषायों में प्रवृत्ति न होने से स्वरूपाचरणचारित्र सर्वकाल मान लो तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, अहमिन्द्रों के प्रवृत्ति बाह्य विषय कषायों में, अनर्गल कार्यों में नहीं पायी जाती है सो ठीक है परन्तु उनके संयम को, देशसंयम को घातने वाली देशघाती, सर्वघाती प्रकृतियों के तीव्रोदय होने से, धर्मचर्या, धर्मचर्चा, परम शुक्ललेश्या का सद्भाव होने पर भी सर्वकाल स्वरूपाचरणचारित्र आत्म स्वरूप के लिए भी नहीं बन सकता, न माना जा सकता है।

प्र.605–जिस प्रकार देवों के, अहमिंद्रों के द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का विधान किया है उसी प्रकार उपशांत कषाय गुणस्थान में मरण कर उत्पन्न हुए देवों में, अहमिंद्रों में स्वरूपाचरणचारित्र का सद्भाव मान लेने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–जिस प्रकार उपशम सम्यग्दर्शन संयम और असंयम के साथ रह सकता है उसी प्रकार स्वरूपाचरण चारित्र पूर्ण मोहनीय के अभाव में यथाख्यात संयम के साथ होता है शेष संयमों के साथ में नहीं। उपशम सम्यग्दर्शन 4थे गुणस्थान से लेकर 11वें गुणस्थान तक पाया जाता है, चारों गतियों के जीव स्वामी हैं। स्वरूपाचरण चारित्र केवल मनुष्यों में होता है। इसका काल कम है और उपशम सम्यग्दर्शन का काल ज्यादा है इस कारण उपशमश्रेणी में मरण कर उत्पन्न हुए देवों में भूतनैगमनय की अपेक्षा द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन का विधान किया है, वर्तमान नय से नहीं77 क्योंकि वास्तव में वर्तमान नय से द्वितीयोपशम सम्यक्त्व श्रेणी अवस्था में ही होता है, अन्यत्र नहीं।

प्र.606–स्वरूपाचरणचारित्र को भी अनेक गुणस्थानों में मान लो तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–स्वरूपाचरण चारित्र उपयोग रूप में एकमात्र इर्यापथाश्रव वाले वीतरागी मुनियों में पाया जाता है, सरागियों में नहीं क्योंकि सरागियों के स्थिति बंध और अनुभाग बंध होता है। इस कारण एक समय में एकसाथ एक जीव में स्वरूपाचरणचारित्र और कषाय परिणाम नहीं पाये जा सकते हैं।

प्र.607–स्वरूपाचरण चारित्र का अंतर्भाव निश्चयचारित्र में होता है या व्यवहारचारित्र में?

उत्तर–स्वरूपाचरणचारित्र का अंतर्भाव निश्चयचारित्र में होता है, व्यवहार चारित्र में नहीं क्योंकि यह निश्चय चारित्र मणिप्रभा के समान है जैसे मणि की प्रभा किसी भी बाह्य साधनों से नष्ट नहीं होती है वैसे ही नाना प्रकार के उपसर्ग परीषहों से निश्चयचारित्र स्वरूपाचरणचारित्र नष्ट नहीं होता किंतु व्यवहार चारित्र दीपक के समान है, जिस प्रकार दीपक हवा पानी धूल से या तेल आदि के अभाव में बुझ जाता है उसी प्रकर यह व्यवहारचारित्र नाना प्रकार के उपसर्ग, परीषहों से परिणाम कमजोर होने से नष्ट हो जाता है इस कारण स्वरूपाचरणचारित्र का अंतर्भाव निश्चयचारित्र में होता है, व्यवहार चारित्र में नहीं। उपसर्ग परीषहों का वेदन 6वें गुणस्थान तक ही होता है इसके

आगे ध्यानावस्था होने से कष्ट का अनुभव/वेदन नहीं होता है किंतु उपसर्ग परीषह की अवस्था तो रहती ही है जैसे अंतकृतकेवली होने के पहले शरीर जला दिये गये, भक्षण किये गये, जर्जरित किये गये होने पर भी श्रेणी अवस्था में अनुभव नहीं हुआ यदि अनुभव होता तो श्रेणी अवस्था, शुक्लध्यान नहीं बन सकता था।

प्र.608–उपसर्ग के समय शरीर की विकृतावस्था होने पर सिद्धों में आत्मा का आकार विकृत रूप में होता है या सुंदर रूप में?

उत्तर–बृहद् द्रव्य संग्रह में **'पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोए सिहरत्थो।।51।'** –लोक के शिखर पर स्थित पुरुषाकार सिद्धात्मा का ध्यान करो। इस प्रकार सिद्धात्मा का आकार जिस शरीर से मोक्ष प्राप्त किया है उस आकार रूप में सर्वांग सुंदर होता है।

प्र.609–सिद्धों को जब निराकार कहा है तो यहाँ पुरुष के आकार क्यों कहा?

उत्तर–अंतिम शरीर के अलावा शेष शरीरों जैसा आकार न होने से निराकार कहा है किंतु अंतिम शरीर के अनुसार आकार होनेसे पुरुष के आकार सिद्धात्मा का आकार कहा है।

प्र.610–सिद्धों का आकार स्त्री और नपुंसकों जैसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर–द्रव्यस्त्री और द्रव्य नपुंसकों में जिनमुद्रा धारण करने की सामर्थ्य न होने पर मुनिअवस्था न होनेसे मुक्ति कैसे प्राप्त होगी? अर्थात् नहीं हो सकती है और जब मोक्ष नहीं तो उनका आकार कैसा? इस कारण सिद्धों का आकार पुरूष के आकार कहा स्त्री नपुंसकों जैसा नहीं जैसे बीज के बिना वृक्ष नहीं ऐसे ही मुनिपद के बिना सिद्धावस्था नहीं। मूर्तिपूजक श्वेतांबर समाज द्रव्य स्त्री को मोक्ष मानते हैं तो उनको तीर्थंकरों की मूर्ति के समान द्रव्यस्त्री वेदियों की भी मूर्ति बनवानी चाहिये। इसी तरह द्रव्यनपुंसकों की भी मूर्ति बनवा सकते हैं क्योंकि जिस अवस्था से मोक्ष प्राप्त हुआ है उस अवस्था की मूर्ति बनवाने में, पूजने में क्या दोष है, क्या पाप है? छिपाना ही पाप है।

प्र.611–विकृतावस्था का मतलब क्या, सिद्धात्मा का विकृताकार होता है क्या?

उत्तर–जैसे जिंदामनुष्य के शरीर को अग्नि से जला देने पर अर्धजलित मुर्दे के समान, किसी पशुपक्षी के द्वारा शरीर के अंगों को खा लेने पर, शरीर के छिन्न भिन्न होने पर या शत्रुओं के द्वारा शरीर के टुकड़े कर देने पर जो आकार रहता है वह विकृतावस्था है। अब सिद्धावस्था में पूर्वावस्थानुसार ही आकार रहता है जैसे छाया के या आकाश के छिन्नभिन्न किये जाने पर भी आकार में परिवर्तन नहीं होता है अथवा रस्सी के जला देने पर भी रस्सी का आकार यथावत् रहता है इसी प्रकार सिद्धों का आकार रहता है। पुनः चरम शरीरी वज्रवृषभनाराच संहनन वाले मुनियों का जीवितावस्था में शरीर के टुकड़े नहीं हो सकते हैं। यदि टुकड़े हो जायें तो चरम शरीरी और वज्रवृषभनाराच संहनन कौन कहेगा? क्योंकि जो वज्रों से भी न घाता जाये, न छिन्नभिन्न किया जाये वही वज्रवृषभनाराच संहनन है। यदि कहो कि गजकुमार मुनि के शिर में कीलें गाड़कर सिगड़ी बनाई थी सो ठीक है पर यहाँ कीलों के द्वारा शरीर में छेद कर दिया न कि शरीर के टुकड़े टुकड़े किये। मोक्ष हो जाने के बाद में पुद्गलमय शरीर की कुछ भी अवस्था हो जाये छिन्नभिन्न हो जाये, टुकड़े हो जाये, पिस जाये संभव है क्योंकि वज्र के द्वारा वज्र के नाना रूप किये जा सकते हैं जैसे हीरे के द्वारा हीरा काटा जाता है दूसरी धातुओं से नहीं।

प्र.612–स्वरूपाचरणचारित्र को सम्यक्त्वाचरणचारित्र मान लो तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–हमें कोई आपत्ति नहीं है, स्वीकार है क्योंकि जिस परिणाम को आचार्य श्री कुंदकुंद ने सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहा है उसी परिणाम को पंड़ितों ने स्वरूपाचरणचारित्र कहा है इसलिए ठीक है किंतु यदि अर्थ भेद है तो अलग अलग होने ही चाहिये। इस कारण यहाँ पर शब्द भेद होने पर भी अर्थ भेद नहीं है।

प्र.613–सम्यत्वाचरणचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्यग्दर्शन के अनुसार, सम्यग्दर्शन की रक्षा के लिए विषय कषायों से, दुर्ध्यानों से बचने के लिए, मोक्षमार्ग सदा बना रहे इस कारण निःशंकितादि आठों अंगों का पालन करना, दान पूजादि षडावश्यक के पालन करने को सम्यक्त्वाचरणचारित्र कहते हैं।

प्र.614–सम्यक्त्वाचरण चारित्र के स्वामी कौन[2] हैं तथा सम्यक्त्वाचरणचारित्र और स्वरूपाचरण चारित्र एकसाथ क्यों नहीं रह सकते हैं?

उत्तर–सम्यक्त्वाचरणचारित्र के चारोंगतियों के 4थे गुणस्थानवाले अव्रती सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी हैं, व्रती नहीं। व्रतियों

के संयमाचरणचारित्र होता है। सम्यक्त्वाचरणचारित्र तथा स्वरूपाचरण चारित्र ये दोनों एक ही चारित्रगुण के सजातीय परिणाम होने से एकसाथ, एकसमय में, एकजीव में नहीं पाये जाते।

प्र.615–स्वरूपाचरणचारित्र और सम्यक्त्वाचरण चारित्र में क्या अन्तर है?

उत्तर–सम्यक्त्वाचरणचारित्र असंयम के साथ, आर्त रौद्र और धर्मध्यान के साथ, छहों लेश्याओं में, चारों गतियों में समस्त संहनन और संस्थानों में अविरतिसम्यग्दृष्टि जीवों के होता है तथा स्वरूपाचरणचारित्र और चारों शुक्लध्यान के साथ मनुष्यगति में भी कर्मभूमिज, आर्यखण्डवाले, महाऋद्धि सम्पन्न, उत्तम संहनन युक्त, छहों संस्थानवाले, उत्कृष्ट ध्यान युक्त, चरमशरीरी या अचरमशरीरी वीतरागीमुनियों के होता है विशेष अंतर मार्गणानुसार लगा लेना चाहिए।

प्र.616–चौथे गुणस्थान में आ. श्री कुन्दकुन्द ने चा.पा. में सम्यक्त्वाचरणचारित्र कहा है और पंडितों ने स्वरूपाचरणचारित्र कहा हैं तब सही कौन?

उत्तर–यदि आचार्य श्री सम्यक्त्वाचरण चारित्र को स्वरूपाचरण चारित्र या स्वरूपाचरण चारित्र को ही सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहते तो गृहस्थावस्था में ही उपशमश्रेणी, क्षपकश्रेणी, शुक्लध्यान, केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्ति को भी कह देते फिर सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति मानने में क्या आपत्ति थी तथा सम्यक्त्वाचरण चारित्र की परिभाषा उन्होंने स्वयं निःशंकित आदि आठ अंग, दानपूजादि षडावश्यक, अनुकम्पादि गुण, मैत्री आदि भावनायें तथा सम्यग्दर्शन के अनुसार आचरण का पालन करना क्यों कहा? अतः स्वरूपाचरणचारित्र को सम्यक्त्वाचरण चारित्र नहीं कहा किन्तु उनके नाम पर दूसरे त्यागियों ने, गृहस्थों ने अपने प्रचार के लिए कहा। यदि आ. श्री को कहना था तो साफ स्पष्ट शब्दों में स्वयं कह देते यहाँ तक कि वर्तमान में उपलब्ध उनके साहित्य में कहीं पर भी स्वरूपाचरण चारित्र नाम ही नहीं आया फिर लक्षण कहना, स्वामी बताना तो बहुत दूर की बात है। यदि कहो कि कुछ पुराने आचार्यों ने टीका ग्रंथों में स्वरूपाचरण चारित्र का विधान किया है वह मान्य है सो ऐसी बात नहीं है अतः जो आजकल असंयमी, देशसंयमी या पक्षपात, पंथवाद से युक्त सकल संयमीजनों ने नाना दोष युक्त शास्त्रों का संपादन किया है, प्रकाशित कराया है सो इन दूषित शास्त्रों की, पुस्तकों की आज प्रमाणता नहीं हैं किंतु जैसे जैसे समय गुजरेगा वैसे वैसे आज्ञाप्रधानियों के लिये प्राचीनता, प्रामाणिकता आती जायेगी तब परीक्षाप्रधानी बुद्धि जीवों को बहुत बड़ा संकट झेलना पड़ेगा अतः वक्ता और श्रोताओं को स्वयं में हँस के समान भेदविज्ञानी बनकर सही गलत की निर्णायक बुद्धि पूर्वक आचरण करना चाहिये।

प्र.617–स्वरूपाचरणचारित्र किस ध्यान के साथ होता है और किसके साथ में नहीं?

उत्तर–स्वरूपाचरणचारित्र और शुक्लध्यान ये दोनों चारित्रगुण की पर्यायें हैं अतः ये दोनों यदि अलग अलग होते तो कह सकते थे कि यह इसके साथ होता है और इसके साथ नहीं अथवा स्वरूपाचरणचारित्र आर्तध्यान रौद्रध्यान और धर्मध्यान के साथ नहीं होता है क्योंकि वह शुक्लध्यान स्वरूप ही है।

प्र.618–ये अर्थपर्यायें एक समय वाली होने से सांत होना चाहिए?

उत्तर–आपका कहना सत्य है परंतु अर्थपर्याय एक समय वाली होने पर भी समान जातीय अर्थपर्यायें अनादि अनंत, अनादिसांत सादिसान्त और सादि अनन्तकाल तक चलती हैं अतः यहाँ शुद्ध जीवों का प्रकरण होने से सादि अनन्तकाल तक होती है ऐसा कहा है।

प्र.619–ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–किसी एक विषय में, ज्ञेय पदार्थ में मन को रोककर रखने को, केंद्रित करने को ध्यान कहते हैं।

प्र.620–ध्यान के स्वामी कौन हैं?

उत्तर–ध्यान अनेक प्रकार का होने से समस्त प्राणी अपनी अपनी अवस्थानुसार स्वामी हैं।

प्र.621–चिन्ता के अभाव को ध्यान कहते हैं ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर–चिन्ता के अभाव को ध्यान नहीं कहा यदि चिन्ता के अभाव को ध्यान माना जाय तो अचेतन द्रव्यों में भी ध्यान मानना पड़ेगा।

प्र.622–छद्मस्थावस्था में चिन्ता का अभाव करना ध्यान है ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर–छद्मस्थावस्था में इच्छा का, चिंता का अभाव मानने पर सांपरायिकाश्रव, स्थितिबंध, अनुभागबंध, ईर्यापथाश्रव प्रकृतिबंध,

प्रदेशबंध नहीं हो सकते तो संवर निर्जरा और मोक्ष भी नहीं बन सकते क्योंकि जब आश्रव बंध नहीं तो संसार भ्रमण नहीं, दुःख नहीं तब दुःख से बचने के उपायभूत या सुख प्राप्ति के साधनभूत श्रावकव्रत, यम, नियम, संयम, तप, मुनिव्रत, संवर, निर्जरा और मोक्ष की कथा वार्ता व्यर्थ है, साधना क्यों करना? इच्छा के, चिंता के बिना संसारमार्ग और मोक्षमार्ग या व्यवहारमार्ग तथा दुर्ध्यान भी नहीं बन सकते हैं तब मतिज्ञान आदि के लोप का प्रसंग आता हैं जो तत्त्वदृष्टाओं को इष्ट नहीं है।

प्र.623–चिन्ता के अभाव को ध्यान मान लो इसमें क्या आपत्ति है?

उत्तर–महान आपत्ति है क्योंकि चिन्ता विकल्प को कहते हैं, ज्ञान साकारोपयोग है अतः ज्ञान के अभाव का प्रसंग आता है। यही अनिष्टापत्ति है।

प्र.624–चिन्ता किसे कहते हैं?

उत्तर–जीव अजीवादि समस्त विषयों के आंतरिक इष्टानिष्ट विचारपूर्वक, परिवर्तन सहित, हेयोपादेय ज्ञेयों के स्वरूप का विचार करने को, भावों को चिंता कहते हैं अथवा यह है, वह है, मेरा है, तेरा है, अच्छा है, बुरा है, साधक है, बाधक है आदि नाना प्रकार के प्रतिपक्ष सहित विचारों को चिन्ता कहते हैं।

प्र.625–चिन्ता के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–दो भेद हैं अथवा अनेक भेद हैं। **नाम** –1. मोहोदय से होने वाली चिन्ता 2. ईहामतिज्ञान नाम की चिन्ता। अथवा शुभ चिन्ता और अशुभ चिन्ता। आहारादि चार संज्ञायें या छह संज्ञायें चिंतायें भी होती हैं। नामः–आहारादि चार तथा इसलोक चिंता और परलोक चिंता ये छह भेद हो जाते हैं।

प्र.626–चिन्ता का अभाव करना ध्यान नहीं माना जाय तो सिद्धों के, केवलियों के भी चिन्ता माननी होगी क्योंकि इनमें ध्यान स्वीकार किया गया है?

उत्तर–केवलियों के, सिद्धों के चिन्ता का अभाव करना ध्यान का लक्षण योग्य है क्योंकि केवलियों के सिद्धों के चिन्ता का, विकल्पों का, विकारों का अभाव इष्ट और सद्भाव ही अनिष्ट है। सयोगकेवलियों के चिन्ता का अभाव ध्यान है अयोग केवलियों के एवं सिद्धों के योग तथा चिन्ता का अभाव और अपने निज स्वभाव में पूर्णनिष्ठ होकर स्थिर होना, निष्कंप, निश्चल होना ध्यान है तथा छद्मस्थों के मन को, चिन्ता को किसी एक विषय में रोककर रखना ध्यान है। विषय भोगों के साथ इष्टानिष्ट विचारपूर्वक बाह्य विषयों में मन स्थिर करना आर्तध्यान है। चिंतनकर सफलता मिलने पर हर्षित होना रौद्रध्यान है। मोक्षमार्ग में तथा मोक्षमार्ग के साधनों में मन को केंद्रित करना धर्मध्यान है। समस्त मोह कर्म को क्षय कर आत्मस्वभाव में स्थिर होना शुक्लध्यान है।

प्र.627–चिन्ता के उत्पन्न न होने को ध्यान कहते हैं या उत्पन्न होती हुई चिंता के रोकने को ध्यान कहते हैं?

उत्तर–उत्पन्न हुई चिन्ताओं के रोकने को या उत्पन्न हो चुकी हैं उनके रोकने को ध्यान कहते हैं। कारण जो मौजूद नहीं है या समाप्त हो चुका है उसके लिए क्या पुरुषार्थ करना? क्योंकि ध्यान आश्रवबंध को रोकने के लिए, क्षय करने के लिए किया जाता है, अन्य कार्य के लिए नहीं।

प्र.628–चिन्ताओं के रोकने को ध्यान क्यों कहा?

उत्तर–वास्तव में विचारा जायें तो चिंताओं को रोकने से नाना प्रकार की बीमारियां पैदा हो जाती हैं जैसे मन वचन काय के वेगों को रोकने से नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिससे पूर्णिमा के समान सारा सुखमय जीवन अमावश्या की रात्रि के समान कष्टमय हो जाता है अतः चिंताओ के रोकने का, मारने का नाम ध्यान नहीं है किंतु ज्ञान के द्वारा यथावत् लक्षणों को जानकर यथावस्थित कर देने को ध्यान कहा है क्योंकि जिन्होंने पूर्वावस्था में मन को, चिंताओं को मारकर जीवन व्यतीत किया है उनको मृत्यु के समय सारी की सारी चिंतायें सामने आकर नाना प्रकार से आकुलतायें विषयभोग की वासनायें उत्पन्न हो जाती है यहाँ तक की पागलपन या उन्माद भी पैदा हो जाता है तथा समाधि के समय मुनियों को भी प्रेमप्रसंग की, खानेपीने की शृंगारालंकार की चिंतायें उत्पन्न होकर निदान बंध कराकर दुर्गतियों में ले जाती हैं।

प्र.629–तो फिर ग्रंथकारों ने चिन्ताओं के रोकने को ध्यान क्यों कहा?

उत्तर–नहीं, चिंताओं के रोकने का नाम ध्यान है यह केवल शब्द रूप में कहा है, शब्द संकेत है। वास्तव में ज्ञान को ज्ञान रूप में परिणमन कराने पर या होने पर विषयकषायों का प्रमादों का निग्रह हो जाना ही सर्वत्र सर्वकाल धर्मध्यान और शुक्लध्यान है अन्यथा दुर्ध्यान है।

प्र.630–ज्ञान का ज्ञान रूप में परिणमन करने का मतलब क्या है?

उत्तर–सिर्फ ज्ञाता स्वरूप में रहना ही ज्ञान का ज्ञान रूप में परिणमन है। हीनाधिक, ऊंचनीच, अच्छा बुरा, मेरातेरा जानना ही, विचारना ही ज्ञान का अन्यथा परिणमन है।

प्र.631–समीचीन या शुभचिन्ता किसे कहते हैं?

उत्तर–विषयकषायों के त्याग को, तीव्रता के त्याग को, मोक्ष के निमित्त, आत्म शान्ति के निमित्त या इनके साधनों में विवेक पूर्वक, हेयोपादेय पूर्वक चिन्तन करने को शुभ चिन्ता कहते हैं।

प्र.632–असमीचीन या अशुभ चिन्ता किसे कहते हैं?

उत्तर–विषय कषायों की वासना पूर्वक, ख्याति पूजा लाभ, आर्तरौद्रध्यान, दुर्लेश्यायें, शृंगार अलंकार, आरम्भ परिग्रह, वैर विरोध आदि की भावना को असमीचीन, अशुभभावना, अशुभचिन्ता कहते हैं।

प्र.633–प्रथमोपशम सम्यक्त्व में और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में तीर्थंकर प्रकृति का आश्रव बंध होता है क्या?

उत्तर–हाँ अवश्य होता है। किसी सातिशय मिथ्यादृष्टि, सदाचारी, सद्विचारी, शुभ परिणामी जीव ने दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओं का चिन्तन प्रारम्भ किया और इन्हीं भावना रूप करण परिणामों से दर्शनमोहनीय को दबाकर प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त किया फिर पूर्व संस्कारवश अभ्यासानुसार, भावनानुसार उन परिणामों से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में चरमशरीरी या अचरमशरीरी निर्दोष व्रतों को पालने वाले वेदक सम्यग्दृष्टि मुनि ने प्रमत्ताप्रमत्त अवस्था में रहकर सोलहकारण भावनाओं का चिन्तन कर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया और करण परिणामों से उपशम श्रेणी आरोहण कर आठवें गुणस्थान के छठवें भाग तक पूर्व संस्कारवश तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध चालू रहा अथवा उपशम श्रेणी आरोहण करने वाले उपशम सम्यग्दृष्टि महामुनिजन ने 11वें गुणस्थान से पश्चादानुपूर्वी क्रम से पतनकर 8वें गुणस्थान में आकर पुनः बंध करने लगे क्योंकि पूर्व का संस्कार मौजूद था अतः प्रथमोपशम और द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में भी तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है।

प्र.634–करण परिणाम किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन परिणाम विशेषों के द्वारा पापरूप दर्शनमोह, चारित्रमोह का दलन हो, शक्तिहीन हो जायें, फल देने में असमर्थ कर दिये जायें उन्हें करण परिणाम कहते हैं।

प्र.635–वे कौन से परिणाम हैं जो करण परिणाम कहलाते हैं?

उत्तर–निष्कपट, निस्वार्थ भाव पूर्वक भूल को भूल समझकर भूल सुधारने को, त्यागने को, षडावश्यकों का पालन करना, सोलहकारण भावनाओं का चिन्तन करना, मोक्षमार्ग में स्थिर धर्मात्माओं को देखकर प्रसन्न होना, मैत्री आदि भावनाओं का चिंतन करना आदि करण परिणाम कहलाते हैं अथवा पंचपरमेष्ठी का, मूलोत्तर गुणों का पालन कर स्थिर होना, आत्मचिन्तन करना भी करण परिणाम कहलाते हैं।

प्र.636–भीलों ने, पशुपक्षियों ने और नारकियों ने किस प्रकार के चिन्तन से सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था या करते हैं?

उत्तर–भीलों ने, पशुपक्षियों ने या नारकियों ने, देवों ने या और भी अनेक अनाचारी जीवों ने जिसने कभी उपदेश ही नहीं सुना और इकाइक गुरुओं का समागम शत्रुता या मित्रता से प्राप्त कर गुरुओं ने मौन पूर्वक दिनचर्या से या मुख से बोलकर उपदेश दिया और उसे सुनकर सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। गुरुओं ने पुण्य पाप के फल का, चतुर्गति के दुःखों का वर्णन, संवेग निर्वेद की कथा और जीवन की असारता का उपदेश दिया था। उन्होंने आत्महित जानकर ही दुःख से भयभीत होकर उपदेश को स्वीकार कर उन भीलों ने, पशुपक्षिओं ने परमोपकारी सम्यग्दर्शन को प्राप्त किया था।

प्र.637–उन मुनियों ने भीलों को, पशुपक्षियों को आत्मा शुद्ध बुद्ध है ऐसा उपदेश क्यों नहीं दिया?

उत्तर–जिसने सारा जीवन जंगल में रहकर नाना पशुपक्षियों को, राहगीरों को मारकर भोजन किया, तीव्र कषाय युक्त रहा, धर्म के, पुण्य पाप के नाम ही नहीं सुने, देव शास्त्र गुरु का मुख ही नहीं देखा तो वह क्या समझेगा कि आत्मा क्या है, कैसा है, ज्ञातादृष्टा, शुद्धबुद्ध क्या वस्तु है? मूलगुण उत्तरगुण क्या बला हैं? स्वर्ग नरक मोक्ष क्या वस्तु है आदि क्या जाने? तभी तो आ. श्री अमृतचन्द्रजी ने अपनी समयसारजी की टीका में मलेच्छ प्राणिओं को मलेच्छ

भाषा में समझाने को कहा तो वह अर्थ ग्रहण कर लेगा अन्यथा तुम्हारे सामने टकटकी लगाकर मुख को देखता रहेगा। यह तो पुरानी बात हुई। वर्तमान में अत्यन्त हीनाचारी व्यक्ति मुनियों के सम्पर्क में आकर जो सदाचार, सद्विचार को तथा जिनधर्म को धारण करने में समर्थ हुए हैं, पालन कर रहे हैं वे केवल मद्य मांस चोरी आदि कार्यों से क्या दुःख होता है? क्या अवस्था प्राप्त होती है? जीवन कितना दुःखमय है आदि समझाने से पुण्यमार्ग में उत्साहित होकर, पाप को छोड़कर, दुष्कर्म को त्याग कर, देव शास्त्र गुरु की भक्ति में लगे हैं और जिन्होंने तत्त्वों के नाम न सुने हैं, न समझे हैं उनके सामने रत्नत्रयधर्म की भूमिका बताये बिना, संसार शरीर भोगों के स्वरूप को बताये बिना, उनके लिये रत्नत्रयधर्म का उपदेश क्या कर सकता है? जन्मांध के सामने शृंगार की क्या कीमत? विदेशीभाषाविदों के सामने अन्य भाषाओं से उपदेश देने पर भी वे अर्थज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते अतः उपदेश भी बालवैद्य के समान पात्रानुसार ही देना चाहिये।

प्र.638–यदि ऐसा है तो आचार्य श्री अमृतचंद्र स्वामी ने पु०उ० में मुनिधर्म के उपदेश को छोड़कर गृहस्थ धर्म के उपदेशक को निग्रह का स्थान क्यों कहा?

उत्तर–आ. श्री अमृतचंद्रजी ने पु.उ. में मुनिधर्म के विना गृहस्थ धर्म के उपदेशक को निग्रह का स्थान बताया है सो इसका मतलब है कि आचार्य की धर्मसभा में सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती और गृहत्यागी मुनिधर्म के या अगले पद के इच्छुक उत्साही प्रतिमाधारी बैठे हुए हैं अब इनके सामने पुनः गृहस्थ धर्म का, मद्य मांस आदि के त्याग का, निचली अवस्था का उपदेश दिया तो उनका मन हताश हो जायेगा और जिस पद में स्थित हैं उसीमें संतोष धारण कर लेगें जिससे मुनिधर्म का लोप होगा, जिनधर्म की अप्रभावना होगी इसलिए मार्ग का अवरोधक होने से उपदेष्टा को निग्रह का स्थान, प्रायश्चित्त का अधिकारी बताया क्योंकि धर्मोपदेश, मार्गदर्शन ऊपर उठनेउठाने के लिए, आगे बढ़ाने के लिए किया जाता है, नीचे गिराने के लिए नहीं, हताश होने के लिए नहीं।

प्र.639–इस प्रकार धर्मोपदेश के क्रम में क्या हेतु है?

उत्तर–वक्ताओं को चाहिए की वे सर्वप्रथम बाल वैद्य के समान श्रोताओं की शक्ति को समझकर अपना वक्तव्य प्रारंभ करें। यदि श्रोतागण अत्यंत निचली अवस्था के मलेच्छाचारी हैं, अत्याचारी हैं, व्यसनी हैं, व्यभिचारी हैं, अभक्ष्य भक्षण करने वाले हैं तो वक्ता अपने दिव्य उपदेश के द्वारा उनके दुष्कर्मों को, दुराचारों को छुड़ाकर, त्याग कराकर सम्यग्दर्शन धारण करायें बाद में मूलगुणों को, अणुव्रतों को धारण करायें, पालन करायें परिपक्व होने पर मुनिव्रत, आर्यिकाव्रत आदि धारण करायें और अंत में भली प्रकार से समाधिमरण कराकर सद्गति प्राप्त करायें अथवा यदि श्रोतागण परिपक्वावस्था के धारक हैं, अणुव्रती हैं, प्रतिमाधारी हैं, गृहत्यागी हैं तो इन्हें मुनि आर्यिका बनाकर अंत में भली प्रकार से समाधिमरण करा कर सद्गति प्राप्त करायें, यदि आचार्य भगवंत की धर्मसभा में मुनि आर्यिका आदि दीक्षित शिष्यगण उपस्थित हैं तो उनके बलवीर्य को समझकर आयु जीवनकाल को जानकर निश्चल ध्यानाध्ययन का, ख्याति पूजा लाभ के त्याग का, आहार विहार निहार के गुण दोषों का कथन कर, त्याग का वर्णन कर, सल्लेखना संबंधी नीतिनियमों का वर्णन करें तथा भली प्रकार से संबोधन करते हुए समाधि मरण करायें धर्मोपदेश के क्रम में यह हेतु है क्योंकि इस पद्धति से ही मोक्षमार्ग की परंपरा सुचारू रूप से चलती रहती है, ना दूषित हो पाती है, ना विनाश को प्राप्त हो पाती है। यदि पात्र अपात्र की समीक्षा किये बिना उपदेश किया तो उपदेश व्यर्थ जायेगा या श्रोतागण भटक जायेंगे, अहंकारी, मायावी बन जायेंगे और उत्थान की जगह पतन के मार्ग में लग जायेंगे या स्वतंत्र मत बन बैठेगा।

प्र.640–इस विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण बताओ?

उत्तर–देवेन्द्रनगर म.प्र.में कुम्हारिन, बड़वानी के पास एक सर्विस करने वाले मेहतर जमादार को आ० श्री पार्श्वसागरजी ने अपनी माला दी थी। सागवाड़ा पाड़वा में मोची, चमार नित्यप्रति अभिषेक देखता है, सूखी सामग्री से पूजन करता है, सोलहकारणव्रत, दशलक्षणव्रत करता है, उपवास करता है। महाराष्ट्र पट्टणकुड़ी में एक मुसलमान और आदिवासी भील ने आ० श्री विद्यानन्दजी से मद्य मांस मधु का त्याग किया तथा मांसाहारी के हाथ का भोजन भी त्याग किया। मुसलमान ने तो अपनी भानजी की शादी में जाकर पानी भी नहीं पिया, धूम्रपान आदि तो बहुत दूर चला गया आजकाल जैन लोग तो बहाना बनाते हैं वहाँ नहीं खायेंगे पियेंगे तो वो नाराज हो जायेंगे क्या कहेंगे? अतः ये मानव यहीं पर पाप के फल को जानकर, पाप से भयभीत होकर धर्म में लगे तथा शास्त्रों में राजा श्रेणिक ने जब महाराजश्री के ऊपर उपर्सग किया तब सातवें नरक की आयु का बन्ध किया और तीसरे दिन जाकर जब

चेलना रानी ने उपसर्ग दूर किया तब महाराज ने क्या उपदेश दिया था यह भी श्रेणिक चारित्र से समझ लेना चाहिए। अतः हमारा एकमात्र उद्देश्य यह है कि पात्र की क्षमता को देखकर, समझकर पात्र को ऊपर उठाने के लिए मार्गदर्शन देना चाहिए अन्यथा सदोपदेश से भी श्रोतागण अहंकारी ममकारी बनकर मिथ्यामार्ग में लग जायेंगे जो आजकल कांजीपंथ में प्रत्यक्ष देखा जा रहा है तथा आदिनाथजी के उपदेश को सुनकर मारीच भटक गया, राजा भरत के मर्यादा का उल्लंघन कर आदर सम्मान से अनेक अणुव्रती महापुरुष अहंकारी बन मोक्षमार्ग से पतित हुए इसी तरह आजकल भी कहीं कहीं त्यागीव्रती अत्यधिक सम्मान से, माईक से अहंकारी ममकारी बन अपने कर्तव्य पद से च्युत हो रहे हैं।

प्र.641–पुनः हताश, अनुत्साही होने के संबंध में कुछ उदाहरण बताओ?

उत्तर–जैसे अपन उत्तम हीरे के, सोने के आभूषण खरीदने बाजार गये और दुकान में मनोनुकूल आभूषण न मिलने से मन गिर जायेगा या तो घर खाली हाथ आयेंगे या जैसा मिलेगा वैसा लेकर आयेंगे और आगे के लिये मन टूट जायेगा कि यहाँ कुछ नहीं मिलता है। इसी तरह वस्त्रों के, भोग्य वस्तुओं के, भोज्य वस्तुओं के, ज्ञान के, चारित्र के, विश्वास आदि के संबंध में लगा लेना चाहिए अथवा हम प्लास्टिक का, स्टील का, आर्टीफिशियल (नकली) आभूषण खरीदने बाजार गये और दुकानों में हीरे का, सोनेचांदी का, उच्च क्वॉलिटी का, अधिक कीमत का मिला तो बिना खरीदे वापिस आ जायेंगे और मन में आकर्षण बना रहेगा अतः मनोनुकूल सामग्री के उपलब्ध होने पर ही मन उत्साहित होता है अन्यथा मन उदासीनता को, अनुत्साहीपने को प्राप्त हो जाता है।

प्र.642–यहाँ उपदेश को करण परिणाम क्यों कहा?

उत्तर–उपरोक्त उपदेश को सुनकर आत्मसात् कर तद्रूप परिणमन करने को करण परिणाम कहा है तथा उपदेश के (प्रश्नोत्तर 635 में) निष्कपट, निर्स्वार्थ भाव विशेषण लगाया है जिससे यदि उपदेश सुनकर भी तद्रूप परिणाम नहीं हुए तो केवल उपदेश है, कार्यकारी नहीं और आज्ञा मानकर आदेश समझकर तदनुकूल चर्या बना ली तो भाव उपदेश कहलाने से ही करण परिणाम कहलाये।

प्र.643–आठवें गुणस्थान में क्या नवीन भावनाओं का चिन्तन नहीं करता है?

उत्तर–नहीं, आठवें गुणस्थान में अप्रमत्तदशा होने से, निश्चल ध्यानावस्था होने से, नवीन सोलहकारणभावनाओं का चिन्तन प्रारम्भ नहीं करते हैं क्योंकि आठवें गुणस्थान का नाम अपूर्वकरण है और परिणाम नवीन नवीन सूक्ष्म सूक्ष्म होते जाते हैं इस कारण पुनः स्थूल भावना स्वरूप परिणामों का चिंतन नहीं करते।

प्र.644–जब नवीन भावना संभव नहीं तो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में तीर्थंकर प्रकृति का बंध कैसे हो सकता है?

उत्तर–इस आठवें गुणस्थान के छठवें भाग तक उपशम श्रेणी में तीर्थंकर प्रकृति का बंध पूर्व संस्कारवश होता रहता है जब ग्यारहवें गुणस्थान से पश्चादानुपूर्वी क्रम से पतनकर आठवें गुणस्थान में आकर पुनः बन्ध प्रारम्भ किया और गिरता हुआ चौथे गुणस्थान तक बीच में बन्ध कर सकता है।

प्र.645–प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यकत्व किसे कहते हैं तथा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाला जीव कैसा होना चाहिये?

उत्तर–अनादि मिथ्यादृष्टि या सादि मिथ्यादृष्टि जीव के उपशम श्रेणी आरोहण करने के पहले दर्शनमोहनीय कर्म की 5 या 7 प्रकृतियों को दबाकर उत्पन्न हुए श्रद्धान को प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं। वेदक सम्यग्दृष्टि जीव, उत्तम संहनन वाला, शुभ लेश्याओं से युक्त, आर्यखण्डोत्पन्न, मूलगुण और उत्तरगुणों से सम्पन्न मुनि के उपशमश्रेणी आरोहण करने के लिए उत्पन्न हुए सम्यक्त्व को द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं। यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि मुनिजन उपशम श्रेणी आरोहण करते हैं तो उनके द्वितियोपशम सम्यक्त्व नहीं होता है क्योंकि क्षायिक सम्यग्दर्शन अप्रतिपाती स्वभाव वाला है।

प्र.646–द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर–जब वेदक सम्यग्दृष्टि दिगम्बर मुनि की अवस्था में स्थित किन्तु अंतरंग में चौथा, पाँचवां, छठवां या सातवां गुणस्थान वाला परिणामों की विशुद्धतावश दर्शनमोह की सात प्रकृतियों को उपशम कर, सातिशय अप्रमत्त दशा को प्राप्त कर पुनः करणकर उपशमश्रेणी आरोहण करता है तब उसके द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है। अतः भूमिका की अपेक्षा चौथे गुणस्थान से, उत्पत्ति की अपेक्षा 7वें गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है और मरण की अपेक्षा ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर चौथे गुणस्थान तक रह सकता है।

प्र.647–देवगति में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है क्या?

उत्तर–देवों में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है किंतु इसकी उत्पत्ति एकमात्र मनुष्यों में भी मुनियों के ही उपशम श्रेणी में होती है वस्त्रधारियों के नहीं परंतु जिन मुनियों ने पूर्व में देवायु का बन्ध कर लिया है और वे उपशमश्रेणी आरोहण कर ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँचकर वहाँ काल पूराकर पतन कर क्रमशः 11वें से 10वें में, 10वें से 9वें में, 9वें से 8वें गुणस्थान में गिरते हुए बीच में कहीं भी मरण कर देवों में उत्पन्न हुए तो उस समय थोड़ी देर के लिए द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का संस्कार रह सकता है इस कारण देवों में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व बन जाता है।

प्र.648–जैसे देवों में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहा है वैसे ही नारकियों में, तिर्यंचों में और भोगभूमिज मनुष्यों में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है क्या?

उत्तर–नहीं, जिन मनुष्यों ने पूर्वकाल में नवीन नरकायु, तिर्यंचायु तथा मनुष्यायु का बन्ध कर लिया है वे अणुव्रत और महाव्रत के परिणामों को प्राप्त नहीं कर सकते, न भावना ही बनती है, कदाचित् किसी कारणवशात् व्रत धारण कर भी लिया तो नियम से मरण के समय या पहले द्रव्य और भाव से व्रत छूट जायेंगे, पद भ्रष्ट हो जायेंगे अन्यथा विग्रहगति में, नरकों में, भोगभूमिज मनुष्यों में, तिर्यंचों में भी व्रतों का अस्तित्त्व स्वीकार करना पड़ेगा। गर्भ में भी पांचवां, छठवां, सातवां गुणस्थान मानने का प्रसंग आयेगा जो आगम से विरोध है। अतः देवायु के बिना शेषायु के बंधक जीव के जब व्रत संभव नहीं तब श्रेणीआरोहण, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कैसे सम्भव हो सकता है?

प्र.649–सोलहकारण भावनायें राग रूप है या वैराग्य रूप?

उत्तर–दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनायें रागरूप नहीं है किन्तु वैराग्य रूप हैं। क्योंकि विषयानुराग, कामानुराग रूप न होने से वैराग्य रूप हैं। ये सोलहकारण भावनायें रत्नत्रय में अन्तर्भाव को प्राप्त हो जाती हैं। जैसे दर्शनविशुद्धिभावना, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, उपाध्यायभक्ति, प्रवचनभक्ति सम्यग्दर्शन में। विनयसम्पन्नता, प्रवचनवत्सलत्व, मार्गप्रभावना, अभीक्षण ज्ञानोपयोग सम्यग्ज्ञान में। शीलव्रतेष्वनतिचार, संवेग, शक्तिस्तप, शक्तिस्त्याग, साधुसमाधि, वैयावृत्ति, आवश्यकापरिहाणि ये सम्यक्चारित्र में अन्तर्भाव को प्राप्त हो जाती हैं अतः ये भावनायें राग नहीं क्योंकि एक के सद्भाव में सब और एक के अभाव में सब का अभाव हो जाता है जैसे माला में मोतियों का परस्पर में घनिष्ट संबंध होने से एक के सद्भाव में सब और एक के गिर जाने से, डोरी के टूट जाने से सब मोती अस्थिर रहते हैं या नष्ट हो जाते हैं।

प्र.650–सोलहकारण भावनाओं को रागरूप मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–इन भावनाओं को रागरूप मानने से औदयिक भाव मानने का प्रसंग आता है तथा ये किस कर्म के उदय से होती है बताओ? इन भावनारूप मंत्रों का सर्वोत्तम छद्मस्थ परमेष्ठी गणधरों ने भी जाप किया, ध्यान किया तब क्या इन्हों ने राग की पूजा की, जाप किया तो संसार की पूजा आराधना की फिर धर्मध्यान कहाँ रहा? यदि केवल विकल्प होने से कषाय कहते हो तो केवली के भी मन वचन काय की क्रिया होने से केवली को भी कषायवान मानो यदि ये भावनायें राग रूप ही हैं तो क्या वर्ष में आप तीन बार एक एक महीने लगातार राग की, कषाय की पूजा आराधना करते हैं तो जैनधर्म कैसा, मोक्षमार्ग कैसा? अतः इन्हीं सोलहकारण रूप परिणामों से असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होती है, सातिशय पाप कर्मों का, पाप परिणामों का संवर होता है। इन भावनाओं का अनादि मिथ्यादृष्टि या सादिमिथ्यादृष्टि जीव चिन्तन, पूजन आराधना करता है तो रत्नत्रय प्राप्त करता है और सम्यग्दृष्टि विचारता है तो रत्नत्रय धर्म की तुष्टि पुष्टि करता है। अन्यथा उपरोक्त आपत्तियां ही आपत्तियां हैं उसे कौन टाल सकता है।

प्र.651–ये भावनायें रागरूप, लोभरूप ही है ऐसा स्वीकार क्यों नहीं करते हो?

उत्तर–नहीं, हम स्वीकार नहीं करते क्योंकि विकल्पात्मक होने से, ईहामतिज्ञानादि को, श्रुतज्ञान को अथवा साकारोपयोग होने से समग्र ज्ञान को रागरूप कषाय मानने का प्रसंग आयेगा अथवा गुणों में संक्रमण होने से संकर, व्यतिकर दोष आता है या दोक्रियावादी का प्रसंग आता है। इस कारण हम नहीं मानते अथवा दो की एक क्रिया या एक की दो क्रिया किसी भी काल में नहीं हो सकती।

प्र.652–ठीक है राग कषाय न मानकर शुभराग, प्रशस्तराग मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–शुभ के साथ, धर्म के साथ में होने से, राग को शुभानुराग, धर्मानुराग कहा जाता है अथवा शुभ के साथ, धर्म के साथ में होने से राग को शुभ कहा जाता है ऐसा स्वीकार करना चाहिए तथा शुभ ही राग है, धर्म ही राग है या

राग शुभ है, धर्म है ऐसा अर्थ ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि राग शुभ है, प्रशस्त है, धर्म है, पुण्य है तो आपको मोहनीयकर्म में शुभाशुभ भेद करना पड़ेगा तथा मोहनीयकर्म की 28 उत्तर प्रकृतियों में कौन सी शुभ हैं और कौन सी अशुभ? मोहनीय कर्म का प्रकृति बन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभाग बन्ध, प्रदेशबन्ध में कौन सा भाग पुण्य है और कौन सा पाप है? त. सू. आ.8 **'अतोऽन्यत् पापम्'**—साता वेदनीय, शुभायु, शुभनाम उच्चगोत्र के अलावा शेष अघातिकर्मों की प्रकृतियां तथा समस्त घातिकर्म पाप रूप ही है। ऐसा सूत्र वचन है। जब समस्त घातिया कर्म पाप रूप ही है तो उसमें पुण्य पाप, शुभाशुभ, प्रशस्ताप्रशस्त भेद करना क्या जिनवाणी का अवर्णवाद नहीं है? इसलिए शुभ शुभ है, धर्म धर्म है, राग राग है, राग शुभ नहीं है, धर्म नहीं और यदि केवल विकल्प होने से कषाय कहते हो तो केवली के भी मन वचन काय की क्रिया होने से केवली को भी कषायवान मानना होगा? यदि ये भावनायें राग रूप ही हैं तो क्या वर्ष में आप तीन बार एक एक महीने लगातार राग की, कषाय की पूजा करते हैं? राग की, कषाय की, मोह की, पाप की, संसार की पूजा करना है तो जैनधर्म कैसा, मोक्षमार्ग कैसा? अतः इन्हीं सोलहकारण रूप परिणामों से असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होती है, सातिशय पाप कर्मों का, पाप परिणामों का संवर होता है। इन भावनाओं का अनादि मिथ्यादृष्टि या सादिमिथ्यादृष्टि जीव चिन्तन करता है, पूजा आराधना करता है तो रत्नत्रय प्राप्त करता है और सम्यग्दृष्टि विचारता है तो रत्नत्रय धर्म की तुष्टि पुष्टि करता है। अन्यथा उपरोक्त आपत्तियां ही आपत्तियां हैं उसे कौन टाल सकता है? निश्चयधर्म और व्यवहारधर्म राग नहीं। रागपद के पीछे 'अनु' उपसर्ग लगा हुआ है जिसका अर्थ होता है पीछे। अनुगामिनी, अनुचर, पीछे गमन करने वाली, पीछे गमन करने वाला सेवक। **'वादिराजमनु शाब्दिक लोकः'** सभी वैयाकरण आ० श्री वादिराज से पीछे हैं (एकीभाव स्तोत्र)। इस कारण राग तो पाप रूप ही है उस राग को साहचर्य से कुछ भी नाम दिया जाय। उपचारनय व्यवहारनय की अपेक्षा ही समीचीन है, सम्यक् है।

प्र.653—राग पद से मोहनीय कर्म की किन किन प्रकृतियों को ग्रहण करना चाहिए और द्वेष पद से किन किनको?

उत्तर—अनन्तानुबंधी कषाय माया और लोभ, अप्रत्याख्यानावरणीय माया और लोभ, प्रत्याख्यानावरणीय माया और लोभ, संज्वलन माया और लोभ ये 8, हास्य, रति, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेद ये सब तेरह राग रूप हैं, इनसे शेष बचीं 12 द्वेष प्रकृतियां हैं। मोहपद से दर्शनमोह की तीन को ग्रहण करना चाहिए। इस तरह समग्र मोहनीय कर्म बन्ध उदय और सत्त्व की अपेक्षा पापरूप ही है। बन्ध और उदय का परिणाम पाप रूप ही है। इस कारण तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध भक्तिभाव से, रत्नत्रय संबंधी क्रियाओं से, धर्मध्यान से, सोलहकारण भावनाओं से होता है न कि विषयकषायों से।

प्र.654—रत्नत्रय के सद्भाव में योग और कषायों के बिना तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हो सकता है क्या?

उत्तर—जिस प्रकार रत्नत्रय के सद्भाव में योग और कषायों के बिना तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध नहीं होता है उसी प्रकार रत्नत्रय के बिना योग और कषायों से भी तीर्थंकर प्रकृति का आश्रव बन्ध नहीं होता है। यदि योग और कषायों से तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध माना जाय तो प्रथमादि गुणस्थानों में भी बन्ध मानना पड़ेगा। यदि दोनों के मौजूद होने पर बन्ध होता है ऐसा माना जाता है तो आठवें गुणस्थान के सातवें भाग से आगे भी दसवें गुणस्थान तक रत्नत्रय और योग कषायों के मौजूद होने पर भी बन्ध होना चाहिए परन्तु होता नहीं है ऐसा सिद्धांत वचन है। अतः उन तीनों के सद्भाव में यथायोग्य मात्रानुसार दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है, अन्यथा नहीं क्योंकि प्रत्येक कार्य के लिये सामान्य और विशेष प्रत्यय होते हैं। सामान्य प्रत्ययों के होने पर कार्य होने का नियम नहीं है किंतु विशेष प्रत्ययों के होने पर कार्य नियम से होता है कोई टाल नहीं सकता। कार्य के प्रति विशेष प्रत्यय ही समर्थ कारण है, प्रधान/मुख्य कारण है और कार्य के प्रति सामान्य प्रत्यय सहायक/अप्रधान/गौण कारण है।

प्र.655—राग के शुभाशुभादि भेद नहीं हैं तो आ० ने शास्त्रों में क्यों लिखे? हैं तभी तो लिखे, अतः विश्वास करना चाहिए?

उत्तर—नहीं, जो शास्त्रों में नाम आये हैं वे व्यवहारनय से, उपचारनय से आये हैं। आपने व्यवहारनय के कथन को निश्चयनय का कथन समझ लिया है। यदि आप ऐसा ही विश्वास करते हैं तो आपको घातिया कर्मों की मूलोत्तर

प्रकृतियों में शुभाशुभ आदि भेद करने पड़ेंगे और बताना होगा कि मोहकर्म की यह प्रकृति शुभ है और यह अशुभ। किन्तु कर्मग्रंथों में घातियाकर्मों को पापरूप ही प्रतिपादित किया है।

प्र.656–पुण्य रूप कौन कौन सी प्रकृतियां हैं?

उत्तर–सातावेदनीय, तिर्यंच, मनुष्य और देवायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पंचेंद्रिय जाति, औदारिकादि 5 शरीर, औदारिकादि 5 बन्धन, औदारिकादि 5 संघातकर्म प्रकृति, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक आंगोपांग, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, अगुरुलघु, परघात, आतप, उच्छ्वास, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थंकर प्रकृति ये सब भेद विवक्षा में 68 प्रकृतियां तथा अभेद विवक्षा में 42 प्रकृतियां पुण्य रूप कही हैं। 'क.का. 41–42।'

प्र.657–पाप प्रकृतियां कौन कौन सी हैं?

उत्तर–मोहनीय की 28, ज्ञानावरण की 5, दर्शनावरण की 9, अन्तराय की 5, नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेंद्रियादि 4 जाति, संस्थान 5, संहनन 5, वर्णादि 4, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर अनादेय और अयशस्कीर्ति ये सब अप्रशस्त पापरूप प्रकृतियां हैं। क० का० 43–44।

प्र.658–तो फिर ये पुण्य पाप भेद किन कर्मों के हैं?

उत्तर–**'सद्वेद्य शुभायुर्नाम गोत्राणि पुण्यम्।'** सातावेदनीय, शुभायु, शुभनाम, और उच्चगोत्र ये अघातिया कर्मों में पुण्यरूप तथा **'अतोन्यत् पापम्।'** शेष समस्त घाति अघाति कर्म प्रकृतियां पापरूप ही हैं।

प्र.659–सातिशय तीर्थंकरादि पुण्य प्रकृतियां भी कभी अशुभ होतीं हैं क्या?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही अशुभरूप भी होती हैं। जैसे सातिशय पुण्य स्वरूप तीर्थंकर प्रकृति को स्थितिबंध की अपेक्षा अशुभ कहा है, अप्रशस्त कहा है क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके बद्धायुष्क जीव को सागरों पर्यंत देवों में, सागरों, पल्यों या हजारों वर्षों तक नारकियों में न रहना पड़ता किंतु पहले ही कर्मों को क्षय करके मोक्ष चले जाते। अतः स्थितिबंध की अपेक्षा पुण्य कर्मों को भी अशुभरूप कहा है।

प्र. 660–जिस प्रकार तीर्थंकरादि पुण्य प्रकृतियों को स्थिति बंध की अपेक्षा अशुभ कहा उसी प्रकार पाप प्रकृतियों को भी पुण्य प्रकृति कहने में क्या दोष है?

उत्तर–नहीं कह सकते हैं। क्यों नहीं कह सकते हो? क्योंकि घातियाकर्म कभी भी, किसी भी द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा आत्म साधना में, आत्मकल्याण में, मोक्षमार्ग में, सुखशांति में सहायक नहीं होता किन्तु बाधक ही होता है। अतः जो आत्मकल्याण में बाधक हो उसे शुभ, पुण्य, मंगल कैसे कह सकते हैं आप ही बताओ? कदाचित् आत्मसाधना में सहायक न बने तो कोई बात नहीं किंतु बाधक तो न बने। समस्त योनियों में, समस्त गतियों में आत्मध्यान के लिए बाधक ही कहा है इस कारण घातियाकर्म कार्यकारण भाव से पापरूप ही है।

प्र. 661–तो फिर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किससे होता है?

उत्तर–तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध सोलहकारण भावनाओं से होता है। हाँ, इतना अवश्य है कि इन भावनाओं का चिन्तन करते समय कषाय अपने अपने गुणस्थानानुसार तीव्र मन्द हो सकती है तभी तो स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध में तथा इनके उदयकाल में अन्तर शास्त्रों से जाना जाता है ये भावनायें क्षायोपशमिक भाव है, औदयिक नहीं।

प्र.662–अभव्यभाव पारिणामिक भाव है या अन्य कोई?

उत्तर–अभव्यभाव घातियाकर्मों के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम से नहीं होता इसलिए पारिणामिक भाव है तथा अघातियाकर्मोदय से असिद्धत्त्व के साथ में होने से औदयिक भाव है। अतः अभव्यभाव अपेक्षाकृत दोनों रूप में है।

प्र.663–अभव्यभाव द्रव्यरूप है या पर्यायरूप?

उत्तर –अभव्यभाव पारिणामिक भाव की अपेक्षा द्रव्य रूप और औदयिक भाव की अपेक्षा पर्याय रूप है।

प्र.664–अभव्यभाव निमित्त नैमित्तिक रूप है क्या?

उत्तर–अभव्यभाव पारिणामिक भाव की अपेक्षा निमित्त नैमित्तिक संबंध से रहित है और औदयिक भाव की अपेक्षा निमित्त नैमित्तिक संबध रूप है। पूर्वबद्ध कर्मोदय से होता है इसलिए नैमित्तिक है तथा नवीन कर्म बंध के लिए कारण है अतः निमित्त रूप है।

प्र.665–अभव्यभाव किस ज्ञान का विषय है और किस ज्ञान का नहीं?

उत्तर–अभव्यभाव एकमात्र केवलज्ञान का विषय है, अन्य ज्ञानों का नहीं।

प्र.666–शेष ज्ञानों का विषय क्यों नहीं है?

उत्तर–क्योंकि अभव्यभाव पारिणामिकभाव है अत्यन्त सूक्ष्म है, अमूर्तिक है, अरूपी है। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान रूपी पदार्थों को जानते हैं। मतिज्ञान श्रुतज्ञान द्रव्यों को और उनकी कुछ ही पर्यायों को परोक्ष रूप से जानते हैं। अतः इन ज्ञानों का विषय नहीं है। यद्यपि संसारी जीव कर्मसापेक्ष मूर्तिक होने से कदाचित् सर्वावधि, परमावधि और मनःपर्यय ज्ञान का विषय हो सकता है फिर भी ये ज्ञान आत्मा को साक्षात् रूप से नहीं जानते किंतु सर्वप्रथम कर्म पुद्गल पिंड को जानते हैं। बाद में कर्म के साहचर्य से आत्मा में विकार किस रूप में है या नहीं आदि अवस्था को जानते हैं।

प्र.667–अभव्यभाव किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस भाव से जीव ने रत्नत्रय को न प्राप्त किया है, न किया था और न करेगा उसे अभव्य भाव कहते हैं।

प्र.668–शास्त्रों में अश्रद्धानी को अभव्य नाम से कहा है जैसे अभव्यसेन यह ठीक है क्या?

उत्तर –शास्त्रों में समीचीन देव शास्त्र गुरु पर, अनन्त धर्मात्मक आत्म वस्तु पर, यथायोग्य विश्वास, श्रद्धान न करने वालों को ताड़ना रूप से अभव्य कहा है। पारिणामिकभाव वाला नहीं। क्योंकि भव्यसेन मुनि ने समस्त द्वादशांग रूप से शास्त्रों का पठन किया, पाठन कराया फिर भी सत्श्रद्धान न होने से, आचरण में न लाने से क्षुल्लकजी ने अभव्यसेन नाम रखा था।

प्र.669–यह कैसे जाना कि भव्यसेन का अभव्यसेन नाम रखा था?

उत्तर–कथा से जाना जाता है कि जब क्षुल्लकजी ने परीक्षा ली और भव्यसेन मुनि परीक्षा में फेल हो गये तब क्षुल्लकजी ने भव्यसेन मुनि को अभव्यसेन कहा था। मनुष्य अभव्यजीव के श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का उत्कृष्ट क्षयोपशम ग्यारह अंग और नौ पूर्व तक तथा अहमिंद्र अभव्य जीव के समस्त द्वादशांग का होता है किंतु अभव्यसेन द्वादशांग के पाठी थे ऐसा आ० श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने भावप्राभृत में कहा है–:

'अंगाई दस य दुण्णि य चउदस पुव्वाईं सयल सुयणाणं।
पढियो अभव्वसेणो ण भाव सवणत्तणं पत्तो'।

(भा. पा. गा. 52 की टीका पृ. 319)

अभव्यसेनमुनि ने 12 अंग और 14 पूर्वरूपी समस्त श्रुतज्ञान को पढ़ा फिर भी भावश्रमण न बन पाया।

केवलि जिण पण्णत्तं एयारस अंग सयल सुयणाणं।

भा. पा. गा. 52 का पूर्वार्ध इस प्रकार है कि भव्यसेन मुनि ने केवली प्रणीत 11 अंग रूप समस्त श्रुतज्ञान का अध्ययन किया था।

'ततस्तं मिथ्यादृष्टिं द्रव्यलिंगिनं ज्ञात्वा भव्यसेनस्थाभव्यसेनोऽयम् इति नामान्तरं चकार'।

सत्श्रद्धान न होने के कारण क्षुल्लकजी ने द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि जानकर भव्यसेन का दूसरा नाम अभव्यसेन रखा। इसी तरह जब अपने घरों में बच्चे, बहू, बेटी उल्टी कुचाल चलते हैं तो माँ बाप खूब समझाते हैं, समझाने पर भी नहीं मानते तो माँ बाप उसकी धर्म से, जातिकुल से विपरीत चर्या को, कुचाल को निकालने के लिए तूं मर जा, तेरा काला मुँह हो, तेरा मुंह नहीं देखना, हमारे यहाँ क्यों पैदा हुआ, बिना सन्तान के अच्छे थे आदि बोलते हैं। अब जरा सोचो यदि परिवार नहीं चाहिए तो शादी क्यों की? बह्मचर्य का पालन करते। जन्म देकर इतना क्यों कष्ट उठाया? अतः माँ बाप को अपनी जाति कुल की निर्दोषता से, सन्तान के सही आचरण से प्रेम है, प्रसन्न है, गलत आचरण से नहीं। इस कारण माँ बाप गलत आचरण को दूर करने के लिए अनेकवार समझाने के बाद में अपशब्दों का प्रयोग करते हैं। इसी तरह गुरुजन भी धर्म के, मोक्षमार्ग के दर्शायक माता पिता हैं अतः शिष्यों की गलत चर्या को देखकर उस चर्या को निकालने के लिए अभव्य है, मिथ्यादृष्टि है, पापी है आदि शब्दों का प्रयोग किया। भाषासमिति वाले दिगम्बराचार्य गृहस्थों जैसे शब्दों का उच्चारण तो कर नहीं सकते क्योंकि गुरुजन समितियों का पालन करते हैं।

प्र.670–अभव्यजीव को श्री सम्मेदशिखरजी पर्वत के दर्शन होते हैं या नहीं?

उत्तर–अभव्यजीव को श्रीसम्मेदशिखर पर्वत के दर्शन अवश्य होते हैं क्योंकि जब वह समवशरण की सातवीं भूमि भव्यकूट

तक चला जाता है, इसके आगे नहीं जा पाता क्योंकि भव्यकूट को देखकर अन्धा हो जाता है अर्थात् पर्वत पर पहुंच कर भी साक्षात् जिनेन्द्र के दर्शन नहीं कर पाता किन्तु पर्वत पर तो पहुंच ही जाता है तो पर्वत को आँखों से अवश्य ही देखता है।

'भव्यकूटाख्यया स्तूपा भास्वत्कूटास्ततोऽपरे।
यानभव्या न पश्यन्ति प्रभावान्धीकृते क्षणाः।।'

(ह०पु० अ० 57 गाथा 104)

अभव्य जीव भव्यकूट नाम के स्तूप को नहीं देख पाते हैं क्योंकि उसके प्रभाव से अंधे हो जाते हैं।

प्र.671–अभव्य जीवों को श्रीसम्मेदशिखर के दर्शन नहीं होते हैं ऐसा कहना क्या ठीक है?

उत्तर–दिगम्बराचार्यों ने जिन शास्त्रों में अभव्यजीव को श्री सम्मेदशिखर के दर्शन का निषेध किया है सो वहाँ पर दर्शन पद से सम्यग्दर्शन को कहा है किन्तु आंखों से देखना चक्षुदर्शन नहीं। यदि आँखों से देखने का निषेध किया होता तो वह समवशरण की सातवीं भूमि तक कैसे चला जाता?

प्र.672–ढाईद्वीप में कितने सम्मेदशिखर पर्वत हैं?

उत्तर–समस्त ढाईद्वीप के अन्दर धर्मक्षेत्र 170 सम्मेदशिखर पर्वत होने चाहिए क्योंकि एकसमय में एकसाथ दो तीन और पंचकल्याणक वाले 170 तीर्थंकर हो सकते हैं क्योंकि इन्द्रियों के समान स्वतंत्र इन्द्र 170 समवशरण की रचना कर सकता है। कहा भी है **–ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानाम्** जिनवल्लभ 170 तीर्थंकरों का जो ध्यान करते हैं। समस्त पंचकल्याणक वाले तीर्थंकरों का जन्मस्थान अयोध्या तथा निर्वाण क्षेत्र श्री सम्मेदशिखर है तब इतने क्षेत्रों में भी अभव्य जीवों को स्पर्श और निवासस्थान से वंचित रखना पड़ेगा। जो सिद्धांत विरोध है अतः सूत्रग्रंथ सर्वत्र प्रमाण हैं। जम्बूद्वीप के आर्यखंड में कदाचित् जन्मस्थान अयोध्या और निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर है तो सर्वत्र क्षेत्रों में तीर्थंकरों के जन्मस्थान और निर्वाण स्थान का नाम यही होना चाहिए यह कोई जरूरी नहीं है नाम कुछ भी हो सकता है किंतु क्षेत्रों का प्रमाण यही रहेगा। जन्म नगरी की रचना इन्द्र की आज्ञा से कुबेर करता है इस कारण जन्मस्थान और निर्वाणस्थान एक ही प्रमाण में अवस्थित हैं।

प्र.673–उन सभी सम्मेदशिखर पर्वतों का विस्तार कितना है?

उत्तर–जितना जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र संबंधी सम्मेदशिखर का विस्तार है उतना ही ऐरावतक्षेत्र के सम्मेदशिखर का है इससे दुगुना विस्तार धातकीखण्ड के उभय दिशाओं के पर्वतों का है तथा धातकीखण्ड के समान पुष्करार्धद्वीप के सम्मेदशिखर का विस्तार है जब इन पर्वतों का इतना विस्तार है तो समस्त लोक को अभव्य जीवों ने स्पर्श किया है और निवास किया है तथा जन्म मरण किया है। यदि आचार्य ऐसा कहते कि अभव्य जीवों ने कुछ कम लोक का स्पर्श किया है और निवास किया है तो कम कहने से सम्पूर्ण सम्मेद शिखर पर्वतों को छोड़ दिया जाता और कहना सही हो जाता कि अभव्यजीव सम्मेद शिखर की सीमा में न जन्म मरण करता है, न जाता है। अतः बुद्धिमानों को आगमानुसार निष्पक्ष होकर विवक्षावश अर्थ समझना चाहिए। विदेहक्षेत्र के सम्मेदशिखर के प्रमाण में परिवर्तन नहीं होता है।

प्र.674–तो उन कथाग्रन्थों और माहात्म्य ग्रन्थों पर किस प्रकार विश्वास करें?

उत्तर–उन उपदेशों को सम्बोधन रूप में, प्रेरणा रूप में, आज्ञार्थक समझना चाहिए। हे जीव ! तूं भव्य है, होनहार है, तेरा सातिशय पाप घटेगा, पुण्य बढ़ेगा। श्री सम्मेदशिखर की यात्रा कर अपने जीवन को सफल कर, धन को, समय को सदोपयोग में लगा, अन्यथा तेरा सारा जीवन, धन, समय व्यर्थ है, अभव्य है, अश्रद्धानी है, मिथ्यादृष्टि है, पापी है, यदि यात्रा कर आया तो भरपूर प्रशंसा की, उत्साहित किया, आपने धर्म की प्रभावना की, व्यवहार धर्म फैलाया। कदाचित् स्वास्थ्य की, धन की हानि हुई तो भी उसको पूर्व कर्म की प्रबलता बताकर यदि घर में रहते तो क्या यह घटना नहीं घटती या व्यापार में हानि नहीं होती? देखो जब तीर्थंकर श्री आदिनाथ, श्री पार्श्वनाथजी ने तीव्र कषाय पूर्वक कर्म को निधत्ति, निकाचित रूप से बांधा था तो उस कर्म ने उदय और उदीरणानुसार अपना फल दिया पर धैर्य रखो, पुरुषार्थ करो, हार कर्म की ही होगी अपना मार्ग मत छोड़ो आदि हेतुओं से सम्बोधन करते हैं जैसे दौड़ते हुये बच्चे को रास्ते में कहीं ठोकर लग जाये या गिर पड़े तो उसे उठाकर, हाथ पीठ पर रखकर धन्यवाद देते हैं, बहुत अच्छा हुआ, घोड़ा कूदा, बन्दर उछला, तब बच्चा हंसकर चला जाता है। यदि उस बच्चे

की हंसी कर दी तो बच्चा गाली देगा, पत्थर मारेगा, रोयेगा, दुःखी होगा इसी तरह कमजोर हृदयवालों को भी उत्साहित करते हैं अथवा वह वचन वीररस का समझना चाहिए जैसे तूं भव्य है, सम्यग्दृष्टि है, धर्मात्मा है, पुण्यात्मा है तब वह अपनी प्रशंसा सुनकर, कर्तव्य को पहंचान कर, अपनी शक्ति को, महानता को जानकर यात्रा के लिए, दर्शन पूजन के लिए चल देता है जैसे दो मल्ल कुश्ती लड़ रहे थे तब शूद्रमल्ल ने क्षत्रीमल्ल को नीचे दबा लिया और क्षत्री के सीने पर जा चढ़ा उस समय देखने वालों ने क्षत्री को जाति कुल का, शक्ति का परिचय कराया और ऊपर चढ़ा मल्ल शूद्र है, नीच है आदि शब्दों से जब क्षत्री को ज्ञान हुआ तब क्षत्री को जोश आया और एकदम से जोर लगाकर शूद्र को नीचे कर उसके सीने पर चढ़कर बैठ गया इसी तरह जो जीव गलत मार्ग में गलत आचरण करता है तब उसे अभव्यमिथ्यादृष्टि कहकर उसके अहंकार को, मोह को छुड़ाया जैसे इन्द्र ने युक्ति से इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति को मानस्तम्भ के दर्शन कराकर महावीर भगवान के पास ले गया तथा भगवान महावीर को देखकर मुनि दीक्षा ली, चार ज्ञान के धारी होकर गणधर बने बाद में कर्मों को क्षयकर गुणावांजी से मोक्ष पधारे। अथवा जैसे कुम्हार टेड़े बेडोल घड़े को पीट पीटकर सुन्दर बनाता है उसी तरह आचार्यों ने दुःखी प्राणियों को सन्मार्ग में लगाया।

प्र.675–सभी निर्वाणक्षेत्र समान होते हैं या असमान?

उत्तर–हाँ, निर्वाण क्षेत्र निर्वाण की अपेक्षा समान होते हैं किंतु यहाँ के निर्वाण क्षेत्र लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई, रूप गंधादि में असमानता होती है यदि सर्वथा असमान हो तो क्षेत्र मंगल में असमानता मानने का प्रसंग आयेगा? फिर मुनियों के ध्यान, तपादि में, शक्ति में भी अन्तर मानना पड़ेगा जो ठीक नहीं है किन्तु बाह्य वैभव समवशरण आदि की रचना में असमानता है। क्योंकि तीर्थंकरों की 12 सभा और सामान्य केवलियों की गन्धकुटी की अपेक्षा अन्तर है फिर भी धर्मोपदेश में अंतर नहीं है। इस कारण सभी निर्वाण क्षेत्र समान और असमान हैं।

प्र.676–सभी निर्वाण क्षेत्रों की महिमा में क्या अन्तर है?

उत्तर–सभी निर्वाण क्षेत्रों की महिमा में कोई अन्तर नहीं है, समानता है वह क्षेत्र तो आकाशप्रदेश है। आकाश प्रदेश अनादिकाल से अनन्तकाल तक शुद्ध रहेंगे इसमें अशुद्ध परिणमन नहीं होता है यह ध्रुव नियम है। परन्तु आकाश प्रदेशों को आधार बनाकर ठहरी हुई पृथ्वी शुद्धात्मध्यानी मंगलभूत आत्माओं के साहचर्य से, माध्यम से मंगलक्षेत्र तथा पापी, दुराचारी, अत्याचारी जीवों के माध्यम से, साहचर्य से वह भूमि अमंगल कहलाती है। अतः क्षेत्रों की महिमा में अन्तर नहीं है तथा बाह्य वैभव साधनाकाल में या गुणस्थान और संहनन के अनुसार परिणामों की मात्रा में अन्तर होने से अन्तर भी है।

प्र.677–यदि अंतर है तो आचार्यों को कथन करना चाहिए?

उत्तर–जब आचार्यों ने क्षेत्र मंगल का वर्णन किया है तब वहाँ ऐसा नहीं कहा है कि यह क्षेत्र मंगल है और यह नहीं है या कम मंगल है और ज्यादा मंगल है फिर भी चार परमेष्ठी अपनी अपनी साधनानुसार समान असमान होने से महिमा में अन्तर है और निर्वाण क्षेत्र और अतिशय क्षेत्र की अपेक्षा क्षेत्र दो प्रकार के हैं और दोनों प्रकार के क्षेत्रों की महिमा में अंतर अवश्य है जो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है।

प्र.678–अभव्य जीवों ने कितने क्षेत्र का स्पर्श और कितने क्षेत्र में निवास किया है?

उत्तर–अभवसिद्धिएहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्व लोगो।। सत्थाण वेयण कसाय मारणंतिय उववादपरिणदेहि तिसुवि कालेसु सव्व लोगो फोसदो। सूत्र 166 ध. पु. 4 पृ.301 **'फोसणाणुगमे भवमग्गणा'** अभव्य जीवों ने भूतकाल और भावीकाल में भी समस्त लोक स्पर्श किया है। यह स्पर्श स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद परिणत अभव्यसिद्धिक जीवों ने वर्तमान काल में सामान्यादि तीनों लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का भी असंख्यातवां भाग और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। **अभव्यैः सर्वलोकः स्पृष्टः।** अभव्य जीवों के द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। स०सि० कारिका 86 पृ 39 **तदेव स्पर्शनं त्रिकाल गोचरम्।** त्रिकाल विषयक उसी निवास को स्पर्शन कहते हैं। कारिका 33 पृ० 21। **अभवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवडिखेत्ते? सव्वलोए।।** सू०78 ध० पु० 4 पृ०132 अभव्य जीवों ने समस्त क्षेत्र में निवास किया है। यह निवास क्षेत्र स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पद को प्राप्त अभव्यसिद्धिक जीव सर्वलोक में रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक पद स्थित

अभव्यसिद्धिक जीव ने सामान्यादि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यात गुणे क्षेत्र में निवास किया है **'अभव्यानां सर्वलोकः।।8।।'** अभव्य जीव सर्व लोक में रहते हैं। **क्षेत्रं निवासो वर्तमानकाल विषयः।।** वर्तमानकाल विषयक निवास को क्षेत्र कहते हैं। जब इसप्रकार का विधान सूत्र ग्रन्थों में पाया जा रहा है कि अभव्य जीवों ने ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र को स्पर्श किया है और निवास किया है तब भरतक्षेत्र संबंधी श्री सम्मेदशिखरजी पर्वत का विस्तार 96 मील लम्बा और 72 मील चौड़ा अर्थात् 153 कि.मी. 3 फर्लांग लम्बा तथा 115 कि.मी. 1 फर्लांग चौड़ा इतना क्षेत्र कैसे बच जायेगा?

प्र.679—अभव्यजीवों के ज्ञानावरणकर्म का उत्कृष्ट और जघन्य क्षयोपशम कितना होता है?

उत्तर—ग्रैवेयकों की अपेक्षा अहमिन्द्रों के पूर्ण द्वादशांग का ज्ञान तथा मनुष्यगति में मुनिपद की अपेक्षा पूर्ण द्वादशांग का या 11 अंग 9 पूर्व का ज्ञान होता है इससे ज्यादा नहीं और कम से कम सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जन्म लेने के अंतिम भव में स्थित तीन मोड़े लेकर जन्म लेने वाले के प्रथम मोड़े में सर्व जघन्य लब्ध्यक्षर नित्य उद्घाटित निरावरण स्पर्शनेंद्रियजन्य मतिज्ञान श्रुतज्ञान होते हैं।

प्र.680—जीव० गा० 320 में सूक्ष्म निगोदिया जीव के ज्ञान को निरावरण क्यों कहा?

उत्तर—सूक्ष्म निगोदिया जीव के अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान को निरावरण कहा है वह बंध और सत्त्वकरण की अपेक्षा से नहीं किन्तु उदय की अपेक्षा से कहा है। जैसे दीपक का प्रकाश चारों तरफ फैलता है किन्तु दीपक के नीचे अंधेरा रहता है इसी तरह सूक्ष्म निगोदिया जीव के लब्ध्यक्षर ज्ञान को निरावरण कहा है। यह ज्ञान निरावरण होने पर भी क्षायिक केवलज्ञान नहीं है, न क्षायिक केवलज्ञान का अंश है किन्तु क्षायोपशमिक मिथ्यामतिज्ञान, मिथ्याश्रुतज्ञान है, पर्यायज्ञान है। यदि निरावरण का अर्थ सर्वथा आवरण रहित किया जाय तो उसे क्षायिक केवलज्ञान कहना चाहिए और निगोदिया जीव के क्षायिक केवलज्ञान का अंश माना जाय तो उसे वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशीपना भी स्वीकार करो। तब केवलज्ञानावरण कर्म को सर्वघाति कर्म क्यों कहा? क्या सर्वघाती कर्म अपना घातने का कार्य पूर्णरूप से करता है या देशरूप से? क्या निगोदिया जीव के केवलज्ञानावरण का बन्ध उदय सत्त्व नहीं है। यदि सर्वघाती प्रकृति के उदय होने पर भी आत्मविकास, आत्मगुणों की उत्पत्ति सम्भव है तो सर्वघाती और देशघाती प्रकृतियों में क्या अंतर रह गया? जब निगोदिया जीव के सर्वघाती केवलज्ञानावरण कर्म का बंध उदय और सत्त्व चालू है तो यहां पर निरावरण पद का अर्थ कुछ भिन्न ही होना चाहिए। निरावरण का अर्थ आवरण रहित अर्थात् उदय का अभाव है, सत्त्व का, बन्ध का अभाव नहीं जैसे क्षय दो प्रकार का कहा है, एक तो सत्त्व का अभाव, दूसरा उदय का अभाव उदयाभावी क्षय। इसी तरह निरावरण आवरण रहित। अर्थ :—उदय रहित आवरण और सत्त्व रहित आवरण निरावरण। त.सू. अ. 8 **नाम प्रत्ययाः सर्वतो योग विशेषात् सूक्ष्मैक क्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्म प्रदेशेष्वनन्तानन्त प्रदेशाः।'** समस्त आत्म प्रदेशों में अनन्तानन्त कर्म प्रदेश बंध और सत्त्व रूप से विद्यमान है, केवल उतने अंशों में उदय नहीं है अथवा अत्यन्त जघन्य उदय अपने स्थान पर कार्यकारी नहीं होता है जैसे दसवें गुणस्थान में सूक्ष्मलोभ का उदय और सत्त्व है पर तद्रूप परिणति न होने से आश्रवबंध नहीं होता है। क्या सर्वघाती प्रकृतियों का क्षय थोड़ा थोड़ा होता है या एकसाथ, एकसमय में, एक ही परिणाम से पूर्णरूप से क्षय को प्राप्त होता है? क्या निगोदिया जीव के क्षय हुआ है? नहीं, तब निगोदिया जीव के निरावरण ज्ञान को मिथ्या मतिज्ञान मिथ्या श्रुतज्ञान कहा है, क्षायिककेवलज्ञान नहीं, केवलज्ञान का अंश नहीं। अतः भ्रम न हो इसलिए **'अर्पितानर्पित सिद्धेः'** सूत्रानुसार शब्दों का, पदों का अर्थ लगाना चाहिए, अपनी इच्छानुसार नहीं।

प्र.681—लब्ध्यक्षरज्ञान किसे कहते हैं और इसको निरावरण क्यों कहा है, क्या उस ज्ञानांश में आवरणकर्म का बंध उदय और सत्त्व है या नहीं?

उत्तर—समूल विनाश रहित सबसे जघन्य ज्ञान को लब्ध्यक्षर ज्ञान कहते हैं यह ज्ञान सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के होता है अथवा क्षायिक केवलज्ञान को लब्ध्यक्षर ज्ञान कहते हैं यह सर्वज्ञकेवली के होता है उस प्रथम लब्ध्यक्षर ज्ञानांश में आवरण कर्म का उदय न होनेसे निरावरण कहा है। बंध सत्त्व की अपेक्षा से नहीं और दूसरे में आवरण कर्म का बंध उदय सत्त्व न होने से लब्ध्यक्षर ज्ञान कहा है क्योंकि विकार रूप में परिणमन होने से आवरण कर्म का बन्ध और सत्त्व मौजूद है। आना आश्रव है, मिल जाना बन्ध है, ठहर जाना सत्त्व है, फल प्रदान करना उदय है, बदल जाना संक्रमण है, घट जाना अपकर्षण है, बढ़ जाना उत्कर्षण है, समय के पहले फल देना उदीरणा

है आदि आवरण कर्म की अवस्थायें आत्मा के समस्त प्रदेशों में तथा समस्त गुण पर्यायों में होती हैं। लब्धिः—प्राप्ति, अक्षरः—विनाश रहित अर्थात् विनाश रहित प्राप्ति को लब्ध्यक्षर कहते हैं यानि विनाश रहित केवलज्ञान की प्राप्ति को लब्ध्यक्षर कहते हैं या सबसे जघन्य अविनाशी ज्ञान को लब्ध्यक्षर ज्ञान कहते हैं।

प्र.682—सूक्ष्मनिगोदियाजीव के क्षायिककेवलज्ञान का अंश मान लो तो क्या आपत्ति है?

उत्तर—महान आपत्ति है जो इसप्रकार है, केवलज्ञान क्षायिकभाव है। मोहनीय कर्म का क्षय होने के बाद 12वें गुणस्थान के अंत में केवलज्ञानावरण कर्म के क्षय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। **'मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलम्।'** त० सू०1 अ० 10 इस केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए कर्मभूमिज, गर्भज आर्य मनुष्य, वज्रवृषभनाराचसंहनन, चरम शरीरीपना, रत्नत्रय धर्म युक्त सकल संयम सहित मुनि पद, शुक्ललेश्या, क्षपकश्रेणी, शुक्लध्यान आदि बहिरंग अंतरंग साधन होना चाहिये तो क्या एकाद साधन निगोदिया जीव के पाये जातो हैं जो इसके क्षायिक केवलज्ञान का अंश माना जाये तो फिर अंशी स्वरूप केवलज्ञान क्यों न माना जाये? इसमें क्या आपत्ति है।

प्र.683—अभव्य जीवों का जैनागम का ज्ञान सम्यक् है या मिथ्या?

उत्तर—अभव्य जीवों का ज्ञान स्वयं के लिए उपयोगी न होने के कारण मिथ्या है और अन्य भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में सहायक होने से, मोक्षमार्ग का प्रतिपादक होने से सम्यक् है। अतः अभव्य जीव का ज्ञान विवक्षावश सम्यक् भी है और मिथ्या भी है, सर्वथा नहीं। जैसे डॉक्टरों के शल्यचिकित्सा के औजार स्वयं न सुखरूप हैं न दुःखरूप हैं किन्तु प्रयोग करने पर प्रारम्भ में दुःख होता है और बाद में बीमारी दूर हो जाने पर सुख होता है। इसी तरह अभव्यजीव का जैनागम का ज्ञान स्वयं में न सम्यक् है न मिथ्या किन्तु उपयोग में न लाने की अपेक्षा मिथ्या है अथवा धर्मोपदेश की अपेक्षा से सम्यक् है।

प्र.684—अभव्य मिथ्यादृष्टि मुनि का धर्मोपदेश समीचीन है तो उसे अज्ञानी क्यों कहा?

उत्तर—अभव्य मिथ्यादृष्टि मुनि का धर्मोपदेश समीचीन होने पर भी स्वयं के लिए हितकारी न होने से, तद्रूप में परिणमन न होने से अज्ञानी कहा है।

प्र.685—अभव्य मुनि अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है तो अनेक भव्य प्राणी उसके संसर्ग से न मोक्ष जा सकते हैं, न मोक्षमार्गी बन सकते हैं?

उत्तर—अभव्य अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव के माध्यम से अनेक भव्यप्राणी रत्नत्रय को प्राप्त कर मोक्ष में चले जाते हैं, मोक्षमार्गी बन जाते हैं पर अभव्य मुनि संसार में ही भटकता रहता है। जैसे पानी का जहाज अनेक यात्रियों को एक किनारे से दूसरे किनारे पर पहुंचा देता है पर स्वयं पानी का उल्लंघन नहीं करता। वैसे ही अभव्य मुनि अपने धर्मोपदेश और निर्दोष चर्या चर्चा के द्वारा अनेक भव्य जीवों को मोक्षमार्गी बनाकर मोक्ष में पहुंचा देता है पर स्वयं संसार समुद्र का उल्लंघन नहीं करता।

प्र.686—अभव्यमुनि किन परिणामों से नवग्रैवेयिक पर्यंत चला जाता है?

उत्तर—अभव्य मनुष्य कर्मभूमिज उत्तम संहनन वाला, त्रिवर्ण वाला मुनि बनकर उत्कृष्ट संयम पालनकर शुक्ल लेश्या के मध्यम अंश से मरण कर जिनमुद्रा के प्रभाव से नौग्रैवेयिक पर्यंत चला जाता है।

प्र.687—अभव्यजीव ऊपर विमानों में शुभोपयोग से जाता है या अशुभोपयोग से?

उत्तर—अभव्यजीव स्वर्ग में भवनत्रिक तथा सौधर्मविमान से लेकर अंतिमग्रैवेयिक पर्यन्त अशुभोपयोग के मध्यम परिणामस्वरूप आर्तध्यान रौद्रध्यानों से या शुभयोग से युक्त जिनेन्द्राज्ञानुसार संयम, तप और व्यवहार धर्मानुकूल आचरण कर स्वर्ग में जन्म धारण करता है, शुभोपयोग से नहीं क्योंकि उपयोग में शुभता शुद्धता रत्नत्रय से आती है।

प्र.688—अभव्य मनुष्य या तिर्यंच किन परिणामों से भवनत्रिक में पैदा होते हैं?

उत्तर—कर्मभूमिज अभव्य मनुष्य या तिर्यंच छहों संहनन वाला, देव शास्त्र गुरु का भक्त, अकाम निर्जरा, बालतप, बालव्रत, अणुव्रती, महाव्रती बनकर अशुभ लेश्याओं के मध्यम अंशों से मरणकर भवनत्रिक में पैदा होते हैं। अथवा रत्नत्रय पूर्वक संयम धारण कर, निर्दोष पालन कर, देवायु का बंध कर, समाधि के समय रत्नत्रय की विराधना कर, घातायुष्क सम्यग्दृष्टि या मुनि मरणकर भवनत्रिक में पैदा होते हैं।

प्र.689—अभव्यमनुष्य या तिर्यंच भवनत्रिकों में शुभोपयोग से पैदा होते है या शुभयोग से?

उत्तर—कर्मभूमिज अभव्य मनुष्य या तिर्यंच भवनत्रिक में शुभयोग से पैदा होते हैं शुभोपयोग से नहीं क्योंकि शुभोपयोग मोक्षमार्गियों के होता है संसारमार्गियों के नहीं।

प्र.690–अभव्य जीवों के पहंचान के चिह्न क्या हैं?

उत्तर–अभव्य जीवों को पहंचानने के लिए छद्मस्थों के पास कोई चिह्न लक्षण या उपाय नहीं है क्योंकि वह पारिणामिक भाव है। एकमात्र केवलज्ञान का विषय है तब उसके बाह्य चिह्न कौन से होंगे यह कहा नहीं जा सकता।

प्र.691–भव्यभाव को सादि सान्त क्यों कहा तथा मोक्षमार्ग और मोक्ष क्या है?

उत्तर–भव्यभाव अनादिकाल से अभव्य के समान था। प्रथम बार रत्नत्रय की प्राप्ति की अपेक्षा सादि कहा और अर्ध पुद्गल परिवर्तन काल के अन्दर मोक्ष प्राप्त होने पर भव्यभाव का अन्त हो जायेगा इसलिए सान्त कहा। अपूर्ण रत्नत्रय का नाम मोक्षमार्ग तथा पूर्ण रत्नत्रय का नाम मोक्ष है।

प्र.692–भव्य भाव कहाँ से प्रारम्भ होता है और कहाँ तक रहता है?

उत्तर–सं० पं० गा. 6 अ. 4 में मिथ्यात्वगुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक भव्य भाव कहा है और प्रा. पं. सं. गा. 36 में मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान अयोग केवली पर्यन्त कहा है।

प्र.693–इन दोनों प्रकार की मान्यताओं में कौनसी सत्य है और कौन असत्य?

उत्तर–ये दोनों मान्यतायें अपेक्षाकृत होने से सत्य हैं क्योंकि मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता का नाम भव्य है। बारहवें के अन्त में तथा तेरहवें के प्रारम्भ में अनन्त चतुष्टयरूप एकदेश भावमोक्ष की प्राप्ति हो जाती है इस अपेक्षा से बारहवें गुणस्थान पर्यन्त भव्य भाव बताया। पूर्ण द्रव्यमोक्ष और पूर्ण भावमोक्ष की प्राप्ति चौदहवें के अंत में होती है अतः इसकी अपेक्षा चौदहवें गुणस्थान तक भव्यभाव कहा।

प्र.694–जो श्रावक या श्राविकायें श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के लिए जाते हैं वे वहाँ पहुंचते ही अंधे हो जाते हैं अशक्त, अत्यधिक बीमार पड़ जाते हैं, मलमूत्र हो जाता है, ऊपर श्राविकायें जाकर मासिकधर्म से हो जाती हैं और भी नाना संकट उपस्थित हो जाते हैं और सीमा के बाहर निकलते ही बिना औषधि या मंत्र तंत्र के स्वस्थ हो जाते हैं तब ऐसे जीवों को भव्य कहें या अभव्य?

उत्तर–पुद्गल विपाकी नामकर्मोदय से नानाप्रकार की शारीरिक अवस्थायें होती हैं तथा आहार विहार अनर्गल परिश्रम करने से, वात पित्त और कफ में परिवर्तन होने से बीमारी पैदा होना, मल मूत्र का वेग रोकने से, समय आगे पीछे होने से, स्थिर अस्थिर नाम कर्मोदय में विषमता होने से स्वास्थ्य की हानि होती है तब ऐसी अवस्था में दर्शन पूजादि नहीं कर पाता वही व्यक्ति बाद में जाकर दर्शन, पूजन, व्रत उपवास, साधूसेवा दान दे देता है यह इसी जीव को पहले दर्शन नहीं हुए थे अब हो गये तो क्या कारण है? क्या भव्यजीव अभव्यजीव में या अभव्यजीव भव्य जीव में बदल जाता है? क्या पारिणामिक भाव में परस्थान परिवर्तन होता है? पर्वत की सीमा पर देवों का निवास है, पहरा लगाते हैं उन्होंने सीमा के अन्दर क्यों आने दिया? श्री सम्मेदशिखर का प्रमाण 96 मील लंबा 72मील चौड़ा हैं। इस कारण इन शारीरिक अवस्थाओं के आधार पर भव्याभव्य का निर्णय नहीं करना चाहिए फिर पहाड़ पर आदिवासी, भील, दुकानदार, कर्मचारी, डोलीवाले, शिकार खेलनेवाले, भिखारी भिखारिन विविध यात्रीगण ऊपर रहकर समस्त पाप करते हैं, तब उनमें कौन सा भाव है इसका पता लगाना अपने लिए जरा कठिन सा प्रतीत होता है। यह केवलज्ञान का विषय है, छद्मस्थ का विषय नहीं है अर्थात् वह जीव भव्य भी हो सकता है और अभव्य भी।

प्र.695–आ. श्री कुन्दकुन्द ने पं. गा. 37 में 'भव्वमभव्वं च' पद के द्वारा सिद्धों में भव्य अभव्यभाव का सद्भाव बताया है और दूसरे ग्रन्थों में अभाव, ये दोनों भाव विरुद्ध स्वभाव वाले होने से एकसाथ नहीं रहते ऐसा कहा है तो यह अन्तर क्यों?

उत्तर–यहाँ पंचास्तिकाय में आ. श्री ने द्रव्य के परिणामी अपरिणामी धर्म की अपेक्षा कथन किया है। शुद्धरूप में परिणमन कर रहे हैं इसलिए भव्य हैं और अशुद्धरूप में परिणमन नहीं करेंगे इसलिए अभव्य हैं। जबकि अन्य ग्रन्थों में आचार्यों ने मोक्षमार्ग में प्रवेश और अप्रवेश की अपेक्षा, रत्नत्रय को प्राप्त करने की योग्यता अयोग्यता तथा पात्रता अपात्रता बताने के लिए कथन किया है अतः कोई विरोध नहीं है।

प्र.696–त. सू. अ.10 सू. 3 में सिद्धों में भव्यपारिणामिक भाव का अभाव क्यों बताया?

उत्तर–सिद्ध भगवन्तों के जो भव्यभाव का अभाव बताया है वह परमपारिणामिक भाव न मानकर अशुद्ध पारिणामिक भाव का अभाव बताया है अथवा असिद्धत्व औदयिक भाव के साथ भव्य भाव को भी औदयिक भाव मानकर

अभाव बताया है अथवा भव्यत्व भाव मोक्ष प्राप्ति का साधन है साध्य नहीं। साध्य के प्राप्त होने पर साधन की क्या जरूरत? फल के परिपक्व होने पर फूल अलग हो जाता है। इसी तरह साध्यभूत मोक्ष प्राप्ति के समय साधनरूप भव्यभाव अभाव को प्राप्त हो जाता है।

प्र.697–क्या तादात्म्य सम्बन्धी सभी भाव आत्मा से पृथक् हो सकते हैं?

उत्तर–क्षायिक भाव किसी भी अवस्था में और किसी भी काल में किसी भी उपाय से अलग नहीं होता। औदयिकभाव, औपशमिक भाव तथा क्षायोपशमिक भावों का अभाव करके ही केवलज्ञानी सर्वदर्शीपना प्राप्त होता है और पारिणामिक भावों में भव्यभाव का अभाव करके तथा जीवत्व के सद्भाव में सिद्धपद प्राप्त होता है। सर्वथा समस्त पारिणामिक भावों का न अभाव होता है न सद्भाव किन्तु कंथचित् सद्भाव रहता है। अभव्यभाव का भंग अनादिअनन्त होता है तथा भव्यभाव अनादि सांत सादि सान्त है यद्यपि अभव्य सम भव्य में रत्नत्रय को उत्पन्न करने की योग्यता है तो भी उत्पन्न नहीं कर पायेगा तब शक्ति की अपेक्षा अनादिसान्त तथा व्यक्त न कर पायेगा अतः अनादि अनन्त भंग बन जाता है।

प्र.698–त०सू० अ० 10 सूत्र 3 निश्चयनय से प्रवृत्त हुआ है या व्यवहार नय से?

उत्तर–यह सूत्र व्यवहारनय से है निश्चयनय से नहीं क्योंकि उत्पाद व्यय व्यवहारनय से है निश्चयनय से नहीं।

प्र.699–भव्यजीवों के और अभव्यजीवों के मिथ्यात्व में क्या अन्तर है?

उत्तर–दोनों जीवों के मिथ्यात्व में, अश्रद्धान में, कोई अन्तर नहीं है। काल की अपेक्षा अभव्यजीव का मिथ्यात्व अनादिअनन्त, भव्यजीव का मिथ्यात्व अनादिअनन्त, अनादिसान्त और सादिसान्त है यही अन्तर है।

प्र.700–भव्यभाव का परिणमन संसारावस्था में किस प्रकार से होता है?

उत्तर–संसारावस्था में भव्यभाव का परिणमन अविश्वास रूप में, अविवेक रूप में, विषय कषायों के रूप में, ख्याति पूजा लाभादि के रूप में, वैर विरोध रूप में परिणमन करता है अथवा भव्य का अर्थ होनहार होने से, ध्येय सम्यक् होने से मोक्षमार्गानुसार और मिथ्या होने से संसारमार्गानुसार परिणमन होता है।

प्र.701–भव्यभाव और अभव्यभाव का सम्बन्ध आत्मा के सर्वांश में है या देशांश में?

उत्तर–हाँ, अगुरुलघुगुण आत्मा के समस्त प्रदेशों में है इसलिए समस्त गुण, धर्म और अंशों में तिल में तेल की तरह, ईंधन में अग्नि की तरह व्याप्त है अतः भव्यभाव और अभव्यभाव सर्वांश में हैं देशांश में नहीं।

प्र.702–दूरानुदूर भव्यों में और अभव्यों में भी शक्ति को व्यक्त करने की योग्यता नहीं है फिर दोनों में क्या अन्तर है?

उत्तर–दूरानुदूर भव्यों में शक्ति को व्यक्त करने की शक्ति है किन्तु अंतरंग बहिरंग समर्थ कारण न मिलने से शक्ति व्यक्त नहीं होगी तथा अभव्यों में शक्ति को व्यक्त करने की योग्यता ही नहीं है यही अंतर है। जैसे विधवा और बांझ। विधवा में या शीलवती में संतानोत्पत्ति की सामर्थ्य है पर ब्रह्मचर्य का संकल्प होने से संतान पैदा नहीं करेगी किंतु बांझ में योग्यता ही नहीं है।

प्र.703–समर्थ कारण किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कारण के सद्भाव में या अभाव में नियम से कार्य के होने का अन्वय व्यतिरेक हो उसे समर्थ कारण कहते हैं। जिस प्रकार उपादान के बिना कार्य नहीं होता है उसी प्रकार समर्थ कारण के बिना भी कार्य नहीं होता है ऐसा नियम है जैसे तीर्थंकर प्रकृति का बंध और क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति केवलियों के पादमूल में ही होने का नियम है इनके बिना नहीं अतः उपादान कारण आत्मा और बाह्य निमित्त कारण इन दोनों को ही अपेक्षानुसार समर्थ कारण कहते हैं।

प्र.704–दान पूजा, स्वाध्याय, यात्रा, प्रतिष्ठा, व्रत उपवासादि शुभकार्यों को सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, भव्य, अभव्य जीव, सैनी पंचेन्द्रिय, चतुर्गति के अधिकतर प्राणी करते हैं तो अभव्य मिथ्यादृष्टि जीवों को भी शुभोपयोग होता है ऐसा न कहकर केवल शुभयोग होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–रत्नत्रय धर्म की उत्पत्ति की, भूमिका की अपेक्षा कार्य कारण या कारण कार्य में अभेद विवक्षा करके दानादि को शुभोपयोग कहा जाता है अन्यथा रत्नत्रय धर्म या भूमिका के बिना केवल शुभयोग कहलाते हैं, शुभोपयोग नहीं

अथवा ये कार्य स्वयं में शुभ अशुभ उपयोग स्वरूप नहीं है किन्तु साहचर्य से शुभ अशुभ उपयोग कहे जाते हैं। वास्तव में ये शुभ अशुभ योग की क्रियायें हैं।

प्र.705–क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तीर्थंकरकेवली, सामान्यकेवली और श्रुतकेवली के पादमूल में होने का नियम है सो ठीक है पर जो तीर्थंकर प्रकृति के सत्तावाले नारकी क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि दूसरे तीसरे नरक से आयेंगे उस समय दोनों केवली नहीं होंगे फिर वे क्षायिक सम्यदर्शन कैसे प्राप्त करेंगे?

उत्तर–जो दूसरे तीसरे नरक से तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले नारकी निकलकर मनुष्य होकर जब मुनि दीक्षा लेंगे तब अनेक ऋद्धियों से संपन्न, मनःपर्यय ज्ञानधारी, द्वादशांग के पाठी स्वयं श्रुतकेवली हुये तब अपने तब अपने ही परिणामों से अपने आप में पूर्ण निर्मल होकर क्षायिकसम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेते हैं।

प्र.706–मिथ्यादृष्टि जीव के शुभोपयोग होता है या नहीं?

उत्तर–नहीं, मिथ्यादृष्टियों के शुभोपयोग नहीं होता है किन्तु शुभयोग होता है।

प्र.707–उपयोग में तीन प्रकार का विभाग या लक्षण किसके माध्यम से होता है?

उत्तर–उपयोग में शुभ और शुद्धता मोक्षमार्ग से तथा संसारमार्ग से अशुभता आती है। जब उपयोग की धारा विषय कषायों के साथ में होती है तब अशुभोपयोग, जब उपयोग की विषय कषायों के त्याग पूर्वक, ख्याति, पूजा, लाभ की दुर्भावना को छोड़कर संयम व्रत चारित्र के साथ धारा होती है वह शुभोपयोग और मोहनीय कर्म और आवरण कर्मों के क्षय से उपयोग शुद्धोपयोग कहलाता है।

प्र.708–शुभयोग का फल क्या है और उपयोगों के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीव के रत्नत्रय न होने से शुभोपयोग नहीं कहा। यह महिमा करण लब्धि रूप शुभयोग की ही है की मिथ्यादृष्टिजीव सातिशय पुण्य को बांधता है, मिथ्यात्व का खण्डन करता है, अनन्तानुबन्धी कषाय की विसंयोजना करता है या उपशमाता है। अशुभोपयोग के स्वामी आदि के तीन या छह गुणस्थान वाले बहिरात्मा, अंतरात्मा, संसारमार्गी और मोक्षमार्गी हैं, शुभोपयोग के स्वामी अव्रतीसम्यग्दृष्टि 4थे गुणस्थान से लेकर क्षीणमोही नामक 12वें गुणस्थान तक, शुद्धोपयोग के स्वामी सयोगीकेवली, अयोगीकेवली और सिद्ध भगवन्त हैं।

प्र.709–उपयोग पद से किसको ग्रहण करना चाहिए?

उत्तर–उपयोग पद से ज्ञान दर्शन को ग्रहण करना चाहिए, शेष अनंत गुणों को नहीं क्योंकि ये अचेतन हैं।

प्र.710–उपयोग का चार प्रकार के ध्यानों में से किस ध्यान में अन्तर्भाव होता है और गुणस्थानों की अपेक्षा उपयोग के स्वामी कौन कौन जीव हैं?

उत्तर–व्यवहारनय से अशुभोपयोग आर्तध्यान और रौद्रध्यान में, शुभोपयोग धर्मध्यान और शुक्लध्यान में तथा शुद्धोपयोग एकमात्र शुक्लध्यान में अन्तर्भाव को प्राप्त होता है अथवा अशुभोपयोग तारतम्यता से हीनतायुक्त तीसरे गुणस्थान तक या छठवें गुणस्थान तक क्योंकि छठवें गुणस्थान तक आर्तध्यान पाया जाता है, शुभोपयोग तारतम्यता से बढ़ता हुआ कषाय सहित तथा रहित चौथे गुणस्थान से लेकर 12वें गुणस्थान तक के जीव तथा शुद्धोपयोग 13वें गुणस्थान से लेकर सिद्धों तक होता है अथवा मोह कर्म के सद्भाव की अपेक्षा 10वें गुणस्थान तक और आवरण कर्म के सद्भाव की अपेक्षा 12वें गुणस्थान तक शुभोपयोग पाया जाता है। शुद्धोपयोग मोह कर्म के अभाव की अपेक्षा 11वें गुणस्थान से और आवरण कर्म के अभाव की अपेक्षा 13वें गुणस्थान से प्रारंभ होकर सिद्धों तक रहता है।

प्र.711–यहाँ उपयोग और ध्यान का कथन दो प्रकार से क्यों किया?

उत्तर–ऊपर केवलियों के जो शुद्धोपयोग कहा है वह क्षायिक शुद्धोपयोग की अपेक्षा तथा छद्मस्थवीतरागियों के जो शुद्धोपयोग का विधान किया है वह क्षायोपशमिक शुद्धोपयोग की अपेक्षा से किया है।

प्र.712–किस उपयोग और ध्यान में कौन कौन सा भाव है?

उत्तर–शुभोपयोग और अशुभोपयोग क्षायोपशमिक भाव है और शुद्धोपयोग क्षायिक भाव तथा क्षायोपशमिक भाव है। आर्तध्यान और रौद्रध्यान औदयिक भाव है। धर्मध्यान क्षायोपशमिक भाव है। शुक्लध्यान उपशांतमोही का

औपशमिक भाव है। क्षीणमोही सयोगकेवली अयोगकेवली और सिद्धों का शुक्लध्यान क्षायिकभाव है। दोनों उपयोग और ध्यान गुणों की अपेक्षा पारिणामिकभाव है और पर्याय की अपेक्षा अलग अलग भाव हैं।

प्र.713–मोक्ष किसे कहते हैं और कितने भेद तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–समस्त प्रकार से विकारों के अभाव को या पूर्ण शुद्धावस्था के प्राप्त होने को मोक्ष कहते हैं। दो भेद हैं द्रव्यमोक्ष और भावमोक्ष। चार भेद भी हैं–द्रव्यमोक्ष, क्षेत्रमोक्ष, कालमोक्ष और भावमोक्ष।

प्र.714–द्रव्यमोक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर–अनादिकालीन चतुर्गति में या कुछ कम चौरासी लाख योनियों में नाना प्रकार के जो कर्म बांधे हैं उन कर्मों के अनन्तानन्तकाल तक के लिए पृथक् हो जाने को, पृथक् कर देने को, क्षय हो जाने को द्रव्यमोक्ष कहते हैं जैसे ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का श्री आदिनाथ से अलग हो जाना।

प्र.715–क्षेत्रमोक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर–शुद्धात्मध्यानियों ने कर्मभूमि के जिन आकाश प्रदेशों में ठहरकर कर्मों को क्षय किया है उस आकाश प्रदेश को क्षेत्रमोक्ष कहते हैं। जैसे श्रीआदिनाथजी ने कैलाश पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

प्र.716–कालमोक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस समय ध्यानी आत्मा ने पूर्ण कर्मों को क्षय किया है उस समय को काल मोक्ष कहते हैं जैसे श्री आदिनाथजी ने तीसरे काल में, 23 तीर्थंकरों ने चौथे काल में और पांचवें काल में महावीर स्वामी के समस्त गणधरों ने मोक्ष प्राप्त किया। यह कालमोक्ष है।

प्र.717–भावमोक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन परिणामों से अनादिकालीन कर्मों का, विकारी भावों का क्षय हो उसे या जो भाव विकार नष्ट होकर पुनः मिलन को प्राप्त न हो उसे भावमोक्ष कहते हैं अथवा क्षायोपशमिकभाव, औदयिकभाव और औपशमिक भावों का आत्मा से क्षय हो अथवा परमोत्कृष्ट धर्मध्यान, पृथक्त्ववितर्कशुक्लध्यान, एकत्ववितर्क, एकत्वअवितर्क शुक्लध्यान और सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान का क्षय हो वह एकदेश भावमोक्ष या परमयथाख्यातचारित्र और व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान के परिणामों को पूर्ण भावमोक्ष कहते हैं क्योंकि इन भावों के द्वारा पुनः विकारों का संबंध प्राप्त नहीं होता है तथा उपरोक्त प्रथम दोनों प्रकार के मोक्षों को इन चारों में से द्रव्यमोक्ष में द्रव्यमोक्ष को और भावमोक्ष में भावमोक्ष का अन्तर्भाव कर लेना चाहिए। (यहाँ भावमोक्ष के सन्दर्भ में एकत्वअवितर्क शुक्लध्यान का उल्लेख हुआ है यद्यपि शुक्लध्यान का यह भेद वर्तमान में उपलब्ध ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता है तथापि मेरा चिंतन है कि) वि–विशेषेण तर्कः वितर्कः अथवा वि–विगतः तर्कः यस्य सः वितर्कः–विशेष तर्क वितर्क अर्थात् श्रुतज्ञान। यह एकत्ववितर्क शुक्लध्यान छद्मस्थ मुनियों में पाया जाता है। जिसका तर्क वितर्क श्रुतज्ञान नष्ट हो गया है वह वितर्क–ऐसा एकत्ववितर्क शुक्लध्यान केवलियों के पाया जाता है। **एकत्वअवितर्क** –नञ् षष्ठी तत्पुरुष समास करके नञ् वितर्कः अवितर्कः एकत्वस्य अवितर्कः एकत्वअवितर्क शुक्लध्यान। यह केवलियों के पाया जाता है।

प्र.718–अभी तक तो 12वें गुणस्थान में एकत्ववितर्क शुक्लध्यान और 13वें गुणस्थान में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान पढ़ा है और आप 13वें गुणस्थान में एकत्ववितर्क और एकत्वअवितर्क शुक्लध्यान बता रहे हैं सो यह विरुद्ध कथन है?

उत्तर–अभी तक आपने पढा सुना सो ठीक है पर जरा सोचो कि तेरहवें गुणस्थान के अंतिम अन्तर्मुहूर्त में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान होता है तो इसके पहले कौन सा ध्यान होता है? या इतने समय तक पर्याय का अभाव होने से द्रव्य का लक्षण अव्याप्ति दोष से युक्त क्यों नहीं हो जाता? अतः ध्यान तो मानना ही पडेगा तब उस ध्यान का क्या नाम होगा? प्रथम अर्थवाला एकत्ववितर्क शुक्लध्यान तो मान नहीं सकते क्योंकि केवलज्ञान हो गया है। सयोगकेवली अवस्था में दूसरे अर्थवाला एकत्ववितर्क शुक्लध्यान अथवा एकत्वअवितर्क शुक्लध्यान है जो षष्ठी बहुव्रीहि समास या नञ् तत्पुरुष समास से निष्पन्न एकत्वअवितर्क शुक्लध्यान होगा अर्थात् विकल्प और परिवर्तन रहित एकत्व का ध्यान।

प्र.719–यहाँ पर ध्यानों के अभाव को भावमोक्ष क्यों कहा?

उत्तर–वास्तव में ध्यानों के अभाव को मोक्ष नहीं कहते हैं किन्तु धर्मध्यान और शुक्लध्यान के द्वारा अनादिकालीन

विकारीभावों के अभाव करने को भावमोक्ष कहते हैं अथवा चार आर्तध्यान, चार रौद्रध्यान, चार धर्मध्यान और आदि के तीन शुक्लध्यानों के अभाव करने को मोक्ष कहते हैं क्योंकि इन ध्यानों में अपूर्णता या मलिनता पाई जाती है अथवा स्वयं मलिन स्वरूप हैं फिर भी कर्मों को नष्ट करते हैं, धो डालते हैं जैसे मलिन जल मैल को धो डालता है।

प्र.720–सम्यग्दृष्टि जीव को भोग भोगने पड़ते हैं या भोगता हुआ भी अपने स्वरूप में ही रहता है यह कथन ठीक है क्या?

उत्तर–सम्यग्दृष्टि जीव को भोग भोगने पड़ते हैं क्योंकि अपराध का फल प्राप्त होना न्याय संगत है किन्तु भोग भोगता हुआ अपने स्वरूप में रहता है सो यह ठीक नहीं है क्योंकि जब गृहस्थ भोगों को भोगते हुये अपने स्वरूप में रह सकता है तो कोई साधु भोगों को भोगते हुये अपने स्वरूप में रहे तो उसका अपवाद क्यों करना? भ्रष्ट, द्रव्यलिंगी, पापी क्यों कहना? यदि सम्यग्दृष्टि जीव भोग भोगते समय भी अपने स्वरूप में रह सकता है तो आर्तध्यान रौद्रध्यान, असंयम, प्रमाद, कषायों की प्रवृत्ति आश्रवबन्ध नहीं हो सकता है तब त्याग, व्रत, तप, संयम, ध्यान का उपदेश व्यर्थ ठहरता है किन्तु दोनों प्रकार की प्रवृत्ति एकसाथ एकसमय में नहीं हो सकती है एक ही प्रकार की होगी। तब एक के मौजूद होने पर दूसरी नहीं रह सकती है ऐसा नियम है। आ० श्री कुंदकुंद ने कहा है :–

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणमदो आदा धम्मो मुणेयव्वो।।
जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो।। प्र.सा. प्र. अ. गा. 8, 9

द्रव्य जिस समय जिस रूप में परिणमन करता है उस समय वह उसी रूप हो जाता है ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है इसलिए धर्म से परिणत आत्मा धर्मरूप हो जाता है। जीव जिस समय शुभ, अशुभ या शुद्ध रूप से परिणमन करता है उस समय जीव में शुभ अशुभ तथा शुद्ध रूप से परिणाम का सद्भाव होता है। इसलिए इन्द्रिय भोग भोगते समय अपने स्वभाव में नहीं रह सकता है।

प्र.721–भरत चक्रवर्ती घर में ही वैरागी थे यह कथन ठीक है या नहीं?

उत्तर–गुणस्थान प्रक्रिया के अनुसार ठीक नहीं हैं क्योंकि यदि भरत घर में वैरागी थे तो तुम सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि। यदि सम्यग्दृष्टि हो तो तुमको भी वैरागी होना चाहिए फिर शेष सम्यग्दृष्टि मनुष्य, तिर्यंच, देव, नारकी जीवों ने क्या बिगाड़ा वे वैरागी क्यों नहीं? क्योंकि गुणस्थानों की उत्पत्ति कषायों के अभाव में तथा विषयों में प्रवृत्ति कषायों तथा नोकषायों के उदयानुसार होती है और वह प्रवृत्ति गुणस्थानों का भी विनाश कर देती है केवल कषायों की तीव्रता के बिना नोकषायों की प्रवृत्ति कम हानिकारक होती है। अतः चक्रवर्ती के लिए यह कथन केवल प्रशंसावाचक है या स्तुतिपरक है, यथार्थ नहीं। यदि भोगी गृहस्थ भोग भोगते हुए भी वैरागी हो सकता है तो जो भोग नहीं भोगते हैं वे महा वैरागी हुए तथा मुनिजन आहार, विहार, निहार, वार्तालाप, निद्रा करते हुए, लेते हुए यदि स्वरूप में रह सकते हैं तो फिर केवलज्ञान और मोक्ष भी उसी अवस्था में प्राप्त कर सकते हैं फिर मुनियों को भी पुनः अनशनादि तप करना, षड़ावश्यकों का पालन करना आदि से क्या प्रयोजन हैं? प्रमाद क्यों? सांपरायिकाश्रवबंध क्यों? प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान क्यों?

प्र.722–सम्यग्दृष्टि को भोग भोगने पड़ते हैं इसका क्या मतलब है?

उत्तर–भोग भोगने पड़ते हैं यह हीन पुरुषार्थ है जो वीर्यान्तरायकर्म तथा भय नोकषायोदय से होते हैं इसी का नाम भय संज्ञा है। इससे कर्माधीन, परिवाराधीन, विषय भोगों के आधीन होकर, विषय भोगों में, शृंगारालंकार में आसक्त होकर, हीनाचारी होकर मोक्षमार्ग से पतित हो जाता है। कमजोरी होने पर भी, प्रेम न होने से दबाववश, द्वेषबुद्धि से, लोकलाज से, लोभवश भी भोगने पड़ते हैं पर यह सब मोक्षमार्ग नहीं किन्तु विवेकहीनता है। हाँ, कदाचित् हर प्रकार से समर्थ होने पर भी तोते के समान दृष्टि रखने वाला कर्म की बलवत्ता होने पर हीनांग, विकलांग, वृद्धांग होने से जिनदीक्षा के अयोग्य होने पर भोग भोगने पड़ते हैं तब यहाँ पर मोक्षमार्ग संभव है अन्यथा अन्य कारणों से, कमजोरादि कारणों से भोगने पड़ते हैं तो यह संसार मार्ग है छलकपट का भी मार्ग हो सकता है।

प्र.723–सम्यग्दृष्टि जीव के भोग क्या निर्जरा के कारण हैं या बन्ध के?

उत्तर–भव्य अभव्य, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि, सैनी असैनी चारों गतियों के जीवों के भोग एकमात्र बंध के ही कारण हैं निर्जरा

के नहीं। यदि इंद्रिय भोग निर्जरा के कारण होने लगें तो बन्ध का कारण क्या होगा? क्योंकि कषाय पूर्वक ही इन्द्रियभोग भोगे जाते हैं।

प्र.724–भोग भोगने पड़ते हैं उससे यहाँ भोग का अर्थ इंद्रियभोग लेना या उपसर्ग परीषह या कर्मोदय की विचित्र दशा?

उत्तर–यहाँ भोग का अर्थ इंद्रिय भोग विलास न लेकर उपसर्ग परीषह करना चाहिए क्योंकि उपसर्ग परीषहों के समय में ध्यानावस्था भी हो सकती है, ध्यान के सम्मुख अवस्था भी, और तभी तो कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा होती है। उपसर्ग परीषह के समय बदला लेने, चुकाने के भाव हुए तो पतितमार्ग है, मिथ्यामार्ग है इस कारण मोक्षमार्ग में भोग का अर्थ उपसर्ग परीषह लेना। उपसर्ग परीषह के समय किंचित् आभास होते ही उपयोग बदल देने से वेदन नहीं होता, ज्ञातादृष्टा बने रहने से संसार मार्ग नहीं बनता। जैसे कोटीभट श्रीपाल भांडों, नकलची जनों के बीच राजा के द्वारा शूली का हुकुम दिये जाने पर भी प्रतिकार किये बिना कर्मों के फल को देखते रहे। देशभूषण, कुलभूषण, सनत्कुमार मुनिराज, वादिराज आदि बिना प्रतिकार के कष्टों को देखते रहे।

प्र.725–हीन पुरुषार्थ किसे कहते हैं?

उत्तर–समर्थ या असमर्थ होने पर भी कर्तव्यविमुख होकर असदाचरण करने को हीन पुरुषार्थ कहते हैं।

प्र.726–परिश्रम को, व्यायाम को पुरुषार्थ कहते हैं ऐसा अर्थ क्यों नहीं करते हो?

उत्तर–शारीरिक, वाचनिक, मानसिक परिश्रम करना लौकिक पुरुषार्थ है। समस्त प्रकार के विकारों को हटाकर एकत्व विभक्त शुद्धात्मा में स्थिर होना ही या स्थिरता प्राप्त करने के लिए आत्मसाधना करना ही वास्तविक पुरुषार्थ है।

प्र.727–हीन पुरुषार्थ कब होता है?

उत्तर–जब उपयोग स्वभाव से या स्वभाव की सम्मुखता से हटने से विषय भोगों में, ख्याति पूजा लाभ में लगने से दिनचर्या, दीन वचन, हीन विचार, पराधीनता होने से हीन पुरुषार्थ होता है।

प्र.728–हीन पुरुषार्थ के कितने भेद हैं, नाम कौन कौन हैं, कारण क्या है?

उत्तर–दो भेद हैं। अंतरंग हीन पुरुषार्थ और बहिरंग हीन पुरुषार्थ। अंतरंग पुरुषार्थ आत्म परिणाम स्वरूप है और बहिरंग पुरुषार्थ वाचनिक, कायिक क्रियारूप है। भय कषाय तथा वीर्यान्तराय कर्मोदय से हीन परिणाम होते हैं तथा परिणाम हीन होने से चर्या भी हीन हो जाती है यही अंतरंग हीन पुरुषार्थ का कारण है। मनोबल कमजोर होने से, आश्चर्यकारी, विनाशकारी, भंयकर वस्तु, व्यक्ति जानकर शत्रु आदि को देखने से या ध्वनि सुनने से जो वचन और काय की हीनता दीनतापूर्वक प्रवृत्ति होना यही बहिरंग में हीन पुरुषार्थ है।

प्र.729–हीन पुरुषार्थी जीव आत्म स्वरूप का चिन्तन कर सकता है या नहीं?

उत्तर–हाँ, कर भी सकता है और नहीं भी क्योंकि नदियों के मोड़ की तरह कर्मों की अवस्थायें एक सी नहीं रहती हैं बदलती रहती हैं। क्वचित् कदाचित् आत्मस्वरूप का चिन्तन सम्यक् रूप में और उपयोग की धारा, संगति ठीक न होने से मिथ्यारूप में भी कर सकता है तथा विषय कषायों की तीव्रता होने से, आरम्भ परिग्रह, शृंगार अलंकार में फंसा होने से आत्मस्वरूप को भूल भी सकता है और नहीं भी।

प्र.730–आत्मस्वरूप में रहकर लौकिक क्रियायें कर सकता है क्या?

उत्तर–नहीं, लौकिक और व्यवहारिक क्रियायें नहीं कर सकता है। आत्मस्वरूप में लीनता और बाह्य क्रियाओं में स्थिरता ये दोनों विरुद्ध स्वभाव वाली हैं जैसे पथिक एक समय में एकसाथ पूर्व और पश्चिम में गमन नहीं कर सकता वैसे ही एक जीव एक समय में एकसाथ धर्म पर्याय और अधर्मपर्याय, संयमपर्याय और असंमय पर्याय, वैराग्यावस्था और रागावस्था से परिणमन नहीं कर सकता है।

प्र.731–लौकिक क्रियायें करते समय कौन सा ध्यान होता है?

उत्तर–लौकिक क्रियायें करते समय एकमात्र आर्तरौद्रध्यान होते हैं, धर्मध्यान की गन्ध भी नहीं होती।

प्र.732–भूल जाना, याद रहना यह किस गुण का कार्य है?

उत्तर–मोहोदय से युक्त अवाय और धारणा मतिज्ञानावरणीय कर्म के तीव्रोदय से की हुई प्रतिज्ञा को भूल जाता है और क्षयोपशम होने से अवायज्ञान और धारणा ज्ञान सही होने पर प्रतिज्ञा को, कर्तव्य को भूलता नहीं है। भूल जाना औदयिक भाव है और याद रहना क्षयोपशम भाव है तथा ये दोनों ज्ञान गुण के कार्य हैं। भूल जाना न सम्यक्

है न मिथ्या किंतु याद रहना दोनों प्रकार का है। इन दोनों का खुलासा इस प्रकार है :—जैसे ज्ञानावरणीय कर्म का तीव्रोदय होने से शिवभूति मुनिराज के समान भूल जाना न सम्यक् है न मिथ्या किंतु कोई सांसारिक या मोक्षमार्गस्थ घटना घटी और वह याद बनी रही, कषाय का वासना काल बना रहा या धर्म का संस्कार बना रहा अतः यह सम्यक् और मिथ्या दोनों रूप है।

प्र.733—इच्छा किसे कहते हैं तथा इच्छा का अंतर्भाव किसमें होता है?

उत्तर—ईहामतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर अवग्रह ज्ञान के द्वारा जाने गये विषय में विशेष जानने की आकांक्षा को, लोकोत्तर और लौकिक वस्तुओं की प्राप्ति की आकांक्षा को, आहारादि संज्ञाओं को, पदवी आदि की प्राप्ति की आकांक्षा को इच्छा कहते हैं। केवल जानने की इच्छा का अंतर्भाव ज्ञानगुण में और छोड़ने, ग्रहण करने की, अच्छी बुरी, मेरी तेरी आदि इच्छाओं का अंतर्भाव चारित्रगुण की विभाव पर्यायों में होता है।

प्र.734—इच्छा औदयिकादि पांच भावों में से कौन सा भाव है और कौन सा नहीं?

उत्तर—इच्छा ईहामतिज्ञान की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव है और शेष इच्छायें औदयिक भाव है क्योंकि संज्ञाओं की उत्पत्ति अंतरंग में मोहोदय से होती है तथा बाह्य सामग्री की भी अपेक्षा रहती है। ईहामतिज्ञान की इच्छा को औदयिक भाव नहीं मान सकते हैं क्योंकि ज्ञानावरण कर्म के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय होने से किंचित् मात्र भी जानकारी न होने से इच्छा ही उत्पन्न नहीं होती। इस इच्छा को औपशमिक भाव भी नहीं मान सकते हैं क्योंकि ज्ञानावरण कर्म में उपशम करण नहीं होता है। इच्छा को क्षायिकभाव भी नहीं मान सकते हैं कारण क्षायिकभाव मानने पर अरिहंत और सिद्धों में सद्भाव मानने का प्रसंग आयेगा और केवलियों में इच्छा का सद्भाव होने से समस्त ज्ञेय पदार्थों को एकसाथ एकसमय में नहीं जान सकते क्योंकि इच्छायें अपने विषय को क्रम से ग्रहण करती हैं। इच्छा को पारिणामिक भाव भी नहीं मान सकते हैं क्योंकि पारिणामिक भाव मानने पर अनादि काल से अनंत काल तक अभाव न होने से स्वभाव धर्म बन बैठेगी इस कारण एकमात्र क्षायोपशमिक भाव है। चारित्रमोह की अपेक्षा इच्छा को औपशमिकभाव नहीं मान सकते हैं क्योंकि चारित्र का औपशमिक भाव 11वें गुणस्थान में होता है और 11वें गुणस्थान में यथाख्यातचारित्र अवस्थित निश्चल परिणाम वाला कहा है। इच्छा को क्षायोपशमिकभाव भी नहीं मान सकते क्योंकि चारित्र का क्षायोपशमिक भाव प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा कराता है जो बंध स्वरूप नहीं है इसी तरह क्षायिक भाव भी नहीं मान सकते क्योंकि यह क्षायिक भाव क्षपक श्रेणी वाले महामुनियों के होता है तथा पारिणामिक भाव भी नहीं मान सकते हैं क्योंकि पारिणामिक भाव मानने से अनादिअनंत भंग बन जायेगा जिससे जीव की कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती अतः एकमात्र औदयिक भाव है।

प्र.735—इच्छा कषाय के सद्भाव में होती है या अभाव में तथा क्या फल है?

उत्तर—इच्छा कषाय के सद्भाव में तथा अभाव में भी होती है। कषाय के सद्भाव में दसवें गुणस्थान तक होती है स्थितिबन्धादि चारों प्रकार का बन्ध होना इसका फल है तथा 11 वें, 12 वें गुणस्थान में ईहामतिज्ञान पूर्वक केवल योग से प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध होता है तथा एक समय मात्र का स्थितिबन्ध भी होता है। वह केवल नाममात्र का बंध है जो उदयरूप ही है। कषाय के सद्भाव में होने वाला बन्ध संसार में भ्रमण भी कराता है और योग से होने वाला बन्ध केवल संसार में आयुपर्यंत रोक करके रखता है।

प्र.736—इच्छा राग रूप है या वैराग्य रूप?

उत्तर—इच्छा राग रूप और वैराग्य रूप होती है। मोहोदय के साथ में होने से राग द्वेष रूप है तथा मोहोदय के अभाव में इच्छा ज्ञानस्वरूप है जिसे कथंचित् वैराग्य रूप में भी कह सकते हैं।

प्र.737—इच्छा के बिना अविरतसम्यग्दृष्टि जीव को भोग भोगने पड़ते हैं अतः निर्जरा के ही कारण हैं?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि जीव के इंद्रिय सम्बन्धी भोग बिना इच्छा के होते हैं तो भोजन करते समय ग्रास मुँह को छोड़कर नाक में, कान में चला जाये, माथे का शृंगार, अलंकार पैर में चला जाय, कर लिया जाय, अधोवस्त्र उत्तरीय वस्त्र के रूप में और उत्तरीय वस्त्र अधोवस्त्र के रूप में धारण कर लिया जाय पर ऐसा न देखा जाता है, न सुना जाता है तब ऐसी अवस्था में इन्द्रिय भोग बिना इच्छा के भोगे जाते हैं ऐसा कौन बुद्धिमान/न्यायाचार्य विश्वास करेगा? मूर्ख लोग विश्वास कर सकते हैं। पशु पक्षियों के मन में जब तक विषय वासना जागृत नहीं होती है तब तक वे प्रेमभाव से खाना पीना, उठना बैठना, सोना आदि सब कुछ करते हैं किन्तु कामवासना के उत्पन्न होते ही परस्पर में सारी

क्रियायें छोड़कर एक मात्र कामक्रीड़ा के पीछे दौड़ लगाते हैं इसके अलावा अन्य क्रियायें न करते हैं, न करने देते हैं। बिना इच्छा के मंदबुद्धि जीव भी लौकिक क्रियायें नहीं करते तब लोकोत्तर क्रियाओं की बात तो दूर रही तथा ये बनावटी सम्यग्दृष्टि आजकल नाना तरह की मन वचन काय की कुत्सित क्रियायें करते हुए भी कहते हैं कि हम बिना इच्छा के करते हैं तो इनके स्थितिबंध, अनुभागबंध नहीं होना चाहिए। यदि गृहस्थों की क्रियायें अबंध स्वरूप हैं तो त्यागी, व्रती, मुनि, आर्यिकाओं की क्रियाओं को भी अबंध स्वरूप मानने में आपत्ति क्यों? इनका उपहास क्यों? द्रव्यलिंगी क्यों कहना? अपशब्द क्यों बोलना आदि सब व्यर्थ हो जाते हैं और जब ये व्यर्थ हैं तो नरक स्वर्ग भी व्यर्थ ठहरते हैं इन क्रियाओं के करते हुए अपन सही हैं तो सामने वाला भी क्रियाओं से युक्त व्यक्ति गलत क्यों? न्याय में पक्षपात नहीं चलता यदि न्याय में पक्षपात होने लगे तो अन्याय किसे कहोगे तथा सांख्यमत/चार्वाकादि मतों को मिथ्या क्यों कहा जाय? इसलिए इन सब दोषों से बचने के लिए, टालने के लिए इन क्रियाओं को करने वाला कर्ता ही अपराधी है। जहर जान के खाओ या बिना जाने खाओ, इच्छापूर्वक खाओ या बिना इच्छा के खाओ वह अपना हानि पहुंचाने का काम, जीवनहर्ता का कार्य करेगा ही अन्यथा खाकर के देख लो तब अनुभव हो जायेगा। अतः प्रमत्तगुणस्थान पर्यन्त सारी की सारी क्रियायें शुभाशुभ आध्यात्मदृष्टि से प्रमादपूर्वक ही होती हैं तभी तो साम्परायिक आश्रव होता है अन्यथा नहीं तथा अबुद्धि पूर्वक दसवें गुणस्थान तक शुभाशुभ कर्मों का स्थितिबंध और अनुभाग बंध भी सकारण होता है निष्कारण नहीं।

प्र.738–इच्छा का अन्तर्भाव ईर्यापथ आश्रव में होता है या साम्परायिक आश्रव में?

उत्तर–इच्छा का अन्तर्भाव दोनों में होता है। औदयिक भावरूप इच्छा का अंतर्भाव साम्परायिकाश्रव में तथा क्षायोपशमिक भावरूप इच्छा का अन्तर्भाव ईर्यापथाश्रव में होता है।

प्र.739–इच्छा का अभाव अपने[2] गुणस्थानानुसार क्रम से होता है या अक्रम से?

उत्तर–अपने अपने गुणस्थानानुसार क्रमशः औदयिकभावरूप इच्छा का दसवें गुणस्थान के अन्त में तथा क्षायोपशमिक भावरूप इच्छा का बारहवें गुणस्थान के अंत में अभाव होता है। प्रथम इच्छा का अभाव उत्कृष्ट धर्मध्यान से या पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान से तथा दूसरी इच्छा का अभाव एकत्ववितर्कशुक्लध्यान से होता है। यह कथन क्षपकश्रेणी की अपेक्षा किया है किन्तु गुणस्थानों की वृद्धि के अनुसार इच्छायें घटती जाती हैं और कषायों के क्षय से इच्छाओं का अभाव हो जाता है अथवा कषायों के तीव्रोदय में पाप की इच्छायें बढती हैं और पुण्य की इच्छायें घटती हैं तथा कषाय के मंदोदय में पुण्य की इच्छायें बढती है और पाप की इच्छायें घटती हैं।

प्र.740–इच्छा और रुचि में क्या अन्तर है?

उत्तर–इच्छा ज्ञान और चारित्रगुण का कार्य है तथा रुचि सम्यक्त्वगुण का कार्य है। ये दोनों सम्यक् और मिथ्या भी होती हैं तथा आधाराधेय और कार्य की अपेक्षा भी अंतर है।

प्र.741–इच्छा और रुचि के स्वामी कौन कौन हैं और किसका कितना काल है?

उत्तर–ये दोनों इच्छा और रुचि अभव्यजीव की अपेक्षा अनादि अनन्त, अनादि सान्त, सादि सान्त हैं। अभव्य जीवों के सामान्य इच्छा और रुचि का अविनाशी होने से अनादि अनंत भंग कहा है तथा व्यक्तरूप में स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से स्थूल रूप में परिवर्तन की अपेक्षा इच्छा तथा रुचि का अनादि सान्त सादि सान्त भंग कहा है। भव्यजीव की अपेक्षा रुचि अनादि सान्त, सादि सान्त, सादि अनंत तथा इच्छा अनादि सान्त, सादि सान्त होती है यही अन्तर है। असमीचीन इच्छा अनादि मिथ्यादृष्टि भव्यजीव की अपेक्षा अनादि सान्त, सादि मिथ्यादृष्टि जीव की अपेक्षा सादि सान्त होती है। दूरानुदूर भव्यमिथ्यादृष्टि जीव के शक्ति की अपेक्षा अनादिसान्त तथा व्यक्त नहीं करेगा इस अपेक्षा से अनादि अनन्त भंग होता है। समीचीन इच्छा भव्य जीव के केवलज्ञान प्राप्त कराकर नष्ट हो जाती है अतः सादि सान्त है उपशम और क्षयोपशम रुचि सादि सान्त तथा क्षायिक रुचि सादि अनंत है।

प्र.742–इच्छा और रुचि उक्त पाँच भावों में से कौन कौन सा भाव है?

उत्तर–ईहाज्ञान रूपी इच्छा क्षायोपशमिक भाव है और शेष इच्छायें औदयिक भाव है तथा रुचि औदयिक आदि पाँचों भाव स्वरूप है। रुचि औदयिकभाव स्वरूप मिथ्या और सम्यक् होती है किन्तु शेष तीन भाव रूप सम्यक् ही होती है तथा पारिणामिकभाव रूप रुचि न सम्यक् है और न मिथ्या। औदयिक भाव रूपी अनिवृत्तिकरण के अंतिम परिणाम स्वरूप रुचि को सम्यक् कहा है शेष परिणामों को नहीं।

प्र.743–इच्छा सहित या इच्छा रहित मुनियों तक की प्रवृत्ति कैसे होती है?

उत्तर–प्रमत्तसंयत पर्यंत मुनियों की प्रवृत्ति कुछ इच्छा पूर्वक और कुछ अनिच्छा पूर्वक होती है जैसे पुलिस अपराधी को बलपूर्वक पकड़कर बांधकर ले जाता है तब वह अपराधी बिना मन के जाता है इसी तरह सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती और मुनियों की भी पूर्वकृत तीव्र अपराध के कारण गृहस्थी में या आहार विहार निहार में प्रवृत्ति होती है जब सर्वघातिकर्म तीव्र अनुभाग रूप से उदय में आता है तब प्रवृत्ति इच्छा पूर्वक ही होती है किन्तु जब मंदता के साथ उदय में आता है तब इच्छा और अनिच्छा पूर्वक प्रवृत्ति होती है।

प्र.744–इच्छा या अनिच्छा पूर्वक प्रमादी जीवों की क्रियायें होती हैं क्या?

उत्तर–नहीं, प्रमत्त जीवों की चर्यायें यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचारा जाये तो इन जीवों के एक समय के लिए भी प्रमाद का अभाव न होने से इच्छाओं का अभाव नहीं होता है किन्तु कषायों का, संज्ञाओं का कार्य रूप में परिणमन होता ही रहता है। वह परिणमन अपनी स्थूलबुद्धि होने के कारण मालूम पड़े या न पड़े यह भिन्न बात है। तुम बाह्य में व्यापाररूप क्रियायें करो या मत करो किन्तु अपने[2] गुणस्थानानुसार कर्मों का स्थितिबंध अनुभागबंध होता ही है और यह सब कार्य मन वचन काय की क्रियापूर्वक ही होता है यदि नहीं हो तो ईर्यापथाश्रव कहना चाहिए किन्तु आचार्यों ने कर्मसिद्धांत ग्रन्थों में इस प्रकार का विधान नहीं किया फिर भी स्थूल दृष्टि से मोटे तौर पर अपने समझने के योग्य इच्छायें न होने से लगता है कि ये कार्य बिना इच्छा के बिना मन के हो रहे हैं। इस कारण स्थूल दृष्टि से बिना इच्छा के और सूक्ष्मदृष्टि से इच्छा पूर्वक ही होते हैं।

प्र.745–प्रवृत्ति किस भाव के साथ में होती है और किस भाव के साथ में नहीं?

उत्तर–सयोगकेवली पर्यंत प्रवृत्ति औदयिक आदि चारों भावों के साथ में होती है, पारिणामिकभाव निष्क्रिय है।

प्र.746–प्रवृत्ति किस कर्म के उदय से होती है?

उत्तर –योग और मोहोदय से प्रवृत्ति होती है। दसवें गुणस्थान तक मोह तथा योग से तथा आगे के तीन गुणस्थानों में योग से होती है अथवा सयोगी पर्यंत आठों कर्मोदय से प्रवृत्ति होती है।

प्र.747–अघातिया कर्मों का सद्भाव होने से क्रिया प्रवृत्ति होती है या नहीं?

उत्तर–अघातिया कर्मों का सद्भाव होने पर प्रवृत्ति क्रिया होती भी है और नहीं भी। योग के सद्भाव में अघातिया कर्मोदय से प्रवृत्ति होती है तथा योग के बिना अघातिया कर्मोदय से अयोगकेवली के नहीं होती।

प्र.748–समस्त प्राणियों के पाँचों भाव होते हैं या कम ज्यादा भी?

उत्तर–अभव्यों के, दूरानुदूर भव्यों के, अनादि मिथ्यादृष्टि जीवों के तथा मोहनीय की 26 प्रकृतियों की सत्ता वालों के औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव तथा पारिणामिकभाव होते हैं। मोहनीय की 28 प्रकृतियों की सत्ता वाले जीवों के औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, औपशमिकभाव तथा पारिणामिकभाव ये चार भाव तथा 21 प्रकृतियों की सत्ता वालों के भी औदयिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, औपशमिकभाव और पारिणामिकभाव होते हैं अथवा संसारमार्गियों के औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, पारिणामिकभाव ये तीन तथा मोक्षमार्गियों के पाँचों भाव होते हैं

प्र.749–एक जीव के एकसाथ क्षायिकभाव और औपशमिकभाव कैसे हो सकते हैं?

उत्तर–क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव ने उपशमश्रेणी आरोहण की तब सम्यक्त्व की अपेक्षा क्षायिक भाव और चारित्र की अपेक्षा औपशमिक भाव एक साथ एक जीव के बन जाते हैं।

प्र.750–भाव किसे कहते हैं और कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर–परिणमन करने को भाव कहते हैं। पारिणामिक भाव के बिना शेष चार भाव कर्मों के निमित्त होते हैं।

प्र.751–भावों के कितने भेद हैं?

उत्तर–भावों के मूल भेद पांच हैं तथा उत्तर भेद 53 हैं और अवांतर भेद असंख्यात लोकप्रमाण हैं।

प्र.752–आश्रव बन्ध राग के फल हैं या वैराग्य के?

उत्तर–आश्रव बन्ध राग द्वेष मोह और योग के फल हैं, वैराग्य के नहीं क्योंकि साम्परायिक आश्रवबंध योग और कषाय तथा ईर्यापथ आश्रवबंध योग के फल हैं। वैराग्य के फल संवर निर्जरा और मोक्ष हैं।

प्र.753–वैराग्य किसे कहते हैं?

उत्तर–विषय भोगों के, विषय कषायों के आधीन न होने को या उनको अपने आधीन कर लेने को तथा अपनी दिनचर्या, परिणाम मोक्षमार्गानुकूल बना लेने को वैराग्य कहते हैं।

प्र.754–राग और वैराग्य ये दोनों पर्यायें व्यक्त रूप में एकसाथ एकसमय में एक जीव में रह सकती हैं या नहीं?

उत्तर–ये दोनों पर्याय एक साथ एक जीव में संयमासंयम और सम्यक्मिथ्यात्व गुणस्थान के परिणामों की तरह शक्ति, लब्धि और व्यक्तरूप में रह सकती हैं अथवा अविरतसम्यग्दृष्टि नामक चौथे गुणस्थान में अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में वैराग्य तथा अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय में राग होने से एक साथ एकसमय में एक ही गुणस्थान में मिश्र अवस्था बन जाती है और यह अवस्था समस्त प्राणियों के होती है किन्तु रत्नत्रय के सद्भाव में वैराग्य मोक्षमार्ग का साधक तथा अभाव में बाधक होता है।

प्र.755–राग और वैराग्य ये किस गुण के कार्य हैं?

उत्तर–राग मोहोदय से युक्त चारित्रगुण का विकार है, पर्याय है जबकि वैराग्य मोहोदय के अभाव में चारित्रगुण का परिणाम है, पर्याय है। राग विभाव पर्याय है और वैराग्य स्वभाव पर्याय है। माध्यस्थ भाव उत्कृष्ट संयमपूर्वक मोह को क्षय करने का उपाय है। जैसे ईंधन से अग्नि उत्पन्न होकर पुनः ईंधन को ही जलाती है वैसे ही वैराग्य आत्मप्रेम से उत्पन्न होकर मोह को/कर्मों को जलाता है।

प्र.756–विधि और निषेध इन दोनों का कथन करना चाहिए या नहीं, हानि क्या है?

उत्तर–यथावसर, यथायोग्य प्रसंगानुसार दोनों का कथन करना चाहिए अन्यथा श्रोतागण एकांगी दृष्टि बना लेंगे तथा वक्ता की दृष्टि भी एकांगी हो जायेगी जिससे दोनों के एकान्त या विपरीतादि मिथ्यात्व का प्रसंग आता है तभी तो संसार में क्रियावादी आदि 363 मिथ्यामतों का जन्म हुआ, नामकरण हुआ।

प्र.757–इस प्रकार का कथन करने से क्या हानि है?

उत्तर–केवल विधि का ही या केवल निषेध का ही कथन करने से अनेकान्त दृष्टि का, स्याद्वाद पद्धति का हनन होगा, जिनमत का उत्थापन होगा यही हानि है। इसलिए दोनों का कथन करना योग्य है।

प्र.758–अहंकार वश एक का ही कथन करने से मोक्षमार्ग बिगड़ता है या सुधरता है?

उत्तर–अधिकतर एक ही प्रकार का कथन करने से मिथ्यामत का, अलग सम्प्रदाय का, धर्म के नाम पर बटवारा और नामकरण होता है, समाज में, परिवार में वैरविरोध झगड़े होते हैं फूट पड़ जाती है। मोक्षमार्ग बिगड़ता है, सुधरता नहीं जिससे अपनी अखंड शक्ति नष्ट होती है जैसे कांजीमत।

प्र.759–ऐसा क्यों होता है क्या कारण है?

उत्तर–हमेशा एक ही प्रकार का कथन करने से, चिन्तन, मनन करने से उसी प्रकार की धारणा बन जाती है कि यही सही है, हमारा ही सही है, इसके प्रतिपक्षी गलत है मिथ्या है, उसके प्रति खण्डन करने के लिए प्रायः कर कषाय उत्पन्न हो जाती है जो वर्तमान में कांजीपंथ का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

प्र.760–केवलियों के खड़ा होना, बैठना, उठना, गमन करना, धर्मोपदेश देना यह सब कार्य किस कारण से होते हैं?

उत्तर–केवलियों के ये सब कार्य अघातिया कर्मोदय के कारण होने से औदयिक माने हैं। भोगी गृहस्थ केवलियों के समान अपनी क्रियाओं को न समझें। यदि समझ लिया तो केवलियों को साम्परायिक आश्रव तथा गृहस्थों को ईर्यापथ आश्रव का स्वामी होना चाहिये जो सिद्धांत से विरोध है।

प्र.761–ये उक्त क्रियायें केवलियों के क्यों होती हैं?

उत्तर–जिस प्रकार माताओं में अपनी संतान के प्रति अकृत्रिम स्वाभाविक, बिना परोपदेश के निष्कपट, निःस्वार्थ प्यार होता है उसी प्रकार इन केवलियों ने पूर्वभव में या वर्तमान में परम करुणा भावों से दीन दुःखी प्राणियों को देखकर अपायविचय धर्मध्यान, मैत्री भावना, करुणा भावना आदि षोडशकारण भावनायें भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर बाद में तीर्थंकर प्रकृति प्रशस्त विहायोगति के उदय में आने पर ये उपरोक्त क्रियायें होती हैं।

प्र.762–ये कार्य केवलियों के स्वतंत्रता से होते हैं या पराधीनता से?

उत्तर–केवलियों के उक्त कार्य स्वतंत्रता से नहीं किन्तु पराधीनता से होते हैं। यदि स्वतंत्रता से होते हैं ऐसा माना जाय तो सिद्धों के भी ये कार्य मानने पड़ेंगे या करने वाले होने से इच्छावान मानने पड़ेगे।

प्र.763–धर्मोपदेश क्या औदयिक भाव है?

उत्तर–नहीं, औदयिक भाव नहीं है क्योंकि धर्मोपदेश को त0 सू0 में अंतरंग तप कहा है **'वाचना पृच्छना**

अनुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः अंतरंग तपः।' वह धर्मोपदेश नाम का अंतरंग तप छद्मस्थों के ज्ञान का कार्य होने से क्षायोपशमिक भाव तथा केवलियों के केवलज्ञान का कार्य होने से क्षायिक भाव माना है क्योंकि प्र० सा० प्र० गा० 45 **'मोहादीहि विरहिया तम्हा सा खायगत्ति मदा।'** घातियाकर्मों का क्षय होने से क्षायिकी और अघातिया कर्मोदय की अपेक्षा औदयिकी मानी गयी हैं।

प्र.764–यदि ये क्रियायें क्षायिकी हैं तो सिद्धों में क्रियाओं को मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, उक्त क्रियायें घातिकर्मों के अभाव में क्षायिकी और अघातिया कर्मोदय के कारण औदयिकी क्रिया होने के कारण सिद्धों में अभाव माना गया है। यदि सर्वथा क्षायिकी कहते तो सिद्धों के सद्भाव मानने में कोई बाधा नहीं आती।

प्र.765–कर्मों से मुक्त हुआ आत्मा लोकाकाश में कहाँ तक जाता है?

उत्तर–कर्मों से मुक्त हुआ आत्मा उर्ध्वलोक के अंतिम सीमा स्वरूप तनुवातवलय के अंतिम प्रदेश तक जाता है तथा मध्यलोक से ऊपर जाकर ईसत्प्राग्भार भूमि से अधर विराजमान होता है।

प्र.766–मुक्त जीव लोक के बाहर क्यों नहीं जाते हैं?

उत्तर–धर्मास्तिकाय का अभाव होने से सिद्ध भगवन्त लोकाकाश के बाहर नहीं जाते क्योंकि **'निमित्ताभावे नैमित्तिकाभावात्'** निमित्त के अभाव होने पर नैमित्तिक का भी अभाव हो जाता है ऐसा न्याय है। यदि उन सिद्धों के गमनशक्ति का अभाव होता तो सूत्रकार **'धर्मास्तिकायाभावात्'** न कहकर **'शक्त्याभावात्'** ऐसा छोटा सा सूत्र कहते जिससे शक्ति का शीघ्र ही ज्ञान हो जाता पर ऐसा नहीं कहा।

प्र.767–'धर्मास्तिकायाभावात्' यह सूत्र व्यवहारनय से कहा है या निश्चयनय से?

उत्तर–यह सूत्र व्यवहारनय से कहा गया है पर क्या व्यवहारनय मिथ्या है या सम्यक्? यदि व्यवहारनय मिथ्या है तो व्यवहारनय रूप श्रुतज्ञानी, श्रुतज्ञान और उसका विषय भी मिथ्या कहलायेगा। क्या सम्यग्दर्शन के साथ मिथ्या श्रुतज्ञान रह सकता है? अनन्त शक्तियों का पृथक्[2] कथन करना ही व्यवहारनय का विषय है।

प्र.768–'शक्त्याभावात्' ऐसा सूत्र क्यों नहीं बनाया?

उत्तर–**'शक्त्याभावात्'** ऐसा सूत्र बनाना उनको इष्ट नहीं था क्योंकि ऐसा सूत्र बनाने से निश्चयनय की अपेक्षा अंगुलियों के समान समस्त शक्तियों में हीनाधिक छोटी बड़ीपने का भी प्रसंग आता है और ऐसा नियम स्वीकार करने पर समस्त आत्मप्रदेशों में अनंत शक्तियां समान रूप से विद्यमान हैं, ऐसा विधान नहीं किया जा सकता था। जिस अंश में वह शक्ति नहीं है तो उस अंश में उस शक्ति का कार्य नहीं हो सकता था जब प्रवचनसार में ज्ञानशक्ति और आत्मा में समानता बतलाई है, असमानता नहीं तब इस नियम का भी व्याघात हो जाता है। यदि समस्त शक्तियां समान नहीं हैं तो लोकाकाश के बाहर ज्ञेय ज्ञायक संबंध भी नहीं बन सकता है और यह संबंध न बनने से अनन्त अलोकाकाश है यह कैसे मालूम पड़ा? क्योंकि व्याकरणाचार्यों ने जितने क्रियापद गत्यर्थक हैं वे सब ज्ञानार्थक हैं और जितने ज्ञानार्थक हैं उतने ही गत्यर्थक हैं ऐसा कहा है। इस कारण यदि आप जिस नय से ज्ञान का विषय अलोकाकाश है ऐसा कहते हैं तब उसी नय से गमनक्रिया को भी स्वीकार कर लो, विश्वास करने में क्या आपत्ति है? आचार्यों ने गमनशक्ति के कार्यस्वरूप गमनक्रिया को बताने के लिए, परिचय देने के लिए मछली और पानी का उदाहरण दिया है। जैसे मछली पानी में गमन करती है पानी के बिना नहीं, पानी के अभाव में, गमनक्रिया के अभाव में गमनशक्ति का अभाव नहीं माना जा सकता यदि मछली में गमनशक्ति और गमनक्रिया का अभाव है तो पानी बढ़ जाने पर भी गमन नहीं कर सकती पर ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि जहाँ तक पानी होगा वहाँ तक गमन करेगी। इसी तरह धर्मस्तिकाय के अभाव में, गमनक्रिया के अभाव में, गमनशक्ति का अभाव नहीं माना जा सकता है शक्ति का सद्भाव है जब ज्ञान में इतनी शक्ति है कि ऐसे अनन्त अलोकाकाश भी हो जाये तो ज्ञान एक समय मात्र में सबको जान ले पर नहीं हैं तो वह किसे जाने अतः वह शक्ति, शक्ति रूप में ही रह जाती है। कार्य रूप में, व्यक्त रूप में परिणत नहीं हो पाती अथवा अग्नि में ईंधन को जलाने की शक्ति है पर ईंधन के अभाव में किसे जलायेगी बताओ? शक्तियों में हीनाधिकपना होने पर आत्मभूत स्वभाव में, लक्षण में भी हीनाधिकपने का प्रसंग आने से अव्याप्ति दोष आता है।

प्र.769–शक्त्यंश और व्यक्त्यंश में क्या अन्तर है?

उत्तर–शक्त्यंश स्वभाविक है, पारिणामिक है, गुणस्वरूप है, निर्निमित्तिक स्वभाव वाला है, अनादि अनन्त है किन्तु व्यक्त्यंश

अंतरंग बहिरंग कारणों से उत्पन्न होता है, सीमित है, अनादि अनन्त, अनादिसांत, सादि सान्त, सादि अनन्त है, पर्याय स्वरूप है, समीचीन और असमीचीन है। ये दोनों अंश सभी द्रव्यों में पाये जाते हैं। अशुद्ध जीव और पुद्गलों में अशुद्ध तथा शेष द्रव्यों में शुद्ध रूप में पाये जाते हैं।

प्र.770–उपरोक्त चारों भंगों के स्वामी कौन कौन जीव हैं?

उत्तर–अनादि अनंत भंग अभव्य जीव की अपेक्षा से है क्योंकि इसके पारिणमिक भाव, क्षायोपशमिक भाव और औदयिकभाव रूप संसारी विकारी पर्यायों का कभी भी अंत नहीं होगा। अनादिसांत भंग अनादिमिथ्यादृष्टि भव्यजीव की अपेक्षा, सादिसांत भंग सादि मिथ्यादृष्टि जीव की अपेक्षा से कहा गया है क्योंकि यह जीव औपशमिक और क्षायोपशमिक भावरूप रत्नत्रय धर्म को यहीं प्राप्त करता है इसलिये सादि है और यहीं छोड़ देता है इसलिये सांत है। सादि अनंत भंग क्षायिक रत्नत्रय धर्म की अपेक्षा कहा गया है क्योंकि प्राप्त करता है इसलिए सादि अंत नहीं होगा इसलिये अनंत भंग कहा है। इस प्रकार यह नियम समस्त गुण और पर्यायों में लगा लेना चाहिये। दूरानुदूरभव्यों के अनादिअनंत भंग भी बन जाता है।

प्र.771–गमनशक्ति और गमनक्रिया में क्या अन्तर है?

उत्तर–गमनशक्ति पारिणामिक है, गुण है, अनादि से अनन्तकाल तक रहेगी, स्वाभाविक है, निर्निमित्तिक है। गमनक्रिया गति नामकर्म और धर्मद्रव्य के निमित्त से होती है, स्वाभाविक वैभाविक है, स्वयं में और क्षेत्रान्तर रूप में भी होती है। संसारी जीवों में स्वरूप गमन और क्षेत्रान्तर गमन होता है स्वरूप गमन स्वाभाविक है और क्षेत्रान्तर गमन अशुद्ध है। क्षेत्रान्तर गमन शुद्ध जीवों में एकसमय के लिये होता है बाद में अनंतानंत काल तक के लिये निश्चल निष्कंप हो जाते है। क्योंकि कर्मों का तथा धर्मास्तिकाय का अभाव होने से लोक के बाहर नहीं जाते।

प्र.772–सिद्धों में गमनशक्ति होने से अर्थक्रिया गमनक्रिया होनी चाहिए?

उत्तर–सिद्धों में क्षेत्रान्तर क्रिया न होने पर भी स्वरूप में ही गमन होने से अर्थक्रिया बन जाती है।

प्र.773–मुक्त जीवों में लोक के बाहर जाने की शक्ति है ऐसा क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर–सिद्ध जीवों में लोक के बाहर जाने की शक्ति है किन्तु गमनक्रिया नहीं है क्योंकि कर्म और धर्मास्तिकाय का अभाव होने से क्षेत्रान्तर गमन नहीं करते हैं किंतु स्वयं में ही परिणमन करते हैं। सापेक्ष नय वस्तु तत्त्व के तथा मोक्षमार्ग के साधक हैं और निरपेक्ष नय मिथ्या होने से बाधक हैं।

प्र.774–इस प्रकार का विश्वास निश्चयनय से करते हो या व्यवहार नय से?

उत्तर–अब हम ऐसा विश्वास करते हैं कि व्यवहारनय से सिद्ध भगवन्त लोकान्त में हैं तथा निश्चयनय से लोक के बाहर जाते हैं। ज्ञेय ज्ञायक संबंध के समान, गत्यगतक, गम्यगमक आदि संबंध जानना चाहिए। अतः स्वनिमित्तक कार्य निश्चयनय से और परनिमित्तिक कार्य व्यवहारनय से होते हैं। इस कारण जिस नय का जो विषय है उसे उसी नय से उसी रूप में विश्वास करना ही सम्यक्त्व है।

प्र.775–प्र० सा० प्र० अ० में किस नय से, किस अपेक्षा से कथन किया गया है?

उत्तर–यह कथन व्यक्त्यंश अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय की अपेक्षा से किया है शक्त्यंश की अपेक्षा से नहीं।

''आदाणाण पमाणं, णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं।
णेयं लोगालोगं तम्हा णाणं तु सव्वगयं।23।।
णाणप्पमाणमादा ण हवदि जस्सेह तस्स सो आदा।
हीणो वा अधिगो वा णाणादो हवदि धुवमेव।24।।
हीणो जदि सो आदा तण्णाणमचेदणं ण जाणादि।
अधिगो वा णाणादो णाणेण विणा कहं णादि''।25।।

आत्मा ज्ञान प्रमाण है, ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है और ज्ञेय पदार्थ लोकालोक प्रमाण हैं इसलिए ज्ञान को सर्वगत कहा है। इस लोक में जितने भी मतमतान्तर हैं उनके मत में आत्मा ज्ञान प्रमाण नहीं होता है तब उनके मत में वह आत्मा निश्चयनय से निश्चय ही ज्ञान से हीन या अधिक होगी। यदि आत्मा ज्ञान से हीन है तो वह ज्ञान चेतन के साथ समवाय न होने से अचेतन हो जायेगा और इस दशा में पदार्थ को नहीं जान सकेगा। इसके विरुद्ध यदि आत्मा ज्ञान से अधिक है तो वह ज्ञानातिरिक्त आत्मा ज्ञान के बिना पदार्थ को किस प्रकार जान सकेगा? जब कि पदार्थ को जानने का एकमात्र साधन ज्ञान ही है, अन्य दूसरा नहीं।

सव्वयदो जिणवसहो सव्वेवि य तग्गया जगदि अट्ठा।
णाणमयादो य जिणो विसयादो तस्स से भणिदा।।26।।

ज्ञानमय होने से जिनश्रेष्ठ, सर्वज्ञ भगवान सर्वगत अर्थात् सर्वव्यापक हैं और उन भगवान के विषय होने से जगत के सभी पदार्थ उन भगवान में प्राप्त होते हैं। जब ज्ञान सर्वव्यापक है तब उससे तन्मय रहने वाला सर्वज्ञ भी सर्वव्यापक है यह सिद्ध है। अतः ज्ञान और आत्मा के सम्बन्ध के समान अनन्त गुणधर्म और शक्तियों के संबंध में जानना चाहिए फिर भी निमित्त अकिंचित्कर है। अपने इस वचन की पुष्टि के लिए कांजी मतवाले गमनशक्ति और गमनक्रिया के संबंध में अनर्गल विचार करते हैं।

प्र.776–पदार्थ सर्वथा स्वयं समर्थ होकर कार्य करता है ऐसा मानने में क्या हानि है?

उत्तर–'समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्ति रनपेक्षत्वात्' '63' यदि वह पदार्थ समर्थ होता हुआ कार्य करता है तो निरन्तर ही कार्य की उत्पत्ति होना चाहिए क्योंकि वह अपने कार्य में किसी की मदद नहीं चाहता है। **'परापेक्षणे परिणामित्त्वमन्यथा तद्भावात्।'** प0 मु0 प0 6 सू0 64 यदि सामान्य पदार्थ परपदार्थ की अपेक्षा करे तो उसे परिणामी मानना पड़ेगा क्योंकि वे पहले कार्य नहीं करते थे जब सहकारी मिला तब कार्य किया। इससे पहले वे स्वयं असमर्थ थे, सहकारी के निमित्त से नवीन शक्ति पायी, क्योंकी अकेला तो कार्य कर नहीं सकता।

प्र.777–असमर्थ पदार्थ अपने कार्य के प्रति उदासीन है ऐसा मानने में क्या हानि है?

उत्तर–जो स्वंय असमर्थ है वह सौ सहकारी कारणों के मिलने पर भी कार्य नहीं कर सकता। जैसे पहले सहकारी कारण के बिना कार्य नहीं करता था तो अब कारण के मिलने पर भी नहीं कर सकता। जन्मान्ध चश्मे से देख नहीं सकता अतः काने व्यक्ति के समान जो सर्वथा नयों को छोड़ कर आत्मा को एकान्त से सर्वथा पूर्ण समर्थ या पूर्ण असमर्थ मानते हैं वे मोक्षमार्ग से अछूते हैं, जैनमतानुयायी नहीं हैं किन्तु अन्य लौकिक मतों में अपनी मान्यता से मिल जाते हैं। इस कारण अपनी आत्मा कथंचित् समर्थ है और कथंचित् असमर्थ। सर्वथा एकान्तस्वरूप जैन मतानुयायी स्वीकार न करें।

प्र.778–उपादान में योग्यता होनेपर भी समर्थ कारण के बिना कार्य होगा या नहीं?

उत्तर–उपादान में कार्यगत योग्यता होने पर भी समर्थ कारण के बिना कार्य नहीं होगा। यदि सर्वथा नियम माना जाय कि समर्थ कारण मिलेगा ही और कार्य होगा ही सो भी ठीक नहीं है यदि ऐसा है तो इस जीव ने अनन्त पंच परावर्तन क्यों किये? जब इस जीव ने अनन्त बार पंचपरावर्तन किए तो इस जीव को अनन्त बार सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने का मौका मिला पर जागृति न होने से प्राप्त नहीं किया किन्तु पुनः पुनः परिभ्रमण/पंचपरावर्तन करता रहा। इस तरह जब रत्नत्रय प्राप्त करने का समय आया तब असावधान हो गया। विषय भोगों में, आरम्भ परिग्रह में, वैर विरोध में, अनर्गल कार्यों में फंस गया और पतन कर दुर्गतियों में गोता खाता रहा अतः समर्थ कारण के बिना कार्य नहीं होगा। पुनः द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप अनुकूल सामग्री मिलने पर भी उपशम श्रेणी आरोहण की तब एकत्ववितर्क शुक्लध्यान, पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान, यथाख्यातचारित्र, उत्कृष्ट शुक्ललेश्या, उत्कृष्ट धर्मध्यान, मुनिपद, वज्रवृषभनाराचसंहनन, चौथा काल कर्मभूमि, आर्यखण्ड, धर्मक्षेत्र, धर्मवातावरण, साक्षात् चार परमेष्ठियों का समागम, शास्त्रों का चिन्तन मनन आदि प्राप्त कर छोड़कर अधः पतन कर कुछ कम चौरासी लाख योनियों में अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक भ्रमण कर जाता है। इतना सब कुछ पाकर भी क्या उपादान में कमी रह गयी कि केवलज्ञान नहीं पाया, मोक्ष नहीं पाया। क्या उपादान में कभी कमी होती है? नहीं। इसलिए क्षपकश्रेणी रूप परिणामों के समर्थ कारण के बिना केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है। अनादिकाल से अब तक और अब से अनन्तकाल तक इस आत्मा ने अपने स्वभाव को न छोड़ा है, न परपदार्थों के स्वभाव को ग्रहण किया है। फिर भी अनादिकालीन पर के संयोग से विकार रूप में परिणमन कर भ्रमण कर रहा है। शुद्ध या अशुद्ध कार्य के लिए उपादान और निमित्त कारण की आवश्यकता होती है क्योंकि एक से कार्य नहीं होता है यही वस्तुगत स्वाभाविक व्यवस्था है।

प्र.779–ये क्रियायें कितने प्रकार की होती हैं तथा स्वामी कौन हैं?

उत्तर–अनेक प्रकार की होती हैं। फिर भी चार क्रियाओं से प्रयोजन है–1. क्षेत्रान्तरक्रिया 2. परिस्पंदन क्रिया 3. परिणतिक्रिया 4. ज्ञप्तिक्रिया। आदि की दो क्रियायें विकार रूप हैं तथा अंत की दो क्रियायें स्वाभाविक और वैभाविक होती है। सिद्धों में स्वाभाविक और संसारियों के वैभाविक होती हैं।

प्र.780—केवलज्ञान प्राप्त करने का साक्षात् कारण और परंपरा कारण क्या है?

उत्तर—केवलज्ञान प्राप्त करने का साक्षात् कारण केवलज्ञानावरण कर्म का क्षय है और कारण के कारण बहुत हैं जैसे क्षपकश्रेणी, मोहनीय कर्म का क्षय, उत्कृष्ट धर्मध्यान या पृथक्त्व वितर्क शुक्लध्यान, मुनिपद वज्रवृषभनाराच संहनन, मनुष्यभव, आर्यखंड, कर्मभूमि, चौथाकाल, शुक्ल लेश्या, पर्याप्तावस्था, जागृत अवस्था, ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग,यथाख्यात चारित्र आदि।

प्र.781—क्षेत्रान्तरक्रिया किसे कहते हैं और कितने प्रकार की होती हैं?

उत्तर—आकाश के एक प्रदेश को छोड़कर दूसरे प्रदेश के प्राप्त करने को क्षेत्रान्तरक्रिया कहते हैं। दो भेद हैं।

1. **स्वक्षेत्र क्रियाः**—अपने ही शरीर में रहकर आत्मा के प्रदेशों का स्वस्थान से परस्थान में जाने को स्वक्षेत्र क्रिया कहते हैं जैसे पैर से शिर तक और शिर से पैर तक आत्मा के प्रदेशों का गमन करना।
2. **परक्षेत्र क्रियाः**—सशरीर आत्मा का आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में गमन करने को कहते हैं।

प्र.782—क्षेत्रान्तरक्रिया किन किन कारणों से होती है?

उत्तर—इस गमनक्रिया के बाह्य कारण धर्मद्रव्य, हवा, पानी और प्राणियों का योग हैं तथा अंतरंग कारण गतिनाम कर्मोदय, प्रशस्ताप्रशस्त विहायोगति और ऊर्ध्वगमन स्वभाव है तथा पूर्व अनन्तानन्त भवों में ऊपर उठने का अभ्यास किया है उस अभ्यास के कारण क्षेत्रान्तर गमन करता है।

प्र.783—इस क्षेत्रान्तर क्रिया के स्वामी कौन हैं और कौन नहीं?

उत्तर—इस क्षेत्रान्तर क्रिया के स्वामी समस्त संसारी जीव हैं तथा संख्यात असंख्यात और अनन्त परमाणुओं का पुद्गल पिण्ड तथा साधनानुसार सर्व कर्म निर्मुक्त हुए अयोगकेवली भगवंत की अंतिम अवस्थावाले शुद्धजीव ऊर्ध्वलोक पर्यंत गमन करते हैं। अतः जीव और पुद्गल धर्मद्रव्य के निमित्त से क्षेत्रान्तर क्रिया के स्वामी हैं शेष अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी धर्मादि चार द्रव्य ये क्षेत्रान्तर गमन क्रिया नहीं करते हैं।

प्र.784—परिणतिक्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर—स्वयं में पारिणामिक भावरूप से परिणमन करने को, उत्पाद व्यय या गुणपर्याय रूप से अपने अपने स्वस्थान को त्याग किये बिना वहीं पर परिणमन करने को परिणति क्रिया कहते हैं। इस परिणति क्रिया के समस्त शुद्धाशुद्ध द्रव्य स्वामी हैं और अगुरुलघुगुण के निमित्त से होती है।

प्र.785—उपरोक्त दोनों क्रियायें स्वाधीन होती हैं या पराधीन?

उत्तर—क्षेत्रान्तर क्रिया जीव और पुद्गलद्रव्य की पराधीन होती है। परिणति क्रिया जीव की जीव में स्वाधीन, पर में पराधीन तथा परिस्पन्दनक्रिया योग के निमित्त से पराधीन ही होती है।

प्र.786—परिस्पन्दन क्रिया और क्षेत्रान्तर क्रिया स्वाभाविक होती है या वैभाविक? उत्तर—परिस्पन्दन क्रिया अपने शरीर प्रमाण क्षेत्र में रहकर ही योगों के निमित्त से पकते हुए चावलों के समान होती है। विभावरूप है, पराधीन है, पर के निमित्त से होती है। क्षेत्रान्तर क्रिया भी विभाव रूप है यह क्रिया औदारिक आदि तीन शरीर के बिना विग्रहगति में, समुद्घात के समय तथा शेष समय में शरीर सहित होती है अथवा परिस्पंदन क्रिया भी क्षेत्रान्तर क्रिया है क्योंकि आत्मा के प्रदेश अपने अपने स्थान को छोडकर शरीर प्रमाण गमन करते हैं। कारण आत्मा के प्रत्येक प्रदेशों का क्षेत्र अलग अलग है, एक नहीं।

प्र.787—परिस्पन्दनक्रिया क्या समस्त संसारी जीवों के होती है?

उत्तर—सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थान पर्यंत समस्त संसारी जीवों के होती है तथा अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थान वाले महामुनि के संसारी होने पर भी योगों के अभाव में परिस्पन्दन क्रिया नहीं होती।

प्र.788—ज्ञप्तिक्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर—केवल जाननरूप में ज्ञान के परिणमन करने को ज्ञप्तिक्रिया कहते हैं। शुद्धजीव शुद्ध ज्ञप्तिक्रिया के, अशुद्ध जीव अशुद्ध ज्ञप्तिक्रिया के, मिश्रजीव मिश्रज्ञप्तिक्रिया के स्वामी हैं।

प्र.789—मछली में गमनशक्ति कहाँ तक और गमनक्रिया कहाँ तक होती है?

उत्तर—जहाँ तक जल है वहाँ तक गमनक्रिया होती है तथा पानी के अभाव में शक्ति के सद्भाव में भी गमनक्रिया नहीं होती। किन्तु इससे अनन्तानन्त गुणे क्षेत्र में पानी की वृद्धि हो जाय तो वहाँ तक गमनशक्ति मीन में पायी जाती है। जल के अभाव में गमनशक्ति का अभाव नहीं माना जाता।

प्र.790–सिद्धों में गमनक्रिया क्यों नहीं होती है?

उत्तर–सिद्ध भगवन्त पूर्णरूप से कृतकृत्य हो चुके हैं उन्होंने अनन्त बार लोकाकाश के समस्त प्रदेशों में जन्म मरण कर भ्रमण किया है, भरपूर घूम चुके हैं, पूर्ण संतोषी हैं, निश्चल, निष्कंप अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं, पूर्ण स्वतंत्र हैं, अपने आप में निष्ठ हैं। गमनक्रिया करेंगे तो पुनः आगमन करना पड़ेगा फिर कृतकृत्य निश्चल, निष्कंप विशेषण व्यर्थ ठहरेंगे। अतः सिद्धों में क्षेत्रांतर गमनक्रिया नहीं होती।

प्र.791–यदि सिद्धों के गमन शक्ति है तो वहाँ पर भी अर्थक्रिया होनी चाहिए?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही अर्थ क्रिया होनी ही चाहिए और वह अर्थक्रिया संसार में विभावरूप होती थी किन्तु अब सिद्धों के स्वरूप में परिणमन रूप, उत्पाद व्यय रूप, गुणपर्याय रूप में होती है।

प्र.792–जिन पुरुष या स्त्रियों ने आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया है तो क्या उनके पुरुषत्व शक्ति या धारण शक्ति का अभाव माना जा सकता है?

उत्तर–अभाव नहीं किन्तु सद्भाव ही है, अन्यथा सभी बालब्रह्मचारी, बाल ब्रह्मचारिणी, मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं तथा तीर्थंकरों को नपुंसक वेदी मानने का प्रसंग आयेगा तथा उपशम श्रेणी या क्षपकश्रेणी एकमात्र नपुंसक ही आरोहण कर सकेंगे, स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी नहीं जो सिद्धांत विरोध है। जबकि तीर्थंकर प्रकृति वाले एकमात्र पुरुष वेदोदय से ही क्षपक श्रेणी आरोहण करते हैं अतः आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने पर पुरुषों के सन्तानोत्पत्ति की सामर्थ्य तथा स्त्रियों के गर्भधारण करने की सामर्थ्य का सद्भाव मानना ही चाहिए, अभाव नहीं क्योंकि इन शक्तियों की कार्य रूप में परिणति परस्पर में यथायोग्य समयानुसार उभय कारणों के प्रयोग से होती है, एक से नहीं और एक में नहीं।

प्र.793–वेदक सम्यक्त्व में चल मलिन अगाढ़ दोष और शंकादि दोष क्यों लगते हैं?

उत्तर–वेदक सम्यग्दर्शन में मनोबल कमजोर और चंचल होने से चल आदि तथा शंकादि 25 दोष लगते हैं।

प्र.794–ये चल मलिनादि, अतिचारादि और शंकादि 25 दोष क्यों लगते हैं?

उत्तर–भयंकर आत्मघातक उपसर्ग परीषह और नाना प्रकार की प्रतिकूल अवस्थाओं के प्राप्त होने पर जब मन में असह्य वेदना उत्पन्न होती है तब उस वेदना को, आकुलताको, घबराहट को दूर करने के लिए अपना विवेक खोकर तथा सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति के तीव्रोदय से मोक्षमार्ग के प्रतिकूल कार्य करने को ही दोष कहते हैं अथवा मोक्षमार्ग के साधनों को किंचित् सांसारिक आकुलताओं को दूर करने के लिये प्रयोग करने को चल दोष कहते हैं जिससे ये सभी चलादि़ दोष या शंकादि अतिचार दोष या शंकादि 25 मल दोष कुसंगति के माध्यम से भी लग सकते हैं, लगते हैं।

प्र.795–चलदोष किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्यक्मोहनीय के तीव्रोदय से श्रद्धान के विषय में मोक्षमार्गानुसार विश्वास से चलायमान होने को, डगमगाने को चल दोष कहते हैं जैसे कोई असह्य, विपरीत उपसर्ग परीषह आदि अवस्थाओं के आने पर वह विपरीतावस्था चाहे स्वास्थ्य सम्बन्धी हो, व्यापार, धनपरिवार, लोकव्यवहार, अन्य आजीविका, विवाह, सन्तान सम्बन्धी भी हो तब उसको दूर करने के लिए भगवान श्री शान्तिनाथ पूजा, आराधना, जप, तप करो जिससे शान्ति प्राप्त हो। भगवान पार्श्वनाथ की पूजा आराधनादि करने से लौकिक कार्य में सफलता प्राप्त होगी इस प्रकार सोच विचारकर भक्ति करने लगता है। जब समस्त तीर्थंकर गुण शक्तियों में समान हैं, फिर भी मनोबल कमजोर होने से अपने श्रद्धान में लौकिक सफलता के लिए भेद कर डालने को ही चल दोष कहते हैं।

प्र.796–मलिन दोष किसे कहते हैं और इसका क्या फल है?

उत्तर–श्रद्धान के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा आदि परिणामों के उत्पन्न होने को मलिन दोष कहते हैं जैसे मैल के संसर्ग से वस्त्र मलिन होने पर स्वच्छता समाप्त हो जाती है या दर्पण के मलिन होने पर अपना मुख मलिन दिखाई देता है इसी तरह मन मलिन होने से विश्वास के मलिन होने पर आत्मदर्शन सही नहीं हो पाता और प्रायः कर सम्यग्दर्शन नष्ट हो जाता है।

प्र.797–चल दोष और मलिन दोष में क्या अन्तर है?

उत्तर–सम्यक्त्व मोहनीय कर्म के तीव्रोदय की अपेक्षा आन्तरिक परिणामों में कोई अन्तर नहीं है फिर भी मन कमजोर होने से तीर्थंकरों में, शास्त्रों में, गुरुजनों में भेदभाव करना कि ये मेरे हैं और ये उनके हैं आदि मोक्षमार्ग के साधनों में,

विश्वास में शिथिलता आना चल दोष है और अपने ही परिणामों में अपने विषय में शिथिल होना मलिनता है यही अन्तर है। जब कर्म सिद्धांतानुसार वेदक सम्यग्दृष्टियों के सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृति के तीव्रोदय होने पर क्वचित् कदाचित् तीर्थंकरों के संबंध में लौकिक आकांक्षा वश बटवारा कर लेने को या कार्य सिद्धि के लिए विभाग कर लेने को चल दोष कहा है तो आजकल आचार विचार विहीन मोहियों के द्वारा पंथवाद के नाम पर देव शास्त्र गुरु का बटवारा कर लेने से अनाचार दोष क्यों न माना जाये, मिथ्यात्व का उदय क्यों न माना जायें क्योंकि यह पंथवाद का बटवारा अनेक पीढ़ियों से चला आ रहा है और न मालूम भविष्य में कितनी पीढ़ियों तक चलता चला जायेगा। आज का मानव पंथवाद का, संप्रदाय का सहारा तो लेता है किंतु मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष के त्याग के लिए विवेक का सहारा नहीं लेता है इसीसे पतन हो रहा है यह बड़ा आश्चर्य है।

प्र.798–अगाढ़ दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–देव शास्त्र गुरु में, जीवादि तत्त्वों में तथा निजात्मा में अनेकान्तात्मक दृष्टि से स्थिर न होने को अगाढ़ दोष कहते हैं। अगाढ दोष वाला जीव विश्वास को पूर्ण रूप से न छोड़ता है और न ग्रहण करता है। जैसे कमजोर वृद्ध पुरुष लाठी के बल पर चलता है, हाथ कांपता है, लाठी डगमगाती है, देखने में लगता है कि यह अब गिरेगा, लाठी छूट जायेगी पर दोनों नहीं गिर पाते, लाठी और पुरुष दोनों हिलते डगमगाते हुए गमनागमन करते हैं। इसी तरह मोक्षमार्ग में, मोक्षमार्ग के साधनों में शिथिल श्रद्धानी होने को अगाढ दोष कहते हैं।

प्र.799–शंका दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षमार्ग में, मोक्षमार्ग के साधनों में, तत्त्वादि में, द्रव्यादि तथा अपनी आत्मा में इनका यही स्वभाव है या अन्य, यह सही है या गलत डोलायमान होने को शंका दोष कहते हैं।

प्र.800–कांक्षा दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षमार्ग में गमन करते हुए सत्साधनों को आजीविका का, धनादि प्राप्ति का साधन बना लेने को कांक्षा दोष कहते हैं। जैसे धार्मिक कार्य पूजापाठ, प्रतिष्ठा, विधि विधान, अध्यापन, लेखन कार्य, प्रवचन, मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन सत्पात्रों को आहारादि दान बनाकर, देकर, वैयावृत्ति कर, विहार में साथ साथ गमन कर, व्रत उपवास आदि को आजीविका का साधन बना लेने को, तथा मुनि पदादि को उदर पूर्ति का साधन बना लेने को धन कमाने का साधन बना लेने को कांक्षा दोष कहते हैं।

प्र.801–विचिकित्सा दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षमार्गियों की मलिन अवस्था को अथवा किसी भी व्यक्ति की या पुद्गलपिण्ड की मलिनावस्था को देखकर, सुनकर ग्लानि करने को, घृणाकर उनसे दूर होने को विचिकित्सा दोष कहते हैं।

प्र.802–मूढ़दृष्टि दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–अविवेकता पूर्वक मोक्षमार्ग के विरुद्ध संसार के अनुकूल साधनों को सुख शान्ति का साधन मानकर, अंगीकार कर आदर सम्मान, भक्ति, पूजा, आरती गुणगान प्रशंसा करने को मूढ़ता दोष कहते हैं।

प्र.803–अनुपगूहन दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षमार्गस्थ प्रमत्त पर्यंत साधकों के अथवा जिस किसी के भी असमर्थता, अजानकारी, विषय कषायों की लम्पटता और असावधानी के कारण उत्पन्न हुये दोषों को आम जनता के सामने खुलासा करने को कि इसको अब नीचा दिखाना है, अपमानित कराना है आदि भाव को अनुपगूहन दोष कहते हैं।

प्र.804–अस्थितिकरण दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षमार्गियों को अपने कुहेतुओं के, कुतर्कों के द्वारा पतन कराने को या मिथ्यादृष्टियों को, असंयमीजनों को मोक्षमार्ग में न आने देने को या पद से गिरा देने को भी अस्थितिकरण दोष कहते हैं।

प्र.805–अवात्सल्य दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–अपने सहधर्मी भाईयों में, पारिवारिक भाई बहिनों में प्रेम न करने को, कपटपूर्ण स्वार्थयुक्त होकर प्रेम करने को या विरोध करने को, कुत्तों की तरह परस्पर में झगड़ने को अवात्सल्य दोष कहते हैं।

प्र.806–अप्रभावना दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–ख्याति, पूजा, लाभ की दुर्भावनापूर्वक, आर्त रौद्रध्यान से सहित होकर, देव शास्त्र और गुरुओं को, चतुर्विध संघ

को अपमानित कर बदनाम करने को, अपकीर्ति फैलाने को, इनके संबंध में अन्धकार फैलाने को, पंथवाद आदि के उत्पन्न करने को, अप्रभावना दोष कहते हैं।

प्र.807–शंकादि 8 दोषों को धारण करने से क्या आपत्ति प्राप्त होती है?

उत्तर–जब लोकव्यवहार में, व्यापारी और ग्राहक में, परिवार में, आसपास में सन्देह आदि के उत्पन्न होने पर लोकव्यवहार व्यापार या गृह में नाना प्रकार के कलह विसम्वादादि की प्राप्ति होती है तब मोक्षमार्ग में, मोक्षमार्ग के साधनों में संदेह आदि के होने पर अपना ही मोक्षमार्ग, रत्नत्रय संकट में पड़ जाता है प्रायः कर नष्ट भी हो जाता है आदि आपत्तियां हैं।

प्र.808–मद किसे कहते हैं

उत्तर–दूसरों को नीचा दिखाकर अपना बड़प्पन दिखाने को, अहंकार को मद कहते हैं।

प्र.809–मद के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–मद के आठ भेद हैं–ज्ञानमद, पूजामद, कुलमद, जातिमद, बलमद, ऋद्धिमद, तपमद, शरीर मद। अथवा अनन्तानुबन्धीमान कषाय की अपेक्षा आठ मद, अप्रत्याख्यानावरण मान कषाय की अपेक्षा आठ मद, प्रत्याख्यानावरण मान कषाय की अपेक्षा आठ मद और संज्वलन मान कषाय की अपेक्षा 8 मद इस प्रकार मद के 32 भेद, संख्यात, असंख्यात अनंत भेद चारों गतियों में प्रमादियों के होते हैं।

प्र.810–ज्ञान मद किसे कहते हैं?

उत्तर–क्षायोपशमिक ज्ञान के प्राप्त होने पर ज्ञानी मानकर अहंकारवश अन्य का अपमान करने को कि तूं मूर्ख है, अज्ञानी है, नासमझ है, कुछ नहीं जानता आदि वचन बोलकर अपना ज्ञानीपना दिखाने को या ज्ञान के संबंध में दूसरों को नीचा दिखाने को ज्ञान मद कहते हैं।

प्र.811–पूजा मद किसे कहते हैं?

उत्तर–बाहर में आदर सम्मान, नमस्कार, गुणगान, गुण प्रशंसा, सत्कार पुरस्कार आदि के प्राप्त होने पर मैं गुणवान हूँ, पूज्य हूँ, श्रेष्ठ हूँ आदि भावों से दूसरों की हंसी कर नीचा दिखाने को पूजा मद कहते हैं।

प्र.812–कुल मद किसे कहते हैं?

उत्तर–अपने पिता या पिता के वंश में कोई या स्वयं उच्च पदाधिकारी होने पर उनके माध्यम से अपना बड़प्पन दिखाने को तथा दूसरों का तिरस्कार अपमान करने को कुल मद कहते हैं।

प्र.813–जाति मद किसे कहते हैं?

उत्तर–अपने मातृपक्ष के मामा, नाना, ममेरा भाई, ममेराभतीजे आदि पदाधिकारी होने पर इनको आश्रयकर दूसरों का तिरस्कार, अपमान करने को या अपना बड़प्पन दिखाने को जाति मद कहते हैं।

प्र.814–बल मद किसे कहते हैं?

उत्तर–शारीरिक शक्ति, सेना, रुपया पैसा, पशुधन, धान्य आदि का आश्रय कर अहंकारी होकर दूसरों को कंपित करने को, नीचा दिखाने को बलमद कहते हैं।

प्र.815–ऋद्धि मद किसे कहते हैं?

उत्तर–कोई ऋद्धिमन्त्र या अणिमादि महाविद्यायों के बल से दूसरों का अपमान करने को ऋद्धिमद कहते हैं।

प्र.816–तप मद किसे कहते हैं?

उत्तर–अनशनादि 6 बाह्य तप तथा प्रायश्चित्तादि 6 अंतरंग तप करके और ग्रीष्म योग, वर्षा योग, शीत योग धारण कर अपने आप को तपस्वी मानकर दूसरों का तिरस्कार अपमान करने को, अपनी विशेषता बताने को तप मद कहते हैं।

प्र.817–शरीर मद किसे कहते है?

उत्तर–शरीर के हष्ट पुष्ट, मन मोहक, गौरवर्ण आदि के होने पर तथा नाना प्रकार के वस्त्र आभूषण अलंकार धारण कर मैं कितना सुन्दर हूं आदि अहंकार वश अपना बड़प्पन प्रकट करने को शरीर मद कहते हैं।

प्र.818–मदों को धारण करने से क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर–मदों को धारण करने से भी रत्नत्रय विनाश को प्राप्त हो जाता है। अनन्तानुबन्धी मान सम्यग्दर्शन को उत्पन्न नहीं होने देता तथा यदि सम्यग्दृष्टि है और अनन्तानुबन्धी मान का उदय आ गया तो नियम से उपशमसम्यक्त्व से

गिराकर सासादन को प्राप्त कराकर अनंतर मिथ्यात्व को प्राप्त करा देता है। अप्रत्याख्यानावरण मान के उदय से व्रती नहीं बन सकता यदि अणुव्रती के अप्रत्याख्यानावरण मान उदय में आ जाये तो व्रतों को नष्ट कर नीचे पतन करा देता है। प्रत्याख्यानावरण मान के उदय में मुनिव्रत धारण नहीं कर सकता और मुनि बनने के बाद में यदि प्रत्याख्यानावरण मान का उदय आ गया तो मुनिपद से गिरा देगा। संज्वलन मान के उदय रहते सूक्ष्मसांपराय चारित्र नहीं हो सकता है तथा संज्वलन मान को उपशमा कर सूक्ष्मसांपराय चारित्री बनकर औपशमिक चारित्री हुआ तब लोभोदय वश औपशमिक चारित्र को नष्ट कर गिरता हुआ सूक्ष्मसांपराय चारित्री होकर इसको भी नष्ट कर छेदोपस्थापना चारित्री हो जाता है। इस प्रकार मद से सर्वत्र हानि ही हानि है।

प्र.819–अनायतन किसे कहते हैं?

उत्तर–रत्नत्रय को प्राप्त करने में बाधक कारणों को अनायतन कहते हैं।

प्र.820–अनायतन के भेद कितने हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–दो, छह, संख्यात असंख्यात और अनंत भेद हैं। नाम–अंतरंग अनायतन और बहिरंग अनायतन। कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, कुगुरुसेवक, कुदेव सेवक और कुधर्मसेवक इनके प्रति समर्पण भाव रत्नत्रय को उत्पन्न नहीं होने देता। यदि रत्नत्रय की अवस्था में इनकी तरफ मन लगा तो ये मिथ्यात्व में ले जाते हैं।

प्र.821–अंतरंग अनायतन किसे कहते हैं?

उत्तर–समीचीन मोक्षमार्ग में अविश्वास, अन्याय, अभक्ष्य सेवन, ख्याति पूजा लाभ का परिणाम, परिवार में, समाज में, धन धान्यादि में, विषय भोगों में गिद्ध की तरह आसक्त परिणामों को भावानायतन कहते हैं।

प्र.822–बाह्य अनायतन किसे कहते हैं?

उत्तर–बाह्य कुसंगति के कारण साथी मोक्षमार्ग में नहीं आने देते और अपने ही परिवार के सदस्य यदि मोक्षमार्ग में, धर्म साधना में बाधा उत्पन्न करें तो समझो कि ये ही अनायतन हैं।

प्र.823–जिनेन्द्र के भक्त होकर भी यदि बाधा उत्पन्न करें तो उन्हें क्या कहना चाहिए?

उत्तर–ये जिनेन्द्रभक्त होकर भी बाधा डालने के कारण अनायतन ही हैं क्योंकि दीपक कभी भी दीपक का विरोधी नहीं होता इसी तरह मोक्षमार्गी सदस्य मोक्षमार्ग के विरोधी नहीं होने चाहिए। यदि मोक्षमार्ग में बाधा उत्पन्न कर, विषय भोगरूपी संसारमार्ग में फंसाये तो ये जैन कैसे? अतः ये केवल ठगने के लिए जिनेन्द्रभक्त हैं यथार्थ में जैन नहीं हैं।

प्र.824–कुगुरु आदि भी तो अनायतन माने जाते हैं?

उत्तर–यह सत्य है पर ये कुगुरु आदि जुगुनू की तरह कहीं कहीं किसी काल और किसी क्षेत्र में पाये जाते हैं सर्वत्र नहीं किन्तु परिवार तो सभी क्षेत्रों में सभी कालों में पाया जाता है अतः भावअनायतन मुख्य है, प्रधान है और बाह्य अनायतन गौण है, अप्रधान है फिर भी यह दोनों अनायतन मोक्षमार्ग में बाधक है।

प्र.825–मूढ़ता किसे कहते हैं?

उत्तर–लौकिक प्राणियों की देखादेखी अविवेकतापूर्वक भेड़ की तरह आचरण करने को मूढ़ता कहते हैं।

प्र.826–मूढ़ता के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–मूढ़ता के दो या तीन भेद हैं। दो नामः–भाव मूढता और द्रव्य मूढता। तीन नामः–देवमूढ़ता, लोकमूढ़ता और गुरुमूढ़ता।

प्र.827–भाव मूढ़ता किसे कहते हैं?

उत्तर–दर्शन मोहनीय की 7 प्रकृतियों के उदय से उत्पन्न अविवेकता को भाव मूढ़ता कहते हैं।

प्र.828–द्रव्य मूढ़ता किसे कहते हैं?

उत्तर–अविवेकता पूर्वक सबके सामने या अकेले में वचन और काय की प्रवृत्ति करने को द्रव्य मूढ़ता कहते हैं।

प्र.829–देव मूढ़ता किसे कहते हैं?

उत्तर–लौकिक प्राणियों ने लौकिक रागी द्वेषी मोही कामी राजा रानियों की या देवों के नाम पर लौकिक मान्यतानुसार कुत्सित देवी देवताओं की स्थापना कर ली है तथा जिनमें देवपना नहीं है किंतु देव मानकर उनकी लौकिक या लोकोत्तर कार्यों की सिद्धि के लिए पूजा, आराधना, भक्ति, गुणगान करने को देवमूढ़ता कहते हैं। लौकिक प्राणियों की देखादेखी अप्रतिष्ठित केलेंडर, फोटो, प्रतिमा को देव, तीर्थंकर, अरहन्त प्रभु मानकर आरती उतारना,

अर्घ चढ़ाना, मालार्पण करना, निरावरण करना कराना, हाथ जोड़ना, नमस्कार करनादि देवमूढ़ता है। **देवः**—भवनवासी, व्यंतरवासी, ज्योतिषी और वैमानिक। **देवाधिदेवः**—अरहंत, सिद्ध या पंचपरमेष्ठी। **अदेवः**—कुआ बावड़ी, पेड़पौधे, देहरी, नदी आदि। **कुदेवः**—जहाँ पर बकरे मुर्गे आदि की बलि चढ़ायी जाती है ऐसे स्थानों में स्थापित राजारानियों की मूर्तियां तथा मिथ्यादृष्टि देवदेवांगनाओं की मूर्तियां कहा भी है :—

वरोपलिप्सयाशावान, रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत, देवतामूढमुच्यते।।23।। आ. समंतभद्र र.श्रा.

अर्थ—वरदान प्राप्त करने का इच्छुक लोभी मानव अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ कषायरूपी मैल से मलिन चित्त वाले देवी देवताओं की उपासना करना देवमूढता है। सम्यग्दृष्टि देवी देवताओं की उपासना देवमूढ़ता नहीं कहा क्योंकि ये मोक्षमार्गस्थ जघन्य पात्र हैं। यदि इनका आदरसम्मान, उपासना करना देवमूढ़ता माना जाय तो अव्रती सम्यग्दृष्टि श्रावक श्राविकाओं की तथा अन्याय अभक्ष सेवी पतितों की उपासना, आदर सम्मान करना, माला पहनाना, कुर्सी देना, तिलक लगाना, रुपया पैसा, श्रीफल, मिठाई आदि भेंट देना भी देवमूढता क्यों न माना जायें कारण दोनों जगह गुणस्थान एक ही है।

प्र.830—अप्रतिष्ठित जिनेन्द्र की फोटो का और प्रतिमा का आदर सम्मान करने को आपने देवमूढ़ता क्यों कहा?

उत्तर—अप्रितिष्ठित जिनेन्द्र का फोटो, प्रतिमा केवल नाम निक्षेप से जिनेन्द्र का प्रतिरूप है, स्थापना निक्षेप से नहीं। नाम निक्षेप केवल लोकव्यवहार के लिए होता है, मोक्ष के लिए, मोक्षमार्ग के लिए नहीं क्योंकि नाम निक्षेप में जाति, गुण, कलादि की विवक्षा नहीं होती है किन्तु स्थापना निक्षेप में मंत्रों के द्वारा शुद्धि की जाती है, गुणों का आरोपण किया जाता है अतः जैनधर्म में गुणों की, गुणवानों की पूजा आराधना की जाती है, केवल जाति, कुल, शरीर की नहीं। इस कारण अप्रतिष्ठित मूर्ति फोटो आदि नहीं पूजे जाते हैं इसलिए इनको पूजना मूढ़ता कहा है जिस प्रकार अन्यमती को कहीं पर भी गोल पत्थर या वृक्ष मिल गया तो उसमें कुंकुम, चन्दनादि लगाकर, भगवान मानकर पूजने लगा और तुम दुकान से सैकड़ों हजारों रुपयों की मूर्तियों को, फोटुओं को लाकर पूजने लगे तो दोनों में क्या अन्तर रहा? दोनों समान हुए अतः मूर्खों के समान होने को मूढ़ता कहा है।

प्र.831—दोनों की मान्यता में, आकार में अन्तर अवश्य है यहाँ जिनेन्द्र का आकार है और वहाँ केवल गोलाकार है जब अंतर स्पष्ट है तो पूजने में दोष क्यों?

उत्तर—दोनों ही देव मानकर आदर सम्मान करते हैं अतः देव के संकल्प में अन्तर नहीं है। तदाकार और अतदाकार का अन्तर अवश्य है जैनशासन में दोनों प्रकार की स्थापना स्वीकार की गयी है। यदि अन्यमतियों की मान्यता, पूजा, आराधना मूढ़ता है तो तुम जैनों की मान्यता मूढ़ता क्यों नहीं? न्याय में पक्षपात क्यों? अतः जिनेन्द्र की अप्रतिष्ठित प्रतिमा प्रतिष्ठित के समान पूजा आराधना करने को, निरावरण करने को, दीपक जलाने को देव मूढ़ता कहा है। अतः अविवेकी मोक्षमार्गी नहीं हो सकता।

प्र.832—मंदिर, मूर्ति, मकान जब बनवाते हैं या बनाते हैं उस समय भूमिपूजन, शिला की पूजा, कारीगर का आदर सम्मान करते हैं अतः यह भी तो मूढ़ता है?

उत्तर—जहाँ पर मंदिर मूर्ति या मकान का शिलान्यास करते हैं वहाँ वर्तमान में मंदिर, मूर्ति है ऐसा मानकर नहीं किन्तु भविष्य में यहाँ मंदिर बनना है, बनवाना है, मूर्ति बनेगी, विराजमान होगी ऐसा विचार कर आदर सम्मान किया जाता है इस कारण मूढ़ता नहीं है। अप्रितिष्ठित फोटो को, मूर्ति को वर्तमान में ही भगवान मानकर पूजा करते हैं अतः मूढ़ता ही है। वहाँ शिलान्यास के समय पूजा आराधना करते हैं, हमेशा नहीं बाद में कारीगर उस भूमि पर, पाषाण पर बैठकर छेदन, भेदन, ताड़न आदि कार्य करते हैं और विशेष कार्यक्रमों में फोटो के सामने अखंड दीपक जलाकर कार्य प्रारंभ करना, देखादेखी करना, अविवेकतापूर्वक करना ही मूढ़ता है, गतानुगत है।

प्र.833—यदि अन्य लौकिक और देवगति के देवी देवताओं को लौकिक मानकर आदर सम्मान करें तो क्या हानि है?

उत्तर—आप जानते हैं कि ये अन्य मतियों के यहाँ लौकिक या देवगति के देवी देवता हैं लौकिक मानकर करते हैं किन्तु आपकी सन्तान को, आपके साथियों को यह भेद मालूम नहीं वो तो उसीको ही समीचीन मानकर पूजा आराधना

करने लगेंगे अतः आ. श्री समंतभद्र की तरह भावी पीढ़ी को सही रखने के लिए भी गुप्त रूप से नहीं करना चाहिए। अन्यमती मुसलमान, क्रिश्चन आदि तुम्हारे आराध्य देव को नहीं मानते, नहीं आते, नहीं पूजते, न हाथ जोड़ते, न नमस्कार करते किन्तु आप वहाँ जाकर माथा टेकते हैं मान्यता रखते हैं तब भावी पीढ़ी का और आपके मोक्षमार्ग का क्या हालचाल होगा? आप ही समझें आप ही विचारें। जिन घरों में अजैनों की लड़कियां बहू बनकर आई हैं तो कुछ को छोड़कर बाकी घरों का हाल चाल देखो, वह परिवार पूरा का पूरा हर प्रकार से अजैन बन गया।

प्र.834–वर्तमान में स्वास्थ्य लाभ के लिए डॉक्टरों का, वैद्यों का, लौकिक और लोकोत्तर कार्यों की सिद्धि के लिए पुलिसवालों का, राजनेताओं का, राजकर्मचारियों का, हीनाचारी सगेसंबंधियों का और अन्य प्राणियों का आदर सम्मान करते हैं, भेंट देते हैं, हाथ जोड़ते हैं आदि तो इसी तरह उन देवी देवताओं का मंदिरों में जाकर आदर सम्मान करें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–अन्य मंदिरों में लौकिक देवी देवताओं को लौकिक मानकर, कहकर, बताकर लौकिक कार्यों की सिद्धि के लिए कदाचित् लौकिक प्राणियों के समान सीमित मर्यादा का उल्लंघन न करते हुए यदि सम्मान करते हैं तो कुछ ठीक है किन्तु क्या आप इन डॉक्टर आदि की आरती उतारते हैं, अगरबत्ती लगाते हैं, अभिषेक, पूजापाठ करते हैं, माला फेरते हैं? नहीं, तो फिर आप अन्दर कुछ और बाहर कुछ ऐसा मायाचार पूर्वक व्यवहार क्यों करते हो ? साफ स्वच्छ करो क्योंकि निष्कपट निस्वार्थ व्यवहार हमेशा पूज्य है तथा कपट पूर्ण व्यवहार सदा से दुःखदायी रहा है और अपूज्य है।

प्र.835–लोक मूढ़ता किसे कहते हैं?

उत्तर–अज्ञानी प्राणी जिन लौकिक कार्यों को धर्म समझकर, आत्मशांति का उपाय मानकर करते हैं उन्हीं कार्यों को यदि अनेकान्तवादी दिगम्बर जैनमतानुयायी धर्म मानकर करें तो उस कार्य को अवश्य ही लोकमूढ़ता कहते हैं और करने वालों को मूर्ख कहते हैं क्योंकि इससे पतन ही होता है।

आपगासागरस्नान मुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोग्निपातश्च, लोकमूढं निगद्यते।।22।। आ. समंतभद्र र.श्रा.।

अर्थ–धर्म मानकर, पापकर्मों का क्षय हो ऐसा मानकर नदियों में, समुद्र में, कुएं बावड़ी आदि में स्नान करना, बालु का, पत्थर का ढेर लगाना, पर्वत से गिरना, अग्नि में प्रवेश करना आदि लोकमूढ़ता है।

प्र.836–यदि गंगा सिन्धु आदि अनादिनिधन नदियों में स्नान करने को लोकमूढ़ता कहा है तो जैनधर्म में इन नदियों के मूल स्थान में अकृत्रिम प्रतिमायें हैं तब पद्म सरोवर से निकलता हुआ पानी प्रतिमाजी के ऊपर गिरने से गंधोदक कहलाया तभी तो गंधोदक लगाते समय बोलते हैं :–

'निर्मलं निर्मलीकरणं, पवित्रं पाप नाशनम्।
जिनगंधोदकं वंदे, अष्ट कर्म विनाशकम्।।'

ऐसा श्लोक पढ़ते हैं। अब यदि अन्यमतियों की मान्यता मिथ्या है, मूढ़ता है तो तुम जैनियों की मान्यता भी मिथ्या मूढता कहलायेगी, क्योंकि जैन श्रावक और साधु उस गंधोदक से पाप की हानि, पुण्य की वृद्धि, दुःख नाशक सुखकारक, कर्मों को क्षय करनेवाला मानकर ही माथे में लगाते हैं तो मूढ़ता क्यों नहीं?

उत्तर–दोनों की बाह्य स्नान आदि की क्रियाओं में कोई अंतर नहीं हैं केवल अंतरंग के उद्देश्य में अंतर है। **वह क्या अंतर है?** जैन लोग उपरोक्त फल की प्राप्ति का अनेक कारणों में से एक बहिरंग निमित्त कारण मानते हैं इसीलिये जैन लोग जलाशय में मलमूत्र का, मुर्दे आदि गंदी वस्तुओं का क्षेपण नहीं करते किन्तु जैनेतर समाज नदियों को परम पवित्र मानकर भी मुर्दे आदि का क्षेपण करते हैं। जब घर में मुर्दा पड़ा हो तो घर का भोजनादि निकाल देते हैं, खाना पीना बंद कर देते हैं जबकि मुर्दा दूसरे कमरे में है और भोजन पान दूसरे कमरे में है। अधिकतर जैनेतर लोग नदियों में मुर्दे का दाह संस्कार करते हैं, मुर्दा क्षेपण करते हैं, अधजली हड्डीयों को डालते हैं, सारे शहरों का गंदा पानी, कारखानों का जहरीला पानी डालने से नदियों का पानी भी जहरीला हो गया जिससे संख्यात असंख्यात जलचर प्राणी मारे गये और पानी ही अपेय हो गया। सरकार ने पानी की सफाई के लिए करोड़ों रुपये

खर्च किये पर अशुद्ध जल शुद्ध नहीं हुआ। अपेय का अपेय ही रहा कारण अपवित्र मुर्दे का, मलमूत्रों का गंदे पानी का सन्निधान बना रहा, क्षेपण करना रोका नहीं, रुका नहीं। यदि अपवित्र वस्तुओं का क्षेपण करना बंद कर दिया जाय तो बिना परिश्रम के पानी अपने आप पवित्र हो जायेगा क्योंकि पानी स्वयं स्वच्छ होने के लिए अपने आप में छन्ना है पर निर्मलता चाहते हुए, सोचते हुए भी मलिनता का काम करते हैं इसीका नाम अविवेकता है। यही दोनों की मान्यता में अंतर है और भी अंतर हो सकते हैं।

प्र.837—गिरिपात, अग्निपात को लोकमूढ़ता क्यों कहा जबकि जैनग्रंथों में गिरिपात से भगवान नेमिनाथ की अंबिका यक्षणी बनी, अग्निपात से रानी सीता देवों के द्वारा पूज्य हुई ऐसा कहा है सो यही मान्यता जैनेतरों की है तब उनकी मान्यता को मूढ़ता कहना और अपनी कथाओं को सही कहना यह कैसा न्याय है?

उत्तर—गिरिपात से अंबिका देवी नहीं बनी, अग्नि में प्रवेश से सीता देवों के द्वारा पूज्य नहीं हुई किन्तु दान और सरल परिणामों से यक्षणी हुई तथा सीता शील के प्रभाव से देवों के द्वारा पूज्य हुई फिर भी लोकव्यवहार में अभेद विवक्षा कर मुख्य कारण को गौणकर, अभावकर, अप्रधान कारण को प्रधान कर मंडूक न्याय के अनुसार गिरिपात से, अग्निपात से उच्चपद की और पूज्यता की प्राप्ति होती है ऐसी प्रसिद्धि हुई परंतु लौकिक प्राणियों ने मुख्य अभिप्राय को छोडकर गिरिपात आदि से श्रेष्ठता की प्राप्ति हुई ऐसा विश्वास किया अतः मूढ़ता कहा है। जिस समय ये घटनायें घटी उस समय अभिप्राय दूसरा था किन्तु बाद में अविवेकता के कारण मूढ़ता कहलाया।

प्र.838—वे कौन से कार्य हैं जो लोकमूढ़ता कहलाते हैं?

उत्तर—अपनी तन, मन, धन, परिवार की, व्यापार की शक्ति को ध्यान में न रखकर तथा जातिकुल धर्म की मर्यादा को भूलकर लोगों की देखादेखी वस्त्र आभूषण धारण करना, विवाह आदि में खर्च करना, उसने विधवा विवाह किया मैं भी कर लूं, करा दूं, वो पान मसाला गुटखा खाते हैं, हम भी खायें, वे प्रेम विवाह कर रहे हैं। हम भी अपनी इच्छा से करेंगे आदि अनेक लौकिक कार्य करना लोक मूढ़ता है। शास्त्रों में पुराने उदाहरण तो दिये हैं उनके साथ में ये भी लोकमूढ़ता के रूप हैं क्योंकि वर्तमान में ही इन कार्यों को करने वालों के जीवन में, परिवार में नाना दुर्घटनायें घट रही हैं जो प्रत्यक्ष हैं।

प्र.839—वृक्षों को पूजना लोकमूढ़ता क्यों कहा जबकि जैन लोग भी तीर्थंकरों की दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक के पीपल, बरगदादि 24 वृक्षों को अशोकवृक्ष मानकर पूजते हैं तो अजैनों की मूढ़ता और जैनों का विवेक है क्या ऐसा न्याय है?

उत्तर—शस्त्र को सम्हालने की, चलाने की ताकत है तो रक्षा होती है अन्यथा अपने ही शस्त्र से अपना ही घात हो जाता है। तीर्थंकर जैसी महान आत्माओं ने जिस स्थान और वृक्ष के नीचे ठहरकर तप किया, ध्यान किया और केवलज्ञान प्राप्त किया, मोक्ष पाया तो उस स्थान को और वृक्षों को मंगलकारी मानकर जैन पूजते हैं न कि सभी जगह के वृक्षों को पूजते हैं और न विराधना करते हैं माध्यस्थभाव रखते हैं परंतु आप लोग जहाँ कहीं भी सर्वत्र उन वृक्षों को पूजते हैं, मान्यता रखते हैं। जैनों के तीर्थंकरादि महापुरुष शोक रहित अवस्था को प्राप्त हुए इसलिए अशोक वृक्ष प्रातिहार्यों में होने से मूलगुण मानकर जैनी पूजते हैं किंतु आप इनको भगवान मानकर पूजते हैं इसलिए मूढ़ता कहलाई।

प्र.840—इन कार्यों को लोकमूढ़ता क्यों कहा?

उत्तर—इन कार्यों को करने से तन, मन, धन, धर्म की, स्वास्थ्य की हानि ही होती है और हानिवाला कार्य मूर्खों का ही होता है। अनेक बसों में, ट्रेनों में धूम्रपान, मद्यपान करना सर्वथा वर्जित है ऐसा लिखा है और यह नियम सरकार का ही है फिर भी सरकार कत्लखाने, शराब की कंपनी जगह जगह खुलवा रही है, शराब के ठेके दे रही है, खानेपीने वालों को सबके सामने मना करती है तथा प्राइवेट में उत्साहित करती है और राजकर्मचारी कहते हैं कि तुम खाओ पिओ और हमको भी खिलाओ पिलाओ तथा कम्पनी वालों को परमिट देती है, टी0 वी0 में विज्ञापन निकलते हैं तब प्रजा का और सरकार का कैसे सुधार हो? **'मुख में राम बगल में छुरी'** जैसी कहावत चरितार्थ हो रही है।

प्र.841—गुरु मूढ़ता किसे कहते हैं?

उत्तर—जिनमें वैराग्य युक्त मोक्षमार्गस्थ धर्मगुरुपने का लक्षण नहीं पाया जाता उनको धर्मगुरु मानकर गुरु के समान विनय, नमस्कार, भोजनदान, आसनदान आदि देने को गुरु मूढ़ता कहते हैं।

सग्रन्थारम्भहिंसानां, संसारावर्तवर्तिनाम्।
पाखण्डिनां पुरस्कारो, ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम्।।24।। आ.समंतभद्र र.श्रा.।

अर्थ–आरंभ परिग्रह और हिंसादि पापों से सहित तथा संसार में भ्रमण कराने वाले कार्यों से सहित ऐसे पाखंडियों का आदर सन्मान करने को गुरु मूढता कहते हैं।

प्र.842–नाना वेष धारियों को, गांजाभांगादि पीने वालों को गुरु कह सकते हैं क्या?

उत्तर–यदि विकृत वेषवालों को, नशा करने वालों को, तामसी, राजसी, कंदमूल आदि का भोजन करने वालों को तथा गृहस्थों के समान आचरण करने वालों को धर्मगुरु कहते हो तो फिर गृहस्थ में और उस गुरु में क्या अन्तर रहा? जो निर्दोष सरकार की और निर्दोष शास्त्रों की आज्ञा नहीं माने किन्तु उल्टी चर्या करे तो उसे नेता और धर्मगुरु कैसे कहें? यदि ये सही हैं तो गलत कौन?

प्र.843–लौकिक शिक्षा देने वालों को भी धर्मगुरु कह सकते हैं क्या?

उत्तर–ये धर्म गुरु भी नहीं है और कुगुरु भी नहीं है किन्तु शिक्षागुरु हैं। आजीविका का उपाय बताने वाले असत्यमृषा वचन बोलने वाले होने से लौकिक व्यवहार शिक्षागुरु हैं।

प्र.844–कुगुरु किसे कहते हैं और इनकी मान्यता का क्या फल है?

उत्तर–नाना वेषधारी, धूम्रपान करने वाले, शराब पीने वाले, कंदमूलादि अभक्ष्य भक्षण करनेवाले को, अण्डा मांस आदि खाने वालों को लौकिक गुरु कुगुरु कहते हैं अतः निर्दोष लक्षण युक्त गुरु का मोक्ष के निमित्त तथा सदोष लक्षण युक्त कुगुरु का संसार के निमित्त विश्वास करना कि ये पत्थर की या लोहे की भारी नाव के समान हैं इनकी संगति से पतन होगा यही फल है।

प्र.845–धर्मगुरु की पत्नी होती है क्या?

उत्तर–नहीं, विषयवासना के त्यागी धर्मगुरु की पत्नी नहीं होती किन्तु गृहस्थाचार्य की हो सकती है।

प्र.846–आश्रम किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस स्थान के माध्यम से हिताहित की, सुख दुःख की, सुगति दुर्गति की, संसार मोक्ष की, भेद विज्ञान पूर्वक शिक्षा, संस्कार की प्राप्ति हो तो उस आश्रय को, सहारे को स्थान को आश्रम कहते हैं।

प्र.847–आश्रम के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–आश्रम के चार भेद हैं–ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम।

प्र.848–ब्रह्मचर्याश्रम किसे कहते हैं?

उत्तर–अध्ययन करते हुये तथा गृहस्थाश्रम के पहले तक कामवासना विषयवासना के उत्पन्न न होने को या कदाचित् पूर्व कर्मसंयोग या संगति वश विषय विकार उत्पन्न हो जाय तो अपने ज्ञानध्यान से शीघ्र ही समाप्त कर देने को ब्रह्मचर्याश्रम कहते हैं। देशभूषण कुलभूषण की तरह।

प्र.849–गृहस्थाश्रम किसे कहते हैं?

उत्तर–आहारादि चारों संज्ञाओं के जोर से पुरुषार्थहीन होकर वासनायुक्त विवाहित हो या अविवाहित आजीविका के साधनों में लगने को, परिश्रम करने को गृहस्थाश्रम कहते हैं।

प्र.850–वानप्रस्थाश्रम किसे कहते हैं?

उत्तर–गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए मन में संतोष हो जाये, वेद और कषाय मंद या क्षीण होने लगे तब उत्तराधिकारी को कुछ कुछ अधिकार सौंपते हुए तथा चलाचल संपत्ति का, विषयवासनादि का पूर्ण रूप से त्याग न कर किसी एकान्त स्थान में जाकर आत्मसाधना करने को वानप्रस्थाश्रम कहते हैं।

प्र.851–सन्यासाश्रम किसे कहते हैं?

उत्तर–उत्तराधिकारी को सम्पूर्ण आजीविका के साधन, चल अचल धन सम्पत्ति आदि सौंपकर, पूर्ण निशल्य, निःशंक होकर, विषय विकार का त्याग कर साधू बनकर आत्म साधना करने को सन्यासाश्रम कहते हैं।

प्र.852–शास्त्रों में गुरुपत्नी होती है ऐसा पढ़ा जाता है तो वह क्या गलत है?

उत्तर–शास्त्रों में जो गुरुपत्नी कहा है वह गृहस्थाचार्य की पत्नी समझना। मोक्षमार्गस्थ सर्व आरम्भ परिग्रह विकार के त्यागी दिगम्बर गुरु की नहीं। यदि सन्यासी की पत्नी हो तो गृहस्थ और सन्यासी में क्या अंतर रहा? दोनों एक

ही हुए यदि है तो सन्यास आश्रम कैसा? जब बाह्य अभ्यंतर आडम्बर का, परिग्रह का, परिवार का त्याग सन्यास आश्रम स्वीकार किया तो गुरु की पत्नि पुत्र मकान दुकान खेतीवाड़ी कहाँ से होगी ? यदि है तो वह सन्यासी कैसा अतः संयमीगुरु की पत्नि नहीं होती।

प्र.853–गृहस्थाचार्य किसे कहते हैं?

उत्तर–जो गृहस्थों के योग्य क्रियाकाण्ड, विवाह, विधि विधान आदि करते करवाते हैं तथा धर्म, जाति, कुल की रक्षा करते हुये आजीविका चलाने वाले को गृहस्थाचार्य कहते हैं।

प्र.854–आश्रमों का लक्षण दूसरे प्रकार से बताइये?

उत्तर–अविवाहित, निर्विकार होकर, सफेद वस्त्र धारणकर, चोटी, यज्ञोपवीत आदि संस्कारों से युक्त होकर पठन अध्ययन मनन करने को या आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेकर प्रतिमाधारी होने को ब्रह्मचर्याश्रम कहते हैं। पुरुषार्थहीन हो, आहारादि संज्ञाओं से पीड़ित होकर या दीन हीन अवस्था को प्राप्त कर दर्शन प्रतिमा से लेकर छठवीं प्रतिमा तक या नवमीं प्रतिमा तक अणुव्रतों का पालन करने को गृहस्थाश्रम कहते हैं। दसवीं ग्यारहवीं प्रतिमा का पालन करने को वानप्रस्थाश्रम कहते हैं। समस्त आरम्भ परिग्रह का, विषयविकार, ख्याति पूजा लाभ का त्याग कर शुद्धात्मसाधना करने को सन्यासाश्रम कहते हैं।

प्र.855–गृहस्थाश्रम स्वीकार किये बिना साधु बनना पलायनवादीपना क्यों नहीं है?

उत्तर–गृहस्थाश्रम कब स्वीकार किया जाता है? जब मन और इन्द्रियां वश में नहीं होती हैं, कामवासना अत्यधिक मात्रा में, आहारादि चार संज्ञायें तीव्रज्वर के समान पीड़ित कर रही हैं तब इनके शमनार्थ औषधि समझकर गृहस्थ जीवन स्वीकार किया जाता है। जैसे बुद्धिमान बिना रोग के डॉक्टर के पास नहीं जाते न दवाई खाते हैं अतः बिना वासना के गृहस्थ जीवन क्यों स्वीकार करना पड़े? कीचड़ में पैर लगाकर धोना यह कहाँ की बुद्धिमानी है? यदि गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है तो वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम हीन कहलाये फिर इन्हें क्यों स्वीकार करना पड़े? ऊपर से नीचे आना, गिरना मूर्खता का लक्षण है। पशुओं जैसा जीवन व्यतीत न हो इसलिए गृहस्थ जीवन स्वीकार करना पड़ता है अन्यथा नहीं। मन मोहित होने से ही गृहस्थ जीवन अच्छा लगता है, प्रशंसा करते हैं और विकार कामवासना शांत हुई कि गृहस्थ जीवन का ही त्याग कर देते हैं या निंदा प्रशंसा न कर माध्यस्थ भाव धारण करते हैं क्योंकि निंदा प्रशंसा से नीचगोत्र कर्म का आश्रव बंध होता है अन्यथा संवर निर्जरा होती है इस कारण बालब्रह्मचर्य व्रत पालन करना पलायनवादीपना नहीं है किंतु साधुपद को छोड़कर गृहस्थ जीवन स्वीकार करना ही धर्म से पलायनवादीपना है।

प्र.856–भगवान की, देव की पत्नी होती है क्या?

उत्तर–जिन्होंने ध्यान के द्वारा विषय विकारों को क्षय कर भगवान की पदवी पाई है उनकी पत्नी नहीं होती है किंतु देवगति के देवों की तथा देवों के पर्यायवाची राजाओं की पत्नी होती है।

प्र.857–भगवान का दर्जा, स्थान, पद गुरु से, सन्यासी से नीचे है या ऊपर?

उत्तर–सन्यासी की तप साधना का फल होनेसे भगवान का पद गुरु से बहुत ऊँचा है। जब सब कुछ त्याग करके सन्यासी बना तब गुरु की पत्नी नहीं तो भगवान की पत्नी भी कहाँ से आयेगी? यदि भगवान की पत्नी है तो भगवान के पास विषय विकार काम वासना मौजूद है। यदि विषय विकारों से युक्त को भगवान कहोगे तो गृहस्थ किसे कहोगे? जब इन सबका त्याग करके गुरु बना, तपसाधना करके भगवान पद पाया तब भगवान के पास किंचित् मात्र भी विकार सामग्री होनी ही नहीं चाहिए। यदि है तो उल्टी कर चाँटने के समान है ऐसा पतित व्यक्ति क्या दूसरों को कल्याणमार्ग बता सकता है? क्या आप कामवासना युक्त व्यक्ति को धर्मगुरु मानकर पूज सकते हैं?

प्र.858–शास्त्रों में भगवान की पत्नी होती है ऐसा पढ़ा है तो वह ठीक है क्या?

उत्तर– **राजाऽधिपः पतिः स्वामी नाथः परिवृढः प्रभुः।**
ईश्वरो विभुरीशानौ भर्तेन्द्र इन ईशिता।। धनंजय नाममाला

अर्थ–संस्कृत शब्दकोषों में राजा, अधिप, पति, स्वामी, नाथ, परिवृढ, प्रभु, ईश्वर, विभु, ईशान, भर्ता, इन्द्र, इन, ईशित भगवान देव आदि राजा के पयार्यवाची नाम बताये हैं अर्थात् गद्दी के मालिक को, राजा को भगवान कहा अतः राजरानी भगवान की रानी पत्नी अर्थ समझना क्योंकि प्रजा अपने रक्षक को, पालक को भगवान कह कर के

पुकारती है, आदर सम्मान करती है जो तप साधना से सब कुछ त्याग कर के भगवान बने हैं उन भगवान की पत्नी नहीं होती है।

प्र.859–शंका आदि दोष किसे कहते हैं तथा दोषों के कितने भेद हैं?

उत्तर–क्षायोपशमिक या वेदक सम्यग्दर्शन में सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृति के उदय से मलिनता, शिथिलता होने को, श्रद्धान के विषय में दृढ़ता न होने को, चलायमान होने को दोष कहते हैं। अतिक्रमदोष, व्यतिक्रम दोष, अतिचारदोष और अनाचार दोष ये 4 नाम हैं।

प्र.860–शंका आदि अतिचारों के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–पांच भेद हैं। 1. शंकातिचार, 2. कांक्षातिचार, 3. विचिकित्सातिचार, 4. अन्यदृष्टिप्रशंसातिचार और 5. अन्यदृष्टिस्तव अतिचार। ये 5 नाम हैं।

प्र.861–शंका अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षमार्ग के योग्य साधनभूत विश्वास के निमित्त देव शास्त्र गुरु, सात तत्त्व, नव पदार्थ, छह द्रव्य, पंचास्तिकाय तथा सर्वश्रेष्ठ अनन्त गुण पर्यायधर्मों का पिण्डस्वरूप अपनी आत्मा में यह है या नहीं, सम्यक् है या मिथ्या, स्वभाव कैसा है कैसा नहीं, इनके माध्यम से हित सुख हो सकता है या नहीं ये सुख में साधक हैं या बाधक आदि परिणामों को शंका अतिचार दोष कहते हैं।

प्र.862–शंका अतिचार कब उत्पन्न होता है?

उत्तर–अपना विशेष क्षयोपशम न होने से और नाना प्रकार के विकार युक्त वक्ताओं से विरोध युक्त वचनों को सुनकर कि इन पंडितजी ने, महाराज ने या आचार्यश्री ने कहा है सो यह ठीक है या उन्होंने कहा है सो वह ठीक है आदि विचारों से शंकातिचार उत्पन्न होता है। इस कारण जब तक अपने स्वसमय मे पर्याप्त जानकारी तथा दृढ़ता न आ जाये तब तक परसमय वालों की संगति शिक्षादि ग्रहण स्वीकार नहीं करना चाहिये, न उनके पास जाना चाहिए, न पढ़ना चाहिए अन्यथा जो अपने पास है वह भी चला जायेगा **'इतो भ्रष्टः ततो भ्रष्टः।'** दोनों तरफ से भ्रष्ट हुआ जैसी कहावत चरितार्थ होगी।

प्र.863–कांक्षा अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षमार्गस्थ धर्मसाधनों के माध्यम से आजीविका चलाने को, विषय भोगों का साधन बना लेने को कांक्षा अतिचार कहते हैं।

प्र.864–कांक्षा अतिचार कब उत्पन्न होता है?

उत्तर–जब भोगों को भोगते हुए कमजोर होनेसे, भोगों में कमी होने से, भोगसामग्री पर्याप्त न होने से, भोगने में अतृप्ति होने के कारण इच्छाओं की पूर्ति के लिए कांक्षा दोष उत्पन्न होता है।

प्र.865–विचिकित्सा अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षमार्गस्थ प्रमादी जीवों के प्रति ग्लानि करने को, नाकादि सिकोड़ने को विचिकित्सा दोष कहते हैं।

प्र.866–विचिकित्सा अतिचार कब उत्पन्न होता है?

उत्तर–मोक्षमार्गस्थ साधकों के अथवा किसी भी प्राणी की मलिन अवस्थाको देखकर घृणा करने को, सेवा वैयावृत्ति न करने से, दान न देने से, द्वेषबुद्धि आदि कारणों से विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा व्रत उपवास, सर्दी गर्मी आदि से घृणा करने को यह बहुत कठिन है, सहन नहीं होता है, व्रत नहीं करते तो अच्छा था, संयम व्रत किया है इस कारण कष्टों से, अपमान से, गालियों से यह दोष उत्पन्न होता है।

प्र.867–अन्यदृष्टिप्रशंसा नामक अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षमार्ग तथा देव शास्त्र गुरु की आज्ञा के विरुद्ध मिथ्यादृष्टि व्यक्तियों के बाह्य में कुछ आश्चर्यकारी घटनाओं को तथा ज्योतिष, मन्त्र, तन्त्र, औषधि, बल, धन, वैभव, प्रभावादि देखकर, सुनकर मन में प्रसन्न होने को अन्यदृष्टि प्रशंसातिचार कहते हैं।

प्र.868–अन्यदृष्टिस्तव अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीवों के लौकिक ज्योतिष, मन्त्र, तन्त्र, औषधि, बल, वीर्य, कला, धन वैभव, परिवार, शक्ति, उत्साह, आदि को देखकर, सुनकर, कल्याणकारी मानकर वचन और काय के द्वारा गुणगान, गुणकीर्तन करने को, आसन दानादि देने को अन्यदृष्टिस्तव अतिचार कहते हैं।

प्र.869—अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिस्तव अतिचारों में क्या अन्तर है?

उत्तर—अन्यदृष्टिप्रशंसा में भावों की मुख्यता है तथा अन्यदृष्टिस्तव में वचन और काय की मुख्यता है। एक के सद्भाव में दूसरे का सद्भाव रहता ही है अथवा कहीं कहीं मन में होता है किंतु वचन और काय में नहीं तथा कहीं कहीं वचन और काय में होता है किंतु मन में नहीं। जैसे सर्विस में मालिक की आज्ञानुसार बोलना पड़ता है, करना पड़ता है किंतु मन में नहीं होता और मन में दान पूजा सेवादि की इच्छा है पर मालिक छुट्टी देवे तो करें अन्यथा कैसे करें? यही अंतर है

प्र.870—गुणकीर्तन करना स्तुति और वंदना नाम का मूलगुण है तब यहाँ आपने गुण प्रशंसा, गुण स्तवन को अतिचार दोष क्यों कहा?

उत्तर—मोक्ष और मोक्षमार्ग के साधनभूत गुणों का स्तवन, कथन, मनन करना समीचीन गुण है किन्तु यहाँ मिथ्यादृष्टि जीवों के लौकिक गुणों का गुण कीर्तनादि करने को अतिचार दोष कहा है, जैसे अनेक गुणों से संपन्न दूध जहर के संसर्ग से मारक हो जाता है वैसे ही अनेक गुणधर्म मिथ्यात्व के संबंध से दोष युक्त हो जाते हैं इसलिये मिथ्यादृष्टि जीवों के गुणों का कीर्तन करना दोष कहा है।

प्र.871—लौकिक गुणकीर्तन गुणप्रशंसा करने से क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर—इन लौकिक गुणों की प्रशंसा सुनकर मिथ्यादृष्टि मानव और भी अत्यधिक मिथ्यात्व की पुष्टि कर लेते हैं तथा स्वयं में नवकोटियों से मिथ्यात्व की अनुमोदना से अपना ही रत्नत्रय नष्ट होता है।

प्र.872—लौकिक गुणों से युक्त जैनों की प्रशंसा स्तवन तो कर सकते हैं?

उत्तर—नहीं कर सकते क्योंकि सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष्य के सेवी, जुआदि अनेक व्यसनों के सेवी, जाति कुल और जैनधर्म को कलंकित करनेवालों की प्रशंसा नहीं करते हैं।

प्र.873—उक्त जैनों की प्रशंसा स्तवन करने से क्या हानि है, उदाहरण सहित बताओ?

उत्तर—ये गुण मिथ्यात्व के साथ में होनेसे मिथ्यात्व के समान घातक बन जाते हैं जैसे गाय आदि का दूध स्वादिष्ट पौष्टिकादि अनेक गुणों से युक्त होने पर भी जहर के संसर्ग से मारक हो जाता है अतः सदाचार धर्म भी मिथ्यात्व के साहचर्य से हानिकारक बन जाता है।

प्र.874—क्या जैन भी मिथ्यादृष्टि होते हैं?

उत्तर—हाँ, अवश्य हो सकते हैं क्योंकि जो जैन गृहस्थ, अणुव्रती या दिगम्बर और इतर मुनि होकर भी अन्याय, अभक्ष्य के भोगी, शराबी, मांसाहारिओं के हाथों के दूध, घी आदि के भोगी, अनछनापानी, अनछने पानी का बना भोजन, रात्रिभोजन, रात्रि का बना हुआ भोजन, होटल का भोजन, अजैनों का भोजन, कन्दमूल भक्षण, अमर्यादित भोजनपान, मद्य मांस मधु, चर्मचर्बी आदि से निर्मित औषधि, शृंगारालंकार की सामग्री का उपयोग तथा गर्भपात, कीटनाशक दवाईयों का निर्माण, क्रय विक्रय और प्रयोग, बहुओं को दहेजादि के कारण जला देते हैं, निकाल देते हैं, तलाक दे देते हैं। देव शास्त्र गुरु के निमित्त दान सामग्री को, पूजा यात्रा की, जीर्णोद्धार की, धर्मशाला की, पाठशाला की दानराशि को खाने में, हड़पने में किंचित् भी घबराहट नहीं होती, छोटे प्रचारकों को, चन्दा करने वालों को, बदनाम करने में, पत्रबाजी करने में डर नहीं लगता। कहते हैं कि ये धोखेबाज हैं मिल जायें तो पुलिस के हवाले कर दो आदि। जो समाज की, धर्मादा की रकमें खाकर बैठे हैं, देने के नाम पर डकार भी नहीं लेते जो पहले गद्दी के मालिकों ने समाज के साथ अत्याचार किये थे वैसे ही अत्याचार आजकल समाज के साथ कमेटी वाले करते हैं यह बात सर्वविदित है तब इन्हें सम्यग्दृष्टि कहा जाये या मिथ्यादृष्टि, महापापी? गृहत्यागी व्रती साधु आदि बनकर, ख्याति पूजा लाभ की होड़ में इतने अंधे हो रहे हैं कि जगह जगह समाज को लड़ाना, झगड़ा करना कराना, फूट डालना, सम्प्रदाय के नाम पर पंथवाद का भेद डालनादि करने वालों को सम्यग्दृष्टि कहा जाये या मिथ्यादृष्टि? अतः नामधारी अनाचार अत्याचार करने वाले इन जैनों की प्रशंसा, गुणकीर्तन करना भी अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्य दृष्टिस्तव नाम का एकाद बार होने से अतिचार और पुनः पुनः होना अनाचार है।

प्र.875—इन जैनों का आदर सम्मान करने से क्या हानि है?

उत्तर—इन मिथ्यादृष्टियों नामधारी जैनों का मन में प्रसन्न होने से, गुणगान, गुणकीर्तन, आदर सम्मान करने से स्वयं में मिथ्यात्व की आराधना होती है। रत्नत्रय रूपी मोक्षमार्ग नष्ट होता है। व्यवहार मार्ग भी बिगड़ता है। जो वर्तमान

में आज प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। रोटी बेटी बिगड़ रही है। बेटी विवाहादि कार्यों में शराब का, अण्डों का प्रचलन चालू हो गया है, हो रहा है। यह तो प्रत्यक्ष में हानि हो रही है और भविष्य में कितना अनर्थ होगा इसको उसी समय भुक्त भोगी जानेंगे?

प्र.876–जैनों में शराब का, अण्डों का प्रचलन हो गया है यह कैसे मालूम हुआ?

उत्तर–अनेक धर्मक्षेत्रों में, धर्मशालाओं में जहाँ जैन यात्री जाते हैं, ठहरते हैं उनके कमरों में शराब की बोतलें, अण्डों के छिलके प्रत्यक्ष देखे गये हैं कही सुनी बात नहीं है। यदि विश्वास नहीं है तो मौनपूर्वक गुप्त रूप से जैनों की शादियों में तथा क्षेत्रों में जाकर सर्वेक्षण कर लो तथा घरों में जाकर देख लो कि धनवान लोग इन आचार विचारों में कितने फंस गये, लग गये हैं अथवा शराब, अंडे, मांसादि व्यसनों के त्याग की बात करते हैं तो मना कर देते हैं कि हमसे न पलेगा, साथियों के साथ प्रेम व्यवहार चलता है आदि तब तो दृढ विश्वास हो जायेगा कि यह सत्य है या गलत।

प्र.877–जब समाज में ऐसी दुष्प्रवृत्ति प्रवेश कर गयी है तो क्या करना चाहिए?

उत्तर–आज के सुधारकवादी समझे जाने वाले समाज में, जिनधर्म में इन अनाचारियों को सम्बोधन नहीं करते बहिष्कार नहीं करते, उल्टा विधवा विवाह, त्यक्ता विवाहादि कराते हैं और अनाचारियों को साथ में लेकर संगठन बनाकर मना करने वालों को समाज विरोधी, धर्मद्रोही कहकर तिरस्कार करवाते हैं तथा पिटवाते भी हैं। अतः सुधारकवादियों को चाहिए कि वे अनाचार का, अनाचारियों को त्याग करें और करावें। समीचीन शिक्षा तथा प्रत्येक अनाड़ियों को आजीविका का साधन देकर मार्ग में लगावें।

प्र.878–उक्त अनाचार प्रवृत्ति जैनों में क्यों आ गई?

उत्तर–धर्म के संस्कार, धर्मात्माओं की संगति, धर्म की शिक्षा न होने से, गर्भधारण, गर्भ की रक्षा, वृद्धि डॉक्टरों की निगाह में होने से, अभक्ष्य भोजन और औषधियों का सेवन करने से, बाजारों में घूमने से, होटलों में खाने से, नग्न पिक्चर, नाच देखने से, गीत, संगीत सुनने से इन आचार विचारों ने जैनों में जैनों के घरों में अपना निवास स्थान बना लिया है तथा अस्पतालों में जन्म देने से, हीन आचार विचार वालों के हाथ का दूध, सेवा, खानपान करने से सन्तान बिगड़ रही है तथा समाज में ये दुष्प्रवृत्तियां रक्त के समान प्रवेश कर गई हैं, मिल गई हैं। विकार युक्त वस्त्राभूषण धारण करने पर भी आजकल बालिकाओं के वस्त्र शरीर का प्रदर्शन कराने वाले हैं, वस्त्र धारण किये हुए होने पर भी नग्न हैं। माँ बाप को शर्म नहीं आती कि हम इन जवान लड़कियों को ऐसे वस्त्र कैसे पहनवाते हैं, जब दुर्घटनायें घटती हैं तब समाज में, पुलिस में गीत गाते हैं कि हमारी पुत्री का अपहरण हो गया, उसने गलत व्यवहार किया आदि तथा आत्महत्या करा दी जाती है या स्वयं कर लेती हैं, रोजाना ऐसी दुर्घटनायें घट रही हैं। माँ बाप की, समाज की, प्रजा की आँखें नहीं खुलती हैं कि हम ऐसी कुरीतियों को हटायें। समझते हैं कि यह घटना दूसरों के यहाँ घटी है, हमारे यहाँ नहीं ऐसा विचार कर हँसी उड़ाते हैं, मजाक करते हैं। हमारे यहाँ भी ऐसी घटना घट सकती है ऐसा स्वयं नहीं सोचते पर जब घटती है तब रोते हैं हाय ! यह क्या हुआ, अब कहाँ मुँह दिखायें, क्या करें आदि समझ में नहीं आता? आज का मानव गरीब, अमीर, नेता, प्रजा, धार्मिक समाज और श्रावक श्राविकायें कुरीतियों को, अत्याचारों को दूर करने के लिये केवल बोलते हैं पर स्वयं त्याग नहीं करते तब सुखी कैसे होवें ?

प्र.879–प्रतिक्रमण कब करना चाहिए?

उत्तर–जैसे साध्य या असाध्य बीमारी को दूर करने के लिये उसी समय डॉक्टर के पास जाकर इलाज करा लेते हैं अन्यथा उसी अवस्था में कष्ट पूर्वक मृत्यु हो सकती है, हो जाती है वैसे ही की हुई प्रतिज्ञा में मन वचन काय के द्वारा मोक्षमार्ग के, जातिकुल के, अपने पद के विरुद्ध आचरण के उत्पन्न होते ही, घटते ही गलती की जानकारी होने पर शीघ्र ही पंचपरमेष्ठियों की, देवी देवताओं की या प्रबुद्ध समर्थ घर के, समाज की, गाँव के मुखिया की साक्षी और स्वयं की साक्षी निर्विकार बालक के समान प्रमाद वश लगे हुए दोषों को दूर करने के लिए जब मन बेचैन हो जाये तो मन की बीमारी को दूर करने के लिये प्रतिक्रमण कर लेना चाहिये अन्यथा असावधानी करने से, कालक्षेप करने से, सदोष अवस्था में मरण होने से दुर्गति में गमन होना अवश्यंभावी है।

प्र.880–प्रतिक्रमण क्यों करना चाहिए और नहीं करने से क्या हानि है?

उत्तर–आत्म संशोधन के लिए प्रतिक्रमण करना चाहिए अन्यथा टालमटोल करने पर, गलती के भूल जाने पर, प्रतिक्रमण नहीं करने पर आत्मा की शुद्धि नहीं हो सकती और अधःपतन होना अवश्यंभावी है, दुर्गतियों में दुःख भोगना, निंदा होना आदि हानि है इसलिए प्रतिक्रमण करना चाहिए

प्र.881–व्यसन और पाप में क्या अन्तर है?

उत्तर–

व्यसन	पाप
1. दुर्व्यसनों में तीव्र कषाय ही होती है।	1. तीव्र कषाय और मंद कषाय दोनों होती हैं।
2. कर्मभूमिज आर्यमलेच्छ मनुष्यों में व्यसनी होते हैं, भोगभूमिज तथा सम्मूर्च्छन मनुष्यों में नहीं।	2. सभी भव्य अभव्य, सैनी असैनी, असंयमी और देश संयमी प्राणी पापों में प्रवृत्ति करते हैं।
3. मिथ्यादृष्टि, अव्रती, दुर्लेश्याओं वाला और आर्त रौद्रध्यानी मनुष्य व्यसन सेवन करता है।	3. मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती जीव पाप करते कराते हैं।
4. समर्थ भी मनुष्य भी व्यसन सेवन छिपकर करता है, डरता है, कायर भी होता है।	4. एकेंद्रियों से लेकर पंचेंद्रिय तक के जीव कथंचित् पाप करते हैं।
5. व्यसनों का त्याग करना कठिन है।	5. पापों का त्याग करना सरल है।
6. व्यसनों के सेवन करते समय मोक्षमार्ग न होकर एकमात्र संसारमार्ग ही होता है।	6. पाप करते समय संसारमार्ग और मोक्षमार्ग दोनों हो सकते हैं।
7. व्यसनों का त्याग पूर्णरूप से किया और कराया जाता है।	7. पापों का त्याग अणुरूप में तथा महाव्रत रूप में भी किया और कराया जाता है।
8. व्यसनों में प्रवृत्ति होने पर किंचित् मात्र भी मोक्ष मार्ग की भूमिका ही प्रारम्भ नहीं होती।	8. पापों में प्रवृत्ति होने पर मोक्ष मार्ग तथा संसार मार्ग दोनों भी हो सकते हैं।
9. व्यसनी जीवों के प्रतिसमय असंख्यातगुणा अधिक आश्रव बंध होता है तथा कभी कम भी होता है।	9. पापाचरण में मोक्षमार्गानुरूप संवर निर्जरा तथा कभी आश्रवबन्ध कम और कभी ज्यादा भी होता है।
10. व्यसन सेवन करते समय मिथ्यात्रय ही होता है।	10. पाप करते समय सदसत्त्रय हो सकते हैं।
11. व्यसनी प्राणियों की अन्याय और अभक्ष्य सेवन में प्रवृत्ति होती है।	11. पापी प्राणिओं की अन्याय और अभक्ष्य पदार्थों के सेवन में प्रवृत्ति होती है और नहीं भी।
12. अशुभ लेश्यायें ही होती हैं।	12. अशुभ और शुभ दोनों लेश्यायें हो सकती हैं।
13. आर्त रौद्रध्यान ही होते हैं।	13. आर्त, रौद्रध्यान और धर्मध्यान भी होते हैं।
14. समीचीन व्यवहार मोक्षमार्ग भी नहीं होता है।	14. समीचीन व्यवहार मोक्षमार्ग हो सकता है।
15. व्यसनों में प्रवृत्ति जन्म के बाद में कुशिक्षा कुसंगति, कुसंस्कारों से प्रारम्भ हो सकती है।	15. किन्तु पापों में प्रवृत्ति गर्भ से और जन्म से भी हो सकती है और नहीं भी हो सकती है।
16. यह व्यक्ति दुराचारी दुर्विचारी ही होता है।	16. यह सदाचारी सद्विचारी भी हो सकता है।

इस प्रकार व्यसन और पापों में अन्तर बताया है तथा अपने ज्ञानानुसार भी लगा सकते हैं।

प्र.882–शंकादि अतिचार, अनाचार दोषों में प्रवृत्ति किन कारणों से होती है?

उत्तर–सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृति के उदय से सत् श्रद्धान में शंकादि 25 मलदोष, शंकादि 5 अतिचार, चल मलिन अगाढ़ दोषों में प्रवृत्ति, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व के उदय से अनाचार रूप प्रवृत्ति, चारित्र मोहोदय से सम्यक्चारित्र में और मोहयुक्त ज्ञानावरणीय कर्मोदय से ज्ञान में सदोष प्रवृत्ति होती है।

प्र.883–उक्त दोषों से रत्नत्रय का विनाश देशांश होता है या सर्वांश?

उत्तर–अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार दोषों से रत्नत्रय का देशांश तथा अनाचार दोष से सर्वांश मलिन होता है क्योंकि क्षयोपशम और उदय करण समस्त प्रदेशों में सर्वघाति और देशघाति रूप से होता है। इसी कारण श्रद्धान और अश्रद्धान के पर्याय रूप में अविभाग प्रतिच्छेद शक्त्यंश और व्यक्त्यंश अलग[2] होने से ही मोक्षमार्ग संसारमार्ग और मिश्रमार्ग सिद्ध होता है, ये तीनों ही अवस्थायें नाना जीवों की अपेक्षा अनादिकाल से हैं और अनन्तकाल तक रहेंगी। यदि एकान्त से कोई एक ही अवस्था स्वीकार की जाये तो एक ही संसारमार्ग या मोक्षमार्ग या मिश्रमार्ग बनेगा तब किसके संशोधन के लिए उपयोग केंद्रित करें? फिर किसके लिए ध्यान करना? यदि सर्वथा शुद्ध है तो शुद्ध के लिए क्या ध्यान करना?

क्योंकि ध्यान अशुद्धि को दूर करने के लिए किया जाता है और आत्मा सर्वथा त्रिकाली अशुद्ध है तो वह ध्यान से दूर हो नहीं सकती तब ध्यान से क्या प्रयोजन? अतः आत्मा कथंचित् शुद्धाशुद्ध है।

प्र.884–यदि कोई निगोदिया जीव ऊर्ध्वलोक में तनुवातवलय के अंतिम प्रदेश में मरण करे तो वह कहाँ जायेगा?

उत्तर–ऊर्ध्वलोक में तनुवातवलय के अंतिम प्रदेश में स्थित निगोदिया जीव मरण नहीं करता है क्योंकि मरण करते ही ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण ऊपर उठना है तथा आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से गमन कर नहीं सकता यदि मरण करेगा तो आगे जानेपर लोकाकाश की सीमा समाप्त हो जायेगी। इस कारण वह जीव वहाँ मरण नहीं करता किन्तु मरण के पूर्व कुछ समय पहले कुछ ही प्रदेश नीचे खिसक कर आकर मरण करेगा और मरणकर सर्वप्रथम ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण ऊपर उठकर बाद में मोड़ा लेकर जन्मस्थान को चला जायेगा। तत्त्वार्थ सूत्र में **'पूर्वप्रयोगात् आविद्धकुलाल चक्रवत्।'** जिस प्रकार कुम्हार चक्र में पहले वेग भर देता है तब पूर्व वेग के कारण चक्र घूमता रहता है इसीप्रकार संसारी जीवों ने ऊपर उठने का अनंतों बार अभ्यास किया है तब निगोदिया जीव भी यदि तनुवातवलय के अंतिम प्रदेश में मरण कर ऊपर अलोकाकाश में चला गया तो लोकालोक का विभाग नहीं बन सकता तथा जहाँ तक निगोदिया जीव मरण कर ऊपर जायेगा तो वहाँ तक सभी द्रव्यों का अस्तित्त्व मानना पड़ेगा अतः तनुवातवलय के ऊपर अंतिम प्रदेश में मरण नहीं करता यह निष्कर्ष है।

प्र.885–एकदेश त्याग करना, एकदेश मलिन हुआ तो यहाँ एकदेश का क्या मतलब?

उत्तर–यहाँ एकदेश का अर्थ थोड़े प्रदेश नहीं, न थोड़े अंशों में किन्तु श्रद्धान के सर्वांश में से कुछ अंश दूषित हुए जैसे व्यापारी को व्यापार में या आमदनी में कुछ घाटा पड़ा तब एकदेश थोड़ा घाटा पड़ा या अधिक घाटा पड़ा तो सर्वदेश पूरा का पूरा घाटा पड़ा यहाँ पर विचार करना है कि हजार की आमदनी में से कुछ थोड़ी सी आमदनी हुई तो कहते हैं कि कुछ भी आमदनी नहीं हुई, थोड़ा घाटा पड़ा तो कहते हैं कि बहुत घाटा पड़ा, पूरा का पूरा हजार रुपया चला गया कुछ भी मुनाफा न हुआ अत्यधिक घाटा पड़ा अथवा मूलधन में भी कुछ घट गया तथा मूलधन में भी एक रुपया एक पैसा न बचा तो सब कुछ चला गया पूरा का पूरा घाटा पड़ा । ऐसा दोनों प्रकार का व्यवहार देखा जाता है अथवा दूसरा उदाहरण मलिन वस्त्र का थोड़ा सा मैल साफ हुआ मतलब मैल की परतों में कुछ कमी हुई या कमी आई तो थोड़े मैल के पटल कम होने से वस्त्र थोड़ा सा साफ हुआ और पूरा का पूरा मैल साफ हो गया वस्त्र अपनी पूर्व की स्वच्छ अवस्था को प्राप्त हो गया तो कहा जाता है कि पूरा मैल साफ हो गया। इसी तरह आत्मा से थोड़ा कर्ममल विकार दूर हो गया तो एकदेश विकार दूर हो गया, पूर्ण विकार चला गया तो आत्मा पूर्ण शुद्ध हुई, पूर्ण विकार नष्ट हुआ अथवा किसी प्रकार की प्रतिज्ञा में भी अतिक्रम व्यतिक्रम दोष लगा तो प्रतिज्ञा थोड़ी दूषित हुई, अतिचार दोष लगा तो प्रतिज्ञा ज्यादा नष्ट हुई और अनाचार दोष लगा तो समूल रूप से विनाश को प्राप्त हुई। मिथ्यात्वोदय से मिथ्यात्वगुणस्थान को प्राप्त हुआ, अनन्तानुबन्धी कषायोदय से दूसरे गुणस्थान को, सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से तीसरे गुणस्थान को प्राप्त हुआ, अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय से चौथे गुणस्थान को प्राप्त हो गया तो संयम रूप चारित्र का पूर्ण रूप से विनाश हुआ ऐसा शास्त्रों में पढ़ा जाता है।

प्र.886–मिथ्यादृष्टि जीवों की जैनागम के सम्बन्ध में कैसी मान्यता होती है?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीव सर्वथा एकान्त से अपने आप में अंधा बनकर जो भगवान ने कहा वही सत्य है ऐसा आज्ञाकारी बनकर अपने क्षायोपशमिक ज्ञान का सम्यक्परीक्षा के लिए किंचित् मात्र भी प्रयोग न करके ईश्वरवादियों की या मुसलमानों ने ईश्वर या अल्ला के कहने से, देखने, जानने से सत्य हुआ है स्वभाव से नहीं है। इसी तरह जैन भी सर्वज्ञ ने जो कहा है वही सत्य है स्वभाव से नहीं ऐसा मिथ्यात्व के उदय से मान्यता कर लेता है की यही सत्य है।

प्र.887–सम्यग्दृष्टि जीव की जैनागम के संबंध में किस प्रकार की मान्यता होती है?

उत्तर–सम्यग्दृष्टि जीव की जैनागम के सम्बन्ध में अनेकान्त रूप से मान्यता होती है तो वह अनेकान्त क्या है? वह सम्यग्दृष्टि जीव उपकार की दृष्टि से, मार्गदर्शक की अपेक्षा से विचार करता है, विश्वास करता है कि जिनेन्द्रदेव ने जो जैसा देखा, जाना, कहा वैसा ही तत्त्व है, अन्य नहीं अन्य प्रकार से नहीं क्योंकि जिनेन्द्र वीतरागी सर्वज्ञ और हितोपदेशी होने से अन्यथावादी नहीं होते तथा जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा ही केवली भगवान ने जाना है वैसा ही प्रतिपादन किया है ऐसा विश्वास करता है।

प्र.888–अनेकांत और स्याद्वाद किसे कहते हैं?

उत्तर–अनेकांतः–अनंत धर्मों के पिण्ड को या अनेक धर्मों का समावेश जिसमें हो उसे अनेकांत या अनंत धर्मों के समूह को अनेकांत कहते हैं। **स्याद्वादः**–किसी अपेक्षावश नयों के द्वारा चिंतन मनन और कथन करने को अथवा सापेक्ष कथन करने की पद्धति को अथवा श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर उत्पन्न हुए नाना भेदों से युक्त श्रुतज्ञान को स्याद्वाद कहते हैं।

प्र.889–अनेकांत के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–अनेकांत के दो भेद हैं। नाम–सम्यक् अनेकांत और मिथ्या अनेकांत।

प्र.890–सम्यक् अनेकांत किसे कहते हैं?

उत्तर–समस्त वस्तुगत अनंतधर्मों को यथावस्थित प्रमाण ज्ञान के विषय को सम्यक् अनेकांत कहते हैं।

प्र.891–मिथ्या अनेकांत किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्यात्रय पूर्वक प्रमाणाभास ज्ञान के विषय को मिथ्या अनेकांत कहते हैं।

प्र.892–एकांत किसे कहते हैं?

उत्तर–किसी वस्तु या किसी एक धर्म को या एक नय के विषय को एकांत कहते हैं।

प्र.893–एकांत के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–दो भेद हैं। सम्यग्एकांत और मिथ्या एकांत।

प्र.894–सम्यक् एकांत किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्यग्नय ज्ञान के सापेक्ष विषय को सम्यग्एकांत कहते हैं।

प्र.895–मिथ्या एकांत किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्यानय ज्ञान के निरपेक्ष विषय को मिथ्या एकांत कहते हैं।

प्र.896–मिथ्या एकांत या मिथ्या अनेकांत स्वरूप वस्तु है क्या?

उत्तर–नहीं, वस्तु न मिथ्याएकांत स्वरूप है, न मिथ्या अनेकांत स्वरूप किंतु नयाभास प्रमाणाभास पूर्वक प्रतिभास करनेवालों की अपेक्षा से वस्तु कही जाती है।

प्र.897–सम्यक् एकांत और सम्यक् अनेकांत स्वरूप वस्तु हैं क्या?

उत्तर–नहीं, वस्तु इस प्रकार नहीं है किंतु सम्यग्ज्ञान पूर्वक सम्यगेकांत और सम्यगनेकांत रूप में अनुभव में आती है अतः अनुभव कर्ता की अपेक्षा वस्तु इस प्रकार है किंतु वस्तु स्वभाव भिन्न है। जैसे कहा हैः–

कोउ कहत है, है नहीं, कोउ कहत है, है।
है और नहीं के बीच में, जो कुछ है, सो है।

अर्थ–कोई कहता है कि वस्तु इस प्रकार है कोई कहता है इस प्रकार नहीं है किंतु दोनों के मध्य में वस्तु जैसी है वैसी ही है जैसे अपनी आँखों पर चश्मा रंगीन है तो दृश्य पदार्थ रंगीन दिखाई देगा यदि निर्मल बिना रंग का चश्मा है तो दृश्य पदार्थ जैसा का तैसा दिखाई देगा।

प्र.898–स्याद्वाद के कितने भेद हैं और नाम कौन[2] हैं?

उत्तर–दो भेद हैं। नाम–सम्यक् और मिथ्या स्याद्वाद अथवा ज्ञानात्मक स्याद्वाद और वचनात्मक स्याद्वाद।

प्र.899–सम्यक् स्याद्वाद किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्यक् रत्नत्रय पूर्वक सापेक्ष धर्म को कथंचित् रूप में प्रतिपादन करने को समीचीन स्याद्वाद कहते हैं अथवा समीचीन नय को, श्रुतज्ञान को और अभेद विवक्षा में विषय को सम्यक् स्याद्वाद कहते हैं।

प्र.900–मिथ्या स्याद्वाद किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्या श्रुतज्ञान को मिथ्या स्याद्वाद कहते हैं अथवा अनंत धर्मों को नयाभास प्रमाणाभास ज्ञान के द्वारा स्वीकार कर लेने को या प्रतिपादन करने को मिथ्या स्याद्वाद कहते हैं।

प्र.901–ज्ञानात्मक स्याद्वाद के भेद नाम और लक्षण किसे कहते हैं

उत्तर–क्षायोपशमिक भाव श्रुतज्ञान को ज्ञानात्मक स्याद्वाद कहते हैं। यह ज्ञानात्मक स्याद्वाद मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के उदय के साहचर्य से मिथ्या ज्ञानात्मक स्याद्वाद और सम्यग्दर्शन के साहचर्य से सम्यक् ज्ञानात्मक स्याद्वाद कहते हैं।

प्र.902–वचनात्मक स्याद्वाद किसे कहते हैं भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–भाव श्रुतज्ञानात्मक स्याद्वाद के अनुकूल वचन प्रयोग को वचनात्मक स्याद्वाद कहते हैं। इस वचनात्मक स्याद्वाद के भी मिथ्या वचनात्मक स्याद्वाद और सम्यक् वचनात्मक स्याद्वाद भेद जानना चाहिए।

प्र.903–मिथ्यावचनात्मक स्याद्वाद किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्याश्रुतज्ञान पूर्वक वस्तु स्वभाव के विरुद्ध वचन प्रयोग को मिथ्यावचनात्मक स्याद्वाद कहते हैं।

प्र.904–सम्यक्वचनात्मक स्याद्वाद किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्यक्श्रुतज्ञान पूर्वक सापेक्ष वचन प्रयोग को सम्यक् वचनात्मक स्याद्वाद कहते हैं।

प्र.905–अन्यथावादी होने का क्या कारण है?

उत्तर–अन्यथावादी होने का कारण राग, द्वेष, मोह, विषयविकार, ख्याति, पूजा, लाभ, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, अशुभ लेश्यायें, अज्ञान, असंयम, आरम्भपरिग्रह की आकांक्षा आदि अन्यथावादी होने के कारण हैं।

प्र.906–परीक्षाप्रधानी और आज्ञाप्रधानी किसे कहते हैं?

उत्तर–जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा ही जिनेन्द्र ने देखा जाना और कहा है तथा जिनेन्द्र के उपदेश को सुनकर अपने क्षयोपशमानुसार प्रमाण नय निक्षेप से, निर्देश स्वामित्व आदि, सत्संख्या आदि से तथा स्वसंवेदन ज्ञान से यथायोग्य निर्णय करने को परीक्षा प्रधानी कहते हैं। अल्पज्ञान होने पर निर्णायक बुद्धि न होने से, विशेष तर्कज्ञान न होने से एकमात्र आज्ञाकारी बनकर अटूट अचूक विश्वास करने को तथा नाना कुहेतुओं के तूफानों से अपने मोक्षमार्ग से चलायमान न होनेको आज्ञाप्रधानी कहते हैं।

प्र.907–सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव की मान्यता में क्या अंतर है?

उत्तर–सम्यग्दृष्टि जीव यथाअवसर आज्ञाप्रधानी और परीक्षाप्रधानी बनकर मोक्षमार्ग की साधना कर आत्मसाधना कर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वोदय के कारण विवेक हीन बनकर अन्यथा श्रद्धान कर संसार में भटकता फिरता है यही अन्तर है।

प्र.908–तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले नारकियों की आयु 6 महीने शेष रहने पर देवगण इंद्राज्ञा से नरक में जाकर वज्रमयी परकोटा बना देते हैं कि उस नारकी के ऊपर कोई भी दूसरा नारकी उपसर्गादि नहीं कर सकता सो ठीक है परन्तु क्षेत्रकृत, कालकृत, विक्रिया संबंधी दुःख से उक्त नारकी को कौन बचा सकता है?

उत्तर–जब दूसरे नारकी तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले नारकी के ऊपर उपसर्ग परीषह उत्पन्न नहीं करते हैं जो महान तीव्र कष्ट कोल्हू में पेलना, कढ़ाई में पकाना, पुतली से आलिंगन कराना आदि आगन्तुक शारीरिक कष्ट नहीं हैं किन्तु विक्रिया के द्वारा देवगण क्षेत्रकृत, कालकृत कष्ट को भी दूर कर देते हैं। जैसे यहाँ पर जब कोई कार्य विशेष करना होता है तो क्षेत्र कैसा भी गन्दा हो, मौसम कैसा भी हो तो कर्मचारीगण परिश्रम करके उस भूमि को कृत्रिम वातानुकूल हीटर, कूलर आदि सामग्रियों से, पुष्पादि के द्वारा सुन्दर, सुगन्धयुक्त, मनमोहक बना देते हैं वैसे ही देवगण उस तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले नारकी की भूमि को हर प्रकार से मनमोहक, सुन्दर, सुगन्धित, सुखकारक बना देते हैं जिससे उसका समय धर्मध्यान सहित व्यतीत होता है।

प्र.909–धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय अंतरंग तप किसे कहते हैं?

उत्तर–विषय कषाय, श्रृंगार अलंकार, आरम्भपरिग्रह, ख्याति, पूजा, लाभ, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, वैरविरोध के त्याग स्वरूप मोक्षमार्ग के, आत्मसुख के साधनभूत या वस्तुगत धर्मों के शब्द संकेतों को धर्मोपदेश कहते हैं।

प्र.910–धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय कितने प्रकार से किया जाता है?

उत्तर–धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय दो प्रकार से किया जाता है। **नामः**–चर्या और चर्चा के द्वारा। **चर्याः**–आचरण या जीवन में आत्मसात् करने को चर्या कहते हैं। **चर्चाः**–अपने अभिप्रायों को वचनों के द्वारा दूसरों के पास पहुंचाने को या विचार विमर्श या संगोष्ठी करने को चर्चा कहते हैं।

प्र.911–आजकल अनेक दिगम्बर जैन साधु आदि धर्मसभा में सत्शास्त्रों को न पढ़कर अन्यमतियों के प्रवचनों को सुनाते हैं तो क्या उसे धर्मोपदेश कह सकते हैं?

उत्तर–धर्मशास्त्र की परिभाषा में सर्वप्रथम आप्तोपज्ञ कहा है तो क्या ये असंयमी पंडितगण वस्त्रधारी अन्यमती वक्ता या असंयमी सदाचार सद्विचारहीन जैन वक्ता क्या वीतराग हैं सर्वज्ञ हैं या हितोपदेशी हैं जो इनके वचन धर्म के नाम पर सुनाये जाते हैं अतः यह उपदेश धर्मोपदेश नहीं कहा जा सकता है।

प्र.912—आजकल अनेक दिगम्बर जैन साधुजन वक्ता ऐसा प्रवचन क्यों करने लगे?

उत्तर—आजकल समाज के कर्ता धर्ता जैनी मोक्षमार्गस्थ त्यागी व्रतियों की व्यवस्था में सभी अन्यायी अभक्षी जैनों से चन्दा करके आहार विहार में धन खर्च करते हैं। ये जैन लोग ऐसा आहार कराते हैं तो साधु वर्ग भी सभी अन्य वक्ताओं का वक्तव्य संग्रह करके धर्मसभा में धर्म के नाम पर सुनाते हैं। यदि ये जैन न्याय नीति से निज की कमाई को आहारदान में खर्च करते तो साधुवर्ग भी आप्तोपज्ञ वचन को तथा स्वसंवेदन ज्ञान से अनुभव कर धर्मोपदेश सुनाते। अतः सम्यक् धर्मोपदेश सुनने के लिए न्याय नीति का खिलाओ, चन्दा का नहीं, अन्याय का नहीं क्योंकि अशुद्ध खाद पानी से पेड़, पौधे, पशुपक्षी, गृहस्थ मनुष्य भी अपना संतुलन खो बैठते हैं तब अशुद्ध खाद पानी से मुनिजन अपना संतुलन खो बैठें तो क्या आश्चर्य है?

प्र.913—जब इस अवसर्पिणी काल के चौथे काल के मध्य में भगवान पुष्पदन्त के बाद शान्तिनाथ तक पावपल्य, आधापल्य, पौनपल्य, एक पल्य, पौनपल्य, आधापल्य, पावपल्य तक जैनधर्म के उपदेशक और पालक का अभाव रहा तब 7 तीर्थंकरों का जन्म मलेच्छाचरण वाले राजाओं के यहाँ हुआ यदि ये सम्यग्दृष्टि थे तो धर्म और धर्मोपदेशक का अभाव विच्छेद क्यों कहा?

उत्तर—इस चौथे काल के मध्य में धर्म और धर्मोपदेशक का विच्छेद होना कहा है सो ठीक है। शंकाकार ने भगवान शीतलनाथ आदि 7 का जन्म मिथ्यादृष्टि राजाओं के यहाँ होना कहा है सो यह ठीक नहीं है क्योंकि एकभवावतारी, सम्यग्दृष्टि, अवधिज्ञानी इन्द्र इन्द्राणी मिथ्यादृष्टि जीवों की पूजा आराधना गुणकीर्तन नहीं करते हैं। इस कारण तीर्थंकर के मातापिता तथा आहारदान दाता मिथ्यादृष्टि नहीं थे। यद्यपि पापियों का, मलेच्छों का बोलबाला था। उस समय खुलेआम जैनधर्म का पालन तथा जिन धर्मोपदेश नहीं कर सकते थे जैसे यहाँ कुछ समय पहले मुसलमानों का राज्य था तब उस समय छिपे रूप में जैनधर्म के पालन करने वाले थे पर बाह्य में पालन करने वाले तथा उपदेशक नहीं थे वैसे ही उस समय मलेच्छों का या अन्यमतियों का अत्यधिक जोर होने से बाह्य में मोक्षमार्गियों का, सदोपदेशकों का अभाव कहा है किन्तु गुप्त रूप में पालने वालों का अभाव नहीं कहा है। यदि ऐसा न माना जाये तो तीर्थंकर प्रकृति वालों का गर्भ, जन्म मिथ्यादृष्टियों के यहाँ मानना पड़ेगा तथा क्षायिक या वेदक सम्यग्दृष्टि इन्द्र इन्द्राणी भी मिथ्यादृष्टि जीवों की वन्दना, गुण कीर्तन करने वाले होने से अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टिस्तव अतिचारों का सद्भाव होने से क्षायिक सम्यग्दर्शन सातिचार होगा तथा पुनः पुनः अतिचार होने से वेदक सम्यग्दर्शन का अभाव होगा क्योंकि ये अतिचार एकमात्र सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृति के उदय से ही होते हैं, अन्य कारणों से नहीं और भी मूढता आदि आपत्तियां आती हैं। इस कारण उस समय भी बाह्य में नाम लेने वालों का, उपदेशकों का अभाव होने पर भी गुप्त रूप में अभाव नहीं था किन्तु सद्भाव ही था। जैसे वर्तमान में बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, बंगाल में कुछ समय पहले आक्रमणकारियों के आक्रमण से जैनों ने, सराक जातिवालों ने जीवन रक्षा के लिए जैनधर्म और जैन मूर्तियों की पूजा करना छोड़ दिया पर सदाचार सद्विचार नहीं छोड़ा। रोटी बेटी नहीं बिगाड़ी, मान मर्यादा में रहे तो आज बाह्य निमित्त पाकर तथा पूर्व की याद कर मूर्तियां स्थापित कर उनको पूजना, धर्म का पालन करना, पूजा पाठ करना, पाठशाला चालू होना आदि कार्य प्रारम्भ हो गये हैं। यदि पूर्ण लोप हो जाय तो पुनः स्थापित करना कैसे संभव होगा? जैसे नमक पानी में घोल देने से नमक दिखाई नहीं देता पर पुनः गरम कर पानी को उड़ा देने से नमक प्राप्त हो जाता है वैसे ही नाम बदल गया किन्तु कार्य नहीं बदला तो सुधार करना नामकरण करना सम्भव है। इसलिए तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले जीवों का मिथ्यादृष्टि कुलों में गर्भ जन्म नहीं होता है।

प्र.914—उत्सर्पिणी काल के छट्ठे और पांचवेंकाल में 41000 वर्ष तक मलेच्छाचरण होने से धर्म की प्रवृत्ति कैसे होगी?

उत्तर—उत्सर्पिणीकाल के छठवें और पांचवेंकाल में 41000 वर्ष तक प्रजा में और राज्य सत्ता में हीनाधिकता के साथ मलेच्छाचरण चलता रहेगा तथा अंतिम एक हजार वर्ष में क्रमशः 14 कुलकर होंगे जो प्रजा को तथा राज्य कर्मचारियों को सुखशान्ति की परिभाषा, सदाचार, सद्विचार की व्यवस्था तथा धर्म भी समझायेंगे और प्रजा भी धीरे धीरे जीवन में उतारेगी। <u>अवसर्पिणी काल के 6 कालों के नाम :—</u>

1 सुखमासुखमा 2 सुखमा 3 सुखमादुःखमा 4 दुःखमासुखमा 5 दुःखमा 6 दुःखमादुःखमा।

उत्सर्पिणी काल के 6 नाम :—6 दुःखमादुःखमा 5 दुःखमा 4 दुःखमासुखमा 3 सुखमादुःखमा 2 सुखमा 1 सुखमासुखमा। अवसर्पिणी काल के 6 कालों के कार्य के समान उत्सर्पिणी काल के 6 कालों के कार्य हैं। जिन्होंने उत्सर्पिणी काल के नाम 1 से 6 तक ऐसा क्रम दिया है उनके अनुसार दूसरे काल में ही 14 कुलकर तथा तीसरे काल में शलाकापुरुष, पुण्यपुरुष, मोक्षमार्ग और 4, 5, 6 कालों में भोगभूमि प्रारंभ होने से भोगमार्ग रहेगा जबकि शलाकापुरुष, पुण्यपुरुष, संयम सहित मोक्षमार्ग 4थे काल में होने का नियम है क्योंकि हुंडावसर्पिणी काल के दोष से चौथे काल के बिना अन्य कालों में शलाका पुरुषों का जन्म लेना, मोक्ष जाना, तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वालों के पुत्रियां होना, मुनि अवस्था में इनके ऊपर उपसर्ग होना आदि अनेक अनहोनी घटनायें घटतीं हैं

प्र.915—वे कुलकर कौन और कैसे होते हैं?

उत्तर—वे कुलकर सम्यग्दृष्टि होते हैं। दान की अनुमोदना से, अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह से मनुष्यायु को बांधकर तथा अवसर्पिणी काल की अपेक्षा जघन्य भोगभूमि के तीसरे काल के अंत में और उत्सर्पिणी काल की अपेक्षा पंचमकाल के अंत में जन्म लेकर कोई अवधिज्ञान से, कोई जाति स्मरण से, सदाचार सद्विचार से दुःखी प्राणियों को दुःख से बचने का उपाय बताते हैं तथा अनभिज्ञ जनता को मार्गदर्शन देते हैं क्योंकि मूर्खपना भोलेपन से और परिणामों में तीव्र अशुभ उग्रता होनेसे आता है।

प्र.916—इन कुलकरों को यहाँ पर जन्म लेने में ऐसा अंतर क्यों हो गया?

उत्तर—इन कुलकरों का काम सामाजिक मान मर्यादा बतलाना, कुलों का तथा आजीविका का सही उपाय बताना, सदाचार, सद्विचार के संबंध में मार्गदर्शन देना, लुप्त हुये संयम पूर्वक मोक्षमार्ग की भूमिका बनाना आदि कारणों से अवसर्पिणी काल के तीसरे काल में जघन्य भोगभूमि के अंत में मंद कषायी भोले प्राणियों को मोक्षमार्ग के योग्य क्रमशः मार्गदर्शन देते हैं। उत्सर्पिणी काल के पंचम काल के अंतिम 1000वें वर्ष में जो कुलकर होते हैं वे मलेच्छाचरण वाले पतित प्राणियों को दुष्कर्मों से छुड़ाकर सरल बनने का उपाय बताते हैं अथवा अवसर्पिणी काल के कुलकर जघन्य भोगभूमि में और उत्सर्पिणी काल के कुलकर कर्मभूमि में पैदा होते हैं यही अंतर है किंतु मार्गदर्शन देने में कोई अंतर नहीं है।

प्र.917—ये कुलकर मिथ्यादृष्टि मलेच्छाचरण वालों के यहाँ जन्म ले सकते हैं क्या?

उत्तर—नहीं, मलेच्छाचरणों में, मिथ्यादृष्टि परिवारों में सम्यग्दृष्टि जीव जन्म नहीं लेते हैं। कहा भी है—

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः।। 35।।

अर्थ— अबद्धायुष्क अव्रती सम्यग्दृष्टि जीव नरक, तिर्यंच, नपुंसक, स्त्री, दूषित कुलों में, नीच कुलों में, हीनांग, वृद्धांगपने को प्राप्त नहीं होता है, 8 वर्ष से कम आयु और दरिद्रावस्था को प्राप्त नहीं होता है तथा बद्धायुष्क प्रथम नरक का नारकी, नपुंसकवेदी, भोगभूमिज तिर्यंचों में जन्म धारण कर सकता है शेष स्थानों में नहीं क्योंकि इन गाथोक्त स्थानों में एकमात्र मिथ्यादृष्टि जीव ही पैदा होते हैं।

प्र.918—तो फिर उत्सर्पिणीकाल के पंचमकाल में मलेच्छों के यहाँ कैसे जन्म ले सकते हैं?

उत्तर—आपका प्रश्न सही है पर कुलकर मलेच्छ कुलों में जन्म नहीं लेते हैं किंतु सदाचारी सद्विचारी क्षत्रिय कुलों में पैदा होते हैं परन्तु यहाँ इस अवसर्पिणीकाल के अन्त में प्रलयकाल की वर्षा के समय विद्याधर और देव जो 72 जोड़े तथा और भी संख्यात प्राणी, हीनपुण्यात्मा, पुण्यात्मा जीवों को, मनुष्यों को विजयार्द्ध पर्वत की गुफाओं में रखेंगे वे ही सुवर्षा के होने पर बाहर आयेंगे उन्हीं से उस काल में दिनचर्या प्रारम्भ होगी तथा वे प्राणी कर्मों की मार से भयभीत होकर अपनी जानकारी के अनुसार आचरण करेंगे उनमें कुछ भद्रपरिणामी भी होंगे और कुछ उग्रपरिणामी भी होंगे। वर्तमान में कुछ हीन आचार विचारवाले, उच्च कुलीन मनुष्य मनुष्यनी, मुसलमान, क्रिश्चन, आदिवासी तथा हीनजाति वाले मनुष्यों में भी कुछ कुछ अच्छे गुण पाये जाते हैं और उन्हीं गुणों के कारण वे राजसत्ता में तथा इतिहास में सदाचार सद्विचार के कारण प्रजा में पूज्यता को प्राप्त हुए इसी तरह भारत में भी कुछ राजनेता, जातिकुल तथा व्यवहार धर्म की अपेक्षा अन्यमती होने पर भी उनके सद्गुण सद्विचार जैन सिद्धांत के अनुसार शतप्रतिशत सत्य थे। जैनधर्म से कोई विरोध न था, न है, न होगा। यदि वे जिनदीक्षा धारण कर लेते तो धर्म की प्रभावना अच्छी करते इसी तरह उत्सर्पिणी काल में भी अत्यन्त दुःखी प्राणी धर्म की खोज में

सात्विक आहार विहार विचार की खोज में कदम बढ़ायेगा। इस समय मनुष्यों की आयु शारीरिक बल ज्ञान तथा शुभचर्या में वृद्धि तथा अशुभकार्य कलापों में हानि होती जाती है। मोक्षमार्ग की पद्धति को न जानने के कारण तथा अशिष्टाचरण के कारण इन्हें मलेच्छ कहा है किंतु क्षेत्र और जाति कुल की अपेक्षा आर्य हैं। जाति कुल के दूषित होने पर 9वीं या 10वीं पीढ़ी में शुद्धि होती है क्योंकि सूतकपातक का संबंध यहीं तक रहता है और आचरण की शुद्धि अंतर्मुहूर्त में हो जाती है।

प्र.919–इन कुलकरों का और प्रजा का आहार किस प्रकार का होता है?

उत्तर–इन कुलकरों का सात्त्विक और शुद्ध आहार होता है इस उत्सर्पिणी काल के छठवें काल में और पंचमकाल के 20000 वर्ष तक मनुष्य मनुष्यनी नग्न रहकर भूखे प्यासे पशुओं जैसा आचरण करते हुए जंगल में वनस्पति के पत्ते फूल फल तथा कोई कोई माँस रक्त खाते पीते हैं शेष आचरण पूर्ववत् रहता है। इस समय सात्विक आहार विहार में प्रवृत्ति इसलिए होती है कि जब प्राणी असह्य दुःख भोग लेता है तो वह सुख शान्ति को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

प्र.920–इन कुलकरों का आहार किस कारण से और क्यों होता है?

उत्तर–मोहोदय से युक्त और असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा से आहार संज्ञा और आहार की क्रिया होती है तथा भूख प्यास की वेदना को दूर करने के लिए आहार होता है।

प्र.921–वे कुलकर क्या समझाते हैं?

उत्तर–वे कुलकर सदाचार सद्विचार युक्त जीवनोपयोगी कलाओं को करने का और पापों का, व्यसनों का, दुराचार दुर्विचारों का त्याग कराते हैं। मानवता की कला, जातिकुल और धर्म की मर्यादा सिखाते हैं। अग्नि मथकर उत्पन्न करो, भोजन पकाकर खाओ, विवाह करो तथा परिवार के साथ इच्छानुसार सुख भोगकर समय व्यतीत करो आदि उपदेश देते हैं तथा गल्ती करने पर समयानुसार प्रायश्चित्त देकर शुद्धिकरण कर सन्मार्ग में लगाते हैं।

प्र.922–कुलकरों के समय में क्या प्रवृत्ति होती है?

उत्तर–इन कुलकरों के समय में इनकी चर्या चर्चा के माध्यम से मोक्षमार्ग की भूमिका स्वरूप प्रवृत्ति प्रारंभ हो जाती है तथा अंतिम कुलकर पद्मपुंख के समय में विवाह तथा धर्माचरण प्रारंभ हो जाता है।

प्र.923–इतना सबकुछ कथन करने का तात्पर्य क्या हुआ?

उत्तर–सामान्य सम्यग्दृष्टियों का तथा कुलकरों का जन्म मिथ्यादृष्टियों के परिवारों में नहीं होता है किन्तु सदाचार सद्विचार वाले सम्यग्दृष्टियों के उच्च कुलों में जन्म होता है।

प्र.924–तो फिर क्यों कहा जाता है कि सभी प्राणी मलेच्छाचरण से युक्त होते हैं?

उत्तर–बहुलता की अपेक्षा कहा जाता है कि सभी प्राणी मलेच्छाचरण करते हैं क्योंकि एकदेश में भी सर्व पद का प्रयोग किया जाता है जैसे शरीर के किसी एक अंग में दर्द होने पर मेरे सर्वांग में दर्द हो रहा है। थोड़ा नष्ट होने पर भी पूरा नष्ट हो गया ऐसा कहा जाता है। आज भी यदि अनाचारी 95 प्रतिशत हैं तो सदाचारी 5 प्रतिशत हैं। अभी सदाचारियों का पूर्ण रूप से अभाव नहीं है और न भविष्य में होगा क्योंकि भविष्य में काल परिवर्तन कर्मभूमि से कर्मभूमि में प्रवेश करेगा उस समय प्राणी कर्मों की मार से अत्यंत दुःखी होगें इसलिए उनको सुधारने में देर नहीं लगेगी किंतु संस्कारहीनों को सुधारने में, नवीन संस्कार ड़ालने में अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता है और यह बात अनुभव सिद्ध है अतः प्रतिपक्षी हमेशा रहते हैं चाहे कोई काल हो या कोई क्षेत्र हो।

प्र.925–मलेच्छखंडों में कितने वर्ण होते हैं और क्यों तथा आर्यखंड में कितने?

उत्तर–मलेच्छखंडों में वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र ये तीन ही वर्ण होते हैं क्योंकि वहाँ पर देव शास्त्र और गुरुओं का समागम न होने से व्रती संयमी ब्राह्मण नहीं पाये जाते। जैसे यहाँ पर मुसलमानों आदि में व्रती संयमी ब्राह्मणों को छोड़कर कोई मुसलमान व्यापार कर आजीविका चलाते हैं, कोई देशसैनिक बनकर धर्म, समाज, देशादि की रक्षा कर आजीविका चलाते हैं और कोई हिताहित का विचार किये बिना कसाई बनकर अत्यंत अधम नीचक्रिया कर्म कर तथा इनकी सेवा कर आजीविका चलाते हैं सो इसी तरह मलेच्छखंडों में समझना चाहिये। आर्यखंड में चारों ही वर्ण पाये जाते हैं।

प्र.926–जैनों में कितने वर्ण पाये जाते हैं तथा कैसे?

उत्तर–जैनों में भी चारों वर्ण पाये जाते हैं। जो अपने बल वीर्य के अनुसार इन्द्रिय और मन को वश में कर व्रती बनकर आत्मा की साधना करते हैं, संयम का पालन करते हैं वे ब्राह्मण हैं। जो अपने बल वीर्य को न छिपाकर षट्काय के जीवों की रक्षा करते हैं अपने कर्तव्यों में दृढ़चित्त रहते हैं वे क्षत्रिय हैं। जो गृहस्थ त्रस जीवों की रक्षा करते हुये निष्प्रयोजन स्थावर जीवों की विराधना न करते हुये व्यापारों से आजीविका चलाते हैं वे वैश्य हैं। जो जैन कुल में जन्म लेकर भी हर प्रकार से मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष्य का सेवन करते हैं वे शूद्र हैं। वास्तव में देखा जाये तो जैनधर्म क्षत्रियों का ही धर्म है क्योंकि तीर्थंकर जैसे महापुरुष या शलाका महापुरुष या 169 पुण्यपुरुष क्षत्रिय राजा ही हुये हैं या राजकुमार हुये किंतु वर्तमान में क्षत्रियों ने अपना निजधर्म या जिनधर्म छोड़ दिया और भीरू स्वभाव वालों ने अपना लिया फिर भी जिन्होंने देशसंयम या सकलसंयम को अपनाया है वे क्षत्रिय ही हैं क्योंकि इनके क्षत्रिय वंश का उदय है कारण ये अपनी दिनचर्या के द्वारा समस्त चराचर जीवों की रक्षा करते हैं। ये ही संयम व्रतों को पालने की अपेक्षा ब्राह्मण तथा जीव रक्षा की अपेक्षा क्षत्रिय कहलाते हैं।

प्र.927–जैनों को शूद्र क्यों कहा?

उत्तर–जो जैनकुल में जन्म लेकर भी मद्य माँस मधु का, चमड़े और जूते चप्पलों का, ऊन का, गर्भपात की दवाईयों का, कीटनाशक औषधियों का, हिंसार्थक शस्त्रों आदि का व्यापार करते हैं, प्रयोग करते हैं, मंदिर, धर्मशाला, पाठशाला आदि धर्मक्षेत्रों के निमित्त दान में प्राप्त हुई चलाचल संपत्ति रूप धर्मादा को हड़प करने के बाद भी वापस देते भी नहीं और अधिक हड़पने की चाह रखते हैं, धन के लोभ में नाना प्रकार के लांच्छन लगाकर बहुओं को ताड़ना देते हैं, जला देते हैं या निकाल देते हैं, तलाक दे देते हैं, धन के लोभ में कत्लखाने आदि खोलते हैं, खुलवाते हैं तथा सर्विस करते हैं, शराब के कारखानों में सर्विस करते हैं, धन के लोभ में परस्पर में मारकाट कर डालते हैं आदि जिनधर्म को कलंकित करने वाले विधवाविवाह, त्यक्ताविवाह, गर्भपात आदि दुष्कार्य करते हैं तो इन्हें शूद्र कहें या महाशूद्र?

प्र. 928–जैनों का अंतर्भाव चारों वर्णों में से किस वर्ण में होता है?

उत्तर–वास्तव में जैनों का अंतर्भाव क्षत्रियवर्ण में होता है क्योंकि तीर्थंकर, पुण्यपुरुष, शलाकापुरुष ये सभी जन्म से क्षत्रिय और धर्म से जैन थे तथा इनके पुत्रवर्ग आज्ञानुवर्ती शिष्यगण भी क्षत्रिय ही है।

प्र.929:क्या जैनधर्म हिन्दुधर्म की शाखा हैं?

उत्तर–नहीं क्योंकि जैनों के नीतिनियम दिनचर्या में और हिन्दुओं के नीतिनियम तथा दिनचर्या में महान अंतर है। जैनी समस्त प्रकार के विकारों के त्यागी वीतराग देव और आरंभ परिग्रह विषय विकार के त्यागी ऐसे गुरु के उपासक हैं जबकि हिंदु समाज वस्त्रालंकार युक्त, नाना विकारों से युक्त देवगुरु के उपासक हैं। दोनों की पूजा आराधना के उद्देश्य में और क्रिया पद्धति में अंतर है तब जैनधर्म हिंदु धर्म की शाखा न होकर स्वतंत्र धर्म है। यदि जैनधर्म को हिन्दु धर्म की शाखा माना जाये तो दोनों के आचार विचार, पूजा आराधना, तत्त्वमीमांसा एक ही प्रकार की होना चाहिये जैसे नीम के पेड़ में शाखा प्रतिशाखायें पत्ते फूलफल अलग अलग नहीं होते किंतु तदनुकूल ही होते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि क्षेत्र की अपेक्षा एक हैं, कोई अंतर नहीं है, फिर भी धर्म की, उद्देश्य की अपेक्षा अंतर है।

प्र.930–पर्यूषण पर्व कब से प्रारम्भ होते हैं?

उत्तर–पर्यूषण पर्व भादों सुदी पंचमी से, माघ सुदी पंचमी से तथा चैत्र सुदी पंचमी से प्रारम्भ होते हैं।

प्र.931–पर्यूषण पर्व कितनी बार मनाये जाते हैं तथा न मनायें तो क्या हानि है?

उत्तर–पर्यूषण पर्व व्यवहारनय से वर्ष में तीन बार मनाये जाते हैं और अपने अपने गुणस्थानानुसार धर्म की, आत्मा की रक्षा के लिए प्रतिक्षण मनाये जाते हैं अन्यथा विषयकषायें शीघ्र ही पतन करा देगीं।

प्र.932–पर्यूषण पर्व कितने दिन तक मनाये जाते हैं और कौन मनाते हैं?

उत्तर–पर्यूषण पर्व भादों सुदी पंचमी से, माघ सुदी पंचमी से तथा चैत्र सुदी पंचमी से प्रारम्भ कर पूर्णिमा तक 10 दिन पर्यंत स्वच्छ मन से मनाये जाते हैं। मुनिजन ज्ञान वैराग्य सहित ध्यान के द्वारा और गृहस्थ आरम्भ परिग्रह सहित द्रव्य सामग्री से दस धर्मों की आराधना करते हैं अथवा यथायोग्य अपने अपने गुणस्थान अनुसार चारों गतियों के प्राणी आराधना कर तदनुकूल फल प्राप्त करते हैं।

प्र.933–पर्यूषणपर्व इतनी जल्दी जल्दी क्यों मनाते हैं, इसके आगे पीछे क्यों नहीं?

उत्तर–अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया और लोभ कषाय का वासनाकाल संस्कार काल तारतम्यता पूर्वक हीनाधिक अंतर्मुहूर्त से लेकर 6 महिने तक अविरत सम्यग्दृष्टि जीवों के बदला लेने का, नीचा दिखाने का, धोखे में, कष्ट में डालने का, परपदार्थों के, विषयविकारों के प्रति आकर्षण का भाव परिणाम रह सकता है किंतु इस समय के मध्य में जब कभी भी क्षमावाणी मार्दववाणी, आर्जववाणी, शौचवाणी को सामने से उच्चारण कर वैर विरोध, अहंकार कपट व्यवहार और विषयविकार, विषयभोगों के प्रति, भोगों की सामग्री के प्रति लगाव झुकाव को मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना रूप नव कोटियों से समाप्त कर देना चाहिए तभी तो मोक्षमार्ग सही रूप से चल सकता है अन्यथा काल मर्यादा के समाप्त हो जाने पर कषाय परिणाम शांत नहीं हुए तो स्वयं का मोक्षमार्ग नष्ट हो जाता है इसलिए क्षमावाणी से प्रारंभ कर क्षमावाणी तक छह महिने के अंदर ही पर्यूषण पर्व मना लेते हैं। पूर्व की तरह पानी में पानी के समान या दूध में दूध के समान अपने साधर्मी भाईयों के साथ एकरूपता को प्राप्त हो जाते हैं, इसीप्रकार प्रतिमाधारी श्रावक 15 दिन के और मुनिजन अंतर्मुहूर्त काल के अंदर पर्यूषण पर्व की आराधना कर लेते हैं जिससे आत्मसाधना में बाधा नहीं आती। यह कषायों का वासना काल सामान्यतः समझना चाहिये किंतु विशेषता से कषायों की तीव्रता के कारण अनंतानुबंधी कषाय आदि अंतर्मुहूर्त के अंदर भी संयम मार्ग तथा मोक्षमार्ग को नष्ट कर असंयमावस्था में या मिथ्यात्व गुणस्थान में ले आयेगीं इसीलिए मोक्षमार्गियों को अपने मोक्षमार्ग की रक्षा करने के लिए सतत सावधान रहना चाहिए जिससे आत्मसाधना भली प्रकार से चलती रहे।

प्र.934–पर्यूषणपर्व भादों सुदी पंचमी से क्यों मनाये जाते हैं?

उत्तर–श्रावण वदी एकम से लेकर भादों सुदी चौथ तक 49 दिन पर्यन्त अर्थात् 7–7 दिन 7 प्रकार की सुवृष्टि होकर जब भूमि हर प्रकार से सुन्दर, सुगन्धित, शुभ हरी भरी मनोज्ञ हो जाती है तब वे मनुष्य गुफाओं से बाहर आकर भादों सुदी पंचमी से पर्यूषण पर्व की आराधना प्रारम्भ करते हैं।

प्र.935–यह समाधान ठीक नहीं है क्योंकि वृष्टि प्रारम्भ में होती है और धर्म कार्य चौथेकाल से प्रारम्भ होते हैं अतः निर्दोष समाधान करो?

उत्तर–अवसर्पिणी काल के समाप्त होते ही या उत्सर्पिणीकाल के प्रारम्भ होते ही शुभवृष्टि प्रारम्भ हो जाती है जो 49 दिन तक चलती है तब भूमि शान्त मंगल स्वरूप होने से जो संख्यात जीव तथा 72 स्त्री पुरुष युगल गुफाओं में, गंगा सिन्धु नदी की वेदियों में रक्षार्थ गये थे या ले गये थे वे बाहर आकर पूर्व संस्कारानुसार समीचीन मार्गदर्शक के अभाव में कम से कम 41 हजार वर्ष तक हीनता के साथ मलेच्छाचरण का पालन करते हैं तथा अंतिम एक हजार वर्ष में 14 कुलकर होते हैं। अंतिम कुलकर पद्मपुंख (पद्मपुंगव) से महापद्म नामके प्रथम तीर्थंकर होंगे जिनसे वास्तविक धर्म की प्रवृत्ति होती है। ये पर्यूषण पर्व अनादिनिधन हैं, स्वाभाविक हैं, न किसी निमित्त से होते हैं यदि यहाँ इस निमित्त से पर्यूषण पर्व मनाते हो तो विदेहक्षेत्र में किस निमित्त से मानोगे जबकि यहाँ धर्म का विच्छेद, काल परिवर्तन नहीं होता है इस कारण दसलक्षण धर्म अनादिनिधन कहे हैं। आचार्य परमेष्ठी के 36 मूलगुणों की व्यवस्था कैसे करोगे? कदाचित् आपके कथनानुसार भाद्रपद के पर्यूषण पर्व इस निमित्त से प्रारम्भ होते हैं ऐसा मान भी लिया जाय तो आप माह के और चैत के महीने में क्या निमित्त बनायेंगे? माह से चैत के बीच में एक महीने बीस दिन का अन्तराल है तथा चैत से भाद्रपद तक चार महीने बीस दिन का अंतराल है और भाद्रपद से माह के महिने तक चार महिने बीस दिन का अंतराल है तब वहाँ क्या निमित्त होगा? अतः प्रश्न 934 का समाधान अयोग्य है वह काल्पनिक कथा है, यथार्थ नहीं।

प्र.936–यदि मुसलमान, वेदान्ती, ब्राह्मणों आदि के द्वारा प्र.किया जाय कि तुम जैनों के यहाँ पुरुषों के समान स्त्रियों को भी नग्न दीक्षा क्यों नहीं दी जाती है?

उत्तर–संसार के प्रत्येक सम्प्रदायों में स्त्रीवेदियों के लिए धर्मानुष्ठान के संबंध में सभी अधिकार नहीं दिये गये न उनके पास वैसा संहनन है, न शारीरिक बल है, न मनोबल है, न पुरुषों के समान वे निर्भीक हो सकती हैं आदि। अतः जैनों के यहाँ स्त्रीवेदियों को नग्न दिगम्बर दीक्षा नहीं दी जाती है। जैसे मुसलमानों के यहाँ जिस प्रकार पुरुषों की मुसलमानी (लिंग के सुपारी के ऊपर की चमड़ी निकाल दी जाती है) करायी जाती है तो उसी प्रकार स्त्रियों की मुसलमानी क्यों नहीं करायी जाती? वेदान्तियों के यहाँ पर जिस प्रकार पुरुषों को वेद पढ़ने का पूरा अधिकार

दिया गया है ठीक उसी प्रकार स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार क्यों नहीं दिया गया? इसी तरह ब्राह्मणों के यहाँ भी जिस प्रकार पुरुषों के यज्ञोपवीत आदि संस्कार किये जाते हैं ठीक उसी प्रकार स्त्रियों के भी ये संस्कार क्यों नहीं किये जाते हैं? बलात्कार की सारी घटनायें शतप्रतिशत स्त्रियों के साथ में घटती हैं पुरुषों के साथ में नहीं क्योंकि स्त्रियों के मन में काम वासना नहीं है फिर भी यदि पुरुष स्त्रियों को देखकर काम से पीड़ित हो गया तो वह बलात् प्रयोग कर काम सेवन कर सकता है चाहे स्त्रियों की इच्छा हो या न हो किन्तु स्त्रियों में कामेच्छा हो और पुरुषों में न हो तो स्त्रियां लाख प्रयत्न करें तो भी पुरुष के साथ काम सेवन नहीं कर सकती हैं किन्तु पुरुष के अंदर में मानसिक विकार मौजूद है तो स्त्रियों को देखकर कामी होकर उभय कुलों को बदनाम कर अपने को और उन स्त्रियों को भी पतन के मार्ग में ले जाता है ? अतः स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषवर्ग पुण्य पाप करने में अधिक बलशाली हैं तो कर्मों को काटने में भी पूर्ण बलशाली हैं। इसलिए जैनधर्म में किसी भी प्राणी को बलात् नियम नहीं दिये जाते हैं।

प्र.937–जिस प्रकार मुसलमानों ने, हिन्दुओं ने, ब्राह्मणों ने स्त्रियों को धर्मानुष्ठान में पूर्ण अधिकार नहीं दिये अथवा छीन लिये सो इनकी देखादेखी तुम जैनों ने भी उनके अधिकारों को छीन लिया तब दोनों में क्या विशेषता रही?

उत्तर–नहीं, हम जैनों ने उन स्त्रियों के अधिकारों को नहीं छीना है क्योंकि किसीका धर्म, अधिकार छीनना उद्दण्डता है, अपने में मिथ्यात्व को बढ़ाना है किन्तु उन स्त्रियों में मुनि बनने की तथा उपसर्ग परीषहों को जीतने की सामर्थ्य नहीं है इस कारण वे स्वयं ही उस मुद्रा को धारण करने के लिए तैयार नहीं हैं, उनकी तैयारी के बिना बलात् नियम देना प्रतिज्ञा कराना ही महान अक्षम्य अपराध है। शक्ति के अनुसार तप त्याग करना कल्याण का मार्ग है तथा शक्ति के बिना तप त्याग करना दुर्ध्यान है, आर्तध्यान है, रौद्रध्यान है। इस कारण हम लोगों ने उनके अधिकारों को छीना नहीं है किन्तु भय, लज्जा होने से, उनकी स्वयं में मनोबल की कमजोरी होने से उन्होंने उस निर्ग्रन्थ पद को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है, फिर भी दिगम्बरों में एक वस्त्रधारी को नग्न ही माना है तथा श्री भगवती आराधना में आर्यिका आदि को सल्लेखना के अंतिम दिनों में गुरु की आज्ञा से, जिनप्रतिमा के और मुख्य गणिनी आर्यिका के सामने आहार विहार का त्याग कर नग्न दीक्षा धारण करने का विधान किया है।

प्र.938–उपाध्याय परमेष्ठी को द्वादशांग का पाठी होना चाहिए तो वर्तमान में इतने शास्त्र न होने से तथा इनका ज्ञान न होने से उपाध्याय परमेष्ठी पद की दीक्षा नहीं देनी चाहिए न संस्कार ही करने चाहिए ?

उत्तर–नहीं, ऐसा नहीं कहना चाहिए। उपाध्याय परमेष्ठी के अधिक से अधिक उत्कृष्ट ज्ञान द्वादशांग का होता है तथा कम से कम तात्कालिक उपलब्ध सम्यक् और मिथ्या शास्त्रों का ज्ञान होना आवश्यक है कारण उपाध्याय भगवन्त शिष्य और श्रोताओं को स्वसमय और परसमय की सम्यक् और मिथ्या व्याख्या समझाते हैं यदि स्वयं जानकारी नहीं है तो दूसरों को क्या समझा सकते हैं? अतः उपाध्याय को तात्कालिक साहित्य का अध्ययन होना जरूरी है। प्रश्नकर्ता से आपने आज उपाध्याय के संबंध में प्रश्नचिह्न लगाया है कल आचार्य और मुनिदीक्षा के संबंध में प्रश्नचिह्न लगा सकते हैं।

प्र.939–जब आर्यिका प्रतिमाधारिणी, अणुव्रती न होने से श्राविका नहीं है और नग्न दिगम्बरावस्था न होने से अनगारी भी नहीं है तो फिर कौन हैं ?

उत्तर–आपका प्रश्न सही है कि आर्यिका प्रतिमाधारिणी नहीं है, अणुव्रती नहीं है क्योंकि गृहस्थों की साधना और परिणामों की विशुद्धि के अनुसार दर्शन प्रतिमा से लेकर उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा पर्यंत 11 मानी गई हैं। दीक्षाचार्य, दिगम्बराचार्य ने आर्यिका दीक्षा देते समय प्रतिमाओं के, अणुव्रत गुणव्रत और शिक्षाव्रतों के संस्कार नहीं किये हैं किंतु 5 महाव्रत, 5 समिति, आदि 28 मूलगुणों के संस्कार किये हैं इस कारण प्रतिमाधारिणी नहीं हैं अतः श्राविका नहीं कह सकते क्योंकि इन 28 मूलगुणों के परिणामों को प्रत्याख्यानावरणीय कषाय का मंदोदय होने से या तीव्रोदय का अभाव होने से तथा आदि की दो चौकड़ी कषायों का उदयाभाव रूप क्षय होने से गृहस्थों के योग्य परिणामों का उल्लंघन कर मुनियों के योग्य परिणामों को प्राप्त कर चुकीं हैं क्योंकि जब आचार्यों ने सामायिकादि कालों में स्थित वस्त्र धारी श्रावक को निरीहवृत्ति होने के कारण **'याति यति भावम्'** मुनिपने के भावों को प्राप्त होता

है ऐसा कहा है तो आर्यिका सर्वकाल सर्वत्र साड़ी में निरीहवृत्ति होने से उस आर्यिका को अनगारिणी क्यों न कहा जाये? क्योंकि **'देशतः अणुः अणुव्रतोऽगारी'** हिंसादि पापों के थोड़े रूप में त्याग करने को अणुव्रत और अणुव्रती को अगारी कहा है। **'सर्वतः महतिः महाव्रतोऽनगारी'** उन हिंसा आदि पाँचों पापों का पूर्णरूप से त्याग करने को महाव्रत और महाव्रती को अनगारी कहा है इस कारण आचार्यों ने आर्यिका दीक्षा देते समय परिग्रहत्याग नामक महाव्रत का संस्कार किया है। जब बाह्य परिग्रह का नौ कोटियों से त्याग कराया है तो नग्नत्व मूलगुण भी अपने आप संस्कार पूर्वक आ ही गया यदि ऐसा कहो कि साड़ी होने से नग्नपना नहीं है तो पग्रिह त्याग महाव्रत भी मत कहो फिर क्या आचार्य भगवंत ने दीक्षा देते समय चार ही महाव्रतों के संस्कार करने से आर्यिका के चार ही महाव्रत कहलाये? बाह्य परिग्रह के दस भेदों में से दूसरे नं० के परिग्रह का नाम वास्तु, अगार है और इसका त्याग होने से आर्यिका अनगारी ही है, महाव्रती ही है।

प्र.940–आर्यिका को उपचार से महाव्रती कहा है, वास्तव में नहीं क्योंकि उपचार नाम व्यवहार का है आप ऐसा स्वीकार क्यों नहीं करते हो?

उत्तर–मुख्य के अभाव होने पर प्रयोजन आदि की सिद्धि के लिए उपचार की प्रवृत्ति होती है जैसे जहाँ सिंह नहीं होता है तो वहाँ बिल्ली के बच्चे से सिंह का ज्ञान कराते हैं अतः बिल्ली के बच्चे को सिंह कहते हैं, इसी तरह यहाँ समझना। यहाँ पर अभाव का अर्थ त्रिकाल में सर्वत्र अस्तित्त्व नहीं है ऐसा अर्थ न करना, न समझना। जैसे बांझ के त्रिकाल में त्रिलोक में सर्वत्र किसी भी प्रकार से संतान पैदा नहीं होती है तो बांझ के संतान का उपचार भी नहीं किया जाता है फिर भी अंतरंग में संतान का भाव होने से तथा बाह्य में किसी की संतान को गोद में ले लेने से स्वयं की संतानवत् उसके अंतरंग बहिरंग चर्या चर्चा, आचार विचार, सूतक पातक विधि जैसी की तैसी मानी जाती है इसी तरह आर्यिका के अंतरंग में प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव में उत्पन्न होने वाले मुख्यरूप से महाव्रतों का अभाव होने पर भी अंतरंग में प्रत्याख्यानावरण कषाय के तीव्रोदय का अभाव होने से, बाह्य में महाव्रतों का संस्कार होने से, तदनुकूल प्रतिज्ञा होने से, प्रतिज्ञा का पालन करने से आर्यिका को मुनिवत् महाव्रती कहा है अतः आर्यिका को अंतरंग में प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव में उत्पन्न हुए सकलसंयम पूर्वक महाव्रत न होने से उपचार से महाव्रती कहा है किंतु दीक्षा के संस्कार, प्रतिज्ञा और प्रतिज्ञा का पालन आदि की अपेक्षा यथार्थ में महाव्रती कहा है। ये दीक्षा के संस्कार उपकरणादि उपचार से नहीं हैं।

प्र.941–मुनियों के महाव्रत और आर्यिकाओं के महाव्रत में क्या अंतर है?

उत्तर–मुनियों के महाव्रत प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध आदि कषायों के उदयाभाव में और आर्यिकाओं के प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध आदि कषायों की तीव्रता के अभाव में उत्पन्न होते हैं यही अंतर है।

प्र.942–यदि आर्यिकाओं के महाव्रत प्रत्याख्यानावरणीय कषाय के मंदोदय से होते हैं तो आर्यिकाओं के महाव्रतों को औदयिक भाव क्यों नहीं कहा?

उत्तर–नहीं, आर्यिकाओं के महाव्रत प्रत्याख्यानावरणीय क्रोधादि कषायों की तीव्रता के अभाव में होते हैं इसलिए औदयिक भाव नहीं कहा। यदि मंदोदय होने पर उत्पन्न होते तो अवश्य ही महाव्रतों को औदयिक भाव कहा जाता। यदि यहाँ इनके महाव्रतों को औदयिक भाव कहा है तो अणुव्रतों को भी औदयिकभाव मानने में क्या आपत्ति है? क्या औदयिक भावों से कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा, नवीन कर्मों का संवर तथा मोक्षमार्ग हो सकता है? जबकि आचार्य ने त.सू. अ. 2 सूत्र–3, 4, 5 में चारित्र को औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक इन तीन भावों रूप में कहा है औदयिक भाव नहीं तभी तो मोक्षमार्ग बनता है अन्यथा नहीं क्योंकि कर्मों के सर्वघाती स्पर्धकों के उदय होने पर आत्म गुणों का किंचित् मात्र भी विकास नहीं होता है ऐसा कर्म सिद्धांत का नियम है।

प्र.943–आर्यिका की 16 हाथ की साड़ी की अपेक्षा ऐलक की लंगोटी एक हाथ से भी कम होती है इसलिए आर्यिका की अपेक्षा ऐलक को बड़ा क्यों न कहा जाये?

उत्तर–नहीं, बाहर में वस्त्र की मात्रा ज्यादा या कम होने से छोटे बड़े का भेद नहीं है किंतु परिणामों की अपेक्षा बड़ेपन छोटेपन का, पूज्यता अपूज्यता का भेद है। ऐलक में अंतरंग बहिरंग भय लज्जा मौजूद है, हीनपुरुषार्थी है, अणुव्रती है जबकि आर्यिका उत्कृष्ट पुरुषार्थी है, अंतरंग में भय लज्जा नहीं है महाव्रती है। इस कारण ऐलक की अपेक्षा आर्यिका पूज्य है, श्रेष्ठ है।

प्र.944–जिस प्रकार तीर्थंकरों ने, गणधरों ने मुनियों के लिये आचारांग और श्रावकों के लिये उपासकाध्ययनांग का स्वतंत्र उपदेश दिया उसी प्रकार आर्यिकाओं और श्राविकाओं के लिये क्यों नहीं दिया?

उत्तर–नहीं, मुनियों के कथन के साथ में कुछ अंतर को छोड़कर आर्यिकाओं का कथन किया है तथा व्रती श्रावकों के साथ श्राविकाओं का कथन किया है स्वतंत्रता से, अलग से कोई उपदेश नहीं दिया क्योंकि जहाँ पर अंतर है वहाँ पर तीर्थंकरों ने और आचार्यों ने अलग से कथन कर दिया है बाकी शेष कथन मुनियों के समान या श्रावकों के समान कहा है यदि ऐसा न माना जाय तो आपको ही बताना चाहिये कि द्वादशांग वाणी के किस अनुयोग में, किन ग्रंथों में आर्यिकाओं का, श्राविकाओं का स्वतंत्रता से कथन किया है जबकी **आगम चक्खु साहू** मोक्षमार्ग की साधना करने वालों का आगम ही नेत्र है और संसार मार्गियों का इन्द्रियां ही नेत्र हैं या इनकी कोई दिनचर्या ही नहीं होती है या केवल लौकिक दिनचर्या ही होती है फिर मोक्षमार्गी कैसे? अव्रतियों की दिनचर्याओं का कथन क्रिया विशाल पूर्व में है।

प्र.945–यदि ऐसा है तो महाव्रत की परिभाषा इस प्रकार से क्यों बताई?

''प्रत्याख्यानतनुत्वान् मंदतराश्चरण मोहपरिणामाः।
सत्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते।।71।। आ० श्री समंतभद्र

उत्तर–र०श्रा० में गृहस्थ धर्म का वर्णन है और गृहस्थों को संबोधन किया गया है। अतः गृहस्थों को उत्साहित करने के लिए कषायों के मंदरूप सरल परिणामों को महाव्रत कहा है। अतः र०श्रा० के अनुसार आर्यिकाओं के महाव्रतों को मत समझना किंतु मूलाचारानुसार समझना।

प्र.946–ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, त्यागी व्रती, आर्यिका संघ, आचार्य संघों में गृहस्थों के योग्य भोगोपभोग और शृंगार की सामग्री कहाँ से आती है और क्यों पाई जाती है?

उत्तर–ब्रह्मचारी पुरुषवेदी हैं, ब्रह्मचारिणी स्त्रीवेदी हैं ये गृहस्थ भी हो सकते हैं और अगृहस्थ भी, संघों में रहकर दर्शन प्रतिमा से लेकर अनुमतित्याग प्रतिमा तक (1–10 प्रतिमा तक) पालन करते हैं। 11वीं प्रतिमा वाले ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका गृहत्यागी ही होते हैं। आर्यिका, आचार्य, उपाध्याय, साधु द्रव्य और भाव से आरंभ परिग्रह के त्यागी महाव्रती होते हैं। गृहस्थ ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी भाईबहनों के पास भोगोपभोग की, शृंगारालंकार की सामग्री पदानुसार थोडी बहुत हो तो कोई हानिकारक नहीं है। जैसे अणुव्रती राजा रानियों के पास, आदिनाथ, भरत, बाहुबली आदि के पास उक्त भरपूर सामग्री थी जो शास्त्रों से जानी जाती है पर ये ही महापुरुष जब वानप्रस्थाश्रम में आ जायें तो किंचित् सामान्य सामग्री हानिकारक नहीं है किन्तु विशेष अनुपयोगी सामग्री इनको भी हानिकारक है। गृह त्यागी, व्रती, उत्कृष्ट श्रावक दसमी प्रतिमाधारी, ऐल्लक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका के पास शरीर को ढकने के लिए कौपीन वस्त्र, एक साड़ी, आहार पात्र, प्रतिलेखन के लिए मुलायम वस्त्र, पीछी, कमण्डलु, शास्त्र के अलावा शेष का त्याग हो जाता है। महाव्रतियों के पास पीछी कमण्डलु शास्त्रादि धर्मायतन मोक्षमार्ग में साधनभूत चेतन अचेतन चैत्यालय के अलावा शेष का त्याग होता है क्योंकि चैत्यालय का त्याग किसी भी ग्रंथ में नहीं बताया है किंतु विधान ही किया है (आगे प्रश्न 1178 से 1190 तक देखना चाहिये)। इनके इन्द्रिय विषय संबंधी भोगोपभोग सामग्री का अंतरंग बहिरंग से त्याग होता है फिर भी चलचित्त भोगी गृहस्थों की संगति से, पूर्वबद्ध पाप कर्मों के विपाक से, ख्यातिपूजालाभ की दुर्भावना से भोगोपभोग सामग्री का संग्रह कर लेता है जिससे धर्म का, संयम का कोई संबंध नहीं है, दूसरों की सामग्री को देखकर माया लोभ से दूसरों के नाम पर गृहस्थों से मांग लेता है, याचना कर लेता है और गृहस्थ भी बिना सोचे समझे, हिताहित का विचार किये बिना, अंधभक्त बनकर शृंगार अलंकार की सामग्री दे देता है। अतः उक्त सामग्री अंधभक्त गृहस्थों से आती है।

प्र.947–ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, त्यागीव्रती, आर्यिका संघ, आचार्य संघों में गृहस्थों के योग्य सामग्री का क्या कारण है और इस दोष के अधिकारी कौन हैं?

उत्तर–मोक्षमार्ग से भ्रष्ट करने के लिए, जिनधर्म की अप्रभावना के लिए, अपनी प्रशंसा के लिए उक्त पात्रों में विषय वासना उत्पन्न करा कर कर्तव्य विहीन, उभयमार्ग पतित, अविवेकी गृहस्थ सामग्री लाकर दे देते हैं और ब्रह्मचारी आदि के पास उक्त सामग्री शरीर प्रेम, कामभोग, विषयवासना आदि दुर्भावनाओं के कारण स्वीकार कर लेते हैं तथा इस कारण दोनों ही कर्तव्य पथ से गिरकर, दोष के अधिकारी होकर निंदा और दुर्गतियों के पात्र होते हैं।

प्र.948–ऐसा हम क्या करें कि जिससे दाता और पात्र के कर्तव्य का पालन हो मोक्षमार्ग न बिगड़े, न निंदा हो?

उत्तर–बुद्धिमान ज्ञानी दातागणों का परम कर्तव्य हैं कि संघस्थ पात्रों को, सदस्यों को धर्म साधन के योग्य ही सामग्री प्रदान कर आत्मसाधना में, धर्म प्रभावना में, जातिकुल की मर्यादा में सहायक बनें और पात्र भी संसार का, दुःख का, निंदा का कारण मानकर अयोग्य सामग्री स्वीकार नहीं करें किंतु निष्प्रयोजन कर्म बंध से भयभीत होकर पापवर्धक भोगोपभोग सामग्री देकर और लेकर अपने कर्तव्य से न गिरें क्योंकि आचार्यों ने अनर्थदंड का त्याग कराया है।

प्र.949–जो पाप वर्धक हैं, दुर्ध्यान को उत्पन्न करानेवाली हैं ऐसी कौनसी सामग्रियां हैं?

उत्तर–जो राग द्वेष मोह, विषयवासना और मूर्च्छा को उत्पन्न करानेवाली वस्तुयें जिनका प्रयोग करने पर लज्जा आये, भय उत्पन्न हो, निंदा बदनामी हो, नीचा देखना पड़े, अपमान तिरस्कार प्राप्त हो ऐसे सुगंधित तेल, साबुन, स्नो पाउडर, सेम्पू, क्रीम आदि चकाचौंध पैदा करनेवाले वस्त्र, जिन वस्त्रों से शरीर के अंग प्रत्यंग, रोम आदि स्पष्ट दिखाई दें, मनोनुकूल अलंकार, कड़े, छल्ले, चप्पलें आदि रागवर्धक कामवर्धक पापवर्धक संगीत, चित्रादि का प्रयोग कोई देख न ले, सुन न ले ऐसा सोचकर छिपकर करना सो चोरी पाप है, बदलकर बोलना झूठ पाप है, आकर्षण के लिए करना मैथुन पाप है, कषाय सहित करने से हिंसा पाप और परिग्रह ये सभी पाप कर लिए जाते हैं।

प्र.950–आजकल कुछ मोक्षमार्गी बदनाम क्यों हो रहे हैं तथा पद भ्रष्ट होकर पुनः गृहस्थ क्यों बने या गृहस्थों जैसा कार्य क्यों करने लग जाते हैं?

उत्तर–चपल मन वाले गृहस्थों की, बालक बालिकाओं की संगति में मन लगाने से, एकांत में या छिपकर वार्तालाप, हंसीमजाक करने से, परिवार में मोह रखने से, गुरुजनों में, साधर्मिओं में गाढ़ प्रीति न होने से, पत्रिकाओं में, टी. वी. में नग्न चलचित्र देखने से, विकार युक्त संगीत सुनने से, मनोनुकूल राजसी तामसी भोजन करने से, पानसुपारी, मसाला खाने से, अत्यंत गरिष्ठ पौष्टिक भोजन करने से, रागवर्धक वस्त्र धारण करने से, बिना विचारे गाते हुए भ्रमण करने से, गुरुओं से छिपाकर रुपया पैसा पास में रखने से, अत्यधिक आदर सम्मान मिलने से या अपमान तिरस्कार होने से, भोग वासना आदि कारणों से वापिस गृहस्थ बन जाते हैं या गृहस्थों जैसा कार्य करने से बदनाम हो जाते हैं ऐसे शरीरधारी प्राणी अपने जीवन को, माँ बाप की परंपरा को, गुरुजन को, जिनधर्म को, लज्जा मर्यादा को न देखते हुये क्षण मात्र में कलंकित कर देते हैं। कहा भी है **'नार्थी दोषो पश्यति'** कामी लोभी प्राणी दोषों को बिल्ली की तरह नहीं देखते।

प्र.951–आजकल पतित व्यक्ति ही अधिक सम्मान पाते हैं ऐसा क्यों?

उत्तर–आज वर्तमान में सैकड़ों उदाहरण हैं जो वापिस गृहस्थ बनकर या बाह्य वेष में रहकर गृहस्थों जैसा कार्य कर रौद्रों की तरह जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इधर उधर कुत्तों की तरह भटक रहे हैं। इनको आदर सम्मान, इज्जत, बहुमान घर में, समाज में, परिवार में, बाहर में तथा धर्मात्माओं के मध्य में, सज्जनों में, राज्य सरकार में कहीं और कभी भी प्राप्त नहीं होता है। तन मन धन परिवारादि से हर तरह दुःखी रहते हैं और अत्यधिक पतित व्यक्ति दुराचारी जो वर्तमान में सम्मान पा रहे हैं सो यह वर्तमान के दुराचार का फल नहीं है किंतु पूर्वबद्ध पुण्योदय से आदर सम्मान पा रहे हैं जब इनका पूर्वकृत सातिशय पुण्य क्षीण हो जायेगा तब इनकी क्या अवस्था होगी? इसके भी वर्तमान में राजनेता और प्रजाजनों के सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं। कहा हैः–

''जब तक तेरे पुण्य का बीता नहीं करार।
तब तक तेरे माफ हैं औगुण करो हजार।।''

अर्थ–जब तक तीव्र पूर्व पुण्यकर्म का अंत नहीं होता है तबतक वर्तमान में लाख अत्याचार कर लो लोकदृष्टि में माफ हैं किंतु पूर्वकृत पुण्य के क्षीण होनेपर, पाप के बढ़ जाने पर रक्षक ही भक्षक हो जाते हैं।

प्र.952–ऐसा कथन क्यों किया?

उत्तर–इस प्रकार का कथन करना न परनिंदा है, न उपगूहन अंग की विराधना है, न नीच गोत्र का आश्रव बंध होता है। यदि इनको नीचे गिराना हो, नीचा दिखाना हो, हमारी पूजा प्रतिष्ठा हो, आदर सम्मान हो, प्रशंसा हो इस भाव से किया जाय तो उपगूहन अंग की विराधना होती है, नीचगोत्र का आश्रव बंध होता है। इसके स्वामी–मिथ्यादृष्टि

जीव और सासादन सम्यग्दृष्टि हैं। जिस प्रकार घरों में माँ बाप अपनी संतान की सुरक्षा के लिए, जाति कुल और धर्म की मर्यादा के लिये, गलत संगति शिक्षा और संस्कारों से बचाने के लिये संतान के सामने घटी हुई घटनाओं के दोष बताकर समझाते हैं कि ऐसा काम मत करो जिससे तुम्हारा जीवन धर्म नष्ट हो जाये तब संतान खोटी संगति आदि से विरक्त होकर छोड़ देती है और सत् संगति आदि में लगी रहती है। कहा भी है **'बिन जाने ते दोष गुनन को कैसे तजिये गहिये।'** दोष और गुणों की पहचान के बिना किसको छोड़ें और किसको ग्रहण करें? इस कारण जाति कुल और धर्म की रक्षा करने के लिए उक्त कथन करना दोषदायक नहीं है किन्तु गुणकारक ही है, स्थितिकरण अंग और प्रभावना अंग है, यदि केवल दोषवादन करने से नीचगोत्र कर्म का आश्रवबंध होता है तो सभी न्यायाचार्यों को तथा आक्षेपणी विक्षेपणी कथाकारकों को नीचगोत्र कर्म का आश्रवबंध करने वाला मानना पड़ेगा जो कि महान अनिष्टापत्ति है।

प्र.953–यदि संघस्थ सदस्यगण पद के विरुद्ध सामान मंगा लें तो गृहस्थ क्या करे?

उत्तर–उस समय मंगाने वाले से पूंछ लें कि इसका आपके लिये क्या उपयोग है? क्या मतलब है? आप त्यागी व्रती हैं आपको इन वस्तुओं से क्या प्रयोजन है? ये वस्तुयें गृहस्थों के योग्य हैं, भोगियों के योग्य हैं आदि नाना तरह से संबोधन करने पर भी न माने तो संघ में आचार्य के पास शिकायत कर देवें कि ये ऐसी भोग्य वस्तुयें मांग रहे हैं जो पद और धर्म के विरुद्ध है इससे आत्म विराधना होती है, धर्म बदनाम होता है, जीवन बिगड़ता है, माँ बाप की बदनामी होती है अतः ये वस्तुये आपके उपयोगी नहीं हैं। इसप्रकार संबोधन करनेपर भी न माने तो भी अनिष्ट सामग्री न देवे। क्या यदि कोई मरने के लिए जहर मांगे तो कोई सज्जन दे देगा? हत्या का पाप अपने माथे क्यों ले? इसी तरह आत्म साधना को बिगाड़ने वाली सामग्री देकर पद भ्रष्ट क्यों करें?

प्र.954–यदि पद और धर्म के विरुद्ध सामग्री को आचार्य या गणिनी आर्यिका आदि भी मांगने लगें तो गृहस्थ क्या करे?

उत्तर–यदि दिगम्बराचार्य, गणिनी आर्यिका आत्म साधना को बिगाड़ने वाली सामग्री को मांगने लगें तो वह आचार्य कैसा? महाव्रती कैसा? आर्यिका कैसी? उनका स्थितिकरण करना चाहिये, उपगूहन अंग का पालन करना चाहिये, धर्मप्रभावना के लिये पदभ्रष्ट होने से बचाना चाहिए। किसी भी हालत में अनिष्टकारक और धर्मायतन को कलंकित करने वाली सामग्री स्वप्न में भी नहीं देना .चाहिये तो जागृतावस्था की तो बात ही क्या? क्योंकि दान स्वपर के हित के लिये दिया जाता है। जिस सामग्री से दाता और पात्र दोनों के कर्तव्यों का विनाश हो वह दान कैसा? कुदान है, संसार में डुबोने वाला है।

प्र.955–जब सातवीं प्रतिमा में और आगे के सभी पात्रों को स्त्री मात्र का या पुरुष मात्र का नौकोटियों से त्याग कराया है फिर 6वें गुणस्थान पर्यंत मैथुन संज्ञा कार्य रूप में क्यों बताई? क्या ये मैथुनकर्म करके भी इस पद में स्थिर रह सकते हैं?

उत्तर–चरणानुयोग की अपेक्षा उक्त सभी पात्रों को नौकोटियों से मैथुन पाप का त्याग अवश्य कराया है, शीलव्रत का पालन कराया है इसलिये कोई अंतर नहीं है किंतु अंतरंग में कषायों के सद्भाव और अभाव की अपेक्षा महान अंतर है। 7वीं से 11वीं प्रतिमा वालों के और आर्यिका अवस्था में अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय के उदयाभाव में तथा प्रत्याख्यानावरणीय कषाय के तारतम्यता की हीनता के साथ साथ तीव्रता के उदयाभाव में नौकोटियों से परस्पर में त्याग कराया है या ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कराया है सो यह स्थूलरूप से व्रत है। मुनि अवस्था में प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव में नवकोटियों से परस्पर में परस्पर का त्याग कराया है सो यह सूक्ष्म त्याग है। बाह्य में दोनों के नवकोटियों के नाम में कोई अन्तर नहीं हैं फिर भी अन्तरंग के त्याग में महान अंतर है। मैथुन संज्ञा अपने अपने गुणस्थान के अनुसार प्रमत्तसंयत गुणस्थान पर्यंत वेदोदय से कार्यरूप में होती है फिर भी मुनि अवस्था में गृहस्थों जैसी क्रिया नहीं होती किन्तु क्वचित् कदाचित् किंचित् समय के लिए मैथुन संज्ञा का परिणाम बन भी गया तो भी मुनि पद का समूल विनाश नहीं करता केवल दोष पैदा करता है क्योंकि ये तीनों वेद नो कषाय हैं, क्रोधादि कषायों के समान आत्मगुणों का घात नहीं करते हैं। इसलिये मैथुन संज्ञा बतलाई मैथुन क्रिया नहीं यदि मैथुनक्रिया बताते तो ब्रह्मचर्य महाव्रत बन नहीं सकता क्योंकि मैथुन क्रिया प्रत्याख्यानावरणीय माया, लोभ और वेदोदय से 6वीं प्रतिमा तक ही हो सकती है आगे नहीं।

प्र.956–जब आगम में मुनियों के मैथुन संज्ञा कार्य रूप में बताई है तो कोई साधु मैथुन कर्म करता हुआ भी अपने आप को महाव्रती माने मनवाये तो क्या दोष है?

उत्तर–नहीं, जैसे अन्यमति साधु गृहकार्य करता हुआ भी अपने आपको साधु मानता है वैसे ही जैन साधु कुकर्म करता हुआ अपने को साधु मानता है। आगम की आड़ में अपने दुष्कर्म को छिपाना है, आत्मवंचना है जैसे कांजीपंथी आत्मद्रव्य को त्रिकाली शुद्ध मानकर शरीर की क्रिया शरीर में मानकर समस्त पापों को करते हुये, अभक्ष्य भक्षण, अन्याय सेवन करते हुये भी अपना पतन आश्रव बंध स्वीकार नहीं करते इसी तरह इन वेषधारी साधुओं ने अपनी इच्छानुसार कुकर्म करके भी विषय कषायों की पुष्टि करते हुये भी अपना पतन स्वीकार नहीं करते किंतु स्वेच्छानुसार शास्त्र को शस्त्र बना डाला। यदि मुनि अवस्था में गृहस्थों जैसी मैथुनक्रिया बताते तो ब्रह्मचर्यमहाव्रती क्यों कहा? मैथुनकर्म का 9 कोटी से त्याग क्यों बताया? अतः उपरोक्त कथन के अनुसार मैथुनसंज्ञा और मैथुनक्रिया में महान अंतर है। इसलिए गृहस्थों के मैथुनसंज्ञा और मैथुनक्रिया दोनों होती हैं, हो सकती हैं किंतु मुनियों के सिर्फ मैथुनसंज्ञा होती है मैथुनक्रिया नहीं।

प्र.957–चारित्र गुण का परिणाम होने से ध्यान को पारिणामिक भाव क्यों नहीं कहा?

उत्तर–नहीं कहा क्योंकि पारिणामिक भाव अविनाशी है, अनादिनिधन है, निर्निमित्तक होने से ध्रुव रूप है जबकि अशुद्ध ध्यान अभव्यजीव की अपेक्षा अनादिनिधन और भव्य जीव की अपेक्षा अनादि सान्त, सादि सान्त, सादि अनन्त है, विनाश स्वभाव सहित है, उत्पाद व्यय युक्त है, चारित्रमोहनीय कर्म के उदय उपशम, क्षय, क्षयोपशम कारण होने से सनिमित्तक और अध्रुव स्वभाववाला होने से ध्यान को पारिणामिक भाव नहीं कहा। दूरानुदूर भव्यजीव में चारों भंग होते हैं।

प्र.958–पाँचों इन्द्रियों और मन से धर्मध्यान हो सकता है क्या?

उत्तर–नहीं, इन्द्रिय और मन से कोई भी शुभाशुभ और शुद्ध ध्यान नहीं होता है किंतु इनके अनुसार प्रवृत्ति होने से दुर्ध्यान तथा इनको अपने आधीन कर सम्यक् रत्नत्रय सहित आत्म साधना करने से धर्मध्यान और मोह के क्षय से भावेन्द्रिय और भावमन के सद्भाव में तथा अभाव में शुक्लध्यान होता है। इन्द्रिय और मन उत्थान पतन के लिये बाह्य साधन हैं, साध्य नहीं। इन दोनों को अपने आधीन रखने से मोक्ष और मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है और इनके आधीन होने से संसार तथा संसारमार्ग की प्राप्ति होती हैं।

प्र.959–यहाँ पर मोक्ष के और मोक्षमार्ग के साधन हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–यदि इन्द्रिय और मन को रत्नत्रय सहित अपने आधीन किया तो मोक्ष के तथा रत्नत्रय के बिना बाह्य संयम सहित मोक्षमार्ग के साधन हैं तथा इनके आधीन हुये तो मोक्षमार्ग की विराधना के साधन हैं।

प्र.960–यहाँ पर मोक्ष का साधन और मोक्षमार्ग का साधन ऐसा भेद क्यों किया?

उत्तर–रत्नत्रय मोक्ष का साधन है मोक्षमार्ग का नहीं क्योंकि रत्नत्रय स्वयं मार्ग है और मार्ग मार्ग का साधन नहीं होता है किंतु मार्गफल का साधन होता है अतः रत्नत्रय मोक्ष का साधन है और मोक्षमार्ग का साधन मिथ्यात्व, अन्याय अभक्ष्य का त्याग, सप्त व्यसनों का त्याग, रात्रिभोजन का त्याग, अनछने जल के पीने का त्याग, उदुम्बर फलों का तथा सभी कंदमूलों का त्याग, आठ मूलगुणों और षडावश्यकों का पालन करना, मिथ्यात्वोदय सहित करणलब्धि के परिणाम आदि मोक्षमार्ग के साधन हैं क्योंकि इनसे मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है मोक्ष की नहीं। इस कारण भेद किया है।

प्र.961–यदि ऐसा है तो आ० श्री ने 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–आपने सूत्र को समझा नहीं, तभी इस प्रकार की शंका हो रही है, यदि सूत्र के अभिप्राय को समझ लेते तो इस प्रकार का आक्षेप नहीं करते। सूत्रकार ने रत्नत्रय को मोक्षमार्ग कहा है, मोक्ष प्राप्ति का उपाय है मोक्षमार्ग का साधन नहीं, उपाय नहीं कहा क्योंकि रत्नत्रय की प्राप्ति करणलब्धि के अंतिम परिणाम से होती है। करण लब्धि साधन है और रत्नत्रय साध्य है। क्षायोपशमिक पाँचों लब्धियां मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय के साथ में मिथ्यात्व गुणस्थान के अंतिम समय तक होती है। करण लब्धि का अनिवृत्तिकरण रूप अंतिम परिणाम और रत्नत्रय की प्राप्ति का प्रथम परिणाम एक ही समय में होता है, अनिवृत्तिकरण परिणाम साधन है, कारण है और रत्नत्रय साध्य है, कार्य है ऐसा वर्तमान नय से समझना चाहिये।

प्र.962–मोक्ष और मोक्ष का मार्ग क्या है?

उत्तर–अंतरंग तप के अंतिम भेद स्वरूप संस्थानविचय धर्मध्यान, एकत्ववितर्क शुक्लध्यान और व्युपरतक्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान के द्वारा अनादिकालीन विकारों को क्षय कर उत्पन्न हुई अवस्था को मोक्ष तथा रत्नत्रय या सम्यग्दर्शन, विरति, अप्रमत्त, अकषाय और अयोगभाव मोक्षमार्ग है।

प्र.963–संसार और संसार का मार्ग क्या है?

उत्तर–चतुर्गति, 84 लाख योनियों में जनम मरण करना यह संसार है और मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान तथा मिथ्याचारित्र अथवा मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये सब संसार के मार्ग हैं।

प्र.964–भावेंद्रिय और भावमन से धर्मध्यान होता है ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, यद्यपि भावेन्द्रिय और भावमन मतिज्ञान है फिर भी यदि इनका उपयोग रत्नत्रय पूर्वक मोक्ष और मोक्षमार्ग के निमित्त किया तो धर्मध्यान हो सकता है अन्यथा उपयोग करने से आर्तरौद्रध्यान होते हैं।

प्र.965–द्रव्येंद्रिय और द्रव्यमन से धर्मध्यान होता है ऐसा स्वीकार करने में क्या दोष है?

उत्तर–इनके सद्भाव में धर्मध्यान नहीं होता है किंतु केवलियों के एकत्ववितर्क या एकत्वअवितर्क शुक्लध्यान, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान और व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान होते हैं शेष नहीं। विग्रहगति में इनके बिना सामान्य धर्मध्यान हो सकता है किंतु उत्कृष्ट धर्मध्यान और शुक्लध्यानों का अस्तित्व नहीं पाया जाता क्योंकि द्रव्येन्द्रिय और द्रव्यमन ये दोनों जड़ स्वभाव वाले हैं अतः ये किसी भी ध्यान के साक्षात् साधन नहीं किंतु साधन के बाह्य साधन हो सकते हैं। यदि पुद्गल से उपादान उपादेय की अपेक्षा चैतन्य ध्यान की उत्पत्ति मानी जाय तो चार्वाक मतानुसार पंचभूतों से आत्मा की उत्पत्ति का विरोध क्यों? अतः बाह्यसाधन समस्त ज्ञेय पदार्थ हो सकते हैं ऐसा स्वीकार करने में कोई दोष नहीं हं।

प्र.966–मूलगुण और प्रतिमाओं का पालन श्रावक श्राविकायें यमरूप से करते हैं या नियम रूप से? यम और नियम किसे कहते हैं?

उत्तर–**'नियमः परमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते'**–: सीमित समय के लिये, थोड़े समय के लिये नियम तथा जीवन पर्यंत के लिये यम धारण किया जाता है। मूलगुणों और प्रतिमाओं का पालन यमरूप से तथा उत्तरगुणों का पालन नियमरूप से किया जाता है। जैसे वृक्ष में जड़ें मुख्य होती हैं, बिना जड़ के तना, स्कंध, शाखा प्रतिशाखा, पत्ते, फूलफलों की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल की प्राप्ति नहीं होती है इसी तरह मूलगुणों के बिना प्रतिमाओं की, उत्तर गुणों की तथा आगे के पदों की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है। कदाचित् वृक्ष की कुछ शाखा प्रतिशाखायें काट दी जायें, टूट जायें, गिर जायें तो भी दूसरी शाखा प्रतिशाखाओं से फूलफलों की प्राप्ति सम्भव है किन्तु जड़ों के नष्ट कर देने पर, इष्टफल की प्राप्ति नहीं हो सकती है इसी तरह उत्तरगुणों के नष्ट हो जाने पर, छोड़ देनेपर मोक्षमार्ग की प्राप्ति, गमन, संवर, निर्जरा सम्भव है किन्तु मूलगुणों के नष्ट हो जाने पर आगे के पदों की प्राप्ति असम्भव है। मूलगुण, मुख्यगुण, प्रधानगुण कहलाते हैं जैसे विवाह में वर वधु मुख्य होते हैं, देश में राजा प्रधान होता है। वरवधु और राजा के समान मूलगुण होते हैं बराती घराती और प्रजा के समान उत्तरगुण होते हैं इस कारण मूलगुण और प्रतिमायें जीवन पर्यंत पालन किये जाते हैं।

प्र.967–श्रावक श्राविकाओं के मूलगुण और प्रतिमाएं जीवन पर्यंत के लिए होती हैं तो ये कभी भी मुनि आर्यिका नहीं बन सकते हैं, यदि बने तो प्रतिज्ञा नष्ट होने से भ्रष्टपने का प्रसंग आता है जो अयोग्य क्यों नहीं?

उत्तर–ये मूलगुण और प्रतिमायें जीवन पर्यंत के लिये ही होती हैं, जीवन रहते समाप्त नहीं होतीं जब श्रावक श्राविकाओं ने मुनि आर्यिका दीक्षा धारण की तब श्रावक श्राविका पर्याय का व्यय, जीवन समाप्त हुआ और मुनि आर्यिका पर्याय का उत्पाद हुआ, जन्म हुआ अतः मूलगुण और प्रतिमायें जीवन पर्यंत के लिये ही होती हैं यह ठीक ही कहा है। अगली अवस्था के प्राप्त होने पर मूलगुणों का, प्रतिमाओं का पालन और सूक्ष्म हो गया किंतु मुनि आर्यिका पद स्वीकार कर लेने पर अनर्गल चेष्टाओं का त्याग और भी सूक्ष्म हो गया तब प्रतिज्ञा नष्ट हुई, पद से भ्रष्ट हुआ ऐसा कैसे कहा जाय?

प्र.968–यदि कोई प्र.करें कि श्रावक के मूलगुण तथा प्रतिमायें नियमरूप में थोड़े समय के लिये होते हैं बाद में शीघ्र छोड़ देंगे तो क्या दोष है?

उत्तर–नहीं, यदि आप जैन हैं, अहिंसावादी हैं, देव शास्त्र गुरु के भक्त हैं तो क्या मद्य मांस मधु का, व्यसनों का, अनछने पानी का, रात्रिभोजन का, उदुम्बर फलों का, आलू मूली आदि कंदमूलों का, अन्याय अभक्ष्य का त्याग कर क्या पुनः सेवन करेंगे? यदि इनका खाना पीना चालू कर देंगे तो जैन कैसे कहलायेंगे? अहिंसावादी, देव शास्त्र गुरु के भक्त, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यात्व, अन्याय अभक्ष्य के त्यागी कैसे कहलायेंगे? क्या धर्म विवाह थोड़े समय के लिये होता है? नहीं, जीवन पर्यंत के लिये होता है यदि कदाचित् थोड़े समय के लिये किया है और बाद में छोड़ दिया तो पुनः किसी को पति या पत्नि के रूप में अपनाना नहीं। यदि अपनाया तो वेश्याकर्म या व्यभिचारीपना नहीं है क्या? यदि कोई गृहस्थ कहे कि मूलगुण या प्रतिमायें वापिस ले लो या वापिस कर दो तो फिर इसी तरह आचार्य, उपाध्याय, साधु, आर्यिकायें, क्षुल्लक, क्षुल्लिकायें भी कह सकते हैं कि हमारा पीछी कमण्ड़लु भी वापिस ले लो या मंदिरजी में रख दो या गुरु को सौंप दो, समाज को दे दो तो क्या जैनधर्म ऐसा है? यदि ऐसा होने लगा तो अन्यमतियों में और जैनों में क्या अंतर रहा? इस कारण मूलगुण और प्रतिमाओं के व्रत जीवन पर्यंत के लिये होते हैं। जैनधर्म कहता है कि **'कर या मर'** उक्त व्रतों का पालन करो या समाधि मरण करो, यदि स्वच्छंदता पर कोई रोकटोक नहीं लगी तो जैनधर्म और जैनीभाई धरातल की ओर चलते चले जायेंगे, जैसे अन्यमतियों में गृहस्थ से साधु बने और साधु से गृहस्थ तो वैसे ही जैनों में होने लगा तो समझो पंचमकाल का अंत और छठवाँ काल आ गया।

प्र.969–पद भ्रष्ट होना किसे कहते हैं?

उत्तर–जो मन वचन काय पूर्वक असंयम युक्त अवस्था को त्याग कर उच्च अवस्था को स्वीकार किया था अब पुनः संयमावस्था को छोडकर असंयम अवस्था के स्वीकार कर लेने को पदभ्रष्ट होना, प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होना कहते हैं अथवा ऊपर से नीचे गिरने को, कर्तव्य विहीन होने को पद भ्रष्ट होना कहते हैं।

प्र.970–पद छोडने को भ्रष्टपना क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर–नहीं, केवल पद छोड़ने को भ्रष्टपना नहीं कहते हैं किंतु छोड़कर नीचे गिरने को भ्रष्टपना कहते हैं क्योंकि अगली अवस्था को प्राप्त करने लिये पूर्व की अवस्था छोड दी जाती है जैसे अगली सिड्डी में कदम रखने के लिये पिछली सिड्डी छोड़ दी जाती है सो इसे भ्रष्ट होना न कहकर ऊपर चढना कहते हैं।

प्र.971–भ्रष्टता के कितने भेद हैं, नाम कौन कौन हैं, परिभाषा बताओ?

उत्तर–भ्रष्टता के दो भेद हैं। नाम–: भाव से भ्रष्टता और द्रव्य से भ्रष्टता। **भाव से भ्रष्टता** :–मन में की हुई प्रतिज्ञा से वापिस भाव से नीचे आ जाने को भाव से भ्रष्टता कहते हैं जैसे रात्रिभोजनपान का त्याग कर पुनः प्रसंग आने पर भूखप्यास की बाधा से घबड़ा कर पुनः रात्रि में भोजनपान करने की भावना बना लेने को भाव से भ्रष्टता कहते हैं। **द्रव्य से भ्रष्टता** :–पूर्ण रूप से बाह्य में व्रतों के छोड़ देने को द्रव्य से भ्रष्टता कहते हैं जैसे रात्रि में भोजनपान कर लेने को द्रव्य से भ्रष्टता कहते हैं। इसी तरह समस्त प्रकार के व्रतनियमों के संबंध में लगा लेना चाहिये।

प्र.972–योनिभूत बीज को वर्तमान नय से वर्तमान में सचित्त माना जाये, जीव सहित माना जाये तो क्या दोष है, क्या आपत्ति है?

उत्तर–जो वृक्ष से, बेलों से टूटकर अलग हो गये हैं या तोड़कर अलग कर दिये हैं ऐसे सूखे या हरे बीजों में, फलों में वर्तमान नय से वर्तमान में जीवों का अस्तित्त्व माना जाय, जीव मौजूद है ऐसा माना जाये तो अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव की परिभाषा नहीं बन सकती। सूखे या हरे बीजों को, फलों को निर्दयता पूर्वक चक्कू आदि से विदारण करने का, सुधारने का, शिलबट्टे आदि से जीवों को पीसने का, चटनी बनाने का, घसीट कर मारने का, अग्नि में पकाने का, जलाने का, कच्चे या हरेचने तुवर ककड़ी आदि के खाने से जीवों को चबाने का, दांतों से कतरने का आदि प्रकार से जीव हत्या का दोष आता है फिर मांसाहारी और शाकाहारी में, हिंसक अहिंसक में, कसाई और दयावान में, दुर्जन और सज्जन जीवों में कोई अंतर नहीं रह जाता। अतः योनिभूत बीजों में, फलों में क्वांरी कन्या के समान भविष्य में जीवों को उत्पन्न करने की योग्यता है किंतु वर्तमान में वर्तमान नय से जीव मौजूद नहीं है, भविष्य में आ सकता है यदि अनुकूल साधन सामग्री मिली तो, अन्यथा नहीं जैसे क्वांरी कन्या में गर्भ धारण

करने की योग्यता है यदि तदनुकूल पुरुष का संयोग मिला तो गर्भ रह सकता है अन्यथा नहीं। यदि कन्या को सर्वकाल गर्भवती माना जाय तो क्वांरी क्यों कहना? शीलवती क्यों कहना? जैसे केले के स्तंभ में या प्याज में छिलके के अंदर छिलके ही रहते हैं वैसे ही गर्भ के अंदर गर्भ मानना पड़ेगा फिर गर्भ के ही अंदर गर्भ कौन धारण करायेगा? गर्भवती होने से ऋतुमति क्यों होगी मनुष्यों का गर्भ काल 7–8–9–10वें महिने तक का क्यों कहना? यदि सर्वकाल सर्वत्र गर्भवती है तो बीजों में फलों में सर्वकाल सर्वत्र जीव मान सकते हैं यदि बीजों में जीव मौजूद है तो योनिभूत सचित्त जीव क्यों कहना?

प्र.973–सूखे या हरे फलों में, बीजों में यदि वर्तमान नय से वर्तमान में जीव नहीं है तो वह अचित्त कहलाया तब क्या 5वीं प्रतिमा से लेकर मुनि पर्यंत खा सकते हैं?

उत्तर–नहीं, न खा सकते हैं, न खिला सकते हैं, न अनुमोदना कर सकते हैं क्योंकि इन सभी को अनुकंपा युक्त करुणावान कहा है। जो भविष्य में भी योनिभूत जीव की विराधना नहीं करना चाहता वह सचित्त आहार पानी कैसे ग्रहण करेगा? अतः इनके योग्य आहार पानी भी सर्वकाल अचित्त होना चाहिये।

प्र.974–क्या सूखे या हरे साबुत फलों में जीवों को उत्पन्न करने की शक्ति है या केवल बीजों में? इस विषय को स्पष्ट करने के लिए कोई उदाहरण दो

उत्तर–नहीं, पूर्ण रूप से सूखे या हरे फलों में जीवों को उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है किंतु केवल बीज में है क्योंकि अंकुर केवल बीज से निकलता है पूरे फल से नहीं जैसे आम, नींबु, सेवफल, ककड़ी, तोरई आदि। जैसे माता के पूरे शरीर में गर्भ धारण करने की शक्ति नहीं है सिर्फ गर्भाशय में शक्ति है। यदि सर्वांग में हो तो सारे शरीर में गर्भ रह जायेगा तब सर्वांग से मनुष्यों की उत्पत्ति होने लगेगी इसी तरह पूर्ण फलों में जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है केवल बीज से ही अंकुर उत्पन्न होता है यदि पूर्ण फलों में जीवों को उत्पन्न करने की शक्ति हो तो सेव, मोसंबी आदि फलों में कितने अंकुर पैदा हो जायेंगे? अतः गर्भधारण करनेवाली माताओं के समान सिर्फ बीज में ही अंकुर पैदा होता है, शेष में नहीं।

प्र.975–वृक्ष से, बेल से फूल को अलग कर देने पर या अलग हो जाने पर भी सचित्त मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–यदि वृक्ष से, बेल से पुष्प को अलग कर देने पर या अलग हो जाने पर भी सचित्त माना जाये तो अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकाय की परिभाषा नहीं बन सकती क्योंकि पूरे वृक्ष का या बेल का एक ही जीव स्वामी होता है। फूल वृक्ष के या बेल के साथ में होने से सचित्त है, पृथक् होने पर नहीं, फिर भी बलात् फूल को सचित्त माना जाये तो आत्मा को खण्ड खण्ड, टुकड़े टुकड़े मानने का प्रसंग आयेगा अतः पृथक् पुष्प को अचित्त कहते हैं, सचित्त नहीं। उस पुष्प में आगन्तुक जीव की अपेक्षा सचित्तपना नहीं है किन्तु स्वयं के जीव के सद्भाव, असद्भाव की अपेक्षा सचित्ताचित्तपना है।

प्र.976–जब घर में, समाज में, देश में, धर्मों में और धर्म के नाम पर बटवारा होता है तो किन किन आपत्तियों का सामना करना पडता है?

उत्तर–जब घर में, समाज आदि में धर्म के या अन्य कारण वश बटवारा होता है तो अखंड शक्ति खंडित हो जाती है, टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं, कोई किसी का साथ नहीं देता और परस्पर में शत्रु बन जाते हैं। तन मन धन और धर्म चारों ही संकट में पड़ जाते हैं। जिस प्रकार घर में बटवारा होने पर परिवार वालों को क्या क्या परेशानियां उठानी पड़ती हैं यह तो आप जानते ही हैं इसी तरह धर्म के नाम पर समाज का बटवारा होने पर जो जो परेशानियां होती हैं उसे भुक्तभोगी ही जानता है।

प्र.977–जिस प्रकार आजकल घरों में, स्कूलों में, बालक बालिकाओं के ऊपर से अंकुश हटा दिया है इसी प्रकार संघों में भी आचार्यों के द्वारा शिष्य शिष्याओं के ऊपर से अंकुश हटा देने से क्या होगा?

उत्तर–नहीं हटाना चाहिये, जिस प्रकार घरों में, स्कूलों में, समाज में, देश में सरकार से अंकुश हटा देने पर बालक बालिकायें, विद्यार्थी और प्रजा निरंकुश होने पर आवारा बैल की तरह स्वच्छंदी हो गई, मनमानी करने लगी, पापाचार, दुराचार बढ़ गया जिससे मान मर्यादा नष्ट हो गई। इसी प्रकार संघ में यदि आचार्य ने शिष्य शिष्याओं

के ऊपर से निगाह हटा ली, अंकुश हटा लिया तो संघस्थ शिष्य शिष्यायें निरंकुश हाथी की तरह, बेलगाम घोड़े की तरह, चंचल बंदर की तरह हो जायेंगे, अतः व्यवहार धर्म को सुचारु रूप से चलाने के लिये दुर्भावना को छोड़कर अपनी आँखों में, हाथ में अंकुश रखना चाहिये अन्यथा जैसे बालक बालिकाओं में मूर्खता, अविवेकता, अभिमान, कामवासना, अनिष्ट शृंगार अलंकार चारित्रहीनता के कारण देश की, समाज की, घर की बदनामी हो रही है वैसे ही संघ में अंकुश हटा देने से शिष्यगण स्वच्छंदी हो जायेंगे इस कारण अंकुश रखना लगाना परम आवश्यक है।

प्र.978–आजकल निरंकुश विद्यार्थिओं पर मास्टर ने अंकुश लगा दिया और घर में माँ बाप बच्चे बच्चियों पर अंकुश लगाते हैं तो इनकी पिटाई हो जाती है और सरकार इनको अपराधी मानकर केस लगा देती है तो क्या सरकार को पुलिस से भी अंकुश नहीं छीन लेना चाहिये, न्याय में पक्षपात क्यों?

उत्तर–निरंकुश विद्यार्थियों में और बालक बालिकाओं में मूर्खता, स्वच्छंदता आदि दोषों का, दुर्गुणों का प्रवेश हो रहा है, स्वयं का जीवन, परिवार, समाज, देश, धर्म बदनामी तथा पतन की ओर जा रहा है इसी तरह सेनाओं से भी अंकुश छीन लिया गया तो सारी की सारी जनता अराजकता में डूब जायेगी।

प्र.979–अराजकता में डूब जाने दो क्या आपत्ति है, पुलिस को अंकुश क्यों दिया?

उत्तर–मनुष्यों ने पूर्णरूप से यदि मानवता छोड़ दी तो मनुष्यों में और नारकी पशु–पक्षिओं में क्या अंतर रहा? यही आपत्ति है। अतः जनता में अराजकता न फैले इसलिये पुलिस के हाथ में अंकुश रहना जरूरी है, इसी तरह यदि प्रारंभ से ही मास्टर और माँ बाप अंकुश लगाते तो विद्यार्थी और बालक बालिकाओं में मूर्खता का, अहंकार पने का प्रवेश नहीं हो पाता। जिस प्रकार पुलिस जनता को सुधारने के लिये अंकुश लगाती है उसी प्रकार मास्टर और माँ बाप विद्यार्थी और बालक, बालिकाओं पर कुम्हार की तरह सुधारने के लिये अंकुश लगाते थे, दुःखी करने के लिये, कष्ट देने के लिये नहीं। अतः रक्षक के हाथ में अंकुश रहना जरूरी है, भक्षक के हाथ में नहीं।

प्र.980–आजकल कवियों ने या पंडितों ने नवीन पूजाओं में नकारात्मक शब्दों का प्रयोग किया है जैसे 'यह धूप अनल में खेने से कर्मों को नहीं जलायेगी, यह भूख न मेरी शांत हुई, लौटाने आया हूँ।' आदि कुछ उदाहरण है, तो क्या ये पूजायें प्रमाण हैं या अप्रमाण? सम्यक् हैं या मिथ्या?

उत्तर–यदि आप थोड़े समय के लिये किसी डॉक्टर के पास जायें और बोले कि हे डॉक्टर ! यह दवाई फायदा नहीं करेगी, तुम अच्छे नहीं हो ऐसा बारबार कहें अथवा पुलिस के पास जायें और कहें कि यह पुलिस ठीक नहीं है, कुछ काम नहीं करेगी अथवा बैंक में जायें और मैनेजर से कहें कि यह मैनेजर कुछ भी रुपयों की सहायता नहीं करेगा इसी तरह लोक व्यवहार में नकारात्मक शब्दों का प्रयोग करके देख लो कि कितनी सफलता या असफलता मिलती है इसका अनुभव स्वयं में हो जायेगा तो पूजापाठ में, ध्यानाध्ययन में, धर्म व्यवहार में, मोक्षमार्ग में, नकारात्मक शब्दों का प्रयोग करने पर रत्नत्रय की प्राप्ति, संवर निर्जरा तथा मोक्षफल की प्राप्ति कैसे हो सकती है? जब नकारात्मक शब्दों का प्रयोग करना ही है तो **'कर्म बंध के छेदने और न कोई उपाय'** ऐसा क्यों बोलते हो? यहाँ तो कहा कि हे भगवन ! कर्म बंधन को छेदने के लिये आपकी पूजा के बिना और कोई दूसरा उपाय नहीं है। पूजा में नकारात्मक शब्दों का प्रयोग करना और मंत्रों में फल प्राप्ति के लिये सकारात्मक शब्दों का प्रयोग करना जैसे विनाशनाय, प्राप्ताय, विध्वंसनाय, दहनाय आदि यह स्ववचन बाधित दोष है, अश्रद्धान है, अविश्वास है, मयाचार है, छलकपट है। अरे ! जब पूजापाठ से सकारात्मक फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है तो मंदिर क्यों बनवाना? क्यों आना? प्रतिष्ठायें पूजापाठ क्यों करना, कराना? यात्रायें क्यों करना? चुपचाप बाजार में, घर में, होटलों में बैठो।

प्र.981–पूजाओं में नकारात्मक पद्यों के समान गुरुओं के लिए नकारात्मक प्रयोग करें तो क्या फल प्राप्त होगा?

उत्तर–अपने घरों में भाईबंधुओं में नकारात्मक शब्दों का प्रयोग कर देख लो अविश्वास, असफलता मिलेगी तथा प्रेम और इच्छानुकूल सामग्री की प्राप्ति नहीं हो सकती है इसी तरह गुरुओं के सामने ये गुरु कुछ नहीं करेंगे, शिक्षा दीक्षा नहीं देंगे, न तारणहार हैं आदि ये शब्द उच्चारण क्यों किये? मन में अविश्वास होने से शंका दोष होने से ही इस प्रकार भाव पूर्वक वचन निकले तब मोक्षमार्ग कैसे प्राप्त होगा?

प्र.982–पूजा के पद्यों में और मंत्रों में क्या अंतर है?

उत्तर–पद्य विस्तारात्मक होते हैं, अर्थ सरल और स्पष्ट होता है, उच्चारण या पठन हर कोई सरलता से कर सकता है, मातृभाषाओं में हो सकते हैं किंतु मंत्र संस्कृत भाषा में संक्षिप्त और गूढ़ अर्थ वाले होते हैं तथा अर्थ अस्पष्ट होता है, उच्चारण, पठन हर कोई आसानी से नहीं कर सकता यही अंतर है।

प्र.983–जिनेन्द्र की मूर्ति जड़ होने से मूर्ति को क्यों पूजना और अचेतन को चेतन मानकर पूजना मिथ्यात्व नहीं है क्या?

उत्तर–नहीं, यद्यपि धातु, पाषाण की मूर्ति, प्रतिमा जड़ है, अचेतन है तो भी स्थापना निक्षेप के मंत्रों के द्वारा प्राण प्रतिष्ठा करने से तीर्थंकर प्रभु की या पंच परमेष्ठियों की स्थापना की जाती है अतः मूर्तिमान की मूर्ति है या मूर्तिमान ही है तदाकार स्थापना है। अभेदनय की अपेक्षा मूर्ति ही चेतन भगवान है और भगवान ही मूर्ति है किन्तु भेदनय की अपेक्षा मूर्ति अलग है और भगवान अलग है अर्थात् आत्मा भगवान है और शरीर मूर्ति है तभी तो मोक्षमार्गस्थ नव देवताओं की सम्यक् व्यवस्था बन सकती है। फिर भी यदि आप सर्वथा सर्व प्रकार से नय विभाग को छोड़कर मूर्ति को जड़ मानकर अचेतन मिथ्यात्व मानते हो, कहते हो तो फिर शास्त्र को, आगम को और गुरुओं के शरीर को भी पूजना, नमस्कार करना, हाथ जोड़ना बंद करो क्योंकि आगम शास्त्र और गुरु का शरीर, मुनियों का ओघा जो ऊन का होता है वह भी अचेतन जड़ है। इसी तरह साधु, साध्वी, सतिओं को गोचरी देना वैयावृत्ति करना आदि भी जड़ मिथ्यात्व कहलायेगा और भावों में होने से भाव मिथ्यात्व कहलायेगा क्योंकि आत्मा दृष्टिगोचर नहीं होती है दृष्टिगोचर केवल शरीर होता है शरीर की ही वैयावृत्ति की जाती है, दान दिया जाता है केवल शुद्ध आत्मा या मुर्दा न खाते हैं न पीते हैं ,न वस्त्राभूषण धारण करते हैं किन्तु विकार युक्त मिश्रावस्था में दोनों ही ग्रहण करते हैं क्योंकि आत्मा अमूर्तिक है इस कारण यदि आत्मा को गुरु कहते हो शरीर को नहीं तो हर किसी आत्मा को गुरु मान लो फिर बाह्य में वेष धारी को गुरु क्यों माना? यदि माना तो इसे भी मिथ्यात्व मानो फिर णमोकार मंत्र में एकमात्र णमो सिद्धाणं का ही पाठ करो, जाप करो किन्तु चार का नहीं क्योंकि ये चार शरीर सहित हैं और इन चारों के नाम का स्मरण करना, हाथ जोड़ना आदि भी मिथ्यात्व कहलायेगा फिर आप लोग अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना किस प्रकार करोगे? आपके यहाँ **चेइय** पद का क्या अर्थ है? समवशरण में मानस्तम्भ का क्या स्वरुप है?

प्र.984–जिनबिंब के चरणों में केशर, चन्दन चढ़ाने से प्रतिमा अपूज्य क्यों नहीं होगी?

उत्तर–नहीं, क्योंकि कषाय को और कषाय पूर्वक ग्रहण की हुई सामग्री को परिग्रह कहते हैं अतः चन्दन, केशर न अंतरंग परिग्रह है और न बहिरंग परिग्रह। जो स्वेच्छा से सहर्ष भोग विलास, शृंगारालंकार की सामग्री कषाय पूर्वक ग्रहण की जाये उसे परिग्रह कहते हैं। दस प्रकार के बहिरंग परिग्रहों में इसका नाम नहीं है तथा अंतरंग में मोह कर्म का अभाव होने से अंतरंग परिग्रह भी नहीं है। केशर, चन्दन चरणों में चढ़ाना, लगाना केवल भक्त की भक्ति है कदाचित् आपने चरणों में लगे हुए किंचित् केशर, चन्दन को परिग्रह माना तो अपरिग्रही महाव्रती नग्न दिगम्बर साधुओं की वैयावृत्ति करने वाले तेल मालिश करते हैं, कुछ बीमारी होने पर लेप वगैरह भी लगाते हैं तो उन मुनियों को भी परिग्रह सहित मानो और अपूज्य कहो या इसे उपसर्ग और परीषह कहो? गुरुओं पर उपसर्ग परीषह करने वाला महान मिथ्यादृष्टि पापी होता है क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव देव शास्त्र गुरु पर उपसर्ग परीषह नहीं करता है कारण सम्यग्दृष्टि जीव स्थितिकरण अंग का पालन करता है। गुरु ने दिगम्बर दीक्षा देते समय पीछी, कमण्डलु और शास्त्रजी के अलावा और कुछ भी सामग्री नहीं दी थी फिर भी आजकल मुनि आदिकों के पास चटाई, पाटा, सिंहासन, चश्मा, नानातरह के आल्कोहॉल मिले हुये डॉटपेन या कम्पनी की स्याहीवाले पेन, मोबाईल आदि भौतिक यंत्र पाये जाते हैं तथा आप परिग्रहवान भट्टारकों का निषेध करते हो तो जो दिगम्बरावस्था में नाना संस्थाओं से जुड़े हुए हैं या अधिष्ठाता बने हुए हैं उन्हें क्या कहोगे? अथवा आजकल उपयोग में आनेवाली सारी सामग्रियाँ दीक्षा में देनी पड़ेगी जिससे परिग्रहपने का दोष नहीं आयेगा क्योंकि गुरु ने दिया है फिर भी निःपरिग्रही कहोगे या परिग्रही मानोगे? यदि परिग्रही माना तो गुरु पापी कहलायेगा शिष्य नहीं क्योंकि गुरु ने दी है अतः चरणों में केशरादि लगाना परिग्रह नहीं है शृंगार नहीं है जिससे प्रतिमाजी को अपूज्य, परिग्रहवान कहा जाये।

प्र.985–आप कहते हैं कि हम जैन वीतरागता के उपासक हैं तो फिर गर्भ और जन्म अवस्था की पूजा, आराधना, उपासना क्यों करते हो?

उत्तर–हम जैनी मोक्ष के निमित्त, संसार बंधन से छूटने के निमित्त वीतरागियों की ही पूजा आराधना करते हैं। गर्भ और जन्मावस्था की पूजाराधना भावीनैगमनय की अपेक्षा करते हैं क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले बालक भविष्य में वैराग्य को प्राप्त कर, तप साधना कर भगवान बनेंगे अभी वर्तमान में भगवान नहीं हैं सरागी हैं जैसे आप नवजात बालक को कुलदीपक मानकर सेवा सुश्रूषा करते हैं। अब आप ही बतायें कि वर्तमान में वह बालक क्या कुलदीपक है? नहीं, किंतु सत्संस्कारों के द्वारा कुलदीपक बनाया जायेगा। यदि हम वर्तमान में ही भगवान मानकर बालक की उपासना करते तो अवश्य ही दोष आता अथवा उनके अलावा शेष सरागियों का लोकव्यवहार के निमित्त आदर सम्मान करते हैं।

प्र.986–भावी नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर–भविष्य में होने वाले कार्य को वर्तमान में कहना उसे भावी नैगमनय कहते हैं। जैसे राजपुत्र को वर्तमान में राजा कहना, सेठपुत्र को सेठ कहना, डॉक्टरी पढने वाले विद्यार्थी को वर्तमान में डॉक्टर कहना। अभी वर्तमान में राजकुमार राजा नहीं है, सेठपुत्र सेठ नहीं है, विद्यार्थी डॉक्टर नहीं है फिर भी ये आगे होंगे इसलिए वर्तमान में उसी प्रकार कहना।

प्र.987–भूत नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर–जो पहले था अभी वर्तमान में नहीं है फिर भी पहले के नाम या कार्य से व्यवहार करने को भूत नैगमनय कहते हैं। जैसे पुलिस में सर्विस करने वाले सज्जन को रिटायर्ड होने के बाद भी पुलिस कहना। वर्तमान में पुलिस नहीं है लेकिन पहले था।

प्र.988–वर्तमान नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर–वर्तमान में जो जैसा है, जिस रूप में वर्त रहा है उसे उसी रूप में कहने को वर्तमान नैगमनय कहते हैं। जैसे पूजन करते समय पुजारी, पढ़ाते समय शिक्षक कहना।

प्र.989–आप कहते हैं कि भगवान वीतरागी हैं तो फिर उन्होंने बिना क्रोध के कर्म शत्रुओं को कैसे नष्ट किया, यदि नष्ट किया है तो वीतराग कैसे?

उत्तर–अनादिकालीन नाना प्रकार के भूखप्यास को आदि लेकर रागद्वेष मोह पर्यंत 18 विकारी भावों को अपने निजात्म ध्यान के द्वारा अनंतकाल के लिए नष्ट कर दिये हैं, अलग कर दिये हैं उन्हें वीतराग कहते हैं तथा वीतरागता से सहित को वीतरागी कहते हैं। यहाँ पर नष्ट, नाश का अर्थ मारना, विनाश करना नहीं है किंतु आत्मा से अलग करना, पृथक् करना यह अर्थ है क्योंकि दूसरों को नष्ट करने के लिए शस्त्र की, क्रोध की आवश्यकता होती है किंतु अपने आंतरिक विकारों को अलग करने के लिए ध्यान की, क्षमादि धर्मों की आवश्यकता होती है। लोक में दूसरों को सद्व्यवहार से भी जीत सकते हैं जैसे राम ने वनवासावस्था में अपने व्यवहार से अनेक दिग्गज राजाओं को जीत लिया था ऐसे आज भी उदाहरण देखे जाते हैं। यदि कहो दूसरों को जीतने के लिए शस्त्र और क्रोध की ही आवश्यकता है तो हिटलर को तथा आतंकवादियों को अपराधी क्यों कहा जाये? लोक में क्रोध करने वालों को हत्यारा कहते हैं तो यदि महापुरुष भी कर्मशत्रुओं को जीतने के लिए क्रोध करें तो इन्हें धर्मात्मा महापुरुष कैसे कहें? अथवा विकारों को जीतने के लिए निर्विकारपना ही प्रबल शस्त्र है।

प्र.990–अनंत गुणों में से मतिज्ञानादि पाँच भेद किस गुण के हैं?

उत्तर–ज्ञान गुण की पर्यायों के मतिज्ञानादि ये पाँच भेद हैं ज्ञानगुण के नहीं क्योंकि ज्ञान गुण पारिणामिक भाव है, निर्निमित्तक है, अनादिनिधन, ध्रुव स्वभाव वाला है, गुणों में कर्म का उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम नहीं होता है किन्तु पर्यायों में होता है। ये मतिज्ञानादि नैमित्तिक भाव हैं, अनादिअनंत अभव्यजीव की अपेक्षा, अनादिसांत अनादि मिथ्यादृष्टि भव्यजीव की अपेक्षा, सादिसांत सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा, सादिअनंत केवली की अपेक्षा से हैं, परिवर्तनशील हैं, मतिज्ञानादि चार क्षायोपशमिक भाव और केवलज्ञान क्षायिकभाव हैं। आदि के चार ज्ञान प्रतिपाति हैं तो केवलज्ञान अप्रतिपाती है।

प्र.991—आजकल जिनवाणी और गुरुवाणी कहकर आगम का विभाग किया जा रहा है सो यह ठीक है या नहीं?

उत्तर—नहीं, यह विभाग करना मोक्षमार्ग का, देव शास्त्र गुरु का विघातक है। आजकल नाना गुरु हैं इनका नाना प्रकार का उपदेश, चर्या और चर्चा है तब किस गुरु को प्रमाण माना जाय या अप्रमाण? किस गुरु की चर्या, चर्चा सही है या गलत इसका निर्णय कैसे हो? आगम की परिभाषा में सर्वप्रथम आचार्य श्री कुंदकुंद ने नियमसार में आगम की परिभाषा इस प्रकार बतलाई हैः—

तस्स मुहुग्गदवयणं पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था।।8।।

अर्थः— उस परमात्मा के मुख से निकला हुआ, पूर्वापर दोष से विरहित, शुद्ध वचनों को आगम कहा है और उन वचनों का वाच्यार्थ ही तत्वार्थ है।

आ. श्री समन्तभद्रजी ने **'आप्तोपज्ञ'** विशेषण दिया है तब आप गुरुवाणी में कौन सा विशेषण लगायेंगे? वह गुरुवाणी आगम की कोटी में आयेगी या नहीं। अतः गुरु को पत्रवाहक के समान होना चाहिए, पत्र कैसा है कैसा नहीं यह लिखनेवाले का गुणदोष है पत्रवाहक का नहीं?

'पुव्वं जिणेहि भणिदं जहट्ठिदं गणहरेहि वित्थरिदं।
पुव्वाइरियक्कमजं तं बोल्लदि जो हु सद्दिट्ठि।।2।।' रयणसार

अर्थः— जिनेन्द्र ने केवलज्ञान के द्वारा समस्त ज्ञेय पदार्थों को जैसा जिस रूप में जाना है वैसा ही कहा है और वैसा ही गणधरों ने विस्तार किया है तथा उसी प्रकार पूर्वाचार्यों ने कहा है इसी क्रमानुसार जो बोलता है वह सम्यग्दृष्टि है अन्यथा बोलनेवाला मिथ्यादृष्टि है। अतः जिनवाणी और गुरुवाणी कहकर शास्त्रों का विभाग करना अयोग्य है क्योंकि केवली भगवान सत्य महाव्रती और गुरुजन सत्य महाव्रती होते हैं। जिस प्रकार वेदान्तियों के मुख्यतया छह भेद हैं वे परस्पर में एक दूसरे का खण्ड़न करके वेद का ही खण्डन कर डालते हैं उसी प्रकार चौबीस तीर्थंकरों के, महावीर के भक्त दिगंबर श्वेतांबर आदि संप्रदायों में बंटकर विभाजित होकर महावीर का ही बटवारा कर लेते हैं। दिगम्बरों में भी तेरापंथ, बीसपंथ, कांजीपंथ का विभाग हो गया है अब बताओ कि चौबीस तीर्थंकर या महावीर किस पंथ के थे और किस पंथ का, आम्नाय का उपदेश दिया है? ये तीनों ही वेदांतियों की तरह या मुसलमानों में सियासुन्नी की तरह परस्पर में एक दूसरे को अपमानित कर खंडन कर देव शास्त्र गुरु को ही खंडित कर डालते हैं क्योंकि जब शास्त्र गलत है, मिथ्या है तो शास्त्रों को लिखने वाला, उपदेश करनेवाला और तदनुकूल आचरण करनेवाला भी मिथ्या कहलायेगा, अनायतन कहलाया जो मोक्षमार्ग में पत्थर की नाव के समान, अर्गला के समान है। इस शताब्दी में अनेक आचार विचारों के धारक गुरु हैं नाना चर्या और चर्चाओं से युक्त हैं इनके अनेक अनेक शिष्य गण हैं अब बताओ कौन शिष्य अपने गुरु को और गुरु के उपदेश को गलत कहेगा? कदाचित् किसी शिष्य ने साहस कर कह भी दिया तो सारे संघस्थ और अनेक गृहस्थगण तथा गुरु भी उस कहने वाले को अनाज्ञाकारी, मिथ्यादृष्टि, गुरुद्रोही आदि शब्दों से अपमानित करने में, तिरस्कार करने में नहीं चूकेंगे अतः समस्त गुरुओं को चाहिये कि वे आगम परंपरा को बिगाड़ने वाली, बदनाम करनेवाली, मनमानी चर्याचर्चा न करें। यदि मन में पाप है तो केवल अपने को खायेगा, नष्ट करेगा तथा वह पाप वचन और काय में आ गया तो समस्त धर्मायतनों को, समाज को निंदा का पात्र बना देगा और पतन की ओर ले जायेगा अतः आगम के अनुसार ही पत्रवाहक के समान प्रतिपादन करना चाहिये अपनी तरफ से कुछ नहीं, जिससे जिनवाणी और गुरुवाणी ऐसा विभाग न बने अन्यथा मोक्षमार्ग नष्ट होगा।

प्र.992—आप हाथ की चक्की का आटा क्यों लेते हो, क्या लाभ है?

उत्तर—प्रतिज्ञा निभाने के लिये, अहिंसा धर्म पालने के लिये, मांस भक्षणादि दोषों से बचने के लिये, अशुद्धि से बचने के लिये, स्वास्थ्य अच्छा रखने के लिये हाथ चक्की का आटा लेते हैं। यदि कहो कि पहले बिजली की चक्की नहीं थी इसलिये हाथ की चक्की का आटा लेते थे अब इलेट्रीक की चक्की आ गई है तो इसका लेने में कोई दोष नहीं है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि हाथ की चक्की अहिंसा की सूचक, स्वयं के पुरुषार्थ की सूचक, सद्भावना की सूचक धर्म के प्रति लगाव झुकाव की सूचक है, समय का सदोपयोग होता है, हाथ से पीसने पर हथेलियों की नसों में दबाव पड़ता है जिससे एक्युप्रेशर हो जाता है, कमर आदि के हिलने से, पसीना के निकलने से अनेक

बीमारियां दूर हो जाती है, शरीर में हल्कापन आ जाता है, पाचन शक्ति बढ़ जाती है, रक्त की शुद्धि होती है, भूख अच्छी लगती है, स्फूर्ति और ताकत आती है। गेहूँ आदि पीसते समय किसी मंत्र का जाप करते हुए, स्तोत्र पाठ करते हुए, धर्म चर्चा करते हुए पीसने से आटादि मंत्रित हो जाने के कारण खाने वाले का मन भी पवित्र हो जाता है, मंत्रित भोजन से वशीकरणपने को प्राप्त हो जाता है। रुपयों की बचत होती है, सड़ाघुना न पीसने से अहिंसा धर्म का पालन होता है। हाथ से पीसने पर बचे हुए रुपयों को सत् कार्यों में, परोपकार में खर्च कर सकते हैं। बाजार से कंपनी का आटादि मंगाने पर तन मन धन धर्म चारों नष्ट होते हैं। बाजार आदि से गेहूँ आदि धान्यों को मंगाकर घर में छाना बीना, धोया सुखाया और आम जनता की चक्की में पिसवाया तब दूसरों के सड़े घुने गेहूँ आदि आटे के साथ संमिश्रण होने से अपना किया हुआ सारा परिश्रम व्यर्थ हुआ क्योंकि आम जनता की सामग्री घुनी हुई, कीटनाशक दवाओं से मिली हुई, बिना छानी, बिना धोयी शोधी आदि है तब उनकी सामग्री अपने में और अपनी उनके में मिल जाने से माँस आदि खाने का दोष आता है। बाहर पीसनेवाले, पिसवानेवाले, सूतकपातक वाले, अनाचारी, अत्याचारी, दुराचारी, धूम्रपान करनेवाले और मलमूत्रादि क्षेपण कर बिना शुद्धि वाले भी हो सकते हैं। बाहर की चक्की की रोजाना सफाई न होने से प्रमादियों के सारे के सारे दोष आ जाते हैं। अभक्ष्य भक्षण का, मिथ्यात्व का, अजैनपने का, अनाज्ञाकारी आदि का प्रसंग आता है। मशीन चक्की में साँपादि पिस जाने पर विषाक्त भोजन करने से, खाने से बीमार पड़ जाते हैं, मर जाते हैं जबकि हाथ की चक्की में ये दोष नहीं आते क्योंकि पीसने के पहले और बाद में खोलकर सफाई कर लेते हैं इस प्रकार विधी और निषेध पूर्वक विचार कर जो निर्दोष हो उसे ग्रहण कर लेना चाहिये। हाथचक्की में स्वाधीनता होने से इच्छानुसार पीस लो किंतु मशीन चक्की में पराधीनता होने से न पिसेगा, रखकर के आओ, लेने को जाओ या वहीं पर ठहर कर लेकर आओ इससे आनेजाने का पैसा भी खर्च होता है, समय बरबाद होता है और आटा आदि भी कम हो जाता है।

प्र.993–समयानुसार आपको भी मशीन चक्की का आटा लेना चाहिए क्योंकि दूसरों को परेशान करना धर्म नहीं है किंतु पाप है ऐसा स्वीकार क्यों नहीं करते हो?

उत्तर–इस पंचमकाल में पुण्य भाव, पुण्य कार्य घट गया किंतु पाप कार्य, पाप परिणाम, पापाभिप्राय बढ़ गया है सो ठीक है क्योंकि अवसर्पिणी काल में नागिन की तरह मनुष्यों की बुद्धि दिनचर्या नीचे की ओर जा रही है। क्या अग्नि ठंडी हो गई? क्या अग्नि की ज्योत नीचे की ओर बहने लगी? क्या नदियां उल्टी बहने लगीं? सूर्य चंद्र के उदय अस्त में क्या बदलाव आ गया है? क्या बिना आधार के वृक्ष की जड़ें ऊपर और फल नीचे लगने लगे हैं ? जैसा पहले था वैसा आज भी है प्रकृति जैसी थी वैसी ही है। प्राणियों ने प्रकृति को बदलने की जहाँ जैसी कोशिश की वहाँ कितनी आपत्तियों का सामना करना पड़ा है, जगह जगह तूफान, भूकंप, ज्वालामुखी फटना आदि उपद्रव हो रहे हैं और पहले हो चुके हैं इसकी जानकारी इतिहास से हो जाती है तो सदाचार सद्विचारों के बदलने से कितने कष्टों का सामना करना पड़ता है यह सब सामने दिख रहा है? आज आटे के संबंध में प्रश्न है तो कल नग्नता, पैदल विहार और केशलोंच के संबंध में प्रश्न उठा सकते हैं कि उस समय इस प्रकार के वस्त्र नहीं थे और थे तो चमड़े के और ऊन के थे ये हिंसार्थक होने से इनका त्याग कर कराकर नग्न रहने को कहा था अब तो अहिंसक वस्त्र हैं, वस्त्र पहनना सामाजिकता है, नग्नता देखकर अनेकों को लज्जा आती है अतः नग्न नहीं रहना चाहिये। ऊंटगाड़ी, घोड़ागाड़ी आदि पर गमनागमन करने से पशुओं को कष्ट होता था अतः पशुओं को कष्ट न हो इसलिये पैदल विहार करने को कहा था किंतु आजकल पैदल विहार करने से समय ज्यादा लगता है, धन भी बहुत खर्च होता है, जगह जगह स्थान तलाश करने में परेशानियां होती है, गर्मी सर्दी की बाधा होती है पैर में छाले पड़ जाते हैं, कट जाते हैं, खून बहने लगता है अतः पैदल विहार नहीं करना चाहिये। केशलोंच करने में कष्ट होता है, रक्त बहने लगता है, बालतोड़, खुजली, फोड़ेफुंसी हो जाते हैं, कीड़े पड़ने से कीटनाशक दवाईयों का प्रयोग करने से कीड़े मर जाते हैं जिससे अहिंसा व्रत का पालन नहीं होता है अतः केशलोंच नहीं करना चाहिये आदि प्रश्नचिह्न लगा सकते हैं मुनियों को क्या क्या करना चाहिये यह भी बताओ ? इस कारण जिसका जहाँ जैसा नियम का पालन होता है, हो रहा है उसीमें ऊपर उठाने में सहायक होना चाहिये गिराने का प्रयास नहीं करना चाहिये। अतः हाथ चक्की के आटा के संबंध में प्रश्न चिह्न नहीं लगाना चाहिये अथवा आप बाजार की मशीन चक्की का आटा मत लो किंतु मशीन चक्की घर में लगा ली है तो घर की चक्की का ले सकते हो? नहीं,

क्योंकि जो दोष बाजार की चक्की में आते हैं वे ही दोष घर की चक्की में आते हैं कारण आजकल अव्रती गृहस्थ या प्रतिमाधारी भी मर्यादानुसार चक्की को पूरा खोलकर सफाई नहीं करते अतः पुराने दही के जामन के समान पहले के आटे का संबंध, लगार न टूटने से संख्यात, असंख्यात और अनंतजीव जन्म मरण करने लगते हैं। इसलिए मशीन चक्की का आटा नहीं लेते हैं। **'न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी'** अथवा दीक्षा के समय ली हुई प्रतिज्ञा का पालन करते हैं।

प्र.994–समयानुसार प्रत्येक वस्तु का उपयोग करो अन्यथा मूर्खता मानी जायेगी?

उत्तर–समयानुसार जिस वस्तु के उपयोग का जो स्थान और क्षेत्र है उसका उसीमें प्रयोग करना ही बुद्धिमानी है अन्यथा आपकी ही मूर्खता मानी जायेगी आप ही वस्तु का सदोपयोग करना नहीं जानते यदि जानते होते तो ऐसा कुतर्क नहीं उठाते, न पात्रापात्र की समीक्षा करना जानते हैं क्योंकि सभी वस्तुओं का सभीकाल और सभी क्षेत्रों में उपयोग करना दुरोपयोग है। जैसे पगड़ी को पैरों में धारण करना तथा जूतेमोजों को सिर में धारण करना, खाने की वस्तु को लगाना और लगाने की वस्तु को खाना, गर्मी के वस्त्रों को सर्दी में और सर्दी के वस्त्रों को गर्मी में प्रयोग करना वस्तु का दुरोपयोग करना है अतः जिन वस्तुओं के उपयोग से तन मन धन धर्म की रक्षा हो, लोक में प्रशंसा हो, आदरसम्मान प्राप्त हो, बुद्धिमानी मानी जाये वह सदोपयोग है अन्यथा होने से दुरोपयोग है, मूर्खता है।

प्र.995–समय के अनुसार आप लाईट का, पंखे का, टॉर्च आदि का प्रयोग करते हो तो मशीन चक्की का आटा लेने में आपत्ति क्यों? एक जगह प्रयोग करना और दूसरी जगह नहीं यह तो अन्याय है ऐसा क्यों?

उत्तर–संसार में पाँचों इंद्रियों की विषय सामग्री यथायोग्य स्वतंत्र रूप से या पराधीन होकर सेवन की जाती है तो क्या सभी सामग्री खाने के या शृंगार अलंकार के काम में लाई जाती हैं? नहीं, खाने की वस्तुयें अलग हैं और शृंगार अलंकार की वस्तुयें अलग हैं यदि इनको बदलकर उपयोग में लाया जाय तो कौन विवेकवान कहेगा? क्या सर्वत्र हंसी का पात्र नहीं बनना पड़ेगा? देखो जब विदूषक या ना समझ बालक प्रजा के सामने अनुपयोगी बिना प्रसंग के कार्य करता है तो सर्वत्र हंसी का पात्र बनता है इसी तरह आप शंकाकार भी शंकानुसार यदि प्रयोग करेंगे तो आपको भी सर्वत्र हंसी का पात्र बनना पड़ेगा अतः जिस वस्तु का उपयोग जिस रूप में करना चाहिये उसका उसी रूप में करना ही सम्यग्ज्ञानी का लक्षण है अन्यथा मिथ्याज्ञानी का।

प्र.996–भरतचक्रवर्ती ने व्रतीश्रावकों का यज्ञोपवीत संस्कार किया था क्या यह ठीक है?

उत्तर–भरत कौन थे? प्रथम चक्रवर्ती और चरमशरीरी थे। क्या वे सम्यग्दृष्टि थे या मिथ्यादृष्टि? क्षायिक सम्यग्दृष्टि और अवधिज्ञानी थे क्योंकि सर्वार्थसिद्धि विमान से आये थे। व्रती थे या अव्रती? देशव्रती, अणुव्रती पंचम गुणस्थानवर्ती थे। तो उनकी चर्यायें, आगमानुकूल क्रियायें अमान्य, अप्रमाण, गलत क्यों? जब वर्तमान में अव्रती, अन्याय अभक्ष्य का सेवन करने वाले गृहस्थों की, पंडितों की वार्ताओं को प्रमाण मानते हो इनमें तो प्रश्नचिह्न लगाते नहीं फिर आगम सिद्ध महापुरुष के वचनों में प्रश्नचिह्न लगाते हो क्या यह अन्याय नहीं है? जो अपने मन के अनुकूल नहीं है उसे अमान्य कहते हो? नहीं, ऐसी बात नहीं है। भरत ने संस्कार किया था इसलिये अमान्य है क्या? तो भरतजी का और आदिनाथ का तथा आदिनाथ के अन्य पुत्रों का संस्कार किसने किया था वह भी अमान्य होगा क्या? ये भी महापुरुष क्या मिथ्या वचन बोल सकते हैं? मिथ्या क्रियाओं का पालन कर सकते हैं? करा सकते हैं? यदि इनके द्वारा प्रतिपादन की गईं, कराई गईं क्रियायें मिथ्या हैं तो इनके अवधिज्ञान को भी कुअवधिज्ञान मानने का प्रसंग आयेगा जबकि क्षायिक सम्यग्दृष्टियों के मिथ्याज्ञान नहीं पाया जाता क्योंकि मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय ही मिथ्याज्ञान के हेतु हैं और क्षायिक सम्यग्दृष्टियों के इनका समूल क्षय हो चुका है किंतु यहाँ पर संयम सहित मोक्षमार्ग चलाने, बताने के लिये अपने अवधिज्ञान के द्वारा विदेहक्षेत्र में क्या व्यवस्था है, दिनचर्या है वह जानकर यहाँ प्रजा को समझाई और यथानुरूप मार्ग में चलाया अतः यह यज्ञोपवीत क्रिया, संस्कार प्रतिपादन करनेवाला, आज्ञा का पालन करने वाला मिथ्यादृष्टि नहीं है यदि ये संस्कार मिथ्या होते तो आदिनाथ का, भरत का संस्कार नहीं किया जाता न विदेहक्षेत्र में क्रिया प्रचलित होती। भोगभूमियों में और देवों में यह चिह्न स्वभाव से होता है अतः जिस प्रकार मुनियों का बाह्य लक्षण पीछी कमण्डलु है उसी प्रकार श्रावकों का बाह्य लक्षण यज्ञोपवीत है जो अंतरंग के रत्नत्रय का सूचक है अन्यथा लक्षण के बिना लक्ष्य कैसा?

प्र.997–शास्त्रों में पढ़ा है कि राजा भरत ने गृहत्यागियों का, प्रतिमा धारियों का यज्ञोपवीत संस्कार किया था सो यह गलत है या सही?

उत्तर–राजा भरत ने गृहत्यागी प्रतिमाधारियों के अपने हाथों से संस्कार किये ऐसा अर्थ न कर राजा भरत की साक्षी संस्कार हुये ऐसा अर्थ समझना। क्योंकि **अरिहंतसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहुसक्खियं, अप्पसक्खियं, परसक्खियं, देवतासक्खियं** :–संकल्प पंचपरमेष्ठी, देवी देवताओं, श्रावक श्राविकाओं की, अपने से बड़ों की साक्षी और स्वयं की साक्षी पूर्वक किया जाता है। जैसे समवशरण की बारह सभाओं में जिनेन्द्र की साक्षी जो श्रावक श्राविकायें दीक्षा लेते हैं या पदानुकूल प्रतिज्ञा लेते हैं तब ऐसा नहीं है कि भगवान तीर्थंकर केवली आकर संस्कार करते हों फिर भी शिष्यगण भगवान को अपना गुरु मानते हैं। इसी तरह उस समय राजा भरत के सामने, जिनप्रतिमाओं के सामने गृहस्थाचार्य श्रावकों ने यज्ञोपवीत संस्कार स्वीकार किये थे न की राजा भरत ने किये थे क्योंकि गृहस्थों के योग्य क्रियायें, संस्कार गृहस्थाचार्य करते, कराते और करवाते हैं। संयम के साथ मोक्षमार्गानुरूप क्रियाओं का संस्कार, पंचाचार का पालन करने वाले महाव्रती दिगम्बराचार्य करते हैं यदि ये अपनी जिम्मेदारी न निभायें तो इन्हें आचार्य कौन कहेगा? इन क्रियाओं को अदलबदलकर एक दूसरे की करायें तो अनधिकार चेष्टा है, अक्षम्य अपराध है।

प्र.998–भोगीगृहस्थ व्रतियों का और प्रतिष्ठाओं में जिनेन्द्र प्रतिमाओं का मंत्र संस्कारादि कर सकता है क्या?

उत्तर–नहीं कर सकता है। यदि कर सकता है तो भोगी गृहस्थ ही प्रतिमाधारियों का और जिनेन्द्र प्रतिमा का दीक्षादायक, संस्कारकारक गुरु कहलाया फिर दिगम्बराचार्य, निर्ग्रन्थ गुरु की क्या आवश्यकता है? इसी पाप का फल है कि कुछ आर्यिकायें और वस्त्रधारी पण्डितजन, क्षुल्लक, ऐल्लक, ब्रह्मचारीगण नग्न होकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में दीक्षा के संस्कार, सूरिमंत्र संस्कार करने लगे हैं। यदि ये भट्टारकों के द्वारा, कांजीपंथी पंडितों के द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाओं को अपूज्य कहते हैं तो इनके द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाएं अपूज्य क्यों नहीं? ये वस्त्रधारी जिनेन्द्र प्रतिमाओं को करपात्र बनाकर आहार कराते हैं, समवशरण की बारह सभाओं में तीर्थंकर बनकर दिव्य उपदेश देते हैं और गणधर बनकर दिव्यध्वनि को झेलते हैं तो क्या यह जिनमुद्रा का अवर्णवाद नहीं हैं या मूर्तिपूजक श्वेतांबरों का प्रचार नहीं है? यदि इनको पुनः वस्त्र धारण करना है तो नग्न क्यों होते हैं? जिनप्रतिमा के सामने नग्नता का संकल्प क्यों करते हैं? जिनेन्द्र के सामने नग्नता का संकल्प कर पुनः वस्त्र धारण करना भ्रष्टता नहीं है क्या? ब्रह्मगुलालमुनि की कथा से इनको शिक्षा लेना चाहिए। कहा भी है :–

सूत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छाइट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडेवि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचेलस्स।।7।। सू०पा० आ०कुंदकुंद।

अर्थ–जो मनुष्य सूत्र के अर्थ और पद से विनष्ट है वह भ्रष्ट है उसे निश्चय से मिथ्यादृष्टि मानना चाहिये। इस कारण वस्त्रधारी, असंयमी, अव्रती, गृहस्थ को खेल में भी पाणिपात्र में आहार नहीं करना चाहिये, न अपना करपात्र बनाकर दूसरों को कराना चाहिये। दूसरों को क्यों नहीं करा सकते हैं? यदि ऐसा प्रश्न करो तो जब स्वयं ने तीन मकारों का, अनेक व्यसनों का त्याग किया है तो यह भी खिला पिला सकते हो तो इसमें क्या आपत्ति है? इस कारण इन भ्रष्टों के द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाओं में क्या अतिशय आ सकता है? निर्दोषता आ सकती है? इसी तरह आजकल मुनि दीक्षा आचार्य भगवन देते हैं तथा आचार्य दीक्षा, उपध्याय दीक्षा अधिकतर चारित्रहीन सेठ, पंडित वर्ग देते हैं तब सोचो कि मुनियों के दीक्षा गुरु आचार्य परमेष्ठी हैं और आचार्य, उपाध्याय के गुरु वस्त्रधारी, चारित्रहीन, अन्याय, अभक्ष्य भोगी समाज है जो रात्रि भोजन करते हैं, अनछना पानी पीते हैं, होटलों में खाते हैं, कंदमूलों का भक्षण करते हैं, तीन मकारों से मिश्रित, चर्बी से युक्त, मलमूत्र से निर्मित औषधियों का सेवन करते हैं, तत्संबंधी सामग्री का शृंगार करते हैं। जब इनके द्वारा प्रवर्तित कार्य सही है तो भरत के द्वारा या आदिनाथ के द्वारा प्रचलित सामाजिक व्यवस्था, षट्कर्म व्यवस्था, वर्णव्यवस्था गलत क्यों? अमान्य क्यों? गर्भाधान से लेकर निर्वाण पर्यंत 108 क्रियायें सम्यक् हैं या मिथ्या? इन क्रियायों का उपदेश तीर्थंकरों ने क्रियाविशाल पूर्व में किया है फिर भी ये क्रियायें प्रमाण हैं या अप्रमाण?

प्र.999–पहले वस्त्रधारी भट्टारकजी प्रतिष्ठायें कराते थे तो उन प्रतिमाओं को पूज्य कैसे माना जाये, यदि मानते हो तो आज की भी प्रतिष्ठित प्रतिमायें पूज्य मान लो?

उत्तर–पहले भट्टारक स्वयं निर्ग्रंथ, वस्त्रादि परिग्रह के त्यागी होते थे अतः कोई दोष नहीं हैं फिर कालांतर में जब निर्ग्रंथ मुनियों का बाह्य संकट के कारण विहार बंद हो गया तो धर्म और समाज को चलाना कठिन होने से उस समय कुछ मुनियों ने वस्त्रादि धारण कर ऐसे अनिष्ट समय में श्री विष्णुकुमारजी मुनि की तरह धर्म प्रभावना के निमित्त अनधिकार कार्य कर लिये फिर भी आचार्य श्री समंतभद्र की तरह क्षम्य अपराध होने से, उनमें सत् श्रद्धान, सदाचार, सद्विचार होने से, मंत्राराधना में बदलाव न होने से मूर्तियों में अतिशय बना रहा अतः पूज्य हैं परंतु आजकल वस्त्रधारी सदाचार, सद्विचारों से भ्रष्ट होने के कारण इनके द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमायें अपूज्य हैं।

प्र.1000–भट्टारक किसे कहते हैं और भट्टारक पद का अर्थ क्या है?

उत्तर–अनादिकालीन कर्मों को क्षय करने वाले तीर्थंकरों को, दिगम्बराचार्यों को भट्टारक कहते हैं परन्तु कुछ समय पहले धर्म संकट के कारण और मन में लोभकषाय, वेद कषाय, भयकषाय के तीव्रोदय से पुरुषार्थ हीन होकर विकार को छिपाने के लिये वस्त्र धारण कर लिये अतः आजकल विकृत रूप को भट्टारक कहते हैं। भट्टः–समर्थ, नाश, क्षय। अरः–आवरण कर्म रूपी शत्रु। कः–करने वाले स्वामी वाचक। भट्ट + अर + क = भट्टारक। भट्ट में से टकार का अ तथा अर का अ इन दोनों में अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्ण दीर्घ संधि करने पर भट्टार बना फिर स्वामी वाचक क जोड़ने से भट्टारक बना जिसका अर्थ होता है वर्तमान नय से आवरण कर्मों को या घातियाकर्मों को क्षय करनेवाले अरिहंत और भावी नैगमनय से कर्मशत्रुओं को क्षय करने के लिए मार्ग में लगे हुए आचार्य उपाध्याय साधु। किंतु वर्तमान में श्रावकगण व्यवहार धर्म की प्रभावना करनेवाले तथा गद्दी के मालिक, लुंगीधारी भगवा वस्त्र सहित पीछी कमण्डलु वाले को भट्टारक कहते हैं। भट्टारक पद का यह यथार्थ अर्थ है परंतु जो भट्टारक का अर्थ भ्रष्ट होना ऐसा कहते हैं। उनकी यह नितांत भूल है, अक्षम्य अपराध है।

प्र.1001–नग्न दिगम्बर दीक्षा लेने के बाद पुनः वस्त्रधारण किया तो क्या यह भ्रष्टपना नहीं है यदि है तो अक्षम्य अपराध कैसे?

उत्तर–यदि अंतरंग में अनंतानुबंधी क्रोधादि चार, अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोधादि चार, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध आदि चार इन 12 कषायों का अभाव कर मुनि बनकर फिर बाद में कषायों की प्राप्ति के साथ साथ वस्त्र आदि ग्रहण किये होते तो भ्रष्ट होना कह सकते थे परंतु कषायों के त्याग के बिना केवल बाह्य में वस्त्र बदलना है, परिवर्तन करना है, नाना प्रकार के रंगीन वस्त्रों को छोड़कर भगुवे वस्त्र धारण किया तब भ्रष्टपना कैसे? यदि संयम शिखर पर चढ़कर पुनः वापिस असंयम भूमि पर गिरते तो भ्रष्ट होना कह सकते थे अथवा केवल वस्त्र परिवर्तन को आप भ्रष्ट होना कहते हैं तो जहाँ पर नग्न दिगम्बर मुनियों के अभाव में पंडित या कोई त्यागी व्रती ब्रह्मचारी आदि पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में जिनेंद्र प्रतिमाओं के सामने, अरिहंत की साक्षी नग्न होकर सूरिमंत्र देकर प्रतिष्ठा कर पुनः वापिस वस्त्र धारण करते हैं तब इन्हें भ्रष्ट होना क्यों न कहा जाये? कदाचित् मान भी लिया जाये कि भट्टारक दीक्षा देते समय सर्वप्रथम नग्न करने के बाद वस्त्र धारण कराते हैं तब प्रतिष्ठाचार्य अनेक बार वस्त्रों को छोड़कर धारण करते हैं। यदि एक बार नग्न होने के बाद वस्त्र धारण करने वालों को भ्रष्ट कहते हो तो जो अनेक बार वस्त्रों को छोड़कर धारण कर चुके हैं उन्हें महाभ्रष्ट कहो तो क्या आपत्ति है?

प्र.1002–प्रतिमाओं में सूरिमंत्र आचार्य देते हैं और आचार्य के बिना मुनि और उपाध्यायों के द्वारा प्रतिष्ठायें संपन्न कराई जाती हैं अतः इन प्रतिमाओं को भी अपूज्य मानो?

उत्तर–सर्वप्रथम यह विचार करना है कि आचार्य किसे कहते हैं? जो पंचाचार का स्वयं पालन करते हैं और शिष्यों से पालन करवाते हैं। शिष्यों का आहारादि, शिक्षा, दीक्षा, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित आदि के द्वारा पालन पोषण करते हुए जिनधर्म की प्रभावना करते हैं। अब जो गुरु की समाधि के बाद या सहर्ष कुछ शिष्यों को देकर, सौंपकर अधिकार देकर अलग कर दिये हैं या अलग हो गये हैं। अपने आप ही आर्षमार्गानुसार गुणों का पालन करते हैं यदि इनके द्वारा प्रतिमाओं में सूरिमंत्र दिलाया जाय तो क्या आपत्ति है? आचार्य श्रीकुन्दकुन्द ने मूलाचार और बारसणुवेक्खा में कहा है –

अरुहासिद्धाईरिया, उवज्झाया साहुपंचपरमेट्ठी।
ते वे हु चिट्ठदि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं।।

ये पाँचों ही परमेष्ठी अपनी आत्मा में विराजमान हैं इसलिए आत्मा ही शरण है इस प्रकार साधु की आत्मा अनेक गुण संपन्न होने से स्वयं आचार्य परमेष्ठी हो जाती है अतः इनसे प्रतिष्ठित प्रतिमायें पूज्य हैं, अपूज्य नहीं किंतु अन्याय, अभक्ष्य के सेवी, भोगी, पूर्ण असंयमी, वस्त्रधारी तथा संपूर्ण आरंभ परिग्रह से युक्त असंयमीजनों के द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमायें अपूज्य हैं।

प्र.1003–आजकल गणिनी आर्यिका पद भी गृहस्थ देने लगे हैं तो सही है क्या?

उत्तर–गलत है, सही नहीं है। आर्यिका दीक्षा देने से दिगम्बराचार्य दीक्षागुरु कहलाये और गणिनी पद का संस्कार मंत्रोच्चारण गृहस्थों के द्वारा होने से गणिनी पद के दीक्षागुरु गृहस्थ कहलाये क्योंकि गणिनी पद का संस्कार, मंत्रोच्चारण गृहस्थों ने किया है। यदि दीक्षागुरु नहीं माना तो कृतघ्नीपने का प्रसंग आया, नाम छिपाने से ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म का भी आश्रव होता है यही महान दोष है। जिस प्रकार समाज के द्वारा दिया गया पद, उपाधी से पात्र में अतिशय, विशेषता, गंभीरता नहीं आती किंतु उद्दण्डता आती है, अहंकार ममकार पैदा हो जाता है जो अनेकों में प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है अतः गणिनी पदवी, आचार्य पदवी, उपाध्याय पदवी, दीक्षा संस्कार, करपात्र बनाकर मूर्ति को आहार कराना, सूरिमंत्र आदि वस्त्रधारियों को न करना, न कराना चाहिये। यदि करते, कराते हैं तो अनधिकार चेष्टा अत्याचार, देव शास्त्र गुरु की आज्ञा का उल्लंघन होने से मतमतांतरों की उत्पत्ति होती है और इनका जीवन तथा मरण बुरी तरह से होता है।

प्र.1004–आजकल गृहस्थों के द्वारा प्रदत्त पदवीधरियों में उद्दण्डता आ रही है यह आपको कैसे मालूम हुआ?

उत्तर–स्वयं अनेकों से संपर्क हुआ है तथा अनेकों के मुँह से सुना भी है कि कोई बड़े त्यागियों का, साधुओं का, आर्यिकाओं का समागम होने पर बड़ों को आसनदान देना, नमस्कार करना आदि समाचारविधि से आदरसम्मान नहीं किया। उनसे पूछा गया कि आपने उनकी अगवानी, विनयादि क्यों नहीं की? उत्तर मिला कि हमारी भी तो वही पदवी है जो उनकी है वे अपने संघ के नायक हैं तो हम अपने संघ के तो फिर हम क्यों करें उनको करना चाहिए तो क्या यह न्याय है? यदि आपको हमारी बात पर विश्वास नहीं है तो आप स्वयं भ्रमण कर निरीक्षण कर लो विश्वास हो जायेगा।

प्र.1005–दान पूजा में आरम्भ परिग्रह होने से दान पूजा भी पाप कहलाया अतः पाप होने से क्या दान पूजा नहीं करनी चाहिये?

उत्तर–नहीं, आपका चिंतन गलत है। दान पूजा में आरम्भ परिग्रह नहीं होता है किन्तु दान पूजा की तैयारी में आरम्भ परिग्रह होता है। यदि दानपूजा में आरम्भ परिग्रह होता तो आचार्य भगवन्त पापाश्रव की मिथ्यात्व आदि पाप क्रियाओं में कहते किन्तु नहीं कहा। सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया में कहा है मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय को घात करने वाली कहा है तभी तो आचार्य श्री समंतभद्र स्वामीजी ने कहा है :–

पूज्यं जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य, सावद्यलेशो बहुपुण्य राशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीतशिवाऽम्बु राशौ।।58।।

अर्थ– हे वासुपूज्य जिनेन्द्र ! दाताओं को, पुजारियों को जो दानपूजा की तैयारी करने में किंचित् पापाश्रव होता है वह दानपूजा करने से उत्पन्न विशाल पुण्यराशि के सामने किंचित् पाप कुछ भी हानि नहीं कर सकता। जैसे समुद्र को छोटी विषकणिका जहरीला नहीं बना पाती क्योंकि समुद्र लहरों से उस विष कणिका को दूर फेंक देता है। वैसे ही दानपूजा से उत्पन्न पुण्य उस पाप को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

प्र.1006–औदयिक आदि पाँच भावों में से दानपूजा कौन सा भाव है और क्या फल है?

उत्तर–दानपूजा पारिणामिक भाव नहीं है क्योंकि पारिणामिक भाव द्रव्य, गुण, ध्रौव्य, अपरिणामी आदि स्वभाव वाला है, अनादि अनंत है और दानपूजा का भाव पर्याय स्वरूप है, उत्पाद व्यय आदि स्वभाव वाला है, सादिसांत है। औदयिक भाव भी नहीं मान सकते क्योंकि औदयिक भाव आश्रव बंध स्वरूप है, घातिया कर्मोदय की अपेक्षा पाप स्वरूप और अघातिया कर्मोदय की अपेक्षा पाप पुण्य स्वरूप है क्योंकि कर्मों की 148 प्रकृतियों में से किसी भी प्रकृति के उदय से नहीं होता है। यदि होता है तो उस प्रकृति का नाम बताना चाहिये तथा कुछ औदयिक भाव

संसार भ्रमण के कारण हैं और कुछ भाव संसार में रोकने में कारण तथा तीर्थंकर प्रकृति आदि औदयिकभाव होने पर भी मोक्ष के कारण हैं। दान पूजा को क्षायिकभाव भी नहीं मान सकते क्योंकि क्षायिकभाव क्षपकश्रेणी में होता है, क्षपकश्रेणी मुनियों के होती है जो अप्रतिपाती है, निश्चलध्यान होने से श्रेणी में दानपूजा का भाव नहीं होता है। क्षायिक सम्यक्त्व केवल विश्वास रूप है, निष्क्रिय है, निराश्रव है। दानपूजा का भाव औपशमिक भाव भी नहीं है क्योंकि औपशमिक चारित्र 11वें गुणस्थान में होता है, अंतर्मुहूर्त काल तक स्थिर अवस्था होती है। दान पूजा का भाव क्षायोपशमिक है क्योंकि दानान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर होता है, पुण्य स्वरूप है, अंतराय कर्म जीवविपाकी होने से आत्मा को ही फल प्राप्त होता है क्योंकि दान पूजा की क्रिया योगों के द्वारा बाह्य में संपन्न होने से, औदयिक भाव मानने का भ्रम होने से ही संसार का कारण मानकर कांजी पंथवाले दानपूजा से, क्रिया से विरक्त हो गये, त्यागी हो गये, इसी कारण इस संप्रदाय में कोई 1% ही पूजा करने वाला मिलेगा किन्तु परम्परागत जैन लोग अपना आवश्यक कर्तव्य मानकर, समझकर कर रहे हैं, लगे हुए हैं, संयम सहित संवर, निर्जरा और मोक्ष का साधन है, सम्यक्त्ववर्धिनी साम्परायिक आश्रव की क्रिया है, असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा के साथ साथ सातिशय पुण्य बन्ध का कारण है। मिथ्यात्वोदय सहित रत्नत्रयधर्म की प्राप्ति का साधन है, भूमिका स्वरुप है, करणलब्धि स्वरुप है, सातिशय पुण्य बन्ध का कारण है, करणलब्धि के बिना निरतिशय पुण्य बन्ध और इन्द्रिय सुख का कारण होकर निदान बन्ध के साथ परम्परा से नरकनिगोद का भी साधन बन जाता है अतः दानपूजा का भाव क्षयोपशमिकभाव है। यह निर्णय हुआ।

प्र.1007–क्षायोपशमिक भाव कितने प्रकार का है और क्या फल है?

उत्तर–सम्यक् और मिथ्या के भेद से दो प्रकार का है। रत्नत्रय के साथ में होने से सम्यक् और रत्नत्रय के बिना मिथ्या है। रत्नत्रय के साथ में होने से संवर, निर्जरा और मोक्ष फल को देनेवाला है तथा रत्नत्रय के बिना आश्रवबंध और संसार फल को देनेवाला है।

प्र.1008–चारित्रमोहोदय की अपेक्षा दानादि को औदयिकभाव मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध की अपेक्षा मोहनीय कर्म सम्यगेकांत से पापरूप ही है और पाप रूप ही होने से इसे मिथ्या एकांत मत समझ लेना क्योंकि ऊपर एकांत के साथ सम्यक् विशेषण लगा दिया है। यदि आपके कथनानुसार दानपूजा के भाव को औदयिक भाव मान भी लिया जाये तो फिर दानान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर कौन सा भाव होगा? मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय का दलन किस भाव से होगा? सम्यक्त्ववर्धिनी कौन सी क्रिया है? मोहोदय से परिणत क्रिया के द्वारा संवर और निर्जरा तत्त्व की प्राप्ति हो सकती है क्या? जिनेन्द्राज्ञा के विरुद्ध चर्या से, मिथ्याज्ञान से संसारमार्ग प्रशस्त और मोक्षमार्ग नष्ट होता है, दुर्मरण कर दुर्गतियों में नाना दुःखों को भोगता हुआ, दुःखी होता हुआ भ्रमण करता रहता है। यही आपत्ति है।

प्र.1009–एकत्ववितर्क शुक्लध्यान को अ० 9 41–42 सवीचार और अवीचार क्यों कहा?

उत्तर–9वें अध्याय के 41वें सूत्र में एकत्ववितर्क शुक्लध्यान को सूक्ष्म परिवर्तन या स्वस्थान परिवर्तन के सद्भाव की अपेक्षा सवीचार विधिरूप में कहा है और 42वें सूत्र में स्थूल परिवर्तन या परस्थान परिवर्तन के अभाव की अपेक्षा निषेधरूप में अवीचार कहा है अन्यथा सूत्र पौर्वापर्य विरोध युक्त हो जाता है।

प्र.1010–पुद्गलद्रव्य को 5वें अ० के 4थे सूत्र में अरूपी और 5वें सूत्र में रूपी क्यों कहा?

उत्तर–त० सू० के 5वें अध्याय के 4थे सूत्र में छद्मस्थ ज्ञानियों का विषय एक प्रदेशी शुद्ध परमाणु स्वरूप पुद्गल द्रव्य न होने से, इन्द्रिय गोचर न होने से अरूपी कहा है और 5वें सूत्र में स्कंध की अपेक्षा या रूप रस गंध स्पर्शवान् पुद्गल स्कंध को छद्मस्थ ज्ञानियों का विषय होने से, इन्द्रिय गोचर अथवा लक्षण की अपेक्षा रूपी कहा है अतः कोई विरोध नहीं है।

प्र.1011–सयोगकेवली अयोगकेवली के उत्तम क्षमादि कितने धर्म होते हैं?

उत्तर–क्योंकि चार घतिया कर्मों का क्षय कर सयोगकेवली हुए हैं इसलिये 9वें गुणस्थान में क्रमशः क्रोध, मान, माया कषायों का क्षय होने से उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव और उत्तम आर्जव ये तीन धर्म, दसवें गुणस्थान के अंत में लोभ कषाय का क्षय कर 12वें गुणस्थान के प्रारंभ में उत्तम शौचधर्म और 12वें गुणस्थान के अंत में ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने से उत्तम सत्य धर्म हो जाता है इसलिये सयोगकेवली और अयोगकेवली के पाँच धर्म होते हैं शेष पाँच धर्म अघातिया कर्मों के क्षय से सिद्धों के दस धर्म होते हैं।

प्र.1012–काल द्रव्य के बिना अलोकाकाश में परिणमन किस प्रकार से होता है?

उत्तर–आकाश द्रव्य अखण्ड़ होने से यहीं के काल द्रव्य से वहाँ अलोकाकाश में परिणमन होता है जैसे अखण्ड बांस के किसी भी एक भाग के हिलाने पर पूर्ण बांस में कंपन हो जाता है या अखंड तार के किसी एक हिस्से में करंट के लगाने पर संपूर्ण तार करंट वाला हो जाता है वैसे ही यहीं के काल द्रव्य के द्वारा लोकाकाश में और अलोकाकाश में परिणमन होता है।

प्र.1013–अलोकाकाश में कालद्रव्य के बिना उत्पाद व्यय कैसे हो सकता है?

उत्तर–आकाश द्रव्य में भी अगुरुलघु गुण है जिसके द्वारा षड्गुण हानि वृद्धि होती रहती है, उत्पाद व्यय होता रहता है क्योंकि यह आत्मगत, आत्मभूत लक्षण है यदि ऐसा न माना जाये तो द्रव्य का लक्षण अव्यप्ति दोष से युक्त हो जाता है किंतु यहाँ के काल द्रव्य से ही वहीं के आकाश द्रव्य में परिणमन उत्पाद व्यय होता रहता है।

प्र.1014–सिद्धों में उत्पाद व्यय किस प्रकार से होता है?

उत्तर–सिद्धों में उत्पाद व्यय अनेक प्रकार से माना गया है जैसे–1. अगुरुलघु गुण के द्वारा षड्गुण वृद्धि हानि रूप में। 2. द्रव्य की अपेक्षा सिद्ध पर्याय का उत्पाद संसार पर्याय का व्यय। 3. निर्विकार का उत्पाद और विकार का व्यय। 4. दर्पणवत् ज्ञेय ज्ञायक संबंध की अपेक्षा समस्त ज्ञेय पदार्थों में उत्पाद व्यय हो रहा है उसी प्रकार ज्ञायक सिद्धों में भी उत्पाद व्यय हो रहा है।

प्र.1015–सिद्धों में षड्गुण हानि वृद्धि किस प्रकार से होती है?

उत्तर–निष्कंप सिद्धों में अगुरुलघु गुण के द्वारा परिणमन करते हुए षड्गुण वृद्धि हानि होती है। ब्लडप्रेशर मापक यंत्र में वायु का वेग भरने पर जैसे पारे में चढ़ाव उतार होता है या समुद्र में उत्पन्न हुई लहरों के समान वैसे ही सिद्धात्मा में अगुरुलघु गुण के द्वारा अनंत गुणों के परिणमन में वृद्धि हानि होती है। यंत्र–सिद्धात्मा। वायु का वेग भरने का बी.पी. वाल्व–अगुरुलघु गुण। चढ़ाव–वृद्धि। उतार–हानि।

प्र.1016–सिद्धों में क्षायिकदान लाभ आदि किस प्रकार से सिद्ध होते हैं?

उत्तर–सिद्धों के क्षायिकदान लाभादि इस प्रकार सिद्ध होते हैं–

1. **क्षायिकदान**–अनादिकालीन विकारों को और विकारों के चेतन अचेतन स्वरूप फलों को अनंत काल के लिये त्याग कर देने को क्षायिकदान कहते हैं।
2. **क्षायिकलाभ**–पूर्ण शुद्धावस्था की प्राप्ति को क्षायिक लाभ कहते हैं।
3. **क्षायिक भोग**–अर्थ पर्याय, गुण पर्याय का अनुभव, परिणमन करने को क्षायिक भोग कहते हैं।
4. **क्षायिक उपभोग**–व्यंजन पर्याय का अनुभव, परिणमन करने को क्षायिक उपभोग कहते हैं।
5. **क्षायिक वीर्य**–अपने स्वभाव से चलायमान न होने को क्षायिक वीर्य कहते हैं।

प्र.1017–यदि स्वभाव अपने पास ही है तो विकार किसके पास है?

उत्तर–स्वभाव और विभाव ये दोनों ही अपने पास हैं। वस्तु का, आत्मा का अन्यथा परिणमन ही विभाव है और अपने रूप परिणमन ही स्वभाव है यदि स्वभाव अपने पास और विभाव दूसरों के पास हो तो जप, तप, ध्यान, अध्ययनादि क्यों करना? अतः विकार को क्षय करने के लिये ही ध्यान आदि किये जाते हैं।

प्र.1018–दिव्यध्वनि सर्वथा निरक्षर है तो सयोगकेवली के सत्यवचन और अनुभयवचन कैसे?

उत्तर–सामान्य प्राणी नहीं समझ पाते इसलिये दिव्यध्वनि निरक्षरी है अथवा जब तक श्रोताओं के कर्ण प्रदेश में नहीं पहुंची तब तक निरक्षरी है और कर्ण प्रदेश पर पहुंचते ही साक्षर हो जाते हैं अन्यथा सभी तीन गति के सैनी पंचेंद्रिय श्रोता गण अपनी अपनी भाषानुसार भावभासन नहीं कर सकते जैसे पानी पानी है किंतु जैसे जैसे खेतों में जाता है तब वहाँ की फसल के अनुसार ही उस रूप में परिणत हो जाता है वैसे ही दिव्यध्वनि, निर्दोष ध्वनि भी श्रोताओं की भाषानुसार भाषा रूप में परिणत हो जाती है। **सत्य वचन**–वस्तु के स्वभावानुसार वचन को सत्य वचन कहते हैं। **अनुभय वचन**–जो न सत्य हो न असत्य उसे अनुभय वचन कहते हैं जैसे दिव्यध्वनि सुनकर आभास होना कि कुछ आवाज है यहाँ पर सामान्य आभास होने पर भी विशेष आभास न होने को अनुभय वचन कहते हैं। विशेष निर्णय न होने से सत्य भी नहीं कह सकते हैं और सामान्य प्रतिभास है इसलिये असत्य भी नहीं कह सकते। इस प्रकार केवली के सत्य वचन और अनुभय वचन दोनों बन जाते हैं।

प्र.1019–दिव्यध्वनि ही अनुभय वचन योग है तो सत्यवचन योग का कार्य क्या?

उत्तर–दिव्यध्वनि साक्षर और निरक्षरी होने से अनुभय वचन योग और सत्य वचन योग हैं। वस्तु के यथानुरूप प्रतिपादन करना सत्य वचनयोग का कार्य है।

प्र.1020–शूद्रों के करने योग्य कार्यों को करने से नीचगोत्र कर्म का आश्रव होता है और सांपरायिकाश्रव की 25 क्रियाओं में स्वहस्त क्रिया कही है तब आदिनाथजी ने अपने पुत्रों को शूद्रों के योग्य ये समस्त क्रियायें क्यों सिखाई?

उत्तर–उन क्रियाओं के द्वारा हर किसीकी सेवा करके अपनी आजीविका चलाना स्वहस्त क्रिया है जिससे नीचगोत्र कर्म का आश्रव होता है किंतु यहाँ पर आदिनाथजी ने अपने बच्चों को ये क्रियायें सिखाई थी स्वाधीनता, स्वतंत्रता के लिये न कि परतंत्रता, पराधीनता के लिये क्योंकि कोई भी कला हानिकारक नहीं है किंतु उसका उपयोग किस ढंग से करना इसकी जानकारी होना चाहिये। केवल सेवा करने को स्वहस्त क्रिया नहीं कहते हैं। यदि केवल सेवा करने को स्वहस्त क्रिया मानकर नीचगोत्र का आश्रव बंध माना जाये, शूद्रपना माना जाये तो माँ बहनें आदि अपने पुत्रों का भाईयों आदि का मलमूत्र साफ करती है, स्नान कराती हैं वस्त्रों को धोती हैं तथा अन्य समस्त गृहकार्य करती हैं तो इन कार्यों को करने वालीं होने से माँ आदि को नीच गोत्री, शूद्री कहना पड़ेगा तथा नीच गोत्र कर्म का आश्रव बंध करने वाली होने से अजैन भी कहना होगा क्योंकि वास्तविक जैनपना सम्यग्दृष्टिपने से ही प्रारंभ होता है। डॉक्टरों को, लेबवालों को नीचगोत्री और शूद्र मानना पड़ेगा क्योंकि ये सभी के मलमूत्रादि की जाँच करते हैं, प्रसूति कराते हैं, स्पर्श करते हैं अतः केवल सेवा करना स्वहस्त क्रिया नहीं है किंतु विवेकहीन होकर सर्वत्र ऊँच नीच का विचार किये बिना हर किसी की सेवा कर आजीविका चलाने को स्वहस्त क्रिया कहते हैं ऐसा कार्य आत्मघातक व्यक्ति ही कर सकता है।

प्र.1021–क्या रात्रि में स्त्रियाँ गुरुओं के दर्शन के लिये पास में आ सकती हैं?

उत्तर–स्त्रियाँ गुरुओं के दर्शन क्या दिन में क्या रात्रि में कभी भी नहीं कर सकती हैं क्योंकि ये नाना प्रकार की विकार विषय वासनाओं से, मिथ्यात्व, असंयम से स्वयं दूषित हैं और दूसरों में यही दोष आरोपण करतीं हैं। यदि इस प्रकार प्रश्न करते हो तो बाहुबली आदि जिनेन्द्र की नग्न मूर्तियों को रात्रि में देखकर कामवासना जागृत हो जाती है तो दिन में क्यों नहीं हो सकती है? परंतु श्राविकायें जिन विचारों से दिन में दर्शन करतीं हैं उन्हीं भावों से रात्रि में दर्शन करें तो क्या आपत्ति है? गुरुजन जिन भावों से, जिस दृष्टि से दिन में देखते हैं, विचारते हैं उन्हीं भावों से रात्रि में भी देखें विचारें तो क्या दोष है? क्या कर्मों का आश्रवबन्ध दिन में होता है रात्रि में नहीं अथवा रात्रि में होता है दिन में नहीं? क्या आश्रव बन्ध के लिये अंधकार या प्रकाश साधक बाधक है? नहीं, कोई भी समय हो जब भी शुभ अशुभ योग और कषायों से आत्मा के प्रदेशों में कम्पन होगा तभी कर्म का आश्रव बन्ध होगा।

प्र.1022–क्या रात्रि में पुरुषवर्ग आर्यिकाओं के क्षुल्लिकाओं के दर्शन कर सकते हैं?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही कर सकते हैं। जब दिन में पूज्य, श्रेष्ठ, बड़ी या माँ माताजी मानकर दर्शन कर सकते हैं उसमें पाप नहीं लगता तो इन्हीं विचारों से, दृष्टि से रात्रि में करें तो क्यों पाप का बंध होगा? जिस प्रकार स्त्रीपने के भाव न रख कर श्राविका के भाव से गुरुओं के दिन में और रात्रि में दर्शन कर सकती हैं तो कोई पाप कर्म का बंध नहीं होता तब इसी तरह लौकिक पुरुष का भाव न रखकर श्रावक बनकर दिन में या रात्रि में दर्शन करने से क्यों पाप का आश्रवबंध होगा? क्यों दोष लगेगा?

प्र.1023–आदिनाथ भगवान ने मारिचकुमार को क्यों बता दिया की यह तीर्थंकर होगा, यदि नहीं बताते तो न इतना अहंकार होता न इतना भटकना पड़ता क्योंकि सत्याणुव्रत में केवली ने ही 'विपदे सत्यं न वदति' अपने जिस वचन से प्राणी विपत्ति में पड़ जाय ऐसा अणुव्रती को सत्य भी नहीं बोलना चाहिये तो इसी तरह आदिनाथ को भी नहीं बोलना चाहिये था क्योंकि सत्याणुव्रत का लक्षण भी उन्होंने ही बताया है कारण जब गृहस्थ को मना किया है तो मुनी को भी मना अपने आप हो जाता है क्योंकि अणुव्रत से महाव्रत महान होता है?

उत्तर–केवलियों ने अणुव्रतियों के लिये सत्याणुव्रत में अपने जिस वचन के द्वारा प्राणियों की विराधना हो ऐसे सत्य यथार्थ वचन भी नहीं बोलना चाहिये। उसका कारण यह है कि अणुव्रती विषय कषायों से, प्रमाद से सहित है, संज्ञाओं

से पीड़ित है, नाना प्रकार के संकट उपस्थित हो सकते हैं, मनोबल कमजोर है, परोक्षज्ञानी है इसलिये मना किया है किंतु केवलियों के पास ये कुछ भी कारण पाये नहीं जाते हैं तथा प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा जैसा जाना वैसा प्रतिपादन किया उनको प्राणियों के हिताहित का कोई विकल्प नहीं, न उनके ऊपर उपसर्ग परीषह उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे सूर्योदय होने पर अनेकों को लाभ होता है किंतु उल्लू, चमगादड़ अंधा हो जाता है तो उसमें सूर्य का क्या दोष है? इसी तरह मेघ का बरसना, चंद्र का उदय होना आदि से अनेकों को लाभ होता है परंतु कुछ को हानि होती है तो क्या कुछ की हानि के भय से मेघ, चंद्र आदि अपना कार्य करना बंद कर देते हैं? नहीं। क्योंकि प्रतिबंधक कारणों के अभाव में स्वभाव अपना कार्य यथावत् करता ही है, अन्यथा नहीं इसी तरह केवलियों के पास प्रतिबंधक कारण का अभाव होने से यथावत् स्वभावानुसार प्रतिपादन करते हैं यही तो अणुव्रत और महाव्रतों में भी केवलियों के महाव्रत में अंतर है।

प्र.1024–आजकल समाज को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिये, अपना भक्त बनाने के लिये, बिना त्याग कराये या किंचित् थोड़ा और थोड़े समय के लिये कुछ त्याग करा कर आहार ले लेना चाहिये तभी तो ये पतित मानव आगे बढ़ सकते हैं जैसे पूर्व काल में गुरुओं ने ढीमर को जाल में आयी हुई प्रथम मछली को नहीं मारने का नियम दिया था, खदिरसार भील ने कौए के मांस को खाने का त्याग किया था आदि ये थोड़े त्याग से महानता को प्राप्त हुये तो इसी तरह आज भी थोड़ा त्याग कराकर आहार ले लेना चाहिये?

उत्तर–पूर्व काल में गुरुओं ने इन पतित जीवों को सन्मार्ग में लगाने के लिये थोड़ा त्याग कराया था किंतु नवधाभक्ति और दाता के श्रद्धा, तुष्टि, पुष्टि, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा और सत्य बोलना इन सात गुणों के बिना उनके हाथ से आहार नहीं लिया था। यदि वे मुनिजन भील और ढीमर से आहार ले लेते तो आज भी इन जैनों या अजैनों को भी ऐसा त्याग करा कर आहार ले सकते थे परंतु इतने त्याग से पूर्वकाल में आहार नहीं लिया तो आजकल ऐसा त्याग करा कर साधुजन क्यों आहार लेवें ? क्योंकि दाता और पात्र का, श्रावक और साधु का संबंध है तो आज भी सामान्यतया दाता बनने के लिये कम से कम 8 मूलगुणों का पालन, षड़ावश्यकों का पालन, रात्रिभोजन त्याग, अनछना पानी पीने का त्याग, देव दर्शन का नियम, अभक्ष्य भक्षण का त्याग होना ही चाहिये अथवा वर्तमान में ये जैन लोग आदिवासी भील आदि होते तो उनके जैसा नियम दिया जा सकता था किंतु इन अनिष्ट वस्तुओं का सेवन करने वालों को जैन और दाता कैसे कहा जाये? अतः लक्षण के बिना लक्ष्य कैसा?

प्र.1025–परमाणु को एक ही अंशवाला माना जाये तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–परमाणु को सर्वथा एक अंशवाला मानने से पुनः बंध को, स्कंधावस्था को प्राप्त नहीं हो सकता है कहा भी है **'न जघन्य गुणानाम् 34।।'** जघन्य गुणवालों का बंध नहीं होता है। **द्वयधिकादि गुणानां तु 36।।** दो अंश अधिक गुणवालों का बंध होता है। **'बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च।।37।।'** बंध होने के बाद अधिक शक्तिवाला हीन शक्तिवाले को अपने रूप में परिणमन करा लेता है अतः वर्तमान नय से वर्तमान में अणु एक प्रदेशी वाला होने पर भी अनंत गुणधर्मों से युक्त है, अनंत अंश वाला है तभी द्रव्य गुण का लक्षण, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य बन सकता है अन्यथा नहीं। यदि आचार्यगण परमाणु को एक अंश वाला कहते तो शंकाकार का कहना सही हो जाता किंतु आचार्यों ने परमाणु को एक अंशवाला न कहकर एकप्रदेशी कहा है जो अनंत गुण अनंतानंत पर्यायों से युक्त है।

प्र.1026–णाणोः 11 इस सूत्र के द्वारा अणु में द्वितीयादि प्रदेश नहीं होते हैं ऐसा कहा है फिर आपने अणु में अनन्त अशों की व्याख्या की है सो यह सूत्र के विरुद्ध कथन है ऐसा क्यों न माना जाये?

उत्तर–नहीं, सूत्र के विरुद्ध कथन नहीं है क्योंकि सूत्रकार ने अणु में द्वितीयादि प्रदेश नहीं होते है ऐसा कहा है किन्तु अणु में अविभाग प्रतिच्छेद नहीं होते हैं ऐसा तो कहा नहीं है। यदि ऐसा कहते तो :–

द्वयधिकादि गुणानां तु ।।36।। बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ।।37।।

इन दो सूत्रों से विरुद्ध कथन होने के कारण सूत्र ही स्ववचनबाधितदोष से युक्त हो जाता किन्तु अणु परमाणु सावयव है अनन्त अविभागप्रतिच्छेद शक्त्यंश युक्त है तभी तो परमाणु में स्कंध की अपेक्षा कार्यकारण और परमाणु की अपेक्षा कारणकार्य की व्यवस्था बन सकती है अन्यथा नहीं। अतः एक प्रदेशी अणु भी अनंतगुण

और अनंतानंतपर्यायों से युक्त है और एक ही समय में अनंतपर्यायें व्यक्त रूप में रहती हैं। एक प्रदेशी अणु में अनंतअविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। एक एक गुण में अनंतअविभाग प्रतिच्छेद होते हैं अन्यथा अनंतानंत काल तक के लिये पर्यायों की शृंखला बन नहीं सकती और अनंतानंत पर्याय धर्म न होने से कालांतर में पर्याय धर्म की समाप्ति होने से द्रव्यगुणों का अपरिणामी पना, नित्य कूटस्थपना होने से सांख्यमत का भी प्रसंग आता है अतः अणु सावयव है और परिणामी है।

प्र.1027–प्रदेश किसे कहते हैं?

उत्तर–शुद्ध पुद्गल परमाणु आकाश के जितने क्षेत्र को रोकता है, घेरता है उसे प्रदेश कहते हैं।

प्र.1028–ये प्रदेश किन किन द्रव्यों में पाये जाते हैं और कितने कितने हैं?

उत्तर–ये प्रदेश सभी द्रव्यों में पाये जाते हैं। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, लोकाकाश और एक जीवद्रव्य में असंख्यात प्रदेश, अलोकाकाश में अनंत प्रदेश, पुद्गलद्रव्य में संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश होते हैं और कालाणु में और शुद्ध पुद्गल परमाणु में एक प्रदेश होता है।

प्र.1029–ये प्रदेश मूर्तिक होते हैं या अमूर्तिक?

उत्तर –पुद्गलद्रव्य के प्रदेश लक्षण की अपेक्षा या केवलज्ञानी के विषय की अपेक्षा मूर्तिक हैं और छद्मस्थ ज्ञानियों का विषय न होने से, इन्द्रियगोचर न होने से अमूर्तिक हैं। शेष पाँच द्रव्यों के प्रदेश अमूर्तिक ही होते हैं क्योंकि इनमें रूप रस गंध स्पर्श नहीं पाये जाते हैं।

प्र.1030–प्रदेशों के भी अंश विभाग या खंड खंड होते हैं क्या?

उत्तर–हाँ, अवश्य होते हैं यदि प्रदेशों में अंश विभाग, अविभाग प्रतिच्छेद शक्त्यंश न माने जाय तो अनंत गुणधर्म, स्वभाव प्रत्येक अंश में बन नहीं सकते हैं और प्रत्येक अनंत धर्म अपने प्रतिपक्षी धर्म सहित है जैसे नित्य धर्म अनित्य धर्म को, एक धर्म अनेक धर्म को, अस्ति धर्म नास्तिधर्म को लिये हुए हैं। कहा भी है:–**'सप्पडिवक्खा'**। पं. का. 7। प्रत्येक सभी अनंत धर्म प्रतिपक्ष सहित हैं।

प्र.1031–ये सभी प्रतिपक्ष सहित धर्म किन किन नयों के विषय हैं?

उत्तर–ये सभी धर्म प्रतिपक्ष सहित समस्त नयों के विषय हैं प्रमाण और निक्षेपों के नहीं जैसे निश्चयनय या द्रव्यार्थिक नय से नित्य धर्म, शाश्वत धर्म, अस्ति धर्म आदि अनंत धर्मों को ग्रहण किया जाता है तो व्यवहार नय से अनित्य धर्म, अशाश्वत धर्म, नास्ति धर्म आदि को ग्रहण किया जाता है।

प्र.1032–कार्य परमाणु और कारण परमाणु किसे कहते हैं?

उत्तर–स्कंधों का भेदन होते होते जो अंतिम अविभागी, इन्द्रियों के द्वारा अग्राह्य, छद्मस्थ ज्ञानों के जानने योग्य न होने की अवस्था को कार्य परमाणु कहते हैं। जो परमाणु अवस्था को छोडकर दो आदि संख्यात असंख्यात अनंत परमाणुओं की मिश्रणरूप एक स्कंधावस्था प्राप्त होने में मूलभूत परमाणु को कारण परमाणु कहते हैं अथवा स्कंधों के उत्पादक को कारण परमाणु कहते हैं।

प्र.1033–कार्य स्कंध और कारण स्कंध किसे कहते हैं?

उत्तर–परमाणुओं से उत्पन्न होने वाले स्कंध को कार्य स्कंध और परमाणुओं के उत्पादक स्कंध को कारण स्कंध कहते हैं। यह कार्य कारण व्यवस्था प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव होने से परकृत नहीं है।

प्र.1034–यह कार्य कारण भेद क्यों बताया?

उत्तर–यह कार्य कारण व्यवस्था प्रत्येक द्रव्यों में पाई जाती है क्योंकि प्रत्येक द्रव्य परिणामी स्वभाव वाले हैं जो मोहीप्राणी संसार में पुण्यपाप की अवस्थाओं को स्थाई मानकर अभिमानी हो रहे हैं या अपराध के कारण अपराध को चिर स्थाई मानकर सत्पुरुषार्थ हीन बनकर हताश हो रहे हैं तो उनके अभिमान और हताशपने को नष्ट करने के लिए, पुरुषार्थ जागृत करने के लिए, दृढ़ता लाने के लिए यह व्यवस्था बतलाई है अतः उत्पाद्य उत्पादक धर्मों की व्यवस्था अनादिकाल से चली आ रही है और अनंत काल तक चलती चली जायेगी इस कारण ये पुण्यपाप तथा अपराध की अवस्था शास्वत रहने वाली नहीं है।

प्र.1035–जिस प्रकार परमाणु में कार्य कारणपना हैं उसी प्रकार शेष द्रव्यों के प्रदेशों में भी कार्य कारण भाव पाया जाता है क्या?

उत्तर–नहीं पाया जाता क्योंकि जैसे पुद्गल में स्कंध और परमाणुओं का मिलना बिछुड़ना, संयोग वियोग सम्बन्ध पाया जाता है वैसा शेष द्रव्यों में पुद्गल की तरह कार्य कारणपना नहीं पाया जाता। हाँ, प्रत्येक धर्म में, गुणों में उत्पाद व्यय की अपेक्षा कार्य कारण भाव बन जाता है। अणु स्कंध से उत्पन्न होता है इसलिए कार्य स्वरूप है और स्कंध को उत्पन्न करता है इसलिए कारण स्वरूप है।

प्र.1036–समय किसे कहते हैं?

उत्तर–शुद्ध पुद्गल परमाणु मन्द गति से आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में गमन करने पर जो काल लगे उसे समय कहते हैं।

प्र.1037–इस काल द्रव्य के एक समय में भी क्या अलग अलग शक्त्यंश होते हैं?

उत्तर–इस समय पर्याय में भी अनंत शक्त्यंश अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं तभी तो काल द्रव्य में अनंत गुणधर्म और अनंतानंत पर्याय धर्म बन सकते हैं अन्यथा नहीं।

प्र.1038–पर्याय में भी पर्याय के भेद होते हैं क्या?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही होते हैं जैसे मतिज्ञान पर्याय को उदाहरण ले लो अक्षय अनंत जीव राशि है इनके मतिज्ञान में असमानता पायी जाती है। किसी में मतिज्ञान कम और किसी में ज्यादा अथवा सभी मनुष्यों में अथवा एक ही मनुष्य में मतिज्ञान एक जैसा नहीं पाया जाता है जैसे कोई एक स्वस्थ मनुष्य एक समय में अधिक चिंतन कर लेता है तो वही मनुष्य थोड़े ही समय में विकल्प होने से चिंतन नहीं कर पाता इसी से मालूम पड़ता है कि पर्यायों में भी पर्याय भेद अविभाग प्रतिच्छेद अक्षय अनंत पाये जाते हैं और यह केवल कल्पना नहीं है किन्तु वस्तु व्यवस्था ही ऐसी है अथवा उपचार नयों के भेदों में से एक भेद पर्याय में पर्याय का उपचार करना कहा है।

प्र.1039–पानी छानना या न छानना किसे कहते हैं तथा छानकर क्यों पीना चाहिये?

उत्तर–विधि के अनुसार पानी छानकर जीव रक्षा के लिए पुनः जिस जलाशय का पानी लाये हैं उसी स्थान पर सावधानी पूर्वक जीवाणी पहुँचाने को पानी छानना कहते हैं। पानी छानने के बाद जीवाणी को ऊपर से पटकना, यहाँ वहाँ के जलाशय में पहुँचाना, सूखी भूमि में डाल देना, छन्ने को छने पानी से धोये बिना यों ही निचोड़ देना, छने पानी में ही पुनः छन्ने को उल्टा कर जीवाणी कर लेना, छने पानी में ही अनछने पानी वाले हाथों को डाल देना आदि ये कार्य पानी न छानने के बराबर हैं क्योंकि ऐसा करने से जीवों की रक्षा न होकर हिंसा ही होती है। जीवों की रक्षा के लिये, अहिंसा धर्म के पालन करने के लिये, स्वास्थ्य अच्छा रखने के लिये, प्रमाद छोड़ने के लिये और देव शास्त्र गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिये पानी छानकर पीना चाहिये किंतु पानी छानकर नहीं रखना चाहिये।

प्र.1040–पानी में जीव तो दिखते नहीं फिर क्यों छानना?

उत्तर–सर्वज्ञ प्रणीत आगम से जाना जाता है कि पानी में जीव हैं या पानी ही जीव है क्योंकि जल नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय ही जल जीव है। आगमानुसार एक बूँद पानी में संख्यात असंख्यात त्रस जीव और अनंत स्थावर जीव होते हैं तथा वैज्ञानिकों ने भी यंत्र के द्वारा देखकर एक बूँद पानी में 36450 जीव बतलाये हैं अतः आँखों से दिखाई नहीं देने पर भी लोकोत्तर और लौकिक प्रमाणों से पानी में जीव सिद्ध हैं या पानी ही जीव है इस कारण पानी छानना ही चाहिये। यदि कहो कि पानी में जीव दिखते नहीं हैं सो भी बात नहीं है। क्या आपके दादा परदादा या उनके आगे की पीढ़ी वाले दिखते हैं? नहीं, तो क्या वे नहीं थे? यदि थे तो दिखने चाहिये पर दिखते नहीं किंतु अपने जन्म से ही पूर्व परंपरा का निश्चय किया जाता है तथा सज्जनों के या माँ बाप के बताने पर विश्वास किया जाता है ठीक वैसे ही पानी में सूक्ष्म बादर जीव हैं या सूक्ष्म बादर पानी ही जीव है फिर भी नेत्रों से नहीं दिखने पर भी लौकिक या लोकोत्तर आगम में विधान होने से विश्वास करना ही चाहिये।

प्र.1041–पानी जीव नहीं है किन्तु पानी में जीव हैं ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–पानी जीव नहीं है ऐसा मानने में यह आपत्ति है कि जलकायिक नामकर्म व्यर्थ हो जाता है तथा तत्संबंधी तिर्यंचगति और तिर्यंचायु कर्म भी व्यर्थ हो जाता है क्योंकि तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति स्थावर नामकर्म, जलनाम कर्म आदि प्रकृतियाँ जीव विपाकी हैं। अतः पानी ही जीव है यह कथन एकेन्द्रिय स्थावर जीव की अपेक्षा समझना और पानी में जीव हैं यह त्रस जीवों की अपेक्षा समझना। जैसे मनुष्य जीव है और मनुष्य में जीव हैं। यदि मनुष्य

जीव नहीं है तो मनुष्यों को मारने पर या रक्षा करने पर हिंसा पाप और अहिंसा धर्म बन नहीं सकता, इसी तरह मनुष्य के शरीर में त्रस जीव नहीं हैं तो मनुष्य के मृतक शरीर को जलाने में, दफन करने में हिंसा पाप न लगने से पातक दोष 12 दिन पर्यंत लग नहीं सकता, इससे जाना जाता है कि मनुष्य ही जीव है और मनुष्यों में जीव हैं अर्थात् स्वयं मनुष्यायु, मनुष्यगति आदि जीव विपाकी प्रकृतियों के उदय से मनुष्य ही जीव हैं और मनुष्यों के शरीर में त्रस जीवों का अवस्थान होने से मनुष्य में जीव हैं। ठीक ऐसे ही पानी ही जीव है और पानी में भी जीव हैं। दोनों प्रकार सही हैं।

प्र.1042–अनछना पानी पीने में क्या और कितना दोष है?

उत्तर–अनछना पानी पीने में जिन्दा जीवों को पीने का दोष आता है क्योंकि जब एक बूंद पानी में आचार्यों ने असंख्यात जीव और वैज्ञानिकों नें 36,450 जीव बताये हैं तब आप 24 घंटे में सामान्यतः 3 से 5 लीटर तक अनछना पानी पी लेते हैं अब आप ही हिसाब लगाओ कि कितने जिंदा जीवों को पी लिया? मांसाहारी भी जिंदा माँस नहीं खाता किन्तु वह भी पका के खाता है। अतः अनछना पानी पीनेवालों ने जीवित प्राणियों को पी लिया इस कारण अनछना पानी पीने वाला मांसाहारी से भी महामांसाहारी है।

प्र.1043–अनछना पानी पीने में इतना दोष है तो उबालकर पीने में दोष न लगेगा क्या?

उत्तर–यदि आप विधिवत् पानी छानकर उबालकर पीते हैं तो सर्वोत्तम है किंतु अनछने पानी को या मर्यादा के बाहर छने हुए पानी को उबालकर पीने से जिंदा जीवों को उबालकर अग्नि पक्व मांस खाने के समान दोष लगेगा।

प्र.1044–अनछने पानी से तैयार किया गया भोजन कर सकते हैं क्या?

उत्तर–नहीं कर सकते हैं क्योंकि अनछने पानी में जो त्रस जीव थे वे ज्यों के त्यों भोजन दाल, सब्जी आदि में उबालकर मार दिये गये सो ऐसा भोजन पान मांसाहार ही है क्योंकि त्रस जीवों के शरीर में सप्तमल धातुयें, उपधातुयें पायी जाती हैं स्थावर जीवों के शरीर में नहीं। यदि आप शुद्ध सात्विक शाकाहारी हैं, अहिंसावादी हैं, तीर्थंकर महावीर की संतान हैं, आज्ञाकारी हैं तो पानी छानकर बनाये गये भोजन को तथा छने पानी को ग्रहण करो अन्यथा मांसाहारी और आप में कोई अंतर नहीं रहेगा।

प्र.1045–कंपनियों के द्वारा किये गये फिल्टर पानी को बिना छाने पी सकते हैं क्या?

उत्तर–नहीं, उन बोतलों में पानी कब भरा, कहाँ भरा, किसने भरा, कैसे भरा, कहाँ का है और कहाँ का नहीं है? ये जानकारी न होने से तथा विधिवत् छने हुए पानी की मर्यादा एकमुहूर्त (48 मिनट) की है। जब आजकल प्रमादी होने के कारण जैनी ही पानी छानना नहीं जानते हैं तो कंपनीवाले और अजैन पानी छानना क्या जानें? कदाचित् उन्होंने **'लकीर के फकीर की तरह'** पानी छान भी लिया तो जीवाणी कहाँ पहुंचायेंगे या यों ही निचोड़कर जीवों को मार देंगे या जिवाणी को ऐसे ही छोड़ देंगे?

प्र.1046–नल की टोंटी में कपड़े की थैली बाँधकर पानी छान सकते हैं क्या और यदि ऐसा छाना तो क्या दोष है?

उत्तर–नहीं, इस प्रकार पानी छानना फाँसी की सजा देने के बराबर है। **सो कैसे**? जैसे राजा लोग अपराधी को लटकाकर अधर में ही मार देते हैं या मरवा देते थे वैसे ही नल में थैली बाँधकर पानी छानने से जो जीव थैली में आ गये वे न तो वापिस जा सकते हैं और न नीचे गिर सकते हैं किन्तु बीच में ही सूखसूख कर, घुटघुट कर मर जाते हैं या मार दिये जाते हैं। राजा लोग या राजनेता केवल अपराधी को फाँसी की सजा देते थे किन्तु आलसी जीवों ने विवेकहीन होकर पानी छानने वालों ने निरपराधी, क्षुद्र, असंख्यात प्राणियों को जान से मार दिया जबकि अपराधी को सजा देने वाला निर्दोषी है तो निरपराधी जीवों को मारने वाला हर तरह से महाअपराधी हैं।

प्र.1047–अनछने पानी को सीधा गीजर, रौड आदि से गरम करने में क्या दोष है?

उत्तर–अनछने पानी को इस प्रकार गरम करने पर जिंदा जीवों को जलाने का दोष आता है जैसे आतंकवादी उग्रवादी मनुष्यों को जिंदा जला देते हैं उनकी संख्या गिनती में आ सकती है किंतु अनछने पानी को सीधा गरम करने से जीवों की संख्या गिनी नहीं जा सकती फिर भी आगम प्रमाण और लौकिक प्रमाण से जाना जाता है कि संख्यात, असंख्यात और अनंत जीवों को जिंदा जलाया यह दोष है।।

प्र.1048–पानी में और वनस्पति में जीव हैं, किन्तु पानी, वनस्पति स्वयं जीव नहीं हैं ऐसा स्वीकार करने में क्या दोष हैं?

उत्तर–सर्वथा ऐसा नहीं है, भेद विवक्षा से पानी में और वनस्पति में जीव हैं किन्तु अभेद विवक्षा में पानी और वनस्पति ही जीव हैं आदि जैसे मनुष्य जीव है तो पानी, वनस्पति भी जीव है तथा यदि मनुष्य में जीव हैं, मनुष्य जीव नहीं है तो पानी और वनस्पति को भी इसी प्रकार मान लो जिस प्रकार मनुष्य जाति नाम कर्मोदय से प्राप्त मनुष्य पर्याय ही जीव है उसी प्रकार जल नाम कर्म और वनस्पति नामकर्मोदय से प्राप्त पर्याय जल ही, वनस्पति ही जीव है ऐसा स्वीकार करने में कोई दोष नहीं है अन्यथा जीव दया से पुण्य और विराधना से, मारने काटने से पाप नहीं हो सकता है। अतः एकान्त मानने से पुण्य पाप की कोई व्यवस्था नहीं बन सकती है।

प्र.1049–देवी देवताओं का आदर सम्मान करना लोकव्यवहार है या धर्मव्यवहार?

उत्तर–सम्यग्दृष्टि देवी देवताओं का सम्यक्दर्शन पूर्वक आदर सम्मान करना धर्मव्यवहार है, सम्यक्त्वाचरण चारित्र है, व्यवहार मोक्षमार्ग है, वात्सल्य अंग है, मैत्री आदि भावना है, सदाचार है तथा मिथ्यादृष्टि देवी देवताओं का मिथ्यात्वपूर्वक आदर सम्मान करना लोकाचार है, लोक व्यवहार है जो किंचित् पुण्य बंध का भी कारण है और संसार के हेतु हैं, मूढता और अनायतन सेवा भी है।

प्र.1050–अनायतन रूपी देवी देवताओं का आदर करना मिथ्याचारित्र होने से क्यों करना?

उत्तर–सम्यग्दृष्टि देवी देवताओं का आदर सम्मान करना मिथ्याचारित्र, अनायतन सेवा नहीं है किन्तु ये एक मात्र जिनेन्द्र के भक्त हैं, जघन्य पात्र हैं, आयतन हैं, सद्व्यवहार है, सम्यक्चारित्र है किन्तु मिथ्या चारित्र, अनायतन सेवा नहीं। यदि जिनेन्द्र भक्त देवी देवताओं का आदर सम्मान विनय आदि करना मिथ्याचारित्र है, अनायतन सेवा और मूढ़ता है तो यहाँ पर भी दृष्टिगोचर होनेवाले अन्याय, अभक्ष्य के भोगी, मकारों का सेवन करने वाले, गर्भपात करने कराने वाले, दहेज के नाम पर बहुओं को जलाने वाले मनुष्यों का आदर सम्मान आदि करना क्या है? कौन सा दोष या गुण है?

प्र.1051–मंदिरों में धरणेन्द्र पद्मावती, क्षेत्रपालादि की स्थापना क्यों करना? कारण आजकल के लोभी भगवान को छोड़कर इनकी भक्ति पूजापाठ में लग जाते हैं अतः "न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी" के अनुसार इनकी स्थापना ही न होगी तो समाज धर्मायतन में समय लगायेगी व्यर्थ में समय क्यों बर्बाद करे ?

उत्तर–जब आप मंदिर को समवशरण का रूप मानते हो और समवशरण की 12 सभाओं में से 8 कोठे देव देवांगनाओं के, एक मुनियों का, एक श्रावकों का, एक आर्यिकाओं और श्राविकाओं का तथा एक तिर्यंचों का ये सब मिलाकर 12 कोठे होते हैं। अब आप किस कोठे को या किसको मना करोगे? क्या वर्तमान में छप रहे शास्त्रों में, पुस्तकों में गृहस्थ दानदाता, श्रावक श्राविकाओं के फोटो नहीं छपते हैं? यदि गलत है तो क्यों छपते हैं? यदि सही है तो धर्मशास्त्रों में गृहस्थ भोगियों के फोटो योग्य हैं तो मंदिरों में अलग से जिनेन्द्र भक्त यक्ष यक्षणियों की स्थापना करना गलत क्यों? यह भी सही मानो। जब तक संकट नहीं आता है तबतक ऐसी बातें करते हो और जब नाना प्रकार के कष्ट आते हैं तब मालूम पड़ता है कि अब किसके पास जायें, कहाँ जायें, कौन से देवी देवता मनायें, कौनसी पीरमजार में जायें आदि? इस समय एकमात्र विपत्ति कैसे दूर हो यही दिखाई देता है। कितने जादु टोना करते कराते हो, 12 पत्थर पूजते फिरते हो, इस समय क्या मिथ्यात्व है? क्या सम्यक्त्व? यह दिखाई नहीं देता। अरे! इन यक्ष यक्षणियों के साथ जिनेन्द्र की भी आराधना और जाप भी कर लेते हैं अन्यथा संकट निवारण के लिए अन्यत्र देवी देवताओं के पास गया वहाँ के दर्शन आराधना आदि से संकट दूर हो गया तो वहीं का भक्त बन गया, श्रद्धानी बन गया तभी तो आजकल अनेक नामधारी जैन आचरण से, विश्वास से अजैन बन गये अतः जिनेन्द्र भक्त देवी देवताओं की साधर्मी मानकर आदर सम्मान आराधना करना धर्म सापेक्ष होने से अपाय विचय धर्मध्यान हो जाता है। इस कारण यक्ष यक्षणियों की स्थापना करना योग्य ही है क्योंकि इनके माध्यम से लौकिक कामनाओं की पूर्ति होने पर अनेक अजैन भी जिनेन्द्र भक्त बने हुए हैं और इन्हीं कामनाओं के कारण अन्यत्र देवी देवताओं की आराधना कर अनेक जैन अजैन बन गये जो प्रत्यक्ष देखा जा रहा है।

प्र.1052–अण्डा शाकाहार है या मांसाहार?

उत्तर–अण्डा माँसाहार है शाकाहार नहीं। क्या अण्डा पेड़ पौधों में लगता है? क्या पत्थर में, मिट्टी में या खेत में पैदा होता है? गर्भ जन्म रजोवीर्य से होता है, बिना रजोवीर्य के गर्भजन्म नहीं होता है फिर भी मुर्गी के जीवन में हर वक्त इन्जेक्शन लगाने से गर्भ नहीं ठहरता किन्तु ऋतुमति के समय इन्जेक्शन लगाने से ही गर्भ ठहरता है। यदि जीव नहीं आया तो निकल जाता है, गिर जाता है तथा अण्डे से जीव निकल गया तो अण्डा सड़ जाता है। यदि मुर्गी सेवन करे, गर्मी पहुँचाये तो पूर्ण शरीर की रचना होकर मुर्गामुर्गी पैदा हो सकते हैं किन्तु अलग कर देने से पूर्ण शरीर की रचना नहीं हो पाती है किंतु असमय में मनुष्यनी के गर्भपात के समान नष्ट कर दिया जाता है।

प्र.1053–जिनेन्द्र भगवान की सकाम भक्ति करना चाहिए या निष्काम और क्यों?

उत्तर–जिनेन्द्र भगवान की भक्ति मोक्ष के निमित्त होने से सकाम भक्ति और संसार के साधनभूत न होने से या संसार शरीर भोगों की आकांक्षा न होने से निष्काम भक्ति करना चाहिए। संसार बंधन से, भ्रमण से, दुःखों से बचने के लिए भक्ति करना चाहिए। सकाम भक्ति :–संसार सुख या मोक्ष सुख प्राप्त करने की आकांक्षा से भक्ति करना। निष्काम भक्ति :–सांसारिक सुख या वैभव नहीं चाहना अतः शब्दों का वास्तविक अर्थ समझकर भक्ति करना चाहिए।

प्र.1054–लोक में सकाम भक्ति का अर्थ धनदौलत, व्यापारवृद्धि, पुत्र प्राप्ति आदि की चाहना किया जाता है जो युक्त है या अयुक्त?

उत्तर–जिसने भी यह अर्थ किया है वह गलत है, ना समझ वालों ने, लोभियों ने, विषय लम्पटियों ने किया है यह वास्तविक अर्थ नहीं है क्योंकि वृक्ष के नीचे जाकर छाया माँगना मूर्खता है और वृक्ष से दूर रह कर छाया माँगना भी मूर्खता है। वृक्ष के नीचे जाओ बिना माँगे ही छाया मिलेगी तब माँगने से क्या? अथवा किसान खेत में फल प्राप्ति के लिये बीज बोता है तो फल प्राप्ति के साथ साथ भूसा अपने आप प्राप्त होता है। भूसा की प्राप्ति के लिये अलग से कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता है। यदि किसान ने फल प्राप्ति के पहले फसल काट ली तो उसे भूसा तो मिल जायेगा किन्तु फल नहीं मिलेगा। इसी तरह आप सांसारिक फलों की आकांक्षा छोड़कर मोक्षफल की प्राप्ति के लिये जिनेन्द्र भक्ति करोगे तो सांसारिक विषयसुख, सामग्री अपने आप बिना परिश्रम के प्राप्त होगी यदि इन्द्रिय सुख की वासना रखकर भक्ति की तो मोक्ष सुख नहीं मिलेगा किन्तु किंचित् सांसारिक सुख भोगकर नारायण, प्रतिनारायण, नारद, रौद्रों की तरह नरक, निगोद का पात्र बनना पड़ेगा अतः जिनेन्द्र भक्ति विषय सुख की इच्छा के बिना करना चाहिये अन्यथा मूर्खता ही कहलायेगी।

प्र.1055–संसार सुख की वाँछा को छोड़कर निष्काम भक्ति की जाये तो क्या दोष है?

उत्तर –केवल संसार सुख की वाँछा को छोड़ने का नाम निष्काम भक्ति नहीं है किन्तु अभ्यास दशा में प्रारम्भ अवस्था में मोक्ष सुख की इच्छा करना, ध्येय बनाने का नाम निष्काम भक्ति है तथा शुद्ध ध्यान की भूमिका में और श्रेणी आरोहण करते समय या श्रेणी में मोक्ष प्राप्ति की इच्छा का भी त्याग किया जाता है तभी निश्चल ध्यान होता है और निश्चल ध्यान से ही कर्मों का क्षय तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। यदि मोक्ष प्राप्ति की इच्छा है तो मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है और निष्काम भक्ति न कहलाई न हुई क्योंकि वस्तु व्यवस्था विधि और निषेध की पद्धति से ही सिद्ध होती है, एक से नहीं। यदि वस्तु व्यवस्था की सिद्धि या सर्वोत्कृष्ट फल की प्राप्ति केवल विधि से या केवल निषेध से होने लगे तो संसार के सभी मतमतान्तर परस्पर में विरोधी होने पर भी समीचीन फल को प्राप्त कर लेंगे संसार बंधन से छूट जायेंगे, फिर सम्यक् मिथ्या का, सही गलत का निर्णय कैसे होगा? संसार में कौन रहेगा? मोक्ष में कौन जायेगा? इसका विभाग करना, भेदविज्ञान करना भी महासंकट में पड़ जायेगा यही महान दोष है।

प्र.1056–वर्तमान में जो विद्यानुवाद है उसमें मारण, उच्चाटन, विद्वेषण आदि मिथ्यामंत्रों का कथन होने से अपूज्य है, अप्रमाण है, मिथ्या है अतः जिनवाणी न होने से मंदिर में क्यों विराजमान करना, क्यों नमस्कार करना?

उत्तर–नहीं, यह नासमझ का प्रश्न है। यह विद्यानुवाद दृष्टिवाद अंग के दसवें पूर्व का नाम है जो जिनेन्द्र की ही वाणी है जिसमें शान्तिमंत्र, स्तम्भनमंत्र, मोहनमंत्र, उच्चाटनमंत्र, वशीकरण मंत्र, पौष्टिक मंत्र आदि का विधान है। ये सभी मंत्र उद्देश्य गलत होने से गलत तथा उद्देश्य सही होने से सम्यक् कहलाते हैं। जिस प्रकार सरकार ने किसी व्यक्ति को धर्म की, स्वयं की, परिवार की, समाज की, गाँव आदि की रक्षा करने के लिये शस्त्र दिया है न कि किसी को

मारने, काटने के लिये। इसी तरह जिनेन्द्र ने नाना तरह के मंत्रों का उपदेश दिया है कि इन मंत्रों से धर्म, देश, परिवार आदि की रक्षा करना न कि किसी की विराधना करना। दृष्टिवादांग में नाना मिथ्यामतों का, मिथ्यामंत्रों का कथन कर दोष को दोष बतलाकर यथार्थ मत का प्रतिपादन किया, यदि मिथ्या मंत्रों का, लौकिक मंत्रों का कथन नहीं करते तो आपको कैसे मालूम पड़ता कि यह मंत्र सम्यक् है या मिथ्या? यह नहीं कहा कि आप सभी मंत्रों का आत्म साधना के लिये उपयोग करो किन्तु नाना मिथ्यामतों के मंत्रों का विधान होने से, धर्म निरपेक्ष होने से हेय हैं, छोड़ने योग्य हैं, आत्मसाधना के लिये, जीवन के हित के लिये अनुपयोगी हैं इनका त्याग करो तथा ये मंत्र आत्म साधना के लिये उपयोगी हैं, समीचीन हैं इनके ध्यान से आत्म सुख, शान्ति की प्राप्ति होगी क्योंकि जिनोपदेश ज्ञेय हेय और उपादेय स्वरुप है।

प्र.1057–यदि ऐसा है तो सर्वज्ञ भगवान ने मिथ्या मंत्रों का उपदेश क्यों दिया?

उत्तर–जिनेन्द्र भगवान नहीं बताते कि ये मंत्र मिथ्या हैं, इनके जाप से संसार भ्रमण, नाना दुःखों की प्राप्ति, निंदा, बदनामी, अपमान, तिरस्कार आदि प्राप्त होते हैं तो तुम्हें कैसे मालूम पड़ता कि ये मिथ्या मंत्र हैं, संसार के कारण हैं, दुःख स्वरूप हैं? अतः छोड़ो यह कहा है किन्तु जीवन में उतारो, दिनचर्या में लाओ ऐसा नहीं कहा यदि आप विद्यानुवाद में मिथ्या मंत्रों का, लौकिक मंत्रों का विधान होने से अपूज्य, अप्रमाण मिथ्या कहते हो तो न्याय ग्रंथों को और द्रव्यानुयोग के ग्रंथों को भी मिथ्या कहो क्योंकि इन ग्रंथों में अन्यमतों का खंडन कर जिनमत का मंडन किया है। मिथ्यात्व गुणस्थान का वर्णन है, इनको भी अप्रमाण कहो, अपूज्य कहो? फिर इससे मिथ्यात्व गुणस्थान का,अन्याय अभक्ष्य का, हास्यादि 8 रसों का वर्णन करने वाले सभी ग्रन्थों को अप्रमाण कहो? इस प्रकार आक्षेप करने से जैनों के पास क्या बचेगा? जरा सोचो ! अतः विद्यानुवादादि सभी ग्रन्थ जिनवाणी होने से ज्ञेय को ज्ञेय रूप में, हेय को हेय रूप में और उपादेय को उपादेय रूप में विश्वास करने योग्य हैं, आचरण में लाने योग्य हैं।

प्र.1058–द्वादशांग वाणी में जो विद्यानुवाद बताया है वह भिन्न है और जो वर्तमान में है वह भिन्न है अतः यह वर्तमान का विद्यानुवाद अप्रमाण होने से पूज्य क्यों?

उत्तर–नहीं, आपका निर्णय गलत है यह वही विद्यानुवाद है जो जिनेन्द्र भगवान ने उपदेश दिया था। ये मंत्र परंपरागत अनेक आचार्यों ने संग्रह कर, एकत्रित कर ग्रंथ रूप में समाज को दिये किंतु वर्तमान में संग्रहकर्ताओं ने, छपवाने वालों ने समझाने में थोड़ी कमी कर दी कि यदि मंत्रों की उत्पत्ति स्थान, विषय विभाजन तथा कौन सा मंत्र हेय है, उपादेय है, क्या फल है, कौन सम्यक् और मिथ्या है? आदि समझा देते तो यह शंका ही नहीं होती कि यह विद्यानुवाद प्रमाण है या अप्रमाण है।

प्र.1059–जानते, समझते, समझाते हुए भी वासना साथ क्यों नहीं छोड़ पाती?

उत्तर–अनादि काल की विषय वासना एकदम से कैसे साथ छोड़ देगी? जैसे बहुत समय से मल मूत्र से भरा घड़ा बहुत बार धोने पर भी अपनी दुर्गंध, दुर्वासना को नहीं छोड़ पाता इसी प्रकार अनादि काल की विषय वासना को छोड़ने का अनेक बार प्रयास करने पर भी दूर नहीं हो पाती।

प्र.1060–चौहदवें गुणस्थान का काल पाँच लघु स्वरों के उच्चारण के काल के बराबर है तब क्या इतने पूरे समय में 85, 84, 83, 82 प्रकृतियों का क्षय हो जाता है?

उत्तर–नहीं, चौहदवें गुणस्थान के पूरे समय में उक्त प्रकृतियों का क्षय नहीं होता है किन्तु प्रति समय पूर्ण संवर के साथ साथ असंख्यात गुण श्रेणी निर्जरा होती जाती है किन्तु जब केवल चौहदवें गुणस्थान का आयुकाल सिर्फ दो समय शेष बचता है तब उपान्त्य समय में 72 तथा अन्तिम समय में 13,12,11,10 प्रकृतियों का क्षय होता है जिनके तीर्थंकर प्रकृति और आहारकद्विक की सत्ता है, वे अंतिम समय में 13 का क्षय करते हैं, जिनके तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं है वे 12 का क्षय करते हैं, जिनके तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता है किन्तु आहारक द्विक की सत्ता नहीं है वे 11 का और जिनके तीर्थंकर प्रकृति तथा आहारक द्विक की सत्ता नहीं है वे 10 का क्षय करते हैं। मनुष्यगत्यानुपूर्वी कर्म प्रकृति का उदय विग्रहगति में होता है। चौदहवें गुणस्थान में विग्रहगति न होने से इसका द्रव्य स्तबुक संक्रमण के द्वारा पहले ही 72 कर्म प्रकृतियों में मिलकर नष्ट हो जाता है तब चरम समय में इस दृष्टि से मनुष्यगत्यानुपूर्वी का सत्व न होने से नव प्रकृतियों का क्षय होता है। जिन ग्रंथकारों ने 14वें गुणस्थान के अंत

समय तक मनुष्यगत्यानुपूर्वी का सत्व माना है उनकी अपेक्षा 10 का क्षय होता है क्योंकि आनुपूर्वी के अनुसार ही आत्मा का आकार रहता है इस दृष्टि से सिद्धात्मा का आकार पुरुषाकार कहा है।

प्र.1061–वास्तव में सम्यग्दर्शन अधिगमज ही होता है तब निसर्गज नाम क्यों दिया?

उत्तर–वास्तव में सम्यग्दर्शन के ये भेद नहीं हैं क्योंकि सम्यक्श्रद्धान मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव करने पर होता है किन्तु उत्पत्ति की अपेक्षा ये भेद हैं। परोपदेश पर निमित्त की अपेक्षा अधिगमज सम्यग्दर्शन और परोपदेश के बिना स्वनिमित्त से हो वह निसर्गज सम्यग्दर्शन कहा है।

प्र.1062–वैर एक तरफा होता है या दोनों तरफ से अथवा वैर करने वाला तो बाह्य निमित्त है और अंतरंग निमित्त क्रोध कषाय का उदय ही है क्या?

उत्तर–नहीं, वैर एक तरफा नहीं होता है जैसे एक हाथ से ताली नहीं बजती, केवल हल्दी से लाल रंग नहीं आता, अकेले से संतान पैदा नहीं होती आदि इसी तरह अकेला व्यक्ति झगड़ा नहीं कर सकता। अकेला किससे झगड़ा करेगा? किससे वैर बाँधेगा? अतः देखने लिखने वाले एक को कहेंगे। दर्शक या लेखक विशेष पात्र को या महापुरुषों को न नीचे गिराते हैं, न नीचा दिखाते हैं, न उनके दोषों का वर्णन करते हैं किन्तु छोटों को ही दोषी ठहराते हैं ऐसी लोकनीति है। दोष दोनों का होता है, दोनों के वैर में थोड़ा आगे पीछे क्रम तो हो सकता है पर सर्वथा एक ही दोषी हो और एक निर्दोष ऐसा कभी नहीं हो सकता। परस्पर में एक दूसरे के लिए समुत्पत्ति कषाय रूप में बाह्य निमित्त हैं तथा दोनों का अंतरंग निमित्त क्रोध कर्म का उदय या उदीरणा है अन्यथा परस्पर में समुत्पत्ति कषाय बन नहीं सकती। सूत्रकार ने छठवें अध्याय में **'अधिकरणं जीवाजीवाः'** जब जीव और अजीव के माध्यम से आश्रव बंध होता है तो उदय भी जीव अजीव पदार्थों के निमित्त से होता है। जय धवला पुस्तक 10 में, चूर्णिसूत्र में तथा मूल कषायपाहुड में **'खेत्तभव काल पोग्गल ट्ठिदि विवागोदय खयो दु'।।59।।** पूर्वबद्ध कर्म अपना फल द्रव्य, क्षेत्र, काल और भव के निमित्त से समय पर उदय रूप से तथा समय के पहले उदीरणा रूप से देते हैं अब यदि सर्वथा कर्म का फल अपने आप प्राप्त होता है तो समुत्पत्तिकषाय, देशनालब्धि, स्वाध्याय, वैयावृत्ति, दान पूजादि सप्रतिपक्ष ये सब व्यर्थ हो जाते हैं फिर कृतघ्नी कौन? शत्रुतामित्रता, गुरुशिष्यादि व्यवहार तथा कार्यकारण व्यवस्था बन नहीं सकती सब मिथ्या सिद्ध होगी।

प्र.1063–नित्य देवदर्शन की यदि ऐसी आदत बन जाय कि जल बिन मछली की तरह आकुलता होने लगे तो देवदर्शन निराकुलता का कारण कैसे कहा जाय?

उत्तर–**'तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन'।** हे भगवन! जिस प्रकार पानी के बिना मछली तड़पती है उसी प्रकार मैं भी आपके बिना आकुल व्याकुल हो रहा हूँ पर यह आकुलता व्याकुलता काम भोग, विषय वासना की न होने से, आत्म खोज के लिये, शाश्वत सुख शान्ति की प्राप्ति के लिये होने से दुःखदायक नहीं है, पापनाशक है, कष्ट निवारक है जैसे वस्त्र को धारण करने की क्रिया है तो वस्त्र को उतारने की भी क्रिया है। एक क्रिया कर्मों को बाँधती है तो दूसरी क्रिया कर्मों को क्षय कराने वाली है, विषय भोगों की आकुलता संसार में भ्रमण कराती है तो देवदर्शन आदि की आकुलता संसार बन्धन से, मलीनता से बचाती है, स्वाधीनता प्राप्त कराती है। इसी प्रकार धर्म संबंधी सभी विचारों को समझना चाहिये। मोक्षमार्गस्थ धर्म की सभी चिन्तायें धर्मध्यान और भोगविलास संबंधी चिंतायें आर्त, रौद्रध्यान कहलातीं हैं अतः देवदर्शन की आकुलता निराकुलता ही है।

प्र.1064–घर से मन्दिर दूर है तब दर्शन करने नहीं जायें तो चल सकता है क्या?

उत्तर–नहीं, जब बाजार, दुकान, ऑफिस, बस स्टैंड या रेलवे स्टेशन, पुलिस चौकी, अस्पताल आदि कितनी ही दूर हों तो वहाँ जाते ही हैं तभी कार्य में सफलता मिलती है। पाप कार्यों को यथास्थान पहुँचकर सम्पन्न करते हैं तो पाप कर्मों को काटने के लिये, पुण्य की वृद्धि के लिये, अपने को पवित्र बनाने के लिये धर्म स्थान पर क्यों न जाया जाये? धर्म के लिये बहाना बनाते हो तो पाप के लिये भी सर्वत्र बहाना बनाओ। यदि बीमारी आई या कोई भयंकर कष्ट आये तो दूसरों को दवाई खिला देने से या लगा देने से क्या बीमारी दूर हो सकती है? अरे कहावत है **"बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता"** अतः जब पाप के लिये बहाना नहीं बनाते हो तो धर्म के लिये बहाना क्यों बनाते हो?

प्र.1065–आजकल वैज्ञानिक जीव के एक सेल–जिन से ही (तज्जातिय क्लॉन पैदा करना) जीव पैदा कर रहा है तो यह स्त्री पुरुष के संसर्ग बिना पैदा होने से गर्भज हो नहीं सकता तथा संमूर्च्छनज नहीं मान सकते क्योंकि इसका जीवन सिर्फ मध्यम अंतर्मुहूर्त है तब यह कौन सा जन्म कहलायेगा या किसके अंतर्गत आयेगा?

उत्तर–मनुष्यों का जन्म दो प्रकार से होता है। **गर्भजन्म** :–जो रजो वीर्य से होता है, **सम्मूर्छनजन्म** :–जो रजोवीर्य के बिना शरीर के योग्य स्त्री पुरुषों के मलिन स्थानों में पुद्गल वर्गणाओं का संचय कर जन्म धारण कर लेने को सम्मूर्छन जन्म कहते हैं। यह नियम से नपुंसक वेदी एक मुहूर्त में 8 बार जन्म मरण करने वाला (बिना व्याघात के इनका जीवन काल 6 मिनट का होता है। यदि इनके जीवन काल में ही शरीर में घर्षण, कंपन पैदा किया तो इसके पहले भी मृत्यु कर लेते हैं अर्थात् 6 मिनिट के पहले भी अकाल मरण को प्राप्त हो जाते हैं) लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य होता है जो एकमात्र पापी जीव ही है। जिस प्रकार आठों कर्मों की कर्म वर्गणायें एकसाथ मिश्रित होकर, मिलकर रहती हैं, प्रत्येक का स्वभाव अलग अलग है किन्तु एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध की अपेक्षा एकरूप ही हैं अथवा एक ही प्रकार के भोजन को स्त्री पुरुष दोनों करते हैं, उसी भोजन से पुरुष की उदराग्नि के अनुसार वीर्य बनता है और स्त्री की उदराग्नि के अनुसार रज–रक्त बनता है। स्त्रियों के वीर्य की वर्गणायें अव्यक्त रहतीं हैं और रक्त की वर्गणायें व्यक्त हो जाती हैं। इसी तरह पुरुषों के रक्त की वर्गणायें अव्यक्त रहती हैं और वीर्य की वर्गणायें व्यक्त हो जाती है पर रजोवीर्य की वर्गणायें एक व्यक्त और एक अव्यक्त रूप से दोनों रहती हैं। इस अवस्था में जो वर्गणायें अव्यक्त हैं सो वैज्ञानिक उस अव्यक्तशक्ति को कृत्रिम सामग्री के माध्यम से, केमिकल्स से व्यक्त कर गर्भ धारण करा देते हैं सो यह गर्भजन्म ही है। गर्भजन्म रजो वीर्य के मिश्रण से होता है। केवल रज या वीर्य से गर्भ धारण की वार्ता सामान्य प्रजा को भ्रम पैदा कर रही है पर यथार्थ आगम पद्धति का ज्ञान होने से भ्रम पैदा नहीं हो सकता है अथवा भूमि में सभी प्रकार के धान्यों की, फलों की, पुष्पों की औदारिक वर्गणायें मौजूद हैं किंतु भूमि में जैसा बीज डाला जायेगा वैसी ही भूमिगत वर्गणायें, पुद्गल पिंड उस बीज के अनुसार व्यक्त होकर फूल, फल या बीज रूप से परिणत हो जातीं हैं, शेष अव्यक्त रहती हैं और भी इसी तरह अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। अतः भौतिकवाद की वार्ताओं को सुनकर आगमवेत्ताओं को भ्रमित नहीं होना चाहिए, न संदेह करना चाहिए। एक ही स्त्री या पुरुष के सेल से, बनाये गये क्लॉन से मनुष्य की उत्पत्ति करना कोई आश्चर्यकारी नहीं है क्योंकि 14लाख योनियों में से कोई एक योनि स्थान हो सकता है। जिन पुद्गल वर्गणाओं से मनुष्यों के योनिस्थान की रचना होती है वे पुद्गल वर्गणायें 14लाख कुलकोटी बताई हैं। मनुष्यों के जन्मस्थान का आकार बनना योनिस्थान है और उत्पत्ति स्थान की रचना होना कुलकोटी है।

प्र.1066–यदि संमूर्च्छन जन्म है तो पूर्ण विकसित होने से क्या लब्ध्यपर्याप्तक है?

उत्तर–अपर्याप्त नामकर्म के उदय से अपर्याप्तक जीव पूर्ण विकसित होने के पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। पर्याप्त नामकर्म के उदय से संमूर्च्छनज जीव पूर्ण हो जाता है जो अंतर्मुहूर्त में या बाद में यदि होनहार अच्छा है तो सम्यक् रत्नत्रय को, देशसंयम को, अवधिज्ञान को प्राप्त कर, पालन कर, सल्लेखना पूर्वक मरण कर सोलहवें स्वर्ग तक जा सकता है और होनहार बुरा है तो दुर्लेश्याओं से, विषय कषायों से युक्त हो मरण कर सातवें नरक तक जा सकता है संमूर्च्छन पर्याप्तक सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच चारों गतियों में जा सकता है अथवा संमूर्च्छनज होने पर भी पूर्ण विकसित होने से पर्याप्तक ही होगा, अपर्याप्तक नहीं।

प्र.1067–गायादि का दूध अन्तर्मुहूर्त के अंदर छानकर न उबाला जाय तो उसमें तज्जाति के जीव उत्पन्न होने से वे सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से क्यों नहीं दिखायी देते?

उत्तर–नहीं, अंगुल के असंख्यातवें भाग अवगाहना होने से सम्मूर्च्छन लब्ध्यपर्याप्तक जीव इंद्रियगोचर और यंत्रगोचर नहीं होते हैं।

प्र.1068–अंतरायकर्म घातियाकर्म होने से अघातियाकर्मों के पहले क्षय को प्राप्त होता है तब मोक्षशास्त्र में कर्मों के नामोल्लेख के अन्त में क्यों ग्रहण किया?

उत्तर–अन्तराय कर्म यद्यपि घातिया कर्म है पर वह घातने वाली सामग्री के बिना किसको घातेगा? इस कारण फलदान की अपेक्षा शरीरादि के होने पर ही घातेगा अतः अन्त में रखा तथा पहले क्षय होने का कारण यह है कि मोहनीय

कर्म राजा है तो अन्तराय कर्म बड़ा सैनिक है। राजा के मारे जाने पर सैनिकों को मारने के लिये परिश्रम नहीं करना पड़ता या तो वे स्वयं भाग जाते हैं या आत्म समर्पण कर देते हैं।

प्र.1069–पूर्ण ज्ञानचेतना के स्वामी सिद्धप्रभु होते हैं तो साधक आंशिक ज्ञानचेतना के स्वामी हो सकते हैं क्या?

उत्तर–पूर्ण ज्ञानचेतना के स्वामी सिद्ध भगवन्त होते हैं और इष्टानिष्ट विचार न होने से केवलज्ञान की अपेक्षा सयोगकेवली, अयोगकेवली भी है फिर भी केवलियों के द्रव्य प्राण और भाव प्राणों का सद्भाव होने से कर्म चेतना और कर्मफल चेतना के स्वामी कहे हैं। आ० श्री कुंदकुंद स्वामी ने पंचास्तिकाय में :–

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं।
पाणित्त मदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा।। गाथा 39

अर्थ :–सभी स्थावर जीव इष्टानिष्ट विचारों के बिना कर्मफल चेतना को वेदते हैं। इष्टानिष्ट विचार पूर्वक त्रसजीव कर्मचेतना को वेदते हैं। प्राणीपने के व्यवहार से रहित, गुणस्थानातीत सिद्ध भगवंत ज्ञानचेतना को वेदते हैं, अनुभव करते हैं। जिस प्रकार सूर्य का उदय थोड़ा थोड़ा न होकर पूर्ण रूप से होता है, अग्नि में गर्मी पूर्ण रूप से होती है ऐसे ही ज्ञानचेतना भी एकसाथ एकसमय में पूर्णरूप से होती है।

मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अयोग केवली पर्यंत समस्त शरीरधारी तारतम्यता से वृद्धि के साथ साथ मोक्ष के साधक हैं। अब देखना है कि ज्ञानचेतना के साधक सर्वज्ञकेवली हैं या छद्मस्थ, छद्मस्थों में वीतरागी हैं या सरागी, सरागियों में भी निःप्रमादी हैं या प्रमादी, प्रमादियों में भी सकलसंयमी हैं या देशव्रती, देशव्रतियों में भी गृहत्यागी हैं या गृहरागी, गृहरागियों में भी सम्यग्दृष्टि हैं या मिथ्यादृष्टि ये सभी तारतम्यता से साधक हैं। ज्ञानचेतना में यदि आश्रवबंध होता है तो सिद्धों में भी होना चाहिए पर नहीं होता है। ज्ञानचेतना निराश्रव है। कर्मचेतना कर्मफल चेतना आश्रव सहित है वास्तव में छद्मस्थों के एकसाथ एक समय में एक जीव के व्यक्त रूप में अनेक चेतनायें नहीं हो सकती हैं, एक ही होती है। छद्मस्थों के आंशिक ज्ञानचेतना नहीं होती क्योंकि ज्ञान पर पदार्थों का ज्ञायक है।

प्र.1070–स्मृति का मस्तिष्क में एक केन्द्र होता है जो किन्हीं कारणों से नष्ट हो जाने पर स्मृति नष्ट हो जाती है तो क्या मतिज्ञान का भी नाश माना जायेगा?

उत्तर–न्याय ग्रन्थों में अधिकतर शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ किया गया है पर वास्तव में स्वसमय के व्याख्यान की अपेक्षा त०सू० में **"मतिः स्मृतिः संज्ञा चिंताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्"।।13।।** स्मृतिज्ञान और मतिज्ञान को एकार्थवाची ही कहा है। मतिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम समस्त आत्म प्रदेशों में होता है किंतु प्रदेश नियत स्थानों में आने पर ही इन्द्रियों के माध्यम से अपना विषय बनाते हैं। जैसे अपने में देखने की शक्ति है पर कोठरी के अंदर बंद होने से कैसे देखें? देखने का कार्य तो खिड़की दरवाजे से ही कर सकते हैं सर्वत्र से नहीं। इसी तरह आत्मप्रदेशों में समस्त शक्तियों की सामर्थ्य होने पर भी नियत स्थानों से ही अपना कार्य करने में समर्थ है अन्यत्र से नहीं। स्मृति का मस्तिष्क में केन्द्र जैनेतरों ने माना है, जैनों ने नहीं अथवा स्मृतिज्ञान का केन्द्रस्थान यदि मस्तिष्क माना जाये तो शरीर के संपूर्ण अंशों से सुख दुःख का अनुभव नहीं हो सकता है। आत्मा के एक एक प्रदेश में अनंत अनंत गुण पाये जाते हैं अन्यथा स्वभाव स्वभाववान् की व्यवस्था नहीं बन सकती जिस स्थान से आत्म प्रदेश हट चुके हैं उस स्थान में तत्संबंधी किसी भी प्रकार की वेदना, अनुभव, जानकारी नहीं हो सकती जैसे लकवा लग जाने पर वहाँ से आत्म प्रदेश हट जाते हैं तो उस स्थान पर सर्दी गर्मी का, सुख दुःख का, हल्का भारी का, शब्द गंध रूप रस, छेदन भेदनादि का ज्ञान नहीं हो पाता।

प्र.1071–निगोदिया जीव किस पुरुषार्थ से मनुष्य भव प्राप्त करता है?

उत्तर–निगोदिया जीव के जितनी मात्रा में मोह का उदय चल रहा है किन्तु कुछ हीन अंशों में अशुभ लेश्याओं से परिणत अवस्था में दर्शनोपयोग से आत्मसंवेदन करता हुआ मनुष्यायु का बन्ध कर लेता है क्योंकि मनुष्यायु के आश्रव का मूल कारण **'अल्पारंभपरिग्रहत्त्वं मानुषस्य।।17।।'** निगोदावस्था में कषायों की तीव्रता का अभाव ही अल्पारंभ तथा अल्प परिग्रह है। त० सू० अ० 6।

प्र.1072–उपसर्ग और परीषह में क्या अंतर है?

उत्तर–अंतरंग की अपेक्षा घातिया कर्मोदय और उदीरणा की अपेक्षा उपसर्ग और परीषह में कोई अन्तर नहीं है किन्तु

बहिरंग की अपेक्षा अन्तर है। सामान्यतया उपसर्ग में पर की अपेक्षा और परीषह में स्वपर की अपेक्षा होती है यदि सर्वथा उपसर्गों को परकी और परीषहों को स्वकी अपेक्षा माना जाये सो ठीक नहीं हैं क्योंकि वधपरीषह, बन्धनपरीषह, दंशमशकपरीषह, आक्रोशपरीषह, नग्नपरीषह, स्त्री परीषह और याचनापरीषह, कौन चाहेगा की मैं नग्न हूं तो मेरे में विकार लज्जा उत्पन्न हो, स्त्री सामने आकर हावभाव दिखाकर कामवासना पैदा करे, कोई आकर बांधे, मारे काटे, घसीटे आदि। अदर्शन परीषह कौन महाव्रती दिगम्बर साधु चाहेगा कि मैं मोक्षमार्ग में, रत्नत्रय में, देवशास्त्रगुरु में और अपनी आत्मा में अविश्वास अश्रद्धान पैदा करुं या मेरे में अविश्वास उत्पन्न हो आदि कारणों से परीषहों को भी स्वकृत और परकृत कहा गया है अथवा बाहर में जो आपत्ति शरीर को स्पर्श किये बिना दूर से कष्ट पहुँचाये उसे उपसर्ग तथा जो आपत्ति शरीर को स्पर्श कर आत्मसात् कर ले, शरीर के अन्दर प्रवेश कर जाये उसे परीषह कहते हैं यही अन्तर है अथवा उपसर्ग पर की अपेक्षा तथा बहुलता की अपेक्षा परीषहों को स्वीकृत कहा है यह भी अन्तर हो सकता है।

प्र.1073–आजकल मानव दानपूजा, गुरुसेवा आदि करता हुआ भी दुःखी क्यों है ?

उत्तर–आजकल अनेक दातागण दानपूजा, गुरुसेवा, यात्राप्रतिष्ठा करते कराते हुए भी दुःखी होने का, आपत्तियाँ प्राप्त होने का, बदनामी का मूल कारण अविवेकता, मनमानी, पंथवाद, पक्षपात, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना आदि से आक्रांत होकर तन मन धन और समय खर्च करते हुए भी सफलता नहीं पाते किन्तु निन्दा, अपमान आदि को ही पाते हैं। अंतरंग में दुर्भावना की पुट होने के कारण बाहर में सत्कार्य करते हुए भी पतित हैं। पतित होने से ही पाप को बाँधते हैं जिससे मानसिक शांति को चाहते हुए भी प्राप्त नहीं कर पाते जैसे नपुंसक स्त्रीसुख को चाहता हुआ भी प्राप्त नहीं कर पाता अथवा मलिन वस्त्र में गांठ लगा देने के बाद फिर कितना ही भट्टी में डालो पीटो पर वस्त्र साफ नहीं होता। इसी तरह मन में दुर्भावना की गांठ होने से दानपूजा आदि करने पर भी सफलता नहीं मिलती।

प्र.1074–मुँहपट्टी वालों से किसी ने पूंछा कि आप मुँहपट्टी क्यों बाँधते हो?

उत्तर–उन्होंने कहा कि हम वायुकायिक जीवों की रक्षा करने के लिये मुँहपट्टी बाँधते हैं।

प्र.1075–नाक मुँहादि से हवा के निकलने से मुँहपट्टी के कारण जीवरक्षा कैसे होगी?

उत्तर–नाक से, मुँह से गर्म हवा निकलती हुई सीधी जाने से जीव जल्दी मर जायेंगे तथा नीचे या तिरछी जाने से कुछ ठण्डी हवा हो जायेगी जिससे जीव कम संख्या में मरेंगे। नाक से हवा तो निकलती ही है उससे जीव मरेंगे ही क्योंकि पट्टी नाक के नीचे मुँह पर लगी है नाक खुली रहती है।

प्र.1076–यदि आप हिंसा से भयभीत हैं तो नाक, मुँह आदि को ही बन्द कर दो तब एक भी जीव नहीं मरेगा ऐसा करो?

उत्तर–नाक मुँह बन्द करने देने से अपना ही जीवन समाप्त हो जायेगा अतः नाक मुँह बन्द नहीं कर सकते।

प्र.1077–क्यों नहीं कर सकते हो जब आपने षट्काय के जीवों की रक्षा करने का संकल्प किया है तो अपने जीवन की चिन्ता क्यों?

उत्तर–अपनी रक्षा के साथ–साथ दूसरों की रक्षा करना भी हमारा कर्तव्य है।

प्र.1078–आप रक्षा की बातें करते हो और हिंसा का काम करते हो, आपने मुँहपट्टी बाँध ली तब बोलते समय मुँह से थूँक निकलकर पट्टी में लग गया वह जल्दी नहीं सूखेगा अन्तर्मुहूर्त के अन्दर संख्यात असंख्यात त्रसों के जनम मरण से अहिंसादि महाव्रत कैसे? अतः बोलने से, सूंघने से जीव विराधना होती ही हैं यदि जीवों की रक्षा करने का संकल्प किया है तो प्रमाद क्यों नहीं छोड़ते हो?

उत्तर–तब फिर आप ही बताओ कि वायुकायिक जीवों की रक्षा कैसे हो? सुनो मौन रखो, श्वांसोच्छ्वास बन्द करो यदि मौन रखने की और श्वांसोच्छ्वास को रोकने की ताकत नहीं है तो प्रमाण नय निक्षेप से निर्दोष सिद्ध भाषा समिति पूर्वक हित मित प्रिय वचन बोलो तब कैसे जीवहिंसा होगी? यदि केवल श्वांसोच्छ्वास से या बोलने से हिंसा होती है तो सयोगकेवली के धर्मोपदेश से, श्वांसोच्छ्वास प्राण से भी हिंसा पाप होने के कारण अहिंसा महाव्रती नहीं हो सकते या वे भी मुँहपट्टी बाँधते होंगे, खोलते होंगे तो प्रमादी क्यों नहीं? कषाय युक्त क्यों नहीं ? केवली के मोह

कर्म का सद्भाव होने से वीतराग सर्वज्ञ कैसे? फिर केवलियों में और सामान्य मनुष्यों में क्या अंतर रहा? अतः निष्कर्ष रूप में समस्त अणुव्रत तथा महाव्रतों का पालन करने के लिये प्रमाद का, कषाय का त्याग करना, सावधानी वर्तना परमावश्यक है क्योंकि जब समस्त पाप प्रमाद से होते हैं तो प्रमाद को छोड़ने से सावधानी से पाप नहीं होंगे, धर्म की रक्षा होगी। अतः मुँहपट्टी बांधने से वायुकायिक जीवों की रक्षा नहीं होती है किंतु प्रमाद को छोड़ने से रक्षा होती है क्योंकि समस्त पापों का प्रधान कारण प्रमाद ही है दिनचर्या नहीं।

प्र.1079–मुँहपट्टी से जीवों की रक्षा नहीं होती तो क्या हेतु बनायें जो निर्दोष हो?

उत्तर–संक्रामक रोग से बचने के लिये, अनुपसेव्य अभक्ष्य भक्षण से बचने के लिये, अशुद्धि से बचने के लिये, अविनय से बचने के लिये मुँहपट्टी बाँधनी चाहिये इससे स्व और पर की रक्षा होती है, वैर विरोध नहीं होता है, प्रेम बना रहता है, सावधानी वर्तने से प्रशंसा होती है।

प्र.1080–मुँहपट्टी के कारण संक्रामक रोग से कैसे बच सकते हैं?

उत्तर–बिना मुँहपट्टी के आमने सामने निकट में रहकर परस्पर में वार्तालाप के समय मुँह से, नाक से रोग के कीटाणु हवा के साथ निकलकर सामने वाले के मुँह और नाक से पेट में प्रवेश कर नाना प्रकार के भयंकर रोग उत्पन्न करते हैं जिससे तन, मन, धन, धर्म नष्ट होते हैं और मुँह नाक पर आवरण होने से रोग के कीटाणु प्रवेश न करने से संक्रामक रोग उत्पन्न नहीं होते हैं तथा सभी की रक्षा होती है।

प्र.1081–मुँहपट्टी के धारण करने से अनुपसेव्य अभक्ष्य भक्षण से कैसे बच सकते हैं?

उत्तर–मुँहपट्टी के बिना आमने सामने होकर परस्पर में वार्तालाप, हँसी मजाक के समय मुँह से थूँक आदि निकलकर परस्पर के मुँह में चला जाता है। थूँक, लार, मूत्र आदि शरीर के मल होने से अनुपसेव्य अभक्ष्य कहे जाते हैं जब अपना ही थूँक पुनः चाँटने से घृणा आती है तो दूसरे का थूँक चाँटने में घृणा क्यों न आयेगी? झूठ बोलने वाले को कह देते हैं कि तुमने थूँक करके चाँट लिया अतः मुँह का मल कफ लार नाना गंध दुर्गंध युक्त होने से मन और स्वास्थ्य की हानि होती है, प्रसन्नता नष्ट हो जाती है, प्रेम टूट जाता है आदि हानि होती है और मुँहपट्टी बाँधने से ये दोष नहीं आते क्योंकि मुँहपट्टी के कारण थूँक आदि परस्पर के मुँह में न आने से अनुपसेव्य अभक्ष भक्षण से बच जाते हैं.।

प्र.1082–मुँहपट्टी के कारण अशुद्धि से कैसे बच सकते हैं और क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर–मुँहपट्टी होने से बोलने पर थूँक देव शास्त्र गुरु के ऊपर नहीं पड़ेगा किन्तु मुँहपट्टी पर ही लगने से न अशुद्धि होगी, न पाप होगा, सावधानी और विवेक होने से सातिशय पुण्य कर्म का आश्रव बन्ध होगा, नवीन पाप कर्म का संवर, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा, पाप कर्मों का स्थितिकाण्डकघात, अनुभाग काण्डकघात, नवीन पाप कर्मों का कम मात्रा में स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और अधिक मात्रा में पुण्य कर्मों का स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध होना आदि उत्तम फल प्राप्त होते हैं।

प्र.1083–मुँहपट्टी के कारण अविनय से कैसे बच सकते हैं और क्या हानि हैं?

उत्तर–व्यक्ति अंहकारी, मानी अनाज्ञाकारी होने से कर्तव्यहीन होता है। गुरुओं के ऊपर थूँक आदि डालने से नम्रता कैसे? छोटों पर गिराने से, अपमान करने से घमण्डी कहलाया। बाह्य में देखने पर मानी ने दूसरों का अपमान किया और अंतरंग दृष्टि से देखने पर अपना ही अपमान किया, अपना ही कल्याण का मार्ग खोया। यह मान महान विषकूप के समान है। विष एक ही भव बिगाड़ता है तो मान अनेक भवों को बिगाड़ता है आदि हेतुओं से मुँहपट्टी लगाने पर कोई बाधा नहीं आयेगी। वायुकायिक जीवों की रक्षा का हेतु बनाने से सदोष है जो लोक व्यवहार से, आगम से, और तर्क से भी दोष है।

प्र.1084–धनवान कहते हैं कि हमारे ऊपर भगवान की, ईश्वर की, अल्लाह आदि की अच्छी कृपादृष्टि है, हमें कोई दुःख नहीं सब कुछ है, और गरीब कहते हैं कि हमारे ऊपर प्रभु की कृपादृष्टि नहीं है सो ठीक है क्या?

उत्तर–प्रश्नानुसार भगवान आदि में रागीद्वेषीपने का प्रसंग आता है जैसे आपके चार पुत्र हैं, अब आप चारों पुत्रों को समान दृष्टि से देखेंगे या असमान दृष्टि से। भिन्न भिन्न दृष्टिवाले पिताजी को संताने क्या कहेंगी कि पिताजी की निगाह ठीक नहीं है, पक्षपाती हैं, क्या हम इनके पुत्र नहीं हैं जो ऐसा पक्षपात करते हैं, काहे के पिताजी? इसी तरह सूर्य,

चंद्र, मेघ, वृक्ष आदि बिना भेद किये सब को एक समान प्रकाश, चांदनी, पानी, छाया, हवा प्रदान करते हैं तो ऊपरवाला भेदभाव, पक्षपात क्यों करता है?, गरीब अमीर, ऊँच नीच, सज्जन दुर्जन, मांसाहारी शाकाहारी, चोर डाकू, ईमानदार बेईमान, पापी धर्मात्मा, गृहस्थ साधु, राजा रंक, नौकर मालिक आदि भेद क्यों करता है? एक के ऊपर कृपा दृष्टि और दूसरे पर नहीं। जब ये तुच्छ पदार्थ पक्षपात नहीं करते तो ऊपर वाला पक्षपात क्यों करता है? निष्कर्ष रुप में **'जैसी करनी वैसी भरनी'** जो जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है उसमें किसी का हस्तक्षेप नहीं अतः सत्फल पाने के लिये अच्छा कार्य करो बुरा काम छोड़ो क्योंकि प्रत्येक लौकिक या लोकोत्तर कार्यों की सिद्धि के लिए भाग्य और पुरुषार्थ ये दोनों ही अनुकूल होने चाहिये। हाँ, इतना अवश्य है कि जहाँ पर भाग्य मुख्य है प्रधान है तो पुरुषार्थ गौण होगा, अप्रधान होगा और यदि पुरुषार्थ मुख्य है प्रधान है तो भाग्य गौण होगा, अप्रधान होगा पर दोनों ही होंगे, एक से कार्य नहीं होगा। जिस कार्य की सिद्धि में मन वचन काय की क्रिया हो रही है वह कार्य पुरुषार्थ साध्य है और जिस कार्य की सिद्धि में स्वप्नवत् मन वचन काय की क्रिया नहीं हो रही है वह कार्य भाग्य से सिद्ध है।

प्र.1085–यदि ऊपर वाले की कृपा से परिग्रह प्राप्त हुआ है तो परिग्रह को पाप क्यों कहा?

उत्तर–जब पाप पाँच हैं और अंतिम पाप का नाम परिग्रह है तो ऊपर वाला पाप देता है तो पुण्य कौन देगा? जब ऊपरवाले से पाप का फल नरक, तिर्यंच गति के नाना दुःखों की प्राप्ति होती है उसी से धर्म सुख प्राप्त होता है तो स्वयं का पुण्य पाप व्यर्थ ठहरता है ऊपर वाले को ही देना है तो स्वयं को पुण्य पाप क्यों करना पड़े? यदि अपने ही पुण्य पाप का फल भोगना है तो बीच में ऊपर वाले को क्यों लाना पड़े? जैसे लोक में कोई बड़े या सगे सम्बन्धी पूछते हैं यह किसका है तो आप कहते हैं सब आपका है, पुत्र पुत्री के सम्बन्ध में पूछता है तो आप कहते हैं कि आपके हैं मकान दुकान भी सब आपके हैं तो क्या यह सही है यदि बच्चे उसके हैं तो बच्चों की माँ किसकी? फिर आपकी पत्नी बच्चे क्यों? यदि दोनों की पत्नी है तो वेश्या किसे कहोगे? पतिव्रत, पत्नीव्रत भी कहाँ रहा? कुछ श्रावकगण अपने दिगम्बर गुरुओं से भी कह देते हैं कि धन की, घर की, दुकान की, पुत्र पुत्रियों की प्राप्ति शादी आदि आपके आशीर्वाद से हुई है जरा सोचो यदि ये सामग्रियाँ गुरुओं ने दी हैं तो उन्हें बाल ब्रह्मचारी, निःपरिग्रही क्यों कहा जाये? उन्होंने कारित अनुमोदना से अपने व्रत को नष्ट कर डाला, अनाचार कर डाला अतः यह सब अपने कर्म के फल को दूसरे का कहना डालना लोकाचार है, यथार्थ नहीं।

प्र.1086–यह धन दौलत, परिवार आदि सामग्री पुण्य से प्राप्त होती है या पाप से?

उत्तर–इन्द्रिय सुख की बाह्य सामग्री पुण्योदय से प्राप्त होती है, पापोदय से नहीं यदि पापोदय से प्राप्त होती हैं तो समस्त प्राणियों के होनी चाहिये किंतु ऐसा है नहीं। लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से तथा सातावेदनीय आदि पुण्य प्रकृतियों के उदय से प्राप्त होती है अतः ये पुण्य के फल हैं किन्तु इन सामग्रियों को माया और लोभ कषाय, आहार और मैथुन संज्ञा आदि पाप परिणामों से स्वीकार किया जाता है अर्थात् प्राप्त होना पुण्य का और स्वीकार करना पाप का फल है अथवा माला के दानों की तरह एक पाप या पुण्य के आने पर समस्त पाप या पुण्य आ जाते हैं और एक पाप या पुण्य के निकल जाने पर समस्त पाप या पुण्य निकल जाते हैं अतः लोकनीति लोक व्यवहार के अनुसार विश्वास मत कर लेना अन्यथा पतन होना अवश्यंभावी है।

प्र.1087–आज का मानव दूसरों को दुःखी देखकर प्रसन्न क्यों होता है?

उत्तर–अंतरंग में रौद्रध्यान तथा हास्य रति आदि राग प्रकृतियों का उदय होने से दूसरों को अधोगामी, कलह प्रिय नारदों की तरह दुःखी देखकर, सुनकर प्रसन्न होता है यह भोला प्राणी समझता है कि ये अघट घटनायें इनके ऊपर घटी हैं हमारे ऊपर कभी नहीं घटेगीं किंतु जब ये ही घटनायें अपने ऊपर घटती हैं तब रोता है यह बहुत बुरा हुआ अब ऐसा कर्म नहीं करेंगे।

प्र.1088–आज का मानव दूसरों को सुखी देखकर दुःखी क्यों होता है?

उत्तर–अंतरंग में क्रोधकषाय का उदय होने पर दूसरों का सुख सहन न होने से और असाता कर्म का उदय होने से दूसरों की सुख संपन्नता को देखकर, सुनकर दुःखी होता है अर्थात् आज का मानव अपने दुःख से जितना दुःखी नहीं है उससे कई गुणा अधिक दूसरों को सुखी देखकर सुनकर दुःखी है।

प्र.1089–आज का मानव अनाज्ञाकारी क्यों होता जा रहा है?

उत्तर–अंतरंग में मानकषाय का तीव्रोदय होने से, दूसरों के वचनों का महत्व न समझने से अनाज्ञाकारी होता जा रहा

है किंतु जब अपनी आज्ञा का घर में या बाहर कोई पालन नहीं करता है, नहीं मानता है उस समय दुःखी होता है तब वचन का, आज्ञा का कितना महत्व है यह अनुभव में आता है।

प्र.1090–आजकल साधुओं में, आर्यिकाओं में, ब्रह्मचारी आदि त्यागी गणों में वकीलों और वेश्याओं की भाषा का प्रवेश क्यों हुआ?

उत्तर–आजकल साधु, आर्यिका आदि बनने वाले इसी प्रकार के रजोवीर्य से पैदा हो रहे हैं तथा इसी प्रकार की संगति शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और दीक्षा लेने के बाद गुरु से छिपकर अकेले में चंचल मनवालों की संगति से, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना से, उनको सलाहकार, मार्गदर्शक बनाने से, पद के विरुद्ध सामग्री का संग्रह करने से, मनोनुकूल वातावरण बनाने से, हँसी मजाक करने से वकीलों की, वेश्याओं की भाषा ने प्रवेश पा लिया है और इसी भाषा का लौकिक स्वार्थ सिद्धि के लिये प्रयोग करने लगे हैं, लगीं हैं। गुरु भी इन जैसी चर्या चर्चा के कारण पद भ्रष्ट होकर पुनः गृहस्थ बन गये, जो अनेक उदाहरण मौजूद हैं। अतः जो ऐसे वचनों से बचना चाहते हैं वे ऐसी संगति से बचें।

प्र.1091–ऐसी भाषा के प्रयोग का क्या फल है?

उत्तर–ऐसी भाषा का प्रयोग करनेवालों का व्यवहार और विश्वास बालू की दीवार की तरह हो जाता है क्योंकि उनकी भाषा का प्रयोग समझ में आने पर पूर्व का सारा व्यवहार और विश्वास जहर जैसा अनुभव में आने लगता है कि ये कब संकट में फंसा देंगे जिससे श्रद्धा टूट जाती है। अतः जो साधु, आर्यिका आदि पद को अन्त तक निभाना तथा परभव में इनका संस्कार ले जाना चाहते हैं तो वे चंचल चलचित्र वालों की संगति को मन वचन काय से छोड़ देवें।

प्र.1092–जो साधु आर्यिका आदि पतन के मार्ग में नहीं जाना चाहते हैं वे क्या करें?

उत्तर–इस परिवर्तनशील संसार में जो पतन के मार्ग में लगे हैं, लग रहे हैं तो उस उपाय को समझकर पाप से भयभीत होकर, सज्जनों को उस कुशिक्षा, कुसंगति, कुसंस्कार से बचना चाहिये।

प्र.1093–विषय सामग्री का आनंद पुण्योदय से प्राप्त होता है या पापोदय से, क्या फल है?

उत्तर–पुण्य कर्म का फल सामग्री प्राप्त कराना और भोगोपभोगान्तराय रूपी पाप कर्म के क्षयोपशम से और साता वेदनीय पुण्य कर्म के उदय से सामग्री का भोग उपभोग कर आनंद का और असाता कर्म के उदय से कष्ट का अनुभव करता है। अर्जन, ग्रहण, संवर्धन, संरक्षण करना लोभकषाय, परिग्रह संज्ञा, परिग्रहपाप, अशुभलेश्यायें आर्तरौद्रध्यान है। तराजू के पलड़े के समान अधोगति प्राप्त कराना इसका फल है जैसे तराजू का ग्रहण करने वाला पलड़ा नीचे और त्याग करने वाला ऊपर उठता है, वैसे ही विषय सामग्री को इंद्रियसुख के निमित्त ग्रहण करने वाला नीचे और त्याग करने वाला ऊपर जाता है।

प्र.1094–जिस प्रकार वैशेषिकों के यहाँ ग्रहीतग्राही दोष ईश्वर के लिये आता है तो वैसे ही सर्वज्ञ केवली को यह दोष क्यों न आयेगा जब सर्वज्ञ ने एक ही समय में समस्त द्रव्य गुण पर्यायों को जानने के बाद पुनः पुनः वही जान रहे हैं जानने के लिये कुछ बचा नहीं तो क्या ग्रहीतग्राही दोष सर्वज्ञ के लिये नहीं आता है?

उत्तर–जिस प्रकार एकान्त से अजैनों ने वस्तु स्वभाव को एकधर्मी मानकर अनेक प्रकार के दोषों को धारण कर लिया और पिष्टिपेषण, चर्वितचर्वण के समान जाने हुए को पुनः पुनः जानकर ग्रहीत ग्राही दोष को प्राप्त हुए। **कैसे प्राप्त हुये?** जो उन्होंने पहले जाना था वही जाना, नया क्या जाना? जाने हुये को जानने के कारण ग्रहीत ग्राही दोष को प्राप्त हुये उसी प्रकार जब सर्वज्ञ ने एक ही समय में समस्त त्रिकाली द्रव्यगुण पर्यायों को जान लिया नया कुछ बचा नहीं तथा सत् का विनाश और असत् का उत्पाद न होने से पुनः पुनः जानने के कारण ग्रहीत ग्राही दोष कहलाया? पर सर्वज्ञ के लिये यह दोष नहीं आता उनके लिये दोष देना न समझपने का परिचय देना है। भूतकाल में घटी हुई घटनाओं को भूतशक्ति रुप में जानते हैं। यदि भूत पर्याय का वर्तमान में या सर्वकाल अस्तित्त्व है ऐसा व्यक्त रूप में जानने लगें तो उन्हीं सर्वज्ञ ने द्रव्य का लक्षण वर्तमान पर्याय का व्यय और प्रध्वंसाभाव क्यों बताया? अतः भूतकाल के जिस समय में उस पर्याय का व्यक्त रूप में अस्तित्त्व था उसी समय व्यक्त रूप में जाना था शेष कालों में नहीं क्योंकि पर्याय उत्पन्न होने के बाद प्रध्वंसाभाव को प्राप्त हो जाती है। इसी तरह भविष्य में होने वाले कार्यों को भावी शक्ति रूप में जानते हैं सर्वकाल अस्तित्त्व है व्यक्त है ऐसा नहीं जानते हैं यदि ऐसा जानने लगें

तो प्रागभाव और उत्पाद द्रव्य का लक्षण क्यों बताया? यह उत्पाद द्रव्य का लक्षण आत्मभूत है इस कारण उत्पाद को उत्पाद रूप में जानने के कारण प्रतिक्षण प्रतिक्षण नवीन नवीन जानते हैं। अक्षयानन्त जीव राशि इससे अनन्तगुणी पुद्गल की अवस्थायें, धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, काल द्रव्य और आकाश द्रव्य की अनन्तान्त पर्यायें प्रत्येक क्षण में उत्पादपने के कारण सर्वज्ञ केवली नवीन नवीन पर्यायों को जानते हैं अतः ग्रहीतग्राही दोष को प्राप्त नहीं होते यदि नवीन जानने को कुछ शेष बचा नहीं तो अवश्य ही यह ग्रहीतग्राही दोष आता।

प्र.1095–जब सर्वज्ञकेवली ने समस्त द्रव्यगुणपर्यायों को एकसाथ एकसमय में जान लिया है नवीन जानने को कुछ शेष बचा नहीं तब ग्रहीतग्राही दोष क्यों न आयेगा?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही नवीन जानने के लिये शेष बचा है। वर्तमान में जिनका अस्तित्त्व ही नहीं है प्रागभाव को लिये हुये है तो वर्तमान में उस पर्याय का उत्पाद रूप में अभाव है भविष्य में उत्पाद होगा, व्यक्त रूप में होगा तब सर्वज्ञ ने वर्तमान में व्यक्त रूप में कैसे जाना? वर्तमान में शक्ति रूप में जाना है किन्तु भविष्य में व्यक्त होगा यदि वर्तमान में ही भावीकाल के समस्त कार्यों को व्यक्त रूप में जान लिया है तो प्रागभाव और उत्पाद नवीन नवीन पर्यायों का कथन क्यों किया तथा सत्कार्यवादी सांख्य ने क्या बिगाड़ा? उसे मिथ्या क्यों कहा जाता है? अतः सर्वज्ञ ने भी भावीकाल की समस्त द्रव्यगुणों की अनन्तानन्त पर्याय धर्मों को व्यक्त रूप में नहीं जाना है किन्तु शक्ति रूप में जाना है। इस कारण नवीन जानने के लिये सर्वज्ञ को अक्षय अनन्तान्त कार्य शेष बचा है जो अनंतानंत कार्य द्रव्य अनंतानंत काल तक भी समाप्त न होगा। इतना ज्ञेय पदार्थ अनंतानंतकाल तक भी नवीन नवीन जानने के लिए शेष बचा रहेगा ऐसा न मानने से ही ईश्वर के समान ग्रहीतग्राही दोष आता है इसे कोई बचा नहीं सकता।

प्र.1096–जन्माभिषेक कौन किसका करता है और क्यों करता है?

उत्तर–इन्द्र इन्द्राणी आदि सभी देवदेवांगनायें परमभक्ति से संसार विच्छेद का अनन्य कारण मानकर तीर्थंकर प्रकृति वाले बालक का मेरु पर्वत पर ले जाकर पूर्व या उत्तर दिशा में मुख कर सिंहासन पर बैठाकर और स्वयं उत्तरदक्षिण के सिंहासन पर बैठकर अभिषेक करते हैं।

प्र.1097–इन्द्र इन्द्राणी देवगति में होते हैं तो क्या श्रावक श्राविकायें अभिषेक कर सकते हैं या नहीं?

उत्तर–जन्माभिषेक करने का एकमात्र अधिकार इन्द्र इन्द्राणी आदि देव देवांगनाओं को है, मनुष्यों को नहीं क्योंकि मनुष्यों का पाण्डुकशिला पर पहुँचना कठिन है, मनुष्य विद्याधर कुछ कम एक लाख योजन ऊपर जा नहीं सकते हैं तथा यहाँ पर प्रतिष्ठाचार्य पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें कराते हैं। उसमें बालक बालिकाओं और श्रावक श्राविकाओं को इन्द्र इन्द्राणी, देव देवांगनाओं की, षट्कुमारिकाओं की मंत्रों के द्वारा संकल्प पूर्वक स्थापना करके फिर पंचकल्याणक विधि करते हैं, कराते हैं। श्रावकश्राविकाओं को देव देवांगना इन्द्र इन्द्राणी मानकर अभिषेक आदि कार्य करते कराते हैं।

प्र.1098–मूलोत्तरगुणों का पालन करने वाले श्रावकादि असंयमी देवों की अपने में स्थापना क्यों करते कराते हैं?

उत्तर–हमारे लिए दोष नहीं है किन्तु उन श्रावक श्राविकाओं को पक्षपात पंथवाद को छोड़कर निर्दोष आचार्य प्रणीत प्राचीन प्रमाण नय निक्षेप से सिद्ध शास्त्रों को देखकर, सुनकर, पढ़कर निर्णय करना चाहिए, ज्ञान बेचनेवाले धर्माचरण के द्वारा आजीविका चलाने वाले वकीलों से नहीं पूछना, न निर्णय करना। कहावत है–**''बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता।''** अपने हिताहित के लिए स्वयं निर्णायक बनो और धर्म के नाम पर समाज को तोड़ना फोड़ना अच्छा नहीं, विसंवाद करना फैलाना शोभा नहीं देता। यदि विधि विधान में स्थापना निक्षेप से कार्य करने कराने करवाने में दोष दिखता है तो फिर धातु पाषाण की प्रतिमाओं में पंचपरमेष्ठी की स्थापना करना, नाटक करते समय पात्रों में संकल्प कर कार्यक्रम कराने को भी सदोष मानना पड़ेगा। अतः जो कार्य जिसका है उसे वही कार्य शोभा देता है, दूसरों को नहीं किन्तु स्थापना निक्षेप से अपने में या दूसरे में संकल्प कर कार्यक्रम सम्पन्न किये जाते हैं, अतः दोष नहीं है, जिस प्रकार दीपक दीपकों का निषेध किये बिना सब मिलकर प्रकाश फैलाते हैं, वृद्धिंगत करते हैं। उसी प्रकार धर्मात्मागण अपने साधर्मी भाईयों को साथ में लेकर, मिलकर, संगठन बनाकर धर्म की प्रभावना करते हैं। अतः आगम दृष्टि से अपने में इन्द्र इन्द्राणी का संकल्प कर विधि विधान कर लेना करा लेना दोष का स्थान नहीं है किन्तु गुण का स्थान है सम्यक्भावना है।

प्र.1099–मूलगुणों का, अणुव्रतों का पालन करने वाले श्रावक श्राविकायें अपने में असंयमी देव देवांगनाओं का संकल्प कैसे कर सकते हैं? यह तो संयम से असंयम की ओर जाना समादान क्रिया हैं, प्रतिज्ञा ग्रहण कर व्रत भंग करने की ओर जाना है तथा प्रतिष्ठाचार्य, विधिविधानाचार्य स्थितिकरण अंग की विराधना क्यों करते हैं?

उत्तर–आपको जिनेन्द्र देव के या पंचपरमेष्ठी के बिम्ब का अभिषेक करते समय अपने में इन्द्र इन्द्राणी की कल्पना करना, मंत्र न्यास करना कराना दोष दिखता है तो जब पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में तीर्थंकर बालक कुमारावस्था में, राजा अवस्था में दीक्षा लेने जाते हैं तब प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी आरम्भ त्यागी आदि अपने में लौकान्तिक देवों की स्थापना कर पालकी उठाते हैं, विधि विधानों के प्रसंग पर श्रावक श्राविकाओं में इन्द्र इन्द्राणी की बोलियां लगाकर संकल्पकर स्थापना करके आदर सम्मान, तिलक दान, माला पहनाना, श्रीफल भेंट करना, आसनदान देना, वस्त्राभूषण देना आदि कार्यक्रम इन्द्र इन्द्राणी मानकर ही करते हैं, पत्रिकाओं में ऐसा ही लिखते हैं, बोलते हैं, फोटो भी इसी प्रकार की साज सज्जा सहित देते हैं तब ऐसी अवस्था में दोष क्यों नहीं दिखता, अभिषेक के समय दोष दिखता है? क्या यह अन्याय नहीं है? मूर्खता का लक्षण नहीं है? हां, अवश्य है अथवा सूक्ष्म कारण यह है कि सामान्य कार्यों में धन की आमदनी न होने से दोष दिख रहा है तथा इन्हीं विशेष कार्यों में जब धन की अच्छी आवक होती है तो दोष नहीं दिखता। लौकान्तिक देव सौधर्म इन्द्र इन्द्राणी जो नियम से एकभवावतारी हैं, सम्यग्दृष्टियों में क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं, शुभलेश्या के धारक हैं। लौकान्तिक देव प्रवीचार रहित हैं, फिर भी ब्रह्मचारी नहीं है। यदि बलात् इन्हें ब्रह्मचारी माना जाये तो देवों में देशसंयत गुणस्थान मानने का प्रसंग आयेगा और अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव का भी प्रसंग आयेगा। जो आगम में देवों में अप्रत्याख्यानावरण के उदयाभाव का निषेध किया है। इस कारण ब्रह्मचारी नहीं कहलाते हैं क्योंकि ब्रह्मचारी बनने में संकल्पपूर्वक दृढ़ता सहित कामसेवन और तत्सम्बन्धी सामग्री का त्याग करना होता है किन्तु अप्रवीचार में त्याग का संकल्प कोई नहीं करता किन्तु स्वभाव से ही प्रवीचार में प्रवृत्ति नहीं होती जैसे गोद के बालक बालिकाओं में प्रवीचार की प्रवृत्ति नहीं होती है। इसी तरह इन देवों में कषायों का इतनी कम मात्रा में उदय आता है कि वे परिणाम पकड़ में नहीं आते तथा ये देवगण इन्द्र इन्द्राणी एकभवावतारी हैं, भव्य हैं, सम्यग्दृष्टि हैं किन्तु इन मनुष्यों में भक्ष्याभक्ष्य का, कर्तव्याकर्तव्य का, विवेकहीनपना, भव्य अभव्य का, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिपने का ही निर्णय नहीं है अहंकार से पूर्ण भरे हैं कि दूसरों का अपमान तिरस्कार करने में संकोच नहीं करते। अतः अपने में कोई ब्रह्मचारी लौकान्तिक देवों की स्थापना कर लें तो कोई दोष नहीं है।

प्र.1100–यदि कोई त्यागी व्रती अपने में इन्द्रादि देवों की स्थापना कर ले तो क्या आपत्ति है, क्या दोष है?

उत्तर–यदि वह व्यक्ति वास्तविक अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव का या प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय का अनुभव कर रहा है तथा वह अपने में इन्द्र इन्द्राणी का, लौकान्तिक देवों की अपने में स्थापना कर, संकल्प कर कार्य करता है तो अवश्य ही दोष है, हानि है। साम्परायिकाश्रव की समादान क्रिया है। जैसे 700 मुनियों के ऊपर घोर उपसर्ग आने पर उनकी रक्षा करने के लिए विष्णुकुमार मुनि ने अपनी विक्रिया के द्वारा मुनिपद को छोड़कर वामन रूप धारण कर देशसंयत गुणस्थान को प्राप्त हुए तभी तो बाद में उनको पुनः मूल प्रायश्चित्त और मुनि दीक्षा लेनी पड़ी किन्तु यहाँ पर तो गुणस्थान कोई और है, चर्या कोई और है, कथनी करनी में अन्तर स्पष्ट दिखाई दे रहा है। यदि उसने अपने में इन्द्र की, लौकान्तिक देवों की स्थापना कर ली या करा ली तो कोई हानि नहीं है क्योंकि अपने में जिन देवों का संकल्प किया है वे नियम से सम्यग्दृष्टि हैं एक भवावतारी हैं और इन त्यागीव्रतियों का कोई ठिकाना नहीं हैं कि ये भव्य हैं या अभव्य, सम्यग्दृष्टि हैं या मिथ्यादृष्टि, इनको मोक्ष की प्राप्ति कब होगी या नहीं होगी? इस बात का आगम में कोई कथन नहीं है किन्तु इस कथन को सुनकर, पढ़कर हमेशा अपने पद की, अपने व्रतों की चिन्ता न कर विराधना कर देवों की स्थापना का संकल्प करता रहे तो महान अनर्थ होगा उसने अपने व्रतों के महत्व को नहीं समझा तथा मूलगुण और अणुव्रतों का पालन तो अव्रती सम्यग्दृष्टि जीव भी करता है अतः प्रसंग समझना चाहिए। जो दोष दूसरों में देख रहे हो वह अपने में भी देखना चाहिए कि मेरे में यह दोष है या नहीं।

प्र.1101–भगवान की प्रतिमाओं का अभिषेक स्त्रियाँ कर सकती हैं या नहीं?

उत्तर–नहीं, स्त्रियाँ अभिषेक नहीं कर सकती हैं अभिषेक करना तो दूर रहा निर्ग्रन्थ नग्नमुद्रा को वे देख ही नहीं सकती हैं क्योंकि वे कामवासना से पीड़ित हैं तथा पुरुष के साथ रमण की भावना करती हैं। कारण की स्त्रियों की परिभाषा ही ऐसी है जो स्वयं मिथ्यात्व, असंयम, विषयवासना आदि दोषों से दूषित है और दूसरों को दोष लगाती है उसे स्त्री कहते हैं। अतः स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ही कामवासना विकार से युक्त होने के कारण अभिषेक नहीं कर सकते, न कर सकती हैं क्योंकि जन्माभिषेक करने का अधिकार एक मात्र इंद्र इन्द्राणी देव देवांगनाओं को ही है, मनुष्यों को नहीं क्योंकि मनुष्य वहाँ पहुँच नहीं पाते। फिर भी यहाँ पर श्रावक श्राविकायें धातु पाषाण की प्रतिमाओं में नव देवताओं की स्थापना कर तथा अपने में इन्द्र इन्द्राणी की स्थापना कर अभिषेक करते हैं अथवा यहाँ पर श्रावक श्राविकायें अभिषेक करते हैं, स्त्री पुरुष नहीं क्योंकि स्त्री पुरुष नाम ही विकार का सूचक है, कामवासना का सूचक है किन्तु श्रावक श्राविका नाम पूज्यता का सूचक है। मोक्षमार्गी का सूचक है श्रा–श्रद्धावान, व–विवेकवान, क–क्रियावान। श्रा–श्रद्धावान, वि–विवेकवान, का–क्रियावान। इस प्रकार ये अक्षर नाम रत्नत्रय के सूचक हैं और ये रत्नत्रय की मूर्ति का स्पर्श करें तो क्या दोष है?

प्र.1102–आपने श्राविकाओं को अभिषेक करने का कथन किया तथा स्त्रियों को निषेध यह तो स्ववचनबाधित दोष से युक्त होने के कारण नहीं करना चाहिए?

उत्तर–नहीं, न स्ववचन बाधित दोष है, न पौर्वापर विरोध। आप इतने ज्ञानी होकर भी श्राविका और स्त्री में क्या भेद है यह नहीं समझे यदि समझ लेते तो इस प्रकार आक्षेप नहीं करते। क्या माता, बहिन, पुत्री, बुआ, चाची, नानी, मामी, भानजी, भतीजी आदि ये सभी नाम शरीर की रचनानुसार हैं या भावानुसार? यदि आप इस रहस्य को समझ लेवें तो अभिषेक कर सकती हैं या नहीं ऐसा प्रश्न ही पैदा नहीं होता। आहार बना सकती हैं, दानपूजा स्वाध्याय कर सकती हैं किन्तु अभिषेक नहीं कर सकती? क्या क्षण क्षण में शरीर बदल जाता है? यदि आप अभिषेक करने में पाप मानते हैं तो स्वाध्याय में, पूजापाठ में, आहार बनाने या देने में भी वही पाप मानो जो अभिषेक करने में पाप होता है। **'केवलि श्रुत संघ धर्म देवाऽवर्णवादो दर्शनमोहस्य'** सयोगकेवली, जिनवाणी, आज्ञापालक चतुस्संघ, आचरणधर्म और देवों में असत् दोषारोपण करने से मिथ्यात्व कर्म का आश्रव होता है अथवा बिना स्पर्श किये अभिषेक दूर से किया जाता है तथा आहार हाथ लगाते हुए तैयार किया जाता है और करपात्र में दिया जाता है।

प्र.1103–प्रश्नकर्ता से ही प्रश्न है आपके कितनी स्त्रियाँ हैं एक या उसके समान अनेक?

उत्तर–एक ही है अनेक नहीं क्योंकि माता पिता की आज्ञानुसार, देवशास्त्रगुरु और समाज की साक्षी जिसके साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ है वही स्त्री है शेष माता बहिन पुत्रियों के समान हैं। अतः एक ही पत्नी है, अनेक नहीं। अनेकों में माता बहिन पुत्री आदि के समान व्यवहार होता है।

प्र.1104–स्त्री के समान रचना वाली सभी को स्त्री मान लो तो क्या दोष है?

उत्तर–उसके समान उन सभी को अपनी स्त्री न मान सकते हैं, न हैं, न कह सकते हैं, न लोक व्यवहार है। जिससे जन्म लिया है, स्तनपान किया है उसे मां, जिसके साथ जन्म धारण किया है उसे बहिन। जिसको जन्म दिया है उसे पुत्री कहते हैं, स्त्री नहीं आदि। शरीर की रचना में समानता होने पर भी भावों में असमानता है। इस कारण हमारी सभी स्त्रियाँ न हैं न सभी के साथ स्त्री जैसा भाव होता है।

प्र.1105–प्रश्नकर्ता के समाधान पर ही किस प्रकार का समाधान होना चाहिए?

उत्तर–जब सभी के भाव भिन्न भिन्न हैं तो स्त्रियाँ जन्माभिषेक जिनाभिषेक नहीं कर सकती हैं किन्तु अव्रती श्राविकायें, अणुव्रती श्राविकायें ब्रह्मचारिणी बहनें तो कर सकती हैं यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है।

प्र.1106–सन् 1989 के चातुर्मास मुम्बई सुखानन्द धर्मशाला की एक घटना याद आ रही है। वहाँ पर एक श्वेतांबर भाई ने प्रातःकाल 9 बजे आकर प्रश्न किया कि आप स्त्रियों के हाथ से गोचरी लेते हैं या नहीं?

उत्तर–मैंने कहा नहीं, हम स्त्रियों के हाथ से गोचरी नहीं लेते हैं। थोड़ी देर के बाद आहार चर्या के लिए उठे, उस समय धर्मशाला में तीन चौके लगे थे और तीनों ही चौकों में श्राविकायें थीं, श्रावक नहीं अतः श्राविकाओं ने पड़गाहन

से लेकर अंत तक नवधा भक्ति से आहार दिया तथा पिच्छी भी उन्हीं श्राविकाओं ने दी, तब तक वह खड़ा–खड़ा देखता रहा, आश्चर्य में डूबता गया, बाद में साथ साथ आया और बोला महाराज साहेब ! आप झूठ बोलते हैं? क्या झूठ बोलते हैं? आप ने कहा था कि हम स्त्रियों के हाथ से गोचरी नहीं लेते हैं और आप अभी स्त्रियों के हाथ से गोचरी लेकर आये हैं? मैंने कहा कि आप ही बताओ उनमें से मेरी कौन सी स्त्री है जिससे मैंने आहार लिया हो और उसने पति मानकर आहार दिया हो, मैंने श्राविका मानकर उसके हाथ से आहार लिया है तथा उसने गुरु मानकर, पूज्य समझकर आहार दिया है, पति मानकर नहीं। यदि वह पति मानकर देती तो उसके कितने पति हो जायेंगे? तब तो भोजन दान आदि देने वाली सभी को व्यभिचारिणी स्त्री कहना होगा फिर कोई भी स्त्री पतिव्रतवाली नहीं कही जा सकती है तथा यदि मुनिजन स्त्री समझकर उनके हाथ से आहार लेते हैं तो मुनि भी ब्रह्मचर्य महाव्रती कैसे? भ्रष्टपने का तथा परस्त्रीगामी वेश्यागामीपने का भी प्रसंग आता है नवकोटि से काम सेवन का त्याग और ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन किया जाता है। जब ब्रह्मचर्य महाव्रत स्वीकार किया था तब उस समय उसने अपने से छोटी को पुत्री, बराबर की को बहिन और बड़ी को माँ मानने का संकल्प किया था अब वह उसे स्त्री रूप में देख रहा है यह तो महान अनाचार हुआ। जब आपने सामने वाले को स्त्री समझा तो आप स्वयं पुरुष कहलाये तथा ब्रह्मचर्यव्रत की प्रतिज्ञा स्वयं नष्ट की। अतः आपको अपना स्वयं का रंगीन चश्मा बदलना चाहिए।

प्र.1107–यदि स्त्रियाँ अभिषेक नहीं करती हैं तो इंद्राणी और देवांगनायें क्यों करती हैं माँ के पास से इंद्राणी तीर्थंकर बालक को लेकर क्यों आती है शृंगार क्यों करती है तथा श्राविकाओं ने, स्त्रियों ने अभिषेक किया है ऐसा किन शास्त्रों में आया है?

उत्तर–तीर्थंकर बालक को माँ के पास से लाना, वस्त्राभूषण आदि धारण कराना इंद्राणी का ही कार्य है, इन्द्र का नहीं। तभी तो पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं के समय श्रावक श्राविकाओं में, इन्द्र इंद्राणियों की, देव देवांगनाओं की मंत्रों के द्वारा स्थापना करते हैं। **कैसे करते हैं?** जिसने बोलियों में ज्यादा पैसा दिया उसीमें इन्द्र इंद्राणी, देव देवांगनाओं की मंत्रों के द्वारा स्थापना करते हैं और इन्हीं के द्वारा पंचकल्याणक की सारी क्रियायें संपन्न कराई जाती हैं। अभिषेक के बाद शरीर पोंछना वस्त्राभूषण धारण कराना बिना शरीर के स्पर्श किये हो नहीं सकता शरीर को स्पर्श करना ही पड़ेगा जबकि अभिषेक दूर से किया जाता है यदि आप अभिषेक करने में पाप मानते हो, दोष मानते हो तो प्रतिष्ठाओं में भी माता के पास से इन्द्र ही लाये,सारी की सारी विधि इन्द्र करे इंद्राणी नहीं फिर बोलियां भी केवल इन्द्र की, देवों की लगाओ इंद्राणी की, देवांगनाओं की नहीं।

गृहीत गंध पुष्पादि प्रार्चना सपरिच्छदा।
अथैकदा जगामैषा प्रातरेव जिनालयम्।।55।।
त्रि परीत्य ततः स्तुत्वा जिनाश्च चतुराशया।
संस्नाप्य पूजयित्वा च प्रयाता यति संसदि।।56।। जिन० सर्ग1आ० गुणभद्र

अर्थ– एक दिन की बात है। सेठानी जवंजसा स्नान आदि से शुद्ध होकर दास दासियों के साथ प्रातःकाल ही जिनेन्द्र देव के दर्शन के लिये गई। वहाँ पहुँचकर उसने पहले तो तीन प्रदक्षिणा दी और बाद में स्तुति पूर्वक अभिषेक किया, पूजा की और फिर बाद में मुनियों की सभा में गई। हि० श्रीलाल जैन पेरा 2

तदा वृषभसेना च प्राप्य राज्ञी पद महत्।
दिव्यां भोगान्प्रभुंजानां पूर्वपुण्य प्रसादतः ।।38।।
पूज्यंति जगत्पूज्यान् स्वर्गापवर्गदान्।
द्वियैरष्ट महा द्रव्यैः स्नपनादिभिरुज्वलैः।।39।।आराधना० भाग3 पृ० 412

अर्थ– पूर्व पुण्य के प्रसाद से वृषभसेना ने पटरानी पद को प्राप्त करके स्वर्ग और मोक्ष को देने वाले जिनेन्द्र भगवान की जलादि से अभिषेक पूर्वक अष्ट द्रव्य से पूजा की। औषधिदान की कथा नं० 110

अत्यंत सुकुमारस्य जिनस्य सुरयोषितः।
शच्याद्याः पल्लव स्पर्श सुकुमारकरास्ततः।।172।।

दिव्यामोद समाकृष्टषट्पदौधानुलेपनैः।
उद्वर्तयन्त्यस्ताः प्रापुः शिशुः स्पर्श सुखं नवम्।।173।।
ततो गंधोदकैः कुंभैरभ्यषिंचन् जगत्प्रभुम्।
पयोधरभरानम्रास्ता वर्षा इव भूभृतम्।।174।। हरि० सर्ग8 आ० जिनसेन

अर्थ—जिनके हाथ पल्लवों के समान अत्यंत सुकुमार थे ऐसे इंद्राणी आदि देवियों ने अतिशय सुकुमार जिन बालक को अपनी दिव्य सुगंधि से भ्रमर समूह को आकृष्ट करने वाले अनुलेपन से उबटन किया और इस तरह उन्होंने जिन बालक के स्पर्श से समुत्पन्न नूतन सुख प्राप्त किया। मेघों के भार से नम्रीभूत वर्षाऋतु जिस प्रकार पर्वत का अभिषेक करती है उसी प्रकार स्तनों के भार से नम्रीभूत इंद्राणी और देवियों ने सुगंधित जल से भरे कलशों द्वारा भगवान का अभिषेक किया। पृ० 159 हि० अनु० पं० पन्नालालजी।

इत्युक्तौ नोदयाद्वेगात्सारथी रथमाप सः।
जिनवेश्म तस्मास्थाप्य तौ प्रविष्टौ प्रदक्षिणाम्।।20।।
क्षीरेक्षुरसधारोघैर्घृत दध्युदकादिभिः।
अभिषिंच्य जिनेन्द्रार्चामर्चितां नृ सुरासुरैः।।21।। हरि० सर्ग 22 आ० जिनसेन

अर्थ—गंधर्वसेना के वचन सुनते ही सारथी ने रथ हांक दिया और जिनमंदिर के पास जाकर खड़ा कर दिया। रथ से उतरकर कुमार और गंधर्वसेना ने जिनालय में प्रवेश कर भगवान की तीन प्रदक्षिणा दी तथा पंचामृत अभिषेक किया। पृ० 320

ततः सुरपतिस्त्रियो जिनमुपेत्यशच्यादयः सुगंधितनु पूर्वकैर्मृदुकराः समुद्वर्तनम्।
प्रचक्रुरभिषेचनं शुभपयोभिरुच्चैर्घटैः पयोधरभरैर्निजैरिव समं समावर्जितैः।।54।।पृ०485

अर्थ—कोमल हाथों को धारण करने वाली शची आदि देवांगनाओं ने आकर सुगंधित द्रव्यों से भगवान का उबटन किया और अपने ही स्तनों के समान सुशोभित एक साथ उठाये हुये शुभ जल से परिपूर्ण कलशों के द्वारा उनका अभिषेक किया। हरि० सर्ग 38।

प्रतिमां च प्रवेश्यैनां पूर्व देशे व्यतिष्ठपत्।
आनर्च च विचित्राभिः सुमनोभिः सुगंधिभिः।।193।। पद्म० पर्व 17

अर्थ—अरिहंत भगवान की प्रतिमा को आर्यिका माताजी के संबोधन से सम्यग्दृष्टि कंकोदरी ने पूर्व स्थान पर विराजमान कर नाना प्रकार के सुगंधित फूलों से पूजा की। आगे इसी में 289 –290 और 303को देखना।

इंद्राणीप्रमुखा देव्यः सद्गंधैरनुलेपनैः।
चक्रुरुद्वर्तनं भक्त्या करैः पल्लवकोमलैः।।186।।
महीध्रमिव तं नाथं कुंभैर्जलधरैरिव।
अभिषिंच्य समारब्धाः कर्तुमस्य विभूषणम्।।187।। पद्म० पर्व 3 पृ० 45

अर्थ—इंद्राणी आदि देवियों ने पल्लवों के समान कोमल हाथों के द्वारा समीचीन गंध सहित अनुलेपन से भगवान का उद्वर्तन किया। जिस प्रकार मेघों के द्वारा किसी पर्वत का अभिषेक होता है उसी प्रकार विशाल कलशों के द्वारा भगवान का अभिषेक कर उन्हें आभूषण पहनाने के लिये तत्पर हुईं।

कारयन्ती जिनेन्द्रार्चाश्चित्रा मणिमयीर्बहूः।
तासां हिरण्यमयान्येव विश्वोपकरणान्यपि।।173।।
तत्प्रतिष्ठाभिषेकान्ते महापूजाः प्रकुर्वती।
मुहुः स्तुतिभिरर्थ्याभिः स्तुवतीभक्तितोऽर्हतः।।174।। आदि० पर्व 43

अर्थ—उस सुलोचना ने श्री जिनेन्द्र देव की अनेक प्रकार की रत्नमयी बहुत सी प्रतिमायें बनवायी थी और उनके सब उपकरण भी सुवर्ण के ही बनवाये थे, प्रतिष्ठा और अभिषेक के बाद प्रतिमाओं की महापूजा करती थी, अर्थ पूर्ण स्तुतियों के द्वारा श्री अरिहंत देव की भक्ति पूर्वक स्तुति करती थी आदि।

तस्मिन् विधाय महती मुपवास पूर्वां,
पूजां जगत्विजयिनो जिनपुंगवस्य।

स्नानं समीहित निमित्त मधस्तदीय,
बिंबस्य स प्रविदधे सहितोऽग्रदेव्या।।61।। चंद्र० काव्य सर्ग 3 पृ० 32

अर्थ–उपवास पूर्वक अष्टाह्निका पर्व में जगत्विजयी जिनेन्द्र भगवान की महापूजा करने के पश्चात् अभीष्ट सिद्धि के लिये जिनबिंब का अभिषेक अपनी पटरानी के साथ किया। आ० वीरनंदी

चरुभिः पंचवर्णैश्च ध्वजमाल्यानुलेपनैः।
दीपैश्च बलिभिश्चूर्णैः पूजां चक्रुर्मुदान्वितः।।141।। वरांग० सर्ग 15

अर्थ–वे राजा वरांग की रानियां प्रतिदिन पवित्र नैवेद्य, पंचरंगी पुष्प, ध्वजा, माला, अभिषेक, अनुलेपन, दीप, चूर्ण किये गये चंदनादि के द्वारा वीतराग प्रभु की पूजा कर प्रसन्न होती थीं।

अथैकदा सुता सा च सुधीर्मदनसुंदरी।
कृत्वा पंचामृतैः स्नानं जिनानां सुखकोटिदम्।।80।। श्रीपाल० सर्ग 2

अर्थ–एक दिन वह बुद्धिमान मदनसुंदरी करोड़ों सुखों को देने वाले जिनबिंबों का पंचामृताभिषेक करके। आ० सकलकीर्ति कृत। अधि० 3 गा० 65, 96 में पंचामृताभिषेक मदनसुंदरी ने किया ऐसा कहा हैं।

प्र.1108–तीर्थंकर बालक को काजल कौन लगाती हैं?

उत्तर–तीर्थंकर बालक को काजल बुआ लगाती है तभी तो प्रतिष्ठाओं में बुआ की बोली लगाकर बुआ के द्वारा काजल लगवाया जाता है और बुआ नाम का व्यवहार केवल कर्मभूमिज मनुष्यों में होता है, भोगभूमि में, तिर्यंचों में, देवों में नहीं और बुआ में इंद्राणी की, देवांगनाओं की स्थापना नहीं की जाती है इस कारण मनुष्यनी ही बुआ काजल लगाने का नैगाचार करती है और जब बुआ आँखों में काजल लगा सकती है तो अभिषेक क्यों नहीं कर सकती? यदि अभिषेक करने में दोष है तो पैसा कमाने के लिये बुआ की बोली क्यों लगाते लगवाते हो इसमें पाप क्यों नहीं?

प्र.1109–यह तो जन्माभिषेक है कदाचित् इंद्राणी देवांगनाओं ने या श्राविकाओं ने जन्म कल्याणक का अभिषेक कर लिया तो ठीक है किन्तु मुनि दीक्षा के बाद या तीर्थंकर केवली अवस्था का अभिषेक तो होता नहीं फिर क्यों करना पड़े?

उत्तर–यदि ऐसा है तो आप लोग भी तीर्थंकर बालक का श्राविकाओं के द्वारा, इंद्राणी और देवांगनाओं के द्वारा जन्म कल्याणक का अभिषेक करा लो उस समय निषेध क्यों करते हो? मना क्यों करते हो? तीर्थंकर केवली का अभिषेक मनुष्य श्रावक श्राविका क्या इन्द्र इंद्राणी देव देवांगनायें भी नहीं करती हैं न करते हैं किन्तु अकृत्रिम चैत्यालयों में तीर्थंकर की प्रतिमाओं का और सिद्ध प्रतिमाओं का देव गति के जघन्य पात्र श्रावक श्राविकायें और मनुष्य गति के जघन्य मध्यम पात्र अणुव्रती श्रावक श्राविकायें अभिषेक करते हैं ऐसा शास्त्रों में पढ़ा जाता है और वर्तमान में भी अनेक शहरों में करते हैं, करती हैं।

प्र.1110–शांतिधाराजी में छिंधि² भिंधि² क्यों नहीं बोलना चाहिये?

उत्तर–हिंसार्थक होने से, कष्टवाचक होने से नहीं बोलना चाहिये क्योंकि मुनियों के आहार के समय मारने, काटने, छेदने भेदने आदि अशुभ वचन बोलने से अंतराय हो जाता है।

प्र.1111–शांतिधाराजी में छिंधि² भिंधि² का अर्थ क्या है?

उत्तर–छिंधि² :–छिद जाये, जैसे नाक कानादि शरीर के अंगों में छेद हो जायें, छेद कर दिये जायें।
भिंधि² :–भिद जायें, जैसे शरीर के अंगों के टुकड़े टुकड़े हो जायें इस प्रकार ये शब्द कष्टवाचक हिंसार्थक होने से जिनेंद्र के सामने नहीं बोलना चाहिये क्योंकि प्राणों का वियोग करना ही हिंसा है।

प्र.1112–शांतिधाराजी में शरीर के अंगों का छेदन भेदन होने से मरण तो हो नहीं सकता फिर इनको उच्चारण करने में क्या दोष है?

उत्तर–कष्ट तो होगा ही इसलिये नहीं बोलना चाहिये क्योंकि कष्ट देना ही हिंसा पाप है।

प्र.1113–शांतिधाराजी में छिंधि² भिंधि² इन पदों से त्रस स्थावर जीवों की हिंसा का अर्थ लेते हो या किसी और जीवों की?

उत्तर–त्रस स्थावर आदि षट्काय के जीव छिद जायें भिद जायें ऐसा अर्थ है।

प्र.1114–शांतिधाराजी में षट्काय के जीव छिद जायें भिद जायें यह अर्थ आपने किस पद से लिया है जो हिंसार्थक हो गया है?

उत्तर–इस शांतिधारा में मनुष्य और तिर्यंच प्राणियों के नाम आये हैं तथा इनके साथ में छिंधि² भिंधि² पद जुड़ा होने से ये प्राणी छिद जायें भिद जायें ऐसा अर्थ किया है।

प्र.1115–मनुष्य तिर्यंचों के और छिंधि² भिंधि² पदों के बीच में भयं तथा मारीं पद होने से आपने इन पदों को छोड़कर हिंसार्थक अर्थ कैसे लिया?

उत्तर–मंडूक न्याय से बीच के पदों को छोड़कर मनुष्य तिर्यंच प्राणी छिद जायें भिद जायें ऐसा किया है।

प्र.1116–यदि ऐसा है तो बीच के भयं और मारीं पद का अर्थ क्यों छोड़ दिया?

उत्तर–केवल छिंधि² भिंदि² का अर्थ मुख्य मानकर बीच के पदों का अर्थ छोड़ दिया है।

प्र.1117–हे भगवन! आपकी शांतिधारा करने से तिर्यंचों का भय, मनुष्यों का भय या इन चराचर प्राणियों में मरी रोगादि छिद जायें भिद जायें ऐसा अर्थ करने में या स्वीकार करने में क्या दोष है?

उत्तर–दोष हो या नहीं किंतु भगवान के सामने हिंसार्थक शब्दों का प्रयोग क्यों करना पड़े जैसे मुनियों के आहार के समय हिंसार्थक शब्दों के प्रयोग करने से अंतराय हो जाता है तब भगवान के सामने ऐसे शब्दों का प्रयोग क्यों करना पड़े?

प्र.1118–मुनियों के आहार करते समय क्या लाईट पंखा चालू रखते हैं, नाचते हैं, बाजे बजाते हैं, आरती उतारते है आदि यदि अभिषेक पूजा के कार्यों की तुलना आहार करने के समय से करते हो तो आहार के अनुसार ही अभिषेक पूजा करो?

उत्तर–आहार क्रिया के समय लाईट पंखा न चालू रखते हैं, न नाचते हैं, न बाजे बजाते हैं, न आरती उतारते हैं, न नाना प्रकार के वस्त्रालंकार धारण करते हैं क्योंकि मुनियों का आहारदान मनुष्यगति के श्रावक श्राविकाओं के द्वारा संपन्न कराया जाता है जबकि अभिषेक पूजा इन्द्र इन्द्राणी देव देवांगनाओं आदि के द्वारा भी संपन्न कराई जाती है अतः प्रसंग अलग अलग हैं। जब आप ही दान और अभिषेक क्रिया में अंतर कर रहे हो तो फिर आहार के प्रसंग को शांतिधारा के संबंध में क्यों मिलाना?

प्र.1119–यदि छिंधि² भिंधि² ये अशुभ वचन हैं तो विनय पाठ में 'कर्म बंध के छेदने और कछु न उपाय' ऐसा पाठ भी क्यों बोलना पड़े?

उत्तर–हाँ, इसका भी संशोधन करेंगे अर्थात् बोलना बंद कर देंगे जिस प्रकार शांतिधारा से छिंधि² भिंधि² पद निकाल दिया है उसी प्रकार इसको भी निकाल देंगे। यदि आप इस प्रकार निकालने कि बात कह रहे हो तो दूसरों की कृति में मिलाने का या निकालने का आपको क्या अधिकार है बताओ?

प्र.1120–पूजा के 8 मंत्रों में भी विनाशनाय, विध्वंसनाय, दहनाय जैसे पदों का प्रयोग किया है फिर आपके पास सिर्फ उच्चारण करने के लिये तीसरा और आठवाँ ये दो मंत्र बचते हैं शेष छह का उच्चारण मत करो, पूजा मत करो?

उत्तर–इन मंत्रों के पदों का हिंसार्थक अर्थ होने से बदलने के संबंध में भी सोचा जायेगा। यदि आपने छिंदि² भिंदि² के समान इन मंत्रों को भी पूजा से निकाल देंगे तो आपको वर्तमान कालीन सभी पूजाओं के मंत्रों को बदलना होगा या कोई नवीन पूजायें और मंत्र बनाने होंगे तब आपकी समाज में क्या प्रतिष्ठा होगी और जीवन कैसे व्यतीत होगा यह भी आपको अनेक विद्वानों के मरण से सीखना चाहिये?

प्र.1121–यदि आप मंत्रों को बदल सकते हैं तो हिंसार्थक हन् धातु का प्रयोग होने से अरहंताणं, अरिहंताणं, अरुहंताणं उच्चारण करना बंद करो क्योंकि सभी व्याकरणों ने हन् धातु का अर्थ हिंसार्थक ही माना है?

उत्तर–इस प्रश्न के उत्तर में समाधन कर्ता को कुछ सोचना पड़ेगा कि अरिहंताणं पद का प्रयोग कैसे बंद करें और करायें यद्यपि इसमें हन् धातु का प्रयोग अवश्य किया हुआ है तो भी क्या इसके उच्चारण मात्र से षट्काय के जीवों की विराधना हो सकती है?

प्र.1122–यदि केवल शब्दों के उच्चारण से पाप या पुण्य उत्पन्न होने लगे तो चक्कू का, विष का उच्चारण करने से जिह्वा कट जाये, जहर चढ़ जाये या मिठाई लड्डू का नाम लेने से मुँह भर जायें?

उत्तर–नहीं, केवल शब्दोच्चारण करने से जिह्वा न कटती है, न मुँह लड्डू से भर जाता है यदि ऐसा होने लगे तो संसार में कोई भी प्राणी हिंसक या अहिंसक न रह पायेगा और आग को देखते ही आँख जल जायेगी अतः केवल शब्दोच्चारण से पुण्य पाप की उत्पत्ति नहीं होती।

प्र.1123–तो फिर केवल छिंधि² भिंधि² के उच्चारण से पाप कैसे लगेगा?

उत्तर–केवल उच्चारण मात्र से पाप नहीं लगेगा किंतु अशुभ वचन क्यों बोलना पड़े?

प्र.1124–अपने अनादिकालीन विकारों को क्षय करने के लिये, कर्मों को क्षय करने के लिये, भय रोगादि छिद जायें भिद जायें ऐसा अर्थ क्यों नहीं करते हो ऐसा अर्थ ग्रहण करने में किस पाप कर्म का आश्रव बंध होगा?

उत्तर–छिंधि² भिंधि² पदों का प्रयोग न कर दूसरें शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं। अपने विकारों को नष्ट करने में, क्षय करने में क्या दोष है? क्या आत्मविकारों में त्रस स्थावर नाम कर्म का उदय होता है? जबकि आत्म विकार चारित्र गुण का विकार है और त्रस स्थावर नामकर्म की प्रकृतियां हैं। विकारों में इन कर्मों का उदय नहीं पाया जाता है कि जिससे विकारों को क्षय करने में हिंसा पाप होवे। यदि ऐसा माना जाये तो श्रेणी अवस्था में या 14वें गुणस्थान के उपांत्य और चरम समय में धर्मध्यान और शुक्लध्यानों के द्वारा क्षय को प्राप्त होती हैं तो इनको भी महान हिंसक मानना पड़ेगा क्योंकि जब बोलने में पाप है तो करने में महापाप है अतः छिंदि छिंदि भिंदि भिंदि बोलने में कोई दोष नहीं है।

प्र.1125–वो भी केवल शब्दों में अंतर हो सकता है भाव तो यही रहेगा?

उत्तर–भले ही हो केवल ये शब्द नहीं बोलना है तो फिर आपको छिंदि छिंदि भिंदि भिंदि के समान अरिहंत मंगलं, अरिहंत लोगुत्तमा, अरिहंत सरणं पव्वज्जामि इन पदों का भी उच्चारण नहीं करना चाहिये।

प्र.1126–शास्त्रों में जहाँ कहीं भी हिंसार्थक शब्दों का, धातुओं का प्रयोग हुआ है तो उन सभी को छिंधि² भिंधि² शब्दों के समान आप निकाल दो डर क्यों?

उत्तर–जिस प्रकार स्थानकवासी श्वेतांबरों ने जिन जिन ग्रंथों में मूर्तिपूजा का विधान किया गया है उन सभी ग्रंथों को मानने से इन्कार कर दिया या अमान्य कह दिया या उन ग्रंथों में से मूर्ति पूजा का विधान अलग कर शेष को स्वीकार कर लिया इसी तरह हम सभी जिन जिन ग्रंथों में छिंदि छिंदि भिंदि भिंदि वाचक शब्दों का प्रयोग, पंचामृताभिषेक, स्त्रियों के द्वारा प्रतिमाभिषेक, हरे फल फूल चढ़ाना आदि, विनाशनाय, विध्वंसनाय, दहनाय वाले मंत्रों को भी बदल देंगें या उन पूजापाठ वाले ग्रंथों को, पूजाओं को संप्रदाय के बाहर का कहकर अलग कर देंगे या मिथ्या कहकर अमान्य कर देंगे।

निष्कर्ष :उत्तर देने वाले आजकल ये कांजीस्वामी के समान नवीन संप्रदाय तो नहीं बनाना चाहते हैं।

प्र.1127–जिस श्राविका ने अखंड ब्रह्मचर्य व्रत लिया है या जिसके पतिव्रत है तो वह तीर्थंकरों जैसे पर पुरुष की प्रतिमा का स्पर्श क्यों करे? यदि करती है तो बाल ब्रह्मचर्य व्रत में, पतिव्रत में दोष क्यों नहीं आयेगा?

उत्तर–जिनके भाव वेद तथा समूल घातिया कर्मों का क्षय हो गया है, स्फटिक मणि के समान स्वच्छ निर्मल हैं, वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं, उनकी प्रतिमा को स्पर्श करने से, अभिषेक करने से ब्रह्मचर्य व्रत में या पतिव्रत में दोष आता है सो ठीक है पर क्या गृहस्थों का, डॉक्टरों का, नाना यात्रियों का, सगे सम्बन्धियों का, परिवार का, समाज का, ग्राहक या व्यापारियों का स्पर्श करने से या होने से अखंड ब्रह्मचर्य व्रत या पतिव्रत निर्दोष पलता है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि स्फटिक को छूने से, स्पर्श करने से काला धब्बा लगता हो और कोयला को, काले रंग को स्पर्श करने से, छूने से काला धब्बा छूट जाता हो इस प्रकार के विचार वालों को चोरी पाप में प्रसिद्ध हुए तापसी की कथा पढ़ना चाहिये कि वह तपस्वी तप में प्रसिद्ध होने पर भी ब्राह्मण ने किस उपाय से पकड़ा था कि यह चोर है तथा ब्राह्मण की पत्नी किस प्रकार से अपने को पतिव्रत के सम्बन्ध में प्रसिद्ध होने का प्रचार कर रही थी?

प्र.1128–जीवादि तत्त्वों को समझने के लिये कोई उदाहरण बताओ?

उत्तर–कोई जलाशय है। उस जलाशय में नाव, नाविक और यात्रीगण मौजूद हैं। उस नाव में छिद्रों के माध्यम से पानी भर गया। पानी इकट्ठा होने से नाविक का और यात्रियों का जीवन संकट में पड़ गया। उस समय नाविक ने सभी का जीवन सुरक्षित रखने के लिये नाव के छिद्रों को बन्द कर दिया और अन्दर भरे हुए पानी को अपने हाथों से या किसी पात्र से बाहर निकालकर फेंक दिया तब नाव सूखने से सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाती है तथा नाविक और यात्रीगण भी अपने इष्ट स्थान को प्राप्त हो गये। इस उदाहरण में नाविक और यात्रीगण जीव तत्त्व है, नाव अजीव तत्त्व है, नाव में पानी आने का रास्ता और पानी आना आश्रव तत्त्व है, पानी का भर जाना बन्ध तत्त्व है, आने के रास्ते को और पानी को बल पूर्वक रोक देना संवर तत्त्व है, नाव से थोड़ा पानी निकालकर बाहर फेंक देना निर्जरा तत्त्व है तथा नाव से पानी को पूर्ण रूप से निकाल देना मोक्ष तत्त्व है।

प्र.1129–वेश्या, वकील और वैभव क्या ये कभी किसी एक के हुए हैं या पास में रहे हैं?

उत्तर–नहीं, अनादि काल से अब तक और आज से अनंत काल तक कभी भी किसी के त्रिकाल में ये तीनों सगे सम्बन्धी न थे, न हैं, न रहेंगे। केवल जिसने धन या कोई सामग्री दी तो उसके हो जाते हैं या पुण्य के पीछे लगे रहते हैं। रुपया पैसा जिसने दिया उसकी इच्छा के अनुसार वेश्या और वकील कार्य करते हैं, सही गलत का विचार नहीं करते क्वचित् कदाचित् सही गलत की जानकारी भी कर ले या हो जाय तो प्रयोग में नहीं ला पाते यदि करने लगें तो ये वेश्या वकील नहीं कहलायेंगे न इनके पास धन वृद्धि हो सकती है, न अपने कार्य में सफल हो सकते हैं ये कितने ही स्थान, पात्र बदल चुके हैं बदलेंगे इसका कोई प्रमाण नहीं है। इसी तरह धन दौलत किसके किसके हाथ में नहीं गया क्या गरीब अमीर, क्या राजा रंक, क्या गृहस्थ फकीर, क्या सज्जन दुर्जन? पर अनेकों जगह भ्रमण करने पर भी किसी की नहीं हुई, न है और न होगी। न मालूम दिन प्रतिदिन अनेकों के हाथों में जाकर भी स्थिर नहीं रहती फिर भी यह मूर्ख प्राणी वेश्या के समान चंचल स्वभाव वाली ऐसी थूँक लगी हुई जूंठी लक्ष्मी को अपनी अपनी कहकर लड़ मरता है, जीवन व्यतीत कर देता है। जरा सोचो ! आजकल कागज के नोटों को गिनने वाले गिनते समय थूँक भी लगाते हैं और न मालूम इन नोटों में किन किन का, कौन कौन जाति का, कैसे कैसे आचार विचार वालों का थूँक नहीं लगा? उसी को मोही प्राणी पूजता है, उन्हीं नोटों को लाकर जिनमंदिर के गुप्तदान भंडार में डाल देता है, आदर सम्मान करता है, दान में देता है यानी मुँह के मल स्वरूप थूँक लगे नोटों को पवित्र स्थान में डाल देता है यह बड़े आश्चर्य की बात है। पवित्र स्थान में अपवित्रता करने से समीचीन फल की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

प्र.1130–यदि ऐसा है तो नोटों को जिनमंदिर में दान नहीं देवें तो क्या देवें?

उत्तर–ऐसा नहीं है कि दान ही न देवें, देखो जितने पाप कमाने के मार्ग हैं उतने ही पाप को काटने के या पुण्य कमाने के मार्ग हैं। जितना आपको गुप्त भंडार में रुपयों का दान देना है उतने का ही शुद्ध सोना चांदी या सिक्के लाकर डाल दो बाद में भले ही सोना चांदी बिक्री कर रुपये आयेंगे पर ये रुपये मंदिर के अंदर तो नहीं रहेंगे किंतु बाहर रहेंगे। यदि मन में ऐसा हो कि सोना चांदी डालने से कोषाध्यक्ष और कार्यकर्ता गण खा जायेंगे या नियत खराब हो जायेगी सो ठीक है जिसका होनहार ही खोटा है तो वह सोना चांदी क्या जो ईंट पत्थर, दरी चटाई, बर्तन, किराया भाड़ा खा जाता है या खा जाते हैं जो आजकल क्षेत्रों में, गाँव शहरों में सैकड़ों उदाहरण हैं जब पापी लोग पापों को छोड़ने के लिये तैयार नहीं हैं तो आप पुण्य कमाने के लिए क्यों उल्टा सोचते हो?

प्र.1131–स्वसापेक्ष या परनिरपेक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसमें या जहाँ पर स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव की अपेक्षा हो, अपने आप कार्य करने में समर्थ हो, पर की सहायता न ले, न पर का माध्यम हो तो उसे स्वसापेक्ष या पर निरपेक्ष कहते हैं।

प्र.1132–परसापेक्ष या स्वनिरपेक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर–परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभावों की सहायता से, पर के माध्यम से कार्य उत्पन्न हो उसे परसापेक्ष कहते हैं तथा पर को माध्यम बनाकर कार्य किया जाये उसे परसापेक्ष या स्वनिरपेक्ष कहते हैं।

प्र.1133–मंत्र का जाप करते समय या पूजा करते समय पास में सामग्री है तो स्वाहा बोलना योग्य है किंतु सामग्री नहीं है तो स्वाहा क्यों बोलना पड़े?

उत्तर–जैनधर्म में, मोक्षमार्ग में बाह्य त्याग के साथ साथ अंतरंग त्याग का महत्व है इस कारण जब बाह्य सामग्री है तो उसके अर्पण करने के लिये, त्याग करने के लिये स्वाहा बोलना योग्य ही है किंतु बाह्य सामग्री के बिना भी अन्तरंग भावात्मक विकारों का, दुर्भावनाओं का, दुराचारों का, दुर्वचनों का त्याग करना भी परम आवश्यक है अतः इनके त्याग के लिये स्वाहा बोलना और भी अत्यधिक श्रेष्ठ है क्योंकि अन्तरंग और बहिरंग विकारों के त्याग से ही मोक्षमार्ग में सफलता मिलती है, एक से नहीं क्योंकि अन्तरंग के त्याग के बिना बाह्य त्याग का कोई महत्व नहीं है किन्तु बाह्य त्याग के बिना अन्तरंग का त्याग करना त्रिकाल में भी सम्भव नहीं है जैसे सर्वप्रथम धान के ऊपर का मोटा छिलका, इसके बाद में अन्दर का लाल छिलका, इसके बाद में सफेद स्वच्छ चावल प्राप्त होता है इसी तरह सर्वप्रथम बाह्य सामग्री का, बाद में आन्तरिक विकारों का त्याग किया जाता है इसके बाद में शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल आत्मा की प्राप्ति होती है इस कारण स्वाहा बोलना अत्यावश्य है अन्यथा मन्त्र अधूरा कहलायेगा।

प्र.1134–भगवान आदिनाथजी के समवशरण का विस्तार बारह योजन और भगवान महावीर के समवशरण का विस्तार एक योजन का था सो यह अन्तर क्यों हुआ?

उत्तर–भगवान आदिनाथजी के शरीर की अवगाहना 500 धनुष की और समवशरण का विस्तार बारह योजन था और भगवान महावीर के शरीर की अवगाहना साढे सात हाथ की और समवशरण का विस्तार एक योजन था सो यह विस्तार शरीर प्रमाणानुसार हुआ। इन तीर्थंकरों के पुण्यकर्म में, गुणों में कोई अन्तर नहीं था जैसे जितना बड़ा मन्दिर है वैसे ही तदनुसार मूर्ति शोभा देती है बड़े मन्दिर में छोटी और छोटे मन्दिर में बड़ी मूर्ति शोभा नहीं देती या हाथी के वस्त्रालंकार घोड़े को और घोड़े के वस्त्रालंकार हाथी को शोभा नहीं देते अतः यथास्थान, यथाप्रमाण ही व्यवस्था शोभा देती है अन्यथा बिगड़ जाती है।

प्र.1135–कर्मक्षपण विधि किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस पद्धति से, विधि से, उपायों से पूर्वकाल में महापुरुषार्थियों ने अनादिकालीन विकारों को नष्ट किया है, क्षय किया है सो उसी विधि को कर्मक्षपण विधि कहते हैं।

प्र.1136–दानपूजा, वास्तुज्ञान, मन्त्रतन्त्र, औषधि आदि सुख दुःख के सम्पादक हैं क्या?

उत्तर–दानपूजा, वास्तुज्ञान प्रयोग, मंत्रतंत्र प्रयोग, औषधि उपयोग आदि सुख दुःख के साक्षात् सम्पादक नहीं हैं बाह्य साधन हैं। सुख दुःख का अन्तरंग साक्षात् साधन स्वकृत पुण्य पापकर्म ही है।

प्र.1137–यदि ऐसा है तो सुख दुःख के अन्तरंग सम्पादक पुण्य पाप को ही सर्वत्र सर्व काल मानकर बाह्य साधनों की उपेक्षा कर दी जाये तो क्या हानि है?

उत्तर–नहीं, बाह्य साधनों के बिना अन्तरंग साधन भी अन्धा, लंगड़ा, अपंग है, यदि बाह्य साधनों के बिना एक मात्र अन्तरंग साधन ही सुख दुःख रूपी कार्य के सम्पादन में समर्थ है तो बाह्य साधनों की, भूख को दूर करने के लिये भोजन की, सर्दी गर्मी से बचने के लिये मकान की और वस्त्रों की, रोगों को दूर करने के लिये औषधि की फिर आत्मसिद्धि के लिये बाह्य वस्तुओं के त्याग करने की, मुनिव्रत संयम आदि पालन करने की क्या आवश्यकता है? यह कर्मभूमि है, न भोगभूमि है, न स्वर्ग है। यहाँ से चारों गतियों में, चौरासी लाख योनियों में गमनागमन होता है। दोनों प्रकार के कर्मों को बाँधा जाता है तो छोड़ा भी जाता है। जरा सोचो! जब पुण्य, पाप, सुख दुःख के अन्तरंग साधन हैं तो वे पुण्य पाप कहाँ से आये? उनका क्या साधन है? किन करणों से पुण्य पाप आते हैं? आप त्रस प्राणी हैं, स्थावर नहीं। मनुष्य हैं, पंचेन्द्रिय हैं, पर्याप्तक हैं, सैनी आदि यह अवस्था भी आपको किन कारणों से प्राप्त हुई है उन कारणों का चिन्तन करो? विपाकविचय धर्मध्यान का विचार करो अतः सुख दुःख रूपी कार्यों के लिये अन्तरंग और बहिरंग उभय साधन चाहिये केवल एक नहीं। अतः किसी एक साधन की सर्वथा सर्वकाल उपेक्षा करना मोक्षमार्ग से उपेक्षा करना है तथा यह मोक्षमार्गी का लक्षण नहीं है।

प्र.1138–इस विषय को स्पष्ट करने के लिये कोई उदाहरण देकर समझाओ?

उत्तर–जैसे छतरी को आपने सावधानी पूर्वक योग्य विवेकानुसार हाथ में लेकर खोलकर धारण की है तो पानी से, धूप से, धूलि से, तूफान से रक्षा हो सकती है अन्यथा विराधना होगी, कष्ट होगा इसी तरह बाह्य साधन आपके पास मौजूद हैं यथायोग्य प्रयोग कर रहें हैं तो आपकी भली प्रकार से रक्षा हो सकती है, सुख शांति मिल सकती है अन्यथा अशांति मिलेगी, कष्ट प्राप्त होगा।

प्र.1139–अयोध्या नाम की राजधानी के अन्दर राजमहल में क्या वास्तुदोष था जो राम, लक्ष्मण, सीता को चौदह वर्ष के लिये जंगलों में भटकना पड़ा अतः दुःख का मूल कारण अपना पाप ही है दूसरा नहीं?

उत्तर–नहीं, ऐसा नहीं है यदि केकई राजा दशरथ से वरदान नहीं माँगती तो राम, लक्ष्मण, सीता को चौदह वर्ष तक वनवास में क्यों भटकना पड़ता? यदि युधिष्ठिर जुआ के खेल में सब कुछ नहीं हारते तो राज्य छोड़कर पांडवों को 12वर्ष तक जंगलों में क्यों भटकना पड़ता? क्योंकि सुखदुःख रूपी एक कार्य के लिये एक ही कारण नहीं किन्तु अनेक कारण होते हैं। अयोध्या और हस्तिनापुर के राजमहल में क्या दोष था? यदि था तो ये जब महल बने थे तभी परिवार को या परिवार के सदस्यों को वनवास मिलना चाहिये था किंतु अनेक पीढ़ियों के बाद राम और पांडवों को वनवास में क्यों भटकना पड़ा, क्यों दुःखी होना पड़ा? अतः जिसका जैसा पुण्य पाप का, साता असाता वेदनीय कर्म का प्रबल उदय है तो वैसा ही उसे सुख दुःख भोगना ही पड़ता है। अतः कर्मोदय को टालने के लिए किंचित् मात्र भी पुरुषार्थ कार्यकारी नहीं होता है किंतु उदीरणा को टालने में, बदलने में पुरुषार्थ सफलता को प्राप्त होता है। कहा भी है –:**"सामग्री विकलं कार्यं न हि लोके विलोकितम्"** (क्षत्रचूड़ामणी) विकल, अपूर्ण, अपर्याप्त सामग्री से शुभाशुभ कार्यों की प्राप्ति नहीं देखी जाती है क्योंकि कर्मसिद्धान्त ग्रन्थों में प्रत्येक कर्मों को फल देने के लिये नोकर्म बताये हैं जिनके माध्यम से द्रव्यकर्म अपना फल दे पाते हैं अन्यथा बिना फल दिये झड़ जाते हैं।

प्र.1140–सुख दुःख रूप में पुण्य पाप स्वयं परिणमन करते हैं या कोई दूसरा?

उत्तर–अभेद विवक्षा में सुख दुःख रूप में पुण्य पाप स्वयं परिणमन नहीं करते हैं किन्तु कर्मों से लिप्त प्रमादी अशुद्ध संसारी जीव परिणमन करते हैं। अभेद नय से आत्मा ही सुखी दुःखी होता है।

प्र.1141–क्या पुण्य पाप स्वयं सुख दुःख रूप हैं या कोई अन्य दूसरा?

उत्तर–भेद विवक्षा में साता असाता वेदनीय रूप पुण्य पाप स्वयं सुख दुःख स्वरूपी पर्याय में परिणमन करते हैं अथवा सुख दुःख ये अव्याबाध अचेतन गुण के कार्य हैं चेतन गुण के नहीं क्योंकि ज्ञानदर्शन ये दो ही गुण चेतन हैं शेष अनन्त गुण अचेतन हैं। भेदनय से पर्याय ही सुख दुःख रूप में परिणमन करती है।

प्र.1142–पाँचों भावों में से सुख दुःख कौन सा भाव है कौन कब तक रहने वाला है?

उत्तर–सांसारिक इन्द्रियजन्य सुख या दुःख मोहोदय सहित साता और असातावेदनीय कर्मोदय की अपेक्षा औदयिकभाव हैं जो सादि सान्त है तथा केवलियों के आध्यात्मिक सुख क्षायिकभाव है जो सादि अनन्त है अथवा आनंदगुण या सुखगुण की अपेक्षा पारिणामिकभाव है।

प्र.1143–क्या साता, असाता कर्मोदय से सुख दुःख होता है, यदि हाँ तो सयोगकेवली, अयोगकेवली भगवन्तों को भी सुखी दुःखी होना चाहिये था?

उत्तर–नहीं, मोहोदय सहित इन्द्रिय जन्य सुख दुःख का अनुभव साता असाता वेदनीय कर्म कराते हैं क्योंकि वेदनीय कर्म जीव विपाकी होने से इसका फल जीव को ही प्राप्त होता है किंतु मोहोदय के बिना वेदनीय कर्म जली हुई रस्सी के समान है, शक्तिहीन है। सुख दुःख का अनुभव नहीं कराता है यदि घातिया कर्मों के बिना भी वेदनीय कर्म सुख दुःख का अनुभव कराने लगे तो केवलियों में और गृहस्थों में कोई अन्तर न रहेगा क्योंकि जिस प्रकार गृहस्थ इन्द्रियजन्य सुख दुःख का अनुभव करते हैं उसी प्रकार केवली भगवान भी सुख दुःख का अनुभव करने लगेंगे जो अनिष्ट आपत्ति है क्योंकि साता असाता वेदनीय कर्म का उदय सयोगकेवली और अयोगकेवली भगवंतों के पाया जाता है।

प्र.1144–एक ही जिनबिंब में नवदेवता कैसे?

उत्तर–जब कोई निकट भव्यात्मा वैरागी होकर अनादि कालीन पूर्वबद्ध कर्मों को नष्ट करने के लिए समस्त प्रकार से बाह्याभ्यंतर आडम्बर को त्याग करके 28 मूलगुणधारी दिगम्बर मुनिअवस्था को धारण करते है तब साधु परमेष्ठि कहलाये। पुनः अपने आपको द्रव्यभाव श्रुतज्ञान के द्वारा संबोधन करता है तब उपाध्याय परमेष्ठि कहलाये। पुनः पूर्वकृत दोषों को स्वयं प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्ध किया तब आचार्य परमेष्ठि कहलाये। पुनः इसी क्रम से आगे श्रेणीआरोहण कर मोहकर्म का क्षयकर अंतर्मुहूर्त के बाद शेष तीन घातियाकर्मों को क्षयकर अनंतचतुष्टय को प्राप्त हुए तब तीर्थंकर अरिहंत कहलाये। पुनः जब अघातियाकर्मों को क्षय किया तब सिद्ध परमेष्ठि कहलाये। मूर्ति की प्रतिष्ठा करते समय आचार्य प्राण प्रतिष्ठा के मंत्रों के द्वारा चेतनात्मक गुरु और जिनेन्द्र की स्थापना की अपेक्षा अभेदनय से मूर्ति ही चेतन कहलाई इसलिये मूर्ति ही पंचपरमेष्ठी कहलाई। भेदविवक्षा में मूर्ति चैत्य है। प्राणप्रतिष्ठा की अपेक्षा चैतन्यात्मा चैत्य और चैत्य का आधार होने से शरीर मूर्ति चैत्यालय कहलाया। **'चारित्तं खलु धम्मो'** चारित्रधर्म है। आत्मस्थिरता का नाम चारित्र है इस कारण मूर्ति स्थिर है, निष्कंप है अतः स्थिरता निष्कंपता ही जिनधर्म है। यह मूर्ति इधर उधर क्यों नहीं देखती? क्योंकि इन्हों ने सब कुछ देख लिया है। गमनागमन क्यों नहीं करती? क्योंकि समस्त लोकाकाश के प्रदेशों में जन्म मरण कर भरपूर भ्रमण कर लिया है आदि अतः यह मौन उपदेश है। कहा भी है **'मोक्षमार्गं अवाग्विसर्गं वपुषानिरूपयन्तं युक्ति आगम कुशलम्'** सर्वा० मंगलाचरण की व्याख्या में। मोक्षमार्ग को बिना वचन के उच्चारण किये शरीर से ही युक्ति और आगम में कुशल मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करती है अतः मूर्ति ही जिनवाणी है। इस प्रकार एक ही जिनेन्द्र प्रतिमा में नय सापेक्ष नवदेवता विराजमान हैं। एक का आदर सम्मान करना या अनादर करना सबका आदर सम्मान या अनादर करना है। अतः इनके आदर सम्मान विनय से रत्नत्रय की प्राप्ति और अनादर से नरक तिर्यंचगति की प्राप्ति होती है।

प्र.1145–एक ही जिनबिंब में नवदेवताओं के माध्यम से किस फल की प्राप्ति होती है?

उत्तर–एक ही जिनबिंब में नवदेवताओं की स्थापना कर आराधना ध्यान करने से रत्नत्रय धर्म की प्राप्ति होती है पूर्वबद्ध कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा होती है, सातिशय पुण्यकर्म का आश्रव बंध, पाप कर्मों का संवर, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात होता है और अनेक प्रकार की बीमारियाँ दूर होती है तथा सुखशांति प्राप्त होती है।

प्र.1146–पूजा किसे कहते हैं?

उत्तर–अपने से जो मोक्षमार्गस्थ गुणों से, आत्म साधना में बड़े हैं उनका आदर सम्मान करने को, गुण कीर्तन करने को, अभिषेक करने को, जल चंदन आदि अष्ट द्रव्य समर्पण करने को, आरती उतारने को, नमस्कार करने को, हाथ जोड़ने को, प्रदक्षिणा आदि लगाने को पूजा कहते हैं।

प्र.1147–पाठ किसे कहते हैं?

उत्तर–परमेष्ठियों के मुख से उच्चरित उपदेश का पुनः पुनः उच्चारण करने को, चिन्तन करने को पाठ कहते हैं।

प्र.1148–पाठ स्वाध्याय के किन भेदों में अंतर्भाव को प्राप्त होता है, कैसे?

उत्तर–स्वाध्याय के 5 भेदों में से अनुप्रेक्षा और आम्नाय स्वाध्याय में अंतर्भाव को प्राप्त हो जाता है। चिंतनात्मक पाठ अनुप्रेक्षा स्वाध्याय में और वचनात्मक, कायात्मक आम्नाय स्वाध्याय में अंतर्भाव हो जाता है।

प्र.1149–दान किसे कहते हैं?

उत्तर–स्वयं में रत्नत्रय की प्राप्ति, सातिशय पुण्य की प्राप्ति हो, यश फैले, गुण कीर्तन हो और पात्र सुखी सम्पन्न हो, ज्ञान, ध्यान और तप की वृद्धि हो, आत्म साधना में तत्पर हो, मोक्षमार्ग में दृढ़ रहें इस हेतु सत्पात्र को निज की चेतन अचेतन सामग्री अर्पण करने को दान कहते हैं।

प्र.1150–क्या यश और गुणकीर्तन के भावों से दान दिया जाता है?

उत्तर–नहीं, यश और गुणकीर्तन के भावों से दान नहीं दिया जाता है क्योंकि इसकी चाह करना निदान आर्तध्यान है और लोभ कषाय पूर्वक प्रशंसात्मक चाहना होने से परिग्रहानंदी रौद्रध्यान है फिर भी धर्मात्मा गुण ग्राहक गुणों की प्रशंसा, गुणकीर्तन करते ही है यदि नहीं करें तो इन्हें धर्मात्मा गुणग्राहक कौन कहेगा? कहा है :–**"बड़े बड़ाई न करें**

बड़े न बोले बोल, हीरा मुख से न कहे लाख हमारा मोल।'' जिस प्रकार हीरा अपनी कीमत स्वयं नहीं बताता है किंतु जौहरी बताता है यदि जौहरी कीमत नहीं बताये तो उसे जौहरी कौन कहेगा, इसी प्रकार दाता कर्तव्य परायण व्यक्ति अपने आप अपना गुणकीर्तन नहीं करता किंतु गुणग्राहक गुणकीर्तन करता ही है यदि नहीं करे तो उसे गुणग्राहक कौन कहेगा?

गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।।
होऊ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुणग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।। मेरीभावना

प्र.1151–जैसे आजकल अनेक साधुगण कहने लगे हैं कि श्रावक ने शुद्धि बोल दी तब हम आहार ग्रहण कर लेते हैं वह शुद्ध हो या अशुद्ध, गुण हो या दोष वह जाने?

उत्तर–ठीक है, जब श्रावक ने आहार की शुद्धि बोल दी तो फिर बालादि आने पर अंतराय क्यों करना? ग्रहण कर लो वह भी शुद्ध है यदि अंतराय किया तो आपकी बात झूठ साबित हुई क्योंकि आपने कहा है कि श्रावक ने शुद्धि बोल दी। यदि आपने बालादि अशुद्ध सामग्री खा ली तो आपका विवेक कहाँ गया?

प्र.1152–आजकल कोई कोई ऐसा भी कहने लगे हैं कि जैसा तुम खाते हो वैसा ही बनाओ और खिलाओ अलग से बनाने की क्या जरूरत सो ठीक है क्या?

उत्तर–ऐसा कहना ठीक नहीं हैं क्योंकि आपके कहे अनुसार यदि वह गृहस्थ आलू, मूली गाजरादि की सामग्री, अचार, चाय, कॉफी आदि लाकर खिलाने लगे तो क्या आप खायेंगे? यदि नहीं खायेंगे तो झूठ पाप के अधिकारी होंगे क्योंकि आपने अपने वचन का ही पालन नहीं किया यदि खायेंगे तो ऐषणा समिति की समूल विराधना की और श्रावक के भी मूलगुण नहीं रहे अतः इन सभी दोषों से बचने के लिए आगम परंपरानुसार विवेक और क्रिया की शुद्धि पूर्वक द्रव्य क्षेत्र काल भाव से शुद्ध बनाओ शुद्ध खिलाओ और शुद्ध खाओ। कदाचित् लोकदृष्टि में ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बहनों के लिए प्रेरणा रूप में कहा जा सकता है फिर भी एकादवार बोलने से एषणा समिति का अतिचार और पुनः पुनः बोलने से अनाचार दोष है।

प्र.1153–प्रारंभ में गलती होने पर भी सही मार्गदर्शन नहीं दिया तो क्या हानि है?

उत्तर–गलती करने वाला गलती करके सन्मार्ग से पतित है और मार्गदर्शक जानकर के भी संबोधन न करके अपने कर्तव्य पथ से च्युत है जैसे घर में बालक बालिकाओं के कुछ गलती करने पर यदि माँ बाप ने गलती नहीं छुडाई तो पूरे परिवार का जीवन और धर्म कलंकित हो जाता है अतः श्रावक श्राविकाओं के द्वारा गलती किये जाने पर गुरुओं ने गलती का त्याग कराकर सही मार्ग में नहीं लगाया तो दोनों ही कुमार्गगामी है। **लोभी गुरु लालची चेला, दोनों नरक में ठेलंठेला।**

प्र.1154–दैनिक कर्तव्यों के स्थान में चंदोवा क्यों लगाना?

उत्तर–अहिंसा धर्म का पालन करने के लिये, जीव रक्षा के लिये, स्वास्थ्य अच्छा रखने के लिये, मांस मलमूत्र आदि के भक्षण से बचने के लिये चंदोवा बांधना चाहिये। जब अकृत्रिम चैत्यालयों में किसी प्रकार की अशुद्धि और जीव विराधना नहीं होती है फिर भी मंगल स्वरूप चंदोवे को इन्द्र और देवगण लगाते हैं तो यहाँ पर नाना प्रकार की अशुद्धियां और जीव विराधना होती है अतः इन अशुद्धियों और जीव विराधना से बचने के लिए तथा अपनी प्रतिदिन की शुभाशुभ दिनचर्याओं के स्थानों में चंदोवा बाँधना ही चाहिये। इसमें कुतर्कें उठाना योग्य नहीं है।

प्र.1155–चंदोवा किन किन स्थानों में होना चाहिये?

उत्तर–1. भोजनशाला में 2. भोजन करने कराने के स्थान में 3. पानी रखने के स्थान में 4. शयन करने के स्थान में 5. उठने बैठने के स्थान में 6. देव शास्त्र गुरु के स्थान में 7. पूजापाठ के स्थान में 8. स्वाध्याय करने के स्थान में 9. ध्यान जप करने के स्थान में चंदोवा होना चाहिये।

प्र.1156–पहले कच्चे, मिट्टी, घास के मकान होते थे तो चंदोवा लगाने की आवश्यकता थी परंतु आजकल पक्के मकान होने से क्या जरूरत है?

उत्तर–पहले सभी के कच्चे, मिट्टी के, घासादि के मकान नहीं थे किंतु राजा महाराजाओं के, सेठों के मकान, कोठी आदि

आज के मकानों की अपेक्षा कई गुणे अच्छे थे जो आज भी सैंकड़ों हजारों वर्ष पुराने मकान देखे जा सकते हैं और कच्चे मिट्टी लकड़ी घास के मकान भी लीपपोत कर सुंदर बनाये जाते थे जो आजकल भी बड़े बड़े किसानों के मकान देखे जाते हैं। वहाँ धूल मिट्टी आदि कुछ भी अंदर नहीं गिरता है। क्या सभी कच्चे मकान वाले भोजनपान में धूलादि खाते पीते थे और आजकल भी जैनाजैनों के लाखों मकान कच्चे हैं तो क्या आज भी श्रावक श्राविकायें और अजैन धूल मिट्टी खाते हैं तथा आज भी कच्चे पक्के मकानों में हवा के द्वारा धूल मिट्टी अंदर आ जाती है जो कदाचित् आँख से न दिखने पर भी झाड़ूपोता लगाने से दृष्टिगोचर होने लगती है जो झाड़ कर बाहर फेंक देते हैं तो क्या पक्के मकान वाले भी मिट्टी खाते हैं? जो चंदोवा के संबंध में प्रश्नचिह्न लगाया जाता है। सीमेंट की मर्यादा तो साल छह महिने की है, दरारें पड़ जाती हैं पर चूने के मकान आदि आज भी चमक रहे हैं। अतः इनके महलों में चंदोवे होते थे तथा अकृत्रिम चैत्यालयों में चंदोवे का विधान आया है और अनेक कथा ग्रंथों में मंगल द्रव्य मानकर मंदिरों के लिये चंदोवे का दान देने के लिये लिखा है क्योंकि दीवालों में, छतों में छिपकली आसानी से दौड़ लेती है मकड़ी जाला बना लेती है और चंदोवे में छिपकली न दौड़ सकती है, न मकड़ी जाला बना सकती है किंतु इस कलिकाल की महिमा है कि अनेक अनहोनी घटनायें घट रही है जो आश्चर्यकारी हैं।

प्र.1157–चंदोवा बाँधने से अहिंसा धर्म का पालन कैसे हो सकता है?

उत्तर–प्रमाद का, आलस्य का अभाव होने से, सावधानी वर्तने से और जीवरक्षा का भाव होने से अहिंसाधर्म का पालन होता है क्योंकि प्रमाद हिंसा है तो सावधानी अहिंसा है।

प्र.1158–चंदोवा बाँधने से जीव रक्षा कैसे और स्वास्थ्य अच्छा कैसे रह सकता है?

उत्तर–चंदोवा के बिना नीचे चूल्हा, सिगड़ी आदि के जलाने से उत्पन्न हुई गरमी के कारण दीवाल से या छत से जंतु झुलस कर अग्नि में या पकते हुये भोजन में गिर सकते हैं और मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते हैं। प्रायः कर पत्रिकाओं में पढा जाता है, सुना जाता है कि बराती घराती, स्कूली बच्चे और सार्वजनिक स्थानों में विषाक्त भोजन करने से इतने बीमार पड़ गये, उल्टियां होने लगीं या मृत्यु हो गई यदि चंदोवे के नीचे भोजन बनता तो ऐसी समस्या सामने नहीं आती और जीवरक्षा होती तथा सामान की भी सुरक्षा होती क्योंकि चंदोवा होने से जहरीले या बिना जहरीले जीवजंतु कपड़े में गिरते, नीचे भोजन में नहीं क्योंकि हलवाईगण या भोजन बनाने वाले घरों में, होटलों में, दुकानों में या जहाँ कहीं भी लाईट के नीचे भोजन बनाया जाता है जो लाईट की चमक को देखकर पतंगे आदि आ आकर मंडराते हुए कढ़ाई आदि में गिर जाते हैं। ऐसा देखा जा रहा है कि प्रेम के, भक्ति के भोजन में कोई जानकर जहर नहीं मिलाता आजकल भी जो विषाक्त भोजन से बीमार हो रहे हैं या मृत्यु हो रही है वह केवल बाहर के भोजन से, सामूहिक भोजन से, होटलों के भोजन से हो रही है घर के भोजन से नहीं क्योंकि संस्कार के अनुसार घर के भोजन में बहुत कुछ सावधानी और शुद्धि का, सफाई का विवेक रहता ही है यह विवेक होटलादि में नहीं रहता है कारण होटलादि में व्यापार की आजीविका की दृष्टि रहती है धर्म की, प्रेम की भावना नहीं रहती है।

प्र.1159–चंदोवा बाँधने से माँसादि, मलमूत्र के भक्षण से कैसे बच सकते हैं?

उत्तर–चंदोवा के बिना, खुले बर्तनों में भोजन बनाने से भोजन में कोई छिपकली, मकड़ी आदि मक्खी मच्छर आदि भी अग्नि की गरमी से या भाप से झुलस कर गिर गये तब ऐसा भोजन करने से माँसादि मलमूत्र खाया पिया क्योंकि त्रस जीवों के शरीर में सभी प्रकार की धातु उपधातुयें पायी जाती हैं और इन जीवों के शरीर से मिश्रित भोजन करने से मांसादि मलमूत्र के सेवन का दोष आता है। चंदोवा होने से और भोजन के पात्र ढके होने से वो जीव जब इनमें गिरेंगे नहीं तो जीवों की हिंसा नहीं होगी और माँसादि के भक्षण का दोष भी नहीं आयेगा। अतः चंदोवा बांधना आवश्यक है।

प्र.1160–भोजनशाला में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?

उत्तर–बिना चंदोवा के भोजनशाला में भोजन बनाते समय या बर्तन खुले होने से जीव हिंसा हो सकती है और धूल मिट्टी, अनछना पानी आदि भी भोजन में गिर सकता है अतः इन दोषों से बचने के लिये भोजनशाला में चंदोवा बांधना चाहिये तथा अन्यमतियों में धर्म का प्रभाव भी पड़ता है।

प्र.1161–भोजन तैयार करते समय बर्तन ढक्कन सहित हो, ढके हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–भोजन तैयार करते समय भोजन तैयार करने के पात्र यदि खुले हैं तो ऊपर से या जहाँ कहीं से भी कोई जीवजंतु उड़ कर, आकर बर्तन की भाप से झुलस कर गिरकर मर सकते हैं अतः खुले बर्तन होने से जीव हिंसा भी होगी,

भोजन सामग्री भी बेकार हो जायेगी, भोजन करनेवाले भी बीमार पड़ जाते है यहाँ तक की मृत्यु भी हो जाती है तभी तो पेपरों में पढ़ा जाता है कि विषाक्त भोजन से इतने व्यक्ति बीमार पड़ गये, उल्टी दस्त होने लगे या मर गये क्योंकि खुले बर्तनों में भोजन बनाने से जहरीले जंतुओं के मिश्रण से भोजन भी जहरीला हो गया, कोई अलग से जहर नहीं मिलाता है इस कारण भोजन तैयार करते समय पात्र भी ढके होने चाहिये तभी तन मन धन की रक्षा हो सकती है अन्यथा असावधानी होने से तन मन धन और धर्म नष्ट होते हैं अथवा खुले बर्तनों में भोजन बनाते समय वर्षा के समय में बौछार से या हवा के साथ अनछने पानी के मिश्रण से जीव हिंसा का भी पाप होता है।

प्र.1162–भोजन करने कराने के स्थान में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?

उत्तर–बिना चंदोवे के भोजन करने कराने पर भोजनशाला के समान ही दोष उत्पन्न होते हैं इस कारण चंदोवा बांधने से और भोजन के पात्रों को ढक कर रखने से तथा भोजन सामग्री में ही स्थिर मन से देखते हुए, शोधते हुये करने से दोष नहीं लगते इसलिये चंदोवा बांधना चाहिये।

प्र.1163–पनघट में, घिनोची में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?

उत्तर–बिना चंदोवे के, बिना ढक्कन के पीने के पानी में, निस्तार के पानी में कोई जीवजंतु गिर जायें, जहर की वर्गणायें गिर जायें, मिल जायें, धूल मिट्टी, बाल आदि गिर जायें तब ऐसे दूषित पानी का बाह्य प्रयोग करने से शरीर में खुजली, जलन आदि चर्म रोग, पीने से स्वर भंग, कुष्टादि रोग, स्वाद की हानि होती है। शरीर के अंदर जहर भी फैल सकता है क्योंकि आजकल जीवघातक अनेक गैसें निकल चुकी हैं जिससे पीने वाले बेहोश भी हो जाते हैं यहाँ तक की मृत्यु भी हो जाती है। अतः चंदोवा और ढक्कन सहित भोजनपान की सामग्री होने से भोजनपान ग्रहण करने पर भी इन आपत्तियों से बच जाते हैं। इस कारण घर के जल संग्रहालय में चंदोवा होना चाहिये।

प्र.1164–शयनागार में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?

उत्तर–बिना चंदोवे की जगह में सोने के समय अधिकतर मुँह खुल जाता है तब खुले मुँह में ऊपर से या जहाँ कहीं से भी कोई जंतु मलमूत्र क्षेपण कर दे या मुँह में गिर जायें या शरीर पर गिर कर काट ले, डंक मार ले जिससे नाना प्रकार की बीमारियां हो सकती है, शरीर में जहर फैल सकता है जैसे अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र में रहने वाले महामत्स्य के मुँह में सोते समय मुँह के खुल जाने पर अनेक जलजंतु गमनागमन करते हैं अथवा यहीं पर जब बच्चे सोते हैं तब उनके मुँह में कितनी मक्खियां, छोटे मच्छर भिनभिनाते हुये मलमूत्र क्षेपण कर देते हैं इसलिए बाहर की आपत्तियों से बचने के लिए मुँह चद्दरादि से ढ़क कर सोना चाहिये। अतः इन दोषों से बचने के लिये शयनागार में चंदोवा होना चाहिये।

प्र.1165–उठने बैठने के स्थान में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?

उत्तर–बिना चंदोवे के स्थानों में उठने बैठने पर ऊपर से छिपकली वगैरह अपने ऊपर मलमूत्र क्षेपण कर दे या स्वयं गिर पड़े तो महान अशुभ का सूचक होने से जब मुनियों को दंडस्नान करना पड़ता है, वस्त्रधारी गृहत्यागियों को वस्त्र सहित पूरा स्नान करना पड़ता है तो सामान्य गृहस्थों की बात ही क्या है? अतः तन मन धन और धर्म की रक्षा करने लिये चंदोवे के नीचे छत्रछाया में उठना बैठना चाहिये।

प्र.1166–देव शास्त्र गुरु के स्थान में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?

उत्तर–देव शास्त्र गुरु के स्थान में चंदोवा होना चाहिये क्योंकि इनकी स्वच्छता, पवित्रता, शुद्धता से अपनी स्वच्छता, पवित्रता, शुद्धता होती है कारण अपनी असावधानी से इनमें अशुद्धता आई, उपसर्ग परीषह उत्पन्न हुआ तो प्रमाद के कारण अपना ही रत्नत्रय मार्ग नष्ट हो जाता है या संकट में पड़ जाता है जैसे छतरी सही सुरक्षित है तो अपनी रक्षा होती है और असुरक्षित है तो अपनी विराधना होती है ठीक इसी तरह अपनी सावधानी असावधानी से जैसी अवस्था देवप्रतिमा शास्त्र गुरु की होगी ऐसी ही अवस्था अपनी होगी। अतः इनके स्थान में चंदोवा होना चाहिये।

प्र.1167–पूजापाठ के स्थान में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?

उत्तर–बिना चंदोवे के पूजापाठ करते समय उपयोग में विकार उत्पन्न करने वाले जीव जन्तु ऊपर से शरीर में गिर जायें तो पूजापाठ से मन चलायमान होने पर सही फल प्राप्त न होकर दुर्ध्यान हो जाता है पूजन सामग्री भी खराब हो जाती है, अशुद्ध सामग्री चढ़ाने से पापकर्म का आश्रव बंध भी होता है अतः दुर्ध्यानों से बचने के लिये, धर्मध्यान की सिद्वि के लिये चंदोवा होना चाहिये।

प्र.1168–स्वाध्याय के स्थान में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?

उत्तर–बिना चंदोवे के स्वाध्याय करते समय यदि शरीर के ऊपर जहरीले या सामान्य जीवजंतु गिरकर काटने लगे तो स्वाध्याय स्वरूप अंतरंग तप से मन चलायमान होने पर स्वाध्याय का सही फल प्राप्त नहीं हो पायेगा, शास्त्र का भी अविनय होगा और अशुद्धि होगी। अतः मन स्थिर करने के लिये, उत्कृष्ट फल पाने के लिये, उपसर्गों से बचने के लिये चंदोवा होना चाहिये तभी निर्विघ्न अंतरंग तप की सिद्धि हो सकती है।

प्र.1169–ध्यान जप करने के स्थान में चंदोवा क्यों बांधना चाहिये?

उत्तर–बिना चंदोवा के स्थान में ध्यान जप करते समय ऊपर से अपने ऊपर कोई जीवजंतु या सामग्री गिरी तो ध्यान और जप से मन विचलित हो सकता है तथा उनके काटने से शारीरिक नाना प्रकार की बीमारियां, चर्मरोग हो सकते हैं और चंदोवा सहित स्थान में ध्यान जप करने से निर्विघ्न समाप्त होता है अतः निर्विघ्न सिद्धि के लिए ध्यान जप आदि के स्थान में चंदोवा होना चाहिये।

प्र.1170–जब जंगलों में ध्यान जप करते थे तो वहाँ पर बिना चंदोवे के ध्यान जप की सिद्धि कैसे होती थी?

उत्तर–उन जंगलों में आकाश ही चंदोवा था और वे दृढधर्मी थे उपसर्ग परीषह विजेता थे और उत्तम संहनन के धारी थे इसलिए वे बिना चंदोवे के उपसर्ग परीषहों के आने पर भी वे अपने ध्यान जप से चलायमान नहीं हुये किंतु जो तन मन से कमजोर थे वे द्विपायन मुनि के समान अपने ध्यान जप से गिर कर चलायमान होकर अनंत संसारी हुए। फिर भी यहाँ जो घर या मंदिर में ध्यान जप करना चाहते हैं तो उनको ध्यान जप चंदोवा के नीचे करना चाहिये क्योंकि हीन संहनन हीन परिणाम हैं।

प्र.1171–ध्यान जप आदि के समय में उपसर्ग परीषह होना ही चाहिये तभी कर्मों की विशेष निर्जरा होती है अतः इस समय चंदोवा क्यों लगाना पड़े?

उत्तर–यह बात सत्य है की ध्यान और जपादि के समय आपत्तियों के आने पर ही असंख्यातगुणी विशेष निर्जरा होती है जैसे सोना जितना तपता है, पिटता है उतना ही चमकता है, कीमत को श्रेष्ठता को प्राप्त होता है इसी तरह ध्यानी आत्मा उपसर्ग परीषहों से तप्तायमान होने पर शुद्ध होती है और श्रेष्ठता को प्राप्त होती है। ऐसा नियम होने पर भी यदि अपना मनोबल और तनबल कमजोर है तो जो कुछ पाया है वह भी सुरक्षित नहीं रह पायेगा अतः अपनी और अपने धर्म की रक्षा करने के लिए चंदोवा लगाना आवश्यक है तभी ध्यानादि की सिद्धि हो सकती है क्योंकि लौकिक या लोकोत्तर कार्यों की सिद्धि के लिए तदनुकूल द्रव्य क्षेत्र काल भाव होना चाहिये अन्यथा असफलता मिलेगी।

प्र.1172–चंदोवा या चांदनी बांधने के संबंध में आगम प्रमाण है क्या?

उत्तर–हाँ, इस संबंध में आगम प्रमाण है जो निम्न प्रकार हैं। प्रमाणः–

लंबंत कुसुम दामा पारावय मोर कंठणिह वण्णा।
मरगय पवाल वण्णा <u>विदाण</u> णिवहा विरायंति।।1662।।तिलोय० अधि०4 पृ० 474

अर्थः–हिमवान् पर्वतस्थ जिनभवन में जिनप्रतिमाओं के ऊपर लटकती हुई पुष्पमालाओं सहित कबूतर एवं मयूर के कंठ तथा मरकत और मूँगा के सदृश वर्ण वाले चंदोवे के समूह शोभायमान हैं। तिलोय० भाग–2

णच्चंतचमरकिंकिणि विविहविताणादियाहि वत्थाहिं।
<u>ओलंबिद</u> हारेहिं अच्चंति जिणेसरं देवा।।112।। ति० भाग–3 अधि० 5 पृ० 29

अर्थः– वे देव विस्तीर्ण एवं लटकते हुए हारों से संयुक्त तथा नाचते हुए चँवर एवं किंकिणियों सहित अनेक प्रकार के वस्त्रों के चँदोवे आदि से जिनेश्वर की पूजा करते हैं।

ते सव्वे जिण णिलया मुत्तावलि कणयदाम कमणिज्जा।
वर वज्ज कवाड जुदा दिव्व <u>विदाणेहिं</u> रेहंति।।43।।ति० भाग–3 अधि० 7 पृ० 29

अर्थः–वे सब जिनमंदिर मोती एवं स्वर्ण की मालाओं से रमणीक और वज्रमय किवाड़ों से संयुक्त होते हुये भी दिव्य चँदोवे से सुशोभित रहते हैं। जो कहते हैं कि पहले कच्चे मकानों से धूल मिट्टी गिरती थी इसलिए चँदोवा बांधते थे सो

उनको यहाँ देखना है कि उन अकृत्रिम चैत्यालयों में न धूल मिट्टी है, न विकलत्रय प्राणी हैं, न बारिस है फिर भी अकृत्रिम चैत्यालयों में आ० श्री यतिवृषभजी ने चँदोवों का विधान किस हेतु किया है यह समझना चाहिये। वे देवगण मंगलसूचक मंगल द्रव्य मानकर चंदोवों से पूजन करते हैं इसी तरह आज्ञानुसारी जिनेन्द्र भक्त श्रावकगण मंदिरजी के लिए अनेक व्रतों के उद्यापनोंमें कथाओं के अनुसार चंदोवा भी दान में देते हैं तथा अपने घरों में भी चंदोवे बांधते थे। आज भी अनेक मंदिरों में अनेक जगहों में चंदोवे दिखाई देते हैं और वर्तमान में अनेक साधुसंघ बिना चंदोवे के आहार भी नहीं लेते हैं किंतु कुछ नवीन संस्कारी साधुगण बिना चंदोवे के आहार लेने लगे हैं यह आश्चर्य है।

प्र.1173–वास्तु और वास्तुशास्त्र किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस स्थान पर ठहर कर, निवास कर प्राणी अपना जीवन सुखमय और दुःखमय व्यतीत करते हैं उसे वास्तु कहते हैं और इसके सदोष, निर्दोष बताने वाले उपायों को, वचनों को वास्तुशास्त्र कहते हैं।

प्र.1174–यंत्र, मंत्र, तंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर–द्रव्य गुण और पर्यायों के यथानुरूप नामों को किसी धातु, पाषाण, कागज या भोज पत्रों पर गोलाकार, चौकोर, त्रिकोण आदि आकारों में लिखने को यंत्र कहते हैं। मन की, द्रव्य और भावप्राणों की रक्षा करने वाले ऐसे द्रव्य गुण पर्यायों के यथानुरूप नामों को मंत्र कहते हैं। इन्हीं नामों की, मंत्रों की सिद्धि के उपायों को तंत्र कहते हैं।

प्र.1175–यदि णमोकार मंत्र में अग्नि को स्तंभित, कीलित करने की शक्ति है तो आज के वैज्ञानिक युग में इसका रिसर्च क्यों न कर लें?

उत्तर–णमोकार मंत्र में अग्नि शमन करने की शक्ति मौजूद है किंतु योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव चाहिये इनके बिना प्रयोग करने पर भी णमोकार मंत्र की शक्ति मंत्र में ही रहेगी, उत्पन्न नहीं हो सकती जैसे किसान बीज से पुनः फल की प्राप्ति के लिए योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव को देखता है। यदि ये द्रव्यादि अनुकूल हैं तो बीज से फल की प्राप्ति होती है अन्यथा बीज की फल प्रदान करने की शक्ति बीज में ही रह जाती है, कार्य रूप में परिणत नहीं हो पाती। **द्रव्य** :–बीज खादपानी। **क्षेत्र** :–खेत, भूमि, मिट्टी। **काल** :–मौसम। **भाव** :–बीज में अंकुरोत्पत्ति आदि की सामर्थ्य। किसान का भी तदनुकूल भाग्य और पुरुषार्थ होना चाहिये तो ही सफलता मिलती है अन्यथा नहीं। णमोकार मंत्र के फल को पाने लिए भी योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव चाहिये तभी फल प्राप्त हो सकता है अन्यथा नहीं। **द्रव्य** :–शरीर, शुद्ध भोजनपान। **क्षेत्र** :–जप करने का पवित्र स्थान। **काल** :–मनोनुकूल मौसम। **भाव** :–निर्मल, निष्कपट, निस्वार्थ, निष्काम परिणाम तथा जप कर्ता का तदनुकूल भाग्य और पुरुषार्थ भी होना चाहिये। ये द्रव्य आदि चारों अनुकूल हैं तो मंत्र की सिद्धि होती है फल प्राप्त होता है यदि प्रतिकूल हैं, शक्तिहीन हैं तो फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है इससे मंत्र की शक्ति कम नहीं मानी जायेगी। जैसे उल्लू सूर्य प्रकाश को नहीं देख पाता तो क्या सूर्य प्रकाश हीन हो गया? नहीं, इसी तरह विश्वासहीन व्यक्ति यदि णमोकार मंत्र के फल को नहीं प्राप्त कर पाये तो इससे मंत्र शक्तिहीन नहीं कहलायेगा।

प्र.1176–णमोकार मंत्र में पहले शक्ति थी पर अब नहीं रही ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर–ऐसा नहीं है, पंचपरमेष्ठी वाचक नामों में जो शक्ति पहले थी वह वर्तमान में है और भविष्य में रहेगी जैसे सूर्य में, अग्नि में प्रताप प्रकाश पहले था वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। हाँ, इतना अवश्य है कि उपभोक्ता भाग्यहीन, पुरुषार्थहीन होने से लाभ नहीं ले पायेगा। शक्तिहीन उपभोक्ता के होने पर सूर्य और अग्नि के प्रताप प्रकाश में हीनता नहीं मानी जा सकती है, इसी तरह साधक भाग्यहीन पुरुषार्थ हीन होने से, मन की शुद्धि, पवित्रता न होने से परमेष्ठी वाचक मंत्रों का जाप करने पर भी सफलता नहीं मिलती है, कार्य की सिद्धि नहीं होती है तो मंत्र की शक्ति कम नहीं कही जा सकती है। जैसे आयुर्वेदीय औषधियां पहले फायदा करतीं थीं परंतु आज विदेशी दवाईयों का शरीर होने से या विशेष जहरीला होने से देशी दवाईयां जल्दी फायदा नहीं कर रही हैं तो क्या दवाईयों की शक्ति नष्ट हो गई ऐसा माना जायेगा? इसी तरह मंत्र के संबंध में समझना चाहिये।

प्र.1177–पूर्व के ऋषि मुनियों में विचारने, बोलने की शक्ति थी वह आज क्यों नहीं रही?

उत्तर–वह शक्ति आज भी है किंतु भोजनपान आचार विचार बिगड़ जाने से कार्य नहीं कर रही है यदि आज भी भोजनपान

आचार विचार सुधर जायें तो शक्ति कार्य करने लगेगी। जैसे यहाँ की उपजाऊ भूमि यहाँ के खादपानी से पर्याप्त मात्रा में फल दे रही थी किंतु लोभ के कारण विदेशी या बनावटी खादपानी से थोड़े समय तक अच्छा फल दिया किंतु कुछ समय के बाद लाखों एकड़ भूमि बंजर हो गई। जब भूमि और पेड़पौधों में अशुद्ध खादपानी का बुरा असर पड़ा तो मनुष्यों में क्यों न पड़ेगा?

प्र.1178–वर्तमान के मनुष्यों में बोलने की शक्ति नहीं हैं तो क्या मनुष्य कृत यंत्र तो लगातार अधिक से अधिक समय तक बोल सकते हैं इसीसे णमोकार मंत्र सिद्ध कर लेने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–मनुष्यों की शक्ति में अंतरंग बहिरंग कारणों से हीनाधिकपना पानी में उत्पन्न हुई तरंगों की तरह होता रहता है पर यंत्रों में भी चुंबकीय शक्ति के कारण भी हीनाधिकपना होता रहता है। यंत्रों में शक्ति से ज्यादा दबाव पड़ जाये या विरुद्ध कारण आ जाये तो भी कार्य नहीं कर सकता है। यंत्र अचेतन जड़ होने से मंत्रोच्चारण करने पर भी मंत्र की सिद्धि नहीं होगी क्योंकि जिसे भूख लगी है, रोग हुआ है उसे ही भोजन दवाई खिलाने से लाभ हो सकता है दूसरों को खिलाने से नहीं। यदि यंत्रों को ऋद्धि सिद्धि होने लगे तो उसका अनुभव कौन करेगा? उपभोक्ता कौन होगा?

प्र.1179–क्या विज्ञान में इतनी शक्ति है की वह द्रव्य को ऊर्जा में बदल सकता है?

उत्तर–हाँ, बदल सकता है और यह कार्य प्रायः कर अधिकतर सभी के लिए आश्चर्यकारी है किंतु अनेकांत वादियों के लिए कोई आश्चर्यकारी नहीं है क्योंकि द्रव्य मूर्तिक है, पुद्गल है, इंद्रिय ग्राह्य तथा यंत्र ग्राह्य है इसी तरह ऊर्जा है तब दोनों परस्पर में अपने आप या यंत्र या केमिकल्स के प्रयोग से बदल दिये जाये, संक्रमण करा दिये जाये तो कोई दोष नहीं है क्योंकि सजातीय या विजातीय स्कंधों का परस्पर में बंध एकीभावपना जैन सिद्धांत में स्वीकार किया गया है किंतु अमूर्तिक चेतन अचेतन द्रव्यों में या मूर्तिक अमूर्तिक द्रव्यों में कभी भी किसी भी प्रयोग से परस्पर में संक्रमण नहीं कराया जा सकता।

प्र.1180–औषधि किसे कहते हैं किस प्रकार की होनी चाहिये और किससे निर्मित हो?

उत्तर–शरीर में शस्त्रों के द्वारा, नाना विकारों को या वात, पित्त और कफ के मिश्रण से उत्पन्न हुये विकारों को शमन करने के उपायों को औषधि कहते हैं और वे व्यायाम, प्राणायाम और संयम ही औषधियां हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से शुद्ध होनी चाहिये अशुद्ध नहीं। पृथ्वि जल अग्नि, वायु, वनस्पति से निर्मित हो त्रस जीवों से और सप्तमल धातु उपधातुओं से निर्मित नहीं होनी चाहिये।

प्र.1181–जब पुण्य पाप कर्म का तीव्रोदय है तो बाह्य वस्तु हो या न हो तो भी सुख दुःख से कोई बचा नहीं सकता जैसे तीव्र पापोदय से असाध्य बीमारी के होने पर लाख दवाई करने पर भी बीमारी नहीं जाती तथा पुण्योदय आ गया तो बिना प्रयत्न के या किंचित् दवाई से दूर हो जाती है ऐसा क्यों?

उत्तर–यदि ऐसा ही आपका दृढ़ संकल्प है, विश्वास है तो बीमारी के आने पर प्रारम्भ से ही औषधि का सेवन मत करो? भूख लगने पर भी भोजन मत करो? वस्त्र धारण मत करो? मकान में, घर में मत रहो, शादी मत करो अपने आप संतान पैदा हो जायेगी व्यर्थ में ही पाप क्यों करते हो? जब पुण्य का प्रबल उदय है तो अपने आप स्वास्थ्य लाभ होगा इच्छानुकूल कार्यों में सफलता मिलेगी और पापोदय चल रहा है तो सारे परिश्रम व्यर्थ जायेंगे न? अतः पुण्य पाप कर्मों के उदय को कोई टाल नहीं सकता यह सत्य है किन्तु उदीरणा को तो टाल सकते हैं, रोक सकते हैं। भगवन्तों ने कर्मों की उदीरणा को टालने के लिये उपाय बताये हैं या उदीरणा पूर्वक कर्मों को क्षय करने के ही उपाय बताये हैं जो यंत्र, मंत्र, तंत्र, औषधि आदि रूप में हैं तथा कर्म सिद्धान्त ग्रन्थों में प्रत्येक द्रव्य कर्म प्रकृतियों के नोकर्म भी फल देने के लिये सहायक बताये हैं जो नो कर्मों के बिना कर्म निष्फल हो जाते हैं, टल जाते हैं।

प्र.1182–किस किस गुणस्थान तक कौन–कौन सी मार्गणायें पाई जाती हैं?

उत्तर–गति मार्गणा 14वें गुणस्थान तक। भाव इन्द्रिय मार्गणा 12वें गुणस्थान तक और द्रव्य इन्द्रिय 14वें गुण० तक। काय मार्गणा 14वें गुण० तक। योग मार्गणा 13वें गुण०। भाव वेद मार्गणा 9वें गुण०, द्रव्य वेद 14वें गुणस्थान तक। कषाय मार्गणा 10वें गुण० तक। ज्ञानमार्गणा 14वें गुण० तथा सिद्धों तक। संयम मार्गणा 14वें गुण० और सिद्धों

तक। दर्शन मार्गणा 14वें गुण० और सिद्धों तक। भाव लेश्यामार्गणा 13वें गुण० तक और द्रव्य लेश्यामार्गणा 14वें गुण० तक। भव्य मार्गणा 12वें गुण० तथा 14वें गुण० तक। सम्यक्त्व मार्गणा 14वें गुण० और सिद्धों तक। संज्ञी मार्गणा 12वें गुण० तक। आहार मार्गणा 13वें गुण० तक होती है।

प्र.1183–ईंधन सड़ा, घुना, गीला, सूखा, लकड़ी का, पत्थर का, कण्डे का, गैस आदि का किसी प्रकार का हो, कैसा भी हो जलकर कोयला या भस्म राख बन जाने पर शुद्ध हो जाता है तो इसी तरह मुर्दा जलाने के बाद उसकी राख भी पवित्र होने से उपयोग में ला सकते हैं या नहीं?

उत्तर–ईंधन वनस्पति का हो, खनिज का हो, या पृथ्वी का हो किन्तु सड़ा, घुना कीटाणुओं से युक्त नहीं होना चाहिये न गीला होना चाहिये। ऐसे ईन्धन की भस्म राख शुद्ध हो सकती है शेष की नहीं क्योंकि इनमें त्रस जीव नहीं पाये जाते हैं न त्रसों का शरीर होता है इसीलिये पवित्र माना जाता है किन्तु जिन ईंधनों में, राख में त्रस जीव या त्रस जीवों का शरीर पाया जाता है वह ईंधन, राख अपवित्र है, अशुद्ध है क्योंकि त्रसों के शरीर में सप्तमल धातु उपधातुयें पायी जाती हैं जो कार्य कारण भाव से या कारण कार्य भाव से अशुद्ध माना है यदि खून, पीव, माँस, हड्डी, चर्बी आदि की राख पवित्र है तो इनको और इनके खानेपीने वाले भी पवित्र माने जायेंगे? तो फिर शाकाहारी माँसाहारी, धर्मात्मा पापात्मा भेद क्यों? माँसाहार का त्याग क्यों करा, कराया जाता है? त्रसों को या मनुष्यों के शरीर को जलाने से उत्पन्न हुई राख अशुद्ध ही हैं उपयोग में लेने योग्य नहीं है।

प्र.1184–यदि ऐसा है तो तीर्थंकरों के शरीर को निर्वाण के बाद अग्निकुमार देवगण अग्नि संस्कार कर भस्म को देवगण, राजा, महाराजा, श्रावक, श्राविकायें पवित्र मानकर क्यों माथे पर लगाते थे तथा आजकल भी साधुओं की समाधि के बाद अग्नि संस्कार से उत्पन्न भस्म को व्रती, अव्रती, श्रावकगण पवित्र मानकर तिलक लगाते हैं, अपने घर में रखते हैं तब उपरोक्त दोष यहाँ क्यों नहीं आता है?

उत्तर–नहीं, उपरोक्त दोष यहाँ नहीं आता क्योंकि गृहस्थ भोगी है, भोगी का शरीर है, पापाचार से युक्त है अतः अपवित्र है, त्याज्य है किन्तु साधुओं का, तपस्वियों का शरीर तप, त्यागमय होने से, धर्ममय होने से, पवित्र है, शुद्ध है, पूज्य है, ग्रहण करने योग्य है अतः इनकी भस्म लगाने में दोष नहीं है। हवन के बाद में श्रावक श्राविकायें भस्म को लेकर अपने माथे पर लगाते हैं तथा उसी हवन की भस्म को तावीज में भरकर बांधने से भूत पिशाच की बाधाएं भाग जाती हैं और भूत पिशाच भी भाग जाते हैं।

प्र.1185–दान देने वाले को क्या कहते हैं और वह कैसा होना चाहिये?

उत्तर–दान देने वाले को दाता कहते हैं, वह दाता चारों वर्ण का भी हो सकता है तथा गुणस्थानों की अपेक्षा मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त होता है। जब आहार देने वाले को दाता कहते हैं तो मोक्षमार्ग के उपदेशक को दाता क्यों न कहा जाये? अतः समस्त प्राणी किसी न किसी रूप में अवश्य ही दाता है क्योंकि मोक्षमार्ग के योग्य मोक्षमार्गियों के लिए आहारदान, औषधिदान, अभयदान और ज्ञानदान ये चारप्रकार के दान बतलाये हैं। जब भोजनदान देनेवाले गृहस्थों को दाता कहते हैं तो समस्त प्राणियों के हितकारक ज्ञानदान देनेवाले अरिहंतों को दाता क्यों न कहा जाये?

प्र.1186–शूद्रों को आहारदान देने वाला दाता क्यों कहा जबकि आजकल साधु वर्ग शूद्रों के हाथ का गृहस्थों को भोजनपान करने का त्याग कराते हैं?

उत्तर–आहारदानादि सत्कर्म या असत्कर्म प्रतिक्षण यह संसारी प्राणी 108 प्रकार के भंगों से करता है। हाँ, इतना अवश्य है कि जिस किसी कार्य में ये 108 भंग अपने को दिखाई दें या न दें किंतु पशुपक्षी या शूद्र वर्ग काय से कृत करपात्र में आहार नहीं देगा। 107 भंगों से तो दे सकता है।

प्र.1187–तो क्या चारों वर्णों वाले अजैनों के द्वारा आहार मुनिजन ले सकते हैं?

उत्तर–नहीं, अजैनों के द्वारा मुनिजन आहार नहीं लेते हैं फिर भी यदि दाता जाति कुल की अपेक्षा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हो किन्तु धर्म की अपेक्षा दाता सात गुणों और नवधाभक्ति से युक्त होने के कारण जैन ही होना चाहिये

क्योंकि गुणहीन व्यक्ति न श्रावक होता है न साधु, न दाता न पात्र, कारण श्रावक और साधु का या दाता और पात्र का सम्बन्ध है। इसलिये मुनिजन नवधाभक्ति और सात गुणों के बिना दाताओं से आहार नहीं लेते हैं। नवधाभक्ति और सात गुणों के बिना दाताओं के हाथ से मुनिजन आदि आहार लेने लगें तो वे दिगम्बर साधुजन भगवान महावीर के अनुयायी आज्ञापालक शिष्य नहीं हैं।

प्र.1188–तो ऐसा क्यों कहा कि दिगम्बर जैन साधु चारों वर्णों से आहार लेते हैं?

उत्तर–नहीं, अजैनों के द्वारा मुनिजन आहार नहीं लेते हैं फिर भी जो ऐसा कहा जाता है कि मुनिजन चारों वर्ण वालों से आहार लेते हैं सो इसका मतलब यह है कि प्रत्येक प्राणी पुण्य और पाप को प्रतिक्षण 108 प्रकार से करता है अतः अजैन भी काय से कृत भंग को छोड़कर 107 कोटियों से दान दे सकता है यदि काय से कृत भंग के द्वारा आहार देना है तो दाता आचार, विचारों से, नवधा भक्ति और दाता के सात गुणों से सहित दिगम्बर जैन ही होना चाहिये। अब यदि दाता में देव, शास्त्र गुरु के प्रति श्रद्धा और भक्ति गुण नहीं है तथा मन, वचन काय की शुद्धि नहीं है तो वह दाता कैसे?

प्र.1189–यदि हर किसी जाति के व्यक्ति को सात गुण और नवधा भक्ति को याद करा देवें, चर्या सिखा देवें तो आहार ले सकते हैं क्या?

उत्तर–नहीं, केवल सिखाने से या चर्या करने से दाता नहीं कहलाता है कारण श्रद्धा और भक्ति ये आन्तरिक परिणाम हैं यदि केवल सिखाने से गुणवान कहा जाय तो मन के बिना केवल वचन में होने से झूठ पाप का सद्भाव, सत्य गुण का अभाव और मायाचार क्यों न माना जाये? तथा नवधा भक्ति में मन वचन काय की शुद्धि सिखाने से नहीं होती किन्तु आचार विचार तथा वर्णसंकर, जातिसंकर और वीर्यसंकर दोष से रहित शरीर की शुद्धि और शरीर की शुद्धि से मन वचन काय की शुद्धि होती है।

वर्णसंकर–चारों वर्णों के बालक बालिकायें परस्पर में अदल बदल कर विवाह करने के बाद उत्पन्न हुई सन्तान को वर्णसंकर दोष से युक्त कहते हैं।

जातिसंकर–वर्तमान में जैनधर्म को मानने वाली, पालन करने वालीं चौरासी जातियां हैं इनका परस्पर में भिन्न भिन्न जाति के साथ विवाह कर उत्पन्न हुई सन्तान को जातिसंकर दोष से युक्त कहते हैं जैसे अग्रवाल और खण्डेलवाल जाति का परस्पर में विवाह हो जाना आदि जातिसंकर दोष है।

वीर्यसंकर–अपने ही गोत्र के बिना अपनी ही जाति की लड़की के साथ विवाह हुआ है फिर बाद में पति की मृत्यु के बाद या किसी कारणवश छोड़ देने के बाद अपने ही देवर से, जेठ से या अपनी ही गोत्र में किसी के भी साथ सम्बन्ध कर उत्पन्न हुई सन्तान को वीर्यसंकर दोष से युक्त कहते हैं।

प्र.1190–इन तीनों दोषों से युक्त दाता की शुद्धि कब होती है?

उत्तर–इन तीनों दोषों वर्णसंकर, जातिसंकर, वीर्यसंकर से युक्त दाता की शुद्धि जितनी पीढ़ी तक सूतक, पातक का सम्बन्ध है वहाँ तक शुद्धि नहीं होती है किन्तु सूतक पातक की मर्यादा समाप्त होने के बाद शुद्धि हो जाती है। तब फिर एक ही भव में शुद्धि कैसे हो जायेगी? जैसे प्याज को कितना ही धोओ, छोंको, बघारों फिर भी उसकी दुर्गन्ध नहीं जाती सुगन्धित नहीं होती इसी तरह अशुद्ध रजोवीर्य से उत्पन्न हुई सन्तान के शरीर की शुद्धि सूतक पातक की 9वीं पीढ़ी तक नहीं होती, दसवीं पीढ़ी में पूर्ण रूप से शुद्धि हो जाती है। इसके आगे केवल गोत्रज संबंध है किंतु सूतक पातक का संबंध नहीं रहता है इस कारण 9वीं पीढ़ी के बाद उक्त दोषों से मुक्त हो जाता है।

प्र.1191–पहले प्रजाजन मोटा खाते थे, मोटा पहनते थे क्योंकि उस समय इतने भौतिक साधन नहीं थे न इतना धन था, जीवन संकुचित था कि वे प्रचार प्रसार के बिना विकास न कर पाये ऐसा है क्या?

उत्तर–पहले मोटा खाते थे, मोटा पहनते थे ऐसा आपका सोचना गलत है। पहले राजा और प्रजा शुद्ध खाते थे, शुद्ध पहनते थे, शुद्ध सोचते थे, शुद्ध बोलते थे, सभी के साथ शुद्ध निष्कपट, निःस्वार्थ आत्मीयता का व्यवहार करते थे, सुख दुःख में साथ निभाते थे इसीलिये निर्भय, निरोगी, स्वस्थ, सुखी रहते थे। भौतिक साधन न होने के कारण इतनी चोरी, डकैती, मारकाट, अपहरण आदि काण्ड नहीं होते थे, क्वचित् कदाचित् कहीं कहीं हिंसा आदि पाप होते

थे तो भी न के बराबर थे, यदि कहो कि पहले संकुचित दिमाग वाले थे तो बताओ **"सत्वेषु मैत्री, मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे"** यह भावना उस समय की थी या आज की है? उस समय के श्रावक कौवे के समान अपने साथियों को, अतिथियों को खिला पिलाकर स्वयं खाते थे किन्तु आजकल अधिकतर श्वान वृत्तिवाले दूसरों से बचाकर, छिपाकर स्वयं खाते पीते हैं यदि घर में कोई सगे सम्बन्धी आ जायें तो दो चार दिनों में ही बोझा लगने लगते हैं कि ये कब चले जायें आदि? अपने भोग विलास में, शृंगार अलंकार में मनमाना खर्च करते हैं उसका हिसाब नहीं लगाते किंतु धर्म कार्य में, परोपकार में खर्च की हुई पाई पाई का हिसाब लगाते हैं, लिखते हैं और परस्पर में निष्कपट, निःस्वार्थ आत्मीयता आदि का प्रेम व्यवहार न होने से किसी के सुख दुःख में शामिल नहीं होते हैं अतः आज की ही संकुचित भावना है पहले विशाल, सर्वव्यापी भावना थी। आजकल प्रचार प्रसार के इतने साधन होने से ही सदाचार, सद्विचार का लोप और दुराचार का अत्यधिक प्रचार प्रसार हो रहा है जो सबके सामने हैं। पहले सही आत्मीयता होने से राजा और प्रजाजन आदि एकसाथ मिलकर, बैठकर धार्मिक तथा लौकिक मनोरंजन तथा विचार विमर्श करते थे। वे सुखी संपन्न थे किंतु आज दुःखी हैं, बीमार हैं, भयभीत हैं, लज्जा मर्यादा विहीन हैं, मानवता रहित हैं ऐसा सभी अनुभव कर रहे हैं अथवा आजकल के पढ़े लिखे बुद्धि जीव पूर्व संस्कृति को उपेक्षा की दृष्टि से, हीन दृष्टि से देखते हैं किंतु आजकल पतला पहनते हैं, पतला खाते हैं तो नाना प्रकार की मानसिक यातनाओं से पीड़ित, कर्तव्य पालन से भयभीत हैं किंतु धर्म के, पुण्य के फल से प्रेम है, पाप से प्रेम है, पाप के फल से भयभीत हैं आदि। कलह, आतंकवाद आदि के झगड़े हो रहे हैं, अपनी भारतीय धार्मिक संस्कृति का विनाश हो रहा है। पहले कम पढ़े लिखे थे तो भी अपनी जाति कुल और धर्म की परंपरा को कलंकित नहीं करते थे सुरक्षित रखते थे किंतु आजकल भौतिकज्ञानी आचार विचार विहीन, जातिकुल और धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, भारतीय संस्कृति में कलंक लगाने वाले हो गये हैं। यह बड़ा आश्चर्य है कि पहले भारत को सदाचार, सद्विचारों के कारण ही सोने की चिड़िया कहा जाता था पर आजकल हीन आचार विचारों के कारण, मेरी तेरी हीन बुद्धि के कारण काले कौवे या कोयला जैसा भी कहा जाय तो कम होगा क्योंकि जब अपने ही परिवार में निष्कपट, निःस्वार्थ प्रेम नहीं रहा तो बाहर वालों में आंतरिक प्रेम कैसे रहेगा?

प्र.1192–प्रातिहार्य किसे कहते हैं? कितने होते हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिस देवोपुनीत मंगल सामग्री के द्वारा समस्त सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंचों का, मनुष्यों का, देवों का मन हरा जाय या मन हरण करने वाले को प्रातिहार्य कहते हैं। जो सत्पुरुषार्थ हीन सद्भाग्य हीन हैं ऐसे नारकियों का, एकेन्द्रिय से असैनी पंचेन्द्रिय पर्यंत और अभव्य जीवों का मन नहीं हरा जाता है जैसे सूर्योदय होने पर समस्त प्राणी लाभ लेते हैं किन्तु उल्लू, चमगादड़ लाभ नहीं ले पाते। इसी तरह उल्लू के समान महान पापी भी लाभ नहीं ले पाते इसमें प्रातिहार्यों का दोष नहीं उन प्राणियों का होनहार ही खोटा है जो तीर्थंकर की 12 सभाओं में नहीं जाते हैं। **8 नाम** :–1. अशोकवृक्ष 2. पुष्पवृष्टि 3. भामण्डल 4. दुंदुभिबाजे 5. तीन छत्र 6. दिव्यध्वनि 7. सिंहासन 8. चौसठ चमर।

प्र.1193–आजकल त्यागी व्रती, महाव्रती दाताओं के द्वारा पाँच प्रकार के अभक्ष्यों में से कितने प्रकार के अभक्ष्य भोजन को ग्रहण करते हैं या कर लेते हैं?

उत्तर–आजकल त्यागी व्रती प्रमादकारक, अनिष्टकारक और अनुपसेव्य ये तीन प्रकार के अभक्ष्य आहार ग्रहण कर लेते हैं सो दातागण भक्ति के आवेश में, लापरवाही के द्वारा, अजानकारी होने से, रागवश या अंधभक्ति वश पात्र की पाचन शक्ति, बलवीर्य और स्वास्थ्य प्रकृति को समझे बिना अत्यन्त गरिष्ठ या स्वास्थ्य प्रतिकूल आहार दे देते हैं जो प्रमादकारक और अनिष्टकारक अभक्ष्य कहलाता है। दातागण आहार की सामग्री को खुली हुई हाथ में लेकर मुँह के सामने कर शुद्धि बोलते हैं, हँसी मजाक करने लगते हैं जिससे आहार सामग्री में मुँह से निकली हुई हवा, भाप या थूँक सामग्री में गिर जाता है। थूँक के या मुँह की हवा के गिरने से आहार अनुपसेव्य और जूँठा कहलाता है। इस अनुपसेव्य आहार के ग्रहण करने से नाना प्रकार के संक्रामक रोग बनकर असाध्य रोग का रूप धारण कर मृत्यु तक करा देते हैं अतः इसिलिये आचार्यों ने दाता के सात गुणों में एक विवेक गुण तथा मौन पूर्वक आहार देने को कहा है जिससे दाता और पात्र की रक्षा होती है ।

प्र.1194–नौकर किसे कहते हैं, नौकरी कौन कब करता है और क्या हानि है?

उत्तर–जो अपने से बड़ों की सेवा कर आजीविका चलाये, मालिक की हर प्रकार से सुख दुःख में सहानुभूति दिखलाये, अपने जीवन की चिन्ता न कर मालिक को नाना कष्टों से बचाये, निःस्वार्थ निष्कपट सेवा करे उसे नौकर कहते हैं। जब व्यक्ति के पास में उदरपूर्ति का पर्याप्त साधन नहीं होता है या विशेष धनाकांक्षा हो तो वह अपने भाग्य को बेंचकर नौकरी करता है। व्यापार में भाग्य चमकता है और नौकरी में भाग्य बिक जाता है। वास्तव में हर किसी की नौकरी करना उच्च वर्ण का काम नहीं था नौकरी में जीवन पराधीन होता है। पराधीन होने से मालिक की आज्ञा मिलने पर ही धर्म पालन, तीर्थ यात्रा, पूजापाठ, प्रतिष्ठा, माँ बाप की सेवा, रिश्तेदारों आदि के यहाँ आना जाना कर सकता है अन्यथा नहीं। परिवार की सेवा भी छुट्टी मिलने पर ही कर सकता है। यदि छुट्टी नहीं मिली तो अन्दर ही अन्दर कुढ़ते रहो, मन की बात मन में रखो, रोते रहो। कदाचित् बिना बताये चले गये कार्य कर लिया तो डाँट पड़ेगी, पैसा कटेगा, सब के सामने नीचा देखना पडेगा आदि हानि है। भले ही आजकल नौकरी में अच्छा खासा पैसा मिलता है पर अपना अमूल्य समय सदोपयोग में नहीं लग पाता। पराधीन होने से मानसिक स्थिति ठीक नहीं रहती और व्यवहारकुशल भी नहीं होते हैं आदि हानि है जो प्रत्यक्ष है।

प्र.1195–मालिक किसे कहते हैं?

उत्तर–जो निज के धनादि को देकर अपने आश्रित सेवक को अपने समान बनाये तथा उसकी उचित व्यवस्था करे उसे या चेतनाचेतन सामग्री में मोही बन रक्षक को मालिक/अधिकारी/स्वामी कहते हैं।

प्र.1196–आजकल इस प्रकार न नौकर रहे न मालिक तो क्या किया जाये?

उत्तर–आजकल उपरोक्त नौकर और मालिक, सेवक और स्वामी न होने के कारण दोनों का जीवन दुःखी है, अविश्वासमय है, परस्पर में प्रेम नहीं है इसी कारण दोनों ही बदनाम और दुःखी हो रहे हैं।

प्र.1197–उन दोनों को परस्पर में किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये?

उत्तर–उन दोनों को परस्पर में निष्कपट निःस्वार्थ पिता पुत्र के समान या माँ पुत्री के समान व्यवहार करना चाहिये तभी दोनों का जीवन हर प्रकार से सुखी सम्पन्न हो सकता है, स्वर्गों जैसा समय निकल सकता है अन्यथा परस्पर में विश्वास, प्रेम न होने से नारकियों जैसा दुःखमय, कष्टमय जीवन व्यतीत हो रहा है।

प्र.1198–यदि मालिक नौकर को जूतियों जैसा समझे तो क्या हानि है?

उत्तर–जब मालिक नौकर को जूतियों जैसा समझेगा तो नौकर भी मालिक को जूतियों जैसा समझेगा क्योंकि संसार में ऐसा ही परस्पर में व्यवहार होता है। अब जरा सोचो यदि जूतों से अपनी इज्जत चाहते हो तो जूतों की भी भली प्रकार से इज्जत करनी होगी तभी जूतों के द्वारा अपने को इज्जत मिल सकती है जैसे जूता गंदा हो, फटा हो, जला हो, कटा हो आदि तो तुम्हें जूतों से कैसे शोभा मिल सकती है यदि जूता हर प्रकार से साफ स्वच्छ है तो तुम्हें भी इज्जत प्राप्त होगी इसी तरह अपन अपने सेवक को अपना सुख दुःख में सहायक समझें उसकी भली प्रकार से यथानुरूप धनादि देकर व्यवस्था करें तो वह भी मन वचन काय से भरपूर सुरक्षा करेगा, सहायता करेगा, सेवा करेगा अन्यथा हीन समझने से स्वयं को ही हीनता प्राप्त होती है क्योंकि अंतरंग में हीन परिणाम होने से, हीन वचन बोलने से तथा काय से हीन चेष्टा करने से नीचगोत्र कर्म का आश्रव बंध होता है और भविष्य में यह नीचगोत्र कर्म नीच जाति कुलों में जन्म दिला देता है। अतः दर्पण में जैसा मुँह करेंगे वैसा ही प्रतिबिंब दिखाई देगा इसी तरह नौकर को अपन जैसा देखेंगे वैसा ही वो नौकर अपने को समझेगा।

प्र.1199–लेश्या और गुणस्थान में क्या अंतर है जबकि दोनों की उत्पत्ति मोह और योग से होती है तथा किसका कौन सा भाव है और स्वामी कौन किसके हैं?

उत्तर–कषाय और योग से अथवा योग से होनेवाली लेश्यायें औदयिक भाव है तथा गुणस्थानों की उत्पत्ति दर्शनमोह, चारित्रमोह और योग से होती है। गुणस्थान औदयिक भाव, औपशमिक भाव, क्षायोपशमिकभाव, क्षायिकभाव है यही अंतर है। गुणस्थान सामान्य हैं और लेश्या विशेष हैं। गुणस्थान समस्त संसारी प्राणियों के पाये जाते हैं किंतु लेश्यायें सयोगी पर्यंत सभी संसारी जीवों के पाई जाती हैं। लेश्याओं के माध्यम से एकमात्र कर्मबंध ही होता है जबकि गुणस्थानों के द्वारा आश्रव बंध, संवर निर्जरा और मोक्ष ये 5 तत्त्व प्राप्त होते हैं। गुणस्थान मिथ्यात्व

कर्मोदय की अपेक्षा औदयिक भाव, अनंतानुबंधी कषायोदय की अपेक्षा दूसरा गुणस्थान औदयिकभाव तथा दर्शनमोहोदयादि के बिना पारिणमिक भाव है। तीसरा गुणस्थान जात्यंतर रूप सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव है। 4–12 वें गुणस्थान तक चारित्रमोह की अपेक्षा औदयिकादि चारों भाव हैं। योग सहित 13वाँ और योग रहित 14वाँ गुणस्थान होता है। लेश्यायें द्रव्य और भाव रूप तो गुणस्थान केवल भावरूप होते हैं। लेश्यायें 6 होती हैं और गुणस्थान 14 होते हैं।

प्र.1200–आजकल बहु बेटियों पर पुरुषवर्ग आक्रमण क्यों करते हैं?

उत्तर–आजकल अधिकतर बहु बेटियां पुरुषों पर बिच्छू की तरह स्वयं आक्रमण करती हैं जैसे बिच्छू डंक मारकर अलग हो जाता है किंतु जहर चढ़ने पर व्यक्ति रोता है, चिल्लाता है इसी तरह काम से पिड़ित, मर्यादा, लज्जा और विवेकहीन स्त्रियों के द्वारा काम की बाधा से बिंध कर पुरुषवर्ग आक्रमण करते हैं जो सभी को दिख जाता है, स्त्रियों का कटाक्षादि मार कर आमंत्रित करना, आकर्षित करना किसी को दिखता नहीं लेकिन पुरुष का दिख जाता है।

प्र.1201–पुरुषवर्ग ही बलात्कार करते हैं ऐसा पढ़ा सुना और देखा जा रहा है तब स्त्रियाँ पुरुषों पर कैसे आक्रमण करती हैं जो आपने कहा है?

उत्तर–किसी भी शुभाशुभ घटनाओं को न पकड़कर उसकी भूमिका को पकड़ना चाहिये ऐसे ही पुरुषों में काम चेष्टा की भूमिका किसके माध्यम से बनी, समुत्पत्ति कषाय का कारण कौन हुआ इसका विचार करो? जैसे बिच्छू को डंक मारते किसी ने देखा नहीं किंतु व्यक्ति को रोते चिल्लाते सभी ने देखा है इसी तरह कामबाण मारते किसी ने नहीं देखा है पर कामाग्नि से जले हुये पुरुषों की आवाज को, चर्या को बहुतों ने देखा, सुना, पढ़ा तब सभी को मालूम हुआ।

प्र.1202–समुत्पत्ति कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर–चेतन या अचेतन सामग्री के माध्यम से उत्पन्न होनेवाली क्रोधादि कषाय को समुत्पत्ति कषाय कहते हैं। कहा भी है **''अधिकरणं जीवाजीवाः''** जीव और अजीव के माध्यम से आश्रवबंध होता है।

प्र.1203–क्या जीव और अजीव आदि पदार्थ आश्रवबंध के साक्षात् कारण हैं?

उत्तर–नहीं, साक्षात् कारण नहीं हैं किंतु इन पदार्थों के माध्यम से साक्षात् विषय कषायों की उत्पत्ति होती है और विषय कषायों के माध्यम से आश्रव बंध होता है अतः आश्रव बंध के परंपरा के कारण हैं।

प्र.1204–कामबाण मारना स्त्रियाँ प्रारंभ करती हैं यह आपने कैसे कहा?

उत्तर–तिरछी निगाह से देखना, आँख से आँख मिलाकर हँसी मजाक करना, मटकते हुये चलना, ऊपर के वस्त्रों को आधा खोलकर वक्षोज दिखाते हुये गमन करना, शरीर के अंगों का प्रदर्शन करने वाले ऐसे अत्यंत महीन वस्त्र पहनना। जैसे ढ़के हुए माँसपिंड पर कौऐ, कुत्ते आदि नहीं झपटते हैं किंतु खुले दिखते हुए माँसपिंड में पशुपक्षी क्या मनुष्य भी झपटते हैं। इसी तरह सौम्य चर्या से, ढ़के हुए वस्त्रों से माँसपिंड न दिखने से कोई भी आक्रमण नहीं कर सकता पर आजकल पाश्चात्य संस्कृति के कारण जिन्स पैन्ट आदि वस्त्र धारण करने पर भी नग्नता का प्रदर्शन करतीं हुईं दिनचर्या से स्तनों को, कमर को, जंघों को दिखा कर पुरुषों को उत्तेजित करती हैं जिससे पुरुष कामी बनकर मौका पाकर उन पर आक्रमण कर देते हैं क्योंकि एक हाथ से ताली नहीं बजती तभी तो आजकल नग्नता के कारण पिता पुत्री का, भाई बहन का, चाचा भतीजी आदि का संबंध वर्तमान की दैनिक पत्रिकाओं में पढ़ा जा रहा है।

प्र.1205–आजकल बिल्कुल छोटी[2] बच्चियों के साथ कुकर्म की वार्तायें भी समाचार पत्रिकाओं में पढ़ी जाती हैं जिनके शरीर में किसी प्रकार का विकार नहीं है फिर वे कैसे अपने अंगों का प्रदर्शन कर मोहित कर सकती हैं?

उत्तर–जो पाँच सात साल आदि की बच्चियों के साथ कुकर्म चेष्टाओं की घटनायें सामने आ रही हैं सो उसका मूल कारण पूर्वबद्ध कर्मोदय ही है क्योंकि इस बालिका के जीव ने पूर्व काल में घटना करने वालों के साथ में कामांध होकर कर्म बंध किया था जैसे रावण ने सीता के पूर्व भव में मंत्र सिद्ध करते समय मंत्र साधना में बाधा डालकर शील भंग किया था तब सीता के जीव ने उस समय बदला चुकाने का निदान बंध किया था कि हे पापी ! तूने मेरे मंत्र साधना में बाधा डाली और शील भंग किया तो मैं तेरे विनाश का कारण बनूं। ठीक इसी प्रकार आजकल

सैकड़ों उदाहरण देखे जा रहे हैं कि जो एकदम छोटी बच्चियों के साथ या और भी बच्चियों के साथ कुचेष्टायें करने वालों को नाना प्रकार की यातनाओं का सामना करना पड़ रहा है तथा ऐसी कुचेष्टायें करने वालों के परिवार के साथ भी दूसरे कुचेष्टायें करने वाले भी बहुत मौजूद हैं। जैसे :–**मर्द को मर्द घनेरे हैं यहाँ नहीं तो बाहर बहु तेरे हैं।** अरे ! मदांध प्राणी तू दूसरों के साथ मर्मच्छेदी चेष्टायें क्यों करता है? तूं एक के साथ में करता है तो तेरे पूरे परिवार के साथ कुचेष्टायें करने वाले आज यहाँ नहीं तो कल बाहर बहुत मौजूद हैं। अतः लड़कियां स्वयं अपने जीवन को खतरे में डाल रही हैं और माँ बाप सहायक हो रहे हैं। यदि ये माँ बाप लड़कियों को अंग प्रदर्शन करने वाले वस्त्रों को न पहनायें, अशिष्ट शृंगारालंकार न करायें, न मनमाना पैसा दें, न घूमने फिरने दें तो इनका जीवन इतना क्यों बिगड़े, माँ बाप की, समाज की, धर्म की क्यों बदनामी हो? मंदिर या गुरु दर्शन के लिए प्रतिबंध लगा दिया जाता है, कहीं साधुसंघ में आनेजाने से लड़कियां बिगड़ जायेगीं या संघ में चली जायेगी तो हमारी बदनामी होगी ऐसा माँ बाप कहने लगते हैं पर बाजार में, होटलों में, कॉलेजों में, रात्रि या दिन में, अंधेरे में या उजाले में अकेली आती हैं, जातीं हैं, घूमती हैं, खेलती है इसमें कोई प्रतिबंध नहीं है, कोई बदनामी का डर नहीं है, न मन में संदेह है, न पहरा है। संस्कारहीन माँबाप ही बच्चियों को बिगाड़ते हैं और दोष दूसरों को देते हैं।

प्र.1206–रत्नत्रय मोक्षमार्ग है अतः मोक्ष प्राप्त होने के बाद रत्नत्रय छूट जाता है जैसे फल प्राप्त होने पर फूल, छत प्राप्त होने पर जीना छूट जाता है इसी तरह मोक्ष प्राप्त होने पर क्या रत्नत्रय छूट जाता है?

उत्तर–नहीं, दृष्टान्त के सारे धर्म यदि दृाष्टान्त में पाये जायें तो वह दृष्टान्त ही नहीं कहलायेगा। दृष्टान्त के कुछ धर्म दृाष्टान्त में पाये जाये तो उसकी समानता बताने के लिए उदाहरण दिया जाता है तथा ऊपर जो दो उदाहरण प्रश्न में दिये हैं वे भिन्न भिन्न सत्ता वाले हैं अतः वे कार्य के होने पर कारण छूट जाये तो कोई आश्चर्य नहीं है किंतु आत्मा और रत्नत्रय भिन्न भिन्न सत्ता वाले नहीं हैं कि जिससे वे मोक्ष को उत्पन्न कर रत्नत्रय धर्म छूट जायें, अलग हो जायें। अपूर्ण रत्नत्रय का नाम मोक्षमार्ग है तो पूर्ण रत्नत्रय का नाम मोक्ष है यही आत्मा की पूर्ण, शुद्ध अवस्था है। जिस प्रकार लाख प्रयत्न करने पर भी अग्नि से उष्णता अलग नहीं की जा सकती है उसी प्रकार रत्नत्रय धर्म तीनों कालों में लाख प्रयत्न करने पर भी आत्मा से अलग नहीं किया जा सकता। हाँ, इतना अवश्य है कि अपूर्णता का अभाव कर पूर्णता की प्राप्ति हो जाती है।

प्र.1207–मंदिर गृहस्थों के लिए होते हैं तो संघों में जिनमूर्ति रखने की क्या जरूरत है?

उत्तर–मुनियों के 28 मूलगुणों में दो मूलगुण स्तुति और वन्दना हैं इन मूलगुणों का पालन करने के लिए, आहार के लिए जाते समय अप्रत्याख्यान और आहार के बाद प्रत्याख्यान करने के लिए, तीनों संध्या कालों में दर्शन करने के लिए, प्रायश्चित्त करने के लिए क्योंकि गल्ती छोटों से होती है और प्रायश्चित्त बड़ों से या बड़ों के सामने लिया जाता है तथा विधिनिषेध रूप में मुनिव्रत नियम स्वीकार करने के लिए, शिष्य शिष्याओं को विशेष प्रायश्चित्तादि देने के लिए भी जिन प्रतिमाओं की आवश्यकता होती है। व्रत लेने के लिए सर्व प्रथम '**अरिहंत सक्खियं**' अरिहंत की साक्षी में कहा है तो प्रायश्चित्त भी अरिहंत की साक्षी लेना देना चाहिए क्योंकि जिससे या जिनकी साक्षी नियम लिया है उसी से या उनकी साक्षी प्रायश्चित्त लेना चाहिए। समाधि, बीमारी, त्रिकाल में या कभी भी जिनदर्शन और वंदना करने के लिए आवश्यकता होती है क्योंकि सामाजिक मंदिर तो समय पर खुलेगा या बीच में दरवाजा खुलवाना पड़ेगा या चाबी मांगना, मंगवाना पड़ेगी। चाबी वालों की राह देखनी पड़ेगी आदि याचनाओं से बचने के लिए जब मन में आया तभी दर्शन, पूजन, स्पर्शन, वंदन कर सकते हैं। देखो गृहस्थ श्रावक को देव दर्शन का नियम दिया था तो क्या मुनि बनकर छोड़ दिया जायेगा? आचार्य श्री समन्तभद्र जी ने र० श्रा० में कहा है कि:–'**स्वगुणः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठंते क्रमविवृद्धः।**' पूर्व गुणों के साथ साथ नवीन गुणों को बढ़ाना चाहिए। ऐसा नहीं हैं कि दीवाल बनाने के बाद नींव हटा दी जायें या हटा देने से दीवाल कहाँ ठहरेगी? शीघ्र ही नष्ट हो जायेगी। इसी तरह मुनि बनने के बाद देवदर्शन छोड़ दिया या हटा दिया तो मुनि पद कहाँ ठहरेगा? अतः देवदर्शन छोड़ा नहीं जाता किंतु और मजबूत किया जाता है, निर्दोष पाला जाता है। यदि कहो कि मुनिव्रत धारण करने के बाद गृहस्थ व्रतों की क्या जरूरत है और यदि है तो फिर अभिषेक, पूजन भी करना चाहिए, यदि मुनियों

ने अभिषेक, पूजन किया तो फिर गृहस्थ और मुनियों में क्या अंतर रहा? अंतर अवश्य है गृहस्थजन ये कार्य कदाचित् दोष युक्त स्थूलरूप से रोजाना करते हैं किंतु मुनिजन ये ही कार्य सूक्ष्मता से निर्दोष रूप में हमेशा करते हैं तभी असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होती है अथवा क्या मुनि बनने के बाद गृहस्थावस्था के सारे के सारे नियम छोड़ देने से क्या क्या खाओगे? क्या क्या पहनोगे? क्या क्या काम करोगे? फिर जीवन में सारी की सारी भ्रष्टता आ जायेगी। अतः मुनि बनकर गृहस्थावस्था के मूलगुणों का, षडावश्यकों का पालन और सूक्ष्मता से, निर्दोष रीति से सावधानी पूर्वक पालन किया जाता है, यदि आप एक नियम में प्रश्न चिह्न लगाते हो तो सभी नियमों में प्रश्नचिह्न लगाओ अथवा रुपयों में पैसे मौजूद हैं किंतु पैसों में रुपया नहीं है पैसों का समूह ही रुपया है, इसी तरह गृहस्थ व्रतों में मुनिव्रत नहीं है किंतु मुनिव्रत में गृहस्थ व्रत मौजूद है, गृहस्थ व्रतों की सर्वत्र सर्वकाल निर्दोष पूर्ण वृद्धि का समूह ही या फल ही मुनिव्रत है। भगवान के साथ समवशरण की बारह सभाओं में केवल गृहस्थ ही बैठते होते तो आपका कहना ठीक था कि मंदिर गृहस्थों के लिये होता है किंतु समवशरण में समस्त मुनिगण भी रहते हैं और भगवान के साथ–साथ विहार करते हैं तभी तो चारों सन्धिकालों में या सदा धर्मोपदेश सुनने का, आवश्यकों को पालने का मौका मिलता है और बड़ों के सान्निध्य में रहने से स्वच्छंदता नहीं आ पाती आदि हेतुओं से ही **''पढमोवयरणे'** रयणसार में गा० 144–145। प्रतिमोपकरण में। यदि कहो कि रयणसार ग्रंथ श्रावकों के लिये है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इसमें गृहस्थ और मुनियों का मिश्र रूप में कथन किया है।

आलोयणा य करणे पडिपुच्छा पूयणे य सज्झाये।
अवराये य गुरूणं वंदण मेदेसु ठाणेसु।। मूला० गा० 601 आ० श्री कुंदकुंद

अर्थ– आलोचना, प्रश्न पूछना, पूजा, स्वाध्याय, अपराध आदि स्थानों में गुरुओं को वंदन करना चाहिये। **''तदुभयमपि मिश्र मंगलम्''** ध० 1 सूत्र 1 पृ 27। अर्थ :–उन दोनों प्रकार के सचित्त अचित्त की मिली हुई अवस्था को मिश्र मंगल कहते हैं। जैसे साधुसंघ सहित चैत्यालय। जैन सि० पृ 601 भा० 2।

प्र.1208–साधुसंघ सहित चैत्यालय यह उदाहरण आ० श्री वीरसेन स्वामी ने धवला में नहीं कहा है बल्कि आपने कहा है अतः प्रमाणता कैसे?

उत्तर–नहीं, हमने नहीं कहा है फिर भी प्रमाण है क्योंकि आचार्य श्री वीरसेन स्वामी जी ने धवला में ही मिश्र मंगल का कथन करते समय **''सालंकार कन्यादिः''** अलंकार सहित कन्यादि ऐसा कहा है। अब आप ही बतायें कि कुंवारी कन्या किस समय अलंकार के बिना रहती है? हाँ, इतना अवश्य है कि कन्या में विशेष अलंकार न हो सो ठीक है पर सामान्य अलंकार तो होता ही है, अतः किसी भी काल में गरीब अमीर की कन्या सामान्य अलंकार के बिना नहीं होती है। इसी तरह साधु संघ भी सर्वकाल चैत्यालय सहित होना चाहिये तभी मिश्र मंगलपना बन सकता है अन्यथा नहीं।

प्र.1209–साधुसंघ सहित चैत्यालय ऐसा वाक्य धवलाकार ने और आपने नहीं कहा है तो किसने कहा फिर प्रमाणपना कैसे?

उत्तर–साधुसंघ सहित चैत्यालय ऐसा स्पष्ट वाक्य 'जै० सि० भाग2 पृ० 601 निक्षेप०' में जिनेन्द्रवर्णी ने कहा है जो ईसरी में आ० विद्यासागरजी से मुनि दीक्षा लेकर समाधिमरण किया तो क्या आपको इनके स्पष्ट वाक्य आगमानुसार होने से प्रमाण नहीं है? और वर्णीजी ने अपनी तरफ से नहीं लिखा है किंतु आ०श्री वीरसेन के अनुसार ही लिखा है क्योंकि लौकिक मिश्र मंगल का जो उदाहरण है वह लोकोत्तर मिश्र मंगल में दे नहीं सकते अतः लोकोत्तर मिश्र मंगल के लिए लोकोत्तर उदाहरण देना चाहिये।

प्र.1210–आजकल संघस्थ चैत्यालय वाहनों पर जाते हैं और साधुजन पैदल विहार करते हैं सो क्या यह दोष नहीं है?

उत्तर–नहीं, मुनिसंघ चेतन होने से समिति पूर्वक पैदल विहार करते हैं किंतु जिनबिंब पैदल विहार नहीं कर सकते हैं तथा गमनशील ज्योतिषी देवों के विमानों में अकृत्रिम चैत्यालय भी साथ–साथ गमन करते हैं ऐसा नहीं है कि देव विमान गमन करें और अकृत्रिम चैत्यालय वहीं रह जाएं। आप लोग जब विमान या गजरथ, अश्वरथ, बैलरथ निकालते हैं तब मूर्ति पैदल नहीं चलती किंतु किसी के सहारे से ही जायेगी तथा विमान आदि को श्रावकगण या अजैन नौकर अपने कंधों पर या खींच कर ले जाते हैं उस समय मूर्ति खुली होती है। अनेक लोग स्पर्श करते हैं । इस

संबंध में यदि संघ से तुलना करोगे तो जिस प्रकार संघ पैदल विहार करता है उसी प्रकार प्रतिमा जी को भी पैदल विहार करना चाहिये या मूर्ति को रथ आदि पर विराजमान कर प्रभावना के निमित्त ले जाते हो तो चतुर्विध मुनि संघ को भी रथ आदि में बैठाकर ले जाओ क्या यह आपके तर्कानुसार ही आपको स्वीकार है? नहीं, तो इस कारण जो नियम जहाँ का है वह वहीं लगाना ही बुद्धिमानी है अन्यथा मूर्खता है।

प्र.1211–हम लोग एक ही मूर्ति को रथ आदि में निकालते हैं और आप अनेक मूर्तियों को लेकर गमन क्यों करते हो?

उत्तर–आपको अपनी दृष्टि से दोष लग रहा है। देखो प्रत्येक देव विमानों में अकृत्रिम मूर्ति एक नहीं होती है किंतु 108 मूर्तियाँ होतीं हैं और संघ का कृत्रिम जिनालय विहार में बंद होने से मूर्तियों को कोई भी स्पर्श नहीं कर सकता है, ना अंदर घुसता है तब यह दोष क्यों लगेगा? अतः आपको अपनी दृष्टि से गुणदोषों का विचार न कर आगम दृष्टि से विचार करना चाहिये। अपनी दृष्टि के अनुसार आगम को मत समझो किंतु आगमानुसार अपनी दृष्टि बनाओ। **''आगम चक्खू साहू''** प्र०सा० मोक्षमार्ग की साधना करने वालों का एकमात्र आगम ही नेत्र है। **''इंदिय चक्खूण सव्वभूदाणि''** और मोक्षमार्गियों के बिना संसार मार्गियों का एकमात्र इन्द्रियाँ ही नेत्र हैं। प्रतिष्ठा ग्रंथों में और कृति कर्म विधि में चल और अचल प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा तथा दर्शन करने की विधि बतलाई है। यदि आपको संघों में चैत्यालय होने से तथा गाड़ियों में जाने से दोष दिख रहा है तो रथयात्राओं में दोष क्यों नहीं दिख रहा है ऐसा पक्षपात क्यों? यदि कहो कि बीसपंथियों में चलता है तेरापंथियों में नहीं बताओ दोनों के तीर्थंकर और आगम अलग अलग हैं? नहीं, तो फिर दूसरों पर दोषारोपण क्यों? यदि एक हैं तो यह पंथ भेद क्यों? इन्हीं खींचातानी के कारण ही जैनों की अखंड शक्ति नष्ट हुई और जब तक यह पंथवाद की अग्नि जलती रहेगी तब तक जैनों का पतन होता रहेगा। वर्तमान में जैनी पापाचार में, व्यापार में संशोधन नहीं करते हैं और मोक्षमार्ग में आने के लिये नाना प्रकार के कुतर्क करते हैं, बहाना बनाते हैं धर्मकार्य करते नहीं केवल धर्म के लिये कुछ समय मिला तो अपने अमूल्य समय को व्यर्थ में विवाद कर जीवन दूषित कर लेते हैं। इस प्रसंग पर प्र.74 पृ. 9 में देखना चाहिये।

प्र.1212–जब मुनिजन जंगलों में रहते थे तो वे जिनमूर्ति के बिना कृतिकर्म कैसे करते थे?

उत्तर–उनके पास कहो या उनके स्थान में जिन प्रतिमायें अवश्य थी तभी तो गुफाओं में, जंगलों में, पर्वतों में तथा जहाँ कहीं भी खुदाई में मूर्तियां पाई जाती हैं उन्हीं के माध्यम से कृतिकर्म कर लेते थे। यदि कहो कि वहाँ पर श्रावक थे सो भी बात नहीं है यदि श्रावक थे तो वहाँ पर खुदाई आदि में सर्वत्र कुछ संकेत मिलना चाहिये था पर नहीं मिलते हैं किंतु आजकल मनोबल और कायबल कमजोर होने से मंदिरों में, धर्मशालाओं में निवास करने लगे तथा कृतिकर्म जिनबिंब के बिना किसके सामने करेंगे? यदि कहो कि शिष्यगण गुरु के सामने कर लेंगे तो गुरु किसके सामने करेंगे? यदि कहो कि गुरु अपने आप कर लेंगे तो शिष्य भी अपने आप कर लेंगे इसमें क्या आपत्ति है? क्योंकि छोटे बड़ों का अनुकरण करते हैं और ऐसा होने से सभी स्वयंभू कहलायेंगे, फिर गुरु शिष्य का, छोटे बड़े का भेद मिट जाने से मोक्षमार्गस्थ उपचार विनय का भी जो अंतरंग तप कहा है वह लोप को प्राप्त हो जायेगा।

प्र.1213–आचार्य स्वयं भगवान स्वरूप हैं तो उन्हें मूर्ति की क्या जरूरत है?

उत्तर–आचार्य परमेष्ठी अपने आप में छद्मस्थ और प्रमत्त साधक मुनि हैं, भगवान नहीं। शिष्यगण, भक्तगण भक्ति वचन में कुछ भी कहें पर वास्तव में वर्तमान नय से वर्तमान में साधुजन भगवान नहीं हैं, यदि भगवान होते तो आहार विहार निहार क्यों करते? सरागी द्वेषी आश्रव बंध के कर्ता क्यों होते? प्रतिक्रमण प्रत्याख्यानादि क्यों करते? अतः वर्तमान में चारों परमेष्ठी बाह्य मुद्रा में समान हैं, नग्नावस्था है, फिर भी अंतरंग में समानता नहीं है क्योंकि मुनिजन अल्पज्ञ हैं और भगवान सर्वज्ञ हैं अतः दोनों में कर्मों के बंध उदय और सत्त्व में महान अंतर है।

प्र.1214–द्रव्य और भावपूजा करने का अधिकारी कौन है?

उत्तर–यथायोग्य यथावसर समयानुसार गृहस्थ, श्रावक और साधु ये तीनों ही अधिकारी हैं किन्तु गृहस्थों के द्वारा भावपूजा क्वचित् कदाचित् भावनारूप में होती है, सर्वत्र और सर्वकाल नहीं तथा द्रव्य पूजा प्रधान रूप से गृहस्थों और श्रावकों के होती हैं क्योंकि गृहस्थ और कुछ श्रावकों का जीवन आरम्भ परिग्रह से सहित, विषयवासना, शृंगार

अलंकार सहित है। भावपूजा मुनियों के मुख्य रूप से होती है क्योंकि ये आरंभ परिग्रह के त्यागी हैं, इनके भावपूजा सर्वत्र और सर्वकाल होती है, द्रव्यपूजा क्वचित् कदाचित् होती है, गौणरूप से होती है अथवा मन से गुणचिंतन करना भावपूजा और वचन काय से तदनुकूल प्रवृत्ति करना द्रव्यपूजा है **मू०चा० आ० वसुनन्दिकृत सं० टी० मूल० गा० 24–25। ''अच्चिदूण'' अर्चयित्त्वा गन्धपुष्पधूप दीपादिभिः प्रासुकैरानीतै र्दिव्यरूपैश्च द्रव्यैर्निराकृत मलपटल सुगन्धैश्च चतुर्विंशति तीर्थंकर पद युगलानामर्चनं कृत्वा अन्यस्याश्रुतत्वात्तेषामेव ग्रहणम्। अष्टमहाप्रातिहार्य समन्विता अर्हत्प्रतिमा तद्रहिता सिद्ध प्रतिमा अथवा कृत्रिमायास्ता अर्हत्प्रतिमा अकृत्रिमाः सिद्ध प्रतिमाः**–इस प्रकार तीर्थंकर का गुण ग्रहण पूर्वक नाम ग्रहण करके तथा मल पटल से रहित सुगन्ध द्रव्यों से युक्त लाये गये प्रासुक गन्ध, पुष्प, धूप, दीपादि पद्य से अक्षत, नैवेद्य, फल के द्वारा चतुर्विंशति तीर्थंकरों के चरण कमलों की अर्चना करके योगों की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करना स्तवावश्यक है, यहाँ तीर्थंकरों का ही स्तव समझना, शास्त्रगुरु का नहीं। गाथा 25। 8 प्रातिहार्य सहित तथा कृत्रिम प्रतिमायें अर्हत्प्रतिमायें हैं और 8 प्रातिहार्य रहित तथा अकृत्रिम प्रतिमायें सिद्ध प्रतिमायें हैं। **षडा० गा० 578 पूयाकम्मं च–'पूज्यंते अर्चयन्ते अर्हदादयो येन तत्पूजाकर्म बहुवचोच्चारण स्रक् चन्दनादिकं।'**–जिन वचनों के द्वारा अर्हदादि पूजे जाते हैं ऐसे बहुवचनों को उच्चारण कर उनको चढ़ाये गये पुष्पमाला चन्दनादि वह पूजा कर्म कहलाता है। यहाँ पर कोई कहे कि मुनिजन तो आरम्भ परिग्रह के त्यागी होते हैं वे इस प्रकार की पूजा नहीं कर सकते हैं सो यह प्रश्न ठीक नहीं है। क्यों ठीक नहीं है? सुनो, प्रतिज्ञा को निभाने के लिये और कर्तव्य पालन करने के लिए आ० श्री कुंदकुंदजी ने मूलाचार में मुनियों के लिए यह विधान किया है।

प्र.1215–द्रव्यपूजा गृहस्थों के होती है, मुनियों के नहीं फिर यह कथन क्यों किया?

उत्तर–आपका यह तर्क ठीक नहीं है क्योंकि आ० श्री कुन्दकुन्द ने मूलाचार की रचना मुनियों के लिए की है तथा गृहस्थों और मुनियों के लिए मिश्र रूप में रयणसार की रचना की है। मूलाचार में मुनियों का ही वर्णन है, प्रतिज्ञा भी मुनिधर्म को कहने की है। श्री मूलाचार का उद्गम स्थान आचारांग है तथा तीर्थंकरों का सर्वप्रथम उपदेश आचारांग पर ही हुआ, अतः मुनियों की दिनचर्या का कथन आचारांग के मूलाचार में, व्रतियों के धर्म का कथन उपासकाध्ययनांग में, अव्रती गृहस्थधर्म का वर्णन क्रियाविशाल पूर्व में किया गया है। वचन तथा काय की क्रिया द्रव्यपूजा कहलाती है यदि मुनिजन द्रव्यपूजा नहीं करते हैं तो मूलाचार में, त्रिलोकप्रज्ञप्ति में, भक्तियों में पूजा का विधान क्यों करते? यदि आपको मुनियों के द्वारा की गई द्रव्यपूजा में पाप दिखता है जबकि गुरुओं ने बिना आरम्भ परिग्रह के की है तो फिर आचार्य पुष्पदन्त भूतबलि ने, आचार्य कुन्दकुन्द ने, आ० श्री यतिवृषभादि अनेकों ने ताड़पत्र में कांटे से ग्रन्थ क्यों उकेरे? जबकि ताड़पत्र गीला होना चाहिए, न मुरझाया हो, न सूखा हो। यदि मुरझाया है या सूखा है तो कैसे स्वर व्यंजन उकेरे जायेंगे? मुरझाया है तो कांटा लगाते ही झुक जायेगा तथा सूखा है तो टूट जायेगा इसलिए ताड़पत्र गीला होना चाहिए। इस बात पर यदि आपको विश्वास न हो तो जो ताड़पत्र में उकेरने का काम करते हैं या जानते हैं उनसे सम्पर्क कर लो मालूम हो जायेगा। सामग्री तो श्रावक ने हाथ में दी और मंत्रोच्चारण कर सामने चढ़ा दी इसमें क्या पाप हुआ? जबकि ताड़पत्र हाथों में लेकर प्रत्येक पत्र में शब्दों को कांटे से उकेरा, धीरे धीरे हाथ से छेद किये जाते हैं, लिखे नहीं क्योंकि शब्द ऊपर लिखा जाता है और उकेरने में कांटा अन्दर तक जाता है जैसे आजकल धातुपाषाण की मूर्तियों में, बर्तनों में, टांकी से या मशीन से उकेरा जाता है तो निशान अन्दर तक पहुंच जाता है जिसकी मर्यादा भी अधिक है और लिखे हुए की मर्यादा कम है। आपकी मान्यतानुसार गीला ताजा ताड़पत्र सचित्त है या अचित्त? साधारण वनस्पति का है या प्रत्येक का? प्रत्येक वनस्पति में भी सप्रतिष्ठित प्रत्येक का है या अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति का? थोड़ा इसका विचार करो। इन महान अहिंसा महाव्रती आचार्यों ने प्रयोग क्यों किया? आजकल भी साधू वर्ग स्याही वाले पेन का प्रयोग करते हैं, स्याही गीली है, अब वह स्याही पानी से गीली हो या स्पिरिट से हो या और भी किसी वस्तु से, क्या ये साधु वर्ग अहिंसा महाव्रती नहीं हैं? अहिंसाधर्म का ठेका इन्हीं गृहस्थ पंडितों ने ले रखा है क्या? अतः आचार्योपाध्याय और

साधु परमेष्ठी भी द्रव्यपूजा करते हैं, सामग्री का उपयोग करते हैं जो आगम से, तर्क से निर्दोष है और विश्वास करने के योग्य है। आचार्य वाक्य पर विश्वास नहीं किया तो किस पर करोगे?

प्र.1216–सो कैसे, मुनिजन आरम्भ परिग्रह के त्यागी होते हैं तब वे द्रव्य कहाँ से लायेंगे और कैसे चढ़ायेंगे?

उत्तर–आचार्य किसी भव्य जीव को दीक्षा देते समय सामग्री का, पुष्पों का वर्षायोग प्रतिष्ठापन निष्ठापन योग में पीली सरसों या पीले चावलों का तथा दीक्षाकल्याणक, ज्ञानकल्याणक और मोक्षकल्याणक में मंत्रों से संस्कार करते समय लवंग का, पुष्पों का और अंगन्यास में घिसी हुई गीली केशर का प्रयोग करते हैं, अन्यथा सर्वांग में बीजाक्षरों का, शक्तियों का आरोपण कैसे करेंगे? लवंग बीज और फूल है तथा केशर फूल है। जब कोई विशेष कार्यक्रम होते हैं तो श्रावकगण समुच्चय अर्घ्य में, जयमाला में या निवार्णकल्याणक के दिन लड्डू में हाथ लगवाते हैं। इसी तरह किसी साधू साध्वी आर्यिकादि की असमय में, अबेला में समाधि होने पर हाथ पैर के अंगूठे का छेदन भेदन बन्धन करते कराते हैं जबकि उस मृत शरीर में प्रतिक्षण धातु उपधातुओं में कितने जीव जन्म और मरण करते हैं यह भी सोचो? आर्यिका दीक्षा, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका दीक्षा, ब्रह्मचर्य दीक्षा में वस्त्र धारण कराते हैं। पीछी बनाते बनवाते समय कैंची, सुई, ब्लेड को उपयोग में लेते या लिवाते हैं तथा संघस्थ त्यागी व्रतियों को वस्त्र दिलाते दिलवाते हैं इसी तरह स्वयं ने उपवास किया है पर संघस्थ साधुओं आर्यिकाओं को, त्यागी व्रतियों को, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बहनों को तथा आगन्तुक श्रावक श्राविकाओं को कारित और अनुमोदना रूप से भोजन कराते हैं, करवाते हैं आदि और भी प्रसंग हैं कि जिसमें आरम्भ परिग्रह का भरपूर प्रयोग होता है और महाव्रतों को पालने के लिए आचार्यों ने नवकोटियों से कहा है तथा नवकोटियों से पालन करने की प्रतिज्ञा की है। नवकोटियों से पालन भी करते हैं फिर भी व्यवहार धर्म के निमित्त या चतुर्विध संघ के पालन पोषण के निमित्त कुछ बाह्य चर्यायें ऐसी होती हैं जो कंथचित् गुण और दोष रूप में मालूम पड़ती हैं किन्तु रंगीन चश्मावालों को तो ये दूसरों की क्रियायें दोषरूप में ही दिखती हैं और अपनी स्वयं की नजर में ही नहीं आती हैं। आचार्यों के वस्त्र का त्याग है फिर वस्त्र क्यों धारण कराते हैं? एक भुक्त का नियम है या उपवास किया है फिर दूसरों को आहार की आज्ञा क्यों देते हैं? क्यों भेजते हैं? वाहन का त्याग है फिर भक्तों को वाहन से आने जाने के लिए प्रेरणा या आशीर्वाद क्यों देते हैं? अहिंसा महाव्रत स्वीकार किया है फिर मंदिर बनवाना, धर्मशाला बनवाना, पाठशाला बनवाना, चलवाना, प्रतिष्ठायें करवाना आदि आरम्भ के कार्यों में अधिष्ठाता बनना, प्रेरणा देना, इसके लिए आशीर्वाद देना क्या इन कार्यों में अपना उपयोग लगाना कारित और अनुमोदना नहीं है? अतः रंगीन चश्मा को उतारकर स्वच्छ चश्मा धारण कर देखें तो दोष और गुण सही नजर आयेंगे। निष्कर्ष यह है कि जो कार्य आचार्य के गुण हैं वे मुनियों के, उपाध्यायों के दोष हैं इस कारण द्रव्य पूजा करना प्रसंगानुसार आचार्यादि का दोष नहीं है किन्तु गुण ही है यदि आपको द्रव्यपूजा में दोष दिख रहा है तो उक्त कार्यों में दोष क्यों नहीं दिख रहा है? निष्पक्ष होकर देखो।

प्र.1217–तो क्या सभी आचार्य भगवन ये कार्य करते कराते हैं जब कि ये आरम्भ परिग्रह के त्यागी महाव्रती हैं?

उत्तर–हाँ, सभी आचार्य भगवन ये कार्य करते कराते हैं इतना अवश्य है कि कोई आचार्य सबके सामने उक्त कार्य कर लेते हैं तो कोई चार दिवार के अंदर प्राईवेट में करते हैं पर करते अवश्य हैं।

प्र.1218–सौ कैसे ठीक है?

उत्तर–जरा थोड़ा सा निष्पक्ष होकर विचार करो। जो कोई श्रावक लौकिक कार्यों के लिए आशीर्वाद मांगता है तो क्या वे किसी न किसी रूप में आशीर्वाद नहीं देते? वह आशीर्वाद चाहे हाथ उठाकर दें, चाहे देख लें, चाहे मुस्करा लें, चाहे ॐ कहकर स्वीकृति प्रदान करें? जैसे साम्परायिक आश्रव के कथन में जीवाधिकरण के 108 भेद बताये गये हैं। अतः जब त्यागी, सामान्य गृहस्थ, विशेष गृहस्थ भक्त आकर किसी कार्यक्रम के लिए आमन्त्रण देते हैं, आशीर्वाद मांगते हैं तब स्वीकृति मिलने के बाद ही कार्यक्रम प्रारम्भ होते हैं। ऐसा नहीं है कि स्वीकृति मिले बिना

ही कार्यक्रम प्रारंभ हो जाये और किसी को अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है कि बिना संकेत के ज्ञान हो जाये अब आप सोचो ! इन कार्यक्रमों में स्वीकृति ही मन से कृत कारित अनुमोदना, वचन से कृतकारितानुमोदना, काय से कृत कारित अनुमोदना प्रत्यक्ष देखने में आती है, आ रही है, तब शेष 99 भंग बिना कहे अपने आप आ जाते हैं। **सो कैसे?** जब हाथ से आशीर्वाद दिया, सिर में कम्पन हुआ, सिर हिलाया या पीछी से आशीर्वाद दिया या मन्द मुस्कान से या ॐ उच्चारण कर स्वीकृति दी, कृत कारित अनुमोदना हुई, अतः अंतिम भंग प्राप्त होने पर पूर्व के भंग आ ही जाते हैं और आना भी अवश्यंभावी है किन्तु पूर्व के भंग होने पर आगे के भंग भजनीय हैं, हो सकते हैं, और नहीं भी हो सकते हैं, अतः सभी त्यागी, महाव्रती, व्रती, प्रमत्तसंयत गुणस्थान वाले किसी न किसी भंग के साथ द्रव्यपूजा करते हैं, द्रव्यसामग्री हाथ में लेकर या दूसरों के द्वारा चढ़वाते हैं। **चोर प्रयोग** :—चोरी का त्याग करके भी चोरी करने का प्रयोग बताना, उपाय बताना चोरी पाप है। ठीक ऐसे ही पूजा पाठ का, यात्रा का, दान का प्रयोग बताना, उपाय बताना, उपदेश देना भी द्रव्य पूजा है। यदि कहो कि तीर्थंकर भी उपदेश देते हैं तो वो भी द्रव्य पूजा करते हैं सो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि उनके घातिया कर्मों का क्षय हो चुका है अतः उनके पूजा करने का प्रसंग नहीं आता किन्तु यहाँ प्रमत्त संयत अवस्था है, प्रमादपूर्वक आत्म प्रदेशों में कम्पन होना साम्परायिक आश्रव है अतः प्रमत्तों का दोष है और केवलियों का गुण है। इसी तरह आपको मालूम है कि कोई भी कार्य करना, कराना, अनुमोदना करना बराबर है आश्रवबंध में कोई अन्तर नहीं पड़ता तथा फल भी बराबर मात्रा में प्राप्त होता है। जैसे आदिनाथ बनने के पहले आठवें भव में चारणमुनि को आहारदान देते समय पास में सिंह, बन्दर, नेवला और सर्प ये चारों दुष्टपरिणामी, क्रोधी, मांसाहारी, कृष्ण लेश्या वाले, अधोमार्गी दान की महिमा को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, मन से दान की अनुमोदना की, स्वयं की निन्दा की तब उसी भव से लेकर मोक्षपर्यन्त जो फल आदिनाथ ने पाया वही फल उन चारों ने पाया। इसी तरह जो फल सीता ने दान देकर, तपकर प्राप्त किया वही फल जटायु के जीव ने भी सीता के समान व्रत का पालनकर सोलहवें स्वर्ग का स्थान प्राप्त किया। इसी तरह कोटीभट श्रीपाल ने पूर्वभव में मुनि की निन्दा की थी तथा 700 सुभटों ने अनुमोदना की तब सभी ने राजा के समान फल पाया। इसी तरह पुण्य पाप के सम्बन्ध में अनेक उदाहरण हैं। अतः लौकिक कार्यों में किसी प्रकार से एक भी कोटि उत्पन्न हुई तो सभी कोटी किसी न किसी प्रकार से आ जाती है अपने को मालूम पड़े या न पड़े, यह भिन्न बात है। तभी तो सूत्रकार ने **''तीव्रमन्द ज्ञाताज्ञात भावाधिकरण वीर्य विशेषेभ्यस्तद्विशेषः।।''** त.सू.अ.6सू.6 तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, आधार विशेष, शक्तिविशेष होने से आश्रवबन्ध में विशेषता आती है। इस कारण किसी भी त्यागी, व्रती की, महाव्रती की हीनाधिक रूप में बाह्य चर्या को देखकर उनके प्रति ये समीचीन हैं और ये असमीचीन हैं, गलत हैं या सही इस प्रकार निर्णय मत कर लेना, श्री जयसेनाचार्य ने धर्म० में अ.5 गा.118 पृ.110। ''**सगुणो निर्गुणोपि स्यात् निर्गुणो गुणवानपि। शक्यते न च निश्चेतुं मान्यः सर्वोप्यतो मुनिः।।**''अपने चर्म चक्षुओं से जो गुणवान दिख रहा है वह निर्गुणी हो सकता है तथा जो गुणहीन सदोषी दिख रहा है वह गुणवान भावलिंगी मुनि हो सकता है। इसलिए मुनियों की बाह्य चर्या को देखकर यह निर्णय करना अशक्य है कि अभी जिनको देखा था वे सही हैं या गलत हैं अथवा ये सही हैं या गलत। इस कारण बाह्य में निर्ग्रन्थ लिंग, पीछी, कमण्डलु, केशलोंच आदि क्रियाओं को देखकर मुनि मानकर उनका आदर सम्मान करना, विश्वास करना। अन्यथा मत समझना। आ. श्री कुंदकुन्द ने द.प्रा. में **'तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो।2।'** उस संबोधन रूप उपदेश को सुनकर दर्शन विहीन जीवों की वन्दना नहीं करना चाहिए। पुनः :—

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजम पडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवई एसो।।24।।

जो मात्सर्य भाव से यथाजात रूप निर्ग्रन्थ लिंग मुनि को देखने योग्य, दर्शन के योग्य नहीं मानता है वह अहंकारी होने से संयमी होकर भी मिथ्यादृष्टि है। कोई कोई वर्तमान में इस गाथा का अर्थ दिगम्बरेतर साधुओं के लिए कहा है सो उनका ऐसा अर्थ करना ठीक नहीं है क्योंकि आचार्य श्री कुंदकुंद वस्त्रधारी को **'सो संजम पडिवण्णो'** वह संयम को प्राप्त हुआ ऐसा नहीं कहते। अतः जो दिगम्बर मुनि कषायवश दिगम्बरों को ही देखने

योग्य नहीं मानता है, घृणा करता है, किनारा कर जाता है वह दिगम्बर मुनि संयमी होता हुआ भी मिथ्यादृष्टि है। जो आजकल पंथवाद के जहर से पीड़ित हैं वे भिन्न संप्रदाय वाले मुनियों से द्वेष के कारण नहीं मिलते हैं।

प्र.1219—जब घरों में स्वर्गस्थ परिवार वालों के वस्त्राभूषणादि नहीं रख सकते हैं तो समाधिस्थ साधुओं की मूर्ति फोटो आदि क्यों रख सकते हैं?

उत्तर—गृहस्थों के वस्त्राभूषण, चित्रादि भोग के, राग के साधन हैं जिससे दुर्ध्यान उत्पन्न हो सकता है अतः मना किया जाता है परंतु साधुओं का शरीर तप त्याग का होने से वैराग्य तप त्याग की भावना उत्पन्न होती है अतः इनकी मूर्तियों को स्थापित कराया जाता है जो धर्मध्यान के निमित्त पूजी जाती हैं।

प्र.1220—दिगम्बराचार्य, उपाध्याय, साधु आदि की जीवितावस्था में मूर्ति, चरण आदि की स्थापना कर सकते हैं, क्या, यदि हाँ तो क्या गुणदोष है?

उत्तर—हाँ, कर सकते हैं, जब भरत चक्रवर्ती ने आदिनाथ भगवान सहित शेष 23 तीर्थंकर और भूत भावि 24 —24 तीर्थंकरों की स्थापना कराईं थी जबकि वर्तमान के 23 और भावि 24 तीर्थंकर हुए नहीं थे, न मालूम किस गति में, किस योनि में थे किंतु उन्होंने भावी मानकर स्थापना कराई थी तथा वर्तमान में सभी पीच्छी धारियों की घरों में और मंदिरों में फोटुयें श्रावक और साधुगण लगवाते हैं और श्रावकगण भी फोटुओं के सामने अर्घ चढ़ाते हैं, नमस्कार करते हैं, आरती उतारते हैं, अष्टद्रव्य से पूजा भी करते हैं और विशेष कार्यक्रमों में दीप प्रज्वलित कर कार्यक्रम प्रारंभ करते हैं और यहाँ तक की फोटो का निरावरण भी करवाते हैं, विमोचन भी करवाते हैं। अब सोचो ! वह अप्रतिष्ठित केवल नामनिक्षेप से फोटो का यह कार्यक्रम आगम की दृष्टि में उचित है या अनुचित? यह फोटो नवदेवताओं में से कौन सा देवता है? अब यदि वर्तमान में तीन परमेष्ठियों की धातु या पाषाण में प्रतिमाजी या चरण प्रतिष्ठापित कर स्थापना करा दी जाये तो क्या दोष है? जबकि यह प्रतिष्ठित प्रतिमा नव देवता के अंतर्गत आ जाती है। क्या गुरु भी व्यक्तिगत होते हैं? वर्तमान में जो गुरुओं की मूर्तिओं का, चरणों का निषेध करते हैं सो वे अपनी परंपरा का नहीं किंतु ये दूसरी परंपरा के हैं ऐसा मानकर निषेध करते हैं। मना करने वाले अपनी परंपरा वाले मुनियों की प्रतिमायें अनेक जगह विराजमान है, यदि ये प्रतिमाओं का, चरणों का निषेध करते हैं तो सर्वत्र निष्पक्ष होकर वर्तमान के मुनि आदि की मूर्तिओं का, चरणों का निषेध करना चाहिये और जहाँ जहाँ मूर्तियां, फोटो, केलेन्डर और चरण विराजमान हैं उनको अलग कर देना चाहिये अन्यथा मेरा तेरा भेद क्यों? इन प्रतिष्ठा ग्रंथों में वर्तमान के गुरुओं की प्रतिमा की प्रतिष्ठा का विधान किया है।

<u>आचार्य, उपाध्याय, साधु प्रतिमा प्रतिष्ठा :—</u>(प्रतिष्ठा प्रदीप पं० नाथुलालजी)

ॐ ह्रूँ णमो आयरियाणं धर्माधिपतये नमः। (पृ० 194—197)

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं धर्माधिपतये नमः।

ॐ ह्रः णमो लोए सव्व साहूणं धर्माधिपतये नमः।

उक्त तीनों में से जिनकी प्रतिष्ठा हो उनकी 10 माला का जप करें।

याग मंडल में पूर्व 36—25—28 अर्घ्य चढ़ावें। महर्षिपर्युपासन। आचार्य चारित्र भक्तिपाठ।

ॐ दर्शनाचाराय नमः, ॐ ज्ञानाचाराय नमः, ॐ वीर्याचाराय नमः, ॐ चारित्राचाराय नमः, ॐ तपाचाराय नमः, ॐ प्रथमानुयोगाय नमः, ॐ करणानुयोगाय नमः, ॐ चरणानुयोगाय नमः, ॐ द्रव्यानुयोगाय नमः (अर्घ्य चढ़ावे)

ॐ ह्रीं पलाशादि पादपपल्लव कलशेन आचार्य (उपा० साधु) चरण शुद्धिं करोमि।

ॐ ह्रीं सहदेव्यादि दिव्यौषधि कलशेन आचार्य (उपा० साधु) चरण शुद्धिं करोमि।

ॐ ह्रीं चंदनादि सुगंधितद्रव्य कलशेन आचार्य (उपा० साधु) चरण शुद्धिं करोमि।

ॐ ह्रीं कंकोलैलादि क्वाथ कलशेन आचार्य (उपा० साधु) चरण शुद्धिं करोमि।

तथा प्रतिष्ठा तिलक में आ० श्री नेमिचंद्र सैद्धांतिक देव द्वारा रचित परि० 17 पृ० 328 से 336 तक और प्रतिष्ठा विधि दर्पण आ० श्री गणधराचार्य कुंथुसागरजी कृत संग्रह पृ० 232 से 233 तक।

मुनिचरण पादुका

एदं युगीनाचार्यादिषु पूर्वाचार्यगुणस्य सत्ता वीक्ष्य तत्पादुकाद्वयं आचार्यादि प्रतिष्ठावत्प्रतिष्ठापयेत्। प्रतिष्ठातिलक पृ० 339 श्रुतस्कंधयंत्रादि प्रतिष्ठाविधानम्। यहाँ वर्तमान के आचार्यादि को ही ग्रहण करने के लिए **'एदं युगीनाचार्यादिषु'** यह पाठ दिया है।

संक्षेपप्रतिपत्तृणां क्रम एव मयोदितः।
क्रियाविशालाद् विज्ञेयो निस्तरोऽस्य क्रियाविधेः।।51।। प्रतिष्ठापाठ पृ० 11

अर्थः—यह प्रतिष्ठा विधि संक्षेप से मेरे द्वारा क्रम से कही गई है और यह विधि विस्तार से क्रिया विशाल पूर्व में कही गई है वहाँ से जानने योग्य है। आ० वसुबिंदु /जयसेन स्वामी विरचित।

प्र.1221—किसी श्रावक ने ब्र० भाग्या बहिन से पूछा कि आपके पास इतने बर्तनादि क्यों?

उत्तर—भैयाजी, हम आज ही चौके संबंधित सभी सामग्री का त्याग कर देते हैं क्योंकि दीक्षा की भावना लेकर घर से निकले थे किंतु यह बताओ जब घरों में भोजनपान के बर्तनों को मासिक वाली, कौए, कुत्ते, मांसाहारी शराबी, चांडालादि कसाई और सूतक पातक वाले स्पर्श कर लेवें, खा पी लेवें तो उन बर्तनों को अग्नि से तपाकर काम में लेना चाहिये या त्याग कर देना चाहिये ऐसा आचार्यों ने विधान किया है और सदाचारी गृहस्थों की परंपरा थी पर आजकल प्रायः कर 99% पाश्चात्य संस्कृति के कारण समाप्त हो गई है। आजकल घरों में द्रव्य क्षेत्र काल भावों की, वस्त्रों की शुद्धि नहीं रही और अव्रती गृहस्थों में सौ प्रतिशत अन्याय अभक्ष्य सेवन का प्रचलन हो गया है तब बताओ चर्या का पालन कैसे हो? यदि आप आगम परंपरानुसार हमारे नियमों का पालन कराना चाहते हो तो आज ही देव शास्त्र गुरु के अलावा शेष सभी का त्याग कर देते हैं। बोलो, आपको मंजूर है, मौन क्यों?

प्र.1222—तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले गृहस्थावस्था में दानपूजादि करते हैं या नहीं?

उत्तर—हाँ, अवश्य ही करते हैं क्योंकि आप्त आगम तपोभृत का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहा है। आगम का श्रद्धान करना यानि आगम की आज्ञा का निःशंकित होकर पालन करना। अब द्वादशांगवाणी के उपासकाध्ययनांग में पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक श्राविकाओं के लिए दिनचर्या का वर्णन किया है। षोडशकारण भावनाओं में आवश्यकापरिहाणि नाम की भावना कही है। यदि गृहस्थावस्था में इनका पालन नहीं करें तो उन्हें श्रावक कौन कहेगा? सम्यक्त्वाचरण चारित्र का पालन न करनेवाले होने से सम्यग्ज्ञानी और सम्यग्दृष्टि कैसे? जैसे यहाँ पर कोई व्रती श्रावक षडावश्यकों का और अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत का पालन नहीं करे तो उसे आप प्रतिज्ञावान श्रावक कहेंगे या आज्ञापालक कहेंगे? जैसे कोई पिताजी को माने और पिताजी की आज्ञा का पालन नहीं करे तो उसे सत्पुत्र कहेंगे इसी तरह यदि तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले यदि गृहस्थोचित कर्तव्यों का पालन नहीं करें तो वे उपासकाध्ययनांग की आज्ञा का पालन करने वाले कैसे? अतः भले ही कुछ ग्रंथकारों ने इन कार्यों के लिए मना किया हो पर वह केवल अतिशयोक्ति वचन लिखा है परंतु गुणस्थानानुसार ठीक नहीं है।

प्र.1223—तीर्थंकर कुमार गृहस्थावस्था में आहारादि किसके हाथ का ग्रहण करते हैं?

उत्तर—तीर्थंकर कुमार 8वें वर्ष में प्रवेश करते ही अप्रत्याख्यानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर पंचम गुणस्थानवर्ती अणुव्रती हो जाते हैं, अब बताओ ! जो देवगण कल्पवृक्षों से उत्पन्न भोजन लाते हैं वह सचित्त है या अचित्त? कल्पवृक्ष पृथ्विकायिक हैं, पृथ्विकाय रूप उपादान कारण से पृथ्वी संबंधि ही वस्त्राभूषण और भोजन सामग्री ही उत्पन्न होगी वनस्पति की नहीं क्योंकि वस्त्र और भोजनपान पृथ्विकाय नहीं है किंतु वनस्पतिकाय और जलकाय स्वरूप है। यदि ये सारी भोजन सामग्री पृथ्विकाय की खाते हैं तो इनमें और कुभोगभूमिजों में क्या अंतर रहा? कुभोगभूमिज भी मिट्टी खाते हैं अतः सचित्ताचित्त का विवेक होने के कारण देवों के द्वारा लाई गई सामग्री का उपयोग नहीं कर सकते हैं क्योंकि देवों के पास सचित्त वस्तु को अचित्त करने का कोई साधन नहीं है। यदि होता तो जन्माभिषेक के समय क्षीर समुद्र से जल लाकर अचित्त कर अभिषेक कर सकते थे किंतु नहीं करते हैं, जैसा लाते हैं वैसा ही बिना छाने ही अभिषेक कर लेते हैं। अतः व्रती बनने के बाद तीर्थंकर कुमार देवकृत आहार नहीं लेते किंतु यहीं पर श्रावक श्राविकाओं के द्वारा तैयार किया हुआ आहार लेते हैं। यहाँ पर श्रवणबेलगोला में घटी हुई घटना श्री चंद्रगुप्त मुनिराज की कथा दृष्टव्य है क्योंकि देवों के मूलगुणादि संस्कार न होने से आहारदान के लिए दाता नहीं है यदि होते तो क्षुल्लक को भी प्रायश्चित्त नहीं लेना पड़ता कारण संस्कारहीन श्रावक और साधु नहीं होते हैं।

प्र.1224–जब इन्द्र इन्द्राणी आदि अनछने पानी से पांडुकादि चारों शिलाओं में जिन बालक का अभिषेक करते हैं तो हम श्रावकगण यहाँ भी अनछने पानी से अभिषेक करें तो क्या आपत्ति है, इन्द्रादि को दोष नहीं, तो हमें क्यों?

उत्तर–नहीं, लवणसमुद्र और कालोदधि समुद्र के बाद तथा अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र के पहले असंख्यात समुद्रों में त्रसजीव नहीं पाये जाते जिससे इन्द्रादिकों को पानी छानने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि त्रस जीवों की रक्षा के लिए पानी छाना जाता है किंतु ढाई द्वीप के अंदर के जलाशयों में संख्यातासंख्यात त्रस जीव पाये जाते हैं इसलिए यहाँ पर त्रस जीवों की रक्षा के लिए पानी छाना जाता है। इस कारण यहाँ अनछने पानी का प्रयोग करना ही हिंसा पाप है यही आपत्ति है।

प्र.1225–किन्हीं ग्रथंकारों ने केवलज्ञान को 12वें गुणस्थान के अंत में और किन्हीं ने 13वें गुणस्थान के प्रारंभ में उत्पन्न होना कहा है सो इसमें क्या अपेक्षा है?

उत्तर–जिन ग्रंथकारों ने केवलज्ञान को 12वें गुणस्थान के अंत में उत्पन्न होना कहा है सो वह छद्मस्थ पर्याय के व्यय की अपेक्षा समझना तथा जिन ग्रंथकारों ने केवलज्ञान को 13वें गुणस्थान के प्रारंभ में उत्पन्न होना कहा है सो वह सर्वज्ञ पर्याय के उत्पाद की अपेक्षा समझना क्योंकि उत्पाद व्यय का एक ही समय है किंतु वचन प्रयोग में क्रमशः अथवा कोई बाद और कोई पहले किया जाता है।

प्र.1226–जब मोहनीयकर्म के क्षय से अनंतसुख उत्पन्न होता है तो 12वें गुणस्थान के प्रारंभ में अनंत सुख उत्पन्न होता है ऐसा कहना चाहिये फिर क्यों नहीं कहा?

उत्तर–यद्यपि 10वें गुणस्थान के अंत में मोहनीय कर्म का समूल क्षय कर 12वें गुणस्थान में प्रवेश करते ही अनंत सुख उत्पन्न हो जाता है परंतु अनंतसुख को जाननेवाला, अनुभव करने वाला अनंत केवलज्ञान न होने से आचार्यों ने विधान नहीं किया है यदि केवल अनंतसुख की अपेक्षा विचारा जाय तो 12वें गुणस्थान के प्रारंभ में ही अनंतसुख उत्पन्न हो गया है ऐसा विधान करना ही होगा।

प्र.1227–वस्त्रधारी त्यागीव्रती गृहस्थ क्या केशलोंच कर सकते हैं?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही अभ्यास के लिए कर सकते हैं पर मुनियों जैसा केशलोंच नामका मूलगुण नहीं माना जायेगा। यदि केवल बाल उखाड़ने मात्र का नाम मूलगुण है तो नग्न होकर सामायिक करते समय में मुनि मान लो पर नहीं माना जाता क्योंकि अभ्यास कर रहा है। जैसे ट्रेनिंग करते समय मास्टर, इन्जीनियर, ड्राईवर नहीं कहा जाता है। इसी तरह कोई ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बहनें केशलोंच करने का अभ्यास कर रहे हैं तो कोई दोष नहीं है, केशलोंच नामका मूलगुण नहीं माना जायेगा क्योंकि अभ्यास करने के बाद में मुनि, आर्यिका दीक्षा ली तो केशलोंच करने कराने के लिए किसी का मुँह नहीं ताकना पड़ेगा, न पराधीनता होगी, न प्रतिज्ञा और ना समय का उल्लंघन होगा। देखा जा रहा है कि जिन्होंने दीक्षा लेने के पहले केशलोंच नहीं किया है वे बाद में केशलोंच कराने के लिए गृहस्थों को बुलाते बुलवाते हैं तथा केशलोंच के समय भारी कष्ट का अनुभव भी करते हैं। अतः अभ्यास जरूरी है।

प्र.1228–पति पत्नी दोनों सर्विस करते हैं तो क्या आपत्ति है, क्या हानि है?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही हानि है, आपत्ति है। जब दोनों सर्विस करेंगे तो गोद की संतान किसके पास रहेगी? किसका प्यार पायेगी? किसके हाथ का भोजन करेगी? जब तुमने डॉक्टरों की देख रेख में गर्भ धारण किया, जन्म दिया, डेरी का दूध पिलाया, सेवा दूसरों ने की, दूसरों ने प्यार दिया, खिलाया पिलाया, केवल तुमने जन्म दिया इतना ही उपकार किया, शेष उपकार दूसरों ने किया तभी तो बीमारी आने पर या वृद्धावस्था के आने पर बच्चे बहुऐं सेवा नहीं करते हैं। घर से निकाल देते हैं या इसके पास जाओ उसके पास जाओ वे सेवा करें हम कहाँ तक करें? इस समय मालूम पड़ता है कि हमारी सेवा करने वाला कोई नहीं है, यदि आपने सेवा की है तो आपको सेवा मिलेगी। जब आपने बालक को जन्म अस्पताल में दिया है और वहीं का पालन पोषण प्राप्त हुआ है तो बालक कहता है कि आपका मरण अस्पताल में ही होगा तथा वहीं की सेवा सुश्रूषा प्राप्त होगी इसीलिए बीमारी आने पर अस्पतालों में भर्ती कर देते हैं, हम सेवा क्यों करें? कहावत है :–**सेवा का फल मेवा'** या **'करोगे सेवा तो पाओगे मेवा'** इसीलिए मृत्यु के समय बच्चे माँ बाप को हॉस्पिटल में भर्ती करा देते हैं और पैसे देकर नौकरों से

सेवा कराते हैं किंतु स्वयं नहीं करते। कहावत है **'दूज का बदला तीज को।' 'जैसा करोगे वैसा भरोगे।'** यदि सेवा चाहिये तो सेवा करो जैसे किसान घर से बीज निकाल कर खेत में डालता है तो खेत पुनः कई गुणे रूप में फल देता है इसी तरह सेवा के संबंध में समझना चाहिये अथवा दोनों के कमाने पर आंतरिक प्यार नहीं रह पाता। परस्पर की सेवा से वंचित रह जाते हैं और अहंकार भी भरपूर पाया जाता है क्योंकि दोनों कमाते हैं। इसलिए इनकी संतानें भी सत्संस्कार विहीन होती हैं।

प्र.1229–रजोवीर्य का जीवन में क्या असर पड़ता है?

उत्तर–जैसा बीज होगा वैसा ही फल होगा। यदि रजोवीर्य शुद्ध है तो संतान शुद्ध होगी और अशुद्ध है तो संतान भी वैसी ही होगी जो वर्तमान में अत्यधिक दृष्टिगोचर हो रहा है। एक उदाहरण है। एक सियार के बच्चे को सिंहनी ने पाला। वह सिंह के बच्चों के साथ बड़ा हुआ और खेला करता था। एक दिन खेलते हुए सभी बच्चे जंगल में पहुंचे। वहाँ हाथियों को देख कर सिंह के बच्चे शिकार के लिए झपटे और सियार का बच्चा भीरू स्वभाव के कारण डर कर पीछे भागा तो शेर के बच्चे भी शिकार छोड़कर अपने बड़े भाई के पीछे पीछे भाग आये और माँ से शिकायत की इस बड़े भाई ने हम लोगों को हाथी का शिकार नहीं खेलने दिया तब सिंहनी ने उस सियार के बच्चे से कहा :–

शूरोऽसि कृतविद्योऽसि दर्शनीयोऽसि पुत्रकः।
यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते।। गो० सा० गा० 13 की टीका

अर्थः–हे पुत्र! तू शूरवीर है, ज्ञानवान है, देखने में हष्टपुष्ट और सुंदर है किंतु जिस रजोवीर्य से तू पैदा हुआ है उस कुल में हाथियों की शिकार नहीं खेली जाती है अतः तू यहाँ से भाग जा नहीं तो मारा जायेगा। आजकल अशुद्ध रजोवीर्य से संतानें पैदा हो रही हैं इसलिए इस उत्कृष्ट अहिंसा धर्म में मानवों की ताकत और मन नहीं लग रहा है क्योंकि शेर का सामना करने के लिए शेर ही चाहिये गीदड़ नहीं। इसी तरह उत्कृष्ट धर्म धारण, पालन करने के लिए समयानुसार तन मन भी उत्कृष्ट चाहिये।

प्र.1230–मनुष्यों की उत्पत्ति बंदर से हुई है क्या?

उत्तर–जैसा बीज वैसा अंकुर। इस नियम के अनुसार बंदर पशुओं से मनुष्यों की उत्पत्ति नहीं हो सकती है अन्यथा आज भी वैज्ञानिक बंदर और बंदरी के रजोवीर्य से मनुष्य उत्पन्न कर ले या जिस किसी भी पशु पक्षियों के तज्जातीय रजोवीर्य से मनुष्यों की उत्पत्ति कर ले जो की असंभव बात है। हाँ, ऐसा हो सकता है कि दो भिन्न जातीय पेड़ पौधों को कलम कर तीसरी जाती का पेड़ पौधा पैदा कर सकते हैं। इसी तरह भिन्न भिन्न जातीय पशु पक्षियों को भी संकर दोष से कलम के समान तीसरी जाती का पशु पक्षी पैदा कर सकते हैं। इसी तरह मनुष्य मनुष्यनी और पशु पक्षी का परस्पर में संगम कराकर या इन्जेक्शन के द्वारा रजोवीर्य का मिश्रण कर उदर में या ट्यूब में तदनुकूल मौसम और भोजनपान देकर मिश्र रूप में पैदा कर ले तो कोई आश्चर्य की बात नहीं हो सकती है किंतु केवल बंदर और बंदरी के रजोवीर्य से ही मनुष्यों की उत्पत्ति नहीं हो सकती है क्योंकि तिर्यंचगति और मनुष्यगति अनादिकालीन है इनका उदयावस्था में संक्रमण नहीं होता है किंतु एक के उदय होने पर दूसरी अनुदय प्राप्त प्रकृति संक्रमण कर बिना फल दिये झड़ जाती है। ऐसा कर्म सिद्धांत का नियम है।

प्र.1231–भोजनपान का जीवन में क्या असर होता है?

उत्तर–मनुष्यों के जीवन में भोजनपान का महान असर होता है जैसे पेड़ पौधे अशुद्ध खादपानी से जल जाते हैं, सूख जाते हैं, फल हीन हो जाते हैं इसी तरह मनुष्य भी अशुद्ध खानपान से मानवताहीन हो रहा है। पशु पक्षी भी अपनी जातिकुल के विरुद्ध सड़ा गला अशुद्ध भोजन नहीं करते किंतु सूंघकर देखकर दूर हट जाते हैं इसी कारण वे निरोगी हैं पर मनुष्य केवल जिह्वा लोलुपता के कारण शुद्धाशुद्ध का विचार किये बिना जो आया जैसा आया वैसा ही खा लिया तभी तो नाना प्रकार की बीमारियां और वैर विरोध दिखाई दे रहे हैं, यही महान असर है, अतः बुद्धिमानों को भोजनपान सुधारना चाहिये।

प्र.1232–संगति का जीवन में क्या असर होता है?

उत्तर–**'संसर्गजाः दोषगुणाः भवन्ति'** संगति से दोष और गुण उत्पन्न होते हैं। यदि आचार विचार हीन व्यक्तियों की संगति की तो आचार विचार हीनता आती है और सज्जनों की संगति करने से सद्गुण आते हैं। जैसे अग्नि लोहे की संगति करती है तो घन की मार सहती है यदि संगति नहीं करे तो मार क्यों सहे या कामिनी कामी के संसर्ग से गर्भ धारण कर गर्भ की वेदना को भोगती है यदि संसर्ग नहीं करे तो क्यों दुःख भोगे? इसी तरह आत्मा विकारों

की, संसार शरीर भोगों की और सामग्री की संगति करता है तो नाना प्रकार के दुःख भोगता है यदि आत्मा इनकी संगति नहीं करे और धर्म धारण करे तो अखंड आत्मानंद का अनुभव करे अतः जीवन में कुसंगति और सत्संगति का महान असर होता है।

प्र.1233–विज्ञान और वैज्ञानिक किसे कहते हैं?

उत्तर–वि–विशेष, ज्ञान–जानकारी = विशेष जानकारी को विज्ञान कहते हैं। वि–नष्ट हो गई है जिनकी, ज्ञान–जानकारी = जिनकी जानकारी नष्ट हो गई है वह विज्ञान/मूर्ख या लौकिक भौतिक विशेष जानकारी है, वह विज्ञान अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान जिनका नष्ट हो गया है ऐसा भौतिक ज्ञान विज्ञान अथवा लौकिक ज्ञान मिथ्याज्ञान जिनका नष्ट हो गया है ऐसा विज्ञान सम्यग्ज्ञान या छद्मस्थ ज्ञान जिनका नष्ट हो गया है ऐसा विज्ञान केवलज्ञान। इस प्रकार विज्ञान के अनेक अर्थ होते हैं विशेष ज्ञान और मूर्ख। विज्ञान के स्वामी को वैज्ञानिक कहते हैं क्योंकि विज्ञान पद में स्वामीवाचक इकण् प्रत्यय लगाया है इसलिए भौतिक, लौकिक ज्ञानधारियों को लौकिक वैज्ञानिक और आध्यात्मिक यथार्थ भेदाभेद ज्ञानधारियों को लोकोत्तर वैज्ञानिक कहते हैं। लोक व्यवहार में भौतिक वैज्ञानिक पूज्य हैं, प्रसिद्ध हैं तो मोक्षमार्ग में लोकोत्तर वैज्ञानिक परमपूज्य हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं।

प्र.1234–आयुकर्म के बंधक काल को क्या कहते हैं और कितने प्राप्त होते हैं?

उत्तर–आयुकर्म के बंधक काल को अपकर्ष काल कहते हैं और यह काल संधि अवस्था में 8 बार प्राप्त होता है। ये अपकर्ष काल अपनी भुज्यमान वर्तमान में भोगे जा रहे जीवनकाल में 8 संधिकाल प्राप्त होते हैं। इन आठ अपकर्ष कालों में नवीन आयु कर्म के बंध की योग्यता प्राप्त होती है यदि बंध हो गया तो ठीक अन्यथा इन आठ अपकर्ष कालों के व्यतीत होने पर यदि अचरम शरीरी हैं तो अंत में असंक्षेपाद्धा काल जीवन का शेष रहने पर नवीन आयु का बंधकर मरण को प्राप्त कर गत्यंतर को चला जाता है। यदि चरम शरीरी है तो मोक्ष प्राप्त कर लेता है। नवीन आयु का बंध भुज्यमान आयु के त्रिभाग में होता है। ये 8 अपकर्ष काल इस प्रकार प्राप्त होते हैं :– माना कि किसी जीव की आयु 81 वर्ष की है तो सर्व प्रथम 81 वर्ष के तीन भाग 27–27 वर्ष के किये, इनमें दो भाग 54वें वर्ष का अंतिम समय और 55वें वर्ष का प्रथम समय इस प्रथम संधिकाल में अपकर्ष काल में नवीन आयु कर्म के बंध की योग्यता प्राप्त की, बंध गया तो ठीक, नहीं बंधा तो पुनः दूसरे अपकर्ष काल में 27 वर्ष के तीन भाग 9–9 वर्ष के करो 18वें वर्ष के अंतिम समय और 19वें वर्ष के प्रथम समय का संधिकाल। इसी तरह तीसरे अपकर्ष काल में 9 वर्ष के तीन भाग 3–3 वर्ष के करो, इनमें 6वें वर्ष के अंतिम समय और 7वें वर्ष का प्रथम समय का संधिकाल। चौथे अपकर्ष काल में 1–1 वर्ष के तीन भाग करो, इसमें दूसरे वर्ष के अंतिम समय और तीसरे वर्ष के प्रथम समय का संधिकाल। पांचवें अपकर्ष काल में 1 वर्ष के तीन भाग 4–4 महिने के करो तब 8वें महिने के अंतिम समय और 9में महिने के प्रथम समय का संधिकाल। 6वें अपकर्ष काल में 4 माह के 40–40 दिन के तीन भाग करों, 80वें दिन के अंतिम समय और 81वें दिन के प्रथम समय संधिकाल। 7वें अपकर्ष काल में 40 दिन के तीन भाग 13दिन और 8 घंटे–13 दिन और 8 घंटे करो, इनमें 26 दिन और 16 वें घंटे का अंतिम समय और 17 वें घंटे और 13वें दिन का प्रथम समय संधिकाल। 8वें अपकर्ष काल में 13 दिन 8 घंटे के तीन भाग में से दो भाग 8 दिन 21 घंटे 20 वें मिनिट का अंतिम समय 21 वें मिनिट 10 घंटे 4 दिन का संधिकाल। इस प्रकार जीवन काल में इन 8 संधिकालों में आयुकर्म के बंध की योग्यता प्राप्त होती है, इनमें आयु कर्म का बंध हो सकता है किंतु बंध हो ही जाये ऐसा नियम नहीं है। यदि प्रथम अपकर्ष काल में नवीन आयु कर्म का बंध हो गया तो अगले अपकर्ष कालों में पुनः जो आयु पहले बांधी है उसमें वृद्धि भी हो सकती है, हानि भी हो सकती है और जितनी बांधी थी उतनी ही रह सकती है। इस प्रकार यह अवस्था प्रत्येक अपकर्ष काल में समझना चाहिये।

प्र.1235–असंक्षेपाद्धा काल और भुज्यमान तथा बध्यमान आयु किसे कहते हैं?

उत्तर–8 अपकर्ष कालों के व्यतीत होने के बाद और मृत्यु होने के कुछ क्षण पूर्व काल को असंक्षेपाद्धा काल कहते हैं।

वर्तमान में उदय प्राप्त भोगे जाने वाली आयु को भुज्यमान आयु कहते हैं। नवीन बंधने योग्य या बंधने वाली आयु को बध्यमान आयु कहते हैं।

प्र.1236–महामुनि संज्ञा तो 12वें गुणस्थान तक ही है 13वें 14वें गुणस्थान वाले सयोग केवली अयोगकेवली भगवंत हैं तो आपने केवलियों को महामुनि क्यों कहा?

उत्तर–आ० श्री समंतभद्रस्वामीजी ने स्वयंभू स्तोत्र में भगवान अजितनाथजी की स्तुति में कहा है:–**'महामुनि मुक्त घनोपदेहो'** 8। त.सू. अ.9 सूत्र 45 **पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातकाः निर्ग्रंथाः।** इस सूत्र में पुलाक आदिक पांचों मुनियों को निर्ग्रंथ मुनि कहा है। चैत्यभक्ति में पांचों परमेष्ठियों को **'इतिपंच महापुरुषाः'** 10। इस श्लोक में पंचमहापुरुष कहा है। पंचगुरुभक्ति और पंचमंगल पाठ में **'इच्छामि भंते पंचमहागुरु भत्ति, पणविधि पंच परम गुरु'** इन दोनों में पांचों परमेष्ठियों को पंच महागुरु और पंच परम गुरु कहा है। दंडक पाठ में पांचों परमेष्ठियों को **'देवाहिदेवाणं'** देवाधिदेव कहा है। अतः सयोगकेवली और अयोगकेवली ये नाम केवली के नहीं हैं किंतु गुणस्थानानुसार योग सहित को सयोगकेवली और योग रहित को अयोगकेवली कहा है।

प्र.1237–जब आश्रव और बंध तत्त्व में पुण्यपाप गर्भित है तो अलग से पदार्थ संज्ञा क्यों बनाई गई, तत्त्व और पदार्थ में क्या अंतर है स्पष्ट करो?

उत्तर–आश्रवबंध और पुण्यपाप में अभेद विवक्षा में कोई अंतर नहीं है किंतु भेद विवक्षा में अंतर अवश्य है अथवा सामान्य और विशेष की अपेक्षा भी अंतर है। आ० पूज्यपाद ने इष्टोपदेश में कहा है:–

जीवोऽन्य पुद्गलश्चान्य, इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किंचित्सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः।।50।।

अर्थः–जीव अन्य है और पुद्गल अन्य है यही तत्त्वों का संक्षिप्त रूप है और इनसे भिन्न जो कुछ कहा गया है वह सब इन्हीं का विस्तार है। तत्त्व और अर्थ ये दो नाम है ऐसे ही पद और अर्थ ये दो नाम है, दोनों का समुच्चय अर्थ तत्त्व और पद से द्रव्य तथा गुणों को, अर्थ से पर्यायों को ग्रहण करना चाहिये। द्रव्य गुण और पर्यायों को ही विवक्षानुसार शिष्यों को समझाने के लिए तत्त्वार्थ, पदार्थ, अस्तिकाय और द्रव्य नाम से कहा गया है जैसे इकलौते पुत्र को ही नाना विशेषण लगाकर नानारूप में कहा जाता है।

प्र.1238–क्या जैन धर्मावलंबी भी पितर पिंडदान, होलिकादहन, गोदानादि कार्यों को लोकाचार मानकर कर सकते हैं?

उत्तर–पितर/पिंडदानः–दिगम्बर जैन समाज महापुराण के अनुसार अपने बुजुर्गों की समदत्ती दान रूप में पुण्यतिथि मनाते हैं, विधान भी करते हैं और अपने साधर्मी भाईयों को, सगेसंबंधियों को भोजनदान देते है। **होलिकादहनः**–सम्यग्दृष्टि जीवों के अनंतानुबंधी कषाय का अभाव हो चुका है फिर भी अनादिकालीन पाप का संस्कार होने से राम और कृष्ण के भाई बलदेव की तरह कोई क्रोधादि की अघट घटनायें घटी तो उसे प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान आलोचना के द्वारा पाप क्रियाओं का, दुर्विचारों का काल मर्यादा के अंदर दहन कर देता है इसी तरह प्रत्येक गुणस्थान वाले मोक्षमार्गी पापक्रियाओं का दहन कर देते हैं यही है जैनियों का होलिकादहन अथवा **'हो लि का'** दहन अर्थात् भूतकाल में अपने पद के विरुद्ध किये गये आचरण को, का–कौन दहनः–नहीं जलायेगा यानि जिसको सुख चाहिये वह जलायेगा। जैनेतर लकड़ी ईंधन जलाते हैं और जैनी भाई कर्मईंधन जलाते हैं। गोदानः–पहले राजागण, सेठ साहूकार आदि बेटी विवाह में राज्य वैभव, रथ, हाथी, घोड़े, गाय, बैलादि देते थे और आजकल गाड़ी, कारादि देते हैं क्योंकि पिताजी की संपत्ति पर जितना अधिकार पुत्र को है ठीक उतना ही अधिकार पुत्री को भी है अतः ये कार्य करने में कोई दोष नहीं है केवल दृष्टि बदलना है।

प्र.1239–सामान्य केवलियों के 4 मूलगुण और तीर्थंकर केवलियों के 46 मूलगुण होते हैं थोड़ा स्पष्ट करो?

उत्तर–तीर्थंकर अरिहंतों के 46 मूलगुण होते हैं और शेष केवलियों के 4 मूलगुण होते हैं क्योंकि सामान्य केवलियों के गर्भ के 10, जन्म के 10, केवलज्ञान के 14 और 8 प्रातिहार्य ये 42 मूलगुण नहीं होते हैं। समवशरण की रचना नहीं होती है किंतु गंधकुटी की रचना होती है।

प्र.1240–असत्यवचन और उभयवचन 12वें गुणस्थान पर्यंत पाया जाता है जबकि 12वां गुणस्थान क्षपकश्रेणी का है और ध्यानावस्था है?

उत्तर–परमाणु आदि तथा अर्थ पर्यायों वाले ज्ञेय पदार्थ अत्यंत सूक्ष्म हैं क्योंकि ये एकमात्र केवलज्ञान के विषय हैं। छद्मस्थों का विषय नहीं है तभी तो पूर्ण श्रुतकेवली, अवधिज्ञानी, मनःपर्यय ज्ञानी अनेक ऋद्धियों से संपन्न गणधरों को भी शंका उत्पन्न हो जाती है और तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले मुनि दीक्षा लेकर मौन पूर्वक ध्यान साधना करते हैं तथा केवलज्ञान होने पर उपदेश करते हैं क्योंकि केवलज्ञान के बिना विषयों की पर्याप्त जानकारी न होने से वचनों में पूर्ण सत्यता नहीं आती। मुनि अवस्था में असत्यवचन और उभयवचन बोलने का त्याग है, इसी प्रकार का श्रद्धान है या सत्यवचन और अनुभयवचन बोलने की प्रतिज्ञा है फिर भी प्रमाद का, कषायों का उदय होने से असत्यवचन और उभयवचनों में कदाचित् प्रवृत्ति हो जाती है, इसी कारण प्रतिक्रमण प्रत्याख्यानादि किये जाते हैं अतः श्रेणी अवस्था, ध्यानावस्था में दोनों वचनयोग लब्धि और उपयोग रूप में पाये जाते हैं परंतु मोहनीय कर्म का समूल क्षय होने से हानिकारक नहीं है।

प्र.1241–जिनवाणी को माँ कहकर पूजाकर फिर शास्त्रों को बेचकर आजीविका चलाना जन्मदात्री माँ को बेचकर आजीविका चलाने के समान है तो फिर विद्वान शास्त्री अपनी आजीविका कैसे चलायेंगे और परिवार का पालन पोषण कैसे करेंगे जबकि आजीविका चलाने के अन्य साधन नहीं है?

उत्तर–आपको सम्यग्दर्शन का कांक्षादोष, कांक्षातिचार ज्ञानावरणीय कर्म के आश्रव का भरपूर अध्ययन करना चाहिये जिससे समाधान हो जायेगा। पहले भी विद्वानगण समाज के उत्थान के लिए ज्ञानदान देते थे पर ज्ञानोपदेश से आजीविका नहीं चलाते थे, ज्ञान को बेचकर पालन पोषण नहीं करते थे, उदरपूर्ति के दूसरे साधन थे या राजागण तथा समाज परिपूर्ण अंत पर्यंत सम्हालती थी। समाज विद्वानों को धर्म आयतन समझकर, मध्यम, जघन्य सत्पात्र मानकर आजीविका का साधन पूर्ण करती थी तो विद्वानगण भी सभी को समीचीन निर्दोष मार्गदर्शन देते थे जिससे दोनों सुखी थे किंतु आजकल समाज ने विद्वानों को धर्मायतन न मानकर नौकर समझ लिया। समाज ने अपना कर्तव्य छोड़ दिया, तब विद्वानों को भी ज्ञान बेचकर आजीविका चलानी पड़ी। इसलिए विद्वानगण भी समाज को सही दिशाबोध नहीं देते तथा वर्तमान में भी कुछ विद्वान पंडित हुये हैं जिन्होंने ज्ञान बेच के आजीविका नहीं चलाई जैसे पं. रतनचंदजी मुख्त्यार, पं. श्यामसुंदर लालजी फिरोजाबाद वाले आदि।

प्र.1242–क्या क्षपक श्रेणी वाला भी मिथ्यात्व में आ सकता है, क्षायिकभाव और क्षपक श्रेणी में क्या अंतर है?

उत्तर–नहीं, क्षपक श्रेणी वाले नियम से चरमशरीरी होते हैं अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, मोक्ष भी जा सकते हैं और कुछ समय के बाद भी जा सकते हैं अतः क्षपकश्रेणी वाले तो दूर रहे किंतु क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि दर्शनमोहनीय कर्म का समूल क्षय हो चुका है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षायिकभाव वाला गृहस्थावस्था में या कदाचित् अणुव्रती अवस्था में नाना प्रकार के पापाचरण भी कर सकता है और मुनि अवस्था में मन वचन काय की प्रमादपूर्वक क्रियायें भी हो सकती हैं तथा केवली अवस्था में भी प्रवृत्ति होती है किंतु क्षपकश्रेणी में निश्चलध्यानावस्था होने से कोई भी स्थूल क्रियायें नहीं होती है यही अंतर है।

प्र.1243–प्रमत्तमुनि को आपने श्रावक की श्रेणी में लिखा है सो कैसे?

उत्तर– **सम्माइट्ठी सावय धम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि।**
विवरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठीमुणेयव्वो।।65।।

अर्थः–सम्यग्दृष्टि श्रावक अथवा मुनि जिनदेव के द्वारा उपदेशित धर्म को करता है। जो विपरीत धर्म को करता है उसे मिथ्यादृष्टि जानना चाहिये। यहां पर श्रावक का अर्थ साधक मानकर मुनि को श्रावक कहा है।

प्र.1244–गर्भज संमूर्च्छन तिर्यंच और गर्भज मनुष्य प्रतिमाओं के स्वामी हैं यह समझ में नहीं आया अतः समझायें?

उत्तर–धवल, जयधवल, कर्मकांड, लब्धिसार, 24 ठाणा आदि ग्रंथों में गर्भज और संमूर्च्छनज तिर्यंचों के पंचम गुणस्थान

अणुव्रती अवस्था स्वीकार की है तब उन तिर्यंचों को प्रतिमा का स्वामी क्यों स्वीकार नहीं किया जाये? जैसे हाथी, जटायु, महामत्स्य आदि पशुपक्षियों ने पंचम गुणस्थान में भली प्रकार से ही समाधि मरण कर 16वां स्वर्ग प्राप्त किया। यहां तक की संमूर्च्छन तिर्यंच सम्यग्दर्शन को, देशसंयम को, अवधिज्ञान को भी प्राप्त करता है। गोम्मटसार कर्मकांड गाथा 267 में कहा है।

देसे तदिय कसाया तिरियाउज्जोवणीचतिरियगदी।

अर्थः—देशसंयत नामक पंचम गुणस्थान में तीसरी प्रत्याख्यानावरण कषाय तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र और तिर्यंचगति उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होती है। व्युच्छित्तिः—का अर्थ जिसका जहाँ पर जिस समय विच्छेद हुआ, अलग अलग हुये तो वहाँ तक उस समय तक उनका संबंध रहा है उसके बाद संबंध टूटा।

प्र.1245—सयोगकेवली को भी वचनगुप्ति मनोगुप्ति की प्राप्ति नहीं होती जबकि उनकी वाणी तो सर्वांग से खिरती है, भव्यजनों के भाग्य से विहार होता है तो वचनगुप्ति और मनोगुप्ति की प्राप्ति क्यों नहीं हुई?

उत्तर—सूत्रकार ने **'सम्यग्योग निग्रहो गुप्तिः'** भली प्रकार से मन वचन काय के योग का निग्रह करना गुप्ति है। कर्म सिद्धांत ग्रथों में सयोगकेवली के सत्यमनोयोग अनुभयमनोयोग सत्यवचनयोग और अनुभयवचनयोग औदारिक काययोग औदारिकमिश्रकाययोग तथा कार्माणकाययोग ये 7 योग बतलाये हैं। योग का मतलब ही है आत्मा के प्रदेशों का परिस्पंदन होना। अब आप ही बतलाये कि 13वें गुणस्थान में तीनों प्रकार के योग या 7 योग कार्य रूप में होने से परमार्थ गुप्ति कैसे कही जाये? व्यवहार गुप्ति होती है। वास्तव में परमार्थ गुप्ति निश्चय गुप्ति अयोगी के ही होती है।

प्र.1246—छट्ठे प्रमत्तसंयत मुनि अवस्था में मैथुनसंज्ञा कार्यरूप में पाई जाती है तो क्या आपने स्वप्नदोष या स्वप्नमैथुन को लेकर लिखा है वैसे कार्य रूप में कैसे होगा?

उत्तर— **णट्ठ पमाए पढमा सण्णा ण हि तत्थ कारणाभावा।**
सेसा कम्मत्थित्तेणुवयारेणत्थि ण हि कज्जे।।139।। जीवकांड

अर्थः—अप्रमत्त आदि गुणस्थानों में आहार संज्ञा नहीं होती क्योंकि वहाँ पर उसका कारण असाता वेदनीय का तीव्र उदय या उदीरणा नहीं पाई जाती। शेष तीन संज्ञाएं भी वहाँ पर उपचार से ही होती हैं क्योंकि उनका कारण तत्कर्मों का उदय वहाँ पर पाया जाता है। फिर भी उनका वहाँ पर कार्य नहीं हुआ करता। 6वें गुणस्थान तक चारों संज्ञायें कार्यरूप में पाई जाती है ऐसा कहा है। स्वप्नदोष या स्वप्न मैथुन तथा इन्द्रिय विषयों से भी संज्ञा कार्य रूप में मानी जा सकती है अतः कोई दोष नहीं है।

छट्ठोत्ति पढमसण्णा सकज्ज सेसा य कारणावेक्खा।
पुव्वो पढमणियट्टी सुहुमोत्ति कमेण सेसाओ।।702।। जीवकांड

अर्थः—मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर प्रमत्त पर्यंत आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चार संज्ञायें कार्य रूप में होती है। हिन्दी टीकाकार पं. खूबचंद जैन। विशेष खुलासा पीछे पृ. 132 प्र. 955—956 में देखें।

प्र.1247—अनंगक्रीड़ा अतिचार व्रत प्रतिमाधारी और महाव्रती को कैसे लगता है?

उत्तर—गृहस्थों के व्रती बनने के बाद भी चुंबन आलिंगन आदि के द्वारा अनंगक्रीड़ा अतिचार संभव है क्योंकि दांपत्यावस्था है। मुनियों के प्रमाद की तीव्रता से वेदोदय के कारण पांचों इन्द्रिय और मन की विषयों में प्रवृत्ति होने से अनंगक्रीड़ा नामका अतिचार भी संभव है पर यह दोष गृहस्थों जैसा क्रियात्मक नहीं होगा किंतु भावात्मक होगा। पाक्षिकादि प्रतिक्रमण को पढ़ने से मालुम हो जायेगा।

प्र.1248—क्या आर्यखंड की द्रव्य वेद मनुष्यनी भी क्षपकश्रेणी आरोहण कर सकती है क्या उन्हें भी चरम शरीरीपना प्राप्त होता है?

उत्तर—द्रव्य वेद की रचना पुद्गल विपाकी आंगोपांग नामकर्म के उदय से प्राप्त हुई है। मनुष्यनीपना जीव विपाकी मनुष्य

गति नामकर्म के उदय से प्राप्त हुई है। दिगम्बर जैन परंपरा में द्रव्य स्त्री के पंचम गुणस्थान तक स्वीकार किया गया है इसके आगे के नहीं। द्रव्य से पुरुष और भाव से स्त्री नपुंसक वेद वालों के 14 गुणस्थान स्वीकार किये गये हैं। भाव वेदों का क्षय 9वें गुणस्थान में हो जाता है। भाव स्त्रीवेदी 20, भाव नपुंसकवेदी 10 क्षपकश्रेणी आरोहण करते हैं अतः चरम शरीरीपना भी प्राप्त होता है। गो. जीव. गा. 631

प्र.1249–आर्यिकाओं को आपने 28 मूलगुण कहा है किंतु अचेलकपना नहीं है बैठकर आहार लेती हैं और स्नान भी कर लेती हैं अतः ये तीन कम होने से 28 कैसे हुए?

उत्तर–आर्यिकाओं के संस्कार 28 मूलगुणों के होने से वास्तविक है। प्रतिज्ञा और प्रायश्चित्त वास्तविक है, उपचार से नहीं है केवल आर्यिकाओं के प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान न होने से उपचार कहा है। यदि संस्कार, प्रतिज्ञा, प्रायश्चित्त की अपेक्षा भी उपचार मानोगे तो मुनियों को भी उपचार से महाव्रती मानने का प्रसंग आयेगा।

प्र.1250–बिना गणधर के तीर्थंकरों का उपदेश होता है क्या?

उत्तर–हाँ, भगवान आदिनाथ का प्रथमोपदेश गणधर के बिना हुआ है। यहाँ तक की प्रथमोपदेश में मुनियों का कोठा ही खाली था, केवल 11 सभायें थीं क्योंकि आदिनाथ के मुनिदीक्षा लेने के समय जो 4000 राजाओं ने दीक्षा ली थी वे सभी मुनिपद छोड़कर जंगलों में रहकर नाना वेष बनाकर फूल, फल, पत्ते खाकर वहीं का पानी पीकर वल्कलादि धारण कर जीवन व्यतीत कर रहे थे।

प्र.1251–आदिनाथ का मुनि अवस्था में प्रथम आहार कब हुआ?

उत्तर–दीक्षा लेने के बाद प्रथम आहार 13 महिने और 8 दिन के बाद 9वें दिन हुआ था क्योंकि चैत्र वदी 9वीं के दिन दीक्षा ली और वैशाख सुदी तीज को आहार हुआ जिससे यह तिथि अक्षय तृतीया कहलाई जो व्यवहार में आदिनाथ का प्रथम आहार एक वर्ष में हुआ यह प्रसिद्धि गलत है।

प्र.1252–जीवादि द्रव्य 6 हैं या 7 हैं?

उत्तर–जीवादि 6 द्रव्य हैं यह शुद्ध द्रव्यों की अपेक्षा कथन है। इससे संसार और मोक्ष की व्यवस्था नहीं बनती न 12 अनुप्रेक्षाओं में संसार भावना बन सकती है। आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व की व्यवस्था भी नहीं बन सकती है अतः इन सभी की सिद्धि के लिए एक सातवां अशुद्ध द्रव्य/मिश्र द्रव्य स्वीकार करना ही पड़ता है। आ. श्री कुंदकुंद ने समयसार गाथा 20 में कहा भी है :–

अण्णं जं परदव्वं सचित्ताचित्तमिस्सं वा।

अर्थ–सचित्त जीव द्रव्य, अचित्त अजीव द्रव्य और मिश्र द्रव्य के भेद से पर द्रव्य तीन प्रकार का है।

आदसहावादण्णं सचित्ताचित्तमिस्सियं हवदि।
तं परदव्वं भणियं अवितथं सव्वदरिसीहिं।।17।। मोक्षपाहुड़

अर्थ– आत्मस्वभाव से भिन्न सचित्त जीवद्रव्य, अचित्त अजीवद्रव्य और मिश्रद्रव्य के भेद से पर द्रव्य सर्वदर्शी भगवान ने यथार्थ में कहा है। अतः 7वाँ मिश्र अशुद्धद्रव्य मानने से ही संसार और मोक्ष की सिद्धि हो सकती है अन्यथा नहीं।

प्र.1253–आजकल बेकारी क्यों फैल रही है?

उत्तर–आज का मानव धन का उपयोग और व्यय करना नहीं जानता अथवा बिना सोचे समझे मिथ्याज्ञान के द्वारा धन का गलत प्रयोग कर रहा है, अनर्गल खर्च कर रहा है इसलिए बेकारी फैल रही है।

प्र.1254–पाठशालाओं में अर्थशास्त्र पढ़ाया जा रहा है फिर बेकारी क्यों?

उत्तर–आजकल पाठशालाओं में धन कैसे कमाना यह पढ़ाया जा रहा है किंतु सम्हालना कैसे यह नहीं पढ़या जा रहा है? यदि सम्हालना पढ़ाया जाता तो बेकारी नहीं फैलती अथवा स्वपर की रक्षा करते हुए जाति, कुल और धर्म की मान मर्यादा रखते हुए कमाना और सम्हालना पढ़ाते तो बेकारी नहीं फैलती अथवा समीचीन अर्थशास्त्र नहीं पढ़ाया जा रहा है किंतु जिस किसी भी उपाय से, गलत व्यापारों से, शराब के, माँस के, चमड़े के, मारकाट के, चोरी के, झूठ के और वेश्या कर्म आदि के द्वारा धर्म को छोड़कर धन कमाया जा रहा है और इन्हीं कार्यों में खर्च किया जा रहा है इसलिए सर्वत्र त्राहि त्राहि मच रही है यदि ईमानदारी से कमाना, इज्जत को सम्हालते हुए दिनचर्या

करना, धन कमाना आदि पढ़ाते तथा दूसरों का आदर सम्मान करना, विनय करना नहीं पढ़ाया जा रहा है। जाति कुल और धर्म की मान मर्यादा को छोड़कर धन कमाना खर्च करना होने से तन मन धन और धर्म चारों नष्ट हो रहे हैं इसीलिए सर्वत्र अनाचार फैल रहा है तब बेकारी कैसे दूर हो, जीवन कैसे सुखी हो? यदि परस्पर में आत्मीयता हो, मानवता हो और प्रत्येक मानव अपने अपने कर्तव्य का पालन करे तो आसानी से बेकारी दूर हो सकती है तथा जीवन सुखी हो सकता है। इसी तरह जाति कुल और धर्म की मर्यादा को छोड़कर प्रेम विवाह करके संतति नष्ट हो रही है। पशु पक्षी अपनी ही जाति में संबंध करते हैं इसलिए सुखी हैं। जिन पशु पक्षियों की उत्पत्ति संकर दोष से या इन्जेक्शन से हो रही है उनकी भी संतति नष्ट हो रही है और नाना प्रकार के रोग फैल रहे हैं आदि।

प्र.1255–गतिबंध और आयुबंध में क्या अंतर है?

उत्तर– गतिबंध	आयुबंध
1. गतिकर्म नामकर्म की उत्तर प्रकृति है इसका प्रतिक्षण बंध और उदय रहता है।	1. आयुकर्म मूल प्रकृति है। इसका बंध त्रिभाग में अथवा जीवन के असंक्षेपाद्धा काल के शेष रहने पर बंध होता है और भुज्यमान आयु का उदय प्रतिक्षण रहता है।
2. गतिकर्म का द्रव्य प्रतिक्षण सजातीय प्रकृतियों में संक्रमण होता रहता है।	2. भुज्यमान आयु का संक्रमण के बिना अवलम्बनाकरण होता है। इससे बंधी हुई आयु का घात होता है।
3. बिना फल दिये भी समूल नष्ट हो जाता है।	3. साधनों से समूल विनाश नहीं होता किंतु उदीरणाकरण के द्वारा कुछ कम फल भोगना ही पड़ता है।
4. एक साथ चारों गतियों का सत्त्व एक जीव में रहता है और रह भी सकता है।	4. एक साथ एक जीव में एक भुज्यमान आयु का अथवा बध्यमान आयु सहित दो का सत्त्व रहता है।
5. एक गति का बंध स्वमुख से होता है तो शेष का परमुख से भी बंध हो सकता है।	5. एक साथ एक जीव में एक ही आयु का बन्ध होता है, दो का नहीं।
6. एक गति के उदय के साथ शेष गतियों का द्रव्य संक्रमण कर बिना फल दिये या फल देकर झड़ जाता है।	6. आयु का परस्पर में संक्रमण नहीं होता है किंतु उदीरणा करण के द्वारा असमय में फल देकर नष्ट हो जाता है।
7. गतिकर्म बद्धायुष्क को नियम से फल देता है।	7. बद्धायुष्क का अकाल मरण नहीं होता है।
8. गतिकर्म उदीरणाकरण आदि पूर्वक भी नष्ट हो जाता है।	8. अबद्धायुष्क के उदीरणा के द्वारा आयु का असमय में क्षय हो सकता है।
9. आयुकर्म के बंध के बिना गतिकर्म की कोई कीमत नहीं है तथा फल हीन मानी है।	9. बद्धायुष्क को भुज्यमान आयु का पूर्ण फल भोगना ही पड़ता है।
10. गतिकर्म जीव विपाकी है।	10.आयु कर्म भव विपाकी है।

उपसंहार

सन् 1983 में नातेपुते (महाराष्ट्र) में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर कांजी भक्त पं० शीतलप्रसादजी से जो चर्चायें हुई और समाधान किया या प्राप्त हुआ तथा इधर उधर विहार करते हुए जो शंकायें हुईं उन सभी का संकलन कर तथा स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा मौलिक चिंतन कर विषयानुसार शंकायें उठाकर समाधान किया। बाद में बा० ब्र० भाग्याजी (नेहलजी), बा० ब्र० दर्पणजी ने तथा संघस्थ सभी साधकों ने यथावस्थित किया अतः इन समाधानों में कुछ गलतियां हों तो विज्ञजन सुधार कर अध्ययन करें, चिंतन करें तथा सूचना भी करें ताकि उसका यथायोग्य स्थान पर सुधार किया जा सके। विद्वत्जन इसका स्वाध्याय स्वच्छ मन से तत्त्व निर्णय के लिए करें, नीचा दिखाने के लिए नहीं, अहंकार के लिए नहीं, गल्तियों को क्षमा करें। इस प्रकार 1255 प्रश्नोत्तरों में गूढ़ रहस्य चिंतामणि ग्रंथ समाप्त हुआ।

प्रशस्ति

प० पू० दिगम्बराचार्य 108 श्री आदिसागरजी महाराज के अनन्यतम शिष्य 18 भाषाभासी प० पू० दिगम्बराचार्य 108 महावीरकीर्ति महाराजजी के प्रथम शिष्य प० पू० दिगम्बराचार्य 108 विमलसागरजी महाराजजी के प्रथम शिष्य दिगम्बराचार्य 108 पार्श्वसागरजी महाराजजी के प्रथम शिष्य दिगम्बराचार्य वासुपूज्यसागर महाराज ने जिला–बहिराईच (उ०प्र०) भगवान श्री संभवनाथजी की जन्मस्थली श्रावस्ती के पास 47 कि.मी. बहिराईच में प्रातःकाल की मंगल बेला में महावीरजयन्ति के दिन चैत सुदी 13 को पूर्ण किया। यहाँ महावीर जिनालय में तीन वेदियां हैं। दिगम्बर जैन अग्रवाल समाज के 80 घर हैं, जो हर प्रकार से संपन्न हैं, श्रावकोचित कर्तव्यों का पालन करते हैं। विक्रम संवत 2062, वीर निर्वाण संवत 2531, सन् 2005। किंतु दाता के बिना अप्रकाशित होने के कारण संघस्थ शास्त्र भंडार में जमा रहा। अब हल्द्वानी चातुर्मास के बाद नैनीताल रोड, रानीबाग (उ०प्र०) में श्री राजन अनीताजी के यहाँ आकर ग्रंथ को पुनः संशोधित संवर्धित किया और रानीबाग वाले श्री राजन अनीताजी, योगेशजी हिमालय सरिया वाले और विकासजी विश्वकर्मा पेपर मील वालों ने प्रकाशित कराया।

यज्ञोपवीत

अनुक्रमणिका

क्र.	प्रश्न	पृ.क्र.
1.	शूद्रों के यज्ञोपवीतादि संस्कार क्यों नहीं होते हैं?	10
2.	यदि शूद्र जैनी बनकर खानपान.....प्रारम्भ क्यों न किया जाये?	11
3.	जैसे नीचगोत्र का उदय शूद्रों.....ऊँचगोत्री हो सकता है?	12
4.	जिनागम में और श्रीमान पं० प्रवर.....कर संक्षेप में यहाँ लिखते हैं?	17
5.	यहाँ पर खेती करने वालों को.....क्या चक्रवर्ती आदि सच्छूद्र थे?	17
6.	शूद्र के हाथ का भोजनपान गृहस्थों को करना चाहिये या नहीं?	18
7.	जनेऊ को तीर्थंकर प्रकृति की.....धारण करना मान्य है, अन्यथा नहीं।	24
8.	श्री ऋषभदेव के समय यज्ञोपवीत.....नहीं है अतः ऐसा है क्या?	25
9.	यज्ञोपवीतादि संस्कारों का.....आचार्यकृत न होने से प्रमाण कैसे?	27
10.	आदिपुराण में 11 तार के जनेऊ का विधान है सो किनको?	31
11.	गुरुकुलों में विद्याभ्यासी ब्रह्मचारी कौन कौन से काम नहीं करता है?	31
12.	गृहस्थ धर्म स्वीकार करने पर क्या.....भी परित्याग कर देते हैं?	32
13.	यज्ञोपवीत का परित्याग कब होता है?	33
14.	भरत महाराज के ये संस्कार कब हुए?	34
15.	जनेऊ के बिना दाता मुनियोंको आहारदान देने का अधिकारी है या नहीं?	35
16.	चोक से ही सूत का प्रमाण क्यों बतलाया?	53
17.	गर्भ से लेकर निर्वाण पर्यंत 108 क्रियायें.....होने से अप्रमाण है, मिथ्या हैं?	60
18.	तो फिर श्रावकाचार संग्रह.....सर्वज्ञ प्रतिपादित नहीं हैं ऐसा क्यों कहा?	60
19.	महापुराण के अलावा भी क्या किन्हीं.....है जो विश्वास किया जाये?	60
20.	क्रियाविशाल पूर्व किसे कहते हैं तथा इसमें किसका वर्णन है?	61
21.	धवल जयधवल के अनुसार.....ने कहा है ऐसा ठीक है क्या?	61
22.	क्रियाविशाल नाम के पूर्व में तदुभय.....छोड़ने योग्य क्यों नहीं हैं?	61
23.	किन्ही[2] ग्रंथकारों ने पूजन का विधान.....के पूजा हो सकती है क्या?	62
24.	वे कौन से पदार्थ हैं जो केवल आज्ञा ग्राह्य है?	65
25.	ऐसा कौनसा विषय है जो परीक्षा पूर्वक ग्रहण करने योग्य है?	66
26.	किसका वचन परीक्षापूर्वक और किसका आज्ञापूर्वक ग्रहण करना चाहिये?	66
27.	ग्रहीत या अग्रहीत मिथ्यादृष्टि जीव किस प्रकार का श्रद्धान करता है?	66

प्रस्तावना

अर्हच्चरणयोर्नित्यं सपर्यायां तथात्मनः।
शुद्धौ दाने नमो भक्त्या चिह्नौपासिकतन्तवे।।1।।

अनादिनिधन शुद्ध समृद्ध और शुद्धि समृद्धि के कारण परम पुनीत श्री जिनधर्म में अन्य तत्त्वों के समान यह एक संस्कार तत्त्व भी उस अप्रतिहत अबाधरीति नीति से प्रतिपादित है कि जिसकी समानता **'यन्नेहास्ति न कुत्रचित्'** जो यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

कारण कि यहाँ की तत्त्व शैली जिस पद्धति से प्रतिपादित की गई है उसकी मूल भित्ति (नींव) अविरुद्ध अनेक धर्म प्रतिपादिका स्याद्वाद सप्तभंगी है। इस जिनोक्त नीति के बिना जहाँ कहीं भी तत्त्व प्रतिपादन है वह खपुष्प के समान मिथ्या तथा अभावरूप ही है।

जो लोग जैन कुल में उत्पन्न होने मात्र से अपने को जैनी समझ कर जैनधर्म तथा उसके तत्त्वों में से किसी भी तत्त्व का स्याद्वाद नीति के बिना प्रतिपादन करने की शैली का अवलम्बन ले रहे हैं वे भी अन्य धर्मियों में परिगणित हैं। मैं इस छोटी सी भूमिका में उन सर्व धर्मियों की समालोचना करने के लिए उद्युक्त नहीं हुआ हूँ किन्तु इस विषय के लिए उद्युक्त हुआ हूँ कि जिन तत्त्वों के विषय में कुछ हमारे जैनी साधर्मी भाई भ्रान्त हो रहे हैं उन तत्त्वों में से किसी एक तत्त्व का शास्त्र प्रमाण व युक्ति प्रमाण से कुछ एक दिग्दर्शन करा सकूँ। यहाँ प्रकरण संस्कार विधि का है इसलिये इसके विषय में एक दो शब्द लिखना अति आवश्यक है।

संस्कार शब्द का निरुक्ति द्वारा एक अर्थ तो यह है कि जो आत्मा अनादिकालीन कर्ममलजनित रागद्वेषादि विधर्मों से, विकारों से मलिन था उसको शुद्ध बनाना। संसार की नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चारों अवस्थाओं में से मनुष्य अवस्था ही एक ऐसी है कि जिसके बिना यह जीव कभी भी उस विशुद्ध सिद्धावस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। जब यह विषय निर्विवाद सिद्ध है तो फिर यह भी निर्विवाद सिद्ध है कि मनुष्य देह से यह जीव परम शुद्धावस्था को प्राप्त करता है वह अवस्था भी विशुद्ध होनी चाहिये जैसा बीज वैसा अंकुर और उस विशुद्ध अवस्था में अभ्यन्तर पुण्यकर्मादि साधनों के सिवाय जो खास निमित्त साधन हैं उसी का नाम संस्कार शब्द का द्वितीय अर्थ है। संस्कार के लिए जो विधि की जाती है उसी का नाम संस्कार विधि है। उसका गर्भाधान आदि 16 प्रकार से सविस्तृत वर्णन जैन ग्रन्थों में पाया जाता है तथा इन्हीं का संक्षिप्त संग्रह पं० लालारामजी ने अपनी **षोडश संस्कार**– नामकी पुस्तिका में किया है वहाँ पर होम विधि के साथ संक्षेप में अन्य सर्व विधि और उसके उपयोगी मंत्र सामग्री आदि का वर्णन है। **यज्ञोपवीत संस्कार** नामक ग्रंथ जो श्री 105 पू० क्षुल्लक ज्ञानसागरजी महाराज ने संग्रह किया है वह उन क्रियाओं के धारण कराने में बड़ा ही उपयोगी है तथा इस ग्रंथ में संक्षेप से आर्षीय प्रमाणों सहित–सद्धर्म, सन्मार्ग, मनुष्य जन्म प्राप्ति की दुर्लभता तथा उसकी उपयोगिता साधक श्रावक धर्म, संस्कार धारण आदि का सामान्य वर्णन करते हुये यज्ञोपवीत संस्कार का विशेषता से वर्णन किया है। इस वर्णन में आपने यज्ञोपवीत के अधिकारी, स्वरुप और उसके धारण, साधन, प्रमाण, अवस्था आदि का उपयोगी कथन किया है क्योंकि संस्कार के बिना मनुष्यों में मानवता नहीं आ पाती जैसे मिट्टी का पात्र कितना ही सुन्दर बनाया हो पर अग्नि संस्कार के बिना वह किसी भी वस्तु को धारण करने में समर्थ नहीं हो पाता किन्तु किंचित् पानी के पड़ने से या वस्तु के रखने से टूट जाता है, नष्ट हो जाता है और अग्नि संस्कार से युक्त होने के कारण मजबूत हो जाता है। गीली, सूखी, हल्की, भारी वस्तुओं को धारण करने में समर्थ हो जाता है इसी तरह मनुष्य भी धर्म के संस्कारों के बिना हर तरह से नष्ट भ्रष्ट हो जाता है तथा धार्मिक संस्कारों से युक्त मनुष्य नाना तरह के कष्टों के आने पर भी अपने लक्ष्य से चलायमान नहीं होता किन्तु फल प्राप्त ही कर लेता है।

यज्ञोपवीत

इस ग्रन्थ के पढ़ने से यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि– यज्ञोपवीत (जो जनावे बतावे श्रावक की पहचान करावे उसे जनेऊ यज्ञसूत्र) शास्त्र सम्मत है क्योंकि यहाँ आदिपुराण, नीतिसार, देवसेन कृत भावसंग्रह, ब्रह्मसूरिसंहिता, जिनसंहिता, अकलंकसंहिता, आशाधर प्रतिष्ठापाठ आदि अनेक ग्रन्थों के प्रमाण दिये हैं। अतः इस विषय में कोई शास्त्र प्रमाण का दुराग्रह करे तो उसका दुराग्रह निर्मूल होने से केवल दुराग्रह ही है क्योंकि यहाँ इतने और इससे भी अधिक जब शास्त्र प्रमाण इस विषय के स्पष्ट द्योतक हैं तो अब शास्त्र प्रमाणता कौन सी बाकी रही? तथा इस विषय के बाधक कोई ऋषि वाक्य भी नहीं हैं। शायद कोई यह कहे कि हमको अपने मनोनीत ऋषिग्रन्थ ही इस विषय में प्रमाण हैं अन्य नहीं तो फिर मेरा इस विषय में इतना ही कहना है कि उन ग्रन्थों में कौन सी छाप लगी है कि वे ऋषि प्रणीत हैं और ये नहीं। थोड़ी देर के लिये यही क्यों न मान लिया जाये कि उन ऋषियों के समय में यज्ञोपवीत संस्कार आदि विषय की अविरुद्ध धारा प्रवाह रूप से प्रवृत्ति होगी अतः इस विषय के ऊपर प्रकाश डालने की आवश्यकता न समझी हो तथा इन ऋषियों ने अपने समय में समझी हो क्योंकि हितकारियों की प्रवृत्ति विशेष हित में ही होती है अन्यत्र नहीं। यदि उनकी अन्यत्र में भी प्रवृत्ति होने लगे तो फिर उनकी हितकारता ही कैसी? जबकि यह नीति है **'प्रयोजनमन्तरा मन्दोपि न प्रवर्तते'** प्रयोजन के बिना मंद बुद्धिजन भी प्रवृत्ति नहीं करते तथा यह भी कहा जा सकता है कि उनने इस विषय के ग्रंथ क्यों नहीं लिखे? उनके लिखे हुये ग्रंथ यदि नष्ट हो गये हों तो उनकी असंभवता और आश्चर्य भी क्या? यदि ऐसा नहीं है तो पुस्तकालयों की सूची में नाम होने पर भी वे अपूर्व ग्रंथ आज क्यों नहीं मिलते जैसे गंधहस्ति महाभाष्य आदि? शायद कोई परीक्षाप्रधानी यह कहे कि यह विषय दिगम्बर जैनधर्म के विरुद्ध है उनसे मेरा साग्रह निवेदन है कि आपमें जो परीक्षा प्रधानता है वह एकान्तवाद से कलुषित है क्योंकि आपने जैनों की इस स्याद्वादमय नीति को समझा नहीं है।

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्व हानिर्न यत्र न च व्रतदूषणम्।।480।। उपा० अंग

जिस लोकाचार से सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र में दोष उत्पन्न न हो ऐसी सभी लौकिक विधि प्रमाण है, विश्वास और आचरण में लाने योग्य है यदि इस नीति का अवलम्बन करते तो वैसी परीक्षा तक आपकी दौड़ न होती और न सत्य विषय के कुचले जाने की ऐसी नौबत ही आती।

आप यह निश्चय ही समझें कि दिगम्बर जैनगुरु निश्चय ही स्वार्थ त्यागी, विवेकी, निस्पृही और स्वपरोपकारी होते हैं उनके द्वारा प्राणियों का अकल्याण होना सर्वथा असंभव ही है क्योंकि सद्गुणी कभी भी दम्भी, ठगी नहीं होते। अतः उक्त गुणों के कारण उनके अक्षरशः वाक्य की प्रमाणिकता ही प्रेक्षा पूर्वकारी विद्वानों के लिए कल्याणप्रद है। जैनधर्म की नीति स्पष्ट कहती है कि– जैनियों की समस्त लौकिक क्रियायें आचरण व्यवहार आदि विधि हैं वे सर्व ही प्रमाणिक हैं जहाँ सम्यक्त्व की हानि न हो तथा 5 अणुव्रत और रात्रि भोजन त्याग में किसी प्रकार का दूषण न आवे। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि कोई भी व्यवहार तथा कोई भी वाक्य दूसरी जगह का क्यों न हो परन्तु वह हमारे यहाँ हमारी नीति से संघटित है तो हमारा ही है क्योंकि जैसे व्यवहार व उस विषय के वाक्य हमारे सदृश अन्यत्र भी न मिलें तो उसमें नियामकता का ऐसा कौन हेतु है जो ये उन्हीं के हैं हमारे नहीं? क्या वाक्य रचना शैली सर्वत्र विरुद्ध ही रहती है एक सी नहीं होती? यदि इस विषय के ठेकेदारी का नियामक कोई कायदा या कानून विषयक शास्त्र आपके पास हो तो फिर उस वाक्य रचना सा दृश्य वैसा दृश्य द्वारा प्रमाणा प्रमाणिकता का पचड़ा भी आपका मान्य समझा जाय नहीं तो फिर वह जो आपका हेतु है वह हेत्वाभास ही क्यों न समझा जाय? पद और वाक्य की अनुकरणता सिर्फ काव्य शास्त्रों के लिये ही निन्दनीय है, धर्मग्रन्थ और कानून ग्रन्थों के लिये नहीं है क्योंकि काव्यों में ही कवि की बुद्धि विषयक प्रतिभा की परीक्षा होती है।

यदि कुछ इधर उधर हो कर अथवा वैसे ही हमारे उपासकाध्ययनादि सूत्रों के वाक्य अन्यत्र पाये जाते हैं तो उन परीक्षकों के पास ऐसी नियामकता भी क्या है कि ये उन्हीं के वाक्य हैं अथवा वे वाक्य शायद हमारे न भी हों और उन

वाक्यों में हमारा भाव पाया जाता हो तो वे भी हमारे क्यों नहीं? क्योंकि उपर्युक्त नीति (गा० 480) हमको इस बात की आज्ञा देती है कि वे हमारे ही हैं जैसे आपके पास में रत्न हैं तब आपसे किसी ने पूछा कि ये रत्न कहाँ से लाये? तब आप कहते हैं कि मैं दुकान से लाया हूँ अब आप बतायें क्या रत्नों की उत्पत्ति दुकान में हुई है या समुद्र में, खदान में? तब उत्तर होगा कि रत्न दुकान में नहीं होते हैं, समुद्र में या खदान में ही होते हैं ठीक वैसे ही निर्दोष तत्वों का प्रतिपादन, नीति नियम जिनेन्द्र द्वारा ही हुआ है अन्य मतियों के द्वारा नहीं किंतु हमारी भूल से वहाँ चले गये तब अनेक सदियों के बीत जाने पर हमको ऐसा लगने लगा है कि ये क्रियाएं या नीति नियम हमारे नहीं हैं, उन्हीं के हैं। अतः यज्ञोपवीतादिविधि के धारकों की न्यूनाधिकता का होना कालचक्र से जीवों के परिणाम तथा साधन सामग्री की न्यूनाधिकता पर निर्भर है। अतः इन सब उपर्युक्त वाक्यों से निश्चित है कि यज्ञोपवीतादि संस्कार विधि आगमोक्त है। इस विषय पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है क्योंकि युक्तिसंगत बात परीक्षाप्रधानियों को प्रायः विशेष मान्य होती है।

यज्ञोपवीत को **'रत्नत्रयांगमुपवीतेति'** 56 प्रति० ति०, आचार्य श्री नेमचन्द्रजी रत्नत्रय का कारण (साधन) बतलाया है। उसका तात्पर्य स्पष्ट है कि कार्य संपादन में उपादान और निमित्त ये दो शक्तियां हैं। उनमें से उपादानता भाव और द्रव्य दो धर्मों में विभक्त है। भाव और द्रव्य ये पदार्थ के धर्म हैं और निमित्त सहायक होते हैं। दृष्टांत में जैसे कि मूँग में पाचन शक्ति तो भाव है और मूँग द्रव्य है। उसमें निमित्त जल अग्नि संस्कार आदि हैं और पाचनता की व्यक्तता कार्य है इसी प्रकार दृष्टांत में भी– रत्नत्रय आदि शक्तियाँ भाव और आत्मा द्रव्य और यज्ञोपवीत संस्कार आदि निमित्त हैं। निमित्त को कहीं[2] पर कोई कोई आचार्य द्रव्य (**रत्नत्रयस्य तत्र द्रव्य यज्ञोपवीते संकल्पात् आधाराधेय भावतया उभयोः यज्ञोपवीतरत्नत्रययोः द्रव्यभावतां क्रमेण)** भी कहते हैं क्योंकि अंतरंग और बहिरंग के भेद से निमित्त दो प्रकार के होते हैं और अंतरंग निमित्त से उपादान स्वरूप द्रव्य को तथा गुणों को ग्रहण किया जाता है। जैसे कि –: प्रतिष्ठा तिलक 7वाँ परि० 6 पृ० 113

दृग्बोधचारित्रगुणत्रयेण धृत्वा त्रिधौपासिकभावसूत्रम्।
द्रव्यं च सूत्रं त्रिगुणंसुमुक्ताफलं तदारोपणमुद्वहामि।।

यहाँ उसका तात्पर्य निमित्तता से ही है परन्तु वह औपासिक (श्रावक) अवस्था में अवश्यंभावी होने से द्रव्य शब्द से निर्दिष्ट है क्योंकि श्रावक अवस्था–असि, मसि आदि षट्कर्मों के निमित्त से अति प्रमाद युक्त है इसलिये उसमें उसके धर्मों के उद्बोधक निमित्त की आवश्यकता है। मुनिधर्म में वह बात न होने से उसकी जरूरत नहीं यथार्थ में यज्ञोपवीत के समय कम से कम अष्ट मूलगुण रूप चारित्र का होना अवश्यंभावी है क्योंकि चारित्र की शुरूआत वहीं से है इसलिये त्रिधर्म रत्नत्रय धर्म का सूचक यज्ञोपवीत भी वहाँ है।

यज्ञोपवीत में मुख्य तीन लरें होती है। उसका तात्पर्य मुख्यता से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय की उद्बोधकता से है परन्तु प्रत्येक के भीतर जो नव–2 तन्तु रखे हैं उसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक तन्तु कृत कारित अनुमोदना गुणित मनवचनकाय की सरलता को लिये नव – 2 बाड का एक एक तागा होने से सब तागे सत्ताईस अंश प्रमाण हैं। उन तागों की ग्रन्थि रहित सरल शुभ्र स्वच्छ आदि शुद्ध अवस्था का वर्णन है। वह सिर्फ परिणामों को सरल करने का उद्बोधक है और उस यज्ञोपवीत में जो एक गाँठ है वह ब्राह्मण की, दो गाँठें क्षत्रिय की और तीन गाँठें वैश्य की निशानी है। शूद्र पापकर्मा होने से उनके लिए यज्ञोपवीत का विधान नहीं है।

शूद्र को यज्ञोपवीत संस्कार क्यों नहीं होता इसके लिये आगम प्रमाण? यथा–

अदीक्षार्हेकुलेजाता विद्याशिल्पोपजीविनः।
एतेषामुपनीत्यादिसंस्कारो नाभिसम्मतः।।170।। आदि० सर्ग 40

इस विषय का निरसन–धर्मशास्त्रों में यज्ञोपवीत धारण करने के बाद जो नियम बताये हैं उनसे स्पष्ट है। जैसे कि– पेशाब के समय दक्षिण कर्ण पर, शौच के समय वाम कर्ण पर इत्यादि नियमों के विधान से पता लगता है कि वे सब अशुचि समय है इनमें यज्ञोपवीत किस प्रकार पवित्र रखना तथा अशुचिता आने पर किस प्रकार मंत्रादि पूर्वक पुनः धारण करना इत्यादि विधि अच्छी तरह समझा देती है कि अस्पर्श शूद्र की कोई भी अवस्था शुचि की नहीं होती क्योंकि उसका शरीर एक तो अपवित्र शूद्रीय परमाणुओं से बना है। दूसरे उसकी आजीविका भी उत्तम नहीं है इसलिये सर्वावस्था में अशुचि होने से शूद्र यज्ञोपवीत का अधिकारी नहीं है। संपूर्ण आरंभ परिग्रह और सांसारिक क्रियाओं के

त्यागी मुनिजन जनेऊ धारण नहीं करते उनके जो कृत्य हैं वे सर्व रत्नत्रय स्वरूप हैं तथा चर्या वृत्ति रत्नत्रय की साधिका है। उनके प्रमाद भी अत्यल्प है। यज्ञोपवीत होमादि विधानपूर्वक मंत्र सहित जो धारण करने से उत्पन्न हुई शक्ति जनेऊ धारक को निंद्यकर्म से रोक कर सुमार्ग में लगाती है। जैसे कि विधिपूर्वक मंत्रित गंडा ताबीज आदि दृष्ट्यादि दोषों को रोककर आरोग्यता की रक्षा में सहायक होते हैं। विधिविधान जैसे जैसे महत्त्व के होंगे वैसे वैसे ये यज्ञोपवीतादि संस्कार भी आत्म गुणों की महत्ता के संपादन में सहायक होंगे।

यज्ञोपवीत की निरुक्ति से उस विषय की सफलता

यज् धातु का अर्थ–देवपूजा, दान, सत्कृति (संयम) होता है और उपवीत शब्द का अर्थ सूत्र होता है इन दोनों वाक्यों को मिलाकर यज्ञनिमित्तक सूत्र यह अर्थ होता है यही निरुक्तिक अर्थ शास्त्राज्ञाओं में सर्व जगह संघटित होता है। यथा–

सूत्रं गणधरैर्दृब्धं व्रतचिह्नं नियोजयेत्।
मन्त्रपूतमतो यज्ञोपवीती स्यादसौ द्विजः।।158।। आदि० सर्ग 40
पूजादानादिसत्कर्म संध्यावंदनकं तथा।
सदा कुर्यात्स पुण्यात्मा यज्ञोपवीतधारकः।। नेमिचन्द्र प्रतिष्ठा तिलक

इसी प्रकार अन्य आदिपुराणादि ग्रन्थों में भी आज्ञा है कि– जिनपूजन, जिनाभिषेक, दान, व्रत, लग्नविवाह संस्कार वगैरह सत्कृत्यों में यज्ञोपवीत धारण करें। जिस प्रकार रत्नत्रय का चिह्न यज्ञोपवीत है और वह हृदय में धारण किया जाता है उसी प्रकार उसी समय के अन्य चिह्न मौंजी बंधनादि भी विशेष स्थान पर धारण किये जाते हैं। इस विषय का भी सविशेष वर्णन इस ग्रंथ में है जैसे कि–श्वेत छत्र, ध्वजा विशेषादि राजचिह्न हैं उसी प्रकार रत्नत्रय का चिह्न –यज्ञोपवीत, अणुव्रत का चिह्न – कंकण, ब्रह्मचर्य का चिह्न– मौजीबंधन, विद्यार्थी का चिह्न –शिखा (चोटी) और धोती दुपट्टा – स्वकुलोन्नत्त्व निर्मलता के चिह्न कहे हैं वे भी दानपूजादि सत्कर्म में धारण किये जाते हैं और इनका विधान प्रायः यज्ञोपवीत के साथ है मंत्र जुदे जुदे हैं तथा यह यज्ञोपवीत चिह्न इन्द्र को भी कहा है। उसका तात्पर्य यह है कि– इन्द्र सम्यग्दृष्टि होता है, द्वादशांग का ज्ञाता तथा सम्यक्त्वाचरण चारित्र का धारक होता है जो रत्नत्रय का द्योतक है। इन्द्र और देव भगवान के पूजक होते हैं अतः इस चिह्न के अलावा उनके पूजक के और भी चिह्न हैं तथा उनका वैक्रियक शरीर शुद्ध व निर्मल है इस विषय का द्योतक भी यह यज्ञोपवीत चिह्न है। यहाँ भी इन्द्र चिह्नों को धारण कर जो पूजनादि सत्कर्म करता है वह इन्द्र के समान मान्य है। थोड़ी देर के लिये इस मनुष्य पर्याय में भी इन चिह्नों को धारण कर पूजक अवस्था में उत्कृष्ट इस इन्द्रपद का मिलना क्या कम बात है? मेरी समझ से तो इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि जो इन्द्र सम्बन्धी चिह्नों को धारणकर शुद्ध योगत्रय की तत्परता से पूर्ण पूजक होता है वह भवान्तर में नियम से इन्द्र होता है क्योंकि समर्थ साधन नियम से कार्य साधक होते हैं यह न्यायसिद्ध अटल सिद्धान्त है। आगम और युक्ति से सिद्ध है कि यज्ञोपवीतादि संस्कार कितने उपयोगी तथा मान्य हैं उनकी उपयोगिता तथा मान्यता ही इनके अवश्यंभावी आवश्यकपने को सिद्ध करती है।

जिनपूजन करना देवमात्र का नियोगरूप कर्तव्य है और जिनपूजन में यज्ञोपवीत का विधान है अतः देवपर्याय में यज्ञसूत्र भूषण होने पर भी पूजक का चिह्न है। देवों के यज्ञसूत्र होता है यह बात शास्त्रों में ही कही है।

श्री 105 क्षुल्लक ज्ञानसागरजी महाराज
का
संक्षिप्त परिचय

आप आगरा शहर के निकट चावली ग्राम के श्रीयुत लाला तोतारामजी के पुत्र और पं० लालारामजी तथा पं० मक्खनलालजी के भाई हैं। आपके एक जयकुमार नामका लड़का है जो कि गोपालदास दि० जैन विद्यालय मोरेना (म.प्र) में विद्याभ्यास कर रहा है। आप श्रीमतीजी के देहान्त के बाद संसार से उदासीन रहते थे। बाद में (श्री 108 गुरु शान्तिसागरजी यज्ञोपवीत आदि विशेष विधियों का विशेषता से प्रचार कर रहे हैं। कर्नाटक देश में यह प्रचार अविच्छिन्न रूप से आज तक चला आ रहा है परंतु उत्तर प्रांत में मुसलमानी राज्य के समय से यज्ञोपवीतादि का प्रचार रुक गया था। उसी को फिर प्रवर्तित करने का श्रेय आ० श्री ले रहे हैं) जो उत्तर प्रांत के जैनियों के लिये एक अत्युपयोगी और प्रशंसनीय कार्य है। मुनियों के साथ सहवास से क्षुल्लक पद धारक उत्कृष्ट श्रावक होकर मुनिसंघ के साथ विहार कर रहे हैं। आपने इस चर्या के पूर्व अपना जीवन विद्या पठन पाठन तथा माँ सरस्वती की सेवा में व्यतीत किया था। अब त्यागी होकर मनुष्य जन्म को सफल कर रहे हैं यह एक बात सोने में सुगंधि के समान है क्योंकि इस जमाने में पंडित होकर त्यागीपने का दर्जा आप में ही है। आपने इस पुस्तक के अलावा और भी कई पुस्तकें लिखी हैं तथा जैन पत्रों में आपके लेख भी हमेशा प्रकाशित हो रहे हैं इससे पाठक स्वयं ही निर्णय कर सकते हैं कि समाज में आप कैसे लेखक तथा विद्वान हैं। आपका और विशेष गुणगान करना पिष्टिपेषण के समान है क्योंकि समाज प्रायः आपसे परिचित है। भविष्य की जनता भी आपसे परिचित रहे इसलिये यह संक्षिप्त परिचय लिखा है।

निवेदक–

रामप्रसाद जैन शास्त्री

मुम्बई

श्री वीतरागाय नमः

धर्म और सन्मार्ग का स्वरुप

वेदः पुराणं स्मृतयश्चारित्रं च क्रियाविधिः।
मंत्राश्च देवतालिंगमाहाराद्याश्चशुद्धयः।।20।।
एतेर्था यत्र तत्त्वेनप्रणीताः परमर्षिणा।
स धर्मः स च सन्मार्गस्तदाभासाः स्युरन्यथा।।21आदि० सर्ग 39।

भावार्थ—जो भव्यजीव प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार वेदों को प्रमाण रूप सत्य मानता है। वेदों के एक अक्षर में भी जिसका संदेह सर्वथा नहीं है। पुराणों को जो जिनागम समझता है। अविच्छिन्न रूप से सर्व क्षेत्र, सर्व काल में स्मृति ग्रंथों को शास्त्र समझता है, जो चारित्र का पालन करता है, जो भोजन शुद्धि, पिंड शुद्धि, यज्ञोपवीतादि संस्कार की क्रियाओं का पालन करता है, मंत्र से शुद्धि करता है, देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान करता है, आहारादि शुद्धि का पालन करता है वही धर्म को धारण करने वाला है, वही सन्मार्गगामी है जो उक्त कार्यों में विचार नहीं करता वह मिथ्यादृष्टि है।

सम्यक्त्व और सम्यग्दृष्टि

पुराण स्मृत्तिसंभूतविशुद्धया करणत्रयात्।
सम्यक्त्वमादिमं प्राप्य शांतसप्तमहारजाः।।437।। उ० पु० पर्व 74

भावार्थ– जो पुराण और स्मृति ग्रन्थों की विशेष दृढ़ श्रद्धा से विशुद्धि पाकर करणत्रय से प्रथमोपशम सम्यक्त्व को पाकर सम्यग्दृष्टि होता है और आज्ञा मानकर अपना चारित्र, खानपान, विवाह, कुलधर्म आदि का पालन करता है वह आसन्न भव्य और निर्वाणार्ह है।

यज्ञोपवीत – विचार

यज्ञोपवीत धारण करने का कारण

इस जीव ने अनादि काल से बड़ी बड़ी मलिन पर्यायों के कारण जीव के विशुद्ध गुणों में भी विशेष मलिनता प्राप्त की है। जब तक सांसारिक अशुद्ध पर्यायों को धारण किये हुये है तब तक जीव में मलिनता नियम से रहेगी। संसारी जीव अशुद्ध जीव कहलाते हैं और यह अशुद्धता अशुद्ध पर्याय धारण करने से ही है। सिद्ध जीव परम विशुद्ध और परम निर्मल हैं कारण एक यही है कि सिद्ध जीवों को अशुद्ध पर्याय का धारण करना सर्वथा नष्ट हो गया है। वे सब प्रकार से निर्द्वंद हैं, अमूर्तिक, अविनाशी निरंजन पद को प्राप्त हो चुके हैं।अतः कर्मों से लिप्त जीवों को संसारी पर्यायों का धारण करना मलिनता और अशुद्धता का कारण है।

संसारी जीवों को मलिनता के कारण रागद्वेष भी है। जिन जीवों में मोह क्रोधादि कषायों की, दुर्भावों की कलुषता है, विशेष उग्रता है। उन्हीं को मलिन पर्याय अधिकतर प्राप्त होती है। नवीन मलिन पर्याय धारण करने के कारण ही जीवों में दुर्भाव अधिक होते हैं।

नरक गति में– इस जीव को मलिन पर्यायें अशुभ बीभत्स और ग्लानि पूर्ण वैक्रियिकशरीर में अपनी स्थिति पर्यन्त व्यतीत करनी पड़ती है। वैतरणी नदी में पीव, रुधिर, मल में रहना पड़ता है। वे नारकी ही परस्पर में एक दूसरे को कष्ट देने के लिये अपृथक् विक्रिया करते हैं।

तिर्यंच गति में– यह जीव विष्टा का कीड़ा होता है। उदर में कृमि होती है, माँस पर्याय में जन्म लेता है, घिनावनी बीभत्स मलिन पदार्थों की खानि ऐसे ग्लानि पूर्ण अशुचि स्थान में निरंतर रहना पड़ता है। भूख प्यास, सर्दी गर्मी, छेदन भेदन, ताड़न पीड़न आदि असह्य दुःख भोगते हैं।

मनुष्य गति में– राग द्वेष और मिथ्यात्व के कारण सदैव मलिन पर्याय धारण की, स्त्री के रज रुधिर पीव आदि

अपवित्र स्थानों में निरंतर कीटाणु रूप में उत्पन्न हुआ। इस जीव ने मिश्र पुण्य पाप के उदय से माँ के पेट में उल्टे मुँह नौ महिने पर्यन्त मल मूत्र से भरे हुये स्थान में रहा। जैसा जैसा जिह्वा लोलुपता के कारण माँ ने ठंडा, गरम, कडुवा, कषायला आदि खाया वह पित्त कफ से मिश्रित होकर भोजन रूप में खाकर नाना प्रकार से तड़पता हुआ, दुःखी होता हुआ समय व्यतीत किया। जन्म के समय नाना कष्ट भोगे। भूख प्यास से दुःखी होकर अपना ही मल मूत्र खा पी लिया। जवानी में धन कमाने में, कामभोग में, श्रृंगारालंकार में और भी नाना प्रकार से हाय हाय में समय व्यतीत किया। वृद्धावस्था में असक्त अंधा, बहरा, लंगड़ा होकर अपमान तिरस्कार आदि के कष्टों को भोगता हुआ समय व्यतीत किया। इस प्रकार यह जीव अनादि काल से प्रायः मलिन पर्यायों को धारण कर रहा है। मलिन पर्याय में जीवों को शुभ कर्मों का उदय भी नहीं होता है और न शुभ कार्य करने की योग्यता ही प्राप्त होती है जिससे वह अपने भावों को विशुद्ध बना सके और मोक्ष मार्ग की अधिकारता प्राप्त कर सके।

देवगति में– इस जीव ने जन्म लेकर कुछ पुण्यात्मा देवों के चेतन अचेतन वैभव को देखकर ईर्ष्या आदि दुर्भावों के कारण नाना प्रकार से दुःखी होकर निदान बंध से ऐकिन्द्रिय पर्याय या पंचेन्द्रिय पशु पक्षी की पर्याय को धारण कर नाना प्रकार से दुःखी हुआ। इस प्रकार यह जीव घानी के बैल की तरह विवेकहीन होकर मोह की पट्टी बाँधकर कुछ कम चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता हुआ कुछ धार्मिक संस्कारों से विशुद्ध होकर आगमानुकूल पवित्र आचरण का पालन कर अपने को समस्त सदाचार रूप आदर्श बनाता है। उसी समय जीव के क्षमा, संतोष, मृदुता, सरलता, ब्रह्मचर्य, त्याग, संयम, दान, तप, जिनाराधनादि गुण उत्पन्न होकर आत्मीय विशुद्ध गुणों से परिणत होता है। मलिन पर्याय में धार्मिक सत्संस्कारों का अभाव होने से जीव मोक्षमार्गी नहीं बनता इसीलिये धार्मिक सत्संस्कार विहीन मलिन पर्यायें दुःख और संसार के कारणभूत मोक्ष के लिये अयोग्य मानी गई हैं। मलिन संस्कारों का असर अनेक पर्यायों तक होता है। एक मलिन पर्याय में यह जीव मोहादिक दुर्भावों से ऐसा कर्म बंध कर लेता है कि जिससे अनेक भव पर्यंत मलिन पर्याय धारण करनी पड़ती है।

सुखासुखं बलाहारौ देहावासौ च देहिनां।
विवर्तन्ते तथा ज्ञानं दृक्शक्ती च रजोजुषाम्।।94।। आदि० सर्ग 42

पाप कर्मोदय से जीवों को सुख दुःख, बल, आहार, शरीर, घर आदि शुभ रूप से अशुभ रूप में बदल जाते हैं तथा मलिनता के कारण रत्नत्रय गुण भी मलिन हो जाते हैं। मलिन पर्याय में जीवों को मोहादिक दुर्भाव विशेष रूप से होते हैं। जिससे जीवों के गुणों में विशेष रूप से क्षोभ होता है। भगवान श्री जिन सेनाचार्य ने कहा है कि–

क्षुभितत्वं च संक्षोभः क्रोधाद्याविष्टचेतसः।
भवेद्विविधयोगोस्य नानायोनिषु संक्रमः।।92।। आदि० सर्ग 42

भावार्थ–क्रोधादिक दुर्भाव ही जीवों के गुणों में संक्षोभ और असामर्थ्य प्राप्त कराते हैं। जिससे जीवों को कुछ कम चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुए मलिन पर्यायें प्राप्त होतीं हैं। श्री जिनेन्द्र भगवान ने बतलाया है कि– इस जीव को जैसे जैसे धर्म सत्संस्कारों से विशुद्ध उत्तम पर्याय प्राप्त होगी वैसे वैसे ही जीवों के रागद्वेष मोहादिक दुर्भाव नष्ट होते जायेंगे और आत्म गुणों का विकास होता जायेगा। महान पुण्यशाली जीवों को भी अपने गुणों के विकास करने के लिये सज्जाति आदि सप्त परम स्थानों की प्राप्ति बार बार करनी पड़ती है। उन पुण्यशाली महान् जीवों को अनादि काल से प्राप्त हुई मलिन पर्यायों के निमित्त से होने वाले मलिन संस्कारों को दूर करने के लिये सज्जाति आदि सप्त परम स्थानों की सिद्धि के अर्थ अनेक भव धारण कर तपश्चरण करने पड़े थे।

श्री तीर्थंकरादिक के जीवों ने भूतकाल में विशुद्ध संस्कार वाली उत्तम पर्याय प्राप्त करने के लिये कितने भवों में कितने दुर्लभ प्रयत्न किये थे? अनेक बार घोर तपश्चरण किये, जिन पूजन की, दान दिया, उत्तम व्रत पालन किये विशुद्ध भावों से जिनधर्म सेवन किया। इस प्रकार अनेक भवों में विशुद्ध संस्कारों वाली उत्तम सज्जाति आदि पर्याय धारण करने का निरन्तर उद्योग किया। जिस प्रकार सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये पंचेन्द्रिय संज्ञी आदि होना परमावश्यक है। उसके बिना सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता ही जीवों को प्राप्त नहीं होती है। एकेन्द्रिय से असैनी पंचेन्द्रिय पर्यंत जीवों में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता नहीं है। इसी प्रकार असंस्कारित कुलों में और मलिन पर्यायों में मोक्ष मार्गता प्राप्त नहीं होती है इसीलिये आगम में विशुद्ध श्रावक कुल की प्राप्ति होना अति कठिन कहा है। संस्कारित शरीर महान

पुण्योदय से भव्य जीवों को प्राप्त होता है। मोक्ष मार्गमें सबसे अधिक उपयोगिता संस्कारित शरीर की प्राप्ति होना है। भोगभूमिज मनुष्यों में निराकुलता, धैर्य, सुखसाता कषायों की मंदता और उत्तम संहनन आदि उत्तमोत्तम होते हैं तो भी सत्संस्कारों का अभाव होने से संयम सहित मोक्षमार्गता प्राप्त नहीं होती है किंतु संयम सहित मोक्ष मार्गकर्मभूमि में ही प्राप्त होता है। मलेच्छ खण्ड में सदैव चर्तुथकाल रहता है। मलेच्छ खण्ड में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण हैं। क्षत्रिय और वैश्य ये दो उच्च कुलीन होने पर भी सत्संस्कारों के अभाव में रत्नत्रय स्वरूप मोक्ष मार्गनहीं है। ज्ञान की वृद्धि से भी मोक्षमार्गता नहीं है क्योंकि इन्द्रादि सम्यग्दृष्टि है, 11 अंग के या द्वादशांग पाठी है परन्तु इन्द्र की पर्याय में षोडश संस्कारहीन होने से संयम सहित मोक्षमार्गता प्राप्त नहीं होती है। जिन कुलों में जिनधर्म के सत्संस्कार होते हैं ऐसे कुलों में उत्पन्न हुए मनुष्य ही संयम व्रत सहित मोक्षमार्ग प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा नहीं। इस जीव ने मिथ्या संस्कारों सहित ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का उच्च कुल अनेक बार प्राप्त किया। मिथ्यामत का परित्याग किये बिना मिथ्यादृष्टि जीवों को विशुद्ध संस्कारों की प्राप्ति नहीं हो सकती है। शूद्रों के षोडश संस्कारों का अभाव होने से शूद्रों में मोक्ष मार्ग नहीं है। पूर्व बद्ध पाप कर्म के उदय से नीचगोत्रपना प्राप्त होता है कि जिससे उनमें सकल संयम पूर्वक मोक्षमार्गता का ही सर्वथा अभाव होता है। जिस प्रकार प्रयत्न करने पर भी द्रव्य स्त्री पर्याय में शुक्लध्यान प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार शूद्रों में मुनि बनने की योग्यता न होने से सकल संयम सहित मोक्षमार्ग नहीं है। शूद्रों के समीचीन संस्कारों का अभाव होने से मोक्षमार्गता कैसे हो सकती है?

पिण्डशुद्धेरभावत्त्वात् मद्यमांस निषेवनात्।
सेवादिनीच वृत्तित्वात् शूद्राणां संस्कारो न हि।।

प्र.1–शूद्रों के यज्ञोपवीताति संस्कार क्यों नहीं होते हैं?

उत्तर–आचार्य महाराज तीन हेतुओं से बतलाते हैं–

पहला कारण–शूद्रों की पिंड शुद्धि नहीं होती है। पुनर्विवाह और धरेजादि पद्धति शूद्रों में वंश परंपरागत होने से शूद्रों का पिंड ही शुद्ध नहीं होता है। पिंड की शुद्धि के बिना संस्कारों की व्यवस्था जिनागम में सर्वथा नहीं बतलाई है। शूद्रों के जन्म से मरण पर्यंत नीचगोत्र का उदय निरंतर बना ही रहता है क्योंकि नीचगोत्र का उदय कर्म सिद्धांत ग्रंथों में पंचम गुणस्थान पर्यंत माना है इसलिये शूद्रों के मुनि पद के योग्य पिंड शुद्धि कदापि किसी प्रकार से नहीं होती है।

दूसरा कारण–अधिकतर शूद्रों में रत्नत्रय धर्म के अत्यंत विरोधी मद्य मांस आदि वस्तुओं के सेवन करने का प्रचार भी वंशानुगत होने से संस्कारों का अभाव माना गया है।

तीसरा कारण– शूद्रों की वंश परंपरागत नीच आजीविका, सेवा आदि हिंसाजनक और पापमय हिताहित के विवेकहीन होने से जिनागम में मुनिलिंग धारण करने का भी अभाव कहा है। यह कथन नीचगोत्री और नीचाचरण वालों की अपेक्षा समझना चाहिये।

इसी ग्रन्थ में सज्जाति का सामान्य निरुपण करते हुये बतलाया है कि–

पिंडशुद्धिसुमूलैका कुलजात्योर्विशुद्धता।
संतानक्रमेणायाता सा सज्जातिः प्रगद्यते।।

भावार्थ–सज्जाति सप्त परम स्थानों में मुख्य मानी है। सज्जाति से ही सप्त परम स्थानों की प्राप्ति होती है। सज्जाति के बिना सप्त परम स्थानों की भी प्राप्ति नहीं होती है। जिसके वंश परंपरागत जाति माता के रज की शुद्धि, कुल पिता के वीर्य की शुद्धि शुद्धि है इन दोनों की शुद्धि को सज्जाति और सज्जाति से पिंडशुद्धि सांगोपांग होती है इस प्रकार मातापिता के रजोवीर्य की विशुद्धि वंश परंपरागत होने से पिंडशुद्धि अविच्छिन्न रूप से अवश्य ही होती है। सज्जाति मोक्षमार्ग को प्राप्त करने के लिये प्रधान कारण मानी है और जिनके पिंडशुद्धि है उनके ही सज्जाति है। पिंडशुद्धि के बिना सज्जाति नहीं होती है। इसलिये सज्जाति की प्राप्ति के लिये पिंडशुद्धि मूल कारण मानी है। शूद्रों के पिंडशुद्धि सर्वथा नहीं है। जो लोग विधवा या तलाक होने के बाद पुनः विवाह करते, कराते हैं वे समाज में परस्त्री सेवन व्यसन और वेश्या सेवन व्यसन का प्रचार प्रसार करते हुये देव शास्त्र गुरु की आज्ञा का उल्लंघन और लोप करते हैं उनके जातिशुद्धि और कुलशुद्धि का सर्वथा अभाव है। इसीलिए पुनर्विवाह, धरेजा, विजातीय विवाह आदि करने

वालों के पिण्डशुद्धि नहीं होती है। इस प्रकार पिंडशुद्धि के अभाव में सज्जाति का अभाव, सज्जाति के अभाव में संस्कारों का तथा मोक्ष मार्ग का भी अभाव हो जाता है। दशा, पतित, गोलक आदि संतानों के सज्जाति का अभाव होने से संस्कार नहीं होते हैं तथा संस्कारों के बिना दशाओं को भी जिनेन्द्रदेव की मूर्ति का प्रक्षाल करने का, जिनलिंग धारण करने का और आहारदान देने का भी अधिकार नहीं है। शूद्रों को जिनलिंग धारण करने का अधिकार क्यों नहीं हैं? स्मृतिसार में बतलाया हैः–

पौनर्पुनर्विवाहत्वात् पिंडशुद्धेरभावतः।
ऋत्वादि सुक्रियाभावात् तेषु न मोक्षमार्गता।।

भावार्थ– शूद्रों के स्त्रियों का पुनर्विवाह, ऋतुधर्म की क्रिया एवं सूतकपातक की विशुद्धता आदि न होने से संयम पूर्वक मोक्षमार्गता नहीं है। उनको यज्ञोपवीतादि संस्कार एवं काय से कृत दानाभिषेक आदि उत्तम कार्यों को करने का भी अधिकार नहीं है। आगम में शूद्रों के पिंड को अयः पिंड बतलाया है। लोहे को नाना प्रकार से संस्कारित करने पर भी सोना नहीं बनता इसी तरह शूद्र भी नाना प्रकार से उज्ज्वल वेषभूषा, आचरणादि का पालन करे तो भी वह दिगम्बर मुनिदीक्षा के योग्य संस्कार को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि उसके नीचगोत्र का उदय होने से उच्चसंस्कारों के योग्य विशुद्धता को प्राप्त नहीं हो पाता तथा नीचगोत्र के उदय से शरीर में विशुद्ध परमाणुओं का अभाव होने पर उसकी आत्मा विशुद्ध भावों को धारणकर जिनलिंग धारण करने की योग्यता प्राप्त नहीं होती आदि कारणों से आचार्यों ने बतलाया है किः–

चारित्रेष्वपि शूद्रेषु संस्कारस्य न योग्यता।
समुद्दीपितेयः पिंडे स्वर्णत्वं नाभिगच्छति।।

भावार्थ–शूद्र कितनी ही उज्ज्वलता धारण करे, शक्त्यानुसार जिनधर्म का पालन करे तो भी शूद्रों को उस पर्याय में मुनि पद के योग्य सत्संस्कारों की योग्यता कदापि नहीं हो सकती है। लोहा कितना ही उज्ज्वल किया जाये परन्तु लोहा स्वर्ण नहीं हो सकता है।

प्र.2–यदि शूद्र जैनी बनकर खान पान शुद्धता पूर्वक करे तो उसके संस्कार तथा उसके साथ रोटी बेटी व्यवहार प्रारम्भ क्यों न किया जाये?

उत्तर–जैनधर्म को प्रत्येक प्राणी धारण कर सकता है। यह जैनधर्म समस्त जीवों का धर्म है। सर्वमान्य धर्म है इसलिये शूद्र क्या पशु पक्षी भी जैनधर्म धारण कर सकते हैं और किया ही है जैसे सर्प, नेवला, सिंह, बंदर, हाथी, बकरा, कुत्ता और जटायु पक्षी आदि परन्तु जैनधर्म धारण करने से पिंडशुद्धि नहीं होती है। पिंडशुद्धि तो पूर्वभव में संपादन किये पुण्योदय से तथा ऊँच गोत्र के उदय से विशुद्ध परमाणु वाला पिंड प्राप्त किया है। मातापिता के रजोवीर्य की विशुद्धि वाले योनिस्थान में विशुद्ध शरीर को प्राप्त किया है। उस भव्यात्मा के ही पिंडशुद्धि मानी है। यह पिंडशुद्धि एक पर्याय में शरीर की स्थिति आयुकर्म की स्थिति के समान अंतपर्यंत रहती है। **पल्लतियं....।** गो०जी० गाथा 252 योगमार्गणा अर्थ–: औदारिक शरीर की उत्कृष्ट उदय स्थिति तीन पल्य कही है क्योंकि मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य की है और आयुकर्म के उदयानुसार ही शरीर की और गोत्र कर्म की स्थिति मानी गई है। यह आपने कैसे जाना कि यहाँ औदारिक शरीर की उदय स्थिति बतलाई है? इसी योग मार्गणा के कथन से जाना कि यहाँ पर उदय स्थिति बतलाई जा रही है क्योंकि जब तक कर्म सत्ता में रहते हैं तब तक आत्मा के प्रदेशों में कंपन नहीं होता है किंतु आबाधा पूर्ण होने के बाद कर्म अपना फल देने में द्रव्य क्षेत्र काल भाव के अनुकूल होने पर समर्थ हो जाते हैं अन्यथा संक्रमण कर बिना फल दिये ही झड़ जाते हैं। अतः योग का मतलब ही है आत्मा के प्रदेशों में कंपन होना तथा सत्त्व स्थिति औदारिक शरीर की कर्मकांड गाथा 130 में 20 कोडाकोडी सागर प्रमाण बतलाई है। यदि स्थिति एक ही प्रकार की होती तो आचार्य श्री नेमिचंद्रजी ने जीवकांड और कर्मकांड में दो प्रकार से नहीं बतलाते। एक ही प्रकार से कहते। इससे जाना जाता है कि उदय स्थिति अलग है और सत्त्व स्थिति अलग है। पूर्व भव के नीचगोत्र रूप पापोदय से जो शूद्र पर्याय मिली है वह वर्तमान पर्याय में किसी प्रकार बदल नहीं सकती चाहे जैन धर्म धारण करो, सफाई से रहो, मद्य, मांस, मधु त्याग कर पंचाणुव्रत भी धारण करो जैसे प्याज को कितना ही घी मिर्चादि से छौंका जाये, संस्कारित किया जाये फिर भी प्याज की दुर्गंध नहीं जाती। जिनागम में यही बतलाया है। देखिये–मोक्ष मार्गप्रकाश पृष्ठ 86। कुल कितेक काल रहे? पर्याय

छूटे कुल की पलटन हो जाय।

भावार्थ–: ऊँचगोत्र अथवा नीचगोत्र का उदय एक पर्याय में अंत पर्यंत रहता है। उस पर्याय में किसी भी प्रकार से पर स्थान संक्रमण नहीं होता न बदल सकता है। भगवान पूज्यपाद आचार्य ने भी यही बतलाया है कि गोत्रकर्म का और आयुकर्म का उदय शरीर नामकर्म के साथ रहता है। नीचगोत्र का उच्चगोत्र में और उच्चगोत्र का नीचगोत्र में संस्कारों से वर्तमान में व्यक्त रूप में बदल सकता है? नहीं। उदय प्रकृति में अनुदय प्राप्त प्रकृति संक्रमण करती है ऐसा नहीं है कि उदय प्रकृति अनुदय प्रकृति में संक्रमण कर जाये तथा उदीरणा भी उदय प्रकृति की होती है।

प्रश्न 3–जैसे नीचगोत्र का उदय शूद्रों में अंत पर्यंत रहता है वैसे ही ऊँचगोत्र का उदय ऊँचकुल में अंत पर्यंत रहता है या बदल जाता है? जो नहीं बदलता है तो दशा पतित, गोलकादि के ऊँचगोत्र का ही उदय होने से संस्कारित करने में क्या हानि है? जो ऊँचगोत्र का उदय एक पर्याय में बदल जाता है तो शूद्र को भी बदल जाना चाहिये शूद्र भी जैनधर्म धारण करने से ऊँचगो़त्री हो सकता है?

उत्तर–ऊँचगोत्र का उदय यद्यपि जीवनपर्यंत रहता है तो भी ऊँचगोत्र वाला मनुष्य कदाचित् अति निंद्य कार्य कर लेवे तो उसका बाह्य चर्या की अपेक्षा ऊँचगोत्र अवश्य ही बदल जायेगा। पूर्वबद्ध द्रव्य कर्मोदय की अपेक्षा नहीं जैसे ऊँचगोत्री ब्राह्मण मांस खाने लग जाये और चांडालिनी से विवाह कर लेवे तब वह ब्राह्मण अवश्य ही पतित हो जायेगा क्योंकि जो खड़ा है वही गिरेगा, जो बैठा है, लेटा है वह क्या गिरेगा? उच्चगोत्री पतन कर नीचगोत्री हो सकता है किंतु नीचगोत्री उच्चगोत्री नहीं बन सकता। यह नियम वर्तमान नय से वर्तमान पर्याय में समझना परन्तु नीचगोत्र वाला चांडाल आदि शूद्र कितना ही उत्तम कार्य करे, जिनधर्म धारण कर लेवे, अणुव्रती हो जाये तो भी उसका नीचगोत्र का उदय उस पर्याय में किसी भी प्रकार से बदल नहीं सकता? शूद्र से वह ऊँचगोत्री उस पर्याय में नहीं हो सकता है? यही बात श्रीमान पंडित प्रवर टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाश में बतलाई है। ऊँचकुल वाले को नीचा होने का भय है परन्तु नीचकुल वाले को नीचपने का दुख ही है।

मोक्षमार्गप्रकाश पत्र 208 'नीचकुल वाले के उत्तम परिणाम नहीं होय सके बहुरि नीचगोत्र का उदय तो पंचम गुणस्थान पर्यंत ही है।'.....जो कहोगे संयम धारे पीछे वाके ऊँचगोत्र का उदय कहिये तो संयम धारणे की वा न धारणे की अपेक्षा ते ऊँचगोत्र कर्म का उदय ठहरा।'

भावार्थ–गोत्रकर्म का उदय शरीर पिंड के साथ साथ पूर्वभव के पाप पुण्य फल से प्राप्त होता है। शूद्र के नीचगोत्र का उदय शरीर पर्यंत रहता है इसलिये शूद्र के परिणाम नीचगोत्र के उदय से उत्तम नहीं हो सकते? संयम धारण करने से गोत्र कर्म का उदय बदलता नहीं है। शूद्र भले ही देश संयम धारण करे, ऊपरी भभकाव, सफाई धारण करे और जैन धर्म धारण करे तो भी उसके ऊँचगोत्र कर्म का उदय नहीं होता है। यही बात तत्वार्थसूत्र में बतलाई है।

सद्वेद्य शुभायुर्नाम गोत्राणि पुण्यं, 'अतोऽन्यत्पापम्।।'

भावार्थ –सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम और ऊँचगोत्र ये पुण्य प्रकृतियाँ हैं। इनके अलावा शेष समस्त घाति अघाति कर्म प्रकृतियाँ पाप रूप ही हैं। शुभ प्रकृतियों का उदय पुण्य कर्म के उदय से ही होता है। ऊँचगोत्र की प्राप्ति पुण्यकर्म का फल है और नीचगोत्र की प्राप्ति पाप कर्म का फल है। कदाचित् गोत्रकर्म का उदय पुण्य पाप के फल से न मानकर संयम धारण करने की अपेक्षा से माना जाय तो तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले बालक या राजा ने जब संयम धारण किया तब ऊँचगोत्री मानना पड़ेगा और इसके पहले नीचगोत्री, सो यह बात जिनागम में नहीं मानी है। मोक्ष मार्गप्रकाश पत्र 208 में लिखा है कि जो तीर्थंकरादिक पुण्य पुरुषों के कुल की अपेक्षा ऊँचगोत्र कहोगे तो चांडालादि के भी कुल की अपेक्षा नीचगोत्र का उदय कहो। **भावार्थ**–तीर्थंकरादिक पुण्य पुरुषों को पूर्वभव के ऊँचगोत्र के उदय से ऊँचकुल (इक्ष्वाकु वंश काश्यप गोत्र) की प्राप्ति हुई है इसी प्रकार चांडालादि शूद्रों को भी पूर्व भव के पापकर्म के फलस्वरूप नीचगोत्र कर्म के उदय से नीचकुल की प्राप्ति हुई है न कि जैनधर्म धारण करने से। जैनधर्म तो पशु पक्षी भी धारण कर उत्तम निर्दोषता से चरित्र पालन करते हैं परन्तु पशु पक्षियों के नीच गोत्र का उदय होने से मुनिधर्म नहीं माना है और न पशु पक्षियों के साथ रोटी बेटी व्यवहार माना है। जो जैन धर्म धारण करता हो उसके साथ रोटी बेटी व्यवहार करना ही चाहिये ऐसी जिनागम में कहीं भी आज्ञा प्रदान नहीं की है। जो भाई जैनधर्म धारण करने के साथ रोटी बेटी व्यवहार मानते

हैं उनको आज्ञानुविधायी शास्त्र का प्रमाण बताना चाहिये परन्तु कोई भी विचारशील व्यक्ति आज तक एक भी प्रमाण बतलाने में सर्वथा समर्थ नहीं हुआ। मरुभूति के जीव ने हाथी की पर्याय में जैनधर्म धारण कर पँचाणुव्रत भी धारण किये थे परन्तु फिर भी उसके नीचगोत्र बदल कर ऊँचगोत्र नहीं हुआ और मुनिराज ने न संस्कार ही किये थे। पार्श्वपुराण– **'अब हाथी संयम साधे त्रसजीवनि नाहि विराधे'** इस प्रकार हाथी के साथ जैनधर्म धारण करने पर भी किसी भाई ने रोटी बेटी व्यवहार प्रारम्भ नहीं किया। सिंह, बंदर, शूकर, नेवला, कुत्ता, बकरा, बैल, जटायु, सिंह (महावीर का जीव), शृगाल आदि अनेक पशु पक्षियों ने जैनधर्म धारण कर मद्य, मांस, मधु का परित्याग किया, पँचाणुव्रत भी धारण किये परन्तु उन पशु पक्षियों के संस्कार किसी मुनि ने व्रत देते समय नहीं कराये और न रोटी बेटी व्यवहार साथ साथ करने की आज्ञा ही दी। रोटी बेटी लेने देने को जो लोग लोक व्यवहार कहते हैं परन्तु यह एक प्रकार की प्रतारणा है। मुनिराज को आहारदान देते हैं यह क्या लोक व्यवहार है? यदि लोक व्यवहार है तो तीर्थंकरों ने मुनि अवस्था में आहार ग्रहण कर लोक व्यवहार की प्रवृत्ति क्यों की? देवों ने पंचाश्चर्य क्यों किये? जिन ने आहार दान दिया उन भव्यात्माओं को भोगभूमि अथवा निर्वाण पद क्यों प्राप्त हुआ? अतः यह दानपूजा आदि धर्म कार्य मोक्ष मार्ग है लोक व्यवहार नहीं? क्या अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत, दान आवश्यक कर्तव्य लोकव्यवहार है? यदि लोकव्यवहार है तो इसे सम्यक्त्व वर्धनी क्रिया और सम्यक्त्वाचरण चारित्र क्यों कहा? इससे असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा और पाप कर्मों का संवर क्यों कहा? मुनियों को आहार करते समय में छठवाँ सातवाँ गुणस्थान क्यों बताया? लोकव्यवहार से मुनियों को ऐसी परम विशुद्धि किस प्रकार हो सकती है? **'लोयववहार पउरा ते साहू सम्मउमुक्का।'** रय० 104। अर्थः– लोकव्यवहार में चतुर साधु सम्यग्दर्शन से उन्मुक्त हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि हैं

आ. श्री कुंदकुंद ने लोकव्यवहार में चतुर साधुओं को मिथ्या दृष्टि क्यों कहा? अतः चौका की शुद्धि लोक व्यवहार नहीं है किंतु धर्म व्यवहार है। परमोत्कृष्ट श्रावक धर्म है जो निश्चय धर्म में पहुँचाने के लिये अनेक साधनों में से एक साधन है। जिस भव्य जीव के भोजन की शुद्धि है उसको ही वास्तविक सत्य जिनधर्म की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार बेटी विवाह को लोकव्यवहार माना जाय तो विवाहादि संस्कारों का अभाव होने से सज्जाति का अभाव होगा जिससे किसी भी जीव को मोक्षमार्गता नहीं होगी। विवाह क्रिया समदत्ति दान में बतलाई है और धार्मिक कृत्यों में मुख्य मानी गई है। मलेच्छखंड में विवाह सत्संस्कार पूर्वक नहीं होता है इसलिये वहाँ पर मोक्षमार्गता नहीं है। जिन जिन देशों में विवाह को लोकव्यवहार माना है वहाँ पर अन्याय अत्याचार व्यभिचार और अधर्म की प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल है। जो विवाह को लोक व्यवहार बतलाते हैं तो देव शास्त्र गुरु की साक्षी क्यों करते कराते हैं वे उपासकाध्ययनांग तथा क्रियाविशाल पूर्व को ही लोकव्यवहार शास्त्र बताते हैं तब उनकी मान्यतानुसार लौकिक शास्त्र होने से मिथ्या शास्त्र कहलाया। क्या जिनेन्द्र के असत्य वचन का सद्भाव है? जबकि तेरहवें गुणस्थान में सयोग केवलियों के सत्य वचन योग और अनुभय वचनयोग ये दो माने गये हैं। अतः ये सुधारकवादी सत्य जैन धर्म का लोप कर अपने स्वार्थ के लिये मिथ्या कल्पना करें तो उनको ही मिथ्यात्व कर्म का बंध होगा।

जिनागम में– अपनी जाति में ही विवाह संस्कार बतलाया है जो लोग विजातीय विवाह करते हैं उनके पिंडशुद्धि का लोप हो जाता है इसलिये जिनागम में–

''अथ कन्या सजातीया ''आत्मजातीया'' अन्य गोत्र भवोद्भवा'' ऐसी आज्ञा प्रदान की है। त्रैवर्णिकाचार अध्या० 11 पृ 313 गाथा 36

स्वाभिजात्यमरौगत्वं वयः शीलं श्रुतंवपुः।
लक्ष्मीः पक्षः परीवारो वरे नवगुणाः स्मृताः।।64।। उ० पर्व 62

भावार्थ–कुलीनता, निरोगता, आयु, शील, श्रुतज्ञान, शरीर, लक्ष्मी, पक्ष और परिवार ये वर में नवगुण देखना चाहिये। सर्वप्रथम गुण अपनी जाति का वर होना चाहिये तो वधु भी अपनी ही जाति की होनी चाहिये। यदि आत्म जाति वर की नहीं है तो अवशेष गुणों को ढूँढने की आवश्यकता नहीं है। कंस को कन्या जीवंकशा देते समय महाराज जरासंध ने कंस की जाति का पूर्ण निर्णय कर पाणिग्रहण कराया था। इसलिये जैनधर्म धारण करने से शूद्र संस्कार और मोक्ष मार्ग का ही पात्र नहीं बनता है तथा न शूद्र के साथ रोटी बेटी आदि धार्मिक कृत्य किये जाते हैं क्योंकि इनको अपना सेवक सहायक मानकर रोटी पानी खिला पिला सकते हैं पर इनके हाथ का खाना पीना नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह सज्जनों की पुरानी परंपरा रही है।

शूद्र कौन कौन हैं?

जाति गोत्रादि कर्माणि शुक्लध्यानस्य हेतवः।
येषु ते स्युस्त्रयोवर्णाः शेषः शूद्राः प्रकीर्तिताः।।493।। उ० 74

भावार्थ–जिनकी जाति और गोत्रकर्म का उदय, वंश परंपरागत पिंडशुद्धि एवं कुलाम्नाय शुक्लध्यान के कारणभूत हैं ऐसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण वाले जीव संस्कार के पात्र हैं। जिनलिंग के धारण करने योग्य हैं और संयम सहित मोक्षमार्ग के अधिकारी हैं बाकी जिनको पूर्व भव के पाप कर्म के फल से नीचगोत्र का उदय, नीचजाति की प्राप्ति, नीचकुल, मलिन पिंड और मलिन कुलाम्नाय प्राप्त हुये हैं वे सब शूद्र हैं। गोत्रकर्म एक स्वतंत्र कर्म है। इसके दो भेद हैं – उच्चगोत्र और नीचगोत्र। इसकी व्याख्या दो प्रकार से की गई है। 1. जन्म की अपेक्षा 2. आचरण की अपेक्षा। जो जन्म से गोत्रकर्म की व्याख्या की है वह भूतकाल के कर्म, आचरण से उपार्जित द्रव्यकर्म के उदयानुसार, भाग्योदयानुसार समझना। इसका फल या कार्य जीवन पर्यंत रहता है जैसे भोगभूमिज तिर्यंचों के अंत पर्यंत नीचगोत्र का उदय माना है किंतु इनके एकमात्र शुभ लेश्यायें मानी हैं तथा आचरण भी शुभ है न गंदा, सड़ा, गला भोजन करते हैं न गलत कार्य करते हैं, फिर भी इनके उच्चगोत्र नहीं कहा। अतः यहाँ जन्म प्रधान, भाग्यप्रधान गोत्रकर्म का विधान किया है। इसी तरह गजकुमार, अंजनचोर आदि चरम शरीरी राजकुमार थे। आचरण अत्यंत नीच था पर इनको ग्रंथकारों ने नीचगोत्री नहीं कहा। यदि इनको नीचगोत्री माना जाये तो इनके माँ बाप को तथा ताऊ समुद्रविजय, नेमिनाथ, कृष्ण, बलदेव आदि को भी एक ही खून होने से सभी को नीचगोत्री मानना पड़ेगा? जो कि अनिष्ट आपत्ति है। यदि सर्वथा आचरण की अपेक्षा नीचगोत्र कर्म की व्याख्या स्वीकार करते हो तो आज ऐसा कौन सा अव्रती गृहस्थ जैन है जो अन्याय न करता हो, अभक्ष्य का, अनछना पानी, आगम और पद विरुद्ध मद्य, माँस, मधु से मिश्रित अनेक औषधियों का, शृंगारालंकार की सामग्रियों का प्रयोग न करता हो, विधवा विवाह, त्यक्ता विवाह करते कराते हैं वेश्या सेवन और पर स्त्री सेवन का प्रचार प्रसार करते हैं जो मोक्ष मार्ग के और देवशास्त्र गुरु की आज्ञा के विरुद्ध आचरण है, तब इन समस्त अव्रती जैन गृहस्थों को उच्च गोत्री कहोगे या नीचगोत्री? नीचाचरण होने से ये अव्रती गृहस्थ को तथा त्यागी व्रती बनकर भी जैनेतर कंपनी की आयुर्वेदीय दवाईयों का सेवन करने लगे हैं। आयुर्वेदीय दवाईयाँ दो प्रकार की है–एक जैनियों की दूसरी अजैनों की। जैनों की आयुर्वेदिक दवाईयाँ शुद्ध है और अजैनों की आयुर्वेदिक दवाईयों में मधु का, अनेक पशु पक्षियों के माँस आदि का, चर्बी का, आठ जाति के तिर्यंचों के मूत्र का, इनके दूध का, कंदमूलों का और नाना प्रकार के फूल पत्तों का प्रयोग होने से अशुद्ध है, जो मोक्षमार्गियों को ग्रहण करने योग्य नहीं है। माँसाहारी और शराबियों के हाथ का दूध पीते हैं, कोई कोई डेरी का घी भी खाने लगे हैं तब इनको नीचगोत्री कहो, डर क्यों? आगम का अपलाप क्यों? अतः जिस कथनी से कहीं पर भी आगम, लोकव्यवहार, धर्मव्यवहार में आपत्ति न आये वही कथनी निर्दोष है। जिस प्रकार भूतकाल के शुभाशुभाचरण से बांधा गया गोत्रकर्म वर्तमान का भाग्य कहलाया, औदयिक भाव कहलाया उसी प्रकार वर्तमान काल के शुभाशुभाचरण से बांधा गया गोत्रकर्म भावी काल में भाग्य कहलायेगा तथा आचरण की अपेक्षा जो व्याख्या की गई है वह वर्तमान में शुभाशुभ आचरण के द्वारा भविष्य के लिए नवीन गोत्र कर्म का बंध होता है। यह व्याख्या पुरुषार्थ की अपेक्षा से है जो वर्तमान में अंतर्मुहूर्त के अंदर कदाचित् बदल सकती है अथवा जीवन पर्यंत भी रह सकती है। सर्वथा एकमात्र भाग्य की व्याख्या स्वीकार की जाये तो कभी भी कालांतर में योनि परिवर्तन, नीचगोत्र का उच्चगोत्र में और उच्चगोत्र का नीचगोत्र में परिवर्तन नहीं हो सकता है क्योंकि यदि नीचगोत्र का उदय है तो तदनुकूल ही परिणाम होकर पुनः नीचगोत्र कर्म का ही बंध होगा। इसी तरह उच्चगोत्र का उदय है तो तदनुकूल ही परिणाम होकर पुनः उच्चगोत्र का ही बंध होगा तब इसे संयम की आराधना, तप, ध्यान और मोक्ष की प्राप्ति भी असंभव होगी तथा गर्भकाल में जो माता को दोहला उत्पन्न होता है वह भी नहीं बन सकता है। माँ का दोहला भी गर्भस्थ बालक बालिका के भाग्य को बता देता है कि यह बालक बालिका ऊँच है या नीच तथा जिस रजोवीर्य से गर्भस्थ जीव के शरीर की रचना हुई है सो वह भी पूर्व के कर्म बंध को या संस्कारों को बता देता है कि इसने ऐसा कर्म किया था। यदि सर्वथा पुरुषार्थ से, आचरण से ही गोत्रकर्म की व्यवस्था स्वीकार करोगे तो गर्भावस्था में क्या शुभाशुभ आचरण किया है कि जिससे गोत्रकर्म की व्यवस्था बन सके या तो गर्भावस्था में गोत्रकर्म का अभाव मानो या किस ऊँच नीच गोत्र का उदय मानो? क्योंकि नरकों में, तिर्यंचों में, एकेंद्रियों में, विकलेंद्रियों में और मलेच्छों में एकमात्र नीचगोत्र कर्म का उदय स्वीकार किया है तथा स्वर्गों में भोगभूमिजों

में एकमात्र ऊँचगोत्र का उदय स्वीकार किया है इन स्थानों में गोत्रकर्म का परिवर्तन नहीं होता जिनके जिस कर्म का उदय है वह अंत पर्यंत वही उदय रहता है बीच में बदल नहीं सकता किंतु कर्मभूमि में आचरण की अपेक्षा गोत्रकर्म का आचरण अंतर्मुहूर्त में बदल सकता है और भाग्यानुसार गोत्रकर्म अंत पर्यंत एकसा ही रहता है बदलता नहीं।

शूद्र दीक्षा के योग्य क्यों नहीं है?

विशुद्ध कुलगोत्रस्य सद्वृत्तस्य वपुष्मतः।
दीक्षा योग्यत्वमाम्नातं सुमुखस्य सुमेधसः।।158।। आदि० पर्व 39

भावार्थ—जिसका जाति, कुल, कुलाचार, सदाचार संतान क्रम से विशुद्ध है, पवित्र है। ऐसा भव्य जीव जिनदीक्षा का पात्र होता है शूद्रों के उक्त विशुद्धी न होने से दीक्षा का पात्र नहीं है।

।।दीक्षायोग्यास्त्रयो वर्णाः।। 791।। उपा० पर्व 43

दीक्षा के योग्य तीन ही वर्ण हैं। आचार विचार और रजोवीर्य से विशुद्ध ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कुल में उत्पन्न हुये मनुष्य ही जिनदीक्षा के योग्य हैं, शूद्र कितना ही विद्वान हो, सफाई रखता हो, शारीरिक बल हो परन्तु शूद्रों की जिनदीक्षा नहीं होती है। इसी प्रकार पतित दशा, जातिच्युत, राजदण्डित, लोकदण्डित, व्याधिवान, अधम लक्षण वाला और अंगहीन पुरुष, संस्कारहीन पुरूष जिनदीक्षा का अधिकारी नहीं है।

शूद्रोऽप्युपस्कराचारवपुःशुद्ध्यास्तु तादृशः।
जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धौ ह्यात्माऽस्ति धर्मभाक्।। संयम पृ० 674

अर्थ– उच्च वर्ण से हीन शूद्र का यदि रहन सहन शुद्ध है, मद्य, मांसादि का त्यागी है तथा स्नानादि से शरीर, वस्त्रादि को पवित्र रखता है तो वह भी जिनधर्म के श्रवण करने का अधिकारी है क्योंकि जाति से हीन जीव भी कालादि लब्धि के प्राप्त होने पर श्रावकधर्म का अधिकारी होता है।

पशुपाल्यात् कृषेः शिल्पाद्वर्त्तन्ते तेषु केचन। सं० पृ० 675
शुश्रूयन्ते त्रिवर्णी ये भाण्डभूषाम्बरादिभिः।। 232।। धर्म० श्रा० अ० 9

अर्थ– तीन उच्च वर्णों में कई तो पशु पालन कर जीवन निर्वाह करते हैं, कई खेती कर, कई शिल्प विद्यादि से आजीविका चलाते हैं। जो तीनों उच्च वर्णों के मनुष्यों के या किसी के भी बर्तन, भूषण, वस्त्रादि से सेवा कर अपनी आजीविका चलाते हैं वे शूद्र हैं।

ते सच्छूद्रा असच्छूद्रा द्विधा शूद्राः प्रकीर्त्तिताः।
येषां सकृद्विवाहोऽस्ति ते चाद्याः परथा परे।।233।। धर्म० श्रा०

अर्थ– उन शूद्रों के सत्शूद्र और असत्शूद्र ये दो भेद हैं। जिन शूद्रों के स्त्रियों का एक ही बार विवाह होता है वे सत्शूद्र हैं और जिनके यहाँ पुनर्विवाह, त्यक्ताविवाह होते हैं वे असत्शूद्र हैं।

सच्छूद्रा अपि स्वाधीनाः पराधीना अपि द्विधा।
दासीदासाः पराधीनाः स्वाधीनाः स्वोपजीविनः।।234।। धर्म० श्रा०

अर्थ– सत्शूद्र स्वाधीन और पराधीन के भेद से दो प्रकार के होते हैं। दूसरों की नौकरी कर आजीविका चलाने वाले दासी दास पराधीन और स्वतंत्रता से आजीविका चलाने वाले स्वाधीन सत्शूद्र हैं।

संस्कृते देह एवासौ दीक्षा विधिरभिस्मृतः।। स्मृतिसार पत्र 24

भावार्थ—जिन भव्य जीवों के यज्ञोपवीतादि षोडश संस्कार कुल परंपरा से अविच्छिन्न चले आ रहे हैं। ऐसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही जिनदीक्षा धारण करने के अधिकारी हैं, शूद्र नहीं है।

'शौचाचारविधिमाप्तदेहं संस्कर्त्तुमर्हति।।' स्मृतिसार संग्रह

भावार्थ—आचारशुद्धि, पिंडशुद्धि, भोजनशुद्धि और सत्संस्कारों के द्वारा शरीर की शुद्धि होती है।

संस्कार—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के ही क्यों होते हैं? शूद्रों के क्यों नहीं?

विशिष्टान्वयजो शुद्धो जातिकुलविशुद्धभाक्।
न्यसतेसौ सुसंस्कारैस्ततो हि परमंतपः।। स्मृतिसार संग्रह 24

भावार्थ—अतिशय पुण्योदय से जिनको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का विशुद्ध जाति, कुल प्राप्त है ऐसे उच्च कुलोद्भव उच्च संस्कारों को और परम तप को प्राप्त होते हैं।

जातिकुलविशुद्धो हि देहसंस्कारसंयुतः।
पूर्वसंस्कारभावेन पूजायोग्यो भवेन्नरः।। स्मृतिसार

भावार्थ—जाति, कुल से विशुद्ध, शरीर षोडश संस्कारों से युक्त, पूर्व भव के उच्च संस्कारों की भावना से युक्त मनुष्य जिनपूजा के योग्य होता है।

पतिता जातिभिर्लोके पतिता ये चरित्रतः।
पतिताः कुलधर्माच्च संस्कारेनाधिकारिता।। स्मृतिसार

अर्थ :—लोक में जो जाति से, चारित्र से, कुल और धर्म से पतित हैं उनको संयम रूप संस्कारों का अधिकार नहीं है और यज्ञोपवीतादि षोडश संस्कारों से युक्त भव्य जीव जिनपूजा का अधिकारी होता है। यदि अस्पर्श शूद्र का मुनि को स्पर्श हो जावे तो मुनि को मस्तक से पाँव तक दंड स्नान करना पड़ता है। यदि जिनप्रतिमा को स्पर्श कर ले तो उस प्रतिमा का पुनः मंत्र विधि पूर्वक संस्कार कराना पड़ता है, अस्पर्श शूद्र के घर पर मुनि भूल से चला जावे तो मुनि को पूर्ण प्रायश्चित्त मंत्रपूर्वक आगमानुसार शुद्धि करानी पड़ती है तब शुद्धि होती है। जब शास्त्रों में शूद्र के लिये उक्त विधान बतलाया है तब शूद्रों की जिनदीक्षा कैसे हो सकती है?

संगे कापालिकात्रेयीचांडालशवरादिभिः।
आप्लुत्य दंडवत् स्नायात् जपेन्मंत्रमुपोषितः।।

भावार्थ—चांडालादि के स्पर्श होने पर मुनि को स्नान, उपवास करना और मंत्र जपना चाहिये। अस्पर्श शूद्र के घर पर अज्ञान या भूल से भोजन किया तो वमन विरेचन कराकर उग्र प्रायश्चित्त करना चाहिये। संस्कार विहीन शूद्रों को संयमपूर्वक तद्भव मोक्षमार्ग नहीं हैं। जिनागम में शूद्रों को जिनदीक्षा, दान का, अभिषेक सहित जिनपूजन करने का अधिकार सर्वथा नहीं है।

शूद्रों को संयम पूर्वक मोक्ष मार्ग का अधिकार क्यों नहीं है?

शूद्रों के सत्संस्कारों का अभाव है, सत्संस्कार हो नहीं सकते, रजस्वला, सूतक, पातक का विवेक नहीं है, मद्य, मांस, मधु का सेवन कुल परंपरा से चला आ रहा है, शूद्रों की वृत्ति अतिशय हिंसा जनक होने से निंद्य होती है, पुनर्विवाह होने से पिंडशुद्धि का अभाव होता है, सदाचार, भोजन शुद्धि आदि क्रियाओं में विवेक नहीं होता है। शूद्रों की संतान, प्रति संतान में पिंडशुद्धि और संस्कारशुद्धि का अभाव है। इसलिये शूद्र मात्र मोक्षमार्गता के साक्षात् अधिकारी नहीं हैं।

विजातीय विवाह वालों को भी सकल संयम पूर्वक मोक्ष मार्ग नहीं है।

विजातीय विवाह वाली जातियों में सकल संयम पूर्वक मोक्षमार्ग की प्राप्ति का अभाव है। विजातीय विवाह वालों को तथा इनकी संतानों को जिनदीक्षा का अधिकार नहीं है।

नाभिजातफलप्राप्तौ विजातिष्विव जायते।

विजातीय संबंध करने वाले पुरुषों को अभीष्ट (उत्तम) फल की प्राप्ति नहीं होती है।

मोक्ष मार्ग की प्राप्ति के लिये क्या करना?

अनादि कालीन मलिन पर्यायों को शुद्ध करने के लिए शुद्धि दो प्रकार की मानी है आभ्यन्तर शुद्धि और बाह्य शुद्धि। संस्कारों के द्वारा मंत्र पूर्वक शुद्धि करना सो आभ्यन्तर शुद्धि है। अष्ट मूलगुण धारण करना भोजनशुद्धि, शरीरशुद्धि, पिंडशुद्धि, आचारशुद्धि और चारित्रशुद्धि का पालन करना सो बाह्य शुद्धि है। जिनके दोनों प्रकार की शुद्धि होती है वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विजन्म द्विज कहलाते हैं। इनको मुनिदीक्षा, जिनपूजन, जिनस्पर्श, आहार आदि मोक्ष मार्गकी समस्त क्रियाओं को करने का पूर्ण अधिकार है, साक्षात् मोक्ष मार्गकी पात्रता है।

अदीक्षार्हे कुले जाता विद्याशिल्पोपजीविनः।
एतेषामुपनीत्यादिसंस्कारो नाभिसंमतः।।170।। आदि० सर्ग 40

भावार्थ–अदीक्षा के योग्य शूद्र कुल नीच व्यापार करने वाले को यज्ञोपवीतादि संस्कार नहीं होते हैं इसलिये शूद्रों को मुनिदीक्षा की साक्षात् प्राप्ति नहीं होती है।

प्र.4–जिनागम में और श्रीमान पं० प्रवर आशाधरजी ने सच्छूद्र के यहाँ पर मुनिगणों को आहार ग्रहण करना बतलाया है सो सच्छूद्र मुनिगणों को आहार दान और भगवान की पूजा अभिषेक कर सकता है क्या? सच्छूद्र के यज्ञोपवीत आदि संस्कार होते हैं क्या? सच्छूद्र त्रिवर्ण वाला होता है या शूद्र का ही उपभेद है? इत्यादि बहुत से प्रश्नों का खुलासा करना परमावश्यक समझ कर संक्षेप में यहाँ लिखते हैं?

उत्तर–

सकृद्विवाहनियताः व्रतशीलादि सद्गुणाः।
गर्भाधानाद्युपेता ये सच्छूद्राः कृषिजीविकाः।।
अणुव्रत पुराधृत्वा महाव्रत पदोद्यताः।
द्विजातयस्त्रिवर्णोत्था शूद्रा येणुव्रतार्चिताः।।
पात्रदानं च सच्छूद्रैः क्रियते विधि पूर्वकः।
शीलोवासदानार्चाः सच्छूद्राणां क्रियाव्रतैः।।

(श्री माघनंदितनूभव कुमुदचन्द्र विरचित संहितायां चतुर्थ परिच्छेदे)

भावार्थ– सच्छूद्र का लक्षण और कार्य बतलाते हैं–जिनके यहाँ नियम से स्त्रियों का एक ही बार विवाह संस्कार होता हो, जिनके वंश में कभी पुनर्विवाह नहीं हुआ है, व्रत, शीलादि गुणों से सम्पन्न हों, जिनके गर्भाधानादि समस्त संस्कार नियम पूर्वक होते हों, जो मूलगुणादिक, अणुव्रतों को धारण करने वाले हों, महाव्रत जिनलिंग धारण करने में तत्पर हों, जो शील, उपवास, दान पूजादि समस्त पुण्य कर्म करते हों ऐसे द्विजन्मा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीन वर्णों में से कोई भी हों, जो कृषि आदि से आजीविका करते हों वे कर्म से सच्छूद्र हैं परन्तु वे जाति, कुल और पिंडशुद्धि से उत्तम त्रिवर्ण हैं। इस प्रकार तीन वर्णों में जिनकी आजीविका असि आदि से है वे सब सच्छूद्र कर्म से माने हैं। उनके यहाँ पर विधि पूर्वक मुनिगण आहार ले सकते हैं।

प्र.5–यहाँ पर खेती करने वालों को सच्छूद्र क्यों कहा जबकि ''उत्तम खेती मध्यम वणिज जघन्य चाकरी जान'' इसमें खेती करने वालों को उत्तम कहा है यदि खेती करने वाले सच्छूद्र हैं तो क्या चक्रवर्ती आदि सच्छूद्र थे?

उत्तर–खेती करने वालों को सच्छूद्र नहीं कहा है किंतु खेती करने वालों के यहाँ बिना सोचे समझे नौकरी कर आजीविका चलाने को सच्छूद्र कहा है क्योंकि विवेकहीन होकर बिना समिति के निरपराधी जीवों की विराधना करना ही शूद्रपना है। यदि केवल खेती से आजीविका चलाने वालों को सच्छूद्र कहा जाये तो सभी राजा, महाराजा, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ आदि को भी गृहस्थावस्था में सच्छूद्र मानने का प्रसंग आयेगा किंतु ऐसा नहीं है, विवेक सहित सावधानी पूर्वक, समिति पूर्वक जीव रक्षा करते हुये, कीट नाशक दवाईयों का प्रयोग न करते हुये खेती करने में स्वाधीनता है, स्वतंत्रता है तब संकल्पी हिंसा कैसे? सच्छूद्रपना कैसे?

भगवान इन्द्रनंदी ने कितनी ही अधम आजीविकायें बतलाई हैं वे अधम आजीविकायें कितनी तो अधिक हिंसा रूप एवं विकृत हैं और कितनी ही आजीविकायें साधारण रूप से अधम हैं? जिनके अधम आजीविकायें (रोजगार धंधा) हैं परन्तु जाति, कुल और कुलाचार परमोत्कृष्ट है ऐसे अधम आजीविका करने वालों को आजीविका निमित्त से सच्छूद्र कहा जाता है अथवा जिस आजीविका संबंधी कार्यों में, भोजनपान में, शृंगार अलंकार में संकल्पी हिंसकों को तथा संख्यात, असंख्यात और अनन्त जीवों की विराधना करने वालों को सच्छूद्र कहा है।

सच्छूद्र शूद्र का उपभेद नहीं है। अधम आजीविकाओं का त्याग करने के बाद सच्छूद्र के समस्त संस्कार विधि पूर्वक होते हैं। वे त्रिवर्ण ऊँचगोत्री हैं, जिनलिंग धारण करने के पात्र हैं, पूजा और दान के पूर्ण अधिकारी हैं। हाँ, शूद्र को काय से कृत भंग के द्वारा दान देने का सर्वथा अधिकार नहीं है किंतु 107 भंगों से दे सकता है– इस विषय का एक प्रमाण उत्तर पुराण का देना है यद्यपि पद्मपुराण में कितने ही प्रमाण इस विषय के उपलब्ध होते हैं परन्तु प्रकरण बढ़ जाने के भय से एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा।

प्रीतिंकरः पुरेचर्यां यातं स्वगृहसन्निधौ।
गणिकाबुद्धिषेणाख्या प्रणम्य विनयान्विता।।259।।
दानयोग्यकुला नाहमस्मीत्यात्मानमुच्छुचा।
निंदंती बाढ मप्राक्षीत्मुने कथय जन्मिनाम्।।260।। उ० सर्ग 59

भावार्थ–श्री प्रीतिंकर मुनिराज आहार के लिये नगर में गये। जब उनको अपने घर के समीप आते हुये देखकर बुद्धिषेणा नाम की गणिका बड़ी भक्ति से विनय सहित बार बार नमस्कार कर कहने लगी कि हे मुनिराज! मेरी जाति दान देने के योग्य नहीं है इसलिये मुझे बड़ा दुःख है। मैं अपने पूर्व भव के पाप कर्मों की अत्यन्त निंदा करती हूं कि जिससे मुझे यह नीच कुल की प्राप्ति हुई। हे भगवन! अब मेरे पूर्व भव कहो। बुद्धिषेणा वेश्या थी इसलिये उसने अपने को दान योग्य कुलहीन समझकर अपने पाप कर्मों की निंदा करती हुई पूर्व भव की बात पूछी। हे भगवन! मुझे वेश्यापने की प्राप्ति किस कर्म से हुई है? इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि शूद्र को काय से कृत दान देने का अधिकार नहीं है। इसलिये जो लोग शूद्र की शुद्धि कर रोटी बेटी व्यवहार का प्रचार कर मोक्ष मार्ग का नाश करना चाहते हैं

प्र.6–शूद्र के हाथ का भोजन पान गृहस्थों को करना चाहिये या नहीं?

उत्तर–

शूद्रलोकस्य ये धाम्नि रक्षेत ते कथंमताः।
खानपानादिकर्मार्थं श्रावकास्तत्समाः खलु ।।124।। पृ० 25
शूद्राणां न विवेकोस्ति मरणे जन्मनि रजो।
मद्य मांसादिखाद्ये च रोमचर्मे बुधाः खलु ।।125।। पृ० 26
यत्र नास्ति क्रियाशुद्धिः क्रियालेशोपि नास्ति च।
अतो धर्मस्य रक्षार्थं पालयध्वं वरां क्रियाम्।।126।।
निद्यं स्यात्सर्वमासेयु न्यादपानादिकं खलु।
शूद्रकरेण संस्पृश्यं सदाचार विनाशकम् ।।133।। सूर्य प्रकाश

भावार्थ–जो लोग अपने घरों में शूद्र लोगों को रखकर उनके हाथ का पानी पीते हैं या उनके हाथ से स्पर्शित वस्तु का सेवन करते हैं वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य भी शूद्र के समान ही हैं। 124 शूद्रों के हाथ का स्पर्श किया हुआ भोजन पान सेवन करना सर्वकाल निंद्य है। सदाचार का नाश करने वाला है। सूतक पातक का, रजस्वला स्त्री से खानपान की वस्तुओं को स्पर्श कराने का, मद्य, मांस का तथा चर्म आदि के पात्रों में रखे हुये खाद्य पदार्थों के सेवन का विवेक नहीं है। शूद्रों के पवित्र आचरण आगम विधि से नहीं पाला जाता है इसलिये शूद्रों के हाथ का भोजन पान श्रावक धर्मात्मा भाइयों को नहीं करना चाहिये।

मद्यादिस्वादिगेहेषु पानमन्नं च नाचरेत्।
तदमत्रादि संपर्कं न कुर्वीत कदाचन।।297।।
कुर्वन्नव्रतिभिः सार्धं संसर्गं भोजनादिषु ।
प्राप्नोति वाच्यतामत्र परत्र च न सत्फलम्।।298।। उपा० सर्ग 24

अर्थ–मोक्षमार्गियों को मद्यादि सेवियों के घरों में भोजनादि नहीं करना चाहिये तथा उनके बर्तनों को भी काम में नहीं लेना चाहिये जो व्रती उनके घरों में भोजनादि करता है तो उसकी निंदा होती है और परलोक में सत्फल नहीं

मिलता। परम पूज्यपाद श्री 108 आचार्य शांतिसागरजी महाराज व उनका संघ शूद्र के हाथ का खाने पीने वाले श्रावक के यहाँ आहार नहीं लेता है। उसका कारण यही है कि शूद्र के हाथ से स्पर्शित जलादि वस्तुओं का सेवन करने से सम्यग्दर्शन का घात होता है, श्रावकों के सदाचार में मलिनता प्राप्त होती है। क्रियाओं की शुद्धि नष्ट हो जाती है। अभक्ष वस्तुओं के सेवन करने का प्रचार बढ़ता है, विवेक नष्ट हो जाता है, हिताहित का विचार लोप हो जाता है और मिथ्यात्व की वृद्धि होती है। शूद्र जल का त्याग करने से होटलों का, बाजार का, सड़ी गली वस्तुओं का, मद्य मांस से मिश्रित वस्तुओं आदि का त्याग हो जाता है जिससे तन मन धन और धर्म की रक्षा होती है। समस्त व्रतों का मूल, समस्त पवित्र आचरणों की शुद्धि का प्रधान कारण और समस्त क्रियाओं का विवेक एक शूद्र के हाथ का खाने पीने का त्याग करना है क्योंकि जैन धर्म में भोजन शुद्धि पर विशेष जोर दिया गया है।

शूद्र को पानी किस प्रकार छानना? जीवानी कहाँ पहुँचाना? इसका भी विवेक नहीं। रजस्वला अवस्था में पानी भरना आदि का विवेक न होने से शुद्धि कैसे रहेगी? यह विचार प्रत्येक श्रावक श्राविकाओं को करना चाहिये और विशेष बात यह है कि आज कल 95% जैनी भाई पानी छानना और जीवाणी पहुँचाना नहीं जानते कदाचित् **''लकीर के फकीर की तरह''** पानी छान भी लेते हैं तो जीवाणी के छन्ने को यों ही निचोड़ देते हैं या जहाँ कहीं भी डाल देते हैं या यों ही छोड़ देते हैं तब अजैन लोग क्या जानें इस संबंध में? यदि जैनी भाई प्रमादी हैं तो अजैन महाप्रमादी हैं।

संस्कार की आवश्यकता

जिस प्रकार अग्नि संस्कार के बिना मिट्टी का कच्चा घड़ा पानी आदि भरने के काम नहीं आता इसी प्रकार धर्म के संस्कारहीन पूर्व भव के पुण्योदय से ऊँचगोत्र और उत्तम शरीर प्राप्त करने वाले ऐसे बालक बालिकाएँ अभीष्ट फल प्राप्त नहीं कर पाते। अतः धर्म संस्कारों के द्वारा प्राप्त विशुद्धता ही मोक्षमार्ग की साधिका है। जैसे चावल आदि पदार्थ अग्नि से पूर्ण संस्कारित न किये जायें तो उनके सेवन करने से लाभ के बदले हानि उठानी पड़ती है वैसे ही यदि बालक बालिकाओं के संस्कार जैनधर्मानुसार न कराये जायें तो सम्यक्त्व प्राप्ति के बदले मिथ्याभावों का ही उदय रहता है और सदैव परिणामों में चंचलता होने से अग्रहीत और ग्रहीत मिथ्यात्व छूटता नहीं है। जैसे संस्कारहीन लोहा तलवार का काम नहीं करता है वैसे ही सत् संस्कारहीन बालक बालिकाएँ अपने स्वरुप को प्राप्त नहीं कर पाते। गर्भावस्था में ही संस्कारों का असर धनुर्धारी अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की तरह बालक बालिकाओं पर पड़ता है। यह प्रत्यक्ष देखा जा रहा है तो गर्भ में मल, मूत्र, पीव, मांस, रुधिर में रहने से उत्पन्न हुई मलिनता को दूर करने के लिये जन्म से ही उत्तम संस्कार कराये जायें तब बालक बालिकाओं के परिणामों में कितनी शक्ति प्रकट होगी? इसका अनुभव उसी को है कि जिसके समस्त सत्संस्कार आगमोक्त हुये हैं। सत्संस्कार आत्मा के विकार रूपी मैल को निकाल कर सम्यक्त्व और सच्चारित्र को उत्पन्न करते हैं। जिस प्रकार क्षेत्र का संस्कार करने से क्षेत्र में फल दान शक्ति उत्पन्न होती है उसी प्रकार सत्संस्कारों के द्वारा आत्म गुणों में विशुद्धता आती है जिससे संस्कार मोक्ष मार्ग के साधक हो जाते हैं। जिस प्रकार मोती के ऊपर का आवरण दूर करने पर मोती से पानी झरता है। उसी प्रकार मलिन पर्यायों की मलिनता दूर होने पर आत्म शांति प्राप्त होती है। कोई भी कार्य क्यों न किया जाय? प्रत्येक कार्य में संस्कारों की आवश्यकता नियम से होती है। गर्भस्थ बालक के संस्कार मलिन रखे जायें तो बालक मलिन विचार वाला ही उत्पन्न होगा। तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले जीव के गर्भ में आने के समय प्रथम ही देवांगनायें गर्भ संशोधन के समस्त संस्कार करती हैं ।

तह य जयंती रुचकुत्तमा य अपराजिदा जिणिंदस्स।
कुव्वंति जादकम्मं एदाओ परम भत्तीए।।176।। ति० अधि०5 पृ० 42

अर्थः—रुचका, विजया आदि आठ दिक्कन्यकायें उत्कृष्ट भक्ति से जिनेन्द्र का जात कर्म करती हैं।

अन्तः शुद्धिं वहिः शुद्धिं विदध्याद्देवतार्चने।।428।। यश० अ०8

जिनके मंत्र रूपी संस्कारों के द्वारा मन शुद्धि और पानी के द्वारा शरीर की शुद्धि हुई है वही जिनपूजन करे ऐसा जिनागम में बतलाया है। इसीको जिनागम में यह कहा है।

संस्कारजन्मना वाथ सज्जातिरनुकीर्त्यते।
यामासाद्य द्विजन्मत्त्वं भव्यात्मा समुपाश्नुते।।89।। आदि० सर्ग 39

जिनके संस्कार होते हैं, जो बाह्य और अभ्यंतर शुद्धि का पालन करते हैं उनको सज्जाति प्राप्त होती है और सज्जाति वाले भव्यजीव ही द्विजपने को प्राप्त होते हैं।

''यदैव लब्धसंस्कारः परं ब्रह्माधिगच्छति।।96।।''आदि० सर्ग 39

भावार्थ—जैसे जैसे इस भव्य जीव को संस्कारों की प्राप्ति होती जाती है। वैसे वैसे यह जीव परम ब्रह्म की स्वरूपता को प्राप्त होता जाता है।

निर्मलत्वं तु तस्येष्टं बहिरंतर्मलच्युतिः।
स्वभावविमलोनादिसिद्धो नास्तीह कश्चन।।101।। आदि० सर्ग 42

भावार्थ—जीवों को बाह्य शुद्धि और अभ्यंतर शुद्धि से ही निर्मलता प्राप्त होती है। बिना संस्कारों के निर्मलता प्राप्त होने की योग्यता ही नहीं होती है। जिन कुलों में संस्कार हैं वहाँ पर ही निर्मलता है, मोक्ष मार्गता है क्योंकि जीव अनादि काल से मलिन अवस्था को धारण कर रहा है इसलिये इसकी मलिनता विशेष हो रही है। वह मलिनता धर्म के संस्कारों से ही दूर हो सकती है। स्वभाव से विमलता और अनादि निधन सिद्धता द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्मों को दूर करने पर ही प्राप्त होती है और सिद्धता के लिये संस्कारों के द्वारा मोक्ष मार्ग की साक्षात् प्राप्ति की योग्यता संपादन करनी पड़ती है। तब ही जिनलिंग धारण किया जाता है।

लब्धसंस्कारां या जातिः सा सज्जातिरिहोच्यते। सज्जाति प्रकरण

भावार्थ—जिस जाति में समस्त बाह्य आभ्यंतर संस्कार जिनागम के अनुसार होते हैं वही जाति सज्जाति कहलाती है और उस सज्जाति में उत्पन्न हुआ मनुष्य ही मोक्ष मार्ग का अधिकारी है।

तत्र सज्जातिरित्याद्या क्रिया श्रेयोनुबंधिनी ।
या सा चासन्नभव्यस्य नृजन्मोपगमे भवेत् ।।82।।
स नृजन्म परिप्राप्तौ दीक्षायोग्ये सदन्वये ।
विशुद्धं लभते जन्म सैषा सज्जातिरिष्यते ।।83
विशुद्धकुल जात्यादि संपत्सज्जाति रुच्यते ।
उदितोदितवंशत्वं यतोभ्येति पुमान् कृती ।।84।।
पितुरन्वय शुद्धिर्या तत्कुलं परिभाष्यते ।
मातुरन्वयशुद्धिस्तु जातिरित्यभिलप्यते ।।85।।
विशुद्धिरुभयस्यास्य सज्जातिरनुवर्णिता ।
यत्प्राप्तौ सुलभा बोधिरयत्नोपनतैर्गुणैः ।।86।।
सज्जन्म प्रतिलंभोयमार्यावर्तविशेषतः ।
सत्यां देहादिसाम्रग्यां श्रेयः सूते हि देहिनां ।।87।।
शरीर जन्मना सैषा सज्जातिरूपवर्णिता ।
एतन्मूला यतः सर्वाः पुंसामिष्टार्थ सिद्धयः ।।88।।
संस्कारजन्मना चान्या सज्जातिरनुकीर्त्यते ।
यामासाद्य द्विजन्मत्त्वं भव्यात्मा समुपाश्नुते।।89।।
शुद्ध संस्कारसंभूतोमणिः संस्कारयोगतः ।
यात्युत्कर्षं यथात्मैवं क्रियामंत्रैः सुसंस्कृतः।।90।। आदि० सर्ग 39

भावार्थ—जिन संस्कारों से, जिन क्रिया मंत्रों से भव्य मनुष्य जन्म में मोक्ष की प्राप्ति के लिये सन्नद्ध और साक्षात् कारणभूत बन जाता है वही सज्जाति है। वह सज्जाति दीक्षा योग्य श्रेष्ठ कुल में जन्म धारण करने पर जो क्रिया मंत्र और संस्कारों के द्वारा विशुद्धता प्राप्त की जाती है वही सज्जाति कहलाती है। प्रबल पुण्योदय से ऊंच गोत्र द्वारा विशुद्ध

कुल और विशुद्ध जाति में जन्म लेना सो सज्जाति है। यहाँ आदि शब्द से कुलाम्नाय आदि की विशुद्धता भी ग्राह्य है। कुल और जाति की विशुद्धता वाला मनुष्य कुलवान कहलाता है। पिता की शुद्ध वंश परंपरा कुल शुद्धि है और माता की शुद्ध वंश परंपरा जाति की शुद्धि है। इस प्रकार माता पिता के रजोवीर्य वंश परंपरागत विशुद्धि को ही सज्जाति कहते हैं। इस प्रकार की सज्जाति में जन्म धारण करने वाला भव्य जीव शीघ्र ही निर्वाण पद के योग्य होता है।

इस सज्जाति की प्राप्ति आर्यखंड में विशेष रूप से सुलभ है क्योंकि यह क्षेत्र तीर्थंकर आदि पुण्य पुरुषों का जन्म स्थान रहा है इसलिए यह भूमि अध्यात्म तत्त्व और पाप पुण्य के स्वरूप को ग्रहण करने वाली स्वभाव से ही है यहाँ पर विशुद्ध कुल और विशुद्ध जाति की प्राप्ति सुलभता पूर्वक स्वयमेव प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार विशुद्ध कुल और विशुद्ध जाति में जन्म लेने पर भी जब तक धर्म का संस्कार न किया जाय तब तक वह जीव द्विजन्मा नहीं कहलाता है। सकल संयम पूर्वक मोक्षमार्ग की सिद्धी के लिए द्विजन्मा होना परमावश्यक है। असल में द्विजन्मा वाला ही सप्त परम स्थानी है जो द्विजन्मा नहीं है उनके सज्जाति नहीं होती है क्योंकि मणि ने यद्यपि रत्नों की खानि में जन्म लिया है परन्तु उस मणि में संस्कार के बिना चमकपना नहीं है, मलिन है। संस्कार हो जाने पर वही मणि अपने आत्म गुणों को व्यक्त करता है। इसी प्रकार उत्तम कुल और उत्तम जाति में जन्म लेने से पर्याय विशुद्ध जन्म वाली सज्जातिता अवश्य प्राप्त हो गई है परन्तु संस्कारों के बिना मणि के समान अपने आत्मीय गुणों में विशेष उज्ज्वलता प्राप्त नहीं कर सकती है। मन्त्र और क्रियाओं के द्वारा विशुद्ध कुल और विशुद्ध जाति जन्मा को संस्कार कराये जाते हैं तो वह भव्य जीव अपने आत्मीय गुणों को सरलता पूर्वक उत्पन्न कर लेता है। इसीको संस्कारों का फल, कर्मभूमि का फल, मोक्षमार्ग की सिद्धि रूप द्विजन्मा और सज्जाति परम स्थान की प्राप्ति कहते हैं। अतः सज्जाति से आसन्न भव्यता और आसन्न निर्वाणता प्राप्त होती है।

सुसंस्कारविहीनस्य कर्मणि नाधिकारिता।

भावार्थ—जो जाति सुसंस्कारों से विहीन है वह मोक्ष मार्गकी प्राप्ति करने की अधिकारिणी नहीं है।

यज्ञोपवीत धारण किए बिना दान पूजा नहीं करना चाहिये।

आगम में सर्वत्र यह बतलाया है कि जनेऊ धारण किये बिना उच्च गृहस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को भी जिनपूजन करना और दान देने का अधिकार नहीं है। श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजन और मुनिगणों को दान यज्ञोपवीत धारण किये बिना कदापि नहीं करना चाहिये। जो भव्यजीव जनेऊ धारण किये बिना दान पूजनादिक सत्कर्म करना चाहते हैं या करते हैं उनको पूजा और दान के फल की पूर्ण प्राप्ति नहीं होती है बल्कि क्रियाविहीन विधि विषम फल को भी प्रदान कर देती है।

यज्ञे दानदेवपूजाकर्मणि धृतं उपवीतं ब्रह्मसूत्रं यज्ञोपवीतं अथवा यज्ञार्थं दानदेवपूजार्थं धृतं उपवीतं ब्रह्मसूत्रं यज्ञोपवीतमिति। ''उपवीतं ब्रह्मसूत्रं इति अमरः। दूसरा भाग ब्रह्मवर्ग 7 गाथा 49 पृ० 183

यज्ञोपवीत के विषय में शंकायें

यज्ञोपवीत के विषय में अनेक प्रकार के विचित्र प्रश्न सुने जाते हैं। कितने ही विद्वानों का कहना है कि यज्ञोपवीत की विधि अनादि काल से नहीं है? भरत महाराज ने ब्राह्मणों की स्थापना करते समय ब्राह्मणों को यज्ञोपवीत दिया था। कई विद्वान यह प्रश्न करते हैं कि यज्ञोपवीत (जनेऊ) मिथ्यामती ब्राह्मण ही पहनते हैं, जैनी नहीं? किसी का कहना है कि जनेऊ सूत का तागा है इसके धारण करने से क्या लाभ? कोई ऐसा भी कहते हैं कि जनेऊ जैनधर्म के किसी भी ग्रन्थ में नहीं बतलाया है जैनधर्म में जनेऊ का क्या काम? यह तो सब मिथ्यामत की बात है। यद्यपि उक्त प्रश्नों पर विचार किया जाये तो समस्त प्रश्न निःसार हैं। जैनागम का यथार्थ परिज्ञान नहीं होने से ये सब अपने मन की परिकल्पनायें हैं। कितने ही मिथ्यादृष्टि जैनों का एक आशय यह भी है कि जनेऊ को मिथ्यामत वाले ब्राह्मण धारण करते हैं जैन नहीं? जैनमत में जनेऊ का विधान ही नहीं है। कहीं तागों में धर्म होता है? इस प्रकार भोली और मीठी बात बनाकर भोली समाज को जगन्नाथ के भात के रूप में ले जाना चाहते हैं परन्तु एक यह जनेऊ का संस्कार उनके कार्य की सफलता में विघ्नकारक है। इससे उनके एकमेक करने रूप कार्य में बड़ी भारी बाधा होती है। अस्तु! संसार में सब प्रकार के विचारक हैं परन्तु यथार्थ और सत्य विचार निर्भयता के साथ जिनागम द्वारा करने से सबका भ्रम दूर होकर यथार्थ सम्यग्ज्ञान अवश्य ही हो जाता है अतः उक्त प्रश्नों का समाधान करते हैं—

यज्ञोपवीत की अनादिता

जैनधर्म अनादि होने से जैनधर्म की क्रियायें और संस्कार भी अनादि निधन है क्योंकि जब तीर्थंकर और इनका उपदेश भी अनादि है तभी तो मोक्षमार्ग है तथा यज्ञोपवीत संस्कार भी अनादि है। जैन धर्म की अनादि निधन प्रवृत्ति विदेह क्षेत्र और स्वर्गलोक में है अथवा सम्यक् रत्नत्रय युक्त चौथा गुणस्थान चारों गतियों में पाया जाता है। तभी 43 प्रकृतियों का संवर होता है अन्यथा सम्यक्चारित्र के अभाव में 43 प्रकृतियों का संवर बन नहीं सकता है। विदेह क्षेत्र में शाश्वत धर्म निराबाध प्रचलित है। वहाँ पर कालचक्र का परिवर्तन नहीं होने से तीर्थंकरों का, चतुर्विध मुनिसंघों का सद्भाव होने से जैनधर्म का नाश कदापि नहीं होता है। सदैव तीर्थंकर सर्वज्ञ प्रभु अनन्त चतुष्टय सहित समवशरण में विराजमान रहते हैं। मुनिगण निरंतर अपनी अनेक प्रकार की ऋद्धियों सहित विराजमान रहते हैं और वहाँ पर एकमात्र जैनधर्म सदैव विद्यमान रहता है अन्य मत वहाँ पर नहीं हैं। ये सब बातें तिलोयपण्णत्ति में स्पष्ट रूप से सर्वत्र बतलाई हैं। इस विषय में किसी को न शंका है न बाधा है। विदेहक्षेत्र में यज्ञोपवीत और समस्त संस्कार क्षत्रिय वैश्यों के निरंतर होते ही हैं वहाँ पर सब अपने अपने संस्कार निश्चय रूप से करते और कराते हैं। तभी तो विदेहक्षेत्र को कर्मभूमि कहा है। प्रमाण–

प्राक् प्रच्युत्याच्युताधीशोद्वीपेस्मिन्प्राग्विदेहके।
विषये मंगलावत्यां स्थानीये रत्नसंचये।।37।।
राज्ञः क्षेमंकराख्यस्य कृतपुण्योभवत्सुतः
श्रीमान् कनकचित्रायां भासो वा मेघविद्युतोः।।38।।
आधानप्रीति सुप्रीतिधृतिमोदप्रियोद्भवः।
प्रभृत्युक्त क्रियोपेतो धीमान् वज्रायुधाह्वयः।।39।।
तन्मातरीव तज्जन्मतोषः सर्वेष्वभूद्बहुः।।
भवेच्छचीशदिश्येव किं प्रकाशोंऽशुमालिनः।।40।। उ० पर्व 63

भावार्थ–अपराजित का जीव जो इन्द्र हुआ था वह पहले च्युत हुआ और इसी जम्बूद्वीप संबंधी पूर्व विदेहक्षेत्र के रत्नसंचय नामक नगर में राजा क्षेमंकर की कनकचित्रा नाम की रानी से वज्रायुध नाम का पुत्र हुआ। जब यह उत्पन्न हुआ था तब आधान, प्रीति, सुप्रीति, धृति, मोद, प्रियोद्भव आदि क्रियायें की गईं थी। उसके जन्म से उसकी माता के ही समान सबको बहुत भारी संतोष हुआ था। सो ठीक ही है क्योंकि सूर्य का प्रकाश क्या केवल पूर्व दिशा में ही होता है?

इस प्रकार विदेह क्षेत्र में यज्ञोपवीतादि संस्कार सब कोई नियम रूप से करते हैं।

दूसरा प्रमाण–

श्रीमान श्रीपाल महाराज चक्रवर्ती ने पुंडरीक नगरी अपनी राजधानी में यज्ञोपवीत धारण किया।

मयोपनयने ग्राहि व्रतं गुरुभिरर्पितम्।
मुक्त्वा गुरुजनानीतां स्वीकरोमि न चापराम्।।41।। आदि० पर्व 47

श्रीमान श्रीपाल महाराज अपने विचार प्रकट करते हैं कि मैंने गुरु से यज्ञोपवीत और व्रतों को धारण किया है। अब मैं गुरुजनों से प्राप्त विवाहिता स्त्री को छोड़कर अन्य स्त्री को कदापि स्वीकार नहीं करूंगा। इस श्लोक में जैनधर्म की कितनी महत्व की बातें हैं? शादी गुरुजन पितादि ही कराते थे। सबको स्वतंत्रता पूर्वक ग्रहण करने का धर्म विदेहक्षेत्र में नहीं है। दूसरी बात यह बड़े ही महत्व की है कि श्रीपाल महाराज कहते हैं कि मैंने यज्ञोपवीत धारण किया है। मैं अन्य स्त्री को कैसे स्वीकार करुं? अहा! यज्ञोपवीत का कितना परमोत्कृष्ट माहात्म्य है? जो लोग जनेऊ को तागा समझते हैं उनको अवश्य ही विचार करना चाहिये।

तीसरा प्रमाण–

धनरथ जिनराज तीर्थंकर का पूर्व विदेह क्षेत्र में युवराज मेघरथ को उपदेश–

सिंहासने समासीनं सुरासुरपरिष्कृतं।
समस्तपरिवारेण त्रिःपरीत्याभिवंद्य च।।298।।

सर्वभव्य हितं वाँच्छन् पप्रच्छोपासकक्रियाम्।
प्रायः कल्पद्रुमस्यैव परार्थं चेष्टितं सताम्।।299।।
प्रागुक्तैकादशोपासकस्थानानि विभागतः।
उपासकक्रिया विद्धोपासकाध्ययनाह्वयम् ।।300।।
अंगं सप्तम माख्येयँ श्रावकाणां हितैषिणाँ।
इति व्यावर्णयामास तीर्थकृत्प्रार्थितार्थकृत् 301।।
गर्भान्वय क्रियाः पूर्वं ततो दीक्षान्वय क्रियाः।
कर्तान्वय क्रियाश्चान्या तत्संख्यानुतत्त्वतः।।302।।
गर्भाधानादिनिर्वाणपर्यन्ताः प्रथमक्रियाः।
प्रोक्ताः सत्यस्त्रिपंचाशत्सम्यग्दर्शन शुद्धिषु।।303।। उ० पर्व 63

भावार्थ—सपरिवार राजा मेघरथ ने सिंहासन पर विराजमान सुरासुरों से परिवृत धनरथ तीर्थंकर भगवान के दर्शन किये, तीन प्रदक्षिणायें दीं, वंदना की और समस्त भव्य जीवों के हित की इच्छा करते हुये श्रावकों की क्रियायें पूछी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनों की चेष्टायें कल्पवृक्ष के समान प्रायः परोपकार के लिये ही होती है। हे देव! जिन श्रावकों के 11 स्थान पहले विभाग कर बतलाये हैं उन्हीं श्रावकों की क्रियाओं का निरूपण करने वाला उपासकाध्ययन नामका 7वां अंग हित की इच्छा करने वाले श्रावकों के लिये कहिये। इस पर भगवान धनरथ तीर्थंकर कहने लगे कि श्रावकों की गर्भान्वय, दीक्षान्वय और क्रियान्वय ये तीन प्रकार की क्रियायें हैं। पहली गर्भान्वय क्रियायें गर्भ से लेकर निर्वाण पर्यंत 53 होती हैं। इस प्रकार विदेहक्षेत्र में यज्ञोपवीत संस्कार की प्रवृत्ति निरंतर है। श्री अरहनाथ और श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के समय विदेहक्षेत्र के वर्णन में संस्कारों का वर्णन है।

चौथा प्रमाण

श्री ऋषभदेव राजा ने विदेहक्षेत्र में जो वर्ण व्यवस्था, गर्भाधानादि संस्कार, षट्कर्म, कुलाचार की विधि और गृहस्थों के समस्त कर्तव्य हैं वे सब बतलाये। यथा—

पूर्वापर विदेहेषु या स्थितिः समवर्णिता।
साद्य प्रवर्तनीयात्र ततो जीवंत्यमूः प्रजाः।।143।। आदि० पर्व 16

भावार्थ—राजा ऋषभदेव ने अपने अवधि ज्ञान से विदेह क्षेत्र की स्थिति को जानकर गृहस्थों के उपकारार्थ समस्त रीति प्रचलित की, सबको संस्कार कराये, धर्म का स्वरूप बतलाया। श्री वृषभदेव ने भरत महाराज के समस्त संस्कार स्वयं किये।

अन्नप्राशनचौलोप नयनादीननुक्रमात्।
क्रियाविधीन् विधानज्ञः स्रष्टैवास्य निस्रष्टवान्।।164।। आदि० पर्व 15

भावार्थ—अवधिज्ञान से समस्त प्रकार की विधि, मंत्र शास्त्र, संस्कार और क्रियाओं को जानने वाले श्री ऋषभदेव ने भरत महाराज के अन्न प्राशन, चौलकर्म उपनयन आदि समस्त संस्कार स्वयं कराये। जो लोग यह कहते हैं कि जनेऊ की विधि भरत महाराज ने चलाई। उनको विचार करना चाहिये कि श्री ऋषभदेव ने अन्न प्राशन चौलकर्म (मुंडन कर्म) और जनेऊ की क्रिया बाल्यावस्था में ही भरत के समस्त संस्कार कराये। अतः निश्चित है कि भरत का बाल्यावस्था में जनेऊ संस्कार किया गया। तब भरत ने यज्ञोपवीत की विधि चलाई है ऐसा कहना सर्वथा मिथ्या है। इस श्लोक से यह भी अभिप्राय प्रकट होता है कि यज्ञोपवीत की विधि अनादि काल से है तभी तो श्री ऋषभदेव ने विदेहक्षेत्र के समस्त संस्कारों को अवधिज्ञान से जानकर अपने समस्त भरतादि पुत्रों के संस्कार कराये। भोगभूमियों में सारे संस्कारों की विधि जन्म से ही स्वाभाविक होती है, दूसरों के द्वारा नहीं कराई जाती और वर्ण व्यवस्था भी जो कर्मभूमि के अंत में थी वही व्यवस्था भोगभूमि में होती है वहाँ किसी भी प्रकार से परिवर्तन नहीं होता है क्योंकि युगलिया पैदा होते

हैं और वे ही कालांतर में पति पत्नि बनकर जीवन व्यतीत करते हैं जिससे वहाँ संकर दोष पैदा नहीं होता है इसीलिये आचार्यों ने जाति, वर्ण आदि को अनादिकालीन कहा है किंतु भोगभूमि में संस्कारों का और वर्ण व्यवस्था का प्रजा में व्यवहार नहीं होता है तभी तो श्री आदिनाथजी ने पूर्वापर विदेहक्षेत्र की संस्कार विधि, वर्णव्यवस्था और आजीविका के साधन स्वरूप षट्कर्म व्यवस्था को अवधिज्ञान से जानकर यहाँ की प्रजा के लिये प्रचलित की। यदि इन व्यवस्थाओं को केवल कल्पना मात्र काल्पनिक मानते हो तो श्री आदिनाथ जी के सम्यक् अवधिज्ञान को भी काल्पनिक मानों तो इसमें क्या दोष है क्योंकि जैसा विषय वैसा विषयी?

जिस प्रकार विदेहक्षेत्र में यज्ञोपवीत की विधि अनादिकाल से स्वयं सिद्ध है। इसी प्रकार स्वर्ग में और भोगभूमि में यज्ञोपवीत आभूषण रूप में धारण करने की विधि अनादिकाल से प्रचलित है। इन्द्र आदि समस्त देव भगवान का अभिषेक तथा पूजा बिना यज्ञोपवीत के सर्वथा ही नहीं करते हैं। यद्यपि देव और इन्द्रों के संस्कार नहीं होते हैं तथापि वे अपने जन्म से लेकर मरण पर्यंत यज्ञोपवीत को नियमित रूप से धारण किये रहते हैं।

प्र.7—जनेऊ को तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले आदि महापुरुषों ने गृहस्थावस्था में धारण किया है या नहीं? यदि उन्होंने यज्ञोपवीत धारण किया हो तो हमें धारण करना मान्य है, अन्यथा नहीं।

उत्तर—यद्यपि तीर्थंकर कुमारों की प्रवृत्ति लोकोत्तर होती है और जो कार्य तीर्थंकर कुमार कर सकते हैं वे कार्य अन्य समस्त संसारी जीव मात्र से होना असम्भव है। उनकी तुलना करना यह एक प्रकार का अज्ञान है परन्तु संसारी जीवों के कर्तव्यों से तीर्थंकर कुमारों के कर्तव्य लोकोत्तर होते हैं इसलिये तीर्थंकर कुमारों की तुलना नहीं करना चाहिये फिर भी संतोष के लिये यह स्पष्ट आगम में बतलाया है कि समस्त तीर्थंकर कुमारों ने यज्ञोपवीत धारण किया था। इसी तरह तीर्थंकर कुमार गृहस्थावस्था में उपासकाध्ययनांग के अनुसार गृहस्थ धर्म का यथेष्ट पालन करते हैं। यदि तदनुकूल आज्ञा का पालन नहीं करते हैं तो आगम की आज्ञा का उल्लंघन करने से अणुव्रती पंचम गुणस्थानवर्ती नहीं कहलायेंगे और जब बारह व्रतों में अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत का पालन नहीं करते हैं तो प्रतिज्ञा क्यों की, संकल्प क्यों किया? आजकल कोई व्रती श्रावक दानादिक नहीं देवे तो उसे क्या कहेंगे? मुनियों की वंदना नहीं करे तो क्या कहेंगे? यहाँ पर प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने यज्ञोपवीत धारण किया था इतना ही प्रमाण पर्याप्त है। कहा भी है।

नाभिराजः स्वहस्तेन मौलिमारोपयत् प्रभोः।
महामुकुट बद्धानामधिराड् भगवानिति।।232।।
स्रग्वी सदंशुकः कर्णद्वयोल्लसित कुण्डलः।
दधानुमुकुटं मूर्ध्ना लक्ष्म्याः क्रीडाचलायितम्।।234।।
कंठेहार लतां विभ्रत् कटिसूत्रं कटीतटे।
ब्रह्मसूत्रोपवीताँगः स गांगौघमिवाद्विराट्।। 235।।
कटकांगदकेयूरभूषितायतदोर्युगः।
पर्युल्लसन्महाशाखः कल्पशाखीव जंगमः।।236।। आदि० पर्व16

भावार्थ—महामुकुटबद्ध राजाओं के अधिपति भगवान ऋषभ देव ही हैं यह कहते हुये महाराज नाभिराय ने अपने मस्तक का मुकुट अपने हाथ से उतार कर कुमार आदिनाथ भगवान के मस्तक पर धारण करा दिया। उस समय भगवान् मालायें पहने थे, उत्तम वस्त्र धारण किये हुये थे, दोनों कानों में कुण्डल सुशोभित हो रहे थे, मुकुट धारण किये हुये थे, कंठ (गला) में दिव्य हार शोभा दे रहा था, कमर में करधनी थी और वक्षस्थल पर परम पवित्र यज्ञोपवीत था इसलिये वे ऋषभदेव भगवान मेरु पर गंगा की धारा के समान शोभा दे रहे थे। उनकी दोनों लम्बी भुजायें कड़े बाजू बंध और अनंतादि आभूषणों से विभूषित थीं। उन भुजाओं से शोभायमान बड़ी बड़ी शाखाओं से सहित चलता फिरता कल्पवृक्ष ही हो। यज्ञोपवीत समस्त महान पुण्य पुरुषों ने धारण किया है, न कि ब्राह्मणों ने ही, यज्ञोपवीत की विधि भरत महाराज ने प्रचलित की थी तो ऋषभदेव भगवान ने कैसे धारण किया? यज्ञोपवीत मिथ्यात्वी लोगों ने चलाया है जैनागम में कहीं विधान नहीं है ऐसे प्रश्न करने वालों को विचार करना चाहिये कि विदेहक्षेत्र में यज्ञोपवीत अनादिकाल से है।

सकलकीर्ति आ० ने उत्तर पुराण में **"तत्र विदेह गर्भाधानादि क्रियाणां च प्रवृत्तिः सनातनी अनादिनिधना"** इससे स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत जैनधर्म का मुख्य धर्म है। वह अनादि काल से है और अनंतानंत काल में भी उसका नाश नहीं होगा। मिथ्यादृष्टि लोगों ने कुछ बातें जिनागम से ले ली हैं परन्तु हम लोग अज्ञानता से जिनागम के स्वरुप को भूल गये हैं और मिथ्या धर्मों को सत्य मानने लगे हैं। यह भाव मिथ्यात्व जीवों को ऐसी ही बुद्धि करा देता है।

प्र.8–श्री ऋषभदेव के समय यज्ञोपवीत की विधि थी परन्तु श्री महावीर स्वामी के समय नहीं थी इसलिये आज नहीं है अतः ऐसा है क्या?

उत्तर–यद्यपि यज्ञोपवीत की विधि अनादिनिधन है और समस्त संस्कार प्रत्येक तीर्थंकर कुमारों ने धारण किये और बतलाये। संस्कारहीन कुलों में तीर्थंकर भगवान जन्म ही धारण नहीं करते हैं। फिर भी महावीर स्वामी के समय संस्कार थे या नहीं? ऐसे प्रश्न व्यर्थ हैं तो भी आगम में इसका पूर्ण खुलासा है। जीवंधर कुमार के समस्त संस्कार गंधोत्कट सेठ ने कराये थे–

तस्यान्यदा वणिग्वर्यः कृतमंगलसत्क्रियः।
अन्नप्राशनपर्यंते व्याधात् जीवंधराभिधाम्।।250।। उ० पर्व 75

भावार्थ–जीवंधर कुमार के अन्नप्राशन आदि संस्कार सेठ गंधोत्कट ने मंगल पूर्वक और समस्त उत्तम क्रियाओं के साथ किये। इससे यह भी बात सिद्ध होती है कि वैश्य और क्षत्रियों के भी समस्त संस्कार जिनागम के अनुसार होते थे। ब्राह्मणों के ही संस्कार होते हैं ऐसा मानना ठीक नहीं है फिर भी ब्राह्मण कौन होते हैं? क्या जो आजकल ब्राह्मण हैं वे जैनागम के अनुसार सही हैं। जैनाचार्यों ने जैनागम में संस्कार युक्त त्यागी, व्रतियों को ही ब्राह्मण कहा है, अन्याय, अभक्ष्य का सेवन करने वाले तथा सत्संस्कार हीन त्यागी, व्रतियों को नहीं। इस प्रकार महावीर स्वामी के समय समस्त संस्कार प्रचलित थे।

सच्चा जैन कौन है?

जिनके गर्भाधानादि सत्संस्कार होते हैं वह तो सच्चा जैन है, मोक्षमार्ग का अधिकारी है परन्तु जिनके सत्संस्कार नहीं हैं या मिथ्या, काम भोग के, विषय भोगों के, वैर विरोध के संस्कार हैं वह जैन कुल में उत्पन्न होने पर भी नाम मात्र का जैन है। वास्तविक जैन न होने से मोक्ष मार्ग का अधिकारी नहीं हैं। वास्तव में जैनधर्म क्षत्रिय धर्म ही है क्योंकि जितने पुण्य पुरुष और शलाका पुरुष हुये हैं वे सब क्षत्रिय थे तो इनकी आज्ञा का पालन करने वाले कर्मठ वीर पुरुष और इनकी सन्तानें क्षत्रिय कहलायेंगी। जैसे क्षत्रिय राजा राजकुमार रणक्षेत्र से पलायनवादी नहीं होते, डरकर, पीठ दिखाकर भागते नहीं किंतु मरण स्वीकार कर लेते हैं ऐसे ही वास्तविक जैन अपने व्रत, नियमों के कष्टों से डरकर भागते नहीं किंतु उपसर्ग, परीषहों के आने पर कर्मठ होकर ध्यान, साधना से मरण स्वीकार कर लेते हैं किंतु पलायनवादी नहीं होते। इस कारण जैनधर्म ही क्षत्रिय धर्म है।

द्विर्जातो हि द्विजन्मेष्टः क्रियातो गर्भतश्च यः।
क्रियामंत्रविहीनस्तु केवलं नामधारकः।।48।। आदि० पर्व 38

भावार्थ– मोक्षमार्ग का अधिकार द्विजन्मा को ही है, अन्य को नहीं है। जिसका जन्म गर्भ और सत्संस्कारों से मंत्र क्रिया पूर्वक हुआ है वही द्विजन्मा है, क्रिया मंत्र के बिना नाम मात्र का जैन है।

जातिः सैव कुलं तच्च सोऽसि योऽसि प्रगेतनः।
तथापि देवतात्मानमात्मानं मन्यसे भवान्।।110।।
दीक्षां जैनीं प्रपन्नस्य जातः कोऽतिशयस्तव।
यतोऽद्यापि मनुष्यस्त्वं पादचारी महीं स्पृशन्।।112।।
श्रूयतां भो द्विजं मन्य त्वयाऽस्मद्दिव्यसंभवः।
जिनो जनयिताऽस्माकं ज्ञानं गर्भोऽति निर्मलः।।114।।
तत्रार्हतीं त्रिधाभिन्नां शक्ति त्रैगुण्यसंश्रिताम्।

स्वसात्कृत्य समुद्भूता वयं संस्कारजन्मना।।115।।
अयोनि संभवास्तेन देवा एव न मानुषाः।
वयं वयमिवान्येपि संति चेद् ब्रूहि तद्विधान्।।116।। आदि० पर्व 39

भावार्थ–कोई जैनेतर जैन त्यागी, व्रती से कहे कि तेरी वही पवित्र जाति, वही पवित्र कुल है और तू भी वही है जो पहले था तथापि तू अपने आपको देवता मानता है। 110 जैनी दीक्षा धारण करने से तुझे कौन सा अतिशय प्राप्त हो गया है? क्योंकि अब भी तू मनुष्य ही है और पृथ्वि को स्पर्श करता हुआ पैरों से ही चलता है। 112 हे अपने आपको द्विज मानने वाले जैनेतर ! तू मेरा दिव्य जन्म परिचय सुन। श्री जिनेन्द्र देव मेरे पिता हैं और सम्यग्ज्ञान ही मेरा गर्भ है। 114 उस गर्भ में उपलब्धि, उपयोग और संस्कार इन तीन गुणों के आश्रित रहने वाली जो अरहंत देव संबंधिनी रत्नत्रय ये तीन भिन्न भिन्न शक्तियाँ हैं उन्हें अपने आधीन कर हम संस्कार रूपी जन्म से उत्पन्न हुए हैं। 115 हम लोग बिना योनि से उत्पन्न हुए हैं इसलिए देव ही हैं मनुष्य नहीं। हमारे समान जो भी हैं उन्हें भी तू देव ब्राह्मण कह, समझ। 116 यही बतलाते हैं।

स्वायंभुवान्मुखाज्जातास्ततो देवद्विजा वयं।
व्रतचिह्नं च नः सूत्रं पवित्रं सूत्रदर्शितम्।।117।।
शरीर जन्म संस्कार जन्म चेति द्विधा मतं।
जन्मांगिनां मृतिश्चैवं द्विधाम्नाता जिनागमे।।119।। आदि० पर्व 39

भावार्थ–हम लोग स्वयंभू के मुख से उत्पन्न हुए हैं इसलिए देव ब्राह्मण हैं और हमारे व्रतों का चिह्न पवित्र सूत्र यज्ञोपवीत है। 117 जीवों के 1. शरीर जन्म 2. संस्कार जन्म ये दो भेद हैं। इसी प्रकार जैन शास्त्रों में मरण भी पहला धर्म सहित और दूसरा धर्म रहित दो प्रकार से माना गया है।

शरीर मरणं स्वायुरन्ते देहविसर्जनम्।
संस्कार मरणं प्राप्तव्रतत्यागः समुज्झनम्।।122।। आदि० पर्व 39

अर्थ–अपनी आयु के अंत में शरीर का परित्याग करना तद्भव शरीर मरण है तथा व्रती पुरुषों का पापों का परित्याग कर सल्लेखना मरण संस्कार मरण है।

बाल्य एव ततोभ्यस्येद् द्विजन्मौपासिकींश्रुतिं।
स तया प्राप्तसंस्कारः स्वपरोत्तारको भवेत्।।180।। आदि० पर्व 40

अर्थ–बाल्यकाल से द्विजन्मा (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) औपासिक सूत्र से जिनागम में प्रसिद्ध ऐसे पवित्र संस्कारों को धारण कर स्व और पर तारक हो जाता है। मोक्षमार्ग का पूर्ण अधिकारी तीर्थरूप हो जाता है। संस्कारों का कितना माहात्म्य है कि जिस को धारण करने से तीर्थरूप स्वपर तारक यह जीव हो जाता है?

कुलावधि कुलाचाररक्षणं स्यात् द्विजन्मनः।
तस्मिन्नसत्यसौ नष्टक्रियोऽन्यकुलतां भजेत्।।181।।आदि०पर्व 40

अर्थ–अपने कुल के आचार की रक्षा करना द्विजों की कुलावधि क्रिया कहलाती है। कुल के आचार की रक्षा न होने पर पुरुष की समस्त क्रियायें नष्ट हो जाती हैं और वह अन्य कुल को प्राप्त हो जाता है। जैसा की आजकल देखा जा रहा है कि जैन श्रावकगण व्यापार के लिए विदेशों में जाकर वहीं के आचार–विचार, चाल चलन के अनुसार दिनचर्या बना ली और अपनी जैनत्त्व पद्धति को पूर्ण रूप से छोड़ बैठे तथा यहीं पर भी अपने घरों में अजैनों की बेटियों के साथ विवाह संबंध होने से उन्हीं का आचार विचार हो गया। अपना सब कुछ खो बैठे या अपनी बेटियों का विवाह अजैनों के साथ करने से बेटियाँ वहाँ जाकर उन्हीं का धरम पालन करने लगी और अपना जैनधर्म छोड़ दिया जो वर्तमान में सैंकड़ों उदाहरण मौजूद हैं अतः अपने अनादिकालीन जैनाचार का पालन करना चाहिये। आजकल अनेक लोग बोलने लगे हैं कि जैनों की संख्या बहुत कम है और काम भी ऐसा ही कर रहे हैं। दिन प्रतिदिन रोटी बेटी बिगाड़ते जा रहे हैं, जड़ में घुन लग रहा है, अपनी रोटी बेटी सुधारते नहीं हैं। पाश्चात्य संस्कृति में डूबते जा रहे हैं। यदि आजकल ये वक्तागण

जैन समाज को संगठित करना चाहते हैं तो सभी को अपनी मान मर्यादा, रोटी बेटी संभालना चाहिये। चालचलन, वस्त्राभूषण सुधारना चाहिये तथा परस्पर में निष्कपट, निःस्वार्थ परम प्रीति पूर्वक कंधे से कंधा मिलाकर प्रेम करने से जैनों की संख्या बढ़ सकती है, सुरक्षित रह सकती है अन्यथा धीरे धीरे जैनों का पूर्णरूप से अधःपतन होना, समाप्त होना अवश्यम्भावी है।

तदैष परमज्ञानगर्भात् संस्कारजन्मना।
जातो भवेत् द्विजन्मेति व्रतैः शीलैश्च भूषितः।।93।। आदि० पर्व 39

अर्थ–उस समय वह उत्कृष्ट ज्ञानरूपी गर्भ से संस्कार रूपी जन्म लेकर उत्पन्न होता है। व्रत और शील से विभूषित होकर द्विज कहलाता है। इस प्रकार भव्य जीवों को ऊँचगोत्र के प्रभाव से उत्तम कुल और उत्तम जाति की प्राप्ति होने पर भी जब तक धर्म के संस्कार नहीं किये जाते हैं तब तक द्विजन्मा नहीं होता है क्योंकि द्विजन्मा को ही संयम सहित साक्षात् मोक्ष मार्ग का अधिकारी माना है अन्य को नहीं।

प्र.9–यज्ञोपवीतादि संस्कारों का विधान त्रिवर्णाचार में है परन्तु आचार्यकृत न होने से प्रमाण कैसे?

उत्तर–यद्यपि समीचीन धर्म के संस्कारों का विधान क्रिया विशाल पूर्व में तीर्थंकर सर्वज्ञ केवलियों ने सूत्र रूप में किया है। फिर भी वर्तमान में प०पू० पूज्यपादाचार्य, जिनसेनाचार्य, गुणभद्राचार्य, योगींद्राचार्य (परमात्मप्रकाशकर्ता) इन्द्रनन्द्याचार्य, वामदेवसूरि, ब्रह्मसूरि इत्यादि आचार्यकृत ग्रन्थों में विधान स्पष्ट रूप से उपलब्ध है इसलिये यह बेतुका प्रश्न कुतूहल मात्र ही है परन्तु इस प्रश्न के विचार के साथ साथ प्रश्न है कि सूतक पातक की विशुद्धि, रजस्वला स्त्री की विशुद्धि, पानी छानने की विधि, भोजन की विशुद्धि के लिये खाद्य पदार्थों की मर्यादा, पिंड शुद्धि, जातिकुल शुद्धि, वैधव्य दीक्षा और प्रतिष्ठा (पंचकल्याणक संबंधी) पाठ आदि विधान के ग्रन्थ कौन कौन से आचार्यों ने बनाये हैं, प्रश्न करने वाले संस्कारों के लिये भट्टारकों के बनाये हुये ग्रन्थों से प्रतिष्ठा कराते हैं उस समय क्यों विचार नहीं करते? मतलब की बात में कौन विचार करे? परन्तु जो सन्मार्ग आगम ग्रन्थों में उपलब्ध हैं वह पक्षपात के, पंथवाद के चक्कर में पड़कर मिथ्या करने के लिये मिथ्यात्व बढ़ाया जा रहा है। वर्तमान के भट्टारकों से पूर्व के भट्टारकों की तुलना मत करो। जिस समय भट्टारकों ने ग्रंथ लिखे थे उस समय उनका आचार विचार किस प्रकार का था तथा यदि पूर्व भट्टारक और इनके ग्रंथ अप्रमाण हैं, अमान्य हैं तो उनके द्वारा प्रतिष्ठित जिनेन्द्र प्रतिमाएँ भी अमान्य, अपूज्य होने चाहिये फिर उन प्रतिमाओं को मंदिरजी में क्यों विराजमान करना, क्यों पूजना, नमस्कार करना, अर्घ चढ़ाना, दर्शन आदि क्यों करना? इन प्रतिमाओं के प्रति आदर सम्मान, भक्ति भाव करना मिथ्यात्व आराधना कहलायेगी। यदि मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषाय से भय है तो भट्टारकों के शास्त्र और प्रतिमाएँ मंदिरजी में विराजमान न कर कहीं अन्यत्र कर देना चाहिये। अतः पूर्व के भट्टारकों की दिनचर्या पर ध्यान दो अन्यथा आज के श्रावक और साधुओं से पूर्व के श्रावक और साधुओं की तुलना करोगे तो कितना अनर्थ होगा यह भी थोड़ा विचार करो? उस समय के आचार विचारों और दिनचर्या में तथा आज के आचार विचार और दिनचर्या में आकाश पाताल का या पूर्व पश्चिम जैसा अंतर है क्योंकि आजकल अनेक साधु, साध्वी, गृहत्यागी आदि परम्परागत गुरुओं से विमुख होकर ख्याति पूजा लाभ के चक्कर में पड़कर मनमाना जहाँ कहीं भी आहार लेने लगे, माँसाहारी शराबियों के हाथ का दूध पीने लगे हैं, डेरी का घी खाने लगे हैं, आटा आदि भी बिना मर्यादा का खाने लगे हैं, विदेशी तथा कंपनियों की आयुर्वेदीय दवाईयाँ भी खाने लगे हैं। यदि इन बातों पर विश्वास नहीं है तो परीक्षाप्रधानी बनकर और गुप्तचरों या खुफिया पुलिस के समान आज्ञाप्रधानी होकर सभी साधुओं के पास जाकर देख लो तब मालूम हो जायेगा। कहावत है– **"सोनो जाने कसे मानुष जाने वसे"** सोने की पहँचान, कसने से होती है तो मनुष्यों की पहँचान रात दिन अत्यंत निकट में रहने से होती है दूर रहने से नहीं।

दूसरी बात यह है कि औषधि का वर्णन वैद्यक शास्त्रों में ही होगा, ज्योतिष का वर्णन ज्योतिष के ग्रंथों में ही होगा, स्वरोदय यंत्र तंत्र आदि का वर्णन उन उन विषयों के ग्रंथों में ही होगा इसलिये क्रिया विशाल पूर्व में तथा वर्णाचार के ग्रंथों में संस्कारों का विशेष वर्णन है। वर्णाचार संबंधी ग्रंथ 15–20 आचार्यों के पृथक् पृथक् मिलते हैं। इसलिये एक वर्णाचार नकली समझा जाय सो कुछ ठीक है परन्तु सब ही वर्णाचार के ग्रंथ मिथ्या हों ऐसा कहना बड़ा ही दुस्साहस है। श्री देव शास्त्र गुरु का बड़ा भारी अपमान है। ऐसे कहने वाले पक्के मिथ्यादृष्टि और नास्तिकों के गुरु हैं वे स्वयं

सन्मार्ग को धारण नहीं करना चाहते और दूसरों को मिथ्या प्रलोभन देकर सन्मार्ग से गिरा देना चाहते हैं इसमें मिथ्यात्व कर्म का ही विशेष उदय कारण है। सच तो यह है कि जिनकी जैसी गति होने वाली है उनकी वैसी ही बुद्धि हो जाती है। **''बुद्धि कर्मानुसारिणी''** और **''जैसी गति वैसी मति।''**

यज्ञोपवीत किनको और कब धारण करना चाहिये?

यज्ञोपवीत धारण करने वाले सामान्य रूप से दो प्रकार के पात्र होते हैं। प्रथम पात्र – जो शिष्य बनकर ब्रह्मचर्य अवस्था को धारण कर गुरुकुल में रहकर विद्याभ्यास के अभिलाषी हों इनके लिये यज्ञोपवीत धारण करने की विधि अन्य है। दूसरा पात्र– जो गुरुकुल में रहने के इच्छुक नहीं हैं और किसी अनिवार्य कारण से अपना गृह भी छोड़ना नहीं चाहते हैं, जानकारी न होने से, संस्कार करने वाले प्राप्त न होने से यज्ञोपवीत समय पर धारण नहीं कर सके अथवा भरत महाराज आदि के समान, यज्ञोपवीत धारण करने की विधि प्रथम पात्र से भिन्न है।

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः।।3।।
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे।।4।। त्रैवर्णि० अ० 9 पृ० 259

अर्थ– ब्राह्मण के लड़के का गर्भ से लेकर 8वें वर्ष में, क्षत्रिय का 11वें वर्ष में और वैश्य का 12वें वर्ष में संस्कार करें। विद्यार्थी ब्राह्मण का 5वें वर्ष में, बल चाहने वाले क्षत्रियों का 6वें वर्ष में और व्यापार की इच्छा रखने वाले वैश्य का 8वें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार किया जाये।

आ षोडशाच्च द्वाविंशाच्चतुर्विंशात्तु वत्सरात्।
ब्रह्मक्षत्रविशां कालो ह्युपनयनजः परः।।5।।
अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः।
प्रतिष्ठादिषु कार्येषु न योज्या ब्राह्मणोत्तमैः।।6।। त्रै० अ० 9 पृ० 259

अर्थ–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का उपनयन संस्कार का अंतिम काल क्रमशः 16, 22, 24 वर्ष तक का है। यदि इस समय तक इनका यज्ञोपवीत संस्कार न हो सका तो इसके बाद उत्तम व्रतियों के द्वारा इनको प्रतिष्ठा आदि मंगल कार्यों में ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।

इस प्रकार यज्ञोपवीत को धारण करने वाले सामान्य रूप से दो प्रकार के पात्र हैं परन्तु जिनागम में यज्ञोपवीत के धारण करने वाले तीसरे प्रकार के पात्रों का भी वर्णन मिलता है।

जिसने अपने पूर्वभव के पुण्योदय से ऊँचगोत्र के द्वारा विशुद्ध कुल और विशुद्ध जाति में जन्म धारण किया है परन्तु मिथ्यात्व के उदय से अगृहीत गृहीत मिथ्यादृष्टि (मिथ्याधर्म को पालन करने वाले विशुद्ध कुलोत्पन्न ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य) हो रहे हैं ऐसे भव्यजीवों को धर्म की देशनादि कारणों से सत्यधर्म की प्रतीति (दृढ़श्रद्धा) हो गयी हो तो वह मिथ्याधर्म को छोड़कर जिनागम के अनुसार अपने समस्त संस्कारों से संस्कृत होता है ऐसे पात्रों के लिये संस्कारों की विधि अन्य दोनों प्रकार के पात्रों से पृथक् कही है। जैसे विशुद्ध कुल जन्मा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में भव्य मिथ्याधर्म का परित्याग कर जैनागम के अनुसार अपने और अपनी पूर्व विवाहिता स्त्री के भी समस्त संस्कार कराता है तथा <u>विवाह की वर्षगाँठ भी जैन संस्कार और क्रिया मंत्रों के द्वारा मनाता है।</u> तब वह अपनी जाति के जैनों में सम्मिलित होता है। अन्य जातियों में नहीं। इस वर्ण लाभ क्रिया का वर्णन आगम में पृथक्–पृथक् स्पष्ट बतलाया है।

<u>प्रथम पात्र के लिये यज्ञोपवीत संस्कार की विधि</u>
क्रियोपनीतिर्नामास्य वर्षे गर्भाष्टमे मता।
यत्रापनीतकेशस्य मौंजीसद्व्रतबंधना।।104।।
कृतार्हत्पूजनस्यास्य मौंजीबन्धो जिनालये ।
गुरुसाक्षि विधातव्यो व्रतार्पणपुरस्सरम्।।105।।

शिखी सितांशुकः सांतर्वासा निर्वेषविक्रियः।
व्रतचिह्नं दधत्सूत्रं तदोक्तोब्रह्मचार्यसौ ।।106।।
व्रतचर्यामहं वक्ष्ये क्रियामस्योपविभ्रतः।
कट्यूरूरः शिरोलिंगमनूचानव्रतोचितम् ।।109।।
कटीलिंगं भवेदस्य मौंजीबंधात्त्रिभिर्गुणैः।
रत्नत्रितय शुध्यंगं तद्धि चिह्नं द्विजात्मनाम् ।।110।।
तस्येष्टमूरुलिंगं च सुधौतसित शाटकम्।
आर्हतानां कुलं पूतं विशालं चेति सूचने ।।111।।
उरोलिंगमथास्य स्याद् ग्रथितं सप्तभिर्गुणैः।
यज्ञोपवीतकं सप्तपरमस्थान सूचकम् ।।112।।
शिरोलिंगं च तस्येष्टं परं मौंड्यमनाविलं।
मौंड्यं मनोवचः कायगतमस्योपबृंहयत्।।113।।
एवंप्रायेण लिंगेन विशुद्धं धारयेत् व्रतं।
स्थूलहिंसा विरत्यादि ब्रह्मचर्योपबृंहितम्।।114।। आदि० पर्व 38

अर्थ—प्रथम पात्र अपने गर्भ से आठवें वर्ष में श्री अरहंत भगवान की पूजा कर गुरु के द्वारा व्रत ग्रहण पूर्वक यज्ञोपवीत, मुंडन और मौंजी बन्धन संस्कार कराता है। अब से यह ब्रह्मचर्य अवस्था में रहकर विद्याभ्यास करने के लिये गुरुकुल में वास करता है इसलिये इसके विद्या समाप्ति पर्यन्त वेषभूषा और दूसरों को देखते ही यह प्रतीत हो जावे कि यह विद्याभ्यासी ब्रह्मचारी है। इसलिये नीचे लिखे चिह्नों को विद्या समाप्ति पर्यन्त नियम पूर्वक धारण करता है। किसी भी विशेष कारण के उपस्थित होने पर यह वेषभूषा और ब्रह्मचारी के चिह्नों को परित्याग नहीं करता है। यह ब्रह्मचारी चोटी के बिना सिर का मुंडन कराता है, बिना सिले हुए सफेद धोती दुपट्टा पहनता है, व्रतों के निरंतर स्मरण के लिये पवित्र यज्ञोपवीत धारण करता है। यज्ञोपवीत धारण करने से ही वह ब्रह्मचारी कहलाता है। इस प्रकार विद्याभ्यास करने वाले ब्रह्मचारियों का वेष सबका एक सा रहता है। कटिलिंग में मूंज की करधोनी रखते हैं और उरलिंग (छाती का चिह्न) रत्नत्रय को प्रकट करने वाला यज्ञोपवीत होता है और धुली हुई सफेद धोती दुपट्टा पहनते हैं। इस यज्ञोपवीत को रखने से उन ब्रह्मचारियों ने अरहंत भगवान के पवित्र कुल मोक्षमार्ग को धारण किया ऐसा प्रकट रूप में वे सूचित करते हैं। ब्रह्मचारियों के लिये यह यज्ञोपवीत सात लरों का बनाया जाता है सो इसके धारण करने से वे सप्तपरम स्थान को प्राप्त होंगे।

पांच प्रकार के ब्रह्मचारी होते हैं। धर्म० श्रा० अ० 6 भाग 2 पृ० 153, 154 पं०मेधावी

आश्रमाःसन्ति चत्त्वारो जैनानां परमागमे।।
ब्रह्मचारीगृहीवानप्रस्थो भिक्षुश्च संज्ञया।।15।।
अदीक्षोपनयौ गूढावलम्बौ नैष्ठिको भिधाः।
सप्तमांगे भिधाः संति पंचैते ब्रह्मचारिणाम्।।16।। ब्रह्म० के भेद

लक्षण

वेषंविना समभ्यस्तसिद्धांता गृहधर्मिणः।
ये ते जिनागमे प्रोक्ता अदीक्षा ब्रह्मचारिणः।।17।।
समभ्यस्तागमा नित्यं गणभृत् सूत्रधारिणः।
गृहधर्मरतास्ते चोपनयब्रह्मचारिणः।।18।।
कुमार श्रमणाः सन्तः स्वीकृतागमविस्तराः।

बान्धवैर्धरणीनाथै र्दुःसहैर्वा परीषहः।।19।।
आत्मनैवाथवा त्यक्तपरमेश्वररूपकाः।
गृहवासरता ये स्युस्ते गूढब्रह्मचारिणः।।20।। युग्मम्
पूर्वं क्षुल्लकरूपेण समभ्यस्यागमं पुनः
गृहीतगृहवासास्ते अवलंम्बब्रह्मचारिणः।।21।।
शिखायज्ञोपवीतांका स्त्यक्तारंभपरिग्रहाः
भिक्षाचरन्ति देवार्चां कुर्वते कक्षपट्टकम्।
धावलारक्तयोरेकतरैकवस्त्रखाण्डकम्।
धरन्ति ये च ते प्रोक्ता नैष्ठिकब्रह्मचारिणः।23।। युग्मम्
नैष्ठिकेन विना चान्ये चत्त्वारोब्रह्मचारिणः।
शास्त्राभ्यासं विधायान्ते कुर्वते दारसंग्रहम्।।24।।
प्रथमाश्रमिणः प्रोक्ता वक्ष्यन्ते त्वधुनामया।
द्वितीयाश्रमसंसक्तागृहिणो धर्मवासिताः।।25।। धर्म० श्रा० अ० 6

चारित्रसार पत्र 20 में ब्रह्मचारियों के भेद इस प्रकार बतलाए हैं।

तत्र ब्रह्मचारिणः पंचविधाः—1 उपनयावलंवादीक्षागूढनैष्टिक भेदेन। तत्र उपनय ब्रह्मचारिणो गणधरसूत्रधारिणः यज्ञोपवीतादिलिंग धारिणः समभ्यस्तागमाः गृह धर्मानुष्ठायिनो भवंति। 2 अवलम्बब्रह्मचारिणः क्षुल्लकरूपेण आगममभ्यस्य परिगृहीत गृहावासा भवन्ति। 3 अदीक्षाब्रह्मचारिणः वेषमन्तरेणाभ्यस्तागमा गृहधर्मनिरता भवन्ति। 4 गूढ़ ब्रह्मचारिणः कुमारश्रमणाः संतः स्वीकृतागमाभ्यासः बंधुभिर्दुस्सह परिषहैरात्मना नृपतिभिर्वा निरस्त परमेश्वर रूपा गृहवासरता भवंति। 5 नैष्ठिकब्रह्मचारिणः समाधिगत शिखा लक्षित शिरोलिंगाःगणधरसूत्रोपलक्षितोरोलिंगाः शुक्ल रक्त वसन खंडकौपीन लक्षित कटिलिंगाः स्नातका भिक्षायवृत्तयो देवतार्चनपरा भवन्ति।

भावार्थ—1. उपनय ब्रह्मचारी 2. अवलम्ब ब्रह्मचारी 3. अदीक्षा ब्रह्मचारी 4. गूढ ब्रह्मचारी 5. नैष्ठिक ब्रह्मचारी इस प्रकार पांच भेद हैं।

यज्ञोपवीतादि धारण कर विद्याभ्यास के बाद गृहस्थधर्म स्वीकार करने को उपनय ब्रह्मचारी कहते हैं।1। क्षुल्लक रूप में यज्ञोपवीतादि लिंग सहित विद्याभ्यास कर गृहस्थधर्म स्वीकार करने को अवलम्ब ब्रह्मचारी कहते हैं।2। यज्ञोपवीत सहित अन्य वेष के बिना विद्याभ्यास कर गृहस्थधर्म स्वीकार करने को अदीक्षा ब्रह्मचारी कहते हैं।3। मुनि का स्वरूप धारण कर बंधुओं के आग्रह से, राजा के आग्रह से, परीषह सहन नहीं होने से मुनिवेष को छोड़कर गृहस्थ धर्म स्वीकार करने को गूढ़ ब्रह्मचारी कहते हैं।4। यज्ञोपवीत सहित शिरोलिंग सहित रक्त या सफेद खंडवस्त्र कौपीन धारक को, भिक्षावृत्ति और देवपूजन करने वाले को स्नातक या नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी के 11 भेद माने हैं और इनकी पहचान के लिये क्रम से 1 से 11 लर तक के यज्ञोपवीत दिये जाते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी को छोड़कर शेष उपनय आदि 4 ब्रह्मचारी या इनके अवांतर भेदवाले ब्रह्मचारी गण अपने अपने विशेष व्रतों को छोड़कर स्त्री आदि गृहस्थ धर्म स्वीकार करते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी भी दो प्रकार के होते हैं। एक गुरुकुल में रहने वाले विद्याभ्यासी दूसरे गृह में रहकर प्रतिमा के व्रतों को पालन करने वाले। इनमें से प्रथम एक से ग्यारह प्रतिमा तक के धारक नैष्ठिक ब्रह्मचारी की पहिचान के लिये 1 से 11 लर तक के जनेऊ होते हैं और दूसरे नैष्ठिक ब्रह्मचारी के दो ही यज्ञोपवीत (जनेऊ) होते हैं। प्रथम नैष्ठिक ब्रह्मचारी 11वीं प्रतिमा का धारक देवार्चन आदि समस्त कार्य करता है। पीछी कमण्डलु ग्रहण करता है, भिक्षा वृत्ति करता है, कौपीन और खंडवस्त्र सफेद या गेरुआ होता है इसीलिये स्नातक कहते हैं।

तोषाद् संपादयामासुः संभूया नंद नाटकम्।
सप्तमोपासकाद्यास्ते सर्वेपि ब्रह्मचारिणः।।351।।

गार्हपत्याभिधं पूर्वं परमाह्वनीयकं।
दक्षिणाग्निं ततोन्यस्य संध्यासुतिसृषु स्वयम् ।352।।
तच्छिखित्रय सान्निध्ये चक्रमातपवारणं।
जिनेन्द्रप्रतिमाश्चैवास्थाप्य मंत्रपुरस्सरम्।।353।।
तास्त्रिकालं समभ्यर्च्य गृहस्थै र्विहतादराः।
भवतातिथयोयूयमित्याचख्युरुपासकान्।।354।। आदि० पर्व 47

अर्थ–सबने मिलकर आनंद नामका नाटक किया फिर श्रावकों को उपदेश दिया कि हे सप्तम आदि प्रतिमाओं के धारक सभी ब्रह्मचारियों! तुम लोग तीनों संध्याओं में स्वयं गार्हपत्य, आह्वनीय और दक्षिणाग्नि इन तीन अग्निओं की स्थापना करो तथा उनके समीप ही धर्मचक्र, चमर तथा जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाओं की स्थापना कर तीनों कालों में मंत्रपूर्वक उनकी पूजा करो। इस प्रकार गृहस्थों के द्वारा आदर सत्कार पाते हुए अतिथि बनो।

प्र.10–आदिपुराण में 11 तार के जनेऊ का विधान है सो किनको?

उत्तर–ग्यारह तार के जनेऊ पहनने का नियम ऐलक क्षुल्लक ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी गुरुकुल में रहने वाले का है परन्तु अन्य समस्त अविवाहित ब्रह्मचारी तीन तार का एक और विवाहित गृहस्थ दो ही 6 तार के जनेऊ पहनते हैं। गृहस्थ 6वीं प्रतिमा तक भी दो ही जनेऊ पहनता है।

तेषां कृतानि चिह्नानि सूत्रैः पद्माह्वयान्निधेः।
उपात्तैः ब्रह्मसूत्राह्वैरेकाद्येकादशाँतकैः।।21।।
गुणभूमिकृताद्भेदात् कल्पितयज्ञोपवीतिनां।
सत्कारः क्रियते स्मैषामव्रताश्च बहिः कृताः।।22।। आदि० पर्व 38

अर्थ–भरत महाराज ने पद्मनिधि से एक प्रतिमा से लेकर 11 प्रतिमा धारक नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को पहचानने के लिये यज्ञोपवीत दिये। इस श्लोक में **''गुणभूमिकृताद्भेदात्''** इस पद की टीका दार्शनिक आदि प्रतिमा धारक नैष्ठिक ब्रह्मचारी ऐसा अर्थ किया है इसीलिये वे हरित अंकुर पर नहीं आये अतः भरत राजा ने उनका आदर सम्मान किया तथा जो अंकुरों को रौंदते हुए, कचरते हुए अंदर चले आये उन अव्रतियों को बाहर निकाल दिया।

एकाद्येका दशांगानि दत्तान्येभ्यो मयाविभो।
व्रतचिह्नानि सूत्राणि गुणभूमिविभागतः।31।। आदि० पर्व 41

अर्थ– राजा भरत समवसरण में श्री ऋषभदेव भगवान से कहते हैं कि हे प्रभो ! मैंने दार्शनिकादि 11 प्रतिमाओं के भेद से 1 से लेकर 11 तार तक के जनेऊ व्रत के चिह्न स्वरूप दिये हैं। इन सब प्रमाणों से 11 तार का जनेऊ धारण करना नैष्ठिक गुरुकुल में विद्याभ्यासी ब्रह्मचारीगणों को बतलाया है, अन्य को नहीं।

''आयुः कामः सदा कुर्यात् द्वित्रिः यज्ञोपवीतकम्। '' त्रै०, पृ० 268, श्लोक 57

अर्थ–आयु की इच्छा रखने वाला दो, तीन यज्ञोपवीत ही धारण करे।

प्र.11–गुरुकुलों में विद्याभ्यासी ब्रह्मचारी कौन कौन से काम नहीं करता है?

उत्तर–दंतकाष्ठग्रहो नास्य न तांबूलं न चांजनं।
न हरिद्रादिभिःस्नानं शुद्धस्नानं दिनं प्रति।।115।।
न खट्वाशयनं तस्य नान्यांगपरिघट्टनम्।
भूमौ केवलमेकाकी शयीतव्रतशुद्धये।।116।।
यावद्विद्यासमाप्तिः स्यात्तावदस्येदृशं व्रतं।
ततोप्यूर्ध्वं व्रतं तत्स्यात् तन्मूलं गृहमेधिनाम्।।117।। आदि० पर्व 38

अर्थ–ब्रह्मचर्य अवस्था में उपनयादि सभी ब्रह्मचारीगण लकड़ी की दांतोन नहीं करें, न पान का खायें, उबटन न

लगायें, पलंग में तथा दूसरों के साथ चिपककर शयन आदि कार्य न करें, केवल जमीन में एकाकी शयन करें और शुद्ध जल से प्रतिदिन स्नान करें यही उनकी व्रतचर्या है जब तक ये ब्रह्मचारीगण गुरुकुल में रहकर पठन करते हैं तब तक ये व्रतचर्या के नियम पालन करते हैं। विद्या समाप्ति के पश्चात् ये उपनय आदि 4 ब्रह्मचारीगण गुरु साक्षी दंतकाष्ठ आदि समस्त व्रतचर्या का परित्याग कर, विवाह आदि कर गृहस्थों की परिचर्या को स्वीकार करते हैं।

प्र.12–गृहस्थ धर्म स्वीकार करने पर क्या वे ब्रह्मचारीगण यज्ञोपवीतादि का भी परित्याग कर देते हैं?

उत्तर–अवलंबब्रह्मचारी, अदीक्षाब्रह्मचारी, गूढब्रह्मचारी और उपनयब्रह्मचारी अवस्था का परित्याग कर गृहस्थ होते हैं। सो वे सब गृहस्थों के योग्य यज्ञोपवीतादि व्रतों को रखकर शेष "**दन्तकाष्ठ**" आदि के साथ अणुव्रतादि का परित्याग करते हैं।

सिद्धविद्यास्ततो मंत्रैरेभिः कर्मसमाचरेत् ।
शुक्लवासाः शुचिर्यज्ञोपवीत्यव्यग्रमानसः ।।81।।
सूत्रं गणधरै र्दृब्धं व्रतचिह्नं नियोजयेत् ।
मंत्रपूतमतो यज्ञोपवीती स्यादसौ द्विजः ।।158।। आदि० पर्व 40

अर्थ–जिसे विद्यायें सिद्ध हो गई हैं, जो सफेद वस्त्र पहने हुए हैं, पवित्र हैं, यज्ञोपवीत धारी हैं और जिनका चित्त निराकुल है ऐसा द्विज इन मंत्रों के द्वारा समस्त क्रियायें करें। यज्ञोपवीत रखना ही द्विज का व्रत चिह्न है। अध्ययन के बाद गृहस्थावस्था के व्रतों का यज्ञोपवीत ही चिह्न माना है।

रत्नत्रयात्मकं पूतं यज्ञसूत्रं सुनिर्मलं ।
हरिद्रागन्धसारक्त मुरोलिंगं प्रकल्पयेत् ।।24।। त्रै० अ० 9
स पंचाक्षतविक्षेपफलसंयुतमंजलिं ।।91।।
तस्याचार्यः स्वहस्ताभ्यां गृहीत्वेवमुपादिशेत् ।
मद्यमांसमधुद्यूतरात्रिभुक्त्यादि वर्जयेत् ।।93।।
वटादिक्षीरवृक्षाणां फलमन्यत्सजंतुकः ।
पटोल बदहालाक कलिंगानां फलानि च।।94।।
पुष्पशाकं शिलीन्द्रं च लसुनं हिंगु मूलकं ।
नागबल्यादिकं दूष्यं पुराणान्नादि भोजनम्।।95।।
वत्सोत्पत्तेः समारभ्य पक्षात्प्राग्दुग्ध दुग्धकं ।
गुरुरित्थं व्रतंदत्त्वा रहो मंत्रमुपादिशेत्।।96।। ब्रह्मसूरि कृत वर्णाचारे

अर्थ–दीक्षाचार्य अपने हाथों से उस ब्रह्मचारी को गृही बनाने की क्रिया करें, सबसे प्रथम हल्दी में रंगकर पवित्र रत्नत्रय स्वरूप यज्ञोपवीत पहनावे, फिर उस नवीन गृहस्थ के दोनों हाथों में चावल और फल देकर गृहस्थधर्म का उपदेश देवे और तूं आज से सम्यग्दृष्टि जैन गृहस्थ हुआ ऐसा उपस्थित जनता के समक्ष प्रकट करे तथा उसको अष्ट मूलगुण धारण करावे एवं अभक्ष्य पदार्थों का परित्याग करावे और एकांत में मंत्रों के द्वारा गृही बनने के संस्कार करें।

यावद्विद्या समाप्तिःस्यात् तावदस्येदृशं व्रतं ।
ततोप्यूर्ध्वं व्रतं तत्स्यात् यन्मूलं गृहमेधिनां।।117।।
सूत्रमौपासिकं चास्य स्यादध्येयं गुरोर्मुखात् ।
विनयेन ततोन्यच्च शास्त्रमध्यात्म गोचरम्।।118।।
मधुमांस परित्यागः पंचोदुम्बर वर्जनं ।
हिंसादि विरति श्चास्य व्रतं स्यात् सार्वकालिकम्।।122।।
व्रतावतरणं चेदं गुरुसाक्षि कृतार्चनं ।
वत्सरात् द्वादशादूर्ध्वमथवा षोडशात्परम्।।123।। आदि० पर्व 38

अर्थ—जब तक विद्या समाप्त न हो तब तक पलंग पर नहीं सोना, ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने के लिए शरीर को परस्पर में नहीं रगड़ना, भूमि पर सोना ये नियम पालन करना चाहिए और विद्या समाप्ति के बाद मूलगुणों का पालन करना चाहिये।117। सबसे पहले इन ब्रह्मचारियों को विनय पूर्वक गुरुमुख से श्रावकाचार का फिर बाद में अध्यात्मग्रंथों का अध्ययन करना चाहिये।118। मद्य, मांस, मधु का, पाँच उदुम्बर फलों का त्याग और स्थूल रूप से हिंसादिक पाँच पापों का जीवन पर्यंत के लिये त्याग करना चाहिये।122। यह व्रतावतरण क्रिया गुरु की साक्षीपूर्वक जिनेन्द्र भगवान की पूजा कर बारह अथवा सोलह वर्ष बाद करनी चाहिये। यह ब्रह्मचारी 12 वर्ष की या 16 वर्ष की अवस्था में समस्त विद्याओं का अभ्यास पूर्ण कर लेता है। विद्याभ्यास की समाप्ति पर गुरु की साक्षी गृहस्थधर्म को स्वीकार करता है। गुरु आचार्य उस नवीन गृहस्थ को सबसे प्रथम श्रावक का मुख्य चिह्नरूप यज्ञोपवीत मंत्र पूर्वक देते हैं और आठ मूलगुण धारण कराते हैं। किसी किसी को पांच अणुव्रत भी प्रदान करते हैं बस गृहस्थधर्म की यही चर्या है।

इसलिये ब्रह्मचर्य अवस्था का परित्याग करने पर गृहस्थ अवस्था में यज्ञोपवीत नहीं रहता है ऐसा मानना सर्वथा मिथ्या है। गृहस्थाचार्य के यज्ञोपवीत नियमपूर्वक रहता है।

क्रियाकलापेनोक्तेन शुद्धि मस्योपविभ्रतः।
उपनीतिरनूचानयोग्यलिंगग्रहोभवेत्।।53।।
उपनीतिर्हि वेषस्य वृत्तस्य समयस्य च।
देवतागुरुसाक्षि स्यात् विधिवत् प्रतिपालनम्।।54।।
शुक्लवस्त्रोपवीतादि धारणं वेष उच्यते।
आर्यषट्कर्मजीवित्वं वृत्तमस्य प्रचक्ष्यते।।55।।
जैनोपासकदीक्षा स्यात्समयः समयोचितं।
दधतो गोत्रजात्यादि नामान्तरमतः परम्।।56।।
ततोयमुपनीतः सन् व्रत्तचर्या समाश्रयेत्।
सूत्रमौपासिकं सम्यगभ्यस्य ग्रन्थतोर्थतः।।57।। आदि० पर्व 39

अर्थ—उपरोक्त क्रियाओं की शुद्धि को धारण करने वाले उस भव्य के उत्कृष्ट पुरुषों के योग्य चिह्न को धारण करने रूप उपनीति क्रिया होती है। 53। देवता और गुरु की साक्षीपूर्वक विधि के अनुसार अपने वेष, सदाचार और समय की रक्षा करना उपनीति क्रिया कहलाती है। 54। सफेद वस्त्र और यज्ञोपवीत धारण करना वेष कहलाता है, आर्यों के करने योग्य देवपूजादि छह कर्म करने को वृत्त कहते हैं और शास्त्रानुसार गोत्र जाति आदि के दूसरे नाम धारण करने वाले पुरुष के जैन श्रावक की दीक्षा को समय कहते हैं। 55—56। यह उपनीति नामकी 9वीं क्रिया है। तदनंतर यज्ञोपवीत से युक्त हुआ भव्य पुरुष शब्द और अर्थ दोनों से अच्छी तरह उपासकाध्ययन के सूत्रों का अभ्यास कर व्रतचर्या नाम की क्रिया को धारण करे। 57। गृहस्थाचार्य का सफेद वस्त्र और यज्ञोपवीत ही चिह्न है, वेष है। यह अन्य श्रावकों को यज्ञोपवीतादि समस्त संस्कार कराता है और षट्कर्मों के द्वारा आजीविका करता है इसको श्रावकाचार का परिपूर्ण ज्ञान होता है।

प्र.13—यज्ञोपवीत का परित्याग कब होता है?

उत्तर—गृहस्थावस्था में यज्ञोपवीत का परित्याग सर्वथा नहीं होता है किंतु जीवन पर्यंत रहता है अथवा गृहस्थावस्था में यज्ञोपवीत का परित्याग दो प्रकार से होता है एक पतन के लिये और दूसरा उत्थान के लिए। अणुव्रती, महाव्रती बनने की भूमिका के पहले यदि त्याग कर दिया तो पतन के लिये है और महाव्रती बनने की भूमिका के समय त्याग किया तो उत्थान के लिये है। प्रथम त्याग नरकगति तिर्यंचगति के लिये है, हानिकारक है तो दूसरा त्याग उर्ध्वगति के लिये है, लाभदायक है। बृहज्जिन मुनिदीक्षा विधि में बतलाया है :—

लुंचनान्ते बृहत् सिद्धभक्तिं विधाय निष्ठाप्य ततः शीर्षं प्रक्षाल्य गुरुभक्तिं कृत्वा वस्त्राभरण यज्ञोपवीतादिकं परित्यजेत्''।।

भावार्थ—केशलोंच होने के पश्चात् बृहत्सिद्धभक्ति पढ़कर, समाप्त कर, सिर को धोकर, गुरुभक्ति करके वस्त्राभूषण और

यज्ञोपवीत का परित्याग कर अंतर्मुहूर्त में मुनिपद ग्रहण करते हैं यदि मुनिदीक्षा नहीं लेना है तो गृहस्थ अवस्था में यज्ञोपवीत जीवन पर्यंत रहता है।

इत्यात्मनो गुणोत्कर्षं ख्यापयन् न्यायवर्त्मना।
गृहमेधी भवेत् प्राप्य सद्गृहित्वमनुत्तरम्।।125।। आदि० पर्व 39

अर्थ–इस प्रकार उपरोक्त यज्ञोपवीतादि संस्कारों से युक्त आत्मा के गुणों का उत्कर्ष प्रकट करता हुआ सर्वश्रेष्ठ सुद्गृहित्व अवस्था को पाकर सुद्गृहस्थ होता है।

यज्ञोपवीत धारण करने वाला द्वितीय पात्र।

जो गुरुकुल में विद्याभ्यास के इच्छुक नहीं हैं अथवा किसी विशेष कारण से गृह का परित्याग करने में असमर्थ हैं। जो विशुद्ध जाति कुल में जन्मे हैं परन्तु किन्हीं विशेष कारणों से यज्ञोपवीतादि संस्कार जिनके नहीं हुए हैं ऐसे समस्त द्वितीय पात्र हैं। यद्यपि प्रथम–द्वितीय पात्रों को यज्ञोपवीत (पृ० 29 गाथा 3–6 के अनुसार) धारण करना चाहिये जैसा कि श्री ऋषभदेव राजा ने अपने समस्त पुत्रों का तथा भरत महाराज का यज्ञोपवीत संस्कार किया था। भरत महाराज गुरुकुल में नहीं रहे थे तो भी उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ था।

अन्न प्राशन चौलोपनयनादीननुक्रमात्।
क्रियाविधीन् विधानज्ञः सृष्टैवास्य निसृष्टवान्।।164।। आदि0 पर्व 15।

अर्थ–विधि को जानने वाले श्री ऋषभदेव राजा ने भरत के अन्न प्रासन, चौल कर्म और यज्ञोपवीतादि समस्त संस्कार स्वयं किये थे।

प्र.14–भरत महाराज के ये संस्कार कब हुए?

उत्तर– इस प्रश्न का समाधान आदिपुराण में आगे के श्लोक में दिया है।

ततः क्रमभुवोबाल्य कौमारांतर्भुवो भिदा।
सोतीत्य यौवनावस्थां प्रापदानन्दिनीं दृशाम्।।165।। आदि० पर्व 15।

अर्थ–बाल्यकाल के आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार भरत का श्री ऋषभदेव ने किया। द्वितीय पात्र यदि आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत धारण नहीं करे तो अपने विवाह संस्कार के समय यज्ञोपवीत संस्कार करा लेना चाहिये। अब भी बहुत से जैनियों में विवाह के समय यज्ञोपवीत धारण करते हैं परन्तु दुःख है कि विवाह के पश्चात् वह निकालकर फेंक देते हैं। यह अज्ञानता ही यज्ञोपवीतादि संस्कारों का लोप करने का प्रधान कारण है। विशेष आश्चर्य यह है कि विवाह संस्कार भी जैनविधि से नहीं होता है लेकिन अब कहीं कहीं जैनविधि से विवाह चालु हो गये हैं तथा अनेक जगहों पर ब्राह्मण पंडितों से विवाह विधि संपन्न कराई जाती है परंतु अब जैनों को जैनधर्म की रक्षा करने के लिए, वास्तविक जैन संस्कार डालने के लिए जैनविधि से ही विवाह करना कराना चाहिये अन्यथा दांपत्य संबंध बीच में ही टूट जाता है अंत तक एक सी प्रेम की धारा नहीं रहती। कदाचित् विवाह संस्कार पर यज्ञोपवीत धारण नहीं किया तो गुरु का समागम मिलने पर यज्ञोपवीत धारण कर लेना चाहिये परन्तु यज्ञोपवीत धारण किये बिना सर्वथा किसी को भी नहीं रहना चाहिये। जो जैन यज्ञोपवीत धारण नहीं करते हैं वे जैनागम को नहीं मानने वाले मिथ्यादृष्टि हैं और उनके आचरण शूद्र के समान ही हैं चाहे कुमार हों, युवा हों, वृद्ध हों, सब को गुरु के हाथ से यज्ञोपवीत धारण कर जीवन पर्यंत निभाना चाहिये। भरत महाराज ने मुनि अवस्था धारण करने के अंतर्मुहूर्त पहले ही यज्ञोपवीत का त्याग किया था। जब भरत महाराज दिग्विजय कर और राज्य की व्यवस्था कर समवशरण में गये वहाँ पर वे ऋषभदेव भगवान के द्वारा दिये हुये यज्ञोपवीत को धारण किये थे।

आजानुलंबिना ब्रह्मसूत्रेण विवभौ विभुः।
हेमाद्रिरिव गंगांबु प्रवाहेण तटस्पृशा।।

अर्थ–भरत महाराज के जानु पर्यंत यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था।

यज्ञोपवीत को धारण करने वाले तृतीय पात्र

तीसरे पात्र के लिये संस्कार कराने का कोई भी समय नियत नहीं है क्योंकि वे भाग्य और पुरुषार्थ की संधि के अनुसार मिथ्याधर्म को छोड़कर जैनधर्म को स्वीकार करें तभी उनके सब संस्कार एकसाथ किये जाते हैं।

व्रतचिह्नं भवेदस्य सूत्रं मंत्रपुरःसरम्।
सर्वज्ञाज्ञा प्रधानस्य द्रव्यभावविकल्पितम्।।94।।
यज्ञोपवीत मस्य स्याद् द्रव्यतस्त्रिगुणात्मकं।
सूत्रमौपासिकं तु स्याद् भावारुढै स्त्रिभिर्गुणैः।।95।।
यदैव लब्धसंस्कारः परं ब्रह्माधिगच्छति।
तदैनमभिनन्द्याशीर्वचोभिर्गणनायकाः।।96।। आदि० पर्व 39

अर्थ—आज्ञाप्रधानी द्विज जो मन्त्र पूर्वक सूत्र धारण करता है वही उसके व्रतों का चिह्न है। वह सूत्र द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का है। तीन तार का यज्ञोपवीत द्रव्य सूत्र है और रत्नत्रय भाव सूत्र है। जिस समय वह भव्यजीव संस्कारों को पाकर परम ब्रह्म को प्राप्त होता है उस समय आचार्य गण आशीर्वाद रूप वचनों से प्रशंसा कर शेषाक्षत ग्रहण कराते हैं।

प्र.15—जनेऊ के बिना दाता मुनियों को आहारदान देने का अधिकारी है या नहीं?

उत्तर—जनेऊ के बिना गृहस्थ मुनियों को आहारादि दान करने का सर्वथा अधिकारी नहीं है।

भक्तिमान् सरलोज्ञानी सुदृष्टिर्विनयान्वितः।
मद्यमांस मधुत्यागी पंचोदुंवरवर्जितः।।
त्रिवर्णस्तु कुलाचारपालनोद्यतमानसः।
उपनीत्यादिसंस्कारविहितो मधुराशयः।।
आहारादिक्रियाभिज्ञः शुचिः पूतक्रियाग्रणी।
देशकालागमद्रव्यविधिज्ञा धौतवस्त्रभाक्।।
देवशास्त्र गुरूणां ह्युपासको धर्मवत्सलः।
औदार्यादिगुणोपेतो विगर्वो लोभवर्जितः।।
इत्यादि सुगुणोपेतो दाता स्यात् सुप्रसन्नवाक्।

भावार्थ—दाता का लक्षण भक्तिमान हो, सरल हृदय वाला हो, सम्यग्दृष्टि हो, विनयवान हो, अष्ट मूलगुण का धारक हो, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हो, जैनधर्म के अनुसार कुलाचार पालने में दत्तचित्त हो, मधुराशय हो, यज्ञोपवीत आदि संस्कार वाला हो, आहारादि क्रियाओं को जानने वाला हो, पवित्र हो, पवित्र क्रिया के करने में अग्रसर हो, देश, काल, आगम, द्रव्य और विधि को जानने वाला हो, पवित्र वस्त्रों का धारक हो, देव शास्त्र और गुरु का श्रद्धापूर्वक उपासक हो, धर्म में वात्सल्य भाव रखता हो, उदारतादि गुणों को धारण करने वाला हो, अभिमान रहित हो, लोभ रहित हो और प्रसन्न वचन वाला हो इत्यादि गुणों से युक्त दाता होता है। इससे यज्ञोपवीत के बिना दान देना और मुनिगणों को आहार लेना आगम विरुद्ध है। जो मुनियों को आहार देने में यज्ञोपवीत की क्या आवश्यकता है'' ऐसा कहने वाले आगम के अश्रद्धानी हैं अथवा मिथ्यात्व का प्रभाव जीवों में विलक्षण होता है।

इज्यादत्त्यादिकर्माणि यस्य मूलगुणान्वितः।
गृही सोत्र प्रशस्योस्ति ससंस्कारः ससूत्रकः।। दानशासन

अर्थ—इज्या (जिनपूजा) दत्ति (दान) आदि षटकर्म जिसके मुख्य हों, आठ मूलगुणों का पालक हो, सत्संस्कारी हो, यज्ञोपवीत सहित हो उसे ही दाता कहते हैं।

मूलगुणसमोपेतः कृतसंस्कारो दृक्शुचि.:।
इज्यादिषट्कर्मकरो गृही सोत्र ससूत्रकः।।
देवपूजा गुरुसेवा दत्तिः स्वाध्यायः संयमं।
दयैतानि सुकर्माणि गृहिणां सूत्रधारिणाम्।। दानशासन

अर्थ—जो यज्ञोपवीत, मूलगुण, संस्कारों से सहित हो, सम्यग्दृष्टि हो, पवित्र देवसेवादि षट्कर्मों का पालक हो ऐसा गृहस्थ होता है। 1. देवपूजा 2. गुरुसेवा 3. दान 4. स्वाध्याय 5. संयम 6. दया ये छह कर्म यज्ञोपवीत धारक गृहस्थों के हैं। इस प्रकार दानशासन ग्रंथ में मुनियों को आहार दान दाता यज्ञोपवीत वाला ही हो ऐसा कहा है। यहाँ ग्रन्थकार बतलाते हैं कि अष्ट मूलगुण धारी पाक्षिक श्रावक यज्ञोपवीत सहित मुनिदान, जिनपूजा आदि समस्त कार्य कर सकता है। कितने ही ऐसा कहते हैं कि यज्ञोपवीत धारण करने के लिये पाँच अणुव्रत अवश्य ही होना चाहिये सो उनको ये दानशासन के श्लोक विचार करने योग्य है।

यज्ञोपवीत पूर्वक अभिषेक पूजा करने का अधिकार है।

धौतांवरीयं विधुकांत सूत्रैः सद्ग्रंथितंधौत नवीन शुद्धम्।
नग्नत्व लब्धिर्न भवेच्च यावत् संधार्यते भूषण मूरुभूम्याः।।1।।

इस श्लोक में यज्ञोपवीत धारण करना बतलाया है। प्रतिष्ठा प्रदीप

यज्ञार्थ सृजनादि चक्रेश्वरेण चिह्नंविधिभूषणानां।
यज्ञोपवीतं विततंहिरत्नत्रयस्य मार्गं विदधाम्यतोहं।।8।।
अन्यैश्चदीक्षां यजनस्यगाढं कुर्वद्भिरिष्टैः कटिसूत्रमुख्यैः।
संभूषणैर्भूषयतां शरीरं जिनेन्द्रपूजा सुखदा घटेत।।9।। पृ० 41

अर्थ—पूजा को बताने वाले चक्रेश्वर ने भी जिनेन्द्र की पूजा के लिये विधिरूप में आभूषणों का चिह्न यज्ञोपवीत कहा है अतः मैं रत्नत्रय के मार्ग रूप यज्ञोपवीत के साथ कटिसूत्रादि अन्य आभूषणों को धारण करता हूँ जिससे जिनपूजा सुखद हो। प्रति० पं० नाथूरामजी

धौतवस्त्रं पवित्रं च ब्रह्मसूत्रं च भूषणं।
जिनपादार्चितंगंधं माल्यंधृत्वाजिनोर्च्यते।।

अर्थ—पूजक को शुद्धवस्त्र, तिलक, मालाभूषण और यज्ञोपवीत धारणकर ही जिनपूजा करनी चाहिये।

श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा।

संकल्प तत्सुखप्रतेः पटुभिमवाप्य सूत्रत्रयं कमल सूत्रसमान कांति।
रत्नत्रय अभिमत मात्तशिरोत्तरीयं धृत्वा पवित्रकलितं च करं करोमि।

1484 वर्ष के लिखे गुटके से—श्री जिनपूजा के प्रारंभ में मैं यज्ञोपवीत धारण कर 16 आभरणों से शोभायमान इन्द्रपद को प्राप्त होता हूँ।

शिखा यज्ञोपवीत्यंकः त्यक्त्वारंभपरिग्रहाः
भिक्षाश्चरन्ति देवार्च्यां कुर्वन्तेकक्षपद्रिकम्।।22।। धर्म० श्रा० अधि० 6

भावार्थ—चोटी आदि यज्ञोपवीत के धारक भगवान की पूजा करते हैं।

जिनांहि चन्दनैः स्वस्य शरीरे लेपमाचरेत्।
यज्ञोपवीत सूत्रं च कटिमेखलया युतं।।61।। त्रैवर्णि० अ० 4 पृ० 95

भावार्थ—देवपूजा के समय चंदन से तिलक लगाकर यज्ञोपवीत आदि षोडशाभरण धारण करें।

पूर्व पवित्रतर सूत्रविनिर्मलं च।
प्रीतः प्रजापतिरकल्पयदंग संगी।।
तद्भूषणं जिनमहे निजकंधराय। अभिषेक पाठ संग्रह
यज्ञोपवीतमहमेव तदातनोमि।। घीयामंडी मथुरा प्राचीन गुटका में पूजाकल्प में

भावार्थ—जो प्रथम से ही पवित्र सूत्र से बनाया हो और गंधोदक से पवित्र ऐसा यज्ञोपवीत श्री जिनेंद्र देव की पूजा में मैं अपने कन्धे पर धारण करता हूँ।

ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्यो नाना लक्षणलक्षितः
कुलजात्यादिसंशुद्धः सद्दृष्टिर्देशसंयमी 145
क्रियाषोडशाभिः पूतो ब्रह्मसूत्रादि संस्कृतः
वेत्ता जिनागमस्यानालस्योगेहीबहुश्रुतः 146
श्रावकाचार पूतात्मा दीक्षा शिक्षागुणान्वित।

भावार्थ—विशुद्ध जातिकुल वाला द्विज हो, सद्दृष्टि हो, देश संयमी हो, 16 संस्कारों से पवित्र हो, जनेऊ का धारक हो, जिनागम का ज्ञाता बहुश्रुती हो, आलस्य रहित हो, श्रावकाचार से पवित्र हो आदि गुणों से युक्त गृहस्थाचार्य श्रावकों को दीक्षा और शिक्षा देकर धर्म की व्यवस्था करता है।

इज्यां वार्तां च दत्तिं च स्वाध्यायं संयमं तपः
श्रुतोपासक सूत्रत्वात् सः तेभ्यः समुपादिशत्।। 24
कुलधर्मोय मित्येषा मर्हत्पूजादिवर्णनं।
तदा भरत राजर्षि रन्ववोचदनुक्रमात्।। आदिपुराण 1346

भावार्थ—यज्ञोपवीत धारक को ही श्री देवपूजा, सत्पात्रदान, स्वाध्याय, वार्ता, संयम, तप करना चाहिये। गृहस्थों का यह कुलधर्म है ऐसा भरत महाराज ने अनुक्रम से कहा।

तेरह द्वीप पूजन

'पहले जो जनेऊ सारजू कनक मणिमय अतिहारजू' क्रियाकोश—कांधे जनेऊ सार। पूजासार, ढाईद्वीप आदि समस्त पूजनों में जनेऊ धारण करना बतलाया है।

सोयं जिनः सुरगिरिर्ननु पीठमेतत्।
एतानि दुग्धजलधेः सलिलानि साक्षात्।।
इन्द्रस्त्वहं तु वसवप्रतिकर्मयोगात्।
पूर्णा ततः कथमियं न महोत्सवश्रीः।।12।। जिनाभिषेक पृ० 42

भावार्थ—भगवान का पूजक अपने में इन्द्र की स्थापना के लिये यज्ञोपवीत आदि धारण करे।

यज्ञोपवीत कैसा होना चाहिये?

नव देव इति प्रीत्या तत्पीत्यै नवतंतुभिः।
एकीकृत्य गुणैः सम्यक् दृग्ज्ञानाचार लक्षणं।।
रत्नत्रय मुरोलिंगं ब्रह्मसूत्रं सितप्रभं।
यज्ञोपवीत मित्युक्तं पवित्रं धार्यते मया।। विद्या० अर्हत्प्रति०

अर्थ—1.अरहंत 2.सिद्ध 3.आचार्य 4.उपाध्याय 5.साधु 6.जिनधर्म 7.जिनागम 8.जिनचैत्य 9.जिनचैत्यालय रूप नवदेवताओं की पूजा के लिये 9 तंतु का, 3 तार का द्रव्यसूत्र रत्नत्रय को साक्षात् प्रकट करने वाला यह पवित्र यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

कुंडल मंगद हारा मउडं केयूर पट्ट कडयाइं।
पालंब सुत्त णेउर दो मुद्दी मेहलासि छुरियाओ।।365।।

अर्थ—भोगभूमि में सुत्तं—: ब्रह्मसूत्र— यज्ञोपवीत स्वभाव से होता है। ति०प० अधि० 4 पृ० 112
इस प्रकार यज्ञोपवीत के बिना एक भी कर्म उत्तम प्रकार से गृहस्थ नहीं कर सकता है।

यज्ञसूत्र कटिमेखलांगुलिमुद्रिकाकरविभूषणान्वितः।
कंठिकावलिसुकुंडलर्क्षभाशीर्षभूषणयुतः सदा भवेत्।।90।। प्र०पा०इंद्रलक्षण

अर्थ—यज्ञसूत्र यज्ञोपवीत अरु कटिमेखला अरु अंगुल मुद्रिका अरु करभूषण कहिये कटक इन संयुक्त अरु कंठिकावली जो हारावली अरु सुंदर कुंडल अरु नक्षत्र माला, शीर्षभूषण कहिये कर्ण मौक्तिक इन संयुक्त सदा ही होय। यहाँ भी इंद्र के लक्षण में यज्ञोपवीत बतलाया है।

षण्णवति मुष्टियुक्तं सूत्रं त्रितयं पुनस्त्रयं कुर्यात्।
रत्नत्रयमितिमत्त्वा तदेव यज्ञोपवीतार्हम्।।
एकेनोज्ज्वलतंतुना त्रिवलितेनायं त्रिवर्गात्मना।
त्रिस्त्रिः केवल लब्धभेदनवभिर्जीवादिसंकल्पतः।।
सप्तविंशतिभेदतः परिमितं सूत्रं समेतं पुनः।
सद्रत्नत्रय रूपमेति विभृयाद्यज्ञोपवीतं द्विजः।।

अर्थ—छयानवे मूँठ सूत के तीन तार करना फिर भी तीन तार कर रत्नत्रय रूप यज्ञोपवीत धारण करें यज्ञोपवीत एक उज्ज्वल तंतु को त्रिवर्ग करना चाहिये फिर भी त्रिभाग करना चाहिये सत्ताईस भेद सहित भेद के तीन तार का यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। रक्षाबन्धन (सलोने) के दिवस यज्ञोपवीत होम कर प्रति वर्ष धारण करना चाहिये।

वृष्ट्यंबु रक्षिते सस्ये क्षेत्रे शाद्वलिते सति।
श्रावण्यां पौर्णमास्यांतु स्यादुपाकर्मोपनीतिनाम्।।

अर्थ—वृष्टि से क्षेत्र सुन्दर दीख रहे हैं। ऐसे श्रावण पूर्णिमा के दिन जनेऊ बदलना चाहिये।

होमोपवीत तत्त्वार्थसूत्राणां तु यथाक्रमं।
उपाकर्म तदेवंस्यात्प्रतिवर्ष द्विजन्मनाम्।। ब्रह्मसूरि

अर्थ—होमपूर्वक यज्ञोपवीत प्रतिवर्ष श्रावण सुदी पूर्णमा के दिवस बदलना चाहिये।

पाक्षिकाचारसंपन्नाः श्रावकाः शुद्धदृष्टयः।
श्रावणशुक्ल पक्षान्ते उपाकर्म समाचरेत्।।
यज्ञोपवीतं विधिना क्रियामंत्रपुरःसरं।
प्रतिवर्षं स्वकंठेहि धारयंति नवंनवम्।।

अर्थ—पाक्षिक श्रावकगण रक्षाबंधन के दिन प्रतिवर्ष होम विधिपूर्वक नवीन यज्ञोपवीत धारण करते हैं।

क्षेत्रपालाज्ञया क्षेत्रे पूर्वास्योवोत्तरामुखः।
शिरः प्रदेशे कर्णे वा धृतयज्ञोवीतकः।।33।। त्रैव० अ० 2 पृ० 33

अर्थ—शौच के लिये क्षेत्र में जाकर निःसही[3] बोलकर पूर्वोत्तर दिशा की तरफ मुख कर यज्ञोपवीत कान या मस्तक पर और दान और पूजाकर्म में यज्ञोपवीत धारण करना ही चाहिये।

व्रतचर्यामहं वक्ष्ये क्रियामस्योपविभ्रतः।।
कट्यूरूरःशिरोलिंगमनूचानव्रतोचितम्।।109।।
कटिलिंगं भवेदस्य मौंजीबंधात्त्रिभिर्गुणैः।।

रत्नत्रितयशुद्धयंगं तद्धि चिह्नं द्विजात्मनाम्।।110।।
तस्येष्टमूरुलिंगं च सुधौतसितशाटकं।।
आर्हतानां कुलं पूतं विशालं चेति सूचने।।111।।
उरोलिंगमथास्य स्याद् ग्रथितं सप्तभिर्गुणैः।।
यज्ञोपवीतकं सप्त परमस्थान सूचकम् ।।112।। आदि० पर्व 38

अर्थ—ब्रह्मचर्य व्रत के योग्य कमर, जाँघ, वक्ष स्थल और सिर के चिह्न को धारण करने वाले ब्रह्मचारी बालक की व्रतचर्या नाम की क्रिया को कहते हैं। तीन तार की मूंज की रस्सी कमर का चिह्न है। धुली हुई सफेद धोती दुपट्टा जाँघ का चिह्न है। उसके वक्ष स्थल का चिह्न 7 तार का गूंथा हुआ यज्ञोपवीत सप्त परम स्थान का सूचक है। जिन्होंने यज्ञोपवीत धारण नहीं किया है ऐसे अश्रद्धानियों को विशेष जिनधर्म नहीं सुनाना चाहिये फिर उनको जैनश्रावक किस प्रकार कह सकते हैं और वह जिनपूजा और मुनि को आहार दान का अधिकारी किस प्रकार हो सकता है?

यावज्जीवमिति त्यक्त्वा पंचोदुंवरपूर्वकान्
जिनधर्मश्रुतेर्ग्राह्यः स्यात्कृतोपनयो द्विजः।।

अर्थ—जिस भव्यजीव ने जीवन पर्यंत के लिये अष्ट मूलगुण धारण किये हैं और जिसके यज्ञोपवीतादि संस्कार हुए हैं ऐसे पुनीत आत्मा को ही जिनधर्म सुनाना चाहिये अन्य को नहीं क्योंकि मोक्षमार्गता संस्कार से विशुद्ध पुनीत आत्मा ही साक्षात् संपादन कर सकता है वे ही जिनपूजन, मुनिदान और जिनलिंग धारण कर मोक्षमार्गता प्रकट कर सकते हैं संस्कारहीन को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है इसलिये यज्ञोपवीत को धारण कर ही जिनपूजन और दान करना चाहिये।

श्रीब्रह्मसूरि आचार्य ने भगवान की पूजा यज्ञोपवीत धारण कर ही करें ऐसा कहा है।

चंदनालेपनस्योर्ध्वमध्यभालं धरेद् द्विजः।।
अंगुलाग्रमितेदेशे जिनपादार्चिताक्षतान्।।133।।
यज्ञसूत्रं सोत्तरीयं शेखरं कुंडलं तथा।।
कंकणं सपवित्रां च मुद्राँ भूषणमिष्यते।।134।।
त्रिपंचदर्भवलितं ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितम्।।
सृष्ट्यग्रं योग्यवलयं पवित्रमितिभाषितम्।।135।।
इति गन्धादिभिः स्वं च भूषयेदविकारकैः।।
इन्द्रं मत्त्वा जिनेन्द्रं श्रीपादपूजाधिकारकः।।136।।

अर्थ—पूजा करने वाले सर्वप्रथम अपने में इन्द्र की स्थापना करें। इन्द्र स्थापना के लिये अपने मस्तक में तिलक लगावें, अक्षत लगावें, यज्ञोपवीत धारण करें, शुद्ध धुले हुये धोती दुपट्टा पहनें, कुंडल पहनें, कंकण धारण करें, जिनमुद्रा से भूषित हों और रत्नत्रय रूप यज्ञोपवीत धारक को ही जिनपूजन करने के अधिकार प्राप्त होता है।

मुंजत्रिवर्तिवलितां मौंजीं त्रिगुणितां शुभम्।।
कौपीनं कटिसूत्रोर्ध्वं कटिलिंगं प्रकल्पयेत् ।।181।। 23 त्रैव० अ० 9
रत्नत्रयात्मकं सूत्रं यज्ञसूत्रं सुनिर्मलम्।।
हरिद्रागंधसारात्तमुरोलिंगं प्रकल्पयेत्।।182।। 24 त्रैव० पृ० 263
जिनराजपदांभोजशेषासंसर्गपावनीम्।।
ब्रह्मग्रन्थिशिखामेव शिरोलिंगं प्रकल्पयेत्।।183।। ब्रह्म०प्रति०ति०, 24 त्रैव०

भावार्थ—कमर में मौंजीबंधन यह कटिलिंग हैं रत्नत्रयात्मक होने से अत्यन्त पवित्र यज्ञोपवीत यह वक्षस्थल का लिंग है। सिर की चोटी बांधना यह मस्तक का लिंग है। भाल में तिलक लगाना यह मस्तिष्क का चिह्न है, इन चिह्नों को धारण करने वाला ही जिनपूजन का अधिकारी है।

प्रतिष्ठा विधि दर्पण 6 पृष्ठ 70 प्रतिष्ठा तिलक सातवाँ परि० यज्ञ० 6

दृग्वोधचारित्रगुणत्रयेण धृत्वा त्रिधौपासकभावसूत्रं।।
द्रव्यं च सूत्रं त्रिगुणं सुमुक्ताफलं तदारोपणमुद्वहामि।।6।।
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय नमः स्वाहा।

भावार्थ—रत्नत्रय रूपी मुक्ताफल के समान स्वच्छ जनेऊ धारण कर जिनपूजा का अधिकारी होता हूँ।

रत्नत्रयांगमुपवीतमुरस्यथांगं।
देशव्रतस्य वसुकंकणमत्र हस्ते।।
ब्रह्मव्रतांगमधुरा स्वकटौ च मौंजीं।
धृत्वारभे जिनमुखं मखदीक्षितोहं।।56।। प्रति०ति० परि० 1

अर्थ—पवित्र रत्नत्रय स्वरूप यज्ञोपवीत, रत्नजड़ित स्वर्ण कंकण, मौंजीबंधन आदि धारण कर इन्द्र दीक्षा और यज्ञदीक्षा को धारण कर श्री जिनेन्द्र पूजा का अधिकारी होता हूँ।

प्रालंबसूत्रजिनसूत्रविराजहार—
सद्दर्शनस्फुरितविस्फुरितात्मतेजः।
ग्रैवेयकं चरणचारुभजन् जिनेज्या
सज्जस्तनोम्यमलचिद्रुचियज्ञसूत्रम्।। ताड़पत्रग्रन्थ यज्ञदीक्षाविधानग्रन्थे

अर्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप यज्ञोपवीतादि को धारण कर जिनपूजन का पात्र होता हूँ।

पूर्वं पवित्रतर सूत्र विनिर्मितं यत् प्रीतः प्रजापतिरकल्पयदंगसंगि।
सद्भूषणं जिनमहे निजकंठधार्यं यज्ञोपवीतमहमेष तदाऽऽतनोमि।।4।।

ॐनमः परम शांताय शांतिकराय पवित्रीकृतायार्हं रत्नत्रय स्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा। आ० अभयनंदि कृत लघुस्नपन 55। सिद्धचक्र विधान पृ०11 और जयपुर टोडरमल स्मारक से प्रकाशित सि०वि० में यज्ञोपवीत धारण करने का विधान और मंत्र दिया है अब यज्ञोपवीत धारण नहीं करना चाहिए क्योंकि ब्राह्मणों का है तो इन संस्था वालों ने क्यों कथन किया और विधिविधानों में क्यों धारण कराते हैं? यदि मिथ्या है तो धारण करने वाले, कराने वाले भी मिथ्यादृष्टि कहलाये तथा यह विधानग्रंथ भी मिथ्याशास्त्र कहलाया, कुशास्त्र अनायतन होने से पूजना, नमस्कार करना, अर्घ चढ़ाना आदि कुशास्त्र अनायतन सेवा कहलायी। तब इसे जिनवाणी मानकर मंदिरजी में क्यों विराजमान करना? प्रचारप्रसार क्यों करना? अनायतन सेवा करने वाला मिथ्यादृष्टि कहलाता है।

तन्वन् हृद्युपवीतमर्जुनरुचि प्रव्यक्त रत्नत्रयं।
ख्याताणुव्रतपंचशक्तिवसुमद् विभ्रत्करेकंकणं।।
मौंज्या श्रोणियुजा जिनक्रतुमिति ब्रह्मव्रतं द्योतयन्।
यज्ञेस्मिन् खलुदीक्षितोहमधुना मान्योस्मि शक्रैरपि।।127।। प्रतिष्ठासारे

टीका—अस्मिन् यज्ञे जिनयज्ञे जिनपूजायां हृदि उरसि प्रव्यक्तरत्नत्रयमर्जुनरुचि—श्वेतवर्ण उपवीतं यज्ञोपवीतं तन्वन् धारयन् करे हस्ते ख्याताणुव्रतपंचशक्तिवसुमत् कंकणं विभ्रत्। श्रोणियुजाकटियुजामौंज्या ब्रह्मव्रतं विभ्रत् इति एवं दीक्षितोहं— यज्ञदीक्षादीक्षितोहं जिनक्रतुं— जिनयज्ञं जिनपूजां द्योतयन् प्रकाशयन् सन् अधुना संप्रति जिनयज्ञकाले शक्रैरपि देवेन्द्रैरपि मान्योस्मि खलु।

अर्थ—रत्नत्रयरूप यज्ञोपवीत, पंच अणुव्रत की शक्तिरूप रत्नस्वर्णनिर्मित कंकण, ब्रह्मव्रत स्वरूप मौंजी बंधन को धारण कर मैं इन्द्र दीक्षा से दीक्षित हो गया अब मैं नाना देवों और नाना इन्द्रों से मान्य जिनपूजन करने का अधिकारी हुआ हूँ।

श्रीमन्मंदरसुन्दरे शुचिजलैर्धौतैःसदर्भाक्षतैः।
पीठे मुक्तिवरं निधाय रचितं त्वत्पादपुष्पस्रजः।। जैनाभिषेक

इन्द्रोऽहं निजभूषणार्थकमिदं यज्ञोपवीतं दधे।
मुद्राकंकणशेखराण्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे।।1।। पृ० 94

हे भगवन्! मैं शुद्ध जल से प्रक्षालन किये हुए और दर्भाक्षत आदि से सुशोभित तथा मेरु पर्वत के समान पवित्र सिंहासन पर भगवान अरहंत देव को स्थापित करता हूँ तथा आपके चरणकमल की पवित्र माला को धारण कर अपने में इन्द्र की स्थापना कर मुकुट कंकण यज्ञोपवीत तिलक आदि सब आभूषण धारण करता हूँ। अभिषेक पाठ संग्रह

स्नातोनुलिप्तसर्वांगो धृतधौतांवरःशुचिः
दधे यज्ञोपवीतादिमुद्राकंकणशेखरान्।।

अर्थ—जिनपूजन को स्नान कर, शुद्ध धोतीदुपट्टा और जनेऊ आदि इन्द्र के चिह्न धारण करता हूँ।

अंगे णासं किच्चा इन्दोहं कप्पिऊण णियकाए।
कंकण सेहर मुद्दी कुणओ जण्णोपवीयं च।। 87।।

भाव संग्रह देवसेन **अर्थ**—मंत्रों के द्वारा अपने में इन्द्र की स्थापना कर कंकण शेखर मुद्रिका तथा यज्ञोपवीत धारण कर इन्द्र मानकर भगवान की पूजा करनी चाहिये। **देशविरत गुणस्थान पंचम।**

श्रीमहाकलंकसंहिता सूत्रस्थान चतुर्थ परिच्छेद

धौतवस्त्रं पवित्रं च गंधमाल्यं च धारयन्
ब्रह्मसूत्रं ततो विभ्रत्सुरेन्द्रत्वं विभावयेत्।।14।।
धारयेत् भूषणं हृद्यमिंद्रविभ्रमकारि यत्
पवित्रब्रह्मसूत्रादिलक्षणं वक्ष्यतेग्रतः।।15।।

अर्थ—दोंनो श्लोकों में पूजक अपने में इन्द्र की स्थापना कर धोती दुपट्टा माला यज्ञोपवीत धारण करें।

वस्त्रयुग्मं यज्ञसूत्रं कुंडले मुकुटं तथा।
मुद्रिकां कंकणं चेति कुर्याच्चन्दनभूषणम्।।96।। 86, त्रैवर्णि० अ० 4
एवं जिनाँघ्रिगंधैश्र संर्वागं स्वस्य भूषयेत्
इन्द्रोहमिति मत्वात्र जिनपूजा विधीयते।।97।। 88, पृ० 99—100

अर्थ—धोती दुपट्टा यज्ञोपवीत कुंडल मुकुट मुद्रिका कंकण आदि चिह्नों को धारण करें। यज्ञोपवीत पर चंदन लगाकर मस्तक से लगावें तथा जिन भगवान के चरण चंदन से अपने शरीर को शोभायमान कर इन्द्र हूँ ऐसा माने।

भावश्रुतोपासकदिव्यसूत्रं द्रव्यं च सूत्रं त्रिगुणंदधानः।
मत्वेन्द्रमात्मानमुदारमुद्रां श्रीकंकणं सन्मुकुटं दधेहम्।।8।। प्रति०ति० परि०1

अर्थ—भावश्रुत को प्रकट करने वाला तीन तार का यज्ञोपवीत मुकुट कंकण आदि धारण कर मैं इन्द्र होकर जिनपूजन करता हूँ। प्रति० द० पृ० 48 श्लो० 2 नित्यमह अभिषेक पाठ 8 पृ 323

सूत्रं गणधरै र्दृब्धं व्रतचिह्नं नियोजयेत्।
मंत्रपूतमतो यज्ञोपवीती स्यादसौ द्विजः।।158।। आदि० पर्व 40

अर्थ—गणधर देव ने मोक्ष मार्ग को प्रकट करने के लिये व्रतचिह्न रूप अत्यन्त पवित्र मंत्र से संस्कारित आत्मा के भावों को विशुद्ध बनाने वाला ऐसा यज्ञोपवीत धारण करने वाला द्विज बतलाया है।

पूजादानादिसत्कर्म संध्यावंदनकं तथा।
सदा कुर्यात् स पुण्यात्मा यज्ञोपवीतधारकः।।53।। त्रैवर्णि० अ० 9

अर्थ—भव्य जीव पूजा दान संध्यावन्दन अभिषेकादिक पुण्यकर्म यज्ञोपवीत धारण करने पर ही करें। केवल प्रथम चरण में अंतर है शेष तीन चरण समान हैं।

व्रतसिध्द्यर्थमेवाहमुपनीतोस्मि सांप्रतम्।

अर्थ—व्रतों की सिद्धि के लिये मैं यज्ञोपवीत को इस समय धारण करता हूँ।

व्रतचिह्नं भवेदस्य सूत्रं मंत्रपुरस्सरं।
सर्वज्ञाज्ञाप्रधानस्य द्रव्यभावविकल्पितम्।।94।।
यज्ञोपवीतमस्य स्याद् द्रव्यतस्त्रिगुणात्मकं।
सूत्रमौपासिकं च स्याद् भावरुढैस्त्रिभिर्गुणैः।।95।। आदि० पर्व 39

अर्थ—द्विजों को मंत्र की शक्ति से विशुद्ध यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। यह सर्वज्ञ देव की द्रव्य और भाव से आज्ञा पालन करने का चिह्न है। जनेऊ संस्कार रत्नत्रय को और श्रावक के स्वरूप को प्रकट करने वाला होता है।

यज्ञोपवीत संस्कारों से रहित शूद्रों के घर पर मुनिगण चर्या नहीं करते हैं

गायकस्य तलारस्य नीचकर्मोपजीविनः।
मालिकस्य विलिंगस्य वेश्यायास्तैलिकस्य च।।38।।
दीनस्य सूतिकायाश्र छिंपकस्य विशेषतः।
मद्यविक्रयिणो मद्यपायिसंसर्गिणश्च न।।39।।
क्रियते भोजनं गेहे यतिना भोक्तुमिच्छुना।
एवमादिकमन्यत्र चिंतनीयं स्वचेतसा।।40।। नीतिसार ग्रन्थ

अर्थ—गायक, तलार, नीचकर्मी, माली, तेली, तंबोली, अन्य धर्मी या अन्य वेषधारी गृहस्थों से, वेश्या, दरिद्री, प्रसूता, छिपी/टेलर, मद्य विक्रय करने वाला कलार, मद्यपान करने वाला, मद्यपायी का संसर्ग करनेवाला आदि शूद्रों के घर संस्कार रहित उच्च कुलीन ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के घर पर भी यतिगण भोजन नहीं करें।

वरं स्वहस्तेन कृतः पाको नान्यत्र दुर्दृशाम्।
मंदिरे भोजनं यस्मात्सर्वसावद्यसंगमः।।42।। नीतिसार० ग्रन्थ

अर्थ—मुनिगणों को अपने हाथ से रसोई बनाकर खा लेना अतिशय श्रेष्ठ है परन्तु मिथ्यादृष्टि जैन अजैन लोगों के घर पर भोजन करना ठीक नहीं हैं क्योंकि वहाँ पर सर्व पापारंभ होते हैं।

भांडभोजनशुद्धोपि पाखंडी यो विनिन्दकः।
यतेस्तत्र न भोक्तव्यं तदन्नं पापमुच्यते।।93।। नीतिसार० ग्रन्थ

अर्थ—जो भांड और भोजन की शुद्धि रखता हो परन्तु पाखंडी हो, गुरु निंदक हो तो यति को उसके हाथ से भोजन नहीं करना चाहिये क्योंकि गुण विहीन होने से उसे पाप कहा है।

संस्कारों से शुद्धि का फल

मनः शुद्धं भवेद्यस्य सः शुद्ध इति भाष्यते।
विना तेन कृतस्नानोप्यंगी नैव विशुद्धयति।।89।। नीतिसार।

अर्थ—संस्कार पूर्वक ही मन की शुद्धि होती है अन्यथा स्नान आदि से शुद्ध करने पर भी किसी प्रकार शुद्ध नहीं होता। जैसे मछली रात्रि दिवस पानी में रहने पर भी शुद्ध नहीं मानी गई है।

शौचे यत्नं सदा कार्यं शौचमूलो गृही स्मृतः।
शौचाचारविहीनस्य समस्ता निःफलाः क्रियाः।।54।।त्रैवर्णि० अ० 2

अर्थ—सत्संस्कारों के द्वारा शुद्धि के लिये सदैव प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि गृहस्थ धर्म शुद्ध आचरणों का मूल है। शौचाचार रहित गृहस्थ की समस्त क्रियायें निष्फल हैं। पृ० 36

वर्णोत्तमत्त्वं यद्यस्य न स्यान्न स्यात्प्रकृष्टता।
अप्रकृष्टश्च नात्मानं शोधयेन्न परानपि।।183।। आदि० पर्व 40

जिसने सत्संस्कारों के द्वारा सज्जातित्त्व प्राप्त नहीं की वह श्रेष्ठ नहीं है। संस्कार विहीन मनुष्य अपने को और पर को शुद्ध नहीं कर सकता।

यज्ञोपवीत धारण करने वालों को कौन कौन से नियम पालन करना चाहिये?

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विंशः।।3।।
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे।।4।। त्रैवर्णि० अ० 9 पृ० 259

अर्थ– ब्राह्मण के लड़के का गर्भ से लेकर आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का 11वें वर्ष में और वैश्य का 12वें वर्ष में संस्कार करें विद्यार्थी ब्राह्मण का 5वें वर्ष में, बल चाहने वाले क्षत्रियों का 6वें वर्ष में और व्यापार की इच्छा रखने वाले वैश्य का 8वें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार किया जाये।

आ षोडशाच्च द्वाविंशाच्चतुर्विंशात्तुवत्सरात्।
ब्रह्मक्षत्रविशां कालो ह्युपनयनजः परः।।5।।
अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः।
प्रतिष्ठादिषु कार्येषु न योज्या ब्राह्मणोत्तमैः।।6।। त्रै० अ० 9 पृ० 259

अर्थ–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का उपनयन संस्कार का अंतिम काल क्रमशः 16, 22, 24 वर्ष तक का है। यदि इस समय तक इनका यज्ञोपवीत संस्कार न हो सका तो इसके बाद उत्तम व्रतियों के द्वारा इनको प्रतिष्ठा आदि मंगल कार्यों में ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।

गृहस्थों को यज्ञोपवीत धारण किये बिना एक क्षणमात्र भी नहीं रहना चाहिये जिस गृहस्थ ने यज्ञोपवीत धारण नहीं किया है वह दान और पूजा करने का अधिकारी नहीं हैं। जो जनेऊ धारण किये बिना दानपूजा करते हैं वे अनाज्ञाकारी हैं। यज्ञोपवीत के बिना गृहस्थ शूद्र के समान है। यद्यपि शूद्र कुल में जन्मा नहीं है तथापि सत्संस्कारों का अभाव होने से वह एक प्रकार से शूद्र ही है क्योंकि मलेच्छ मनुष्य पाँच प्रकार के माने हैं। 1. क्षेत्र मलेच्छ 2. कर्म मलेच्छ 3. जाति मलेच्छ 4. चारित्र मलेच्छ 5. श्रद्धान मलेच्छ। **इत्येवमादयो ज्ञेया अंतद्वीपजा नराः। समुद्र द्वीपमध्यस्थाः कंदमूल फलाशिनः वेदयन्ते मनुष्यायुस्ते मृगोपमचेष्टितः।** भगवती० 781/936/26 समुद्रों में स्थित अतर्द्वीपों में रहने वाले तथा कंदमूल फल खानेवाले ये लंबकर्ण आदि अंतर्द्वीपज मलेच्छ हैं।

धर्मकर्मबहिर्भूता इत्यमी म्लेच्छका मताः।
अन्यथाऽन्यैः समाचारैरार्यावर्तेन ते समाः।।142।। आदि० पर्व 31 पृ० 109

अर्थः—ये लोग धर्म क्रियाओं से बहिर्भूत होने के कारण मलेच्छ माने गये हैं, धर्म क्रियाओं के बिना अन्य आचरणों में आर्य मनुष्यों के समान हैं। इसलिये आज्ञाकारियों को अवश्य ही यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। यह विचार करें कि यज्ञोपवीत आठ वर्ष की आयु में धारण किया जाता है मैं तो पचास वर्ष का वृद्ध हूँ। अब यज्ञोपवीत धारण करने का क्या फल होगा ऐसा नहीं सोचना चाहिए किंतु **'जब ही जागो तभी सबेरा'** इस कहावत के अनुसार अपनी अवस्था कितनी ही क्यों न हो गई हो यज्ञोपवीत अवश्य ही धारण करना चाहिये? यज्ञोपवीत धारण किये बिना रहना जिनागम के विरुद्ध रहना है। इसी प्रकार हमारे कुल में किसी ने आज तक जनेऊ नहीं पहना है हम क्यों पहनें? ऐसे मिथ्या विचारों के कारण यज्ञोपवीत धारण नहीं करना भी जिनागम की आज्ञा को नहीं मानना है जब अपनी बात को कोई नहीं मानता है, उल्टा चलता है तब अपने को कितना बुरा धक्का लगता है तो अपन जब अपने से बड़ों की आज्ञा नहीं मानते हैं, नहीं पालते हैं तब उनको कितना बुरा धक्का लगता होगा इसका अनुमान लगा लेना चाहिये। यज्ञोपवीत की क्रिया हमसे पालन नहीं हो

सकती है, यज्ञोपवीत गृहस्थों से किस प्रकार धारण किया जाय? महान पवित्र आचरण करने वाले ही यज्ञोपवीत धारण करते हैं ऐसे विचारों से जो गृहस्थ यज्ञोपवीत धारण नहीं करते हैं वे भी अनाज्ञाकारी हैं। शास्त्रों के पढ़ लेने पर भी उनको शास्त्र का परिज्ञान नहीं है स्वाध्याय के फल से रहित हैं। यज्ञोपवीत धारण करने वाले भव्य जीवों को निम्नलिखित नियम पालन करना चाहिये।

1 मद्य मांस मधु का परित्याग करना।
2 बड़ फल आदि पाँच उदुम्बर फलों का तथा अंजीरादि का परित्याग करना।
3 नित्य जिनदर्शन करना।
4 रात्रिभोजन का त्याग करना।
5 पानी छानकर पीना।
6 मिथ्या देवों को नमस्कार नहीं करना, न पूजना, न उनकी मान्यता करना।
7 मिथ्या शास्त्र और मिथ्यागुरुओं को समीचीन मानकर नमस्कार नहीं करना।
8 अपनी शक्ति हो तो पंच अणुव्रत धारण करना।
9 समस्त जीवों पर दयाभाव रखना।
10 कंदमूलादि अभक्ष पदार्थों का सेवन नहीं करना।
11 सड़ी गली और जूंठी वस्तुओं को नहीं खाना।

यज्ञोपवीत धारण करने की विधि

अथ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां गर्भाष्टमेब्दे आषोडशवर्षाद् युगाब्दे वा माणवक अनुकूल शुभतिथौ पूर्वं चैत्यालये भगवदर्हतां महाभिषैकमेकादशविधार्चनं– यंत्रमंडल समाराधनं गृहे माणवकस्य स्नानमलंकरणमुचितासनोपवेशनं। शिरसि दर्भैगंधोदकसेचनं। शिखावशेषकेशवापनं पुनर्मंगलस्नानं। अग्नि संधुक्षणान्ता होमक्रिया। तदग्रे शुभमुहर्त्ते मंगलस्तोत्राशीर्वादपठनपूर्वक शिरःस्पर्शनोपनीतिक्रियाविधिः। कौपीनेन अन्तर्वासो निर्विकारः उत्तरीय परिधारणं। मौंजीबन्धनं यज्ञोपवीतधारणं। ब्रह्मग्रंथियुत शिखायामर्हत् पादशेषाधारणं। शौचाचमनार्घ्याद्युपवेशनं। आचमनप्रोक्षणार्घ्यतर्पणानां मंत्रतो विधापनं अवशिष्टहोमक्रियानिर्वर्तनं। पुण्याहवाचनं विभूत्या बंधुभिस्सह चैत्यालयगमनं। त्रिवार चैत्यालय प्रदक्षिणा। अर्हत् श्रुत गुरूणामर्चनं प्रणमनं तत्रोचितोद्देशे पंच चूर्णैर्विरचित सद्बीजाक्षर संयुत अग्नि वाय्वम्बुभू नभोमंडलानां मध्येक्षत विरचित स्वस्तिके सदर्भे पद्मासनेनकुमार विनिवेशनं। तत्समीपे जलचन्दनाक्षतफलादिद्रव्यनिक्षेपणं परमगुरूणापि शिक्षकेणार्चनं द्विजोत्तमेन वा। सम्यग्दर्शनस्याणुव्रतगुणव्रत शिक्षाव्रतानामुपदेशनम् आगमोक्तप्रकारेण। मद्यमांसाद्यभोज्यानां वर्जनमस्यातिबालविद्याद्युपदेशनं। शिरस्पर्शन पूर्वक पंचगुरु मन्त्रोपदेशः। सामायिकाद्यनुष्टानं त्रिसंध्याकालवन्दना च नित्यनैमित्तिक पूजायाः चोपदेशः। शांतिमंत्रेण अंगस्पर्शनं। शिरसि सव्यपाणिना पंचगुरुमंत्र स्थापनं। तदापरमार्थद्विजत्वं विभ्राणेन कुमारेण सिद्वार्चनं आचार्य पूजनं देवगुरुश्रुतपितृशिक्षक ज्येष्ठानां यथोचित वन्दना। स्वगृहगमनं। भिक्षायाचनं भिक्षां देहीतिवचनेनभिक्षास्वीकरणं देवतातर्पणं। बंधु गृह लब्धवस्तुसुवर्णादिकं आचार्यसंतर्पणं। उपासकाध्ययन पुस्तकार्पणं एकादश निलयोचितमारोपणमित्यादि। ब्रह्मसूरि विरिचत–जिनसंहिता।

यज्ञोपवीत किस प्रकार धारण करना?

यज्ञोपवीत धारण करनेवाला भव्यजीव अपने वालों को उस्तरा से बनवाकर शुद्ध हो मन की शल्य को दूर कर जिनागम में श्रद्धा रखकर कुलाम्नाय को पवित्र रखने के लिये, सज्जाति प्रकट करने के लिये, यज्ञोपवीत धारण करने के लिये नीचे लिखे अनुसार विधि करें, क्षौरकर्म कराकर श्री जिनेन्द्र देव का पंचामृताभिषेक विधिपूर्वक करें। कमर में मूंज की कंधोनी पहने और सफेद धुले हुये धोती दुपट्टा पहने, यज्ञोपवीत को गंधोदक में भिगावें यज्ञोपवीत को रत्नत्रय का सूचक मानकर रत्नत्रय की पूजन करें। शरीर में गंधोदक लगावें, सिर पर गंधोदक का सिंचन करे, चंदन से मस्तक पर स्वस्तिक बनावे, लघु हवन एवं शांति और पुण्याहवाचन मंत्र पढ़ें। इस प्रकार यज्ञोपवीत धारण करने की यह संक्षेप में विधि है।

कदाचित् इतनी विधि भी न बन सके तो क्षौर कर्म कराकर श्री जिनेन्द्र देव का अभिषेक कर नवीन धोती दुपट्टा पहनकर गुरु से यज्ञोपवीत ग्रहण करें। बालकों का यज्ञोपवीत संस्कार आगमानुसार ही कराना चाहिये। वृद्ध और जवानों को भी विधिपूर्वक यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहिये। कदाचित् विधि न हो सके तो श्री जिनेन्द्र देव का अभिषेक कर गुरु से यज्ञोपवीत ग्रहण करना चाहिये।

एक बार यज्ञोपवीत संस्कार कराने के पश्चात् फिर यज्ञोपवीत जन्म पर्यंत धारण करना चाहिये। यज्ञोपवीत दो चार दिवस या महीना के लिये नहीं पहना जाता जैसे कुलवानों में विवाह संबंध जीवन पर्यंत के लिये होता है बीच में छोड़ा नहीं जाता और छोड़ने के बाद पुनः दूसरी ग्रहण करना उल्टी कर चाटने के समान है अतः जनेऊ छोड़ने के बाद पुनः धारण नहीं किया जाता अर्थात् मुनिदीक्षा ग्रहण करने की भूमिका के समय ही त्याग किया जाता है, छोड़ा जाता है यदि मुनि दीक्षा के बाद पुनः जनेऊ धारण किया तो वस्त्र भी धारण करने पड़ेंगे।

उपनीतिर्हि वेषस्य वृत्तस्य समयस्य च।
देवतागुरुसाक्षि स्याद्विधिवत् प्रतिपालनम्।।54।। आदि० 39

अर्थ—देव गुरु की साक्षी यज्ञोपवीत के धारण करते समय ग्रहण किये हुये नियमों को जीवन पर्यंत पालना चाहिये, ऐसा नहीं कि दान पूजा के समय यज्ञोपवीत धारण कर लिया और फिर छोड़ दिया ऐसा करने वाले को व्रतखंडन करने का पाप लगता हैं। **''व्रत भंगी महा भंगी''**। रक्षाबन्धन के दिन नवीन यज्ञोपवीत धारण करना और पुराना जलाशय में छोड़ना चाहिये। उस दिन अभिषेक करें, रत्नत्रय की पूजा करें और लघु होम करें। घर में सूतक पातक होने पर, मुर्दा को जलाने पर, निकट संबंधी की मृत्यु होने पर, यज्ञोपवीत टूट जाने पर, अपवित्र, मलिन, कुत्ते आदि की विष्टा, मलमूत्र, रक्त आदि का संसर्ग हो जाने पर, चांडालादि अस्पर्श्य शूद्रों से यज्ञोपवीत स्पर्श हो जाने पर जनेऊ बदलना चाहिए। स्पर्श शूद्र के साथ भूल या अज्ञान से खानपान हो जाने पर, व्यसनियों के साथ और जिनधर्म विरुद्ध आचार विचार वालों के साथ भूल या अज्ञान से खानपान हो गया हो तो प्रायश्चित्त ग्रहण कर यज्ञोपवीत का पुनः संस्कार कराना चाहिये। शूद्र, पतित, जातिच्युत आदि निंदित मनुष्यों के साथ खानपान व्यवहार यज्ञोपवीत धारक श्रावक को नहीं करना चाहिये। गौ, कुत्ता, बिल्ली, सर्प आदि पंचेन्द्रिय जीवों की भूल अथवा अज्ञान से हिंसा हो जाने पर प्रायश्चित्त विधि से शुद्धि कराकर गुरु से ही पुनः यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहिये। आदि० पर्व 39

यज्ञोपवीत धारण करने की विधि।

कृत्त्वा यज्ञोपवीतं च पृष्ठतः कंठलंबितम्।
विण्मूत्रं तु गृही कुर्यात् वामकर्णे व्रतान्वितः।।27।।
मूत्रेस्तु दक्षिणे कर्णे पुरीषे वामकर्णिके।
धारयेद् ब्रह्मसूत्रन्तु मैथुने मस्तके तथा।।28।। त्रैवर्णि० अ० 2
यज्ञोपवीतं निर्धार्यं पूजायां दानकर्मणि।। पृ० 32

यज्ञोपवीत धारण करने वाले भव्यात्माओं को सदैव यह विचार रखना चाहिये कि यज्ञोपवीत रत्नत्रय का सूचक है, परम पवित्र है, श्री जिनेन्द्राज्ञा स्वरूप है, सज्जातित्त्व की व्यक्तता करने का मुख्यचिह्न है, व्रत रूप है, श्रावक का मूल चिह्न है, धर्म का बीज है, शुद्धि का परम पवित्र कारण है, मोक्षमार्ग की पात्रता का आदर्श नमूना है, दानपूजादि सत्कर्म एवं सदाचार प्रवर्त्त कराने का मूल निमित्त कारण है, उससे किसी भी मलिन पदार्थ का संयोग न हो, मलिन अंग का संसर्ग न हो, मलिन स्थान में गिर नहीं जावे। इसलिये सम्यग्दृष्टि श्रावक को यज्ञोपवीत की पूर्ण रक्षा करनी चाहिये। ऐसी संभाल रखना चाहिये कि जिससे यज्ञोपवीत मलिन वस्तु से छू न जावे। लघुशंका करते समय मूत्र के छींटे यज्ञोपवीत पर नहीं गिर पड़े और लिंगेन्द्रिय से स्पर्श न हो जावे, इसलिये यज्ञोपवीत को दक्षिण कान पर स्थापित करना चाहिये। शौच के समय यज्ञोपवीत को सिर से लपेट कर वामकर्ण पर स्थापित करना चाहिये।

वांति, वमन, उल्टी होने के समय वमन के छींटे यज्ञोपवीत पर न गिरने पावें इसलिये गले में दो तीन बार लपेट लेना चाहिये। मैथुन करते समय यज्ञोपवीत मस्तक पर स्थापित करना चाहिये जिससे अपवित्र वस्तु का संयोग न हो। इसी प्रकार मलिन वस्तु के संयोग की आशंका होने पर यज्ञोपवीत को संभाल कर उच्च स्थान में स्थापित करना चाहिये। किसी

श्रावक ने लघुशंका करते समय, शौच जाते समय, मैथुनक्रिया के समय यज्ञोपवीत को कर्णादि उच्च स्थान पर स्थापित नहीं किया और विधि का, पालन करने का अभ्यास न होने से भूल जाय तो नौबार णमोकार मंत्र का जाप करने से शुद्धि हो जाती है। रात्रि के समय यज्ञोपवीत दुहरा रखने से मस्तक पर स्थापन करने की आवश्यकता नहीं रहती है। यज्ञोपवीत पूजा और दान कर्म में सदैव लंबायमान धारण करें। समस्त यज्ञोपवीत की क्रियायें शरीर की सावध अवस्था में पालन की जाती है। रोगादिक के कारण यज्ञोपवीत की क्रियायें शिथिल हो जाती हैं अतः उसका एक यही उपाय है कि आरोग्यलाभ होने पर श्री जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक कराकर समुच्चय पूजा करना चाहिये। शक्ति हो तो चौबीसी विधान और रत्नत्रय की पूजा कर यज्ञोपवीत का पुनः संस्कार कराना चाहिये। यही प्रायश्चित्त और शुद्धि का मार्ग है। यज्ञोपवीत धारण करने वाले भव्य सम्यग्दृष्टि जीवों को नित्य स्नान कर जिनपूजा करनी चाहिये। यदि अवकाश न हो या कोई विशेष कारण प्राप्त हो गया हो तो अर्घ चढ़ाना चाहिये। यदि ऐसा भी न हो सके तो स्नान पूर्वक शुद्धि कर भगवान के दर्शन नित्य करना चाहिये। कदाचित् भगवान के दर्शन नहीं हो सकें तो रस का परित्याग कर णमोकार मंत्र की जाप देकर भोजन करना चाहिये। जिस क्षेत्र में जिन मंदिर का अभाव हो तो ऐसे क्षेत्र में न निवास करना चाहिये न जाना चाहिये। जो श्रद्धान के बिना अपने को जैन बतलाते हैं और जबरन प्रसिद्ध करते हैं कि हम जैन हैं, जिनके जिनदर्शन, अष्टद्रव्य से जिनपूजन करने का नियम नहीं है और अरुचि है वे मिथ्यादृष्टि हैं तथा जिनाज्ञा का लोप करने वाले होने से यथार्थ में जैन नहीं हैं।

जपो होमस्तपो दानं स्वाध्यायः पितृतर्पणं।
जिनपूजां श्रुताख्यानं न कुर्यात् तिलकं बिना।।85।। त्रैवर्णि० अ० 4
देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थाणां षट्कर्माणि दिने दिने।।7।। पद्म० पंच० अधि० 6

भावार्थ—जप, होम, तप, दान, स्वाध्याय, जिनपूजा और शास्त्रश्रवण या 1. देवपूजा 2. गुरु की उपासना 3. स्वाध्याय 4. संयम 5. तप और 6. दान ये छह कर्म नित्य तिलक लगाकर करना चाहिये।

प्रत्यग्दक्षिणयोः कृत्वा पुनः शौचं विधीयते।
एकवस्त्रो न भुंजीत न कुर्यात् देवपूजनम्।।37।।
न कुर्यात् पितृकर्माणि दानहोमजपादिकम्।
खंडवस्त्रावृतश्चैव वस्त्रार्धप्रावृतस्तथा।।38।।
स्नानं दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृकर्मणि।
नैकवस्त्रो गृही कुर्यात् श्राद्धभोजनसत्क्रियाः।।39।। त्रैवर्णि० अ० 3

अर्थ—गीले कपड़े को पश्चिम और दक्षिण दिशाओं में उतारने से पुनः शुद्धि करना चाहिये। एक वस्त्र पहन कर देवपूजन, दान, स्वाध्याय, होम, जप, पितृकर्म और श्राद्ध भोजनादि सत्कर्म नहीं करना चाहिये और फाड़कर दो टुकड़े कर तथा आधा वस्त्र पहनकर, आधा ओढ़कर उत्तम कार्य नहीं करना चाहिये।

काकिण्या लक्षणं कृत्वा सुरत्नत्रय सूत्रकम्।
संपूज्य स ददौ तेभ्यो भक्ति दानं कृते युगे।।106।। हरि० सर्ग 11

अर्थ—राजा भरत ने काकिणी रत्न से निर्मित यज्ञोपवीत का चिह्न बनाया और आदर सत्कार कर कृतयुग में उन श्रावकों को भक्ति पूर्वक दान दिया।

यज्ञोपवीत धारण करने के मन्त्र

ॐ नमः परमशांताय शांतिकराय पवित्रीकृतायार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा। यही मंत्र अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन से प्रकाशित सिद्धचक्र विधान के 8वें पृष्ठ में छपा है। अभिषेकपाठ संग्रह में :—

ब्रह्मस्थान मिदं दिशावलय मप्येतन्पवित्रांकुशै–
रर्हद्ब्रह्ममहामहाध्वर विधिप्रत्यूहविध्वंसिभिः।
जैनब्रह्मजनैकभूषणमिदं यज्ञोपवीतं मया।
विभ्राणेन महेन्द्रविभ्रमकरं संधार्यते मण्डनम्।।5।। पृ० 2

दूसरा मंत्र

अतिनिर्मलमुक्ताफललंलितं यज्ञोपवीतमतिपूतं।
रत्नत्रयमितिमत्त्वा करोमि कलुषापहरणं महाभरणम्।।15।। पृ० 17

ॐ नमः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय यज्ञोपवीतं धारयामि स्वाहा।

श्रीमन्मन्दर सुन्दरे शुचिजलै र्धौतैः सदर्भाक्षतैः।
पीठे मुक्तिकरं निधाय रचितं त्वत्पादपद्मस्रजः।।
इन्द्रोहं निज भूषणार्थक मिदं यज्ञोपवीतं दधे।
मुद्राकंकण शेखराण्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे।।1।। पृ० 93
निःशंकादितथोपगूहनमुखोद्यच्छुद्धि यद्दर्शनं।
ज्ञानं विभ्रममोहसंशयमथाष्टाचारवर्धिष्णु यत्
यच्छुद्धं विनयेन वृत्तमुदयद्रत्नत्रयं तत्स्मरन्।
कंठे निर्मलवृत्तमौक्तिकमयं यज्ञोपवीतं दधे।।32।। पृ० 138
श्रीमन्मन्दर सुन्दरे शुचिजलै र्धौतैः सदर्भाक्षतैः।
पीठे मुक्तिकरं निधाय रचितं त्वत्पादपुष्पस्रजा।।
इन्द्रोहं निज भूषणार्थक मिदं यज्ञोपवीतं दधे।
मुद्राकंकण शेखराण्यपि तथा जन्माभिषेकोत्सवे।।1।। पृ० 266
शिरोरं सन्दधाम्येष ब्रह्मसूत्रं वहामि तत्।
कोणेषु कलशान् न्यस्य तोयाद्यैरर्चयामि तान्।।5।। पृ० 341

इनमें तथा इनके अलावा और भी अन्य ग्रंथों में भी यज्ञोपवीत का विधान आया है।

तीसरा मंत्र।

केवलज्ञानसाम्राज्ययुवराजपदाप्तये।
रत्नत्रयमिदं सूत्रं कंठाभरणमादधे।।

ॐ नमः रत्नत्रयस्वरूपाय यज्ञोपवीतं धारयामि स्वाहा।

चौथामंत्र।

ॐ ह्रीं यज्ञचिह्नं यज्ञोपवीतं दधामि। पृ० 37 प्रतिष्ठा प्रदीप पं० नाथूलाल जी

यज्ञोपवीत कितना लम्बा होना चाहिये?

सूत्रंलंबं हस्तमानं चत्वारिंशच्छताधिकं।
तत्त्रैगुण्यं परिवृत्यां तद्वृत्या त्रिगुणं पुनः।।10।। पृ० 261

अर्थ–एक सौ चालीस हाथ कच्चे सूत का यज्ञोपवीत बनाना चाहिये। उसमें तीन का भाग देने पर 46 हाथ रहेगा।

फिर उसमें तीन का भाग देने से पन्द्रह हाथ से कुछ अधिक लंबा होगा यह उत्कृष्ट प्रमाण है। मध्यम 108 अंगुल सूत का यज्ञोपवीत होता है। बालकों को जघन्य लंबा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। त्रैवर्णिकाचार अध्याय 9

श्री भट्टाकलंक संहिता चतुर्थपरिच्छेद–

विसोत्थेन च सूक्ष्मेण स्निग्धेनाखंडपाण्डुना।
दृढेन ग्रन्थिवर्जेन शुचिनैकेन तंतुना।।16।।
त्रिगुणेनैकभूतेनबलितेन प्रदक्षिणं।
एकीभूतत्रिवर्त्यात्मनैवं कृत्वा नवान्मना।।17।।
पुनस्त्रिगुणितेनैव पृथक्भूतेन तेन वै।
इति कृत्वा सप्तविंशत्यात्मना तेन शोभिना।।18।।
सम्यग्दृग्बोधरूपेण सुसामान्यविशेषतः।
सर्वतत्त्वस्वरूपेण यज्ञसूत्रेण तेन च।।19।।

अर्थ–यज्ञोपवीत एक कच्चे, कमलदंड तोड़ने से निकले हुये तंतु समान सूक्ष्म चिकना अखंड सफेद गांठ रहित पवित्र तंतु का होना चाहिए। उस सूत्र को तीन लर बना कर ऐठना। फिर इस प्रकार एक लर में तीन तीन आवर्त्य कर 27 लर का यज्ञोपवीत बनावें। तीन लर में 27 सूत्र हों वह सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय रूप है।

अंगुष्टमूलादाकंठनालमात्रप्रमेण च।
अर्धोरुकप्रमाणेन बालंकुर्यात् द्विजोत्तमः।।20।। अभि०संग्रह पृ० 2

अर्थ–यज्ञोपवीत को कंठ में धारणकर और अंगुष्ठ में लगाकर अपने हाथ घुटने की तरफ लम्बा करने पर जितना लम्बा हाथ हो उतना ही लम्बा यज्ञोपवीत होना चाहिये।

यज्ञोपवीत की गाँठ

यज्ञोपवीत की गांठें अनेक प्रकार की होती हैं प्रतिमा धारी श्रावक और ब्राह्मणों को ब्रह्मगाँठ (गोलगाँठ माला के दाने जैसी) का यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। जिनको यज्ञोपवीत नहीं बनाना आता हो वे बाजार का यज्ञोपवीत नव तार का पहन सकते हैं।

श्रावकों के पालने योग्य 17 क्रियायें

(1) देव शास्त्र गुरु का अविचल और स्वच्छ भाव से श्रद्धान करना।
(2) आठ मूलगुणों को विधिपूर्वक प्रतिज्ञा लेकर पालन करना।
(3) श्री जिनेन्द्र देव की नित्य पूजन करना।
(4) सुपात्र को आहारादिक दान देना।
(5) संघ (मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका) के साथ निःस्वार्थ निष्कपट वात्सल्य भाव रखना।
(6) मोक्षमार्गियों के गुणों में निष्कपट निःस्वार्थ प्रेम करना।
(7) भोजन शुद्धि और खानपान के पदार्थों की शुद्धि नित्य रखना।
(8) अपनी संतान के संस्कार आगमविधि पूर्वक करना कराना।
(9) नाना प्रकार के सभी व्यसनों का त्याग करना कराना।
(10) बालक बालिकाओं को कुशिक्षा, कुसंगति से बचाना, धर्मशिक्षा तथा स्वाध्याय में लगाना।
(11) पानी छान कर पीना।
(12) अमर्यादित तथा अशुद्ध जल, घी, तेल, आटा और खाद्य पदार्थों का सेवन नहीं करना।
(13) पंच पापों (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और तृष्णा) का शक्त्यनुसार परित्याग करना।
(14) जीव दया पालन करना।

(15) रात्रि भोजन नहीं करना।

(16) विधवा विवाह, विजातीय विवाह, तलाक विवाह, बिना तलाक के विवाहिता से, वेश्या आदि से विवाह नहीं करना और जातिपाति लोप नहीं करना।

(17) शास्त्रोक्त सूतक पातक, रजो धर्मादि विधायी क्रियाओं का पालन करना और दोषों की सहर्ष प्रायश्चित्त विधान से शुद्धि करना।

पंडित लालरामजी संपादित षोडश संस्कार के आधार से यज्ञोपवीत संबंधी विशेष विधि।

क्रियोपनीतिर्नामास्य वर्षे गर्भाष्टमे मता।
यत्रापनीत केशस्य मौंजीसव्रत बन्धना।।104
कृतार्हत्पूजनस्यास्य मौंजीबन्धो जिनालये।
गुरुसाक्षिविधातव्यो व्रतार्पणपुरस्सरम्।।105
शिखी सितांशुकः सान्तर्वासो निर्वेषविक्रियः।
व्रतचिह्नं दधत्सूत्रं तदोक्तो ब्रह्मचार्यसौ।।106
चरणोचित् मन्यच्च नामधेयं तदास्य वै।
वृत्तिश्च भिक्षयान्यत्र राजन्यादुद्धवैभवात्।।107।।
सोन्तःपुरे चरेत्पात्रयां नियोग इति केवलम्।
तदग्रं देवसात्कृत्य ततोन्नं योग्यमाहरेत्।।108।। आदि० पर्व 38

यह उपनयन संस्कार ब्राह्मणों को गर्भ से आठवें वर्ष में, क्षत्रियों को ग्यारहवें वर्ष में और वैश्यों को बारहवें वर्ष में करना चाहिये। ब्राह्मण की यह इच्छा हो कि मेरा बालक अधिक दिन तक ब्रह्मचारी रहकर विद्याध्ययन करे तो वह उस बालक का उपनयन संस्कार पांचवे वर्ष में कर देवें। जिस क्षत्रिय की इच्छा बालक को बलिष्ठ बनाने की है वह छठवें वर्ष में और जिस वैश्य की इच्छा अधिक द्रव्योपार्जन की है वह अपने बालक का यज्ञोपवीत आठवें वर्ष में ही कर देवें। यदि कारण कलापों से नियत समय तक उपनयन विधान न हो सका तो ब्राह्मणों को सोलहवें वर्ष तक, क्षत्रियों को बाईसवें वर्ष तक और वैश्यों को चौबीसवें वर्ष तक यज्ञोपवीत संस्कार करा लेना उचित है। यह इस संस्कार का अंतिम समय है। जिस पुरुष का जनेऊ संस्कार इस समय तक भी नहीं हुआ है। तो वह पुरुष धर्म कार्य के लिये अयोग्य है।

स्वांगजः पुत्रिकापुत्रो दत्तः क्रीतश्च पालितः।
भगिनीजः शिष्यश्चेति पुत्राः सप्त प्रकीर्तिताः।।9।। त्रैवर्णि०अ० 9

पुत्रों के भेद– 7 हैं, 1. अपना खास लड़का, 2. अपनी लड़की का लड़का, 3. दत्तक (गोद) लिया हुआ, 4. मोल लिया हुआ, 5. पाला हुआ, 6. अपनी बहिन का लड़का, 7. शिष्य।

पितैवोपनयेत्पूर्वं तदभावे पितुः पिता।
तदभावे पितुर्भ्राता सकुल्यो गोत्रजो गुरुः।।7।।
व्रतबन्धं कुमारस्स विना पितुरनुज्ञया।
यः करोति द्विजो मोहान्नरकं सोऽधिगच्छति।।8।। त्रैवर्णि० अ० 9

आचार्य–जनेऊ संस्कार कराने वाला बालक का पिता हो तो भी, पिता के पिता वे भी न हों चाचा, ताऊ वगैरह वे भी न हों तो अपने कुलोत्पन्न हो और ऐसा पुरुष भी न हो तो अपने गोत्र का कोई भी पुरुष गृहस्थाचार्य बनकर यज्ञोपवीत संस्कार करा सकता है।

गृहभार्या समादाय स्वयं हस्तेन कर्तयेत्।
तेन सूत्रेण संस्कार्यं शुभ्रं यज्ञोपवीतकम्।।11।। त्रैवर्णि० अ० 9

यज्ञोपवीत– यज्ञोपवीत बनाने के लिए घर की माँ बहनों से ही सूत कतावें। कच्चे सूत को त्रिगुणित कर बट

लेवे तथा दूसरी बार फिर त्रिगुणित कर गांठ देकर यज्ञोपवीत बना लेवे। यज्ञोपवीत की लम्बाई ब्रह्मस्थान से (मस्तक परके तालु छिद्र से) नाभि पर्यंत होनी चाहिये। कम लम्बाई से रोगादि पीड़ा और अधिक लम्बाई से धर्म विघात होना आचार्य सम्मत है। यज्ञोपवीत संस्कार के मुहूर्त दिन से दश या सात या पांच दिन पहले नान्दी विधान किया जाता है। इसकी अति संक्षेप विधि यह है कि जिस दिन नांदी विधान करना हो उस दिन बालक का पिता दो चार भाइयों के साथ गृहस्थाचार्य के घर जावे यथा साध्य कुछ भेंट देकर विधी कराने की प्रार्थना करें। विधानाचार्य उस प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार करे। विधानाचार्य सहित सभी श्रावकगण उसी समय जिनालय में आकर दर्शन पूजनादिक कर सभामण्डप में बैठकर पुनः स्वीकृति देवे। पश्चात् सब लोग गृहस्थाचार्य को घर पहुँचा कर अपने अपने घर जाये। जिस दिन शुभ ग्रह, योग, नक्षत्रादिक हों उसी दिन यज्ञोपवीत की विधि करें। प्रथम ही बालक को स्नान कराकर वस्त्राभूषण पहनावें, माता के साथ भोजन करावें। अनन्तर चोटी के बिना शेष सिर के केशों का मुण्डन करावें। हल्दी, घी, सिंदूर, दूर्वा, दर्भ आदि मिला कर बालक के शरीर में लेपन करें। थोड़ा विश्राम लेकर स्नान करावें। अनन्तर प्रतिष्ठाचार्य पुण्याहवाचन मंत्र को पढ़ता हुआ कुशों से पवित्र जल लेकर बालक के सिर का सिंचन करें।

पुण्याहवाचन

ॐ पुण्याहं पुण्याहं लोकोद्योतनकरा अतीतकाल संजाता निर्वाणसागर महासाधु विमलप्रभ शुद्धाभ श्रीधर सुदत्तामल प्रभोद्धराग्नि सन्मति शिव कुसुमांजलि शिवगणोत्साह ज्ञानेश्वर परमेश्वर विमलेश्वर यशोधर कृष्णमति ज्ञानमति शुद्धमति श्रीभद्र शान्ताश्चेति चतुर्विंशति भूत परमदेवाश्च वः प्रीयन्तां–प्रीयन्तां। ॐ संप्रति कालश्रेयस्कर स्वर्गावतरण जन्माभिषेक परिनिष्क्रमण केवलज्ञान निर्वाण कल्याण विभूति विभूषित महाभ्युदयाः श्री वृषभाजित संभवाभिनंदन सुमति पद्मप्रभ सुपार्श्व चंद्रप्रभ पुष्पदन्त शीतल श्रेयो वासुपूज्य विमलानन्त धर्म शान्ति कुन्थु अर मल्लि मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व वर्द्धमानाश्चेति चतुर्विंशति वर्तमान परमदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां। ॐ भविष्यत् कालाभ्युदय प्रभवाः महापद्म देव सुप्रभ स्वयंप्रभ सर्वायुध जयदेवोदयदेव प्रभादेवोदंकदेव प्रश्नकीर्ति जयकीर्ति पूर्णबुद्ध निष्कषाय विमलप्रभ वहल निर्मल चित्रगुप्त समाधिगुप्त स्वयंभू कन्दर्प जयनाथ विमलनाथ दिव्यवागनन्तवीर्याश्चेति चतुर्विंशति भविष्यत् परमदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां। ॐ त्रिकालवर्ति परम धर्माभ्युदयाः सीमंधर युगमंधर बाहु सुबाहु संजातक स्वयंप्रभ ऋषभेश्वरानन्तवीर्य विशाल प्रभवज्रधर चंद्रानन चंद्रबाहु भुजंगेश्वर नेमिप्रभु वीरसेन महाभद्र जयदेवाजितवीर्याश्चेति पंचविदेह क्षेत्र विहरमाणा विंशति परमदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां। ॐ वृषभसेनादि गणधरदेवाः वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां। ॐ कोष्ठ बीज पादानुसारि बुद्धि संभिन्न श्रोतृ प्रज्ञा श्रमणाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां। ॐ आमर्ष क्ष्वेड जल्ल विडुत्सर्ग सर्वोषधयश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां। ॐ जलफल जंघातन्तु पुष्पश्रेणि पत्राग्निशिखाकाशचारणाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयंतां। आहाररसवदक्षीणमहानसालयाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां। ॐ उग्रदीप्ततप्त महाघोरानुपम तपसश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां। ॐ मनो वाक्काय बलिनश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां। ॐ क्रियाविक्रियाधारिणश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां। ॐ मतिश्रुतावधिमनः पर्यय केवलज्ञानिनश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां। ॐ अगांगबाह्य ज्ञानदिवाकराः कुंदकुंदाद्यनेकदिगम्बर देवाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां। इह वान्य नगर ग्रामदेवता मनुजाः सर्वेगुरुभक्ताः जिनधर्म परायणा भवंतु। दानतपोवीर्यानुष्ठानं नित्यमेवास्तु मातृपितृभ्रातृ पुत्रपौत्रकलत्रसुहृत्स्वजनसम्बंधिबंधु सहितस्य अमुकस्य ते धनधान्यैश्वर्यबलद्युतियशः प्रमोदोत्सवाः प्रबर्द्धतां। शांतिधारा

पुण्याहवाचन पाठ समाप्त होने के बाद निम्न मंत्रों से सिंचन करें। गाथा 153–155 अ० 40 ''**परमनिस्तारक लिंगभागीभव, परमर्षिलिंग भागीभव, परमेन्द्रलिंग भागीभव, परमराज्य लिंगभागीभव, परमार्हंत्यलिंग भागीभव, परमनिर्वाणलिंग भागीभव**''। इन मंत्रों से सिंचन करने के बाद बालक के सिर को सुगन्धित द्रव्यों से लेपन करें। अनन्तर श्री जिनपूजा और होम करना चाहिये और जब यथाविधि समाप्त हो जाय, यज्ञोपवीत देने का समय निकट आ जाय तब ग्रहस्तोत्र पढ़कर ''**णमो अरहंताणं**'' इत्यादि पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण करना चाहिये। उस समय बालक उत्तर दिशा की ओर मुख कर पद्मासन से बैठ अपने जन्म की शुद्धि करने के लिये आंखों का टिमकार बंद कर पिता पुत्र परस्पर में एक दूसरे को देखें और पिताजी उसके ललाट पर चंदन का तिलक लगा देवें। अनंतर ''**ॐ ह्रीं कटि प्रदेशे मौंजीबन्धं प्रकल्पयामि स्वाहा**'' मूंज की एक पतली रस्सी बांटकर उसे त्रिगुणित कर बालक के कमर में बांधने योग्य बना लेना

चाहिये''**ॐ नमोर्हते भगवते तीर्थंकरपरमेश्वराय कटिसूत्रं कौपीनसहितं मौंजीबंधनं करोमि पुण्यबंधो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा**'' यह मंत्र पढ़कर बालक की कमर में मौंजी और लंगोटी बांध दे तथा यह मंत्र पढ़कर मौंजी को हाथ में लेकर उस पर पुष्प और अक्षत डालें। अनंतर ''**ॐ नमः परमशांताय शांतिकराय पवित्रीकृतायार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा**'' यह मंत्र पढ़कर गृहस्थाचार्य बालक का पिता हल्दी और चंदन से यज्ञोपवीत रंग कर उस बालक को पहनावें। ''**ॐ नमोर्हते भगवते तीर्थंकरपरमेश्वराय कटिसूत्रं परमेष्ठिने ललाटे शेखरं शिखायां पुष्पमालां च दधामि मां परमेष्ठिनः समुद्धरंतु ॐ श्रीं ह्रीं अर्हं नमः स्वाहा।**'' यह मंत्र पढ़कर ललाट पर तिलक दे, चोटी पर पुष्प माला रखे, बालक नवीन धोती दुपट्टा पहने, आचमन करे, तर्पण करे और श्री जिनेन्द्र देव को अर्घ देवें। अनंतर बालक हाथ में चन्दन, अक्षत और फल लेकर मोक्ष की अभिलाषा करता हुआ आचार्य से व्रत मांगे, आचार्य भी श्रावकाचार के यथोचित व्रत का उपदेश दें। बालक उन्हें सहर्ष स्वीकार करे तथा ''**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं**'' इत्यादि बीज मंत्र और ''**णमो अरिहंताणं**'' **गाथा 29–32 त्रै० अ० 9** आदि पंच नमस्कार मंत्र भी आचार्य से सुनकर स्वीकार करें। इस समय बालक ब्रह्मचारी के वेष में है जो विवाह पर्यंत रहता है। अनन्तर अपने शरीर के बराबर लम्बा डण्डा ले। इसका ऊपर का चौड़ाई भाग हल्दी से रंग ले। बालक यह डंडा हाथ में ले अग्नि के उत्तर की ओर खड़ा हो और पूर्व की ओर मुख करके तीन अर्घ देकर अपने आसन पर आ बैठे। इसी समय होम की पूर्णाहुति देना चाहिये। बालक स्वयं शमी अक्षत लाजा (खीलें) खीर घी नैवेद्य को मिलाकर तीन आहुति शांति के लिये दी जाती है, फिर बालक होंठों को बन्द कर मुख प्रक्षालन करे। अपने हाथों को होम की अग्नि से सेक कर तीन बार मुख से लगावें तथा अग्नि की स्तुति कर उसे विसर्जन करें। अनन्तर बालक प्रथम ही अपना दायां पैर आगे रखकर होम मण्डप से बाहर आकर माँ के पास जाकर '**मातर्भिक्षां देहि**' हे माँ! मुझे भिक्षा दो ऐसा स्पष्ट उच्च स्वर से कहे। माता भी दोनों हाथों से चावल भरकर पुत्र को देवे। यह माता से आई हुई पहली भिक्षा श्री जिनेन्द्र देव को अर्पण करे। माता से भिक्षा मांगने के बाद भाई बंधुओं से भिक्षा मांगे सब लोग चावल और खाने योग्य पदार्थ भिक्षा में देवें। खाने योग्य पदार्थों को बालक स्वयं खावे। यज्ञोपवीत विधि में यह भिक्षा विधि सबको करनी चाहिये परन्तु राजपुत्र और अत्यंत धनी लोगों के लिये यह विधि आवश्यक नहीं है। जब बालक भिक्षा मांग रहा हो तब बंधुवर्ग उससे कहें कि हे वत्स! तुम अभी बालक हो यहीं गुरु के समीप रहकर विद्याभ्यास करो। बालक भी रहने की स्वीकारता देकर भिक्षा मांगना बंद कर दे। अनंतर सब लोग बालक के साथ श्री जिनालय में जाकर दर्शन पूजन कर वापिस आवें। उस दिन साधर्मी भाईयों को भोजन, वस्त्र, तांबूलादि देकर आदर सत्कार करना चाहिये। श्रावण महिने में पूर्णिमा के दिन अति संक्षेप से होमादि क्रिया कर यज्ञोपवीत बदलना चाहिये।

वर्षेतीते त्रिकालेषु संध्यावंदनसत्क्रियाम्।
सदा कुर्यात् स पुण्यात्मा यज्ञोपवीतधारकः।।33 से 53।। अ० 9

अर्थ– यज्ञोपवीत संस्कार के एक वर्ष बाद नित्य संध्या वंदनादि क्रिया करना चाहिये। संध्या वंदनादि की विधि जैन शास्त्रों में मिलती है। यज्ञोपवीत गिर जाय, टूट जाय तो स्नानकर, दूसरा नवीन यज्ञोपवीत धारण कर पहला जलाशय में डाल देना चाहिये। **ॐ नमः परमशांताय शांतिकराय पवित्रीकृतायार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि ममगात्रं पवित्रं भवतु अर्ह नमः स्वाहा।**

व्रतावतरण

व्रतचर्यामहं वक्ष्ये क्रियामस्योपविभ्रतः।
कट्यूरूरः शिरोलिंगमनूचानव्रतोचितम्।।109।। आदि० पर्व 38

अर्थ– ब्रह्मचर्य व्रत के योग्य कमर, जाँघ, वक्षस्थल और सिर के चिह्न को धारण करने वाले इस ब्रह्मचारी बालक की व्रतचर्या नामकी क्रिया का वर्णन करते हैं।

कटिलिंगं भवेदस्य मौंजीबंधात्त्रिभिर्गुणैः।
रत्नत्रितयशुद्ध्यंगं तद्धि चिह्नं द्विजात्मनाम्।।110।।

अर्थ– तीन तार की मूंज की रस्सी बांधने से कमर का चिह्न होता है, यह मौंजी बंधन रत्नत्रय की विशुद्धि का अंग है और द्विजों का चिह्न है।

तस्येष्टमूरुलिंगं च सुधौतसितशाटकम्।
आर्हतानां कुलं पूतं विशालम् चेतिसूचने।।111।।

अर्थ– अत्यंत धुली हुई सफेद धोती उसकी जंघा का चिह्न है वह धोती यह सूचित करती है कि अरहंत भगवान का कुल पवित्र और विशाल है।।

उरोलिंगमथास्य स्याद् ग्रथितं सप्तभिर्गुणैः।
यज्ञोपवीतकं सप्त परमस्थानसूचकम्।।112।।

अर्थ– उसके वक्षस्थल का चिह्न सात तार का गूंथा हुआ यज्ञोपवीत सप्त परम स्थानों का सूचक है।

शिरोलिंगं च तस्येष्टं परं मौण्ड्य मनाविलं।
मौण्ड्यं मनोवचःकायगतमस्योपबृंहयत्।।113।।

अर्थ– उसके सिर का चिह्न स्वच्छ और उत्कृष्ट मुंडन है जो कि उसके मन वचन काय के मुंडन को बढाने वाला है। प्रत्येक विद्यार्थी को ऊपर कहे हुये चारों चिह्न धारण कर ब्रह्मचर्य की विशुद्धता के लिये अहिंसादि अणुव्रत धारण करना चाहिये। ऐसे विद्यार्थी को लकड़ी की दातौन, ताम्बूल, अंजन और उबटनादि लगाकर स्नान करना अनुचित है। उसे शरीर की शुद्धि के लिये केवल दिन में स्नान करना चाहिये, पलंग, चारपाई आदि पर न सोवे, न किसी दूसरे के शरीर से अपना शरीर रगड़े अकेला ही सोवे। इसी में इसके व्रत की शुद्धता रह सकती है। यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् श्रावकाचार गुरुमुख से पढ़ना चाहिये। गुरुमुख से पढ़ने का अभिप्राय यह है कि श्रावकों की बहुत सी ऐसी क्रियायें हैं जो अनेक शास्त्रों के मन्थन करने से निकलती हैं गुरुमुख से वे सहज ही प्राप्त हो सकती हैं। श्रावकाचार पढ़ने के बाद न्याय, व्याकरण आदि पारमार्थिक, लौकिक विद्यायें पढ़े। यह बालक जब तक विद्याध्ययन करेगा तब तक उसके यही वेष और व्रत रहेगा। विद्याध्ययन पूर्ण होते ही यदि मनोबल कमजोर है तो वेष तथा व्रत पूरा हो जायेगा और गृहस्थों के जो मूलगुण हैं वे ही इसके होंगे तथा मनोबल मजबूत है तो बाह्य वेष और व्रतों को भविष्य में भी रख सकता है। श्रावण पूर्णिमा और श्रवण नक्षत्र में पूर्व के समान होमादि क्रिया करके गुरु की साक्षी पूर्वक यदि मनोबल कमजोर है तो कटिलिंग मौंजी का त्याग कर बाद में वस्त्र पहने, ताम्बूल खाये और शय्या पर सोवे, आभरण और माला आदि पहने यदि मनोबल मजबूत है तो पूर्ववत् व्रत और वेष रखे। जो वह लड़का क्षत्रिय है तो वह शस्त्र धारण करे और जो वैश्य है तो व्यापारादि में लग जाये और ब्राह्मण है तो आत्म साधना में लगा रहे।

श्रावण सुदी पूर्णिमा के दिन रक्षाबन्धन और यज्ञोपवीत की क्रिया

श्रावणे स्नानतर्पणानंतरं–अद्य भगवते पौर्णमास्यां तिथौ श्रवण नक्षत्र युक्तायां सर्वोत्तमे पर्वणि दुःखमसुखमाभिधान तुरीयकाल प्रारम्भे आधित्यध्यापनादि विशिष्ट कर्म अनुष्ठान परायण ब्राह्मणाभिजन विदित्सायां आद्येन चक्रिणा अंत्येन वेधसा षोडश तमेन कुलधरेण राजर्षिणा भरतेश्वरेण मंगलार्थं परीक्षार्थं समुत्पादित सर्व धान्यांकुर प्रसारित प्रदेशे परीक्ष्येण सम्यग्दृशो ब्राह्मणाः ब्रह्मोपलक्षितयज्ञसूत्रं संधारणादाविर्भूताः तेषां यज्ञोपवीतसंधारणार्थं विधीयमानस्य होमकर्मणो अनादिमुखे पुण्याह वाचनां करिष्ये इति श्रावण संकल्पः। आज्य समिधाहूतिं विधाय यज्ञोपवीतमंत्रेण यज्ञोपवीताहूतिं दत्त्वा यज्ञोपवीतं संधार्य आचम्य ॐ भूर्भुवः स्वाहा इत्यादिना तिलहोमं कृत्त्वा वाचनां गृह्णीयात् तद् ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थानां। इति श्रावण विधिः ब्रह्मसूरि त्रिवर्णाचार।

गर्भाष्टमे विप्राणां, नवमे क्षत्रियाणां, दशमे वैश्यानां उपनीति क्रिया भवति अगतिगत्या चेत् विवाहे अवश्यमेव कार्यं वा चतुर्विंशतितमे वर्षे। तत्र कुमारस्य केशवापन पूर्वकं चतुष्कोण कलशादीन् स्नानं वाचनां जिनार्चनां कृत्त्वा ॐ नमः परमशांताय शांतिकराय पवित्रीकृतांगायार्हं रत्नत्रय स्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु भवतु अर्हं नमः स्वाहा। ॐ नमोर्हते भगवते तीर्थंकर परमेश्वराय कटिसूत्रं कौपीनसहितं मौंजीबंधं करोमि पुण्यबंधो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा ॐ नमोर्हते भगवते तीर्थंकरपरमेश्वराय

कटिसूत्रं परमेष्ठिने ललाटेशेखरं शिखायां पुष्पमालां च दधामि मां परमेष्ठिनः समुद्धरन्तु ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः स्वाहा। नवीन वस्त्रोत्तरीय परिधानं पूर्ववत् कुर्यात् पश्चादाचमन पूर्वकं नवीनौन्दुम्बर विष्टरे प्राङमुखमुत्तरमुखं वा उपविश्य सुमुहूर्ते उपाध्यायः पिता वा कुमारस्य मुकुलितौ स्वहस्तौ स्वहस्ताभ्यां धृत्त्वा ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कुमारस्योपनयनं करोमि अयं विप्रोत्तमो भवतु असिआउसा स्वाहा, इति त्रि रुच्चार्य पंचनमस्कार मुपादिशेत् तदनन्तरं होम दानादिकं कुर्यात्। ततः प्रागुक्तप्रात रुत्थानादिकं सदाचरणं विधेयं चतुर्थदिने पूर्ववत् स्नानपुण्याहजिनार्चनं होमं विधाय शोभनां वसतिं गत्वा त्रिपरीत्य जिनान् गुरून् समभ्यर्च्य वंदित्त्वा स्व गृहे शिष्टबन्धु जनैः सह भुंजीत। तदुपनीते तेन शिरो मुंडनं कटिसूत्रं कौपीनं मौंजिबंधनं ब्रह्मचर्यं षण्मास पर्यंतं संवत्सरत्रय पर्यंतं वा विधेयं।

जनेऊ बनाने की विधि

जनेऊ 96 चोक (चार अंगुलियों के एक साथ जोड़ने को चोक कहते हैं) का होता है ऐसा आगम प्रमाण है। इस प्रकार एक चोक के तीन अविच्छिन्न तंतु सौभाग्यवती स्त्री या कन्या के हाथ से काते हुए एक तार करना चाहिये।

प्रश्न16–चोक से ही सूत का प्रमाण क्यों बतलाया?

उत्तर–चार पुरुषार्थों की सिद्धि रत्नत्रय धारक पुरुषों को ही होती है। उसको त्रिगुणित करने पर 6 द्रव्य, 7 तत्त्व, 9 पदार्थ, 5 अस्तिकाय अथवा मन, वचन, काय कृत, कारित, अनुमोदना और समरम्भ, समारम्भ, आरम्भ इनको परस्पर में गुणा करने से 27 हो जाते हैं। इनसे वेष्टित पंच परमेष्ठी, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय के स्वरूप का बोध होता है। पुनः त्रिगुणित किया हुआ वह यज्ञोपवीत तीन तार का रत्नत्रय का बोध कराता है। यज्ञोपवीत के ऊपर की ग्रन्थि ॐ तत्त्व का ध्यान कराती है।

होम विधि – होम के तीन भेद

होमस्तु त्रिविधो ज्ञेयो गृहिणां शान्तिकारकः।
पानीयबालुका कुण्डभेदाद्रम्यः स्वशक्तितः।।164।।त्रैवर्णि० पृ० 113 अ० 4

1. जलहोम 2. बालुकाहोम 3. कुण्ड होम। गर्भाधानादि निखिल संस्कारों में होम करना अत्यावश्यक है। होम की संक्षेप विधि इस प्रकार है। संस्कारों में जो होमादि क्रिया की जाती है वह प्रायः घर पर ही होती है। इसलिये घर के किसी उत्तम भाग में आठ हाथ लम्बी आठ हाथ चौड़ी एक हाथ ऊँची तीन कटनी की एक वेदी बनावें। इस वेदी के ऊपर पश्चिम की ओर एक हाथ जगह छोड़कर एक हाथ लम्बी एक हाथ चौड़ी एक हाथ ऊंची एक छोटी वेदी और बनावें इसमें भी तीन कटनी हों। इस छोटी वेदी पर श्री जिनेन्द्र देव की प्रतिमा स्थापन करें। प्रतिमा के सामने तीन छत्र तीन चक्र (धर्म चक्र) और स्वस्तिक (साथिया) स्थापन करें, प्रतिमा के दाईं ओर यक्ष और बाईं ओर यक्षी को स्थापन करें। इस छोटी वेदी के सामने एक हाथ जगह छोड़कर तीन कुंड बनावें, बीच का कुंड एक अरत्नि (मुट्ठी बाँधे हुए एक हाथ को अरत्नि कहते हैं यह एक हाथ से चार पाँच अंगुल कम होती है) लम्बा एक अरत्नि चौड़ा एक अरत्नि गहरा चतुष्कोण (चौकोर) कुंड बनावें इस कुंड के ऊपर के भाग में चारों ओर तीन – तीन मेखला बनावे।

इस कुंड के दक्षिण की ओर (दाईं ओर) त्रिकोण कुंड बनावें इस कुंड की तीनों भुजायें एक – एक अरत्नि लम्बी हो, गहराई एक अरत्नि हो, तीनों भुजाओं में चतुष्कोण कुंड के समान मेखला भी तीन– तीन हों तथा चतुष्कोण कुंड के उत्तर की ओर गोल कुंड बनावें जिसका व्यास और गहराई एक अरत्नि हो तथा मेखला भी तीन हों।

इन सब कुंडों की मेखलाओं में से प्रथम मेखला की चौड़ाई ऊंचाई पाँच मात्रा (पाँच अंगुल) द्वितीय मेखला की चार मात्रा और तृतीय मेखला की चौड़ाई ऊंचाई तीन मात्रा होनी चाहिये तथा प्रत्येक कुंड का अन्तर एक मात्रा का होना चाहिये। इन कुंडों की आठों दिशाओं में आठ दिक्पालों के पीठ (स्थान) बनावें। यह सब बनाकर जलादिक से शुद्धता कर सब की पूजा करें। प्रथम ही चतुष्कोण को, त्रिकोण को और फिर गोल कुंड को जल चन्दनादिक से चर्चे। इनमें से चतुष्कोण को तीर्थंकर कुंड, त्रिकोण को गणधर कुंड और गोल कुंड को सामान्य केवली संज्ञा है तथा चतुष्कोण की अग्नि की गार्हपत्य, त्रिकोण कुंड की अग्नि की आह्वनीय और वृत्त कुंड की अग्नि की दक्षिणाग्नि संज्ञा है। बड़ी वेदी के चारों

कोनों पर चार खम्बे खड़ें करें, ऊपर चंदोवा बाँध दें। खम्भों के सहारे से ऊख और केले के वृक्ष सुशोभित करें तथा घण्टा, तोरण, माला, मोतियों की माला आदि से सुसज्जित करें तथा चमर, दर्पण, धूपघट, करताल (पंखा), ध्वजा, कलशा आदि द्रव्य भी यथास्थान रखें।

विशेष—ऊपर तीन कुंड बनाने की विधि लिखी है परन्तु यदि और भी संक्षेप करना हो तो एक चतुष्कोण कुंड ही बनाकर उसमें सब आहूति डालनी चाहिये।

स्रुक और स्रुवा

इन्धनं क्षीरवृक्षस्य स्रुक् स्रुवं चन्दनं तथा।
अश्वत्थस्याप्यभावेऽस्य तत्पत्रं वा नियोजयेत्।।133।। त्रैवर्णि० पृ० 113 अ० 4

अग्नि में जिससे घी डालते हैं उसे स्रुक कहते हैं तथा जिस पात्र से होम द्रव्य डालते हैं उसे स्रुवा कहते हैं। क्षीर वृक्ष का (वट वृक्ष जिस को बरगद कहते हैं) स्रुक और चन्दन का स्रुवा बनावें। ये दोनों लकड़ी न मिले तो दोनों पीपल की लकड़ी के बनावें, पीपल की लकड़ी भी न मिले तो दोनों के बदले पीपल के पत्ते काम में लावें, पीपल के पत्ते भी न हों तो पलाश (ढाक) अथवा बरगद के पत्ते काम में लावें। स्रुक गौ की पूँछ के समान लम्बे मुख का बनावें तथा स्रुवा नाक के समान चौड़े मुख का बनावें। इन दोनों की लम्बाई एक– एक अरत्नि हो। जिसमें नाभि दंड छः अंगुल का हो।

समिधा

पिप्पलेन पलाशेन शम्या वा द्वादशाङ्गुलम्।
आर्द्रेन्धनैर्बुधः कुर्यात्समिधां होममुत्तमम्।।140।। त्रैवर्णि० पृ० 109 अ० 4

जो लकड़ी होम में डाली जाती है उसे समिधा कहते हैं। पीपल, पलाश, शमी (वृक्ष विशेष) तथा बरगद की लकड़ी की समिधा बनानी चाहिये। समिधा की प्रत्येक लकड़ी सीधी तथा दस अथवा बारह अंगुल लम्बी होनी चाहिये। शमी की लकड़ी तोड़ने के दिन से छः महीने तक होम के काम में आ सकती है, खदिर (खैर) और पलाश की लकड़ी तीन महीने तक तथा पीपल की लकड़ी रोज की रोज काम में आती है। अपामार्ग और अर्क (आक) एक दिन की तथा बरगद, उदुंबर आदि की लकड़ी तीन दिन की काम में आ सकती है, समिधा की कोई लकड़ी न मिले तो समिधा के बदले कुश काम में लाने चाहिये। कुश एक महीने पहले तोड़े हुये काम में आ सकते हैं और दूर्बा (दूब) उसी समय तोड़कर काम में लानी चाहिये। प्रतिमा के दाईं ओर धर्मचक्र बाईं ओर छत्रत्रय सामने पूर्ण कुम्भ और अगल बगल में यक्ष यक्षी को स्थापन करें। होम करने वाला कुंडों के पूर्व दिशा की ओर दर्भासन पर पद्मासन मार कर पश्चिम की ओर (प्रतिमा के सन्मुख) मुख करके बैठे अथवा यदि प्रतिमाजी का मुख उत्तर की ओर हो तो अपना मुँह दक्षिण की ओर करके बैठे। होमादि द्रव्यों को यथास्थान स्थापन कर परिचारकों को (सहायता करने वालों को) अपने– अपने काम में नियुक्त करें। होम की समाप्ति पर्यंत मौन व्रत धारण कर परमात्मा का ध्यान कर श्री जिनेन्द्र देव को अर्घ दें, तर्पण कर बीच के तीर्थंकर कुंड में सुगन्धि द्रव्य से अग्नि मंडल लिखें। अग्निमंडल का चित्र यह है–

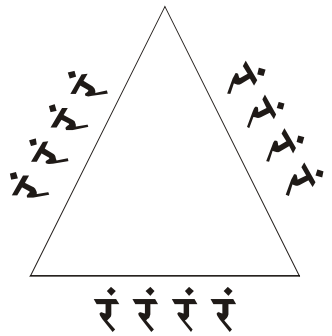

अनन्तर एक दर्भपूल में थोड़ा सा लाल कपड़ा लपेट कर मंत्र पढ़ते हुये अग्नि को जलावें साथ में घी भी डालते जायें। अग्नि जलाने के बाद आचमन, प्राणायाम और स्तुतिकर अग्नि का आह्वानन करें तथा एक अर्घ देवें। फिर गार्हपत्य अग्नि में से थोड़ी सी अग्नि लेकर उत्तर दिशा के गोल कुंड में अग्नि जलावें तथा गोलकुंड में से अग्नि लेकर दक्षिण दिशा

के त्रिकोण कुंड में अग्नि जलावें। होम करने वाले हाथ को ऊँचा उठाकर उंगलियों को मिला कर उंगलियों पर अंगूठे को रखकर मंत्र पढ़ते हुए आहूति देवें। बीच में जो घी की आहूति दी जाती है वे इस प्रकार देवें कि जिससे अग्नि की ज्वाला बढ़ जाय। जो ज्वाला अधिक बढ़ गई हो तो दर्भपूल से गाय के दूध का सिंचन करें।

बालुका होम

भूमि को गोमय (गोबर) से लीपकर उस पर गन्धोदक का छिड़काव देकर एक हाथ लम्बी एक हाथ चौड़ी भूमि में नदी की बालू बिछावें। उस पर पीपल अथवा अन्य वृक्षों की लकड़ियों को शिखर के आकार बनाकर रखें। फिर उसको प्रज्ज्वलन कर (जलाकर) नवग्रह तिथि देवता दिक्पाल और शेष देवों के लिये उसमें आहूति देवें। इसमें भी आचमन तर्पणादिक पूर्व होमों के समान ही किया जाता है। **होम कब करना चाहिये?** व्रतावतरण, विवाह, सूतक, पातक, जिन मंदिर प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा, नूतन गृहनिर्माण (नयाघर बन जाने पर), ग्रहपीड़ा और महारोगादिक की शान्ति करने के लिये तथा गर्भाधानादि के प्रसंगों में होम करना चाहिये।

जल होम।

जल होम के लिये मिट्टी अथवा तांबे का गोल कुंड होना चाहिये, जो चन्दन, अक्षत, माला आदिक से सुशोभित हो, जिसमें शुद्ध जल भरा हो और जो धोये हुये शुद्ध चावलों के पुंज पर रखा हो ऐसे जलकुण्ड में दिक्पाल और नवग्रहों को आहुति देवें। दिक्पालों को सात धान्यों से और नवग्रहों को तीन धान्यों से आहुति देवें। अन्त में किसी पके फल से पूर्णाहुति देवें।

सप्त धान्य– चना, उड़द, मूँग, गेहूँ, धान, जौ, तिल,। **तीन धान्य–** तिल, धान, जौ।

श्री मंगलाष्टक

श्रीमन्नम्रसुरासुरेन्द्रमुकुटप्रद्योत रत्नप्रभा।
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधींदवः स्थायिनः।।
ये सर्वेजिनसिद्ध सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः।
स्तुत्यायोगिजनैश्चपंचगुरुवः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।1।।

सम्यग्दर्शनबोधवृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं।
मुक्तिश्री नगराधिनाथजिनपत्युक्तोपवर्गप्रदः।
धर्मःसूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालय श्र्यालयं।
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मंगलम्।।2।।

नाभेयादिजिनाधिपास्त्रिभुवने ख्याताश्चतुर्विंशतिः।
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादशः।।
ये विष्णुप्रतिविष्णुलांगलधराः सप्तोत्तरा विंशति।
स्त्रैकाल्येप्रथितास्त्रिषष्ठिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।3।।

देव्योष्टौ च जयादिका द्विगुणिता विद्यादिकादेवताः।
श्रीतीर्थंकर मातृकाश्च जनका यक्षाश्च यक्ष्यस्तथा।।
द्वात्रिंशत्त्रिदशाग्रहास्तिथिसुरा दिक्कन्यकाश्चाष्टधा।
दिक्पाला दश चेत्यमीसुरगणाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।4।।

ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसोवृद्धिंगताः पंच ये।
ये चाष्टांगमहानिमित्तकुशला येष्टौविधाश्चारणाः।।
पंचज्ञानधरास्त्रयोपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धीश्वराः।
सप्तैतेसकलार्चितागणभृतः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।5।।

कैलासे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे।
चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलेर्हतां।।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो।
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवा कुर्वन्तु ते मंगलम्।।6।।

ज्योतिर्व्यन्तरभावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः।
जम्बू शाल्मलि चैत्यशाखिषु तथा वक्षाररूप्याद्रिषु।।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे।
शैले ये मनुजोत्तरेजिनगृहाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।7।।

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो।
यो जातः परिनिष्क्रमेणविभवो यः केवलज्ञानभाक्।।
यः कैवल्यपुरः प्रवेशमहिमा संभावितः स्वर्गिभिः।
कल्याणानि च तानि पंच सततं कुर्वन्तु ते मंगलम्।।8।।

आकाशं मूर्त्यभावादघकुलदहनादग्निरुर्वी क्षमाप्त्या।
नैसंग्याद्वायुरापःप्रगुण समतयास्वात्मनिष्टैः सुयज्वः।।
सोमः सौम्यत्वयोगाद् रविरितिचि विदुस्तेजसः सन्निधाना।
द्विश्वात्मा विश्वचक्षु र्वितरतुभवतांमंगलं श्रीजिनेशः।।9।।

यः कर्ता जगतां यमेकपुरुषं भव्यास्समाचक्षते।
येनादेशिहिताहितं मुनिजना यस्मै नमस्कुर्वते।
यस्माद्वेदपरम्परासमुदिता श्रीर्यस्य नित्यास्पदा।
यस्मिन्नेव जगत्स्थितं स जिनपोनिश्रेयसायास्तुवः।।10।।

इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्यसम्पत्प्रदं।
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः।।
ये शृण्वंति पठंति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता।
लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि।।11।।

होमविधि त्रै० अ० 5 पृ० 142–154

प्रथम ही होमशाला में जाकर **ॐ ह्रीं क्ष्वीं भूः स्वाहा।** यह मंत्र पढ़कर पुष्पांजलि क्षेपण करें। **ॐ ह्रीं अत्रस्थक्षेत्रपालाय स्वाहा।** यह मंत्र पढ़कर क्षेत्रपाल को नैवेद्य अर्पण करें। **ॐ ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्न विनाशनाय महीं पूतां कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा।** यह मंत्र पढ़कर दर्भपूल से भूमि को झाड़ें। **ॐ ह्रीं मेघकुमाराय धरां प्रक्षालय प्रक्षालय अं हं सं तं पं स्वं झं झं यं क्षः फट् स्वाहा।** यह मंत्र पढ़कर भूमि पर दर्भपूल से थोड़ा पानी छिड़कें। **ॐ ह्रीं अग्निकुमाराय ह्रम्ल्व्र्यूं ज्वल ज्वल तेजः पतये अमिततेजसे स्वाहा।** यह मंत्र पढ़कर थोड़े सूके दाभ उस भूमि पर जलावें। **ॐ ह्रीं क्रौं षष्ठिसहस्र संख्येभ्यो नागेभ्यः स्वाहा।** यह मंत्र पढ़कर नागों को एक अर्घ देवें। **ॐ ह्रीं भूमिदेवते इदं जलादिकमर्चनं गृहाण गृहाण स्वाहा।** यह मंत्र पढ़कर भूमि की पूजा करने के लिये एक अर्घ देवें। **ॐ ह्रीं अर्हं क्षं वं वं श्रीपीठस्थापनं करोमि स्वाहा।** यह मंत्र पढ़कर होमकुंड के पश्चिम की ओर एक सिंहासन स्थापन करें। **ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः स्वाहा।** यह मंत्र पढ़कर सिंहासन की पूजा करें। **ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं जगतां सर्वशांतिं कुर्वन्तु श्री पीठे प्रतिमास्थापनं करोमि स्वाहा।** यह मंत्र पढ़कर सिंहासन पर प्रतिमा स्थापन करें। **ॐ ह्रीं अर्हं नमः परमेष्ठिभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अर्हं नमः परमात्मकेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अर्हं नमोनादिनिधनेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अर्हं नमो नृसुरासुरपूजितेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अर्हं नमोनन्तज्ञानेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अर्हं नमोनन्तदर्शनेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अर्हं नमोनन्तवीर्येभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अर्हं नमोनन्तसोख्येभ्यः स्वाहा।** इन आठ मन्त्रों से प्रतिमाजी का पूजन करें। **ॐ ह्रीं धर्मचक्रायाप्रतिहततेजसे स्वाहा।**

धर्मचक्र का पूजन करें। **ॐ ह्रीं श्वेतछत्रत्रय श्रिये स्वाहा।** छत्रत्रय को एक अर्घ देवें। **ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं ह्सौं ह्मौं सर्वशास्त्रप्रकाशिनि वद वद वाग्वादिनि अवतर अवतर अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः सन्निहिता भव भव वषट् क्लूं नमः सरस्वत्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा एवं गन्धाक्षतपुष्पचरुदीप धूपफलवस्त्राभरणादिकम्।** सरस्वती की पूजा करें। **ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र पवित्रतरगात्र चतुरशीति लक्षणगुणाष्टादशसहस्र शीलधरगणधर–चरणाः आगच्छत आगच्छतसंवोषट् आह्वाननं अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः स्थापनं अत्र मम् सन्निहिता भवत भवत वषट् सन्निधिकरणं नमो गणधरचरणेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा। एवं गंधाक्षतपुष्पादिकम्।** गुरु की पूजा करें। **ॐ ह्रीं कलियुगप्रबन्धदुर्मार्गविनाशन परमसन्मार्गपरिपालन भगवन यक्षेश्वरजलाद्यर्चनं गृहाण गृहाण।** श्रीप्रतिमा के दक्षिण भाग में यक्ष देव की पूजा करें। **ॐ ह्रीं कलियुग प्रबन्धदुर्मार्गविनाशिनिसन्मार्गप्रवर्तिनि भगवति यक्षीदेवते जलाद्यर्चनं गृहाण गृहाण।** श्री प्रतिमा के वाम भाग में यक्षी शासनदेवी की पूजा करें।

ॐ ह्रीं उपवेशनेभूः शुध्यतु स्वाहा। होम कुण्ड के पूर्वभाग में बैठने की भूमि शुद्ध करें।

ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमो नमः ब्रह्मासने अहमुपविशामि स्वाहा। होम करने वाला होम कुण्ड के पश्चिम की ओर मुख कर बैठें। **ॐ ह्रीं स्वस्तये पुण्याहकलशं स्थापयामि स्वाहा।** चावलों के पुंज पर नारियल या कोई फल सहित कलश पुण्याहवाचन के लिए स्थापना करें।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोर्हते भगवते पद्ममहापद्मतिगिंछकेशरि पुण्डरीकमहापुण्डरीकगंगा सिंधुरोहितरोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदा नारी नरकांता सुवर्ण रूप्यकूला रक्ता रक्तोदा पयोधिः शुद्ध जल सुवर्ण घटप्रक्षालित रत्न गन्धाक्षतपुष्पोर्चितमामोदकं पवित्रं कुरु कुरु झं झं झौं झौं बं बं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं सः। स्थापन किये हुये कलशों का जल पवित्र करें। **ॐ ह्रीं नेत्राय संवौषट्।** मंत्र पढ़ कर कलश की पूजा करें। अनन्तर होम करने वाले गृहस्थाचार्य बायें हाथ में कलश लेकर पुण्याहवाचन पढ़ते हुये दायें हाथ से भूमि को सींचें। पुण्याहवाचन पूरा हो जाने पर उस कलश को कुण्ड के दक्षिण भाग में स्थापन कर दें।

पुण्याहवाचन मंत्र

ॐ पुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्तां प्रीयंतां भगवन्तोर्हन्तः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः सकल कार्याः सकल मुखास्त्रिलोकेशास्त्रिलोकेश्वर पूजितास्त्रिलोकनाथास्त्रिलोक महितास्त्रिलोक प्रद्योतनकराः ॐ वृषभ अजित संभवाभिनन्दन सुमतिपद्मप्रभसुपार्श्व चन्द्रप्रभः पुष्पदंत शीतलश्रेयो वासुपूज्य विमल अनन्त धर्म शान्ति कुंथु अर मल्लि मुनिसुव्रत नमिनेमि पार्श्वनाथ श्री वर्द्धमानशान्ताः शान्तिकराः सकल कर्मरिपु विषयकान्तार दुर्गविषमेषु रक्षन्तुनोजिनेन्द्राः सर्वविदश्च। श्रीह्रीधृतिविजय कीर्तिबुद्धिलक्ष्म्योमेधाविन्यः सेवाकृषि वाणिज्यवाद्यलेख्यमंत्रसाधन चूर्णिप्रयोगस्थानगमनसिद्धसाधनायाप्रतिहतशक्तयोः भवन्तु नो विद्यादेवताः। नित्यमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधवश्च भगवन्तो नः प्रीयंतांप्रीयंतां आदित्यसोमांगारकबुधबृहस्पतिशुक्रशनैश्चरराहु केतु ग्रहाश्च नः प्रीयन्तां प्रीयन्तां तिथि करणमुहूर्त्तलग्नदेवता इह चान्यग्रामादिष्वपिवासुदेवताः सर्वे गुरुभक्ता अक्षीणकोश कोष्ठांगाराभवेयुः। ध्यानतपोवीर्यकर्मानुष्ठानादिनित्यमेवास्तुमातृ पितृभ्रातृसुतसुहृत्स्वजनसम्बधि बन्धुवर्गसहितानां धनधान्यैश्वर्यद्युतिबलयशो वृद्धिरस्तु सामोदः प्रमोदोस्तु शान्तिर्भवतु कान्तिर्भवतु तुष्टिर्भवतु पुष्टिर्भवतु सिद्धिर्भवतु काममांगल्योत्सवाः सन्तु शाम्यन्तु घोराणि पुण्यं वर्द्धतां धर्मो वर्द्धतां यशो वर्द्धतां श्रीश्च वर्द्धतां कुलं गोत्रं चाभिवर्द्धतां स्वस्तिभद्रं चास्तु वः हतास्ते परिपन्थिनः शत्रुत्वनिधनं यातु निःष्प्रतीपमस्तु शिवमतुलमस्तु सिद्धाः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः स्वाहा। इति पुण्याहवाचन मंत्राः।

ॐ ह्रीं स्वस्तये मंगलकुम्भं स्थापयामि स्वाहा। कुण्ड के बाईं ओर मंगलकलश और उसी के पास गंध, अक्षत, पुष्प, फल आदि से सुशोभित पांच पंचपात्र, प्रेक्षण करने योग्य रकाबी पूजा और होम की सामग्री रखें। **ॐ ह्रीं परमेष्ठिभ्यो नमो नमः।** परमात्मा का ध्यान करें। **ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं ध्यातृभिरभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा।** परमात्मा को अर्घ्य देवें। **ॐ ह्रीं नीरजसे नमः। ॐ दर्पमथनाय नमः।** ये दोनों मंत्र कुंड में लिखें और फिर जल दर्भ गंध अक्षतादिक से कुण्ड की पूजा करें। **ॐॐॐॐ रं रं रं रं अग्निं स्थापयामि स्वाहा** कुण्ड में अग्नि स्थापन करें। **ॐॐॐॐ रं रं रं रं दर्भं निक्षिप्य अग्निसन्धुक्षणं करोमि स्वाहा** कुंड में दर्भ डालकर अग्नि जलावें। **ॐ ह्रीं इवीं क्ष्वीं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रां हं सः स्वाहा।** आचमन करें। **ॐ भूर्भुवःस्वः अ सि आ उ सा अर्हं प्राणायामं**

करोमि स्वाहा तीन बार प्राणायाम करें। **ॐ नमोर्हते भगवते सत्यवचनसंदर्भाय केवलज्ञान दर्शनप्रज्वलनाय पूर्वोत्तराग्रं दर्भपरिस्तरणमुदुम्बरसमित्परिस्तरणं च करोमि स्वाहा।** होमकुण्ड की परिधि का बन्धन करें अर्थात् पांच पांच दर्भ मिलाकर उनमें थोड़ी ऐंठ देकर कुण्ड के चारों ओर रखें। दक्षिण और उत्तर की ओर रखे हुए दर्भों का अंत का भाग पूर्व दिशा की ओर रहे तथा पूर्व और पश्चिम दिशा में रखे हुये दर्भों का अन्त का भाग उत्तर की ओर रहे। इसी प्रकार कुण्ड के चारों ओर उदुम्बर की समिधा भी रखें। **ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्निकुमार देव आगच्छ आगच्छ।** होम कुण्ड में अग्निकुमार को आह्वान कर प्रज्ज्वलित कर उसकी शिखा की गार्हपत्य संज्ञा रखकर उस अग्नि में अरिहंत की दिव्य मूर्ति का संकल्प कर अथवा श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन का संकल्प कर अग्नि की पूजा करें। **ॐ ह्रीं क्रौं प्रशस्त वर्ण सर्वलक्षण सम्पूर्ण स्वायुधवाहनवधूचिह्न सपरिवाराः पंचदशतिथिदेवताः आगच्छत आगच्छत इदं अर्घ्यं गृह्णीत गह्णीत स्वाहा।** कुण्ड की प्रथम मेखला पर 15 तिथि देवताओं को आह्वान कर एक अर्घ्य देवें। सबसे नीचे की मेखला प्रथम मेखला कही जाती है। **ॐ ह्रीं क्रौं प्रशस्त वर्ण सर्व लक्षण सम्पूर्ण स्वायुध वाहन वधूचिह्न सपरिवाराः चतुर्णिकायेन्द्र देवता आगच्छत आगच्छत एतदर्घ्यं गृह्णीत गृह्णीत स्वाहा।** ऊपर की मेखला पर बत्तीस इन्द्रों का आह्वान और पूजन करना चाहिये। **ॐ ह्रीं क्रौं सुवर्ण वर्ण सर्व लक्षण सम्पूर्ण स्वायुध वाहन वधू चिह्नसपरिवाराः इन्द्रदेव आगच्छ आगच्छइदं अर्घ्यं गृहाण गृहाण स्वाहा।** छोटी वेदी पर दश दिक्पालों का आह्वान और पूजन करें। **ॐ ह्रीं स्थालीपाकमुपहरामि स्वाहा।** स्थालीपाक को फूल और अक्षतों से भरकर अपने पास रखें। **ॐ ह्रीं होमद्रव्यमादधामि स्वाहा।** होम करने के सब द्रव्य अपने पास रखें। **ॐ ह्रीं आज्यपात्रमुपस्थापयामि स्वाहा।** घी का पात्र अपने पास रखें। **ॐ ह्रीं स्रुचमुपस्करोमि स्वाहा। स्रुचस्तापनं मार्जनं जल सेचनम् पुनस्तापनमग्रेनिधापनं च।** प्रथम ही उसे अग्नि में तपाकर धोकर जलसिंचन कर फिर तपावें और फिर अपने पास रखें। **ॐ ह्रीं स्रुवमुपस्करोमि स्वाहा**। स्रुचा के समान स्रुवा का भी संस्कार कर उसे अपने समीप रखें। **ॐ ह्रीं आज्यमुद्वासयामि स्वाहा**। दर्भपूल से घी का उद्वासन करें और फिर उसे तपाकर देखें। **ॐ ह्रीं पवित्रतरजलेन द्रव्यशुद्धिं करोमि स्वाहा।** हवन सामग्री को पवित्र जल से छींटे देकर शुद्ध करें। **ॐ ह्रीं कुशमादधामि स्वाहा।** दर्भपूल से सब होम द्रव्य का स्पर्श करे। **ॐ ह्रीं परमपवित्राय स्वाहा।** दायें हाथ की अनामिका में दाभ की एक मुंदरी बनाकर पहने। **ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय स्वाहा।** यज्ञोपवीत पहने। **ॐ ह्रीं अग्निकुमाराय परिषेचनं करोमि स्वाहा।** अग्निकुण्ड के चारों ओर थोड़ा थोड़ा पानी छिड़के। अब नीचे लिखे मंत्रों से घी की आहुति एक बार छह आहुति देकर फिर दुबारा तिबारा इस प्रकार 18 बार आहुति देवें। ये सब 108 आहुति हो जायेंगी। **ॐ ह्रीं अर्हं अर्हत्सिद्धकेवलिभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं पंचदशतिथिदेवेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं नवग्रह देवेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं द्वात्रिंशदिन्द्रेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं दशलोकपालेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अग्नीन्द्राय स्वाहा** फिर नीचे लिखे पांच मंत्रों को पढ़कर तर्पण करें। **ॐ ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा। ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा। ॐ ह्रीं आचार्यपरमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा। ॐ ह्रीं उपाध्यायपरमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा। ॐ ह्रीं सर्वसाधु परमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा। ॐ ह्रीं अग्निं परिषेचयामि स्वाहा।** कुंड में चारों ओर थोड़े दूध की पतली धार देनी चाहिये। जिससे अग्नि बुझने न पावे इसको पर्युक्षण कहते हैं। नीचे लिखे मन्त्रों से 108 बार समिधा की आहुति देवें। समिधा हाथ से ही डालनी चाहिये। समिधा की 108 छोटी छोटी लकड़ी रख लेवें। मन्त्र को एक एक बार पढ़कर एक एक लकड़ी डालते जायें। **ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा स्वाहा।** समिधाहुति देने के बाद **ॐ ह्रीं अर्हं अर्हत्सिद्धकेवलिभ्यः स्वाहा।** इत्यादि छह मंत्रों से घी की आहुति देवें। **ॐ ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा।** इत्यादि पांचों मंत्रों से तर्पण कर दूध की धारा देकर पर्युक्षण करें। पर्युक्षण करते समय ये ही मंत्र पढ़ें। लवंग, गंध, अक्षत, गुग्गुल, तिल, शालिचावलों का भात, केशर, कपूर, लाजा (खीलें), अगुरु और मिश्री इन सब को मिलाकर स्रुवा से आहुति देते जायें। मंत्र 27 हैं सो चार बार पढ़ कर 108 आहुति देवें। **ॐ ह्रीं अर्हदभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं सूरिभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं पाठकेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं सर्वसाधुभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं जिनधर्मेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं जिनागमेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं जिनालयेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाय स्वाहा। ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय स्वाहा। ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं जयाद्यष्टदेवताभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं षोडशविद्यादेवताभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं चतुर्विंशति यक्षेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं चतुर्विंशतियक्षीभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं दशविधभवनवासिभ्यः**

स्वाहा। ॐ ह्रीं अष्टविध व्यन्तरेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं चतुर्विध ज्योतिरिन्द्रेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं द्वादशविधकल्पवासिभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अष्टविधकल्पवासिभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं दशदिक्पालकेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं नवग्रहेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अग्नीन्द्राय स्वाहा। ॐ स्वाहा। भूः स्वाहा। भुवः स्वाहा। स्वः स्वाहा। इन मंत्रों से लंवगादिक की आहुति देकर **ॐ ह्रीं अर्हं अर्हत्सिद्ध केवलिभ्यः स्वाहा।** इत्यादि छह मंत्रों से छह घी की आहुति देवें फिर '**ॐ ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिनः तर्पयामि**' इत्यादि पांच मंत्रों से तर्पण करें और '**ॐ ह्रीं अग्निंपरिषेचयामि स्वाहा**' इस मंत्र से अग्नि में दूध की धार देकर पहले के समान पर्युक्षण करें। आगे 36 पीठिकामंत्र हैं सो प्रत्येक मंत्र को तीन तीन बार पढ़कर शालिचावल का भात, दूध, घी, खीर, मावा, मिश्री, केला इन सब पदार्थों को मिलाकर स्रुचा से आहुति देते जायें। सब आहुति 108 हो जायेंगी। पीठिकामंत्र ये हैं– **ॐ सत्यजाताय नमः। ॐ अर्हज्जाताय नमः। ॐ परमजाताय नमः। ॐ अनुपमजाताय नमः। ॐ स्वप्रधानाय नमः। ॐ चलाय नमः। ॐ अक्षयाय नमः। ॐ अव्याबाधायनमः। ॐ अनन्तज्ञानाय नमः। ॐ अनन्तदर्शनाय नमः। ॐ अनन्तवीर्याय नमः। ॐ अनन्तसुखाय नमः। ॐ नीरजसे नमः। ॐ निर्मलाय नमः। ॐ अच्छेद्याय नमः। ॐ अभेद्याय नमः। ॐ अजराय नमः। ॐ अमराय नमः। ॐ प्रमेयाय नमः। ॐ अगर्भवासाय नमः। ॐ अक्षोभ्याय नमः। ॐ अविलीनाय नमः। ॐ परमथनाय नमः। ॐ परमसिद्धेभ्यो नमः। ॐ अर्हत्सिद्धेभ्यो नमः। ॐ केवलिसिद्धिभ्यो नमः। ॐ अनादिपरमसिद्धभ्यो नमः। ॐ अनाद्यनुपम सिद्धेभ्यो नमः। ॐ सम्यग्दृष्टेआसन्नभव्यनिर्वाणपूजार्हं अग्नींद्राय स्वाहा। सेवाफलं षट्परम स्थानं भवतु।**

ये 108 आहुति देने के बाद **ॐ ह्रीं अर्हं** इत्यादि छह मंत्रों से घी की छह आहुति देवें। **ॐ ह्रीं** इत्यादि पांच मंत्रों से तर्पण करें और फिर **ॐ ह्रीं अग्निं परिषेचयामि स्वाहा** इस मंत्र से कुण्ड में दूध की धार देकर पर्युक्षण करें। इसके बाद पूर्णाहुति देवे। पूर्णाहुति के मंत्र प्रारम्भ से अन्त पर्यंत जब तक पूर्ण न हो तब तक अग्नि में बराबर घी की धार छोड़नी चाहिये और पूर्णाहुति में अष्टद्रव्य पूजन की सामग्री, नारियल अथवा और कोई फल होना चाहिये। पूर्णाहुति के मंत्र ये हैं। **ॐ तिथिदेवाः पंच दशधा प्रसीदन्तु। ॐ नवग्रहदेवाः प्रत्यवायहरा भवन्तु। भावनादयो द्वात्रिंशद्देवा इन्द्राः प्रमोदंतु। इन्द्रादयो विश्वेदिक्पालाः पालयन्तु। अग्नीन्द्रमौल्युद्भवाप्यग्निदेवता प्रसन्ना भवंतु। शेषाः सर्वेपि देवा एते राजानं विराजयन्तु। दातारं तर्पयन्तु। संघंश्लाघयन्तु। वृष्टिं वर्षयन्तु। विघ्नं विघातयन्तु। मारीं निवारयन्तु नमोर्हते भगवते पूर्णज्ज्वलितज्ञानाय सम्पूर्णफलार्घ्यं पूर्णाहुति विद्धमहे।** पूर्णाहुति देने के बाद हाथ जोड़कर ''**ॐ दर्पणोद्योत ज्ञानप्रज्ज्वलितसर्वलोकप्रकाशक भगवन्नर्हन् श्रद्धां मेधां प्रज्ञां बुद्धिं श्रियं बलं आयुष्यं तेजः आरोग्यं सर्वशांतिं विधेहि स्वाहा।**'' ये सब मंत्र पढ़कर भगवान से प्रार्थना करें। फिर शान्तिधारा देकर भगवान के चरणारविन्द में पुष्पांजलि चढ़ाकर चतुर्विंशति तीर्थंकरों का स्तवन कर पंचांग नमस्कार करें तथा उस अग्नि कुण्ड में से उत्तम भस्म लेकर होम करने वाला आचार्य स्वयं अपने ललाट में लगावे और दूसरे लोगों को भी लगाने को देवें। इस प्रकार होम पूरा कर होम की वेदी पर विराजमान जिन प्रतिमा और सिद्ध यंत्रों को अपने स्थान पर विराजमान कर बार बार नमस्कार कर व्रत ग्रहण कर देवों का विसर्जन करें। **ॐ क्रौं प्रशस्तवर्णाः सर्व लक्षण सम्पूर्णाः स्वायुधवाहनसमेताः क्षेत्रपालाः श्रियो गन्धर्वाः किन्नराः प्रेता भूताः सर्वे ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा इमं सार्घ्यं चरुममृतमिव स्वस्तिकं यज्ञ भागं गृह्णीत गृह्णीत।** क्षेत्रपालादि द्वारपालों की पूजा करें। **ॐ ह्रीं क्रौं प्रशस्तवर्ण सर्वलक्षण सम्पूर्णा यानायुधयुवतिजन सहिता वास्तुदेवाः सर्वेपि ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा इदमर्घ्यं चरुममृतमिव स्वस्तिकं यज्ञभागं गृह्णीत गृह्णीत।** यह मंत्र पढ़कर वेदी पर वास्तु देव का पूजन करें। **ॐ ह्रीं क्रौं प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णायानायुधयुवतिजनसहितयक्षदेव इदं अर्घ्यं बलिं गृहाण गृहाण।** तिथि देवता का पूजन करें। प्रतिपदा के दिन यक्ष देव, द्वितीया को वैश्वानर, तृतीया को राक्षस, चतुर्थी को निऋति, पंचमी को पन्नग, षष्ठी को असुर, सप्तमी को सुकुमार, अष्टमी को पितृदेव, नवमी को विश्वमाली, दसमी को चमर, एकादशी को वैरोचन, द्वादशी को महाविद्या, त्रयोदशी को मारदेव, चतुर्दशी को विश्वेश्वर और अमावस्या अथवा पूर्णिमा को पिण्डभुज का पूजन करना चाहिये। मन्त्र में जहाँ यक्ष देव लिखा है वहां जिस तिथि का पूजन करना हो तो उस तिथि के देवता का नाम लेना चाहिये। जैसे द्वितीया को वैश्वानर देव तृतीया को राक्षस देव इत्यादि। **ॐ ह्रीं क्रौं प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णयानायुध युवति जनसहितादित्य इमं बलिं गृहाण गृहाण**

स्वाहा। यह मंत्र पढ़कर वार देवता का पूजन करें। रविवार के दिन अदित्य, सोमवार को सोम, मंगल के दिन भौम, बुध के दिन बुध, बृहस्पति के दिन गुरु, शुक्र के दिन शुक्र और शनिवार के दिन शनि का पूजन करना चाहिये। जो दिन हो उस दिन उसी का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर घर में स्त्रियों को सत्य देवता (अरिहन्त आदि पंच परमेष्ठी) क्रिया देवता (छत्र, चक्र, अग्नि) कुल देवता (विश्वेश्वरी धरणेन्द्र, श्री देवी कुबेर) की पूजा करनी चाहिये।

प्र.17–गर्भ से लेकर निर्वाण पर्यंत 108 क्रियायें सर्वज्ञ प्रणीत न होने से जैनेतरों की होने से अप्रमाण है, मिथ्या हैं?

उत्तर–नहीं, आ० श्री जिनसेन स्वामी जी ने महापुराण में ये क्रियायें कहीं हैं और वास्तविक दिगम्बर आचार्य सत्य महाव्रती होने से अन्यथावादी नहीं होते अतः ये क्रियायें प्रमाण हैं, समीचीन हैं।

प्र.18–तो फिर श्रावकाचार संग्रह चौथे भाग में पृ० 161 पर पं० हीरालाल जी ने ये गर्भान्वय आदि 108 क्रियायें सर्वज्ञ प्रतिपादित नहीं है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–नहीं, जिस कुल में पं० पैदा हुए थे उस कुल में जिनाज्ञा का पालन नहीं किया जाता था तथा लौकिक और गृहस्थ परंपरा के अनुयायी थे, तीर्थंकरों की परंपरा के अनुयायी नहीं थे इसलिए इन पंडित जी ने यदि ठीक ही कहा है जो सत्य है तो सर्वत्र विधि विधानों की पुस्तकों में, प्रतिष्ठा ग्रंथों में तथा चरणानुयोग ग्रंथों में इन क्रियाओं का वर्णन क्यों किया और इन्हीं पं० ने हिंदी अनुवाद कर सामान्य समाज के लिए प्रकाशित क्यों कराया? सभी प्रकार के देवों में, सभी भोगभूमिजों में जन्म से ये चिह्न क्यों? तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार आदि ग्रंथों में इनका वर्णन क्यों? अतः जिन जिन ग्रंथों में यज्ञोपवीत का तथा गर्भान्वय आदि 108 क्रियाओं का वर्णन है वे सभी ग्रंथ, ग्रंथकर्ता तथा इनकी आज्ञा का पालन करने वाले श्रावक और साधु गण भी जिनेन्द्र आज्ञा के विपरीत मार्गगामी होने से कुशास्त्र अनायतन, कुशास्त्र भक्त अनायतन, कुगुरु अनायतन, कुगुरु भक्त अनायतन कहलाये फिर ये चार अनायतन होने से जिन मंदिर में क्यों बिराजमान करना, क्यों पूजना, अर्घ चढ़ाना, नमस्कार करना आदि? ये सब कार्य करना अनायतन सेवा कहलाई अतः इस अनाचार स्वरूप अनायतन सेवा से बचने के लिये इनको मंदिर जी में विराजान नहीं करना चाहिये और हैं तो निकालकर बाहर कर देना चाहिये तभी पंडित जी की तथा इस प्रकार की मान्यता वालों का विश्वास सही माना जा सकता है अन्यथा **'औरों को ठगो मक्कड़ से रोटी खाओ घी शक्कर से'** कहावत चरितार्थ होती है।

जातकर्म जिनस्यैताश्चक्रुरष्टौ यथाविधि।
जातकर्मणि निष्णाताः सर्वत्र जिनजन्मनि।।117।। हरि० सर्ग 8

अर्थ –विजया, वैजयन्ती आदि इन 8 देवियों ने विधि पूर्वक आदि जिनेन्द्र देव का जात कर्म किया था ये देवियां जात कर्म करने में अत्यंत निपुण हैं और सब जगह जिनेन्द्र देव का जात कर्म ये ही देवियां करती हैं।

काकिण्या लक्षणं कृत्वा सुरत्नत्रय सूत्रकम्।
संपूज्य स ददौ तेभ्यो भक्तिदानं कृते युगे।।106।। हरि० सर्ग11

अर्थ –काकिणी रत्न से निर्मित यज्ञोपवीत को उन ब्राह्मणों का चिह्न बनाया और आदर सत्कार कर कृतयुग में उन्हें भक्ति पूर्वक दान दिया। यह कथन आदि पुराण के पहले हरिवंश पुराण में किया गया है आजकल जो आक्षेप करते हैं कि आचार्य श्री जिनसेन ने आदि पुराण में अन्यमतियों से लेकर गर्भान्वयादि क्रियायें लिखी है तो इनके पहले हरिवंश पुराण में आ० श्री जिनसेन ने और क्रिया विशाल पूर्व में महावीर ने तथा गौतम गणधर ने किनसे लेकर लिखी तथा उपदेश किया?

प्र.19–महापुराण के अलावा भी क्या किन्हीं अन्य मूलग्रंथों में इन क्रियाओं का वर्णन आया है जो विश्वास किया जाये?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही क्रिया विशाल पूर्व नामके ग्रंथ में तीर्थंकरों ने, गणधरों ने सूत्र रूप में कथन किया है और यह

कथन भी अव्रती सम्यग्दृष्टि गृहस्थों के लिये है व्रतियों के लिये नहीं क्योंकि महाव्रतियों के लिये आचारांग और प्रतिमाधारी व्रतियों के लिये उपासका० में कथन किया है।

प्र.20–क्रिया विशाल पूर्व किसे कहते हैं तथा इसमें किसका वर्णन है?

उत्तर–जिसमें लौकिक और लोकोत्तर नाना प्रकार की दिनचर्याओं का वर्णन हो उसे क्रियाविशाल पूर्व कहते हैं। इसमें नाना प्रकार की गर्भ से लेकर मोक्ष पर्यंत चर्याओं का वर्णन है कहा भी है धवलापुस्तक 1 पृ० 123 सूत्र 2। **किरियाविसालं णामपुव्वं दसण्हं वत्थूणं विसद पाहुडाणं णवकोडि पदेहि लेखादिकाः द्वासप्ततिकलाः स्त्रैणांश्चतुःषष्ठि गुणान् शिल्पानि काव्य गुणदोष क्रियां छंदो विचिति क्रियां च कथयति।**

अर्थ –क्रिया विशाल पूर्व दस वस्तुगत 200 प्राभृतों के नौ करोड़ पदों के द्वारा पुरुषों की लेखनादि 72 कलाओं का, स्त्री संबंधी 64 गुणों का, शिल्प कलाओं का काव्य संबंधी गुणदोष विधि का और छंद निर्माण कला का वर्णन करता है। जयधवला टीका गाथा 1 पृ० 135 कारिका ।112। **किरियाविसालो णट्ट गेय लक्खण छंदालंकार संढित्थि पुरिस लक्खणादीणं वण्णणंकुणई–** क्रिया विशाल पूर्व नृत्यशास्त्र, गीतशास्त्र, लक्षणशास्त्र, छंदशास्त्र, अलंकारशास्त्र, नपुंसक, स्त्री और पुरुष के लक्षण आदि का वर्णन करता है। जीवकांड गाथा 366 पृ० 611 **क्रियादिभिर्नृत्यादिभिर्व्विशालंविस्तीर्णं शोभायमानं वा क्रियाविशालं त्रयोदशपूर्वमदु संगीत शास्त्रच्छंदोलंकारादि द्वासप्तति कळेंगळं चतुःषष्ठिस्त्रीगुणंगळुमं शिल्पादि विज्ञानंगळुमं चतुरशीतिगळुमं गर्भाधानादिगळुमंअष्टोत्तरशतमं सम्यग्दर्शनादिगळुमं पंचविंशतियं देववंदनादिगळुमं नित्यनैमत्तिक क्रियेगळुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणित पंचाशदधिकचतुःशतपदंगळु नवकोटिगळप्पुवेंबुदर्त्थ (कर्णाटवृत्ति)। क्रियादिभिः नृत्यादिभिः विशालं विस्तीर्णं शोभमानं वा क्रियाविशालं त्रयोदशं पूर्वं तच्च संगीत शास्त्र छंदोलंकारादि द्वासप्ततिकलाः चतुःषष्ठिस्त्रीगुणान् शिल्पादि विज्ञानानि चतुरशीति गर्भाधानादिका अष्टोत्तरशत सम्यग्दर्शनादिकाः पंचविंशति देववंदनादिकाः नित्य नैमित्तिकाः क्रियाश्च वर्णयति।** (जीवतत्त्व प्रदीपिका।) –: नृत्यादि क्रियाओं से विशाल शोभायमान क्रियाविशाल नामका 13वाँ पूर्व है। वह संगीत शास्त्र अलंकारादि का, पुरुषों की 72 कलाओं का स्त्री संबंधी 64 गुणों का, शिल्पादि विज्ञान 84, गर्भाधानादि 108 क्रियाओं का, सम्यग्दर्शन की 25 क्रियाओं का देववंदनादि नित्य नैमित्तिक क्रियाओं का वर्णन करता है। क्रिया विशाल पूर्व दृष्टिवादांग के 14 पूर्वों में से 13वें नं० का है जिसमें समस्त क्रियाकर्मों का वर्णन सर्वज्ञ केवलियों ने और गणधरों ने किया है।

प्र.21–धवल जयधवल के अनुसार क्रिया विशाल पूर्व में गर्भाधानादि 108 क्रियाओं का वर्णन नहीं है यदि होता तो गर्भाधानादिका अष्टोत्तरशत ऐसा पाठ या इस अर्थ का वाचक कोई वाक्य दे देते पर नहीं कहा ऐसा पाठ तो गो०जी० के टीकाकार ने कहा है ऐसा ठीक है क्या?

उत्तर– नहीं, जयधवलाकार ने कहा है क्योंकि लक्खणादीणं इस पाठ में आदीणं इस संग्रह वाचक पद के द्वारा समस्त क्रियाओं का संग्रह कर लिया है इसी तरह धवला में स्पष्ट वाक्य न होने पर भी उनको स्वीकार है क्योंकि यदि स्वीकार नहीं होता तो जयधवला में आदीणं पाठ नहीं देते जबकि धवल जयधवल के कर्ता एक ही आचार्य श्री वीरसेन स्वामी हैं।

प्र.22–क्रिया विशाल नाम के पूर्व में तदुभय वक्तव्यता का कथन होने से ये क्रियायें छोड़ने योग्य क्यों नहीं हैं?

उत्तर–नहीं, यद्यपि दृष्टिवादांग में तदुभय वक्तव्यता का कथन अवश्य है फिर भी यदि ये क्रियायें मिथ्या है या मिथ्या थीं तो दिगम्बराचार्य किन्हीं एकाद ग्रंथों में इनका निषेध कर देते पर निषेध नहीं किया किंतु अनेक ग्रंथों में अंगीकार करने के लिये विधान किया है। आपके कथनानुसार मान भी लिया जाये तो 11 अंगों में से आचारांग में मुनियों की दिनचर्या का वर्णन है तथा उपासकाध्ययनांग में पंचम गुणस्थानवर्ती प्रतिमाधारियों की दिनचर्या का, क्रियाकर्म का वर्णन है तो अब बताओ कि क्रिया विशाल पूर्व को मानोगे या नहीं? जरा सोचो ! जिनेन्द्र भगवान ने अव्रती सम्यग्दृष्टियों के

लिये कौन से अंग पूर्व में क्या चर्या बताई है या अव्रती गृहस्थों के लिये जिनेन्द्र ने उपदेश ही नहीं दिया तो क्या अव्रती सम्यग्दृष्टि गृहस्थों की दिनचर्या आचार विचार अन्य मतियों के मिथ्यादृष्टि जीवों के समान होती है क्या? चौथे गुणस्थान में 43 कर्म प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति या संवर किन परिणामों से या किस प्रकार की दिनचर्या से होती है, होता है? तदुभयवक्तव्यता में केवल खंडन ही नहीं होता है किन्तु पर समय का खंडन करने के बाद स्व समय का मंडन भी होता है अतः यदि गर्भान्वय आदि 108 क्रियायें मिथ्या हैं तो समीचीन कौन सी क्रियायें हैं बताना चाहिये?

प्र.23–किन्ही[2] ग्रंथकारों ने पूजन का विधान करते समय अभिषेक का विधान नहीं किया है अतः बिना अभिषेक के पूजा हो सकती है क्या?

उत्तर–नहीं, यदि किन्हीं ग्रन्थकारों ने पूजन का विधान किया और अभिषेक का विधान नहीं किया तो क्या इससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि उन ग्रन्थकारों को अभिषेक की क्रिया स्वीकार नहीं है यदि यह सत्य है तो अकृत्रिम चैत्यालयों में इन्द्र, देवगण अभिषेक क्यों करते हैं? आचार्य श्री कुंदकुंद ने अपने भक्ति पाठ में सर्वप्रथम **'दिव्वेणण्हाणेण'** यह पाठ क्यों दिया? देखो ! जब किसी धार्मिक या लौकिक कार्यक्रमों की पत्रिकायें छपती हैं तो उनमें आवास की, भोजनपान की व्यवस्थाओं का नाम तो लिखा जाता है, दिया जाता है पर किसी भी पत्रिका में मलमूत्र क्षेपण करने का, स्नान करने का, हाथ पैर धोने का नाम नहीं दिया जाता है तो क्या इसका अर्थ यह लिया जा सकता है कि वहाँ ठहरने की, भोजनपान की व्यवस्था है नहाने धोने की, मल मूत्र क्षेपण की नहीं। भले ही नहाने धोने आदि का नाम न लिखा हो फिर भी आगे की व्यवस्था होने से पूर्व की व्यवस्था अपने आप समझ ली जाती है। बिना स्नान किये, हाथ पैर धोये भोजनपान की व्यवस्था करना संभव है? कदाचित् मान भी लिया जाय कि बिना स्नान, हाथ पैर धोये भोजनपान की व्यवस्था की गयी है तो क्या पूर्व की क्रिया करने को आप कहाँ जायेंगे? इसी प्रकार भले ही कुछ ग्रन्थकारों ने अभिषेक का कथन किये बिना पूजन का विधान किया हो या पंथवादियों ने अपने पंथ के व्यामोह के कारण अन्य मतियों के समान वे गाथायें, श्लोक निकाल दिये हों क्या यह संभव नहीं है? जैसे आज वर्तमान में बहुत लेखक शास्त्रों में हेराफेरी नहीं कर रहे हैं क्या? अभिषेक के बिना पूजन कैसे संभव है? जैसे जिसने आगे की सीढ़ी पर पैर रखा है तो उसने पूर्व की सीढ़ी पर पैर अवश्य ही रखा है, स्पर्श अवश्य ही किया है। हाँ, इतना अवश्य है कि जिसने पूर्व की सीढ़ी पर पैर रखा है तो वह आगे की सीढ़ी पर पैर रखे या ना रखे संभव है किन्तु जिसने अभिषेक किया है वह पूजन करे या ना करे यह संभव है पर जिसने पूजन किया है उसने नियम से अभिषेक किया है।

लघु अभिषेक पाठ आ० अभयनंदि संकलित

श्री मज्जिनेन्द्र मभिवंद्य जगत्त्रयेशं।
स्याद्वादनायक मनन्त चतुष्टयार्हम्।।
श्री मूलसंघ सुदृशां सकृतैक हेतु।
जैनेन्द्रयज्ञ विधिरेष मयाभ्यधायि।।1।।

इस श्लोक को पढ़कर जिनचरणों में पुष्पांजलि चढ़ानी चाहिये।

श्रीमन्मन्दर सुन्दरे शुचिजलै र्धौतैः सदर्भाक्षतैः।
पीठे मुक्तिकरं निधाय रचितं त्वत्पादपद्मस्रजः।।
इन्द्रोहं निज भूषणार्थक मिदं यज्ञोपवीतं दधे।
मुद्राकंकण शेखराण्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे।।2।। जैनाभिषेक०

इस श्लोक को पढ़कर अभिषेक करने वालों को यज्ञोपवीतादि आभूषण धारण करना चाहिये।

सौगंध्यसंगत मधुव्रत झंकृतेन।
संवर्ण्यमानमिव गंधमनिंद्यमादौ।

आरोपयामि विवुधेश्वर वृन्दवंद्य।
पादारविंद मभिवंद्य जिनोत्तमानाम्।।3।।

इस श्लोक को पढ़कर अभिषेक कर्ताओं को अपने अंगों में चन्दन के नव तिलक लगाना चाहिये।

ये संति केचिदिह दिव्य कुल प्रसूता।
नागाः प्रभूत बल दर्पयुता विबोधाः।।
संरक्षणार्थ ममृतेन शुभेन तेषाँ।
प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम्।।4।।

इसको पढ़कर अभिषेक के लिये भूमि या चौकी का प्रक्षालन करना चाहिये।

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः
प्रक्षालितं सुरवरै र्यदनेक वारम्।
अत्युद्ध मुद्यतमहं जिनपाद पीठं
प्रक्षालयामि भवसंभवतापहारि।।5।।

इसको पढ़कर सिंहासन का प्रक्षालन करना चाहिये।

श्रीशारदा सुमुख निर्गत बीजवर्ण।
श्रीमंगलीक वर सर्व जनस्य नित्यं।।
श्रीमत्स्वयं क्षयति तस्य विनाशविघ्नं।
श्रीकार वर्ण लिखितं जिनभद्र पीठे।।6।।

इस श्लोक को पढ़कर पीठ पर श्री लिखना चाहिये।

इन्द्राग्नि दंडधर नैऋत पाशपाणि
वायूत्तरेशशशिमौलिफणीन्द्रचन्द्राः।
आगत्य यूयमिह सानुचराः सचिह्नाः
स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके।।7।।

नीचे लिखे प्रत्येक मंत्र को पढ़कर आह्वानन पूर्वक इन्द्रों को अर्घ्य देना चाहिये।

1 ॐ आं क्रौं ह्रीं इन्द्र आगच्छ आगच्छ इन्द्राय स्वाहा।
2 ॐ आं क्रौं ह्रीं अग्ने आगच्छ आगच्छ अग्नये स्वाहा।
3 ॐ आं क्रौं ह्रीं यम आगच्छ आगच्छ यमाय स्वाहा ।
4 ॐ आं क्रौं ह्रीं नैऋत आगच्छ आगच्छ नैऋताय स्वाहा।
5 ॐ आं क्रौं ह्रीं वरुण आगच्छ आगच्छ वरुणाय स्वाहा।
6 ॐ आं क्रौं ह्रीं पवन आगच्छ आगच्छ पवनाय स्वाहा।
7 ॐ आं क्रौं ह्रीं कुबेर आगच्छ आगच्छ कुबेराय स्वाहा।
8 ॐ आं क्रौं ह्रीं ऐशान आगच्छ आगच्छ ऐशानाय स्वाहा।
9 ॐ आं क्रौं ह्रीं धरणेन्द्र आगच्छ आगच्छ धरणेन्द्राय स्वाहा।
10 ॐ आं क्रौं ह्रीं सोम आगच्छ आगच्छ सोमाय स्वाहा।

दध्युज्ज्वलाक्षत मनोहर पुष्पदीपैः।
पात्रार्पितं प्रतिदिनं महतादरेण।।
त्रैलोक्य मंगलसुखालय कामदाह।
मारार्तिकं तव विभोरवतारयामि।।8।।

दधि, अक्षत, पुष्प और दीप रकाबी में लेकर त्रैलोक्यनाथ की आरती उतारनी चाहिये।

यं पांडुकामल शिलागत मादिदेव।
मस्नापयन्सुरवराः सुरशैलमूर्ध्नि।।
कल्याण मीप्सुरहमक्षत तोय पुष्पैः।
संभावयामि पुर एव तदीय बिम्बम्।।9।।

अर्घ क्षेपणकर श्रीकार लिखित पीठपर जिनबिंब को स्थापन करना चाहिये।

सत्पल्लवार्चितमुखान् कलधौतरौप्य।
ताम्रारकूट घटितान् पयसा सुपूर्णान्।
संवाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान्
संस्थापयामि कलशान् जिनवेदिकान्ते।।10

जल से भरे, पत्तों से ढके, सुवर्णादि के चार कलश चारों कोनों में स्थापन करना चाहिये।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमल बहुलेनामुना चन्दनेन।
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचि सदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः।।
हृद्यैरेभि र्निवेद्यै र्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपैः।
धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि।।11।।

ॐ ह्रीं श्री परमदेवाय श्री अर्हत्परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामिति स्वाहा।

दूरावनम्रसुरनाथ किरीटकोटी।
संलग्नरत्नकिरणच्छविधूसरांघ्रिम्।।
प्रस्वेदताप मलमुक्तमपि प्रकृष्टै।
र्भक्त्याजलैजिनपतिं बहुधाभिषिंचे।।12।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीरपर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकर परमदेवं आद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे–नाम नगरे मासानामुत्तमेमासे–पक्षे–शुभतिथौ–
शुभदिने मुन्यार्यिकाश्रावकश्राविकाणां सकल कर्म क्षयार्थं जलेनाभिषिंचे नमः।

श्री जिनप्रतिमा पर जलधारा कर अर्घ चढ़ाना चाहिये।

उत्कृष्टवर्ण नव हेम रसाभिराम
देहप्रभावलय संगमलुप्तदीप्तिम्।
धारांघृतस्य शुभगंधगुणानुमेयां
वन्देर्हतां सुरभिसंस्नपनोपयुक्ताम्।।13।। घृत से अभिषेक करना चाहिये।

सम्पूर्णशारद शशांक मरीचि जाल।
स्यन्दैरिवात्म यशसामिवसुप्रवाहैः।।
क्षीरै र्जिनाः शुचितरै रभिषिंच्यमानाः।
संपादयन्तु मम चित्तसमीहितानि।।14।। दूध से अभिषेक करना।

दुग्धाब्धि वीचिपय संचितफेनराशि।
पाँडुत्वकाँतिमवधीरयतामतीव।।
दध्नाँ गता जिनपतेः प्रतिमाँ सुधारा।
सम्पद्यतां सपदि वांच्छित सिद्धये नः।।15।। दही से अभिषेक करना।

भक्त्या ललाटतट देश निवेशितोच्चैः
हस्तैश्च्युताः सुरवरासुरमर्त्य नाथैः।
तत्कालपीलित महेक्षुरसस्य धारा
सद्यः पुनातु जिनबिंबगतैव युष्मान्।।16।। इक्षुरस से अभिषेक करना।

संस्नापितस्य घृत दुग्धदधीक्षुवाहैः।
सर्वाभिरौषधिभिरर्हत उज्ज्वलाभिः।।
उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेला।
कालेय कुंकुम रसोत्कटवारिपूरैः।।17।। सर्वौषधि से अभिषेक करना।

द्रव्यैरनल्पघनसारचतुः समाद्यै
रामोदवासित समस्तदिगन्तरालैः।
मिश्रीकृतेन पयसा जिनपुंगवानां।।
त्रैलोक्य पावनमहं स्नपनं करोमि।।18।। सुगन्धित जल से अभिषेक।

इष्टैर्मनोरथ शतैरिव भव्यपुंसां।
पूर्णैः सुवर्णकलशै र्निखिलावसानैः।।
संसारसागरविलंघनहेतुसेतु।
माप्लावये त्रिभुवनैकपतिंजिनेन्द्रम्।।19।। चारों कलशों से अभिषेक।

मुक्तिश्रीवनिताकरोदक मिदं पुण्यांकुरोत्पादकं।
नागेन्द्रत्रिदशेन्द्र चक्रपदवीराज्याभिषेकोत्सवम्।
सम्यग्ज्ञान चरित्रदर्शनलतासंवृद्धिसंपादकं।
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिनस्नानस्य गंधोदकम्।।20।।
यह श्लोक पढ़कर मस्तक पर गंधोदक लगाना चाहिये।

इति लघु अभिषेक विधिः

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा।।27।।

सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी।।28।। गो० जी०कां०

अर्थः—आज्ञाप्रधानी सम्यग्दृष्टि जीव स्वयं का विशेष क्षयोपशम न होने से या गुरु का विशेष क्षयोपशम न होने से केवलज्ञानी के विषय की अपेक्षा वस्तु का स्वरूप नहीं है दूषित है फिर भी आज्ञाप्रधानता के कारण विश्वास करने से सम्यग्दृष्टिपना है क्योंकि जिनेन्द्र भगवान अन्यथावादी नहीं होते हैं परंतु विशेष ज्ञानी गुरुओं ने सूत्रग्रंथों को दिखाकर प्रमाण नय निक्षेप से निर्दोष सिद्ध कर बतलाया, समझाया फिर भी यदि अपना कदाग्रह नहीं छोड़ा, सूत्रानुसार विश्वास नहीं किया तो मानी होने के कारण तत्क्षण ही मिथ्यादृष्टि हो जाता है। यहाँ पर **'अजाणमाणो'** यह विशेषण वक्ता और श्रोता इन दोनों में लगाकर अर्थ किया है जो उपयुक्त ही है।

प्र.24—वे कौन से पदार्थ हैं जो केवल आज्ञा ग्राह्य है?

उत्तर—सूक्ष्म पदार्थः— परमाणु आदि, **क्षेत्रांतरवर्तीः**— असंख्यात द्वीप समुद्र, **कालांतरवर्तीः**— तीर्थंकर राम रावणादि की अवगाहना, वैभव परिवार सौंदर्यादि केवल आज्ञा ग्राह्य है या अनुमानगम्य है क्योंकि ये तीनों विषय क्या हाथ में लेकर बताये जा सकते हैं? नहीं, अतः आज्ञा ग्राह्य है।

प्र.25–ऐसा कौन सा विषय है जो परीक्षा पूर्वक ग्रहण करने योग्य है?

उत्तर–हेयोपादेय को बताने वाले चारों अनुयोगों के विषय परीक्षा पूर्वक ग्रहण करने योग्य है क्योंकि सभी अनुयोगों के विषयों में हिताहित का विचार कर जो हितकारक, ध्यानाध्ययन में सहायक है वह ग्रहण किया जाता है और अहितकारक, ध्यानाध्ययन में बाधक का त्याग किया जाता है।

प्र.26–किसका वचन परीक्षापूर्वक और किसका आज्ञापूर्वक ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर– **वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यं तद्धेतुसाधितम्।**
आप्तेवक्तरि तद्वाक्यात् साध्यमागमसाधितम्।।78।। आप्तमीमांसा

अर्थ––यदि वक्ता अनाप्त है, राग द्वेष मोह से युक्त है तो उसके वचनों को हेतु पूर्वक परीक्षा पूर्वक ग्रहण करना चाहिये और वक्ता आप्त है, वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशी है तो उनके वचनों को आज्ञा पूर्वक ग्रहण करना चाहिये। आ० श्री समंतभद्रजी

प्र.27–ग्रहीत या अग्रहीत मिथ्यादृष्टि जीव किस प्रकार का श्रद्धान करता है?

उत्तर– **मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।**
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं।।18।। जी०कां०

अर्थः–मिथ्यादृष्टि जीव जिनेन्द्र के वचनों पर विश्वास नहीं करता किंतु आचार्याभासों के द्वारा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट पदार्थों के विपरीत स्वरूप का स्वेच्छानुसार श्रद्धान करता है। **ग्रहीतः**– जो पर के निमित्त से, उपदेश से असत् विश्वास किया जाये उसे ग्रहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं। **अग्रहीतः**– पूर्व संस्कार वश असमीचीन विश्वास चला आ रहा है उसे अग्रहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं। इस प्रकार विश्वास करने वालों को ग्रहीत और अग्रहीत मिथ्यादृष्टि जीव कहते हैं।

परम पूज्य आचार्य श्री १०८ वासुपूज्य सागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय

गृहस्थ नाम	दयाचन्द्र
जन्म स्थान	महेबा, जिला पन्ना (म.प्र.)
जन्म तारीख	संवत 2011 मार्गशीर्ष कृ. 3 शनिवार 13.11.1954
पिता का नाम	श्री कालीचरण जी जैन
माता का नाम	श्रीमती रामा देवी (स्व. आर्यिका श्रेणीमती माता जी)
जाति व शिक्षा	समस्त सिद्धान्त न्याय व्याकरण (जाति गोलालारे)
भाषा ज्ञान	हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी, गुजराती, बुन्देलखण्डी आदि
ब्रह्मचर्य व्रत	18 वर्ष की आयु में सन् 1973
सप्तम प्रतिमा	अवागढ़ (एटा) में सन् 1974, श्रावण सुदी सप्तमी
मुनि दीक्षा	सन् 1976 मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी
दीक्षा स्थान	सागवाड़ा, जिला डूंगरपुर (राज.)
दीक्षा गुरु	समाधिस्थ आचार्य श्री पार्श्वसागर जी महाराज (कोटला वाले)
आचार्य पद	सन् 1988 अक्षय तृतीया (वसगड़े जि. कोल्हापुर, महा.)
प्रा. व प्रौढ़ शिक्षा गुरु	प. प्यारेलाल जी व प. पन्नालाल जी उदयपुर वाले
भाई-बहन	तीन भाई एवं तीन बहन
अब तक विहार	राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड